Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.4
½

ओ३म्

ऋग्वेद

भाषा भाष्य

क्षेमकरणदास त्रिवेदी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

भाष्यकार की स्वलिखित संक्षिप्त आत्मजीवनी

(१) जन्म और वंशावली

वाग [illegible] (पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, कायस्थ सकसेने शमसाबादी सेठ) तिथि [illegible] सप्तमी संवत् १९०५ विक्रमीय (३ नवम्बर १८४८ ई०) को ग्राम शाहपुर-मंडराक परगना कोल जिला अलीगढ़ में उत्पन्न हुआ था। मेरे पिता लाला फुन्दनलाल जी, दादे लाला अमरसिंह जी, परदादे लाला मोतीलाल जी, नगरदादे लाला सदाराम जी और महानगर दादे वा सगर दादे लाला किशोरलाल जी थे॥

२—मेरे दादे लाला अमरसिंह जी फारसी पढ़े थे, वे शाहपुर के पटवारी थे, मेरे पिता लाला फुन्दनलाल जी हिन्दी जानते थे और वहां पर खेती करते थे। और आन गाँव वाले इस घराने को बड़ा मानते थे और उनसे सम्मति लेकर [illegible] करतें थे। लाला अमरसिंह जी के पीछे मेरे बड़े भाई लाला गोपालराय जी, और उनके पीछे उनके पुत्र लाला झुन्नीलाल जी पटवारी हुए। वे पटवारगरी छोड़कर अलीगढ़ जा रहे और नौकरी आदि से निर्वाह करके अपने पुत्र कान्ताप्रसाद को बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण कराया। वह खेती हमारे घराने में मेरे और मेरे भाई भतीजे [illegible]दि के नाम से अभी चली आती है॥

३—हम अपने माता पिता से अठारह भाई बहिन जन्मे थे। उनमें से चार [illegible]ई (लाला गोपालराय, मैं, लाला लेखराज, और लाला दीपचन्द) और चार [illegible]हिनों के विवाह हुए। लाला लेखराज और लाला दीपचन्द विना सन्तान स्वर्गवास [illegible]र गये। लाला गोपालराय के पुत्र लाला झुन्नीलाल और रघुवरदयाल थे। लाला झुन्नीलाल का स्वर्गवास हो गया, उनके पुत्र लाला कान्ताप्रसाद बी० ए० हैं। लाला रघुवरदयाल अलीगढ़ रहते हैं। मेरे आठ सन्तान हुए जिनमें से तीन पुत्रियों और [illegible] पुत्र का विवाह हुआ। पुत्र का नाम लाला विष्णुदयाल है और उनके दो पुत्र लाला शंकरदयाल सेठ बी० एससी० और इन्द्रदयाल सेठ हैं॥

(२) बालकपन और पढ़ाई

४—मैं दो-तीन वर्ष का था, तब मेरे बहुत चेचक निकली, जिसके चिह्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर भर में हैं। हमारे घर पर अलीगढ़ के लाला हरसहाय मेरे बड़े भाई गोपालराय जी और गाँव के कुछ लड़कों को फारसी पढ़ाते थे। जब मैं पांच वर्ष का हुआ, मेरा मक्तब (फारसी पढ़ने का आरम्भ) उनसे कराया गया। दो-तीन तक करीमा, खालिकबारी, आमदनामा आदि पुस्तक मैं पढ़ता रहा ।।

५—संवत् १९१४ विक्रमी (१० मई १८५७ ई०) में मेरठ से विद्रोह (बलवा वा गदर) आरम्भ हुआ। देश में बड़ी गड़बड़ मची। ग्राम ग्राम में पुराने-पुराने वैर निकाल कर लोग आपस में लूट मार करने लगे, भयानक दृश्य हो गया। हमारे और पिता जी ने देखा कि ग्राम के सब कायस्थों की और हमारी भी अवश्य लूट होगी और जीवनाश का बड़ा भय है। उन्होंने घर का सब गहना पाता और क के बस्ते ग्राम के एक प्रतिष्ठित पुरुष ठाकुर जयरामसिंह को सौंप दिये। र दादे जी पैदल दोपहर पीछे अलीगढ़ को भागे, मार्ग में लुटेरों ने हमारे कपड़ लूट लिये। यही दशा अलीगढ़ आदि को भागे हुए दूसरे कायस्थ लोगों की हुई। अलीगढ़ में बूआ फूफा के घर मेरे भाई गोपालराय जी फारसी पढ़ते थे, मैं उनके पास रहा और दादे जी हरसहाय के घर ठहरे। पिता जी दादा जी को घर छोड़ कर रात में सब स्त्रियों को घासीपुर ग्राम में ले गए। इसी प्रकार सब कायस्थ लोग जहां जिनका मुंह पड़ा, स्त्रियों को ले गये। दूसरे दिन आस पास के और ग्राम के ठाकुर लोगों ने हमारे पड़ोसी लाला मुकुन्दीलाल और लाला छेदीलाल कायस्थों के घरों को खोद खोद कर बुरी भाँति लूटा। मुखिया लोगों ने हमारी दादी जी को छत पर चढ़ा दिया और कहा तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारी लूट नहीं होगी। तीसरे पहर अकेले पिता जी घर का समाचार लेने को घासीपुर से चले। इधर शाहपुर से कुछ लुटेरे भी उनके खोज में निकले और पिता जी को मार्ग में पकड़ कर शाहपुर लाये और तलवारें नंगी करके चामुण्डा देवी के स्थान पर चढ़ाने ले गये। यह समाचार दादी जी ने सुन पाया और एक गंडासा लेकर चलीं और चामुण्डा के स्थान पर पिता जी के पास बैठ कर लुटेरों से बोलीं कि पहले तुम मुझसे लड़ लो फिर इसे हाथ लगाओ। इसी अवसर पर ठाकुर जयरामसिंह आदि मुखिया लोग आ गये और लड़ाके लोगों को हटाकर पिताजी को सकुशल दादी जी के साथ घर पहुंचा दिया। हम सब लोग भी अलीगढ़, घासीपुर आदि बाहिर से घर आ गये, तबसे ग्राम में आपस की ही मार से शान्ति हो गयी, और सब मिलकर बाहर वालों की मार धाड़ से बचने का उपाय करने लगे और बन्दूकों, तलवारों, फरसा आदि हथियारों से सजकर पहरा देकर ग्राम की रक्षा में लग गये। मैं भी एक छोटी सी तलवार बांधता था और घर की तलवार आदि हथियारों को तेल आदि मलकर पैना करता था। लोग जब बाहिर वालों की चढ़ाई का समाचार पाते, स्त्रियों और बालकों को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देते और आप सन्नद्ध होकर ग्राम में रहते थे। दो-तीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार बाहिर वालों ने चढ़ाई की, परन्तु आपस के मेल के कारण कुछ हानि न कर सके। इस प्रकार हमारा ग्राम बाहिरी लूट मार से बचा रहा ॥

६—उधर दिल्ली में अंग्रेजों और विद्रोहियों (बागियों) से लड़ाई ठन रही थी, इधर अलीगढ़ में हिन्दू और मुसलमानों में लूट मार होने लगी। लोगों ने अपनी स्त्रियों और बच्चों को जहां तहां भेज दिया। उस समय हमारे घर पर हमारी बूआ, बहिनें और दूसरे सम्बन्धी, उनकी ननदें, देवरानी, जेठानी आदि और बच्चे मिल कर चालीस-पचास स्त्री पुरुष अलीगढ़ से आकर रहे। जब अंग्रेजों ने दिल्ली जीत ली, वहां से मेरठ आदि नगरों में होते हुए आगरे होकर हाथरस पहुंचे और वहां से अलीगढ़ पर धावा किया, मुसलमानों ने अलीगढ़ से निकलकर मानसिंह के बाग के पास मैदान में सामना किया। कुछ देर लड़ाई हुई, कुछ अंग्रेज और बहुत से मुसलमान मारे गये। अंग्रेज जीत मनाकर उसी दिन हाथरस लौट गये और दूसरे दिन आकर अलीगढ़ पर अधिकार कर लिया। कुछ पकड़ मार के पीछे शान्ति हो गई। तब वे सब स्त्रियां और बालक जो हमारे घर आये थे, अपने-अपने घर अलीगढ़ चले गये। हम लोग अंग्रेजों की सेना का सड़क पर से आना जाना और उनके हथियारों का चमकना अपने घरों की छत से देखा करते थे ॥

७—एक अमीर खां, मुसलमान सिपाही अलीगढ़ का हमारे पिता जी का मित्र था। वह वहां से दो सन्दूक कुछ बिसातियों के माल से भरे लाया और अपना माल बताकर और ताले लगाकर हमारे घर धर गया। भेदिये (मुखबिर) ने अलीगढ़ के साहिब कलक्टर को हमारे घर में लूट के माल होने की सूचना दी। उन्होंने दौड़ लेकर दूसरे दिन सवेरे आप ही जाने का प्रबन्ध किया। यह समाचार पिता जी को मिल गया। उन्होंने रात में दोनों सन्दूक तोड़ कर सब माल विश्वासी लोगों के हाथ बहुत दूर अन्धौवे कूओं में फिकवा दिया और सन्दूकों में कागज भर दिये। दूसरे दिन सवेरा होते ही तीन चार छकड़े और बीस-पच्चीस सवार लेकर साहिब कलक्टर ने ग्राम घेर लिया। पहिले हमारे घर की तलासी ली, लूट खसोट का कुछ माल न मिला। साहिब कलक्टर तो चले गये, उनके साथ वाले सब ग्राम की तलासी तीसरे पहर तक करते रहे और दो-तीन मनुष्यों को पकड़ ले गये, जिनमें से एक को एक वर्ष की कैद हुई और शेष सब छूट गये ॥

८—राज्य प्रबन्ध ठीक हो जाने और विद्रोह मिट जाने पर सब लोग अपने-अपने काम में लगे। मुझको मेरे मंझले बहनोई लाला अचलप्रसाद जी वकील अलीगढ़ ले गए और एक मकतब में फारसी पढ़वाने लगे। छह सात महीने पीछे बहनोई जी का और उनसे दो तीन महीने पीछे बहिन का भी स्वर्गवास हो गया और मुझे घर लौट आना पड़ा। मैं कुछ दिनों अपने बड़े भ्राता लाला गोपालराय जी से और कुछ दिनों एक मौलवी साहिब मुहम्मदअली से घर पर फारसी पढ़ता रहा। फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे बूआ जी ने अलीगढ़ बुला लिया और वहां मकतब में फारसी के बड़े बड़े-पुस्तक पढ़ कर मैं मुन्शी हो गया ॥

९—अब मेरी आयु १५ वर्ष की थी, मुझे अंग्रेजी पढ़ने की चांट लगी, मैंने पिता जी से चर्चा किया। उन्होंने अपने मित्रों से पूंछा। सब सहमत हो गये परन्तु एक धनाढ्य पुरुष लाला भगवानीप्रसाद जी कहने लगे कि बहुत से बड़े-बड़े लोगों के लड़कों ने अंग्रेजी आरम्भ की और थोड़ी [illegible]नों में छोड़ दी, आप से यह काम न हो सकेगा। पिता जी चुप हो गये। [illegible] पिता जी से एकान्त में कहा कि आप परमेश्वर का नाम लेकर मुझे आज्ञा दें, परमात्मा बेड़ा [illegible]लगाएगा। पिता जी ने कुछ सोच विचार कर मुझे आज्ञा दे [illegible]। मैं अलीगढ़ [illegible] बूआ जी के घर रहकर अंग्रेजी स्कूल में गया। पंडित शोभाराम हेडमास्ट[illegible] फारसी में प्रवीण देखकर तुरन्त आदर से स्कूल में प्रविष्ट कर लिया। [illegible] छोटे मास्टरों से पढ़ता था, परन्तु पंडित जी मेरी विशेष सुधि रखते थे। ज[illegible]न्स क्लास में पढ़ता था, हेड मौलवी साहिब अपने घर पर मुझे अरबी कोर्स (सुल्लमुल्ल अदब आदि) पढ़ाते थे। स्कूल में हिन्दी और संस्कृत नहीं पढ़ाई जाती थी, उन्हीं दिनों में राजा जयकृष्णदास साहिब बहा[illegible] कलक्टर के उद्योग से एक पंडित नियत हुए। कोई विद्यार्थी [illegible] हिन्दी और संस्कृत आरम्भ कर दी। कुछ दिनों में बहुत विद्या[illegible]स्कृत पढ़ने लगे। अन्त में ऐन्ट्रेन्स परीक्षा तो मैंने उर्दू के साथ दी, क्योंकि उर्दू ही मेरे लिए उस समय सरल थी। सारांश यह है कि मैंने सन् १८६४ ईस्वी में अंग्रेजी आरम्भ की और पारितोषिक और छात्रवृत्ति पाते हुए मैं सन् १८७१ ईस्वी में कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और आगरे कालिज में जाकर एफ० ए० पढ़ने लगा ॥

(३) जीविका

१०—चार-पांच महीने पीछे आगरे कालिज से घर [illegible]। घर की दशा डांवाडोल देख कर अलीगढ़ हाईस्कूल में एक जगह १० [illegible]क मई सन् १८७२ ई० में स्वीकार कर ली। वहां से मेरी बदली ७ म[illegible]ो मुरादाबाद हाई-स्कूल को २५) महीने पर हुई। वहां ७ जुलाई [illegible] रहा। मुरादाबाद में परिश्रम करके मई १८७७ ई० में रुड़की कालिज [illegible]न्ट परीक्षा मैंने उत्तीर्ण की और सन् १८७८ में छह महीने की छुट्टी [illegible]तन पर लेकर आगरे जाकर अछनेरा मथुरा रेलवे में नौकर हुआ। वहां ठीक [illegible]गह न मिलने से फिर मुरादाबाद लौट आया। सन् १८८४ में शाहजहांपुर [illegible]स्कूल के बदल जाने पर तारीख २३ जनवरी १८८५ से २२ सितम्बर १८८६ तक २० महीने की छुट्टी विना वेतन ली। और इलाहाबाद जाकर एगजामिनर आफ एकौन्ट, इम्पीरियल स्टेट रेलवे के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दफ्तर में थोड़े दिन का करके एगजीक्यूटिव इंजिनियर बिलासपुर-इटावा स्टेट रेलवे के दफ्तर में २४ मार्च १८८५ से २४ मार्च १८८६ तक ४०) मासिक पर रहा। उसके पीछे ९ जनवरी १८८९ तक एक हजार रुपये नकद की जमानत देकर एकाउन्टेण्ट और खजानची, डिस्ट्रिक्ट इनजिनियर इण्डियन मिडलेंड के दफ्तर बांदा में ६०) से ७०) तक महीने पर नौकर रहा। वहां से अपनी बीमारी के कारण नौकरी छोड़कर अपने घर शाहपु- खेती और कुछ गुड़ आदि का व्यापार करने लगा, परन्तु अनुभव न होने से ़ ोटा पड़ा ॥

११—फिर तारीख १६ सितम्बर १८९१ से १५ मई १९०१ तक जोधपुर में दफतर मैनेजर साहिब जोध र बीकानेर रेलवे में, और १६ मई १९०१ से २१ जुलाई १९०७ तक वहां पर ही उसी रेलवे के आडिट आफिस में रहा। वहां से ५९ वर्ष की आयु में नौकरी छोड़ दी। उस समय मुझे ८०) मासिक वेतन मिलता था। छोड़ते समय मेरे पास पांच-छह हजार रुपये प्रावीडेन्ट फन्ड और बोनस और अपनी बचत के थे। चलते समय बाबू छोटमल रावत एसिस्टेन्ट आडिटर जोधपुर-बीकानेर रेलवे और शहर और दफतर के सब मित्र रेलवे स्टेशन पर पहुंचाने आये, और फूलों की मालायें पहना कर और वर्षा करके बड़े आदर और प्रेम से मुझे विदा किया। वहां से इलाहाबाद आकर अपने पुत्र लाला विष्णुदयाल के पास रहता हूं ॥

(४) गृहस्थ कर्म विवाह आदि

१२—संवत् १९२१ वि० (सन् १८६४ ई०) में जब मेरी आयु १६ वर्ष की थी, श्रीमती जानकी देवी जी (मुन्शी विहारीलाल जी की पुत्री) के साथ मेरा विवाह और तीसरे वर्ष में गौना हुआ। भादों संवत १९२७ वि० (सन् १८७० ई०) में बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी का जन्म हुआ और लगभग तीन-तीन वर्ष के अन्तर से सब पुत्र-पुत्रियां आठ बालक उत्पन्न हुए, चार छोटी आयु में मर गये। शेष चार अर्थात् पुत्र विष्णुदयाल का विवाह बाबू रामजीमल जी मुखतार बदायूं वाले की पुत्री से, बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी का विवाह लाला गुरुचरण जी एम० ए० (मुन्शी दुर्गाचरण जी मुरादाबाद वाले के पुत्र) से, पुत्री सत्यवती देवी का विवाह बाबू चंडीप्रसाद जी (मुन्शी गणेशीलाल जी अलीगढ़ वाले के पुत्र) से, और पुत्री विद्यावती देवी का विवाह मुन्शी ज्वालाप्रसाद जी बी० ए०, एल-एल० बी० वकील (मुन्शी श्यामलाल जी वकील, रईस कानपुर के पुत्र) से हुआ ॥

१३—घर का प्रबन्ध सदा उत्तम रीति से रहा। आरम्भ में स्कूल के वेतन के सिवाय कुछ दूसरी जगह पढ़ाई से और कुछ पुस्तकों की बिकरी से भी प्राप्ति हो जाती थी। आय के तीन भाग समझे जाते थे, एक भाग खाने पहरने आदि चालू खर्च के लिये, दूसरा सन्तानों की शिक्षा और विवाह आदि के लिये और तीसरा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर निधि अपने बुढ़ापे आदि के लिये। जब हम दोनों अलीगढ़ में थे, मैंने पत्नी को रात्रि में हिन्दी पढ़ाना आरम्भ करा दिया था। उस समय स्त्रियों के पढ़ने की रीति न थी, स्त्रियां कहती थीं कि पढ़ी स्त्रियां विधवा हो जाती हैं। परन्तु हम दोनों दृढ़ चित्त से पढ़ने-पढ़ाने में लगे रहे। इसका फल यह हुआ कि हमारे सब पुत्र पुत्रियाँ हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, गणित आदि घर में ही पढ़ने लगे। विष्णुदयाल ने कुछ दिन घर में पढ़कर मुरादाबाद, करवी, अलीगढ़ स्कूल, आगरा कालिज, और जोधपुर कालिज में अंग्रेजी बी० ए० तक पढ़ी और सन् १९०१ में इलाहाबाद एकौन्टेन्ट जनरल के दफतर में नौकर होकर अब सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं॥

१४—जब मैं मुरादाबाद में था, मेरे पास मेरी दादी बहिन आदि मेरी पत्नी और बालकों की खबरगीरी के लिए रहती थी। मेरे छोटे भाई लाला लेखराज भतीजे लाला झुन्नीलाल, और साले लाला भूपालराय क्रम-क्रम से स्कूल में मेरे पास पढ़ते रहे। मेरे पिता जी पर लोगों का ८००) का ऋण था, वह सन् १८८१ में रुपया देकर मैंने चुका दिया। उसके बदले में उन्होंने खेत का पट्टा १८ वर्ष के लिये मेरे नाम लिख दिया। उसका प्रबन्ध पिता जी करते रहे और उनके पीछे वह खेत अपने घराने में अब तक चला आता है, जिसके प्रबन्ध से अब मंझ लाला लेखराज जी की धर्मपत्नी निर्वाह करती हैं॥

१५ जब मैं बांदे से नौकरी छोड़कर आया, शाहपुर में नया मकान बनवाया, पिताजी के स्वर्गवास होने पर उनका मृतक संस्कार पहिली बार अपने ग्राम में वैदिक रीति से किया। बड़ी पुत्री का विवाह भी वैदिक रीति से किया। पुत्र विष्णुदयाल को अलीगढ़ हाईस्कूल में प्रविष्ट कराकर बोर्डिंग हाउस में रख दिया, और अपने साले लाला गंगासहाय को अलीगढ़ के तहसीली स्कूल में प्रविष्ट कराकर बोर्डिंग हाउस में रक्खा, जहां पर वे मिडिल परीक्षा तक पढ़कर अपने घर चले गए। विष्णुदयाल ने अलीगढ़ से एन्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण करके, आगरा कालिज के बोर्डिंग हाउस में कुछ समय तक रहकर मेरे पास जोधपुर के जसवन्त कालिज से एफ० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बी० ए० तक शिक्षा पाई और रुड़की कालिज में प्रविष्ट होने का प्रयत्न किया, परन्तु किसी कारण से न जा सके। उनका विवाह और गौना हो चुका था। वे लगभग दो वर्ष तक अपने घर वालों सहित कानपुर कमसरियट के दफतर में काम करते रहे और स्थिर नौकरी मिलने पर सन् १९०१ से इलाहाबाद चले गये जहां मकान बनाकर अब रहते हैं॥

१६—जब मैं जोधपुर के रेलवे दफतर में नौकर था मैंने माता, पत्नी और बच्चों को अपने पास बुला लिया। वहां पहिले मेरी माता जी का फिर दो महिने पीछे छह-छह महीने के दो युग्म पुत्रों का, और फिर उससे १५, २० दिन पीछे १५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम्बर १८९२ को धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। घर के कामों में बड़ी गड़बड़ पड़ी। पहिले मैं योगाभ्यास करने में लगा और जोधपुर के प्रसिद्ध योगी महात्मा देवीदीन आदि से मिला करता था। इस योगाभ्यास और सत्संग से मेरा मन संस्कृत विद्या के स्वाध्याय करने, बच्चों को शिक्षा देने और उनके विवाह आदि संस्कार करने में जम गया। उस समय मेरे तीन लड़कियां और एक पुत्र थे। लड़कियों को संस्कृत, उर्दू, गणित आदि, गृहस्थी के काम, भोजन बनाने, सीने पिरोने आदि में विशेष शिक्षा दी। बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी को पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञपरीक्षा तक पढ़ाया। उसका विवाह तो हो चुका था, गौना जून १८९३ में हुआ। २० जनवरी १८९६ को पुत्र विष्णु दयाल का, ३ फरवरी १८९७ को पुत्री सत्यवती देवी का और ५ मई १८९७ को पुत्री विद्यावती देवी का विवाह हुआ, और योग्य समय पर उनके गौने हो गये॥

१७— फिर मुझे उमंग उठी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में बाल विधवा विवाह नहीं होता, इस विपत्ति के उठाने के लिये कोई उदाहरण स्थिर करना चाहिये। यह ठान कर ३० अगस्त १८९८ ई० को एक विज्ञापन दिया कि मैं अपना सजातीय अर्थात् कायस्थ सकसेने दूसरे अच्छे घराने की बालविधवा स्त्रीसे विधवा बिवाह करना चाहता हूँ, विद्वान् लोग पक्षपात छोड़कर सम्मति देवें। इस पर बहुत आन्दोलन हुआ, बिरादरी में नगर २ अनुकूल और प्रतिकूल सभायें हुईं, समाचार पत्रों में भी लिखा पढ़ी हुई। पंडितों की अनुकूल व्यवस्थायें, और बिरादरी के और दूसरे २ बड़े सज्जनों की अनुकूल सम्मतियां एकत्र करके कार्तिक सुदी ११ (देवोत्थान) संवत् १९५३ ता० २४ नोवम्बर १८९८ को मेरा विवाह सजातीय बाल विधवा श्रीमती श्यामसुन्दरी देवी के साथ उनकी माता के हाथों से बड़ी धूम धाम से हुआ। पंडित जनों, इष्ट मित्रों, और बिरादरी के सज्जनों का भोजन आदि से सत्कार किया गया। जगह-जगह से बधाई आने लगी (इस विधवा विवाह का पूरा वृत्तान्त मेरी उर्दू पुस्तक विधवा मंगल में छपा है)।

(५) धर्मनिष्ठा

१८—बचपन में मुझे कोई धर्मशिक्षा नहीं हुई थी, लोगों की देखादेखी स्नान करके शिवमूर्ति पर लोटा जल चढ़ाकर बकरे के समान मुंह बजाकर "बं बं बम और जय शिव जय शिव" कहता था। बलवे के पीछे अलीगढ़ के एक पंडित उदयराम जी हमारे ग्राम में तुलसीकृत रामायण बांचा करते थे, मैं उसे चित्त देकर सुनता था। जब वे सायंकाल को प्रसन्न होकर बैठते, मैं उनसे उसी रामायण पर कुछ प्रश्न करता जिनको वे प्रसन्न होकर समझा देते थे। मैं उनको कूए से जल लाकर पिलाता और भोजन बनाने में सहायता देता था। जब कभी ग्राम में सत्यनारायण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की वा गरुड़ पुराण की कथा होती, उसे भी सुना करता था। जब मैं अलीगढ़ रहता था, प्रायः नियम से अचलेश्वर महादेव जी के दर्शन करता और दशहरे के दिनों में रामलीला देखता, और रात्रि में जब रामचन्द्र जी नगर को आते, दर्शन करता था। एक समय दो चमार कमेरे (हमारे खेत के मजदूर) आपस में विवाद कर रहे थे। वादी ने प्रतिवादी से कहा—"या को वेद न्यारो ही है"। यह वाक्य मेरे हृदय में जम गया। मैं सोचने लगा कि वेद कोई विचारने योग्य वस्तु है जिसका नाम यह अनपढ़ चमार भी जानता है। अंग्रेजी इतिहासों से भी वेद का नाम मैं जान गया था। जब मैं एन्ट्रेंस क्लास में पढ़ता था, मेरे पास उर्दू-हिन्दी का एक मासिक पत्र आता था। उसमें संस्कृत अक्षरों में एक मन्त्र लिखा था, जिसे विवाह समय कन्या पढ़ती है। पं० कालीचरण जी हेड पंडित हमें संस्कृत में हितोपदेश पढ़ाया करते थे, मैंने उनसे विनती करके उस मन्त्र का शब्दार्थ पूछा। वे क्रुद्ध होकर बोले—"तुम कायस्थ शूद्र हो, शूद्रों को वेदार्थ बताना निषेध है"। मैं चुप हो गया। सत्मत निरूपण आदि पादरियों की पुस्तकें भी देखा करता था, जिसमें वेद और पुराणों की निन्दा भरी थी, जिनसे बड़ा सन्देह होता था।

(६) महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट

१९—संवत् १९३३ (सन् १८७७) में महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मुरादाबाद पधारे। उन्होंने राजा जयकृष्णदास जी सी० आई० ई० की कोठी पर उतर कर लगातार पांच छह दिन तक सायंकाल वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिये। वे बैठकर व्याख्यान देते थे और अन्य वेद मन्त्रों के साथ—

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।

सत्यार्थ प्रकाश का आदि मन्त्र व्याख्यान के आरम्भ में और—

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सत्यार्थप्रकाश के अन्त का मंत्र व्याख्यान के अन्त में स्पष्ट शब्दों में ऊंचे मधुर स्वर से बोलते थे और व्याख्यान भी बहुत शुद्ध सरल और मधुर शब्दों में देते थे जिसको श्रोता लोग एकचित्त होकर सुनते थे। कैसी ही बातचीत वा कोलाहल हो उनके बोलते ही सब एक साथ बन्द हो जाता था और शान्ति फैल जाती थी। व्याख्यान की समाप्ति पर वे लोगों की शंकाओं का समाधान करते थे। कुछ लोग रात्रि में दस ग्यारह बजे तक उनसे सत्संग करते थे। मैं भी नंगे पैरों श्रद्धा और भक्ति से दोनों समय व्याख्यान और सत्संग में जाता था और प्रातःकाल जब वे दण्डा लेकर नगर से बाहिर भ्रमण करते थे, मैं भी जाकर मार्ग में उनके दर्शन करता और "आनन्दित रहो" यह आशीर्वाद लेता। स्वामी जी का शरीर विशाल, पुष्ट, गेहुंआ रंग था। उनकी बोलचाल में बुद्धिमत्ता, गम्भीरता, वीरता, निष्पक्षता और परोपकारिता साक्षात् दीखती थी। उनका दण्डा लेकर भ्रमण करना मेरी आंखों के सामने घूमा करता है।

२०—उन्हीं दिनों, मैं और मुन्शी कालिका प्रसाद दो कायस्थों ने, लाला चन्द्रमणि और लाला द्वारिकाप्रसाद दो वैश्यों ने स्वामी जी से यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र लिया। मैंने स्वामी जी की आज्ञा से उनकी पंचमहायज्ञ विधि पुस्तक को मुन्शी इन्द्रमणि जी से पढ़ा। मैंने एक दिन स्वामी जी से पूछा कि यदि लोग आप से यज्ञोपवीत लेने में दोष लगावें और हमारा धर्म पूछें तो क्या उत्तर दिया जावे। उन्होंने कहा कि संन्यासी से यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है, और अपना धर्म वैदिक धर्म बतलाया करो। तभी उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी पीठ ठोककर कहा—ईश्वर करे तू वेदों को पढ़कर उनका प्रचार करे।" मैं स्वामी जी की पुस्तकों को बहुत रुचि से लेता और पढ़ता था। उनके मासिक पत्र वेद भाष्य के ग्राहकों में मेरा नम्बर ९ था जिसको मैं अन्त तक १७ वर्ष तक लेता रहा ॥

२१—जब स्वामी जी सन् १८७७ में मुरादाबाद आये थे, एक आर्यसमाज उक्त राजा साहिब की कोठी पर खोला गया था जो आपस की अनबन से टूट गया। स्वामी जी ३ जुलाई १८७९ को फिर मुरादाबाद आये और शहर में उन्हीं राजा साहिब की कोठी पर उतरे। इन दिनों स्वामी जी संग्रहणी (दस्तों) के रोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पीड़ित थे, तीन व्याख्यान दिये। २० जुलाई १८७९ को स्वामी जी की उपस्थिति में उन्हीं राजा साहिब की कोठी पर बड़ा हवन करने के लिये सामग्री मंगाई गयी और मोहनभोग भी बनाया गया। उस दिन वर्षा बहुत हो रही थी, एक घर में थोड़ा सा हवन किया गया। सामग्री और मोहन भोग बच गया। लगभग पांच सौ मनुष्य उपस्थित थे, देर हो जाने के कारण राजा साहिब ने सब को भोजन कराया और वह मोहन भोग भी बंटवा दिया। उसी दिन आर्यसमाज स्थापित होकर मुन्शी इन्द्रमणि प्रधान, कुंवर परमानन्द और ठाकुर शंकरसिंह मन्त्री, साहू श्यामसुन्दर कोषाध्यक्ष, लाला जगन्नाथदास पुस्तकाध्यक्ष और अड़तीस सभासद् हुए जिनमें मैं भी था। इस अवसर पर धूर्तों ने गप्प उड़ाई कि स्वामी जी ने मोहनभोग में थूक दिया था, वह इन लोगों ने खाया है। बिरादरी में पंचायतें होने लगीं, कुछ लोग समाज से अलग हो गये और कुछ दृढ़ होकर कार्य करते रहे। मुझ से भी कुछ बिरादरी वालों ने खेंचातानी की, मैं पक्का होकर समाज में बना रहा। दूसरे वर्ष चिरंजीव विष्णुदयाल का यज्ञोपवीत कराया। सब भाई बन्धु, नातेदार और आर्यसमाजी भाई संस्कार में सम्मिलित हुए, मैंने उसको यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र दिया। आये हुए स्त्री पुरुषों का सत्कार मिष्टान्न और भोजन आदि से किया गया और कार्य बड़ी प्रसन्नता से पूरा हुआ।

२२—मुसलमानों ने कुछ पुस्तक हिन्दुओं के देवताओं और महात्माओं की निन्दा में निकाले थे। मुन्शी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी ने हिन्दू धर्म के अनुसार उनके उत्तर—"हमला हिन्द, समसाम हिन्द और सौलत हिन्द"— तीन पुस्तकों में देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की। मुसलमानों के अभियोग चलाने पर मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने मुन्शी जी पर पांच सौ रुपया जुरमाना किये और पुस्तक फड़वा डाले। अपील करने पर हाईकोर्ट इलाहाबाद और लाट साहिब के यहां से जुरमाना माफ़ होगया।

२३—मु० इन्द्रमणि ने पुस्तकें रच कर हिन्दू धर्म की रक्षा की थी और अब मुरादाबाद आर्यसमाज के प्रधान थे, उनकी प्रार्थना और स्वीकृति पर स्वामी जी की सम्मति से आर्यसमाजों ने अपराध की सफाई और जवाबदिही करने को मुन्शी जी के लिये इस शर्त पर चन्दा किया कि जो चन्दा थोड़ा आवे, आर्यसमाज मेरठ खर्च चला कर समाजों से ले लेवे, और जो अधिक आवे तो शेष धन का उपयोग समाजों की सम्मति से किया जावे, चन्दे का धन लाला रामशरणदास जी रईस मेरठ के पास एकत्र होवे और वहां से ही खर्च किया जावे। जो चन्दा मेरठ समाज में आया था, इसमें से मुन्शी जी को खर्च के लिये भेजा गया, और बहुत सा धन सीधा मुन्शी जी के पास आया। आर्यसमाज मेरठ ने उनसे आय व्यय का हिसाब मांगा, उन्होंने और उनके शिष्य लाला जगन्नाथदास ने हिसाब न दिया और प्रकट किया कि यह धन केवल मुन्शी जी के लिये आया है, सबका सब उनको मिलना चाहिये। बहुत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाने बुझाने पर भी वे दोनों स्वामी जी और आर्यसमाजियों को दोष लगाने लगे और अलग आर्यसमाज करने लगे। तब आर्यसमाज मुरादाबाद ने श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा लेकर एक बहुत बड़ी सभा की। उसमें सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि मुन्शी इन्द्रमणि जी और उनके शिष्य लाला जगन्नाथ दास जी न तो मुकद्मे में का हिसाब देते हैं और न सफाई करते हैं, और उलटे स्वामी जी और आर्य समाजों को झूठा दोष लगाते और अलग समाज करते हैं, इस लिये दोनों महाशय आर्य समाज मुरादाबाद से अलग किये गये। तब निम्नलिखित पत्र समाजों और समाचार पत्रों को भेजा गया—

महाशय, नमस्ते

विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की आज्ञानुसार, आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध आचरण के कारण मुन्शी इन्द्रमणि प्रधान और लाला जगन्नाथदास पुस्तकाध्यक्ष अपने अपने पद और सभासदी से इस आर्यसमाज से २९ मई सन् १८८३ ई० से अलग किये गये और मुन्शी दुर्गाचरण प्रधान नियत हुए। आगे को पत्र आदि मुन्शी चे मकरणदास मन्त्री के नाम ठिकाना मकान साहू श्यामसुन्दर जी रईस मंडी बांस मुरादाबाद भेजे जावें। चे मकरणदास मन्त्री आर्यसमाज मुरादाबाद, ३० मई १८८३

इसके पीछे मुन्शी इन्द्रमणि जी का समाज कुछ दिनों में टूट गया और पुराना समाज अधिक अधिक उन्नति करता हुआ चला आता है। मन्त्री पद के लिये मेरा निर्वाचन निरन्तर सन् १८८० से सन् १८८४ तक (जब तक मैं मुरादाबाद रहा) होता रहा। और बदली हो जाने पर शाहजहांपुर, कटनी, मुड़वारा, करवी, बांदा, जोधपुर, इलाहाबाद आदि समाजों में कभी सभासद्, कभी मन्त्री और कभी प्रधान होकर सेवा करता रहा।

२४—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म गुजरात देश के मौर्वी नगर में संवत् १८८१ विक्रमीय (सन् १८२४ ई०) में हुआ था, वे ब्राह्मण थे और अपने को मथुरा के महर्षि स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्य मानते और पुस्तकों में लिखते थे। इनका स्वर्गवास दिवाली के दिन सायंकाल ६ बजे कार्तिक कृष्णा अमावस संवत् १९४० वि० (ता० ३० अक्तूबर १८८३) को अजमेर नगर में हुआ। वे अपने जीवित ही फाल्गुन वदी ५ संवत् १९३९ वि० (२७ फरवरी १८८३ ई०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को राजधानी उदयपुर में अपना स्वीकार पत्र (वसियत नामा) अपने धन सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि करने और वैदिक धर्म प्रचार आदि परोपकार में लगाने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा के नाम रजिस्टरी करा चुके थे, जिसके सभासद् इस प्रकार थे—

१—श्रीमन्महाराजाधिराज, महेन्द्र यावदार्यकुल दिवाकर महाराणा जी श्री १०८ श्री सज्जन सिंह वर्मा, धीर वीर जी० सी० ऐस० आई० उदयपुर राज मेवाड़ सभापति

२—लाला मूलराज जी एम० ए० एक्सट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर प्रधान आर्य समाज लाहौर, (लुधियाना निवासी) उपसभापति

३—श्रीयुत कविराज श्यामल दास जी, उदयपुर, राज मेवाड़ मन्त्री

४—लाला रामशरण दास जी रईस, उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ ,,

५—पं० मोहन लाल विष्णलाल जी, उदयपुर, (मथुरा निवासी) उप मंत्री

६—श्रीमन्राजाधिराज, श्री नाहरसिंह वर्मा शाहपुरा, सभासद्

७—श्रीयुत राव तखत सिंह जी बेदले, राज्य मेवाड़ ,,

८—श्रीमद्राजराणा श्री फतह सिंह जी वर्मा देलवाड़ा ,,

९—श्रीमत् श्री अर्जुन सिंह जी वर्मा, आसींद ,,

१०—श्रीमत् महाराज श्री गजसिंह जी वर्मा उदयपुर ,,

११ श्रीमत् राव श्री बहादुर सिंहजी वर्मा, मसूदा जिला अजमेर ,,

१२—राय बहादुर पंडित सुन्दरलाल जी सुपरिन्टेन्डेन्ट वर्कशाप अलीगढ़ (आगरा निवासी) ,,

१३—राजा जयकृष्णदास जी सी० आई० ई० डिप्टी कलक्टर बिजनौर (मुरादाबाद निवासी) ,,

१४—बाबू दुर्गाप्रसाद जी कोषाध्यक्ष आर्य समाज फरुखाबाद, ,,

१५ लाला जगन्नाथ प्रसाद जी फरुखाबाद ,,

१६ सेठ निर्भयराम जी प्रधान आर्यसमाज फरुखाबाद (बिसाऊ राजपूताना निवासी) ,,

१७ लाला कालीचरण जी मन्त्री आर्यसमाज फरुखाबाद,

१८—बाबू छेदीलाल जी गुमाश्ते कमसरयेट छावनी मुरार (काहनपुर निवासी) ,,

१९—लाला साईंदास जी मन्त्री आर्यसमाज, लाहौर ,,

२०—बाबू माधवदास जी मन्त्री आर्यसमाज, दानापुर ,,

२१—राय बहादुर रा० रा० राजमान् राजेश्वरी पंडित गोपालराव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरि देशमुख, मेम्बर कौंसिल गवर्नर बम्बई-प्रधान आर्यसमाज बम्बई (पूना निवासी) ,,

२२—राव बहादुर महादेव गोविन्द, रानाडे, जज पूना ,,

२३ पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा, संस्कृत प्रोफेसर ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी इंगलेंड (बम्बई निवासी) ,,

यह परोपकारिणी सभा अधिकारियों और सभासदों की अदला बदली से अब तक अपना कार्य कर रही है। इस की पहिली बैठक संवत् १९४१ वि० में अजमेर नगर में हुई। उसमें सब आर्यसमाजों के प्रतिनिधि आए, मैं मुरादाबाद आर्यसमाज का प्रतिनिधि था। इस बैठक में वैदिक यन्त्रालय को प्रयाग से लाकर अजमेर में रखने और स्वामी जी कृत वेदभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकें छपवाने और प्रचार करने आदि कार्यों के लिये निश्चय हुआ ॥

२५--दिसम्बर १८८४ बड़े दिन की छुट्टी में प्रयाग नगर में हिन्दू समाज की एक बड़ी बैठक हुई जिसमें समस्त भारतवर्ष के हिन्दुओं के प्रतिनिधि आये थे, मैं शाहजहांपुर आर्यसमाज का प्रतिनिधि होकर गया था। इस हिन्दू समाज का उद्देश्य था कि भारतवर्ष के सब हिन्दू लोग एकमत का अवलंबन करें और यथाशक्ति देशीय वस्तु काम में लावें। मैंने अपने मित्रों सहित प्रयाग के चौक बाजार में सब-को वैदिक धर्म पर चलने, विदेशीय वस्त्र आदि छोड़ने और देशीय वस्त्र आदि धारण करने पर व्याख्यान दिया और इसी विषय का समर्थन हिन्दू समाज में किया। यह हिन्दू समाज तभी एक वार जुड़ा और फिर उनका पता न चला ॥

२६—जब महाशय रमाकान्त जी बी० ए० के विशेष उद्योग से प्रयाग नगर में दरयाबाद के पास दयानन्द एंग्लो वर्नेक्यूलर स्कूल (डी० ए० वी० स्कूल) बनना आरम्भ हुआ, उसकी कार्यकारिणी सभा ने रविवार वैशाखशुक्ला १२ संवत् १९७२ तारीख १४ मई १९१६ को प्रातःकाल हवन आदि वैदिक रीति से करके बड़े समारोह के साथ उस पवित्र पाठशाला दयानन्द स्कूल की आधार शिला मेरे हाथ से रखवाई। परमात्मा की कृपा से इस स्कूल में अब संवत् १९७८ (सन् १९२१) से संस्कृत फारसी, अंग्रेजी आदि के बड़े विद्वान्, आर्यसमाज के मुख्य स्तम्भ महाशय गंगाप्रसाद जी एम० ए० हेड मास्टर हैं और वैदिक धर्म शिक्षा सहित एन्ट्रेन्स परीक्षा तक अच्छे परिणाम के साथ पढ़ाई होती है ॥

२७— मैंने १८८५ ई० में शाहजहांपुर स्कूल की नौकरी छोड़कर इन्डियन मिड्लेन्ड रेलवे में जो उस समय बन रही थी, तीन वर्ष नौकरी की, और कटनी मुड़वारा, कर्वी बांदा आदि स्थानों में सज्जनों के सम्मेलन से आर्य समाज स्थापित किये, और मुरादाबाद आदि से मंगाकर देशी कपड़े और बरतनों का प्रचार करता रहा। फिर वहां से नौकरी छोड़कर अपने माता पिता आदि के साथ अपने घर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहपुर-मडराक में तीन वर्ष रहकर वैदिक धर्म का अंकुर जमाया, और गृहस्थी के कार्य करता रहा। इसके पीछे सन् १८९१ ई० से सन् १९०७ तक रेलवे के दफ्तर में नौकर होकर जोधपुर आर्यसमाज में अपना कर्तव्य करता रहा। वहां से प्रयाग आकर पहिले कटरे समाज में सम्मिलित रहा, फिर वहां से लूकरगंज में आकर रहने पर प्रयाग के चौक समाज में सम्मिलित हूं॥

(७) संस्कृत विद्या, प्राज्ञ परीक्षा और वेद परीक्षा

२८—जब जोधपुर में मेरी माता, दो छोटे पुत्र और धर्मपत्नी दो तीन महीने में स्वर्गवास कर गये, घर रीता हो गया, घर के कामों से मेरा मन हटने लगा। मेरे बड़े पुत्र आगरे कालेज में पढ़ते थे, बड़ी पुत्री का गौना होने को था, दो छोटी पुत्रियां पढ़ती थीं और कुमारी थीं। पंडित ठाकुरप्रसाद शर्मा, आचार्य ग्राम हरीपुर डाकघर हनुमान गंज, जिले इलाहाबाद के रहने वाले, जोधपुर आर्य-समाज के मुख्योपदेशक थे। वे मेरी दशा को जानते थे, उन्होंने निश्चय कराया कि घर में रहकर ही योगाभ्यास करके विद्या की वृद्धि करनी चाहिये और अनसमझ बच्चों को अपने होते हुए किसी दूसरे के आश्रय में अनाथ करके छोड़ चला जाना बड़ी ही निर्दयता है, गृहस्थ कर्म निर्वाह कर कर्तव्य करते रहना परम तप है। तब मैं अपनी शिक्षा, बच्चों की शिक्षा और गृहस्थी के काम काज में लग गया। उक्त पंडित जी ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया। उन्होंने अवकाश निकाल कर नौ दस बजे रात्रि को मुझे संस्कृत पढ़ाकर पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा में सन् १८९३ ई० में उत्तीर्ण करा दिया। मैं पंडित जी से पढ़ कर वही पढ़ाई अपनी बड़ी पुत्री को पढ़ाता था उसने भी प्राज्ञपरीक्षा दी, पर अनुत्तीर्ण रही। उसके पीछे वे मुझे योगदर्शन आदि पढ़ाते रहे। जोधपुर से उनके चले जाने पर मैं पंडित भवानी दत्त शर्मा शास्त्री से पंजाब की शास्त्री परीक्षा के ग्रन्थ, विशेष करके ऋग्वेद पढ़ता रहा। इसके अतिरिक्त जोधपुर में जब जब अवकाश रहता, श्रीमान् स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती, स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती, प्रज्ञाचक्षु स्वामी गिरानन्द सरस्वती, बृहत्कवि विद्याभास्कर वैयाकरण केसरि, पण्डित गुरुलालचन्द्र शर्मा से व्याकरण, निरुक्त, वेदादि शास्त्र मैं विचारता था।

२९—जुलाई सन् १९०७ में जोधपुर से नौकरी छोड़कर प्रयाग में अपने पुत्र विष्णुदयाल के पास रहा और अब तक रहता हूं। घर में शान्ति और भोजन आदि का सुभीता देखकर वेदों के विचार करने की उत्कण्ठा और बढ़ी। ऋग्वेद में १०,५८९ (दस सहस्र पाँच सौ नवासी), अथर्ववेद में ५,९७७ (पांच सहस्र नव सौ सतहत्तर), यजुर्वेद में १९७५ (उन्नीस सौ पचहत्तर), और सामवेद में १८७३ (अठारह सौ तिहत्तर) मन्त्र हैं, अर्थात् सामवेद सबसे छोटा वेद है। इस लिए मैंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित तुलसी राम के और सायणाचार्य के भाष्य सहित पहिले सामवेद पढ़ा । इस समय पण्डित रामजीलाल शर्मा अध्यक्ष हिन्दी प्रेस प्रयाग बड़े प्रेम और परिश्रम से मुझे सामवेद और यजुर्वेद पढ़ाते रहे। संवत् १९६५ वि० (सन् १९०८) में बड़ौदा राजधानी जाकर श्रावण मास दक्षिणा परीक्षा देकर सामवेद भाष्य में उत्तीर्ण होकर राज्य से दक्षिणा और प्रमाण पत्र पाया। तब मैं सामवेदी कहलाया। वहाँ से आकर मैंने स्वामी दयानन्द और महीधर के भाष्यों से यजुर्वेद पढ़ा। ऋग्वेद को मैं बहुत कुछ पहिले देख चुका था, उसको स्वामी दयानन्द और सायणाचार्य के भाष्यों और अन्य ग्रन्थों से पूरा किया। अथर्ववेद पर सायण भाष्य पूरा नहीं है, उसको भी कुछ उस भाष्य से और कुछ कोशों और अंग्रेजी अनुवाद आदि की सहायता से पढ़ डाला ॥

३०—दिसंबर सन् १९१० में प्रयाग की प्रदर्शनी पर महात्मा मुन्शीराम जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी से भेंट हुई। उन्होंने गुरुकुल में स्वतन्त्र रहने और स्वाध्याय करने के लिये स्थान देने का वचन दिया। तब मैं माघ संवत् १९६७ वि० (जनवरी१९११ ई०) में गुरुकुल कांगड़ी गया। वहाँ मैं आचार्य जी की आज्ञा से उनकी कुटी के पास गंगा तट पर एक पर्णकुटी में रहा, भोजन गुरुकुल भंडार में बना हुआ अपने व्यय से खाता था। पंडित काशीनाथ शर्मा आचार्य गुरुकुल में वेदाचार्य थे। मैंने बड़ी नम्रता से विनति करके उनसे अपना अभिप्राय कहा। वे प्रसन्न होकर ऋग्वेद और अथर्ववेद के पदार्थ समझाने और मेरे किये हुए अर्थों के शोधन में बड़ी कृपा करते थे। और जब पण्डित शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ उस विद्यालय में आये, वे भी मुझे सहायता देते रहे। वहाँ से ही मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद भाष्यों में श्रावण मास दक्षिणा परीक्षा देने को प्रार्थना पत्र बड़ौदा राजधानी भेजा, और आप भी महीने आषाढ़ संवत् १९६८ में बड़ौदा पहुँचा वहां नियम ज्ञात हुआ कि एक वर्ष में दो से अधिक वेदों में परीक्षा नहीं हो सकती। तब मैंने ऋग्वेद और अथर्ववेद भाष्यों में परीक्षा दी ऋग्वेद में उत्तमा, अथर्ववेद में मध्यमा कक्षा में उत्तीर्ण हुआ और प्रमाणपत्र और दक्षिणा लेकर भादों संवत् १९६८ वि० (सन् १९११ ई०) में प्रयाग लौट आया, और तीन वेदों में उत्तीर्ण होने से त्रिवेदी कहलाया। फिर मैं दूर स्थान होने और भाष्य आदि बनाने में लग जाने के कारण बड़ौदा जाकर यजुर्वेद में परीक्षा न दे सका।

(८) अथर्ववेद का भाष्य

३१—मुझे स्वाध्याय करते समय शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ पदार्थ करने में सदा से रुचि है। उसी ढंग से मेरा पहिला पुस्तक रुद्राध्याय, यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः·····) शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ ब्रह्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरूपक अर्थ सहित संस्कृत, आर्यभाषा (हिन्दी) और अंग्रेजी में संवत् १९६३ वि० (सन् १९०६ ई०) में छपा। दूसरा पुस्तक हवनमन्त्राः चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र, ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि (जो महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने पुस्तक "संस्कार विधि" में संस्कारों और नित्य कर्म के लिए लिखे हैं) सरल आर्य भाषा में शब्दार्थ सहित संवत् १९६८ वि० (सन् १९१२ ई०) छपा। इन पुस्तकों की व्याख्या शैली देखकर विद्वान् मित्रों ने आग्रह करके सम्मति दी कि छोटे छोटे ग्रन्थों का लिखना बन्द करके अथर्ववेद का हिन्दी अर्थ सहित भाष्य लिखना चाहिये इस वेद का सायणाचार्यकृत संस्कृत भाष्य प्रायः अप्रामाणिक और बहुत अधूरा है। उसी का सहारा लेकर अंग्रेजी, जर्मनी आदि भाषाओं में अप्रामाणिक अनुवाद हुए हैं, और हमारी देश भाषा में कोई भी इसका अनुवाद नहीं है। मैं यह सुनकर बड़े सोच में पड़ गया कि मेरी आयु बहुत हो गई है, मैं बड़ा धनी और बड़ा विद्वान् भी नहीं हूं, ऐसा बड़ा ग्रन्थ कैसे पूरा कर सकूंगा। फिर मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वती, सायणाचार्य, ग्रिफिथ साहिब आदि विद्वानों के रचे पुस्तकों के बड़े बड़े संग्रह पर ध्यान किया कि यह महाशय इतना इतना बड़ा काम कर सके हैं, पुरुषार्थ मुख्य है। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मनुष्य अपने तन, मन, धन को तीर्थ यात्रा आदि कामों में लगा देते हैं, मैं भी अपनी शक्ति भर अपना तन, मन, धन इस भाष्य के करने में लगाऊं, अगाऊ धन ग्राहकों से न लिया जावे, एक एक काण्ड पूरा निकले और ग्राहक लोग उसे लेते रहें, जिससे जितना हो सके उतना तो हो जावे, शेष और कोई आगे कर लेगा। पहिला काण्ड श्रावण १९६९ (दिसम्बर १९१२) में निकला। विद्वानों ने उसे अंगीकार किया और आगे भाष्य करते रहने की अनुमति दी। मैं आप ही भाष्य करता, लिखता और प्रूफ शोधता था। स्थायी ग्राहक थोड़े थे, मूल्य लागत से बहुत थोड़ा आता था, छपाई कागज आदि की त्रुटि को मैं अपने पास से पूरा करता था। इस प्रकार धीरे धीरे छह काण्ड निकल गये और मेरा धन भी समाप्ति पर आने लगा। पत्र व्यवहार करने पर जून १९१६ ई० से श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त ने १५) मासिक देना और परिवर्तन में भाष्य लेना स्वीकार किया। यह नियम चार वर्ष तक रहा। वैशाख संवत् १९७४ वि० (सन् १९१७ ई०) से श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने २५) मासिक देना और परिवर्तन में भाष्य लेना स्वीकार किया जो नियम बत्तीस महीने तक चला। इस स्थिर आय के होने पर एक लेखक २५) मासिक पर लगभग भाष्य की समाप्ति तक रक्खा गया जिससे भाष्य निकलने में कुछ शीघ्रता हुई। श्रीमान् बड़ौदा महाराज काण्ड १ से ३ तक बीस बीस पुस्तक और शेष भागों के चार चार पुस्तक लेते रहे। इसके अतिरिक्त लगभग २०० स्थायी ग्राहक रहे और कुछ भाष्य आदि फुटकर पुस्तक बिके। इस आय में प्रत्येक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड की छपाई, कागज आदि के व्यय का पूरा न पड़ता था। शेष मेरे पास से लगता था और काम चलता रहा ॥

(६) विघ्न

३२—धन का वृत्तान्त ऊपर लिख चुका हूँ, मेरे शरीर में ज्वर आदि साधारण रोग भी कभी कभी होते रहे, और भी बड़े बड़े विघ्न उपस्थित हुए—

(क) अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों की मृत्यु।

१ – मेरी बड़ी पुत्री सुमित्रा देवी एक पुत्र और पुत्री होने पर गौने से चार पांच वर्ष में विधवा हो गई थी, उसका वह पुत्र महेश चरण अपने माता और बहिन के साथ मेरे पास रहता था और एफ० ए० क्लास में अंग्रेजी आदि पढ़ता था, वह होनहार लड़का चार पांच घंटे रुग्ण रहकर १८ वर्ष की आयु में अगस्त १६१२ में चल बसा।

२ —शिवदयाल—मेरा मंझला पौत्र, आयु १८ वर्ष, संस्कृत और अंग्रेजी आदि में बड़ा चतुर अक्तूबर १६१८ में चल दिया।

३—बाबू चंडीप्रसादजी, मेरे मंझले दामाद, सन् १६१६ में स्वर्गवास कर गये।

४—लाला झुन्नीलाल मेरे बड़े भतीजे अलीगढ़ वाले, सन् १६१६ में स्वर्गवासी हुए।

५—सुमित्रा देवी मेरी बड़ी पुत्री ने ५१ वर्ष की आयु में स्वर्गवास किया। उसका जन्म भादों संवत् १६२७ वि० (सन् १८७० ई०) में हुआ था, और उसने भादों सुदी ७ संवत् १६७८ (तारीख ८ सितम्बर १६२१) को शरीर छोड़ा। वह यहां पर क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल व कालिज में मुख्य संस्कृत अध्यापिका थी।

(ख) कुछ देशहितैषी पुरुषों की मृत्यु—

१—पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ—सामवेद भाष्यकार और सम्पादक वेदप्रकाश।

२—पं० भीमसेन शर्मा—इटावा, सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व, वेद व्याख्याता कलकत्ता यूनिवर्सिटी।

३—महाशय कालिकाप्रसाद, सिल्क मर्चेन्ट बनारस।

४—ठाकुर गदाधर सिंह, मन्त्री श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह चारों महाशय अथर्ववेद के कठिन मन्त्रों पर बातचीत, भाष्य पूरा करने की प्रेरणा, और प्रचार के लिये प्रयत्न करते थे।

५ – पं० ओंकारनाथ वाजपेयी–अध्यक्ष ओंकार प्रेस प्रयाग।

अथर्ववेद भाष्य आरम्भ से मन्त्र सूची तक इस प्रेस में छपा, पं ओंकारनाथ की मृत्यु के पीछे गड़बड़ पड़ गयी, काम देर से होने लगा, घरवालों के बीच परस्पर झगड़ा उठा और अन्त में वह प्रेस बन्द हो गया। अन्तिम भाग पद सूची को पंडित बद्रीप्रसाद पाण्डेय अध्यक्ष नारायण प्रेस प्रयाग ने बहुत कष्ट उठाकर छापा है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद है।

(ग) जर्मन महायुद्ध में अंग्रेजी सरकार फ्रान्स राज्य की मित्रता में सन् १९१४ से सन् १९१९ ई० तक रहा, उसमें एक भय यह था कि यदि राज्य परिवर्तन हुआ तो भाष्य निकलने में बाधा पड़ेगी, परन्तु मित्र राज्यों की जीत हुई और कुशल रही। दूसरे इस महायुद्ध के समय से अब तक कागज आदि और अन्य सब वस्तुयें युद्ध से पहिली की अपेक्षा चौगुनी पचगुनी मंहगी हैं। भाष्य में आरम्भ से अन्त तक सब देशी कागज लगा है, परन्तु अन्त के भागों में सामर्थ्य से अधिक मूल्य बढ़ जाने और कभी-कभी न मिलने के कारण कुछ हलका कागज लगाया गया, छपाई चलती रही।

(घ) सन् १९१७ ई० में तीन वर्ष के लिये एकाउन्टेन्ट जनरल के दफतर से पुत्र विष्णुदयाल का जाना सिकिम राज्य को हुआ और पौत्र शंकरदयाल सेठ सन् १९१९ में बी० एस० सी० परीक्षा उत्तीर्ण करके बिजुली विद्या की शिक्षा पाने को तीन वर्ष के लिये बंगलौर चले गए। इन दोनों के बाहिर जाने से घर का सब काम काज मैं ही करता था।

(ङ) कभी कभी भाष्य बहुत कठिन आ जाता था, समझ में न बैठने से जी घबराने लगता था। तब मैं परमेश्वर से लज्जा रखने की प्रार्थना करता और स्वामी दयानन्द जी का स्मरण करता रात्रि को स्वप्न में ऐसा जान पड़ता था कि स्वामी जी उस मन्त्र का भाष्य अपने लेखक को मेरे सामने लिखा रहे हैं, मेरी कठिनाई दूर हो जाती थी। कभी-कभी विद्वानों से मिलते-मिलाते हुए, एकान्त में रात्रि को सोते हुए प्रातःकाल शौच करते हुए, वा बाग आदि में घूमते हुए कठिन अर्थ ज्ञात हो जाते थे।

(१०) धन्यवाद

३३—परमेश्वर ने वेद में कहा है कि मनुष्य इस प्रकार विचारता हुआ शुभ कर्म करके जय प्राप्त करे—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् । कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ।

अथर्ववेद ७ । ५० । ८ ।

हे परमेश्वर ! (कृतम्) कर्म (मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में और (जयः) जीत (मे) मेरे (सव्ये) बायें में (आहितः) स्थित हो, मैं (गोजित्) गौओं अर्थात इन्द्रियों, भूमि और गौ आदि उपयोगी प्राणियों का जीतने वाला, (अश्वजित्) शीघ्रगामी घोड़े आदि का जीतने वाला, (धनंजयः) धन को जीतने वाला और (हिरण्यजित्) तेज का जीतने वाला (भूयासम्) रहूं । अर्थात् जो मनुष्य परमात्मा को ध्यान में रख कर वेदविहित कर्म करते रहते है, वे सब प्रकार की सिद्धि पाते हैं । किसी विद्वान् ने इस वैदिक सिद्धान्त को यों दरशाया है—

धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम तें टरें ।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध सब कारज करें ॥

३४—उस सर्वशक्तिमान् परमपिता जगदीश्वर परमात्मा को सबसे पहिले मेरा बारंबार धन्यवाद है, जिसने अपनी अनन्त महिमा और कृपा से एक किसान पुत्र, मुझ तुच्छ गंवार, निपट अजान, निर्बल, निर्धन को पवित्र वैदिक उपदेश से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल दिया और मुझे दृढ़चित्त रख कर मेरा संकल्प पूरा कराया । दूसरे भगवान् महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मेरा अत्यन्त धन्यवाद है जिनके पवित्र दर्शन और सदुपदेश से वेदों की ओर मेरा ध्यान हुआ । तीसरे उन विद्वान् गुरुजन महाशयों का कृतकृत्य हूं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझे स्वाध्याय कराया । चौथे उन सब महानुभाव महात्माओं का कृतज्ञ हूं जो मुझे मानसिक, वाचिक और आर्थिक सहायता देकर इस भाष्य के करने में मेरा उत्साह बढ़ाते रहे और विघ्नों से बचाते रहे । सारांश यह है कि यह अथर्ववेद भाष्य संवत् १९६९ वि० सन् १९१२ ई० में आरम्भ हुआ और संवत् १९७८ वि० (सन् १९२१) में सब प्रकार निर्विघ्न समाप्त होकर छप गया । परमात्मा करे कि श्रीमदगीता आदि ग्रन्थों के समान वेदों के अनेक भाष्य बनें और उसका प्रचार नित्य नित्य होता रहे जिससे संसार में प्रीति और आनन्द बढ़े ।

ओ३म् । यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥

यजुर्वेद ३२ । १४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यां) जिस (मेधाम्) धारणावती निश्चल बुद्धि को (देवगणाः) देवता, विद्वान जन (च) और (पितराः) पालन करने हारे पितर लोग (उपासते) सेवते हैं, (तया) उस (मेधया) निश्चल बुद्धि से, (अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (माम्) मुझको (अद्य) आज अर्थात् प्रत्येक समय (मेधाविनम्) निश्चल बुद्धि वाला (कुरु) कर ॥

ओ३म् । शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

५२ लूकरगंज, प्रयाग,
पौषकृष्णा ११ संवत् १९७८ वि०,
२५ दिसम्बर १९२१ ।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी
अथर्ववेद भाष्यकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेदभाष्यभूमिका ॥

—:०:०:०:०:—

१--ईश्वरस्तुतिप्रार्थना ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्व १ र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

अथर्व० का० १० सू० ८ म० १ ॥

(यः) जो परमेश्वर (भूतम्) अतीत काल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल का, (च) और (यः) जो (सर्वम्) सब संसार का (च) अवश्य (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है । (च) और (स्वः) सुख (यस्य) जिसका (केवलम्) केवल स्वरूप है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) सबसे बड़े (ब्रह्मणे) ब्रह्म जगदीश्वर को (नमः) नमस्कार है ॥

हे परमपिता, परमात्मन् ! आप भूत, भविष्यत्, वर्तमान और सब जगत् के स्वामी हैं, आप केवल आनन्द स्वरूप और अनन्त सामर्थ्य वाले हैं। हे प्रभु ! आप हमारे हृदय में सदा विराजिये, आपको हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥२॥

अथर्व० का० ६ सू० १०८ म० ४ ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि का (भूतकृतः) यथार्थ काम करने हारे, (मेधाविनः) दृढ़ बुद्धि वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋषयः) वेद का तत्त्व जानने वाले ऋषि, (विदुः) ज्ञान रखते हैं, (तया) उस (मेधया) अचल बुद्धि से (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) अचल बुद्धि वाला (कृणु) कर ॥

हे सर्वविद्यामय जगदीश्वर ! आपके अनुग्रह से वह दृढ़ निश्चल बुद्धि हमारे हृदय में विराजमान रहे जैसी धार्मिक, विवेकी, परोपकारी ऋषि महात्माओं की होती है, जिससे हमें वेदों का यथार्थ ज्ञान हो और हम संसार भर में उनका प्रकाश करें ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥३ ।

अथर्व० का० १ सू० ३१ म० ४ ॥

(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत) और (पित्रे) पिता के लिये (स्वस्ति) आनन्द (अस्तु) होवे, और (गोभ्यः) गौओं के लिये (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) आनन्द होवे (विश्वम्) संपूर्ण (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान वा कुल (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो, (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) सूर्य को (एव) ही (दृशेम) हम देखते रहें ॥

हे परमरक्षक परमात्मन् ! हमें वेद विज्ञान दीजिये जिससे हम अपने कर्तव्य को समझें और करें, अपने हितकारी माता पिता आदि सब परिवार, सब मनुष्यों, सब गौ आदि पशुओं, और सब संसार की सेवा कर सकें, और सबके आनन्द में आनन्द जानें, और जैसे सूर्य के प्रकाश में सब कामों को सुख से करते हैं, वैसे ही हे प्रकाशमय, ज्ञानस्वरूप, सर्वान्तर्यामी प्रभु ! आप के ध्यान में मग्न होकर हम सदा प्रसन्नचित्त रहें ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१॥

ऋ० १० । ९० । ९, यजु० ३१ । ७, तथा अथर्व० १९ । ६ । १३

(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय और (सर्वहुतः) सबके ग्रहण करने योग्य परमेश्वर से (ऋचः) ऋग्वेद [पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्या] के मन्त्र और (सामानि) साम वेद [मोक्ष विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये। (तस्मात्) उससे (छन्दांसि) अथर्ववेद [आनन्ददायक विद्या] के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (तस्मात्) उससे ही (यजुः) यजुर्वेद [सत्कर्मों का ज्ञान] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥

यस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।.२॥

अथर्व० का० १० सू० ७ । म० २० ॥

(यस्मात्) जिस परमेश्वर से प्राप्त करके (ऋचः) पदार्थों के गुण प्रकाशक मन्त्रों को (अप--अतक्षन्) उन्होंने [ऋषियों ने] सूक्ष्म किया [भले प्रकार विचारा], (यस्मात्) जिस ईश्वर से प्राप्त करके (यजुः) सत्कर्मों के ज्ञान को (अप-अकषन्) उन्होंने कसा, अर्थात् कसौटी पर रक्खा (सामानि) मोक्ष विद्यायें (यस्य) जिसके (लोमानि) रोम के समान व्यापक हैं, और (अथर्वअङ्गिरसः) अथर्व अर्थात् निश्चल जो परब्रह्म है उसके ज्ञान के मन्त्र (मुखम्) मुख के समान मुख्य हैं, (सः) वह (एव) निश्चय करके (कतमःस्वित्) कौन सा है । [इसका उत्तर] (तम्) उसको (स्कम्भम्) खंभ के समान ब्रह्मांड का सहारा देने वाला ईश्वर (ब्रूहि) तू कह ॥

इससे सिद्ध है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ईश्वरकृत हैं, और चारों वेद सामान्यता से सार्वलौकिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण होने के कारण मनुष्य मात्र और सब संसार के लिये कल्याणकारक हैं ।

उस परम पिता जगदीश्वर का अति धन्यवाद है कि उसने संसार की भलाई के लिये सृष्टि के आदि में अपने अटल नियमों को इन चारों वेदों के द्वारा प्रकाशित किया । यह चारों वेद एक तो सांसारिक व्यवहारों की शिक्षा से परमात्मा के ज्ञान का, और दूसरे परमात्मा के ज्ञान से सांसारिक व्यवहारों का उपदेश करते हैं । संसार में यही दो मुख्य पदार्थ हैं जिनकी यथार्थ प्राप्ति और अभ्यास पर मनुष्य मात्र की उन्नति निर्भर है । इन चारों वेदों को ही त्रयी विद्या [तीन विद्याओं का भण्डार] कहते हैं, जिनका अर्थ परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान से संसार के साथ उपकार करना है,।

वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है ।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते । १॥

अथर्ववेद—का० ११, सू० ५, म० १७ ।

(ब्रह्मचर्येण) वेदविचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (राष्ट्रम्) राज्य की (वि) अनेक प्रकार से (रक्षति) रक्षा करता है। (आचार्यः) अंगों और उपाङ्गों सहित वेदों का अध्यापक, आचार्य (ब्रह्मचर्येण) वेद विद्या और इन्द्रियदमन के कारण (ब्रह्मचारिणम्) वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष से (इच्छते) प्रेम करता है, अर्थात् वेदों के यथावत् ज्ञान, अभ्यास, और इन्द्रियों के दमन से मनुष्य सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति की परा सीमा तक पहुंच जाता है ॥

भगवान् कणादमुनि कहते हैं—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ वैशे० द० ६ । १ । १ ॥

वेद में वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक है [अर्थात् वेद में सब बातें बुद्धि के अनुकूल हैं] ॥

पण्डित अन्नम्भट्ट तर्कसंग्रह पुस्तक के शब्दखण्ड में लिखते हैं।

वाक्यं द्विविधं वैदिकं लौकिकं च। वैदिकमीश्वरोक्तत्वात् सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् ॥

वाक्य दो प्रकार का है, वैदिक और लौकिक। वैदिक वाक्य ईश्वरोक्त होने से सब ही प्रमाण हैं। लौकिक वाक्य केवल सत्यवक्ता पुरुष का वचन प्रमाण है ॥

वेदमेव सदाभ्यसेत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ मनु० २।१६६॥

द्विजों [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों,] में श्रेष्ठ पुरुष, [ब्रह्मचर्य आदि] तप तपता हुआ, वेद ही का सदा अभ्यास करे। वेदों का अभ्यास ही पंडित पुरुष का परम तप यहां [इस जन्म में] कहा जाता है ॥१॥

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥ मनु० १२।९७॥

चार वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,] तीन लोक [स्वर्ग, अन्तरिक्ष भूलोक], चार आश्रम [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास] और भूत, वर्तमान और भविष्यत्, अलग अलग सब वेद से प्रसिद्ध होता है ॥२॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु० १२।१००॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद शास्त्र का जानने वाला पुरुष सेनापति के अधिकार, और राज्य, और भी दण्ड देने के पद, और सब लोगों पर आधिपत्य [चक्रवर्ति राज्य] के योग्य होता है ॥३॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ मनु० १२।१०२॥

वेद शास्त्र के अर्थ का तत्त्व जानने वाला पुरुष चाहे किसी आश्रम में रहे, वह इस लोक [जन्म] में ही रहकर मोक्ष [परम आनन्द] पद के लिये योग्य होता है ॥४॥

इसी प्रकार सब शास्त्रों में वेदों की अपूर्व महिमा का वर्णन है ।

इन दिनों प्रत्येक मनुष्य वेद वेद पुकार रहा है । जर्मनी, इंगलिश देश आदि विदेशों में वेदों की चर्चा फैल रही है । वेदों के भिन्न २ भागों के अनुवाद भी अंग्रेजी, लेटिन, जर्मन आदि भाषाओं में वहां के विद्वानों ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार किये हैं । भट्ट ग्रिफ्फिथ साहिब ने चारों वेदों का अंग्रेजी अनुवाद वैदिक छन्दों में छन्दोबद्ध किया है । महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती का वेदविषयक परिश्रम सुप्रसिद्ध है उनके रचे निम्नलिखित वैदिक ग्रन्थ महा उपकारी हैं ।

१—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ।
२—ऋग्वेदभाष्य [जो मण्डल ७ सूक्त ६१ मन्त्र २ तक हुआ है] ॥
३—यजुर्वेदभाष्य ।
४—सत्यार्थप्रकाश ।

अन्य भी विद्वानों श्री सायणाचार्य आदि ने वेदों की रक्षा और व्याख्या के लिये अनेक प्रयत्न किये हैं, और अब भी विद्वान लोग परिश्रम उठा रहे हैं ॥

३—अथर्ववेद ॥

ऊपर कह आये हैं कि ईश्वरकृत चारों वेदों में से अथर्ववेद एक वेद है । उसके नाम छन्द (छन्दांसि), अथर्वाङ्गिरा (अथर्वाङ्गिरसः) और ब्रह्मवेद हैं । इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं । (१) अथर्ववेद, यह अथर्व [अथर्वन्] और वेद इन दो शब्दों का समुदाय है । थर्व धातु का अर्थ चलना और अथर्व का अर्थ निश्चल है, और वेद का अर्थ ज्ञान, अर्थात् अथर्व निश्चल, जो एक रस सर्वव्यापक परब्रह्म है उसका ज्ञान अथर्ववेद है । (२) छन्द, इसका अर्थ आनन्ददायक है, अर्थात् उसमें आनन्ददायक पदार्थों का वर्णन है । (३) अथर्वाङ्गिरा, इस पद का अर्थ यह है कि उसमें अथर्व, निश्चल परब्रह्म बोधक अङ्गिरा अर्थात् ज्ञान के मन्त्र हैं । (४) ब्रह्मवेद अर्थात् जिसमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म जगदीश्वर का ज्ञान है, और जिसके मनन और साक्षात् करने से ब्रह्माओं [ब्राह्मणों, ब्रह्मज्ञानियों] को मोक्ष सुख प्राप्त होता है ॥

अथर्ववेद संहिता भट्ट आर० रोथ साहिब और डबल्यू० डी० व्हिटनी साहिब [Professors R. Roth and W. D. Whitney] ने जर्मनी देश के बर्लिन नगर में सन् १८५६ ईस्वी में छपवाई थी [See Page 10. Critical Notes on Atharva Samhita With the Commentary of Sayanacharya, Government Central Book Depot, Bombay; and page XIII, Griffith's English Translation of the Atharva Veda.] अथर्ववेद संहितायें तो और भी छप गयी हैं। श्री सायणाचार्यकृत भाष्य केवल गवर्नमेंट सेन्ट्रल बुक डिपो बम्बई की ओर से छपा है, वह भी असंपूर्ण [लगभग आधे वेद का भाष्य] और केवल संस्कृत में हैं और उसके चार वेष्टनों का मूल्य ४०) चालीस रुपया है। इससे बड़े २ धनी विद्वान् ही उसको देख सकते हैं, सामान्य पुरुषों को उसका मिलना और समझना कठिन है।

४—अथर्ववेद विस्तार ॥

हमारे पास तीन अथर्व संहिता पुस्तक हैं, १—सायणभाष्य सहित बम्बई गवर्नमेन्ट मुद्रापित, २—पं० सेवकलाल कृष्णदास मुद्रापित, और ३—अजमेर वैदिक यन्त्रालय मुद्रित। हमने तीन संहिताओं को मिलाकर अध्ययन किया है विस्तार का विवरण अजमेर पुस्तक के अनुसार अन्य पुस्तकों से मिलान करके आगे लिखा है।

अथर्ववेद (ये त्रिंषप्ताः परियन्ति···) इस मन्त्र से लेकर [पनाय्यं तदश्विना कृतं वा·····] इस मन्त्र तक है। इसमें २० काण्ड ७३१ सात सौ इकतीस सूक्त, और ५,९७७ पांच सहस्र नौ सौ सतहत्तर मन्त्र हैं। यह गणना आगे भूमिका के अन्त में चक्रों में वर्णित है।

उक्त तीनों पुस्तकों को मिलाने से मन्त्र संख्या में यह भेद है।

(अ) पं० सेवकलाल के पुस्तक से मिलान।

उक्त पुस्तक में मन्त्र अन्य दो पुस्तकों में मन्त्र भेद

काण्ड ८।

सूक्त १०। पर्याय १।	म० १ से ७=७	=	१३		—६
,, ,, ३।	म० १८ से २१=४	=	८		—४
,, ,, ४।	म० २२ से २५=४	=	१६		—१२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

,,	,, ५।	म० २६ से २९=४	=	१६	—१२
		योग	१९	५३	—३४

काण्ड ९

सूक्त ६।	पर्याय ४।	म० ४० से ४४=५	=	१०	- ५
,,	,, ५।	म० ४५ से ४८=४	=	१०	—६
		योग	९	२०	—११

काण्ड १९।

सूक्त ३८।		म० १ से २ =२	=	३	—१
,, ४७।		म० १ से १०=१०	=	९	+१
,, ५४।		म० ५, ६ =२	=	१ (म० ५)	+१
,, ५५।		म० १ से ७ =७	=	६	+१
,, ५७।		म० १ से ६ =६	=	५	+१
		योग	२७	२४	+३

काण्ड २०।

सूक्त ९६।		म० १—२३=२३	=	२४	—१
सूक्त १३१।		म० १—२३=२३	=	२०	+३
		योग	४६	४४	+४
		महा योग	१०१	१४१	—४०

सब मिला कर पं० सेवकलाल कृष्णदास के पुस्तक में जो ४० मन्त्र घटते हैं, **(हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् । यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते विवृहामसि ।)** वस्तुतः यह एक मन्त्र अन्य दोनों पुस्तकों के का० २० सू० ९६ का मन्त्र १९ उस में नहीं है। अन्य ३९ मन्त्रों की न्यूनता केवल मन्त्र भागों के छोटे बड़े और आगे पीछे होने से है, इनका पूरा पाठ तो मिलाकर अन्य पुस्तकों के तुल्य है। इस गणना से इस पुस्तक के समग्र मन्त्र ५,९७७—४० = ५,९३७ होते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ)—वैदिक यन्त्रालय के पुस्तक का सायणभाष्य सहित बम्बई के पुस्तक से मिलान।

सायणभाष्य वाले पुस्तक में इतना अधिक है कि काण्ड १६ के अन्त में ७२ मन्त्र का एक पर्य्याय है जो १८ मन्त्र इस पुस्तक के काण्ड ११ सूत्र ४ पर्याय २ में मन्त्र १ से १८ तक, और अन्य पुस्तकों के काण्ड ११ सूक्त ३ पर्याय २ में मन्त्र ३२ से ४९ तक आ चुके हैं, अर्थात् इन १८ मन्त्रके ७२ मन्त्र होकर सायण भाष्य में एक पर्याय काण्ड १६ के अंत में अलग है। अन्य पुस्तकों में [भट्ट ग्रिफ् फिथ के अंग्रेजी अनुवाद सहित] यह पर्याय काण्ड १६ के अंत में नहीं है, केवल काण्ड ११ में ही आया है, यही पाठ हमने रक्खा है। यह पुनर्लेख सायण पुस्तक में उस समय की पाठ प्रणाली के अनुसार दीखता है। इस बात को छोड़कर शेष मन्त्रसंख्या अजमेर पुस्तक के तुल्य है॥

५—सूक्त भेद॥

सायण भाष्य में ७५९ [सात सौ उनसठ] और अजमेर वैदिक यन्त्रालय की पुस्तक में ७३१ सूक्त हैं। यह २८ सूक्तों की अधिकता का विवरण नीचे दिखाया जाता है। मन्त्रों का वर्णन ऊपर हो चुका है॥

काण्ड जिनमें भेद है	सायण भाष्य में सूक्त	वैदिक यन्त्रालय की पुस्तक में सूक्त	सायणभाष्य में अधिक
७	१२३	११८	५
८	१५	१०	५
९	१५	१०	५
११	१२	१०	२
१२	११	५	६
१३६	९	४	५
६ कांड	१८५	१५७	२८

६—अनुवाक।

सूक्त और मंत्रों के अतिरिक्त, काण्डों का विभाग अनुवाक और सूक्तों में है। परन्तु काण्डों में सूक्तों की गणना लगातार चली गयी है, इससे अनुवाकों की गणना को यहाँ नहीं दिखाया, पुस्तक के भीतर अपने स्थान पर दिखाया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७--सायण भाष्य असंपूर्ण है

अथर्ववेद संहिता, सायणाचार्य विरचित भाष्य सहित, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई बड़े खोज से छपी दीखती है, इसके अतिरिक्त और कोई भाष्य प्रतीत नहीं होता। इस पुस्तक में केवल दस काण्डों से कुछ अधिक का भाष्य इस प्रकार है—काण्ड १, २, ३, ४, ६, ७, ८ [सूक्त ६ तक], ११, १७, १८, १९, २०[सूक्त ३७ तक] [इतना भाष्य नहीं है—काण्ड ५, ८ [सूक्त ७-७५], ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, २०, (सूक्त ३८-१४३)]॥

८--अथर्ववेद पुस्तकें और अपना भाष्य।

१—अथर्ववेद संहिता श्री सायणाचार्य विरचित भाष्य सहित, गवर्नमेन्ट बुकडिपो, बम्बई, चार वेष्टन। वेष्टन १ तथा २ सन् १९०५, वेष्टन ३ तथा ४ सन् १८९८ ईसवी।

२—अथर्ववेद संहिता, मूल, पण्डित सेवकलाल कृष्णदास संशोधित—बम्बई, सन् १८९३ [पत्थर का छापा]।

३—अथर्ववेद संहिता मूल वैदिक यंत्रालय, अजमेर, संवत् १९५८ विक्रमीय [सन् १९०१ ईस्वी]।

४ अथर्ववेद संहिता, अंग्रेजी अनुवाद, भट्ट ग्रिफ् फिथ साहिब कृत दो वेष्टन, वेष्टन १ सन् १८९५, वेष्टन २ सन् १८९६ ई०।

इस भाष्य के बनाने में यह सब पुस्तकें और श्री सायणाचार्य कृत ऋग्वेद और सामवेद भाष्य, श्री महीधर कृत शुक्ल यजुर्वेद भाष्य, श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य, पण्डित तुलसीराम कृत सामवेद भाष्य, यास्क मुनि कृत निघण्टु और निरुक्त, और पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी व्याकरण, सर राजा राधाकांत देव बहादुर कृत शब्दकल्पद्रुम कोष, और अन्य ग्रन्थ मुझे बहुत उपयोगी हुए हैं, इसलिये उन ग्रन्थकर्त्ता महाशयों को मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

हमारे भाष्य में संहिता पाठ वैदिक यंत्रालय अजमेर के पुस्तक का है, पदपाठ इस पुस्तक और सायण भाष्य के अनुसार है। पाठान्तर टिप्पणियों में दिखाया है। स्पष्टता और संक्षेप के ध्यान से भाष्य का क्रम यह रक्खा है।

१—देवता, छन्द, उपदेश।
२—मूलमन्त्र—स्वरसहित।
३—पदपाठ—स्वरसहित।
४—सान्वय भावार्थ।
५—भाषार्थ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—आवश्यक टिप्पणी, संहिता पाठान्तर, अनुरूप विषय और वेदों में म का पता आदि विवरण ।

७—शब्दार्थ व्याकरणादि प्रक्रिया—व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, पर्याय आदि ।

सहज पते के लिये काण्ड काण्ड के विषय आदि और अथर्ववेद के अन्य वेदों में मन्त्रों की सूची भी दी है ।

९—ऋषि, देवता, छन्द ।

ऋषि वह महात्मा कहलाते हैं जिन्होंने वेदों के सूक्ष्म अर्थों को प्रकाशित किया है [निरु० १ । २० । तथा २ । ११], देवता उसको कहते हैं जिसके गुणों का वर्णन मंत्र में प्रधानता से हो [निरु० ७ । १] मिताक्षर वाक्य छन्द कहाते हैं जिस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में सूक्त इत्यादि के साथ ऋषि देवता और छन्द लिखें हैं, उस प्रकार अथर्ववेद संहिताओं में नहीं हैं । हमने इस भाष्य में सूक्तों के शीर्षक पर देवता, छन्द और प्रकरण दिये हैं । ऋषियों का निश्चय नहीं हो सका । [टिप्पणी—द्वितीय आवृत्ति में अथर्ववेदीया वृहत्सर्वानुक्रमणिका सम्पादित पं० रामगोपाल शास्त्री लाहौर मुद्रित संवत् १९७९ वि०, सन् १९२२ ई० से ऋषि भी लिख दिये हैं—क्षे० दा० त्रिवेदी, भाद्रपद संवत् १९८२ ।]

१०—निवेदन ।

निःसन्देह अब वह समय है कि सब स्त्री पुरुष घर घर में वेदों का अर्थ जानें और धर्मज्ञ होकर पुरुषार्थी बनें । भारतीय और अन्यदेशीय विद्वान् भी वेदों का अर्थ खोजने और प्रकाशित करने में बड़ा परिश्रम उठा रहे हैं । मेरा भी संकल्प है कि अथर्ववेद का यथाशक्ति सरल, स्पष्ट, प्रामाणिक, और अल्पमूल्य भाष्य एक एक पूरे काण्ड के पुस्तक रूप में प्रस्तुत करूं, जिससे सब लोग स्वाध्याय [वेद के अर्थ समझने और विचारने] में लाभ उठावें । और यदि वैदिक जिज्ञासु वेदों के सत्यार्थ और तत्त्वज्ञान प्राप्ति में कुछ भी सहायता पावेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा ।

५२ लूकरगंज, प्रयाग
(अलाहाबाद) ।
भाद्र कृष्ण जन्माष्टमी १९६९ वि०,
५ सितम्बर १९१२ ।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी ।
जन्म, कार्तिकशुक्ला ७ संवत् १९०५ विक्रमीय,
(ता० ३ नवम्बर १८४८ ईस्वी)
जन्मस्थान, ग्राम शाहपुर मडराक,
जिला अलीगढ़ ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूक्त मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
काण्ड १		२९	६	२०	५	१०	१३	५	७	३५	७
१	४	३०	४	२१	५	११	८	६	८	३६	१०
२	४	३१	४	२२	५	१२	९	७	७	३७	१२
३	९	३२	४	२३	५	१३	७	८	७	३८	७
४	४	३३	४	२४	८	१४	६	९	१०	३९	१०
५	४	३४	५	२५	५	१५	८	१०	७	४०	८
६	४	३५	४	२६	५	१६	७	११	१२	—	—
७	७	—	—	२७	७	१७	९	१२	७	४०	३२४
८	४	३५	१५३	२८	५	१८	६	१३	७	**काण्ड ५**	
९	४	**काण्ड २**		२९	७	१९	८	१४	९	१	९
१०	४	१	५	३०	५	२०	१०	१५	१६	२	९
११	६	२	५	३१	५	२१	१०	१६	९	३	११
१२	४	३	६	३२	६	२२	६	१७	८	४	१०
१३	४	४	६	३३	७	२३	६	१८	८	५	९
१४	४	५	७	३४	५	२४	७	१९	८	६	१४
१५	४	६	५	३५	५	२५	६	२०	९	७	१०
१६	४	७	५	३६	८	२६	६	२१	७	८	९
१७	४	८	५	—	—	२७	६	२२	७	९	८
१८	४	९	५	३६	२०७	२८	६	२३	७	१०	८
१९	४	१०	८	**काण्ड ३**		२९	८	२४	७	११	११
२०	४	११	५	१	६	३०	७	२५	७	१२	११
२१	४	१२	८	२	६	३१	११	२६	७	१३	११
२२	४	१३	५	३	६	—	—	२७	७	१४	१३
२३	४	१४	६	४	७	३१	२३०	२८	७	१५	११
२४	४	१५	६	५	८	**काण्ड ४**		२९	७	१६	११
२५	४	१६	५	६	८	१	७	३०	८	१७	१८
२६	४	१७	७	७	७	२	८	३१	७	१८	१५
२७	४	१८	५	८	६	३	७	३२	७	१९	१५
२८	४	१९	५	९	६	४	८	३३	८	२०	१२
								३४	८		

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूक्त मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
२१	१२	१६	४	४६	३	७६	४	१०६	३	१३६	३
२२	१४	१७	४	४७	३	७७	३	१०७	४	१३७	३
२३	१३	१८	३	४८	३	७८	३	१०८	५	१३८	५
२४	१७	१९	३	४९	३	७९	३	१०९	३	१३९	५
२५	१३	२०	३	५०	३	८०	३	११०	४	१४०	३
२६	१२	२१	३	५१	३	८१	३	१११	३	१४१	३
२७	१२	२२	३	५२	३	८२	३	११२	३	१४२	३
२८	१४	२३	३	५३	३	८३	४	११३	३	१४२	४५४
२९	१५	२४	३	५४	३	८४	४	११४	३	काण्ड ७	
३०	१७	२५	३	५५	३	८५	३	११५	३	१	२
३१	१२	२६	३	५६	३	८६	३	११६	३	२	१
		२७	३	५७	३	८७	३	११७	३	३	१
३१	३७६	२८	३	५८	३	८८	३	११८	३	४	१
काण्ड ६		२९	३	५९	३	८९	३	११९	३	५	४
१	३	३०	३	६०	३	९०	३	१२०	३	६	१
२	३	३१	३	६१	३	९१	३	१२१	४	७	१
३	३	३२	३	६२	३	९२	३	१२२	५	८	४
४	३	३३	३	६३	४	९३	३	१२३	५	९	१
५	३	३४	५	६४	३	९४	३	१२४	३	१०	१
६	३	३५	३	६५	३	९५	३	१२५	३	११	१
७	३	३६	३	६६	३	९६	३	१२६	३	१२	४
८	३	३७	३	६७	३	९७	३	१२७	३	१३	२
९	३	३८	४	६८	३	९८	३	१२८	४	१४	४
१०	३	३९	३	६९	३	९९	३	१२९	३	१५	१
११	३	४०	३	७०	३	१००	३	१३०	४	१६	१
१२	३	४१	३	७१	३	१०१	३	१३१	३	१७	१
१३	३	४२	३	७२	३	१०२	३	१३२	५	१८	४
१४	३	४३	३	७३	३	१०३	३	१३३	५	१९	२
१५	३	४४	३	७४	३	१०४	३	१३४	३	२०	१
		४५	३	७५	३	१०५	३	१३५	३	२१	१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूक्त मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
२२	२	५२	२	८२	६	११२	२	३	३१	२	२१
२३	१	५३	७	८३	४	११३	२	४	२४	३	५६
२४	१	५४	२	८४	३	११४	२	५	३८	४	२६
२५	२	५५	१	८५	१	११५	४	६(१)	१७	५	२६
२६	८	५६	८	८६	१	११६	२	(२)	१३	६	२३
२७	१	५७	२	८७	१	११७	१	(३)	९	७	२७
२८	१	५८	२	८८	१	११८	१	(४)	१०	८	३४
२९	२	५९	१	८९	४	११८	२८६	(५)	१०	९	२६
३०	१	६०	७	९०	३	**काण्ड ८**		(६)	१४	१०	२७
३१	१	६१	२	९१	१			७	२६	१०	३१३
३२	१	६२	१	९२	१	१	२१	८	२२	**काण्ड १२**	
३३	१	६३	१	९३	१	२	२८	९	२२		
३४	१	६४	२	९४	१	३	२६	१०	२८	१	६३
३५	३	६५	३	९५	३	४	२५	१०	३१३	२	५५
३६	१	६६	१	९६	१	५	२२	**काण्ड १०**		३	६०
३७	१	६७	१	९७	८	६	२६			४	५३
३८	५	६८	३	९८	१	७	२८	१	३२	५	७३
३९	१	६९	१	९९	१	८	२४	२	३३	५	३०४
४०	२	७०	५	१००	१	९	२६	३	२५	**काण्ड १३**	
४१	२	७१	१	१०१	१	१०(१	१३	४	२६		
४२	२	७२	३	१०२	१	(२)	१०	५	५०	१	६०
४३	१	७३	११	१०३	१	(३)	८	६	३५	२	४६
४४	१	७४	४	१०४	१	(४)	१६	७	४४	३	२६
४५	२	७५	२	१०५	१	(५)	१६	८	४४	४	५६
४६	३	७६	६	१०६	१	(६)	४	९	२७	४	१८८
४७	२	७७	३	१०७	१	१०	२९३	१०	३४	**काण्ड १४**	
४८	२	७८	२	१०८	२	**काण्ड ९**		१०	३५०		
४९	२	७९	४	१०९	७			**काण्ड ११**		१	६४
५०	९	८०	४	११०	३	१	२४			२	७५
५१	१	८१	६	१११	१	२	२५	१	३७	२	१३९

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूत्र मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र	सूक्त	मन्त्र
काण्ड १५		**काण्ड १७**		१९	११	४९	१०	३	३	३३	३
१	८	१	३०	२०	४	५०	७	४	३	३४	१८
२	२८			२१	१	५१	२	५	७	३५	१६
३	११	१	३०	२२	२१	५२	५	६	९	३६	११
४	१८	**काण्ड १८**		२३	३०	५३	१०	७	४	३७	११
५	१६	१	६१	२४	८	५४	५	८	३	३८	६
६	२६	२	६०	२५	१	५५	६	९	४	३९	५
७	५	३	७३	२६	४	५६	६	१०	२	४०	३
८	३	४	८९	२७	१५	५७	५	११	११	४१	३
९	११	४—२८३		२८	१०	५८	६	१२	७	४२	३
१०	११	**काण्ड १९**		२९	९	५९	३	१३	४	४३	३
११	११	१	३	३०	५	६०	२	१४	४	४४	३
१२	१४	२	५	३१	१४	६१	१	१५	६	४५	३
१३	२४	३	४	३२	१०	६२	१	१६	१२	४६	३
१४	९	४	४	३३	५	६३	१	१७	१२	४७	२१
१५	७	५	१	३४	१०	६४	४	१८	६	४८	६
१६	१०	६	१६	३५	५	६५	१	१९	७	४९	७
१७	५	७	५	३६	६	६६	१	२०	७	५०	२
१८	२२०	८	७	३७	४	६७	८	२१	११	५१	४
काण्ड १६		९	१४	३८	३	६८	१	२२	६	५२	३
१	१३	१०	१०	३९	१०	६९	४	२३	९	५३	३
२	६	११	६	४०	४	७०	१	२४	९	५४	३
३	६	१२	१	४१	१	७१	१	२५	७	५५	३
४	७	१३	११	४२	४	७२	१	२६	६	५६	६
५	१०	१४	१	४३	८	७२	४५३	२७	६	५७	१६
६	११	१५	६	४४	१०			२८	४	५८	४
७	१३	१६	२	४५	१०	**काण्ड २०**		२९	५	५९	४
८	३३	१७	१०	४६	७			३०	५	६०	६
९	४	१८	१०	४७	९	१	३	३१	५	६१	६
९	१०३			४८	६	२	४	३२	३	६२	१०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद सूक्त मन्त्र चक्र

काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड		काण्ड	
सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र	सूक्त	मंत्र
६३	९	७७	८	९१	१२	१०५	५	११९	२	१३३	६
६४	६	७८	३	९२	२१	१०६	३	१२०	२	१३४	६
६५	३	७९	२	९३	८	१०७	१५	१२१	२	१३५	१३
६६	३	८०	२	९४	११	१०८	३	१२२	३	१३६	१६
६७	७	८१	२	९५	४	१०९	३	१२३	२	१३७	१४
६८	१२	८२	२	९६	२४	११०	३	१२४	६	१३८	३
६९	१२	८३	२	९७	३	१११	३	१२५	७	१३९	५
७०	२०	८४	३	९८	२	११२	३	१२६	२३	१४०	५
७१	१६	८५	४	९९	२	११३	२	१२७	१४	१४१	५
७२	३	८६	१	१००	३	११४	२	१२८	१६	१४२	६
७३	६	८७	७	१०१	३	११५	३	१२९	२०	१४३	९
७४	७	८८	६	१०२	३	११६	२	१३०	२०		
७५	३	८९	११	१०३	३	११७	३	१३१	२०	——	——
७६	८	९०	३	१०४	४	११८	४	१३२	१६	१४३	९५८

योग चक्र

काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र	काण्ड	सूक्त	मंत्र
१	३५	१५३	६	१४२	४५४	११	१०	३१३	१६	९	१०३
२	३६	२०७	७	११८	२८६	१२	५	३०४	१८	१	३०
३	३१	२३०	८	१०	२९३	१३	४	१८८	१८	४	२८३
४	४०	३२४	९	१०	३१३	१४	२	१३९	१९	७२	४५३
५	३१	३७६	१०	१०	३५०	१५	१८	२२०	२०	१४३	९५८
५	१७३	१२९०	५	२९०	१६९६	५	३९	११६४	५	२२९	१८२७

महायोग, काण्ड २०, सूक्त ७३१ मन्त्र ५,९७७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण काण्ड १ ।।

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	ये त्रिषप्ताः परियन्ति	वाचस्पति	बुद्धि वृद्धि	अनुष्टुप्
२	विद्मा शरस्य पितरं	इन्द्र	तथा	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्
३	विद्मा शरस्य पितरं	पर्जन्य आदि	शान्ति करण	पङ्क्ति, अनुष्टुप्
४	अम्बयो यन्त्यध्वभिर्	आपः	परोपकार	गायत्री, पङ्क्ति।
५	आपो हिष्ठा मयोभुवस्	,,	बल प्राप्ति	गायत्री ।
६	शं नो देवीरभिष्टय	,,	आरोग्यता	गायत्री, पङ्क्ति
७	स्तुवानमग्न आ वह	इन्द्राग्नी	सेनापति	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्।
८	इदं हविर्यातुधानान्	अग्नि, सोम	तथा	,, ,,
९	अस्मिन् वसु वसवो	विश्वे देवा	सर्वसम्पत्ति	त्रिष्टुप्
१०	अयं देवानामसुरो	वरुण	वरुण वर्णन	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्।
११	वषट् ते पूषन्नस्मिन्	पूषा	सृष्टि विद्या	अनुष्टुप् पङ्क्ति।
१२	जरायुजः प्रथम उल्बियः	वृषा	ईश्वर आदि	त्रिष्टुप् अनुष्टुप् ।
१३	नमस्ते अस्तु विद्युते	प्रजापति	आत्म ज्ञा	अनुष्टुप्, जगती
१४	भगमस्या वर्च आदिध्य	वधूवर	विवाह	अनुष्टुप् ।
१५	सं संस्रवन्तु सिन्धवः	प्रजापति	ऐश्वर्यप्राप्ति	अनुष्टुप्, आदि
१६	योऽमावास्यां रात्रि	अग्नि आदि	विघ्ननाश	अनुष्टुप् ।
१७	अमूर्या यन्ति योषितो	हिरा	नाड़ी छेदन	अनुष्टुप्, गायत्री
१८	निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं	सविता	राजधर्म	अनुष्टुप्, जगती।
१९	मा नो विदन् वि व्याधि	इन्द्र	जय और न्याय	अनुष्टुप्, पङ्क्ति।
२०	अदारसृद् भवतु देव	सोम, म त्	शत्रुओं से रक्षा	जगती, अनुष्टुप्।
२१	स्वस्तिदा विशां पतिर्	इन्द्र	राजनीति	अनुष्टुप्
२२	अनु सूर्यमुदयतां	सूर्य	रोग का नाश	,,
२३	नक्तं जातास्योषधे	ओषधि	रोग नाश	,,
२४	सुपर्णो जातः प्रथमस्	तथा	तथा	अनुष्टुप्, पङ्क्ति
२५	यदग्निरापो अदहत्	अग्नि	रोगशान्ति	त्रिष्टुप् ।
२६	आरे ऽसावस्मदस्तु	इन्द्र	युद्ध प्रकरण	गायत्री ।
२७	अमूः पारे पृदाक्वस्	प्रजापति	,,	पङ्क्ति, अनुष्टुप्
२८	उप प्रागाद्देवो अग्नी	अग्नि	,,	अनुष्टुप् ।।
२९	अभी वर्तेन मणिना	ब्रह्मणस्पति	राजतिलक	,,
३०	विश्वे देवा वसवो	विश्वे देवा	,,	त्रिष्टुप् ।
३१	आशानामाशापालेभ्य	प्रजापति	पुरुषार्थ	अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्
३२	इदं जनासो विदथ	ब्रह्म	ब्रह्मविचार	अनुष्टुप् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
३३	हिरण्यवर्णाः शुचयः	आपः	तन्मात्रायें	त्रिष्टुप्
३४	इयं वीरुन्मधुजाता	वीरुध्=लता	विद्याप्राप्ति	अनुष्टुप्
३५	यदाबध्नन् दाक्षायणा	हिरण्य	सुवर्ण आदि	त्रिष्टुप्

२—अथर्ववेद, कांड १ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से।

संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद सूक्त, मंत्र	ऋग्वेद, मंडल, सूक्त मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय, मंत्र	सामवेद, पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक, इत्यादि
१	अम्बयो यन्त्यध्वभिर्	४।१	१।२३।१६		
२	अमूर्या उप सूर्ये	४।२	१।२३।१७		
३	अपो देवीरुपह्वये	४।३	१।२३।१८		
४	अप्स्वन्तरमृत	४।४	१।२३।१९	९।६	
५	आपो हि ष्ठा मयो	५।१	१०।९।१	११।५०-५२ तथा ३६।१४-१६	उ०९।२।१०
६	यो वः शिवतमो	५।२	१०।९।२		
७	तस्मा अरं गमाम वो	५।३	१०।९।३		
८	ईशाना वार्याणां	५।४	१०।९।५		
९	शं नो देवीरभिष्टय	६।१	१०।९।४	३६।१२	पू०१।३।१३
१०	अप्सु मे सोमो	६।२	१।२३।२०		
११	आपः पृणीत भेषजं	६।३	१०।९।७		उ०९।३।८
१२	यो नः स्वो यो अरणः	१९।३,४	६।७५।१९		
१३	वि महच्छर्म यच्छ	२०।३	१०।१५२।५		
१४	शास इत्था महां असि	२०।४	१०।१५२।१		
१५	स्वस्तिदा विशां पति	२१।१	१०।१५१।२		उ०९।३।७
१६	वि न इन्द्र मृधो जहि	२१।२	१०।१५२।३		
१७	वि रक्षो वि मृधो जहि	२१।३	१०।१५२।४		
१८	अपेन्द्र द्विषतो मनो	२१।४	१०।१५२।५		
१९	शुकेषु ते हरिमाणं	२२।४	१।५०।१२		
२०	अभी वर्तेन मणिना	२९।१	१०।१७४।१		
२१	अभिवृत्य सपत्नानभि	२९।२	१०।१७४।२		
२२	अभि त्वा देवः सविता	२९।३	१०।१७४।३		
२३	उदसौ सूर्यो अगादुदिदं	२९।५	१०।१५९।१		
२४	सपत्नक्षयणो वृषा	२९।६	१०।१७४।५		
२५	यदाबध्नन् दाक्षायणा	३५।१	—	३४।५२	
२६	नैनं रक्षांसि न पिशाचाः	३५।२	—	३४।५१	

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ सूक्त विवरण, काण्ड २ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	वेनस्तत् पश्यत्	ब्रह्म	ब्रह्मप्राप्ति	त्रिष्टुप्
२	दिव्यो गन्धर्वो	गंधर्व अप्सरा	ईश्वर सर्वशक्तिमान्	त्रिष्टुप् अनुष्टुप्,
३	अदो यदवधावत्य	भेषज	रोग निवृत्ति	अनुष्टुप्
४	दीर्घायुत्वाय बृहते	जङ्गिड	आयुवृद्धि	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
५	इन्द्र जुषस्व प्र वहा	इन्द्र	उन्नति प्रयत्न	अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्
६	समास्त्वाग्न ऋतवो	अग्नि	राजनीति	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
७	अघद्विष्टा	ईश्वर	राजधर्म	अनुष्टुप्
८	उदगातां भगवती	ब्रह्म	पौरुष	अनुष्टुप्
९	दशवृक्ष मुञ्चेमं	ईश्वर	आत्मोन्नति	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
१०	क्षेत्रियात् त्वा	ब्रह्म	मुक्ति प्राप्ति	त्रिष्टुप्, जगती
११	दूष्यादूषिरसि	पुरुष	पुरुषार्थ	गायत्री
१२	द्यावापृथिवी उवं	विश्वेदेवाः	सर्वरक्षा	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
१३	आयुर्दा अग्ने जरसं	ब्रह्मचारी	समावर्त्तनवस्त्र	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
१४	निःसालां धृष्णुं	अलक्ष्मी	निर्धनता का नाश	अनुष्टुप्
१५	यथा द्यौश्च पृथिवी	प्राण	धर्म का पालन	गायत्री
१६	प्राणापानौ मृत्योर्मा	आत्मा	आत्मरक्षा	पङ्क्ति, गायत्री आदि
१७	ओजोऽस्योजो मे	ईश्वर	आयुवृद्धि	
१८	भ्रातृव्यक्षयणमसि	ईश्वर	शत्रु से रक्षा	त्रिष्टुप् उष्णिक्
१९	अग्ने यत्ते तपस्तेन	अग्नि	कुप्रयोगत्याग	साम्नी, बृहती
२०	वायो यत्ते तपस्तेन	वायु	,, ,,	त्रिष्टुप् जगती
२१	सूर्य यत्ते तपस्तेन	सूर्य	,, ,,	,, ,,
२२	चन्द्र यत्ते तपस्तेन	चन्द्र	,, ,,	,, ,,
२३	आपो यद् वस्तपस्तेन	आपः (जल)	,, ,,	,, ,,
२४	शेरभक शेरभ	ईश्वर	कुसंस्कारादित्याग	,, ,,
२५	शं नो देवी पृश्नि	पृश्निपर्णी	शत्रुओं का नाश	त्रिष्टुप् आदि
२६	एह यन्तु पशवो	त्वष्टा सविता वा	मेल करना	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
२७	नेच्छत्रु प्राशं जयाति	ओषधि, इन्द्र	बुद्धि से विवाद	
२८	तुभ्यमेव जरिमन्	अग्नि	आयु बढ़ाना	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
२९	पार्थिवस्य रसे देवा	बृहस्पति इन्द्र	उन्नति करना	अनुष्टुप् त्रिष्टुप्
३०	यथेदं भूम्या अधि	अश्विनौ	गृहस्थाश्रम प्रवेश	पङ्क्त, त्रिष्टुप्
३१	इन्द्रस्य या मही दृषत्	इन्द्र	दोष नाश	अनुष्टुप्
३२	उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्	आदित्य	तथा शरीर रक्षा	गायत्री, अनुष्टुप्
३३	अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां	आत्मा	शरीर रक्षा	अनुष्टुप्, पङ्क्त
३४	य ईशे पशुपतिः पशूनां	पशुपति	बन्ध से मुक्ति	त्रिष्टुप्
३५	ये भक्षयन्तो न वसू	विश्वकर्मा	पाप त्याग	त्रिष्टुप्
३६	आ नो अग्ने सुमतिं	अग्नि	विवाह संस्कार	त्रिष्टुप् आदि

२—अथर्ववेद, काण्ड २ के मन्त्र अन्य वेदों में संपूर्ण वा कुछ भेद से ॥

संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड २) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद मंडल, सूक्त मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक इत्यादि
१-२	वेनस्तत् पश्यत् इत्यादि	१।१--२	—	३२।८.९	
३	स नः पिता जनिता	१।३	१०।८२।३	१७।२७	
४	परि विश्वा भुवनान्या	१।५	—	३२।१०	
५-७	इन्द्र जुषस्व प्र वहा-इत्यादि	५।१--३	—	—	उ० ३ १।२२
८-१०	इन्द्रस्यनु प्रावोचं-इत्यादि	५।५--७	१।३२।१-३	—	
११-१३	समास्त्वाग्न-इत्यादि	६।१--३	—	२७।१-३	
१४-१५	क्षत्रेणाग्ने स्वेन-इत्यादि	६।४--५	—	२७।५-६	
१६	अतीव यो मरुतो	१२।६	६।५२।२	—	
१८-१९	ओजोऽस्योजो-इत्यादि	१७।१--७	—	१९।९	
२०-२६	अक्षीभ्यां ते इत्यादि	३३।१--७	१०।१६३।१-६	—	

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड ३ ॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पाद	देवता	उपदेश	छन्द
१	अग्निर्नः शत्रून्	अग्नि आदि	युद्ध विद्या	त्रिष्टुप् आदि
२	अग्निर्नो दूतः	अग्नि आदि	सेनापति कर्त्तव्य	त्रिष्टुप् आदि
३	अचिक्रदत् स्वपा	इन्द्र	राजा, प्रजा का धर्म	त्रिष्टुप् आदि
४	आत्वा गन् राष्ट्रं	इन्द्र	राज तिलक	त्रिष्टुप्
५	आयमगन्पर्ण	पर्णमणि	तेज, बल धन	त्रिष्टुप् आदि
६	पुमान्पुन्सः परि	अश्वत्थ	उत्साह बढ़ाना	अनुष्टुप्
७	हरिणस्य रघुष्यदो	हरिणआदि	रोग नाश	अनुष्टुप्
८	आ यातु मित्र	प्रजापति	प्रीति उत्पन्न करना	त्रिष्टुप् आदि
९	कर्शफस्य विशफस्य	प्रजापति	विघ्न शांति	अनुष्टुप्
१०	प्रथमा ह व्युवास सा	रात्रि	पुष्टि बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि
११	मुञ्चामि त्वा हविषा	राजयक्ष्मघ्न	रोग नाश	त्रिष्टुप् आदि
१२	इहैव ध्रुवां नि मिनोमि	शाला	शाला निर्माण	त्रिष्टुप् आदि
१३	यददः सम्प्रयती	आपः	जल के गुण	अनुष्टुप् आदि
१४	सं वो गोष्ठेन	गावः	गोरक्षा	अनुष्टुप् आदि
१५	इन्द्रमहं वणिजं	इन्द्र	व्यापार लाभ	त्रिष्टुप् आदि
१६	प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं	भगउषाआदि	प्रभाती गीत	त्रिष्टुप् आदि
१७	सीरा युञ्जन्ति	कृषीवल	खेती विद्या	त्रिष्टुप् आदि
१८	इमाँ खनाम्योषधिं	सपत्नीबाधन	अविद्या नाश	अनुष्टुप् आदि
१९	संशितं म इदं ब्रह्म	पुरोहित	युद्ध विद्या	अनुष्टुप् आदि
२०	अयं ते योनिर्	अग्नि आदि	ब्रह्म विद्या	अनुष्टुप् आदि
२१	ये अग्नयो अप्स्व	अग्नि आदि	परमेश्वर गुण	त्रिष्टुप् आदि
२२	हस्तिवर्चसं प्रथतां	विश्वेदेवाः	कीर्ति पाना	त्रिष्टुप् आदि
२३	येन वेहद् बभूविथ	माता	वीर संतान	अनुष्टुप् आदि
२४	पयस्वतीरोषधयः	प्रजापति	धान्य बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि
२५	उत्तुदस्त्वोत् तुदतु	काम	अविद्या नाश	अनुष्टुप्
२६	ये ३स्यां स्थ प्राच्यां	मंत्रोक्त	मारू गीत	जगती वा त्रिष्टुप्
२७	प्राचीदिगग्निरधिपति	मंत्रोक्त	सेना का व्यूह	त्रिष्टुप् आदि
२८	एकैकयैषा सृष्ट्या	यमिनी	उत्तम नियम	जगती आदि
२९	यद् राजानो विभज	अवि	परमेश्वर भक्ति	अनुष्टुप् आदि
३०	सहृदयं सांमनस्य	प्रजापति	परस्पर मेल	अनुष्टुप् आदि
३१	वि देवा जरसावृतन्	प्रजापति	आयु बढ़ाना	अनुष्टुप् आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अथर्ववेद, काण्ड ३ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण या कुछ भेद से ॥

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड ३) सूक्त, मन्त्र	ऋग्वेद, मंडल सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय मन्त्र	सामवेद, पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक इत्यादि
१	अमीषां चित्तानि	२।५	१०।१०३।१२	१७।४४	उ० ६।३।५
२	असौ या सेना मरुतः	२।६		१७।४७	
३	सा नः पयस्वती	१०।१	४।५७।७		
४	पूर्णा दर्वे परापत	१०।७		३।४६	
५-८	मुञ्चामि त्वा हविषा	११।१-४	१०।१६१।१-४		
९	इध्मेनाग्न इच्छमानो	१५।३	३।१८।३		
१०	इमामग्ने शरणिं	१५।४	१।३१।१६		
११-१७	प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं	१६।१-७	७।४१।१-७	३४।३४-४०	
१८	सीरायुञ्जन्ति	१७।१	१०।१०१।४	१२।६७	
१९	युनक्त सीरा वि	१७।२	१०।१०१।३	१२।६८	
२०	लाङ्गलं पवीरवत्	१७।३		१२।७१	
२१	इन्द्रः सीता नि	१७।४	४।५७।७		
२२	शुनं सुफाला वि	१७।५	४।५७।८	१२।६९	
२३-२५	शुनं वाहा शुनं नर	१७।६-८	४।५७।-४-६		
२६	घृतेन सीता मधुना	१७।९		१२।७०	
२७-३२	इमां खनाम्योषधि	१८।१-६	१०।१४५।१-६		
३३	उद्धर्षन्तां मघवन्	१९।६	१०।१०३।१०	१७।४२	
३४	प्रेता जयता नर	१९।७	१०।१०३।१३	१७।४६	
३५	अवसृष्टा परा पत	१९।८	६।७५।१६	१७।४५	
३६	अयं ते योनिर्	२०।१	३।२९।१०	३।१४,१२।५२	
३७-३८	अग्ने अच्छा वदेह नः	२०।२-३	१०।१४१।१-२	९।२८, २९	
३९	सोमं राजानमवसे	२०।४	१०।१४१।३	९।२६	
४०	त्वं नो अग्ने अग्निभिर्	२०।५	१०।१४१।६		
४१	इन्द्रवायू उभाविह	२०।६	१०।१४१।४	३३।८६	
४२	अर्यमणं बृहस्पति	२०।७	१०।१४१।५	९।२७	
४३	वाजस्य नु प्रसवे	२०।८		१८।३०	
४४	क इदं कस्मा अदात्	२९।७		७।४८	
४५	त्वष्टा दुहित्रे वहतुं	३१।५	१०।१७।१		

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सूक्त विवरण, अथर्ववेद, काण्ड ४॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	ब्रह्म जज्ञानम्	वेनः	ब्रह्म का विचार	त्रिष्टुप्
२	य आत्मदा बलदा	प्रजापतिः	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
३	उदितस्त्रयः	इन्द्र	शत्रु नाश	पथ्यापङ्क्ति इ०
४	यां त्वा गन्धर्वो	वृषा, इन्द्र	मनुष्य बल	अनुष्टुप्
५	सहस्रशृङ्गो	इन्द्र	बच्चों को सुलाना	अनुष्टुप् पथ्यापं०
६	ब्राह्मणो जज्ञे	विष	विष दूर करना	अनुष्टुप् इत्यादि
७	वारिदं वारयातै	विष	विष नाश	अनुष्टुप
८	भूतो भूतेषु	भूतानामधिपतिः	राजतिलक यज्ञ	त्रिष्टुप् इत्यादि
९	एहि जीवम्	आञ्जन	ब्रह्म विद्या	अनुष्टुप् इत्यादि
१०	वाताज्जातो	शङ्ख	विघ्नों को हटाना	अनुष्टुप् इत्यादि
११	अनड्वान् दाधार	अनड्वान्	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप् इत्यादि
१२	रोहण्यसि रोह	धाता	दोष मिटाना	अनुष्टुप् आदि
१३	उत देवा अवहितं	आत्मा	स्वास्थ्य रक्षा	अनुष्टुप्
१४	अजोह्यग्नेर	अग्नि	ब्रह्म प्राप्ति	त्रिष्टुप् आदि
१५	समुत्पतन्तु प्रदिशो	पर्जन्य	वृष्टि प्रार्थना	जगती इत्यादि
१६	बृहन्नेषामधिष्ठाता	वरुण	वरुण की सर्वव्यापकता	अनुष्टुप् इत्यादि
१७	ईशानां त्वा भेषजा	अपामार्ग	राजा का लक्षण	अनुष्टुप्
१८	समं ज्योतिः सूर्येण	अपामार्ग	राजधर्म	अनुष्टुप्
१९	उतो अस्यबन्धुकृ	अपामार्ग	राजधर्म	अनुष्टुप् इत्यादि
२०	आ पश्यति प्रति	ब्रह्मः	ब्रह्म की उपासना	अनुष्टुप्
२१	आ गावो अग्मन्	गावः	विद्या के गुण	त्रिष्टुप् जगती
२२	इममिन्द्र वर्धय	इन्द्र	संग्राम में जय	त्रिष्टुप्
२३	अग्नेर्मन्वे	अग्नि	कष्ट हटाना	अनुष्टुप् इत्यादि
२४	इन्द्रस्य मन्महे	इन्द्र	पूर्ण सुख	जगती अनुष्टुप्
२५	वायोः सवितुर्	पवनसवितारौ	पवन और सूर्य	अनुष्टुप् इत्यादि
२६	मन्वे वां द्यावापृथि-	सूर्यपृथिवी	सूर्य और पृथिवी	अनुष्टुप् इत्यादि
२७	मरुतां मन्वे	मरुतः	पवन के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
२८	भवा शर्वौ मन्वे वाम्	भवाशर्वौ	परमेश्वर के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि
२९	मन्वे वां मित्रा	मित्र, वरुण	पुरुषार्थ	अनुष्टुप् इत्यादि
३०	अहं रुद्रेभिः	राष्ट्री	परमेश्वर के गुण	त्रिष्टुप् जगती
३१	त्वया मन्यो सरथ	मन्यु	संग्राम में जय	त्रिष्टुप् जगती
३२	यस्ते मन्योऽवि-	मन्यु	संग्राम में जय	त्रिष्टुप्
३३	अप नःशोशुचद	अग्नि	सर्व रक्षा	गायत्री
३४	ब्रह्मास्य शीर्ष	ओदन	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप्, इत्यादि
३५	यमोदनं प्रथमजा	ओदन	ब्रह्म विद्या	त्रिष्टुप्, जगती
३६	तान्त्सत्यौजाः	अग्नि	राज धर्म	अनुष्टुप्
३७	त्वया पूर्वमथर्वा	ओषधि, इत्यादि	गन्धर्व आदि	अनुष्टुप् इत्यादि
३८	उद्भिन्दतीं संजय	अप्सरा	परमेश्वर के गुण	अनुष्टुप् इत्यादि
३९	पृथिव्यामग्नये	अग्नि इत्यादि	परमेश्वर गुण	त्रिपदा जगती इत्यादि
४०	ये पुरस्ताज् जुह्वति	जातवेदाः	शत्रुनाश	त्रिष्टुप् इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—अथर्ववेद, काण्ड ४ के मन्त्र अन्य वेदों में सम्पूर्ण वा कुछ

मन्त्र संख्या	मन्त्र	अथर्ववेद (काण्ड ४) सूक्त मंत्र	ऋग्वेद, मंडल, सूक्त मंत्र	यजुर्वेद अध्याय, मंत्र
१	ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं	१।१		१३।३
२	य आत्मदा बलदा	२।१	१०।१२१।२,३	२५।१३,११
३	यः प्राणतो निमिषतो	२।२	१०।१२१।३,२	२५।११,१२
४	यं क्रन्दसी अवतश्च यस्यासौ पन्था	२।३	१०।१२१।६	३२।७ / ३२।६
५	यस्य विश्वे हिम	२।५	१०।१२१।४	२५।१२
६	आपो अग्रे विश्व	२।६	१०।१२१।७,८	२७।२५,२६
७	हिरण्यगर्भ समः	२।७	१०।१२१।१	१३।४,२५।१०
८	आपो वत्सं जनयन्तीः	२।८	१०।१२१।७	२७।२५
९	सहस्रशृङ्गो वृषभो	५।१	७।५५।७	
१०	प्रोष्ठेशयास्तल्पे	५।३	७।५५।८	
११	य आस्ते यश्चरति	५।५	७।५५।६	
१२	स्वप्तु माता स्वप्तु	५।६	७।५५।५	
१३	सनेयमश्वं गां	९।७	१०।९७।४	१२।७८
१४-१८	उत देवा अवहितं	१३।१-५	१०।१३७।१-५	
१९	अयं मे हस्तो भगवान्	१३।६	१०।६० १२	
२०	हस्ताभ्यां दशशाखा—	१३।७	१०।१३७।७	
२१	अजो ह्यग्नेर	१४।१		१३।५१
२२	क्रमध्वमग्निना नाक	१४।२		१७।६५
२३-२५	पृष्ठात् पृथिव्या अह—	१४।३-५		१७।६७-६९
२६	अर्वाङेतेन	१५।११	५।८३।६	
२७	अपोनिषिञ्चन्न	१५।१२	७।८३।६	
२८	संवत्सरं शशयाना	१५।१३	५।१०३।१	
२९	महन्तं कोशमुद—	१५।१६	५।८३ ८	
३०-३६	आ गावो अग्मन्नुत	२१।१-७	६।२८।१-७	
३७	मा वस्तेन	२१।७		१।१
३८	परि वो रुद्रस्य	२१।७		१६।५०
३९-४६	अहं रुद्रेभिर्	३०।१-८	१०।१२५।१-८	
४७-५२	त्वया मन्यो	३१।१-७	१०।८४।१-७	
५३-५९	यस्ते मन्यो	३२।१-७	१०।८३।१-७	
६०-६७	अप नः शोशुचदघ	३३।१-८	१०।९७।१-८	
६५	विश्वानि देव	३९।१०		४०।१६

नोटः—अथर्ववेद के चार काण्ड तक ही तालिका छपे हुए हैं जो हमने भी छाप दिये हैं। अगले काण्डों के तालिका छपे हुए नहीं मिले, अतः हमने भी नहीं छापे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०:०:०:०:—

प्रथमं काण्डम् ॥

—: :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—:०: :०: :—

सूक्तम् १ ॥

मन्त्राः १-४ । अथर्वा ऋषिः । वाचस्पतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः, ८×४ अक्षराणि ॥

बुद्धिवृद्ध्युपदेशः—बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

सान्वय भाषार्थः—(ये) जो पदार्थ (त्रि-सप्ताः) १—सबके संतारक, रक्षक परमेश्वर के सम्बन्ध में, यद्वा, २—रक्षणीय जगत् [यद्वा—तीन से सम्बद्ध ३—तीनों काल भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान । ४—तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य, और भूलोक । ५—तीनों, गुण, सत्त्व, रज और तम । ६—ईश्वर, जीव, और प्रकृति । यद्वा, तीन और सात=दस । ७—चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दिशा । ८—पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, अर्थात् कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पांच कर्म इन्द्रियाँ, अर्थात् वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ । यद्वा, तीन गुणित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त=इक्कीस । ९—महाभूत ५+प्राण ५+ज्ञान इन्द्रियाँ ५+कर्म इन्द्रियाँ ५+अन्तः करण १ इत्यादि] के सम्बन्ध में [वर्त्तमान] होकर, (विश्वा=विश्वानि) सब (रूपाणि) वस्तुओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परि) सब ओर (यन्ति) व्याप्त हैं । (वाचस्पतिः) वेदरूप वाणी का स्वामी परमेश्वर (तेषाम्) उनके (तन्वः) शरीर के (बला = बलानि) बलों को (अद्य) आज (मे) मेरे लिये (दधातु) दान करे ॥१॥

भावार्थः—आशय यह है कि तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसार की स्थिति के कारण हैं, उन सबका तत्त्वज्ञान (वाचस्पतिः) वेदवाणी के स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें और उस अन्तर्यामी पर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगें ॥१॥

भगवान् पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा है—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ यो० द० १ । २६ ॥

वह ईश्वर सब पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि वह काल से विभक्त नहीं होता ॥

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥

भाषार्थः—(वाचस्पते) हे वाणी के स्वामी परमेश्वर ! तू (पुनः) वारंवार (एहि) आ । (वसोः पते) हे श्रेष्ठ गुण के रक्षक ! (देवेन) प्रकाशमय (मनसा सह) मन के साथ (नि) निरन्तर (रमय) [मुझे] रमण करा, (मयि) मुझमें (वर्त्तमान) (श्रुतम्) वेदविज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक (वाचस्पति) परम गुरु परमेश्वर का ध्यान निरन्तर करता रहे और पूरे स्मरण के साथ वेद विज्ञान से अपने हृदय को शुद्ध करके सदा सुख भोगे ॥२॥

टिप्पणी—भगवान् यास्क मुनि ने 'वाचस्पति' का अर्थ "वाचःपाता वा पालयिता वा"—अर्थात् वाणी की रक्षा करने वाला वा कराने वाला किया है—निरु० १० । १७ । और निरु० १० । १८ । में उदाहरण रूप से इस मन्त्र का पाठ इस प्रकार है ।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते निरमय मय्येव तन्वं १' मम ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे वाणी के स्वामी तू वारम्वार आ, हे धन वा अन्न के रक्षक ! प्रकाशमय मन के साथ मुझमें ही मेरे शरीर को नियमपूर्वक रमण करा ॥

मन की उत्तम शक्तियों के बढ़ाने के लिये 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्' इत्यादि यजुर्वेद अ० ३४ म० १—६ भी हृदयस्थ करने चाहिये ॥

इहैवाभि वि तनूभे आत्नीं इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

भाषार्थः—(इह) इसके ऊपर (एव) ही (अभि) चारों ओर से (वि तनु) तू अच्छे प्रकार फैल, (इव) जैसे (उभे) दोनों (आत्नी) धनुष कोटियें (ज्यया) जय के साधन, चिल्ला के साथ [तन जाती हैं] । (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी (नि यच्छतु) नियम में रक्खे, (मयि) मुझमें [वर्त्तमान] (श्रुतम्) वेद विज्ञान (मयि) मुझमें (एव) ही (अस्तु) रहे ॥३॥

भावार्थः—जैसे संग्राम में शूरवीर धनुष की दोनों कोटियों को डोरी में चढ़ाकर बाण से रक्षा करता है उसी प्रकार आदिगुरु परमेश्वर अपने कृपायुक्त दोनों हाथों को [अर्थात् अज्ञान की हानि और विज्ञान की वृद्धि को] इस मुझ ब्रह्मचारी पर फैलाकर रक्षा करे और नियम पालन में दृढ़ करके परम सुखदायक ब्रह्मविद्या का दान करे और विज्ञान का पूरा स्मरण मुझ में रहे ॥३॥

भगवान् यास्क के अनुसार—निरुक्त ९ । १७ में 'ज्या' शब्द का अर्थ जीतने वाली यद्वा आयु घटाने वाली अथवा बाणों को छोड़ने वाली वस्तु है ॥

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

भाषार्थः—(वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी, परमेश्वर (उपहूतः) समीप बुलाया गया है, (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी (अस्मान्) हमको (उपह्वयताम्) समीप बुलावे । (श्रुतेन) वेद विज्ञान से (सं गमेमहि) हम मिले रहें । (श्रुतेन) वेद विज्ञान से (मा वि राधिषि) मैं अलग न हो जाऊं ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी लोग परमेश्वर का आवाहन करके निरन्तर अभ्यास और सत्कार से वेदाध्ययन करें जिससे प्रीतिपूर्वक आचार्य की पढ़ायी ब्रह्मविद्या उनके हृदय में स्थिर होकर यथावत् उपयोगी होवे ॥४॥

टिप्पणी—इस सूक्त का यह भी तात्पर्य है कि जिज्ञासु ब्रह्मचारी अपने शिक्षक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यों का सदा आदर सत्कार करके यत्नपूर्वक विद्याभ्यास करें जिससे वह शास्त्र उनके हृदय में दृढ़भूमि होवे ॥

सूक्तम् २ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ १, २, ४ । अनुष्टुप्, ८×४ । ३ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ११×३ अक्षराणि ॥

बुद्धिवृद्ध्युपदेशः—बुद्धि की वृद्धि के लिये उपदेश ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक [बाणधारी] शूर पुरुष के (पितरम्) रक्षक, पिता, (पर्जन्यम्) सींचने वाले मेघ रूप (भूरिधायसम्) बहुत प्रकार से पोषण करने वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं । (अस्य) इस शूर की (मातरम्) माननीया माता, (पृथिवीम्) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी रूप (भूरिवर्पसम्) अनेक वस्तुओं से युक्त [ईश्वर] को (सु) भली भाँति (विद्म उ) हम जानते ही हैं ॥१॥

भावार्थः—जैसे मेघ, जल की वर्षा करके और पृथ्वी, अन्न आदि उत्पन्न करके प्राणियों का बड़ा उपकार करते हैं, वैसे ही वह जगदीश्वर परब्रह्म सब मेघ, पृथ्वी आदि लोक लोकान्तरों का धारण और पोषण नियमपूर्वक करता है । जितेन्द्रिय शूरवीर विद्वान् पुरुष उस परब्रह्म को अपने पिता के समान रक्षक, और माता के समान माननीय और मानकर्त्ता जानकर (भूरिधायाः) अनेक प्रकार से पोषण करने वाला और (भूरिवर्पाः) अनेक वस्तुओं से युक्त होकर परोपकार में सदा प्रसन्न रहे ॥१॥

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥

भाषार्थः—[हे इन्द्र] (ज्याके) जय के लिये (नः) हमको (परि) सर्वथा (नम) तू झुका, (तन्वम्) [हमारे] शरीर को (अश्मानम्) पत्थर सा [सुदृढ़] (कृधि) बनादे । (वीडु) तू दृढ़ होकर (अरातीः) विरोधों और (द्वेषांसि) द्वेषों को (अप=अपहृत्य) हटाकर (वरीयः) बहुत दूर (आ कृधि) कर दे ॥२॥

अथवा, (ज्याके) दोनों जय के साधनों [मेघ और भूमि] को (नः परि) हमारी ओर (नम) तू झुका । यह अर्थ प्रयुक्त करो ॥

भावार्थः—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास करके मनुष्य आत्मबल और शरीर बल प्राप्त करें और सब विरोधों को मिटावें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायणाचार्य ने अर्थ किया है कि (ज्याके) हे कुत्सित चिल्ला ! (नः) हम-को (परि) छोड़ कर (नम) झुक । हमारी समझ में यह असंगत है, सम्पूर्ण सुक्त का देवता इन्द्र है ।

वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥

भावार्थः - (यत्) जब (वृक्षम्) धनुष से (परि-सस्वजानाः) लिपटी हुई (गावः) चिल्ले की डोरियां (अनुस्फुरम्) फुरती करते हुए (ऋभुम्) विस्तीर्ण ज्योति वाले, अथवा सत्य से प्रकाशमान वा वर्त्तमान, बड़े बुद्धिमान् (शरम्) बाणधारी शूरपुरुष की (अर्चन्ति) स्तुति करें । [तब] (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! [वा, हे वायु !] (शरुम्) बाण और (दिद्युम्) वज्र को (अस्मत्) हमसे (यावय) तू अलग रख ॥३॥

भावार्थः—जब दोनों ओर से (आध्यात्मिक वा आधिभौतिक) घोर संग्राम होता हो, बुद्धिमान् चतुर सेनापति ऐसा साहस करे कि सब योद्धा लोग उसकी लड़ाई करें, और वह परमेश्वर का सहारा लेकर और अपने प्राण वायु को साधकर शत्रुओं को निरुत्साह करदे. और जय प्राप्त करके आनन्द भोगे ॥३॥

निरुक्त अध्याय २, खंड ६ और ५ के अनुसार (वृक्ष) का अर्थ [धनुष] इस-लिये है कि उससे शत्रु छेदा जाता है और (गौ) का नाम चिल्ला इसलिये है कि उससे बाणों को चलाते हैं ॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (तेजनम्) प्रकाश (द्यां च) सूर्यलोक (च) और (पृथिवीम्) पृथिवी लोक के (अन्तः) बीच में (तिष्ठति) रहता है। (एव) वैसे ही (मुञ्जः) शोधने वाला परमेश्वर [वा औषध] (इत्) भी (रोगं च) शरीर भंग (च) और (आस्रावम्) रुधिर के बहाव वा घाव के (अन्तः) बीच में (तिष्ठतु) स्थित होवे ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी क्लेशों में (मुञ्जः) हृदय संशोधक परमेश्वर का स्मरण रखते हैं वे दुःखों से पार होकर तेजस्वी होते हैं। अथवा जैसे सद्वैद्य (मुञ्ज) संशोधक औषधि से बाहिरी और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतरी रोग का प्रतीकार करता है, वैसे ही आचार्य विद्याप्रकाश से ब्रह्मचारी के अज्ञान का नाश करता है ॥४॥

सायण भाष्य में 'तेजनम्' नपुंसक लिङ्ग को 'तेजनः,' पुल्लिग मानकर वेणुः, अर्थात् बांस अर्थ किया है वह असंगत है ॥

सूक्तम् ३ ॥

१—९ ॥ अथर्वा ऋषिः । पर्जन्यादयो देवताः । १-५ पंक्तिः ८×५, ६-९ अनुष्टुप् छन्दः, ८×४ अक्षराणि ॥

शान्तिकरणम्—शांति के लिये उपदेश ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे ३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालितिं ॥१॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [वा बाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक पिता, (पर्जन्यम्) सींचने वाले मेघ रूप (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं । (तेन) उस [ज्ञान] से (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) नीरोगता (करम्) मैं करूं, और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ते) तेरा (निसेचनम्) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे, और (ते) तेरा (बाल्) वैरी (बहिः) बाहिर (अस्तु) होवे, (इति) बस यही ॥१॥

भावार्थः—जैसे मेघ अन्न आदि उत्पन्न करता है वैसे ही मेघ के भी मेघ अनन्त शक्तिवाले परमेश्वर को साक्षात् करके जितेन्द्रिय पुरुष (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाला होकर अपने शत्रुओं का नाश करता और आत्मबल बढ़ा कर संसार में वृद्धि करता है ॥१॥

इस मन्त्र के पूर्वार्ध के लिये १ । २ । १ । देखो ॥

विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे ३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालितिं ॥२॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक शूर [वा बाणधारी] के (पितरम्) रक्षक पिता, (मित्रम्) सबके चलाने वाले [वा स्नेहवान्] वायु रूप (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से.....॥२॥

भावार्थः—जैसे वायु सब प्राणियों के जीवन का आधार है वैसे ही परमेश्वर वायु का भी प्राण है इत्यादि ॥२॥

सायण भाष्य में "मित्र" शब्द का अर्थ दिन का अभिमानी देवता है॥

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे ३ ' शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बर्हिष्टे अस्तु बालितिं ॥३॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रु नाशक [वा बाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता, (वरुणम्) लोकों के ढकने वाले आकाश रूप विस्तीर्ण (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से.....॥३॥

भावार्थः—आकाश में सूर्य भूमि आदि लोक स्थित हैं और परमेश्वर के आधीन आकाश भी है—इत्यादि ॥३॥

'वरुण' मध्यस्थान देवता—निरु० १०। ३ में है। इससे वृष्टिजल का अर्थ प्रतीत होता है, परन्तु 'पर्जन्य' शब्द मं० १ में आ चुका है, इससे यहां पर वृष्टि का आधार और सबका ढकने वाला आकाश अर्थ है। सायण भाष्य में रात्रि का अभिमानी देवता अर्थ है॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे ३ ' शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बर्हिष्टे अस्तु बालितिं ॥४॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [वा बाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले, चन्द्रमा रूप उपकारी (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों सामर्थ्य वाले [परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से.....॥४॥

भावार्थः—(चन्द्र) आनन्द देने वाला अर्थात् अपनी किरणों से अन्न आदि औषधों को पुष्ट करके प्राणियों को बल देता है। उस चन्द्रमा का भी आह्लादक वह परमेश्वर है, ऐसे ही मनुष्य को आनन्द देने वाला होना चाहिये ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालितिं ॥५॥

भाषार्थः—(शरस्य) शत्रुनाशक [बाणधारी] शूर के (पितरम्) रक्षक, पिता (सूर्यम्) चलनेवाले वा चलानेवाले सूर्य समान [उपकारी] (शतवृष्ण्यम्) सैकड़ों [सामर्थ्य वाले [परमेश्वर] को (विद्म) हम जानते हैं। (तेन) उस [ज्ञान] से (ते) तेरे (तन्वे) शरीर के लिये (शम्) नीरोगता (करम्) मैं करूं और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (ते) तेरा (निसेचनम्) बहुत सेचन [वृद्धि] होवे और (ते) तेरा (बाल्) वैरी (बहिः) बाहिर (अस्तु) होवे, (इति) बस यही ॥५॥

भावार्थः—'सूर्य' आकाश में वायु से चलता है और लोकों को चलाता तथा वृष्टि आदि उपकार करता एवं बड़ा तेजस्वी है। वह परब्रह्म उस सूर्य का भी सूर्य है। उसके उपकारों को जान कर तेजस्वी मनुष्य परस्पर उन्नति करते हैं ॥५॥

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालितिं सर्वकम् ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे (यत्) कि (आन्त्रेषु) आंतों में और (गवीन्योः) दोनों पार्श्वस्थ नाड़ियों में और (वस्तौ अधि) मूत्राशय के भीतर (संश्रुतम्) एकत्र हुआ [मूत्र छूटता है]। (एव) वैसे ही (ते मूत्रम्) तेरा मूत्र रूप (बाल्) वैरी (बहिः) बाहिर (मुच्यताम्) निकाल दिया जावे (इति सर्वकम्) यही बस है ॥६॥

भावार्थः—जैसे शरीर में रुका हुआ सारहीन मल विशेष, मूत्र अर्थात् प्रस्राव क्लेश देता है और उसके निकाल देने से चैन मिलता है वैसे ही मनुष्य आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक शत्रुओं के निकाल देने से सुख पाता है ॥६॥

टिप्पणी—सायण भाष्य में 'संश्रुतम्' के स्थान में 'संश्रितम्' मानकर "सम वस्थितम्" [ठहरा हुआ] अर्थ किया है ॥

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालितिं सर्वकम् ॥७॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (मेहनम्) मूत्र द्वार को (प्रभिनद्मि) मैं खोले देता हूं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इव) जैसे (वेशन्त्याः) झील का पानी (बर्त्रम्) बन्ध को [खोल देता है] (एव), वैसे ही——म० ६ ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य लोह शलाका से रोगी के रुके हुए मूत्र को झील के पानी के समान खोलकर निकाल देता है वैसे ही मनुष्य अपने शत्रु को निकाल देवे ॥७॥

विषितं ते बस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालितिं सर्वकम् ॥८॥

भाषार्थः—(ते) तेरा (बस्तिबिलम्) मूत्र मार्ग (विषितम्) खोल दिया गया है, (इव) जैसे (उदधेः) जल से भरे (समुद्रस्य) समुद्र का [मार्ग] (एव) वैसे ही·····। म० ६ ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र ७ देखो ॥

यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालितिं सर्वकम् ॥९॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (धन्वनः अधि) धनुष् से (अवसृष्टा) छुटा हुआ (इषुका) बाण (परा-अपतत्) शीघ्र चला गया हो। (एव) वैसे ही (ते) तेरा (मूत्रम्) मूत्र रूप (बाल्) वैरी (बहिः) बाहिर (मुच्यताम्) निकाल दिया जावे (इति सर्वकम्) यही बस है ॥९॥

भावार्थः—सरल है, ऊपर के मन्त्र देखो ॥९॥

सूक्तम् ४ ॥

१—४ । सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । १—३ गायत्री, ४ पङ्क्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

परस्परोपकारोपदेशः—परस्पर उपकार के लिये उपदेश ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१॥

भाषार्थः—(अम्बयः) पाने योग्य मातायें और (जामयः) मिलकर भोजन करनेहारी, बहिनें [वा कुलस्त्रियां] (मधुना) मधु के साथ (पयः) दूध को (पृञ्चतीः) मिलाती हुई (अध्वरीयताम्) हिंसा न करने हारे यजमानों के (अध्वभिः) सन्मार्गों से (यन्ति) चलती हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो पुरुष, पुत्रों के लिये माताओं के समान, और भाइयों के लिये बहिनों के समान, हितकारी होते हैं, वे सन्मार्गों से आप चलते और सब को चलाते हैं ॥१॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥

भाषार्थः—(अमूः) वह (याः) जो [मातायें और बहिनें] (उप = उपेत्य) समीप होकर (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में रहती हैं, (वा) और (याभिः सह) जिन [माताओं और बहिनों] के साथ (सूर्यः) सूर्य का प्रकाश है। (ताः) वह (नः) हमारे (अध्वरम्) उत्तम मार्ग देने हारे वा हिंसा रहित कर्म को (हिन्वन्तु) सिद्ध करें वा बढ़ावें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो बातों का वर्णन है एक यह कि किसी में उत्तम गुणों का होना, दूसरे यह कि उन उत्तम गुणों को फैलाना ॥२॥

१—जो नररत्न माता और भगिनियों के समान परिश्रमी और उपकारी होकर सूर्यरूप विद्या के प्रकाश में विराजते हैं और जिनके सत्य अभ्यास से सूर्यवत् विद्या का प्रकाश संसार में फैलता है, वे तपस्वी पुण्यात्मा संसार में सुख को वृद्धि करते हैं ॥

२—जो 'अमू.' इत्यादि स्त्रीलिंग शब्दों का सम्बन्ध मन्त्र ३ के 'आपः' शब्द से माना जावे तो यह भावार्थ है कि पहिले जब मूर्तिमान् पदार्थों से किरणों द्वारा सूर्यमण्डल में [जहां तक सूर्य का प्रकाश है] जाता है, फिर वही जल सूर्य की किरणों से छिन्न भिन्न होने के कारण दिव्य बनकर भूमि आदि पदार्थों के आकर्षण से बरसता और महा उपकारी होता है। इस जल के समान, विद्वान् पुरुष ब्रह्मचर्य आदि तप करके संसार का उपकार करते हैं ॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥३॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस जल में से (गावः) सूर्य की किरणें [वा गौयें आदि जीव वा भूमि प्रदेश] (नः) हमारे लिये (हविः) देने वा लेने योग्य अन्न वा जल (कर्त्वम्) उत्पन्न करने को (सिन्धुभ्यः) बहने वाले समुद्रों से (पिबन्ति) पान करती हैं। (देवीः) उस उत्तम गुण वाले (अपः) जल को (उप) आदर से (ह्वये) मैं बुलाता हूं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जल को सूर्य की किरणें समुद्र आदि से खींचती हैं वह जल फिर बरस कर हमारे लिये अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके सुख देता है। अथवा गौ आदि सब प्राणी जल द्वारा उत्पन्न पदार्थों से सुखी होकर सब को सुखी करते हैं, वैसे ही हमको परस्पर सहायक और उपकारी होना चाहिये ॥३॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो
गावो भवथ वाजिनीः॥४॥

भाषार्थः—(अप्सु अन्तः) जल के बीच में (अमृतम्) रोग निवारक अमृत रस है और (अप्सु) जल में (भेषजम्) भय जीतने वाला औषध है, (उत) और (अपाम्) जल के (प्रशस्तिभिः) उत्तम गुणों से (अश्वाः) हे घोड़ो! तुम, (वाजिनः) वेग वाले (भवथ) होते हो, (गावः) हे गौओ, तुम (वाजिनीः=०-न्यः) वेग वाली (भवथ) होती हो ॥४॥

भावार्थः—जल से रोग निवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जैसे जल से उत्पन्न हुए घास आदि से गौएं और घोड़े बलवान् होकर उपकारी होते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य अन्न आदि के सेवन से पुष्ट रह कर और ईश्वर की महिमा जान कर सदा परस्पर उपकारी बनें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १। २३। १९ में है॥

भगवान् मनु ने कहा है—

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ मनु० १। ८॥

उस [परमात्मा] ने ध्यान करके अपने शरीर [प्रकृति] से अनेक प्रजाओं के उत्पन्न करने की इच्छा करते हुए पहिले (अपः) जल को ही उत्पन्न किया और उस में बीज को छोड़ दिया॥

सूक्तम् ५॥

१—४। सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः॥

बलप्राप्त्युपदेशः—बल की प्राप्ति के लिये उपदेश॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन ।
म॒हे रणा॑य॒ चक्ष॑से ॥१॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो ! [जल के समान उपकारी पुरुषों] (हि) निश्चय करके (मयोभुवः) सुखकारक (स्थ) होते हो, (ताः) सो तुम (नः) हमको (ऊर्जे) पराक्रम वा अन्न के लिये (महे) बड़े बड़े (रणाय) संग्राम वा रमण के लिये और (चक्षसे) [ईश्वर के] दर्शन के लिये (दधातन) पुष्ट करो ॥१॥

भावार्थः—जैसे जल खान, पान, खेती, बाड़ी, कला, यन्त्र, आदि में उपकारी होता है, वैसे मनुष्यों को अन्न, बल और विद्या की वृद्धि से परस्पर वृद्धि करनी चाहिये ॥१॥

मन्त्र १—३ ऋग्वेद १० । ९ । १—३ ॥ यजुर्वेद ११ । ५०—५२, तथा ३६ । १४—१६ सामवेद उत्तरार्चिक प्रपा० ९ अर्धप्र० २ सू० १० ॥

यो वः॑ शि॒वत॑मो र॒सस्तस्य॑ भाजयतेह नः । उ॒श॒तीरि॑व मा॒तरः॑ ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) रस है, (इह) यहां [संसार में] (नः) हमको (तस्य) उसका (भाजयत) भागी करो, (इव) जैसे (उशतीः) प्रीति करती हुई (मातरः) मातायें ॥२॥

भावार्थः—जैसे मातायें प्रीति के साथ सन्तानों को सुख देती हैं और जैसे जल संसार में उपकारी पदार्थ है, वैसे ही सब मनुष्य परस्पर उपकारी बन कर लाभ उठावें और आनन्द भोग ॥२॥

तस्मा॒ अर॑ं गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ ।
आपो॑ जनयथा च नः ॥३॥

भाषार्थः—[हे पुरुषार्थी मनुष्यो !] (तस्मै) उस पुरुष के लिये (वः) तुमको (अरम्) शीघ्र वा पूर्ण रीति से (गमाम) हम पहुँचावें, (यस्य) जिस पुरुष के (क्षयाय) ऐश्वर्य के लिये (जिन्वथ) तुम अनुग्रह करते हो । (आपः) हे जलो [जल समान उपकारी लोगो] (नः) हमको (च) अवश्य (जनयथ) तुम उत्पन्न करते हो ॥३॥

भावार्थः—जैसे जल, अन्न आदि को उत्पन्न करके शरीर के पुष्ट करने और नौका, विमान आदि के चलाने में उपयोगी होता है इसी प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल के समान उपकारी पुरुष सब लोगों को लाभ और कीर्त्ति के साथ पुनर्जन्म देते हैं ॥३॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४॥

भाषार्थः—(वार्याणाम्) चाहने योग्य धनों की (ईशानाः) ईश्वरी और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों की (क्षयन्तीः) स्वामिनी (अपः) जल धाराओं [जल के समान उपकारी प्रजाओं] से मैं, (भेषजम्) भय जीतने वाले औषध को (याचामि) मांगता हूं ॥४॥

भावार्थः—जल से अन्न आदि औषध उत्पन्न होकर मनुष्य के धन और बल का कारण है, सो जल के समान गुणी महात्माओं से सहाय लेकर मनुष्यों को आनन्दित रहना चाहिये ॥४॥

यह मन्त्र ऋ० १० । ९ । ५ में है ॥

सूक्तम् ६ ॥

१-४ ॥ सिन्धुद्वीपोऽथर्वाकृतिर्ऋषिः । आपो देवताः । १-३ गायत्री, ४ पंक्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

आरोग्यतोपदेशः—आरोग्यता के लिये उपदेश ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥

भाषार्थः—(देवीः) दिव्य गुण वाले (आपः) जल [जल के समान उपकारी पुरुष] (नः) हमारे (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये और (पीतये) पान वा रक्षा के लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें । और (नः) हमारे (शम्) रोग की शान्ति के लिये, और (योः) भय दूर करने के लिये (अभि) सब ओर से (स्रवन्तु) वर्षा करें ॥१॥

भावार्थः—वृष्टि से जल के समान उपकारी पुरुष सब के दुःख की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति में प्रयत्न करते रहें ॥१॥

मन्त्र १, य० ३६ । १२ मन्त्र १—ऋ० १० । ९ । ४, ६, ७ ।
तथा मन्त्र २, ३ ऋ० १ । २३ । २०, २१ में हैं ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥२॥

भाषार्थः—(सोमः) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ने [चन्द्रमा वा सोमलता ने] (मे) मुझे (अप्सु अन्तः) व्यापनशील जलों में (विश्वानि) सब (भेषजा = ०—नि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधों को, (च) और (विश्वशम्भुवम्) संसार के सुखदायक (अग्निम्) अग्नि [बिजुली वा पाचनशक्ति] को (अब्रवीत्) बताया है ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर सब विद्याओं का प्रकाशक है, चन्द्रमा ओषधियों को पुष्ट करता है, और सोमलता मुख्य ओषधि है। यह सब पदार्थ जैसे जल द्वारा ओषधों, अन्न आदि और शरीरों के बढ़ाने, बिजुली और पाचन शक्ति पहुंचाने और तेजस्वी करने में मुख्य कारण होते हैं वैसे ही मनुष्यों को परस्पर सामर्थ्य बढ़ाकर उपकार करना चाहिये ॥२॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥

भाषार्थः—(आपः) हे व्यापनशील जलो [जल समान उपकारी पुरुषो] (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिये (च) और (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) चलने वा चलाने वाले सूर्य को (दृशे) देखने के लिये (वरूथम्) कवचरूप (भेषजम्) भय निवारक ओषध को (पृणीत) पूर्ण करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे युद्ध में योद्धा की रक्षा झिलम से होती है वैसे ही जल समान उपकारी पुरुष परस्पर सहायक होकर सबका जीवन आनन्द से बढ़ाते हैं ॥३॥

शं न आपो धन्वन्या ३ शमु सन्त्वनूप्याः । शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (धन्वन्याः) निर्जल देश के (आपः) जल (शम्) सुखदायक, (उ) और (अनूप्याः) जलवाले देश के [जल] (शम्) सुखदायक (सन्तु) होवें। (नः) हमारे लिये (खनित्रिमाः) खनती वा फावड़े से निकाले गये (आपः) जल (शम्) सुखदायक होवें, (उ) और (याः) जो (कुम्भे) घड़े में (आभृताः) लाये गये वह भी (शम्) सुखदायी होवें, (वार्षिकीः) वर्षा के जल (नः) हमको (शिवाः) सुखदायी (सन्तु) होवें ॥४॥

भावार्थः—जैसे जल सब स्थानों में उपकारी होता है, वैसे ही जल समान उपकारी मनुष्यों को प्रत्येक कार्य और प्रत्येक स्थान में परस्पर लाभ पहुंचाकर सुखी होना चाहिये ॥४॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

सूक्तम् ७ ॥

१—७ ॥ चातन ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १ ४, ६, ७ अनुष्टुप् ८×४, ५ शिष्टुप् ११×४ अक्षराणि ॥

सेनापतेर्लक्षणानि—सेनापति के लक्षण ॥

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! [अग्नि समान प्रतापी] (स्तुवानम्) [तेरी] स्तुति करते हुए (यातुधानम्) पीड़ा देने हारे (किमीदिनम्) यह क्या यह क्या हो रहा है ऐसा कहने वाले लुतरे को (आवह) ले आ । (हि) क्योंकि (देव) हे राजन् ! (त्वम्) तू (वन्दितः) स्तुति को प्राप्त करके (दस्योः) चोर वा डाकू का (हन्ता) हनन कर्ता (बभूविथ) हुआ था ॥१॥

भावार्थः—जब अग्नि के समान तेजस्वी और यशस्वी राजा दुःखदायी लुतरों [चुगलखोरों] और डाकुओं और चोरों को आधीन करता है तो शत्रु लोग उसके बल और प्रताप की प्रशंसा करते हैं और राज्य में शान्ति फैलती है ॥१॥

(किमीदिन्) शब्द का अर्थ भगवान् यास्क मुनि ने अब क्या हो रहा है वा यह क्या यह क्या हो रहा है ऐसा कहते हुए छली, सूचक = चुगलखोर किया है—निरु० ६ । ११ ॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥

भाषार्थः—(परमेष्ठिन्) हे बड़े ऊंचे पदवाले ! (जातवेदः) हे ज्ञान वा धन के देने वाले ! (तनूवशिन्) शरीरों को वश में रखने हारे ! (अग्ने) अग्नि, राजन् ! तू (तौलस्य) तोल से पाये हुए (आज्यस्य) घृत का (प्र अशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों से (वि लापय) विलाप करा ॥२॥

भावार्थः—जैसे अग्नि स्रुवादि के तौल वा परिमाण से दिये हुए घृतादि हवन सामग्री को पाकर प्रज्वलित होता है वैसे ही प्रतापी राजा प्रजा का दिया हुआ कर लेकर दुष्टों को दण्ड देता है, उससे प्रजा सदा आनन्द युक्त रहती है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि लपन्तु यातुधानाऽअत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो (यातुधानाः) पीड़ा देने हारे, (अत्त्रिणः) पेट भरने वाले (किमीदिनः) यह क्या यह क्या, ऐसा करनेवाले लुत्तरे [हैं], [वे] (वि लपन्तु) विलाप करें। (अथ) और (अग्ने) हे अग्नि (च) और (इन्द्रः) हे वायु, तुम दोनों (इदम्) इस (हविः) होम सामग्री को (प्रति हर्यतम्) अङ्गीकार करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे अग्नि, वायु के साथ हवन सामग्री से प्रचण्ड होकर दुर्गन्धादि दोषों का नाश करती है वैसे ही अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान् महाप्रतापी राजा से दुःखदायी, स्वार्थी, बतबने लोग अपने किये का दंड पाकर विलाप करते हैं तब उसके राज्य में शान्ति होती है ॥३॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्यं ॥४॥

भाषार्थः—(पूर्वः) मुखिया (अग्निः) अग्नि रूप राजा (आरभताम्) [शत्रुओं] को पकड़ लेवे, (बाहुमान्) प्रबल भुजा वाला (इन्द्रः) वायु रूप सेनापति (प्रनुवतु) निकाल देवे। (सर्वः) एक एक (यातुमान्) दुःखदायी राक्षस (एत्य) आकर (अयम् अस्मि) यह मैं हूँ—(इति) ऐसा (ब्रवीतु) कहे ॥४॥

भावार्थः—जब अग्नि के समान तेजस्वी और वायु के समान वेगवान महाप्रतापी राजा उपद्रवियों को पकड़ता और देश से निकालता है तब उपद्रवी लोग अपना अपना नाम लेकर उस राजा के शरणागत होते हैं ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥

भाषार्थ— (जातवेद) हे ज्ञान देने हारे वा धन वाले राजा! (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (पश्याम) हम देखें, (नृचक्षः) हे मनुष्यों के देखने हारे! (नः) हमें (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों को (प्र ब्रूहि) बता दे। (त्वया) तुझ से (परितप्ताः) जलाये हुये (ते सर्वे) वह सब (प्रब्रुवाणाः) जय बोलते हुए (पुरस्तात्) [तेरे] आगे (इदम्) इस स्थान में (उप आ यन्तु) चले आवें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा को योग्य है कि अपने राज्य में विद्याप्रचार करे, सब प्रजा पर दृष्टि रक्खे और उपद्रवियों को अपने आधीन सर्वथा रक्खे कि वह लोग उसकी आज्ञा को सर्वदा मानते रहें ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञान वा धन देने वाले राजन् ! (आ रभस्व) [वैरियों को] पकड़ ले, (अस्माक) हमारे (अर्थाय) प्रयोजन के लिये (जज्ञिषे) तू उत्पन्न हुआ है। (अग्ने) हे अग्ने [सेनापते] (नः) हमारा (दूतः) दूत (भूत्वा) होकर (यातुधानान्) दुःखदायियों से (वि लापय) विलाप करा ॥६॥

भावार्थः—(दूत) का अर्थ शीघ्रगामी और सन्तापकारी है, जैसे दूत शीघ्र चल कर सन्देश पहुँचाता है वैसे ही बिजुली रूप अग्नि शरीरों में प्रविष्ट होकर वेग उत्पन्न करता है अथवा काष्ठ आदि को जलाता है. इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी और प्रतापी राजा अपनी प्रजा की दशा को जानकर यथोचित न्याय करता और दुष्टों को दण्ड देता है ॥६॥

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि ! (त्वम्) तू (उपबद्धान्) दृढ़ बांधे हुए (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों को (इह) यहां पर (आ वह) ले आ। (अथ) और (इन्द्रः) वायु (वज्रेण) कुल्हाड़े से (एषाम्) इनके (शीर्षाणि) मस्तकों को (अपि) भी (वृश्चतु) काट डाले ॥७॥

भावार्थः—अग्नि के समान प्रतापी और (इन्द्र) वायु के समान वेगवान् राजा उत्पातियों को कारागार में डाल दे और उनके सिर उड़ा दे ॥७॥

इसी प्रकार सब मनुष्य अध्यात्म विषय में आत्मा को सेनानी, और लोभ, मोह आदि को शत्रु, तथा गृहस्थिति में गृहपति को सेनापति एवं विघ्नों को वैरी मान कर योग्य व्यवहार करें ॥

सूक्तम् ८ ॥

१-४ ॥ चातन ऋषिः । अग्निः सोमश्च देवते । १-३ अनुष्टुप् ८×४, त्रिष्टुप् ११×४ अक्षराणि ॥

सेनापतिलक्षणानि—सेनापति के लक्षण ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (हविः) [हमारी] भक्ति (यातुधानान्) राक्षसों को (आ वहत्) ले आवे, (इव) जैसे (नदी) नदी (फेनम्) फेन को। (यः) जिस किसी (पुमान्) मनुष्य ने अथवा (स्त्री) स्त्री ने (इदम्) इस [पापकर्म] को (अकः) किया है (सः जनः) वह पुरुष (इह) यहां (स्तुवताम्) [तेरी] स्तुति करे ॥१॥

भावार्थः—प्रजा की पुकार सुनकर जब राजा दुष्टों को पकड़ते हैं, अपराधी स्त्री और पुरुष अपने अपराध को अङ्गीकार कर लेते और उस प्रतापी राजा की स्तुति करते हैं ॥१॥

'स्त्री' शब्द का अर्थ संग्रह करने हारी वा स्तुति योग्य, और 'पुमान्' का अर्थ रक्षक वा पुरुषार्थी है ॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [शत्रु] (स्तुवानः) स्तुति करता हुआ (आ अगमत्) आया है, (इमम्) इसका (स्म) अवश्य (प्रति हर्यत) तुम सब स्वागत करो। (बृहस्पते) हे बड़े बड़ों के रक्षक राजन् ! [दूसरे वैरी को] (वशे) वश में (लब्ध्वा) लाकर [वर्त्तमान हो,] (अग्नीषोमा=०—मौ) हे अग्नि और चन्द्रमा ! तुम दोनों [अन्यवैरियों को] (वि) अनेक भाँति से (विध्यतम्) ताड़ो ॥२॥

भावार्थः—जो शत्रु राजा का प्रभुत्व मानकर शरणागत हो, राजा और कर्मचारी उसका स्वागत करें। प्रतापी राजा दूसरे वैरी को शम दम आदि से अपने आधीन रक्खे। और अन्य वैरियों को (अग्नीषोमा) दंड देने में अग्नि सा प्रचंड और न्याय करने में (सोम) चन्द्रमा सा शान्त स्वभाव रहे ॥२॥

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥३॥

भाषार्थः—(सोमप) हे अमृत पीने हारे [राजन्] तू (यातुधानस्य) पीड़ा देने हारे पुरुष के (प्रजाम्) मनुष्यों को (जहि) मार, (च) और (नयस्व) ले आ। (निःस्तुवानस्य) अपस्तुति [निन्दा] करते हुए [शत्रु का] (परम्) उत्तम (हृदय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की (उत) और (अवरम्) नीची [शिर की] (अक्षि) आंख को (पातय) निकाल दे ॥३॥

भावार्थः—(सोमप) अमृत पीने हारा अर्थात् शान्त स्वभाव यशस्वी राजा दुष्टों का नाश करे और पकड़ लावे। निन्दा फैलाने हारे मिथ्याचारी शत्रु को नष्ट भ्रष्ट कर दे कि वह पापी अपने मन के भीतरी कुविचार और बाहिरी कुचेष्टा और पाप कर्म छोड़ दे ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे अनेक विद्या वाले वा धन वाले! (अग्ने) अग्नि [अग्निस्वरूप राजन्] (यत्र) जहां पर (गुहा) गुफा में (सताम्) वर्त्तमान (एषाम्) इन (अत्रिणाम्) उदर पोषकों के (जनिमानि) जन्मों को (वेत्थ) तू जानता है। (अग्ने) हे अग्निरूप राजन्! (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान [वा अन्न वा धन] से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (त्वम्) तू (तान्) उनको और (एषाम्) इनकी (शततर्हम्) सैकड़ों प्रकार की हिंसा को (जहि) नाश कर ॥४॥

भावार्थः—अग्नि के समान तेजस्वी महाबली राजा गुप्त उपद्रवियों की खोज करे और उनको यथानीति कड़े कड़े दण्ड देकर प्रजा में शान्ति रक्खे ॥४॥

सूक्तम् ९ ॥

१-४ ॥ अथर्वा ऋषिः। १, २ विश्वेदेवा देवताः, ३, ४ अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः ११×४ अक्षराणि ॥

सर्वसम्पत्तिप्रयत्नोपदेशः—सब सम्पत्तियों के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(वसवः) प्राणियों के बसाने वाले वा प्रकाशमान, श्रेष्ठ देवता [अर्थात्] (इन्द्रः) परमेश्वर वा सूर्य, (पूषा) पुष्टि करने वाली पृथिवी, (वरुणः) मेघ, (मित्रः) वायु, और (अग्निः) आग, (अस्मिन्) इस पुरुष में [मुझमें] (वसु) धन को (धारयन्तु) धारण करें। (आदित्याः) प्रकाशवाले [बड़े विद्वान् शूरवीर पुरुष] (उत च) और भी (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार जाननेहारे महात्मा (इमम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसको [मुझको] (उत्तरस्मिन्) अति उत्तम (ज्योतिषि) ज्योति में (धारयन्तु) स्थापित करें ॥१॥

भावार्थः चतुर पुरुषार्थी मनुष्य के लिये परमेश्वर और संसार के सब पदार्थ उपकारी होते हैं। अथवा जो सूर्य, भूमि, मेघ, वायु और अग्नि के समान उत्तम गुण वाले और दूसरे शूरवीर विद्वान् लोग (आदित्याः) जो विद्या के लिये और धरती अर्थात् सब जीवों के लिये पुत्र समान सेवा करते हैं और जो सूर्य के समान उत्तम गुणों से प्रकाशमान हैं, वे सब नरभूषण पुरुषार्थी मनुष्य के सदा सहायक और शुभचिन्तक रहते हैं ॥१॥

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेनम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार जानने हारे महात्माओ ! (अस्य) इसके [मेरे] (प्रदिशि) शासन में (ज्योतिः) तेज, [अर्थात्] (सूर्यः) सूर्य, (अग्निः) अग्नि, (उत वा) और भी (हिरण्यम्) सुवर्ण (अस्तु) होवे। (सपत्नाः) सब वैरी (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) रहैं। (उत्तमम्) अति ऊँचे (नाकम्) सुख में (एनम्) इसको [मुझको] (अधि) ऊपर (रोहय = ०—यत) तुम चढ़ाओ ॥२॥

भावार्थः—प्रकाश वाले, सूर्य, अग्नि की और सुवर्ण आदि की विद्यायें, अथवा सूर्य, अग्नि और सुवर्ण के समान प्रकाश वाले लोग, पुरुषार्थी मनुष्य के अधिकार में रहें और वह यथायोग्य शासन करके सर्वोत्तम सुख भोगें ॥२॥

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥३॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विज्ञानयुक्त, परमेश्वर ! तूने (येन उत्तमेन ब्रह्मणा) जिस उत्तम वेद विज्ञान से (इन्द्राय) पुरुषार्थी जीव के लिये (पयांसि) दुग्धादि रसों को (समभरः) भर रक्खा है। (तेन) उसी से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (इह) यहां पर (इमम्) इसे [मुझे] (वर्धय) वृद्धि युक्त कर, (सजातानाम्) तुल्य जन्म वाले पुरुषों में (श्रैष्ठ्ये) श्रेष्ठ पद पर (एनम्) इसको [मुझको] (आ) यथा विधि (धेहि) स्थापित कर ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर पुरुषार्थियों को सदा पुष्ट और आनन्दित करता है। मनुष्य को प्रयत्न करके अपनी श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिये ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अग्नि' शब्द ईश्वरवाची है, इसमें यह प्रमाण है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ मनु० १२ । १२३ ॥

इसको कोई अग्नि, दूसरे मनु, और प्रजापति, कोई इन्द्र, दूसरे प्राण और नित्य ब्रह्म कहते हैं ॥

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (एषाम्) इनके [अपने लोगों के] दिये (यज्ञम्) सत्कार, (उत) और (वर्चः) तेज, (रायः) धन की (पोषम्) बढ़ती (उत) और (चित्तानि) मानसिक बलों को (अहम्) मैं (आ ददे) ग्रहण करता हूं । (सपत्नाः) वैरी लोग (अस्मत्) हमसे (अधरे) नीचे (भवन्तु) होवें, (उत्तमम्) अति ऊंचे (नाकम्) सुख में (एनम्) इसको [मुझे] (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् नीति निपुण पुरुष अपने पक्ष वालों के किये हुए उपकार, और सत्कार को सधन्यवाद स्वीकार करे और विपक्षियों को नीचा दिखा कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ावे ॥४॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध मन्त्र २ का उत्तरार्ध है ॥

सूक्तम् १० ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । वरुणो देवता । १, २ त्रिष्टुप्, ३, ४ अनुष्टुप् ॥
वरुणस्य क्रोधः प्रचण्डः—वरुण का क्रोध प्रचण्ड है ॥

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदानो उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (देवानाम्) विजयी महात्माओं का (असुरः) प्राण-दाता [वा प्रज्ञावान् वा प्राणवान्] परमेश्वर (वि राजति) बड़ा राजा है, (वरुणस्य) वरुण अर्थात् अति श्रेष्ठ (राज्ञः) राजा परमेश्वर की (वशा) इच्छा (सत्या) सत्य (हि) ही है । (ततः) इसलिये (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (परि) सर्वथा (शाशदानः) तीक्ष्ण होता हुआ मैं (उग्रस्य) प्रचंड परमेश्वर के (मन्योः) क्रोध से (इमम्) इसको [अपने को] (उत् नयामि) छुड़ाता हूं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के क्रोध से डर कर मनुष्य पाप न करें और सदा उसे प्रसन्न रक्खें ॥१॥

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युऽग्र निचिकेषिं द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्रसुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

भाषार्थः—(वरुण) हे अतिश्रेष्ठ (राजन्) बड़े ऐश्वर्य वाले राजा ! (ते) तुझ (मन्यवे) क्रोधरूप को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (उग्र) हे प्रचंड ! तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (हि) ही (द्रुग्धम्) द्रोह को (नि-चिकेषि) सदा जानता है । [मैं] (सहस्रम्) सहस्र (अन्यान्) दूसरे जीवों को (साकम्) एक साथ (प्रसुवामि) आगे बढ़ाता हूँ, (ते) तेरा (अयम्) यह [सेवक] (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

भावार्थः—सर्वज्ञ परमेश्वर के महाक्रोध से भय मान कर मनुष्य पातकों से बचें और सबके साथ उपकार करके जीवन भर आनन्द भोगें ॥२॥

यदुवक्थानृतं जिह्वया बृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे आत्मा !] (यत्) जो (बहु) बहुत सा (अनृतम्) असत्य और (बृजिनम्) पाप (जिह्वया) जिह्वा से (उवक्थ) तू बोला है । (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (सत्यधर्मणः) सच्चे धर्मात्मा वा न्यायी, (वरुणात्) सबमें श्रेष्ठ परमेश्वर (राज्ञः) राजा से (मुञ्चामि) छुड़ाता हूँ ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य मिथ्यावादी दुराचारी भी होकर उस प्रभु की शरण लेते और सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे लोग उस जगदीश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार दुःख पाश से छूटकर आनन्द भोगते हैं ॥३॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चापः चिकीहि नः ॥४॥

भाषार्थः [हे आत्मा !] (महतः) विशाल (अर्णवात्) समुद्र के समान गंभीर (वैश्वानरात्) सब नरों के हितकारक वा सबके नायक परमेश्वर से (त्वा) तुझको (परि मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं । (उग्र) हे प्रचण्ड स्वभाव [परमेश्वर !] (सजातान्) [मेरे] तुल्य जन्म वालों को (इह) इस विषय में (आ वद) उपदेश कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(च) और (नः) हमारे (ब्रह्म) वैदिक ज्ञान को (अप) आनन्द से (चिकीहि) तू जान ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य पापकर्म छोड़ने से सर्व हितकारी परमेश्वर के कोप से मुक्त होते हैं। परमात्मा सब प्राणियों को उपदेश करता और सब की सत्य भक्ति को स्वीकार कर यथार्थ आनन्द देता है ॥४॥

सूक्तम् ११ ॥

१—६ ॥ अथर्वा ऋषिः। पूषा देवता। १ विराट् स्थाना त्रिष्टुप् ६+१०+६+११=३६, २, ३ अनुष्टुप् ८×४, ४ ६ पंक्तिः ८×५ ॥

सृष्टिविद्यावर्णनम्—सृष्टि विद्या का वर्णन ॥

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥१॥

भाषार्थः—(पूषन्) हे सर्वपोषक, परमेश्वर! (ते) तेरे लिये (वषट्) यह आहुति [भक्ति] है। (अस्मिन्) इस समय पर (सूतवै) सन्तान के जन्म को (अर्यमा) न्यायकारी, (होता) दाता, (वेधाः) सबका रचने वाला ईश्वर (कृणोतु) करे। (ऋतप्रजाता) पूरे गर्भवाली (नारी) नर का हित करने हारी स्त्री (सिस्रताम्) सावधान रहे, (पर्वाणि) इसके सब अङ्ग (उ) भी (सूतवै) सन्तान उत्पन्न करने के लिये (विजिहाताम्) कोमल हो जावें ॥१॥

भावार्थः—प्रसव समय होने पर पति आदि विद्वान् लोग परमेश्वर की भक्ति के साथ हवनादि कर्म प्रसूता स्त्री की प्रसन्नता के लिये करें और वह स्त्री सावधान होकर श्वास प्रश्वास आदि द्वारा अपने अंगों को कोमल रक्खे जिससे बालक सुखपूर्वक उत्पन्न होवे ॥१॥

टिप्पणी—इस सूक्त में माता से सन्तान उत्पन्न होने का उदाहरण देकर बताया गया है कि मनुष्य सृष्टि विद्या के ज्ञान से ईश्वर की अनन्त महिमा का विचार करके परस्पर उपकारी बनें ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥२॥

भाषार्थः—(दिवः) आकाश की (चतस्रः) चारों (उत) और (भूम्याः) भूमि की (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं ने और (देवाः) दिव्य गुण वाले [अग्नि वायु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि] देवताओं ने (गर्भम्) गर्भ को (समैरयन्) संगत किया है, वे सब (तम्) उस गर्भ को (सूतवे) उत्पन्न होने के लिये (व्यूर्णुवन्तु) प्रस्तुत करें ॥२॥

भावार्थः—अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के यथार्थ संयोग से ईश्वरीय नियम के अनुसार यह गर्भ स्थिर हुआ है, मनुष्य उन तत्त्वों की अनुकूलता को, माता और गर्भ में स्थिर रखने के लिये सदा प्रयत्न करते रहें जिससे बालक बलवान् और नीरोग होकर पूरे समय पर उत्पन्न होवे ॥२॥

टिप्पणी—देव वा देवता का अर्थ दिव्य वा अच्छे गुण वाला है। यजुर्वेद १४। २० में यह देवता कहे हैं—

अग्निर्देवता। वातो देवता। सूर्यो देवता। चन्द्रमा देवता।
वसवो देवता। रुद्रो देवता। आदित्या देवता। मरुतो देवता।
विश्वे देवा देवता। बृहस्पतिर्देवता। इन्द्रो देवता। वरुणो देवता॥

अग्नि १, वायु २, सूर्य ३, चन्द्रमा ४, सबके बसाने वाले अन्नादि पदार्थ ५, दुःख दूर करने वाले जीव वा पदार्थ ६, प्रकाश करने वाले पदार्थ अथवा अदिति, विद्या वा पृथिवी के पुत्र के समान सेवा करने वाले पुरुष ७, दुष्टों के मारने वाले शूरवीर पुरुष ८, सब अच्छे गुण वाले विद्वान् ९, बड़े वेद वचनों वा ब्रह्माण्डों का रक्षक परमेश्वर १०, ऐश्वर्य वा धन ११, और जल १२, यह सब देवता उत्तम गुण वाले हैं ॥

सूषा व्यू ऽ र्णोतु वि योनिं हापयामसि।
अथयां सूषणे त्वमव त्वं विष्कले सृज ॥३॥

भाषार्थः—(सूषा) सन्तान उत्पन्न करने वाली माता (व्यूर्णोतु) अङ्गों को कोमल करे (योनिम्) प्रसूतिका गृह को (विहापयामसि) हम प्रस्तुत करते हैं। (सूषणे) हे जन्म देने हारी माता! (त्वम्) तू (अथय) प्रसन्न हो। (विष्कले) हे वीर स्त्री! (त्वम्) तू (अव सृज) [बालक को] उत्पन्न कर ॥३॥

भावार्थः—गर्भ के पूरे दिनों में गर्भिणी की शारीरिक और मानसिक अवस्था को विशेष ध्यान से स्वस्थ रखें। माता के प्रसन्न और सुखी रहने से बालक भी प्रसन्न और सुखी होता है। प्रसूतिका गृह भी पहिले से देश, काल विचार कर प्रस्तुत रक्खें कि प्रसूता स्त्री और बालक भले प्रकार स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रहें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेवं मांसे न पीवंसि नेवं मज्जस्वाहंतम् ।

अवैंतु पृश्नि शेवंलं शुनें जरायव्यत्तवेऽवं जरायुं पद्यताम् ॥४॥

भाषार्थः--[वह जरायु] (नेव) न तो (मांसे) मांस में (न) न (पीवंसि) शरीर की मुटाई में (नेव) और न (मज्जसु) हड्डियों की मींग में (आहतम्) बंधी हुई है। (पृश्नि) पतली (शेवलम्) सेवार घास के समान (जरायु) जेरी वा झिल्ली (शुने) कुत्ते के लिये (अत्तवे) खाने को (अव) नीचे (एतु) आवे, (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥४॥

भावार्थः—जरायु एक झिल्ली होती है जिसे जेली वा जेरी कहते हैं और जिसमें बालक गर्भ के भीतर लिपटा रहता है, कुछ उसमें से बालक के साथ निकल आती है और कुछ पीछे। यह जरायु बालक उत्पन्न होने पर नाभि आदि के बन्धन से छुट जाती है और सार रहित होकर माता के उदर में ऐसे फिरती है जैसे सेवार नामक घास जलाशय में। शरीर में उसके रह जाने से रोग हो जाता है। इससे उस जरायु का उदर से निकल जाना आवश्यक है जिससे प्रसूता नीरोग होकर सुखी रहे ॥४॥

वि तें भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिंके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायुं पद्यताम् ॥५॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (मेहनम्) गर्भ मार्ग को (वि) विशेष करके और (योनिम्) गर्भाशय को (वि) विशेष करके और (गवीनिके) पार्श्वस्थ दोनों नाड़ियों को (वि) विशेष करके (भिनद्मि) [मलसे] अलग करती हूँ (च) और (मातरम्) माता को (च) और (कुमारम्) क्रीड़ा करने वाले (पुत्रम्) पुत्र को (जरायुणा) जरायु से (वि वि) अलग अलग [करती हूं], (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में धात्री [धायी] अपने कर्म का वर्णन करके प्रसूता को उत्साहित करती है, अर्थात् धायी बड़ी सावधानी से प्रसव समय प्रसूता के अंगों को आवश्यकतानुसार कोमल मर्दन करे और उत्पन्न होने पर माता और सन्तान की यथायोग्य शुद्धि करके सुधि रक्खे और ऐसा यत्न करे कि जरायु अपने आप गिर जावे जिससे दोनों माता और सन्तान सुखी रहें ॥५॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतंन्ति पक्षिणः ।

एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुंणा पतावं जरायुं पद्यताम् ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यथा) जैसे (वातः) पवन और (यथा) जैसे (मनः) मन और (यथा) जैसे (पक्षिणः) पक्षी (पतन्ति) चलते हैं। (एव) वैसे ही (दशमास्य) हे दश महीने वाले [गर्भ के बालक!] (त्वम्) तू (जरायुणा साकम्) जरायु के साथ (पत) नीचे आ, (जरायु) जरायु (अव) नीचे (पद्यताम्) गिर जावे ॥६॥

भावार्थः—(दशमास्य) दशवें अथवा ग्यारहव महीने में बालक माता के गर्भ में बहुत शीघ्र चेष्टा करता है तब वह उत्पन्न होता है और जरायु वा जेली कुछ उसके साथ और कुछ उसके पीछे निकलती है ॥६॥

ऋग्वेद में यह मन्त्र इस प्रकार है—

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ऋ० ५ । ७८ । ८ ॥

जैसे वायु, जैसे वृक्ष और जैसे समुद्र हिलता है, ऐसे ही तू हे दस महीने वाले [गर्भ के बालक!] जरायु के साथ नीचे आ।

शब्दकल्पद्रुम कोश में लिखा है—

अष्टमे मासि याते च अग्नियोगः प्रवर्त्तते ।
मासे तु नवमे प्राप्ते जायते तस्य चेष्टितम् ॥१॥
जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ।
दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमासि वा ॥२॥

आठवां महीना आने पर अग्नि योग होता है और नवम महीने में उस [गर्भ] में चेष्टा होती है ॥१॥ गर्भ में वास करने के कारण उसको वैराग्य (उच्चाटन) होता है, तब दसवें अथवा ग्यारहवें महीने में वह उत्पन्न होता है ॥२॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः

सूक्तम् १२ ॥

१-४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । वृषा देवता । १, २ ईश्वरगुणाः, ३, ४, रोगनिवृत्तिः । १-३ त्रिष्टुप् ११×४, ४ अनुष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१, २ ईश्वर गुणः, ३, ४ रोगनिवृत्तिः—१, २ ईश्वर के गुण और ३, ४ रोग निवृत्ति का उपदेश ॥

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या । स नो मृडाति तन्वऽ ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥

भाषार्थः—(जरायुजः) झिल्ली से [जरायुरूप प्रकृति से] उत्पन्न करने वाला, (प्रथमः) पहले से वर्त्तमान, (उस्रियः) प्रकाशवान् [हिरण्यगर्भनाम], (वातभ्रजाः) पवन के साथ पाकशक्ति वा तेज देने वाला, (वृषा) मेघरूप परमेश्वर (स्तनयन्) गरजता हुआ (वृष्ट्या) बरसा के साथ (एति) चलता रहता है । (सः) वह (ऋजुगः) सरलगामी (रुजन्) [दोषों को] मिटाता हुआ, (नः) हमारे (तन्वे) शरीर के लिये (मृडाति) सुख देवे, (यः) जिस (एकम्) अकेले (ओजः) सामर्थ्य ने (त्रेधा) तीन प्रकार से (विचक्रमे) सब ओर को पद बढ़ाया था ॥१॥

भावार्थः—जैसे माता के गर्भ से जरायु में लिपटा हुआ बालक उत्पन्न होता है वैसे ही 'उस्रियः' प्रकाशवान् हिरण्यगर्भ और मेघरूप परमेश्वर 'वातभ्रजा' सृष्टि में प्राण डालकर पाचन शक्ति और तेज देता हुआ सब संसार को प्रलय के पीछे प्रकृति, स्वभाव वा सामर्थ्य से उत्पन्न करता है, वही त्रिकालज्ञ और त्रिलोकीनाथ आदि कारण जगदीश्वर हम सदा आनन्द देवे ॥१॥

यजुर्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥य० १३।४॥

'हिरण्यगर्भ' तेजों का आधार परमेश्वर पहिले ही पहिले नियम पूर्वक वर्तमान था, वह संसार का प्रसिद्ध एक स्वामी था । उसने इस पृथिवी और प्रकाश को धारण किया था, हम सब उस प्रकाशमय प्रजापति परमेश्वर की भक्ति से सेवा किया करें ॥

और भी देखो—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ ऋ० १ । २२ । १७ ॥

(विष्णु) व्यापक परमेश्वर ने इस [जगत्] में अनेक अनेक प्रकार से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पग को बढ़ाया, उसने अपने विचारने योग्य पद को तीन प्रकार से परमाणुओं से युक्त [संसार] में जमाया ॥

सायणभाष्य में (वातभ्रजाः) के स्थान में (वातव्रजाः) शब्द है, और अर्थ "वायु समान शीघ्रगामी" है ॥

अङ्गे॑ अङ्गे शो॒चिषा॑ शिश्रिया॒णं न॑म॒स्यन्त॑स्त्वा ह॒विषा॑ विधेम ।
अ॒ङ्कान्त्स॑म॒ङ्कान् ह॒विषा॑ विधेम॒ यो अग्र॑भी॒त् पर्वा॑स्या॒ ग्रभी॑ता ॥२॥

भाषार्थः—(शोचिषा) अपने प्रकाश से (अङ्गे-अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में (शिश्रियाणम्) ठहरे हुए (त्वा) तुझको (नमस्यन्तः) नमस्कार करते हुए हम (हविषा) भक्ति से (विधेम) सेवा करते रहें। [उसके] (अङ्कान्) पृथक् पृथक् चिह्नों को और (समङ्कान्) मिले हुए चिह्नों को (हविषा) भक्ति से (विधेम) हम आराधें, (यः) जिस (ग्रभीता) ग्रहण करने हारे परमेश्वर ने (अस्य) इस [सेवक वा जगत्] के (पर्व) अवयव अवयव को (अग्रभीत्) ग्रहण किया है ॥२॥

भावार्थः—वह (वृषा—म० १) परमात्मा हमारे और सब व्यष्टि और समष्टि रूप जगत् के रोम रोम में परिपूर्ण है उस प्रकाशस्वरूप के गुणों को यथावत् जानकर हम लोग उस पर पूरी श्रद्धा से आत्म समर्पण करें। वह हमारे शरीर और आत्मा को बल देकर सहाय और आनन्द देता है ॥२॥

मु॒ञ्च शी॑र्ष॒क्त्या उ॒त का॒स ए॑नं॒ परु॑ष्परुरावि॒वेशा॒ यो अ॑स्य ।
यो अ॑भ्र॒जा वा॑त॒जा यश्च॒ शुष्मो॒ वन॒स्पती॑न्त्सचतां॒ पर्व॑तांश्च ॥३॥

भाषार्थः—(एनम्) इस पुरुष को (शीर्षक्त्याः) शिर की पीड़ा से (उत) और [उस खांसी से] (मुञ्च) छुड़ा (यः कासः) जिस खांसी ने (अस्य) इस पुरुष के (परुःपरुः) जोड़ जोड़ में (आविवेश) घर कर लिया है। (यः) जो खांसी (अभ्रजाः) मेघ से उत्पन्न, (वातजाः) वायु से उत्पन्न (च) और (यः) जो (शुष्मः) सूखी [होवे और जो] (वनस्पतीन्) वृक्षों से (च) और (पर्वतान्) पहाड़ों से (सचताम्) संबन्ध वाली होवे ॥३॥

भावार्थः—खांसी सब रोगों की माता है जैसा कि प्रसिद्ध है "लड़ाई का घर हांसी और रोग का घर खांसी"। जैसे सद्वैद्य मन्त्र में कहे अनुसार मस्तक की पीड़ा और खांसी आदि बाहिरी और भीतरी रोगों का निदान जानकर रोगी को स्वस्थ करता है इसी प्रकार परमेश्वर वेद ज्ञान से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य को दोषों से छुड़ा कर और ब्रह्म ज्ञान देकर अत्यन्त सुखी करता है। इसी प्रकार राजप्रबन्ध और गृहप्रबन्ध आदि व्यवहार में विचारना चाहिये ॥३॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ॥४॥

भाषार्थः—(मे) मेरे (परस्मै) ऊपर के (गात्राय) शरीर के लिये (शम्) सुख और (मे) मेरे (अवराय) नीचे के [शरीर के] लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे। (मे) मेरे (चतुर्भ्यः) चारों (अंगेभ्यः) अङ्गों के लिये (शम्) सुख और (मम) मेरे (तन्वे) सब शरीर के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—चारों अंग दो हाथ और दो पद हैं। मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की प्रार्थना पूर्वक अपने सब अमूल्य शरीर को प्रयत्न से सर्वथा स्वस्थ रक्खे और मानसिक बल बढ़ा कर संसार में उपकारी हो और सदा सुख भोगे ॥४॥

सूक्तम् १३ ॥

१—४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। १, २ अनुष्टुप्, ३, ४ जगती। १२×४ ॥

आत्मरक्षोपदेशः—आत्मरक्षा के लिये उपदेश ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] (ते) तुझ (विद्युते) कौंधा लेती हुई, बिजुली समान को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (ते) तुझ (स्तनयित्नवे) गड़गड़ाते हुए, बादल समान को (नमः) नमस्कार होवे। (ते) तुझ (अश्मने) पाषाण समान को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (येन) जिस [पत्थर] से (दूडाशे) दुःखदायी पुरुष को (अस्यसि) तू डा देता है ॥१॥

भावार्थः—न्यायकारी परमात्मा दुःखदायी अधर्मी पापियों को आधिदैविक आदि दंड देकर असह्य विपत्तियों में डालता है, इसलिये सब मनुष्य उसके कोप से डर कर उसकी आज्ञा का पालन करें और सदा आनन्द भोगें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥

भाषार्थः—हे (प्रवतः) अपने भक्त के (नपात्) न गिराने हारे ! (ते) तुझको (नमः) नमस्कार है, (यतः) क्योंकि तू [दुष्टों पर] (तपः) संताप को (समूहसि) संयुक्त करता है । (नः) हमें (तनूभ्यः) हमारे शरीरों के लिये (मृडय) सुख दे और (तोकेभ्यः) हमारे सन्तानों के लिये (मयः) सुख (कृधि) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर भक्तों को आनन्द और पापियों को कष्ट देता है । सब मनुष्य नित्य धर्म में प्रवृत्त रहें और संसार भर में सुख की वृद्धि करें ॥२॥

प्रवतो नपान् नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

भाषार्थः—हे (प्रवतः) अपने भक्त के (नपात्) न गिराने वाले ! (तुभ्यम्) तुझको (एव) अवश्य (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (ते) तुझ (हेतये) वज्र समान को (च) और (तपुषे) तपाने वाले तोप आदि अस्त्र समान को (नमः) नमस्कार (कृण्मः) हम करते हैं । (यत्) क्योंकि (ते) तेरे (परमम्) बड़े ऊंचे (धाम) धाम [निवास] को (गुहा=गुहायाम्) गुफा में [अपने हृदय और प्रत्येक गम्य स्थान में] (विद्म) हम जानते हैं । (समुद्रे अन्तः) आकाश के बीच में (नाभिः) बन्ध में रखने वाली नाभि के समान तू (निहिता) ठहरा हुआ (असि) है ॥३॥

भावार्थः—उस भक्त रक्षक, दुष्ट नाशक परमात्मा का (परमधाम) महत्व सबके हृदयों में और सब अगम्य स्थानों में वर्तमान है । जैसे (नाभि) सब नाड़ियों को बन्धन में रखकर शरीर के भार को समान तोल कर रखती है, वैसे ही परमेश्वर (समुद्र) अन्तरिक्ष वा आकाश में स्थित मनुष्य आदि प्राणियों और सब पृथिवी, सूर्य्य आदि लोकों का धारण करने वाला केन्द्र है । विद्वान् लोग उसको माथा टेकते और उसकी महिमा को जानकर संसार में उन्नति करते हैं ॥३॥

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

भाषार्थः—(विश्वे) सब (देवाः) विद्वानों ने (याम् त्वा) जिस तुझ [परमे-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वर] को (अप्रणाय) नाश के लिये (धृष्णुम्) बहुत दृढ़ (इषुम्) शक्ति अर्थात् बरछी (कृण्वाना) बनाकर (असृजन्त) माना है। (सा) सो तू (विदथे) यज्ञ में (गृणाना) उपदेश करती हुई (नः) हमको (मृड) सुख दे, (देवि) हे देवि [दिव्य बरछी] (तस्यै ते) उस तेरे लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर के क्रोध को सब संसार के दोषों के नाश के लिये बरछी रूप समझ कर सदा सुधार और उपकार करते हैं तब संसार में प्रतिष्ठा और मान पाकर सुख भोगते और परमात्मा के क्रोध का धन्यवाद देते हैं ॥४॥

यजुर्वेद में लिखा है—

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥य० १६। ३॥

हे वेद द्वारा शान्ति फैलाने वाले ! जिस बरछी वा बाण को चलाने के लिये अपने हाथों में तू धारण करता है। हे वेद द्वारा रक्षा करने वाले ! उसको मंगलकारी कर, पुरुषार्थी लोगों को तू मत मार ॥

सूक्तम् १४ ॥

१—४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । वधूवरौ देवते । अनुष्टुप् ८×४ ॥

विवाहसंस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१॥

भावार्थः—(अस्याः) इस [वधू] से (भगम्) [अपने] ऐश्वर्य को और (वर्चः) तेज को (आ अदिषि) मैंने माना है, (इव) जैसे (वृक्षात् अधि) वृक्ष से (स्रजम्) फूलों की माला को (महाबुध्नः) विशाल जड़वाले (पर्वतः इव) पर्वत के समान [यह वधू] (पितृषु) [मेरे] माता पिता आदि बान्धवों में (ज्योक्) बहुत काल तक (आस्ताम्) रहे ॥१॥

भावार्थः—यह वर का वचन है। विद्वान् पुरुष खोज कर अपने समान गुणवती स्त्री से विवाह करके संसार में ऐश्वर्य और शोभा पाता है जैसे वृक्ष के सुन्दर फूलों से शोभा होती है। वधू अपने सास ससुर आदि माननीयों की सेवा और शिक्षा से दृढ़चित्त होकर घर के कामों का सुप्रबन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके गृहलक्ष्मी की पक्की नेत्र जमावे और पति पुत्र आदि कुटुम्बियों में बड़ी आयु भोग कर आनन्द करे ॥१॥

मन्त्राः २—४ । वधूपक्षोक्तिः ॥

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥

भाषार्थः—(यम) हे नियम में चलाने वाले, वर (राजन्) राजा ! (एषा) यह (कन्या) कामना योग्य कन्या (ते) तेरी (वधूः) वधू (नि) नियम से (धूयताम्) व्यवहार करे । (सा) वह (मातुः) [तेरी] माता के (अथो) और भी (पितुः) पिता के (अथो) और (भ्रातुः) भ्राता के साथ (गृहे) घर में (बध्यताम्) नियम से बंधी रहे ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र २—४ वधू पक्ष के वचन हैं । वधू के माता पिता आदि वर से कहें कि यह सुशिक्षिता गुणवती कन्या आप को सौंपी जाती है यह आप के माता, पिता और भ्राता आदि सब कुटुम्बियों में रहकर अपने सुप्रबन्ध से सबको प्रसन्न रक्खे और सुख भोगे ॥२॥

मनु महाराज ने कहा है—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥मनु० २।२४०॥

स्तुति योग्य स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धता, और मीठी बोली, और अनेक प्रकार की हस्त क्रियायें सबसे यत्नपूर्वक लेनी चाहियें ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि ॥मनु० ५।१४७॥

चाहे स्त्री बालक वा युवती वा बूढ़ी हो, वह स्वतन्त्रता से कोई काम घरों में भी न करे ॥

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आशीर्ष्णः समोप्यात् ॥३॥

भाषार्थः—(राजन्) हे वर राजा (एषा) यह कन्या (ते) तेरे (कुलपाः) कुल की रक्षा करने हारी है, (ताम्) उसको (उ) ही (ते) तेरे लिये (परि) आदर से (दद्मसि) हम दान करते हैं । यह (ज्योक्) बहुत काल तक (पितृषु) तेरे माता पिता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकों में (आसाते) निवास करे, और (आ शीर्ष्णः) अपने मस्तक तक [जीवन पर्यन्त वा बुद्धि की पहुंच तक] (समोप्यात्) ठीक ठीक बढ़ती का बीज बोवे ॥३॥

भावार्थः—फिर वधू पक्ष वाले माता पिता आदि इस मन्त्र से जामाता की विनती करते और स्त्री धर्म का उपदेश करते हुए कन्यादान करके गृहाश्रम में प्रविष्ट कराते हैं ॥३॥

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तः कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

भाषार्थः—(असितस्य) जो तू ब धन रहित, (कश्यपस्य) [सोम] रस पीने हारा (च) और (गयस्य) कीर्तन के योग्य है उस (ते) तेरे (ब्रह्मणा) वेदज्ञान के कारण (ते) तेरे लिये (भगम्) ऐश्वर्य को (अपि) अवश्य (नह्यामि) मैं बांधता हूं। (इव) जैसे (जामयः) कुल स्त्रियां [वा बहिनें] (अन्तःकोशम्) मञ्जूषा वा पिटारे को [बांधती] हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र के अनुसार वधू पक्ष वाले पुरुष और स्त्रियाँ विनती करके श्रेष्ठ वर और कन्या को धन, भूषण, और वस्त्र आदि से सत्कार के साथ विदा करें ॥४॥

सूक्तम् १५ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । १ पूर्वार्धोऽनुष्टुप्, द्वितीयार्धस्त्रिष्टुप्, २ पूर्वार्धो जगती द्वितीयोऽनुष्टुप्, ३, ४ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश ॥

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥

भाषार्थः—(सिन्धवः) सब समुद्र (सम् सम्) अत्यन्त अनुकूल (स्रवन्तु) बहें, (वाताः) विविध प्रकार के पवन और (पतत्रिणः) पक्षी (सम् सम्) बहुत अनुकूल [बहें] (प्रदिवः) बड़े तेजस्वी विद्वान् लोग (इमम्) इस (मे) मेरे (यज्ञम्) सत्कार को (जुषन्ताम्) स्वीकार करें, (संस्राव्येण) बहुत आर्द्रभाव [कोमलता] से भरी हुई (हविषा) भक्ति के साथ [उनको] (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि नौका आदि से समुद्र यात्रा को, विमान आदि से वायुमण्डल में जाने आने के मार्गों को, और यथायोग्य व्यवहार से पक्षी आदि सब जीवों को अनुकूल रक्खें, और विज्ञानपूर्वक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब पदार्थों से उपकार लेवें। और विद्वानों में पूर्ण प्रीति और श्रद्धा रक्खें जिससे वह भी उत्साह पूर्वक बर्ताव करें ॥१॥

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥२॥

भाषार्थः—(संस्रावणाः) हे बहुत आर्द्रभाव वाले [बड़े कोमल स्वभाव वाले] (गिरः) स्तुति योग्य विद्वानो ! (इह) यहां पर (इह) यहां पर (एव) ही (मे) मेरे (हवम्) आवाहन को (आ यात) तुम पहुंचो, (उत) और (इमम्) इस पुरुष को (वर्धयत) बढ़ाओ। (यः सर्वः पशुः) जो प्रत्येक जीव है [वह] (इह) यहां (एतु) आवे और (या रयिः) जो लक्ष्मी है [वह भी सब] (अस्मिन्) इस [पुरुष] में (तिष्ठतु) ठहरी रहे ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग विद्या के बल से संसार की उन्नति करते हैं, इससे मनुष्य विद्वानों का सत्संग पाकर सदा अपनी वृद्धि करें और उपकारी जीवों और धन का उपार्जन पूर्ण शक्ति से करते रहें ॥२॥

टिप्पणी पशु शब्द जीव वाची है, यथा अथर्ववेद में आया है—

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ॥ अ० २।३४।१॥

जो (पशुपतिः) जीवों का स्वामी चौपाये और जो दोपाये (पशूनाम्) जीवों का (ईशे=ईष्टे) राजा है ॥१॥

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(नदीनाम्) नाद करनेवाली नदियों के (ये) जो (अक्षिताः) अक्षय (उत्सासः) स्रोते (सदम्) सर्वदा (संस्रवन्ति) मिलकर बहते हैं। (तेभिः सर्वैः) उन सब (संस्रावैः) जल प्रवाहों के साथ (मे) अपने (धनम्) धन को (सम्) उत्तम रीति से (स्रावयामसि) हम व्यय करें ॥३॥

भावार्थः—जैसे पर्वतों पर जल के सोते मिलने से वेगवती और उपकारिणी नदियें बनती हैं जो ग्रीष्म ऋतु में भी नहीं सूखतीं, इसी प्रकार हम सब मिलकर विज्ञान और उत्साह पूर्वक तडित्, अग्नि, वायु, सूर्य, जल, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेकर अक्षय धन बढ़ावें। और उसे उत्तम कर्मों में व्यय करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

भाषार्थः—(सर्पिषः) घृत की (च) और (क्षीरस्य) दूध की (च) और (उदकस्य) जल की (ये) जो धारायें (संस्रवन्ति) मिलकर बह चलती हैं। (तैः सर्वैः) उन सब (संस्रावैः) धाराओं के साथ (मे) अपने (धनम्) धन को (सम्) उत्तम रीति से (स्रावयामसि) हम व्यय करें ॥४॥

भावार्थः—जैसे घी, दूध और जल की बूंद बूंद मिलकर धारें बंध जाती और उपकारी होती हैं इसी प्रकार हम लोग उद्योग करके थोड़ा थोड़ा संचय करने से बहुत सा विद्या धन और सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके उत्तम कामों में व्यय करें ॥४॥

सूक्तम् १६ ॥

१-४ ॥ चातन ऋषिः । १ अग्निः, २ वरुणाग्नीन्द्राः, ३-४ सीसं देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

विघ्ननाशनोपदेशः—विघ्न के नाश का उपदेश ॥

ये मावास्यां ३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१॥

भाषार्थः—(ये) वे जो (अत्रिणः) उदर पोषक [खाऊ लोग] (अमावास्याम्) अमावसी में (रात्रिम्) विश्राम देने हारी रात्रि को (व्राजम्) गोशालाओं पर [अथवा समूह के समूह] (उदस्थुः) चढ़ आये हैं। (सः) वह (तुरीयः) वेगवान् (यातुहा) राक्षसों का नाश करने हारा (अग्निः) अग्नि [अग्नि सदृश तेजस्वी राजा] (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (अधि) [उन पर] अधिकार जमा कर (ब्रवत्) घोषणा करे ॥१॥

भावार्थः—जो दुष्ट जन अन्धेरी रातों में गोशाला आदि पर धावा करके प्रजा को सतावें तो प्रतापी राजा ऐसे राक्षसों से रक्षा करके राज्य भर में शान्ति फैलावे ॥१॥

सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वरुणः) चाहने योग्य, समुद्रादि का जल (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति] के लिये (अधि) अधिकार पूर्वक (आह) कहता है, (अग्निः) व्यापक, सूर्य, बिजुली आदि अग्नि (सीसाय) बन्धन काटने वाले सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] के लिये (उप) समीप रह कर (अवति) रक्षा करता है। (इन्द्रः) महा प्रतापी परमेश्वर ने (सीसम्) बन्धन काटने वाला सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] (मे) मुझको (प्र—अयच्छत्) दिया है, (अंग) हे भाई (तत्) वह सामर्थ्य (यातुचातनम्) पीड़ा-नाशक है ॥२॥

भावार्थः—जल, अग्नि, वायु, आदि पदार्थ ईश्वर की आज्ञा से परस्पर मिलकर हमारे लिये बाहिर और भीतर से उपकारी होते हैं, वह ब्रह्मज्ञान प्रत्येक मनुष्य आदि प्राणी को परमेश्वर ने दिया है उस ज्ञान को साक्षात् करके प्राणी दुःखों से छूट कर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक आनन्द पाते हैं ॥१॥

टिप्पणी—'सीस' शब्द का धात्वर्थ--षिञ् बांधना—क्विप् × षो नाश करना—कप्रत्यय बन्धन का काटने वाला है। लोक में वस्तु विशेष, सीसा को कहते हैं। सायण भाष्य में 'सीस' का अर्थ "नदी के फेन आदि रूप द्रव्य" और ग्रिफ्फिथ साहिब ने lead सीसा धातुविशेष किया है ॥

इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३॥

भाषार्थः—(इदम्) यह [सामर्थ्य] (विष्कन्धम्) विघ्न को (सहते) जीतता है और (इदम्) यह (अत्त्रिणः) उदर पोषक खाउओं को (बाधते) हटाता है। (अनेन) इससे (विश्वा = विश्वानि) उन सब दुःखों को (ससहे) मैं जीतता हूं (या = यानि) जो (पिशाच्याः) मांस खाने हारी [कुवासना] से (जातानि) उत्पन्न हैं ॥३॥

भावार्थः—दूरदर्शी पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम ज्ञान के सामर्थ्य से अपने क्लेशों के कारण को जानते और कुवासनाओं के कुसंस्कारों को अपने हृदय में नहीं जमने देते ॥३॥

भगवान् पतञ्जलि जी ने कहा है—

हेयं दुःखमनागतम् ॥ यो० पा० २ । १६ ॥

न आया हुआ [परन्तु आने वाला] दुःख हटाना चाहिये ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

भाषार्थः—(यदि) जो (नः) हमारी (गाम्) गाय को, (यदि) जो (अश्वम्) घोड़े को और (यदि) जो (पूरुषम्) पुरुष को (हंसि) तू मारता है (तम् त्वा) उस तुझको (सीसेन) बन्धन काटने हारे सामर्थ्य [ब्रह्मज्ञान] से (विध्यामः) हम वेधते हैं (यथा) जिससे तू (नः) हमारे (अवीरहा असः) वीरों का नाश करनेहारा न होवे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य वर्तमान क्लेशों को देखकर आने वाले क्लेशों को यत्नपूर्वक रोककर आनन्द भोगें ॥४॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १७ ॥

१–४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । हिरा देवता । १–३ अनुष्टुप् ४ गायत्री छन्दः ॥

नाडीछेदनदृष्टान्तेन कुवासनानाशः—नाडीछेदन [फस्द खोलने] के दृष्टान्त से दुर्वासनाओं के नाश का उपदेश ॥

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥१॥

भाषार्थः—(अमूः) वे (याः) जो (योषितः) सेवायोग्य वा सेवा करने हारी [अथवा स्त्रियों के समान हितकारी] (लोहितवाससः) लोहू में ढकी हुई (हिराः) नाड़ियां (यन्ति) चलती हैं, वे, (अभ्रातरः) बिना भाइयों की (जामयः इव) बहिनों के समान, (हतवर्चसः) निस्तेज होकर (तिष्ठन्तु) ठहर जायें ॥१॥

भावार्थः—इस सूक्त में सिरा छेदन, अर्थात् नाड़ी [फस्द] खोलने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन है। मन्त्र का अभिप्राय यह है कि नाड़ियां रुधिर संचार का मार्ग होने से शरीर की (योषितः) सेवा करने हारी और सेवा योग्य हैं। जब किसी रोग के कारण वैद्यराज नाड़ी छेदन करे और रुधिर निकलने से रोग बढ़ाने में नाड़ियां ऐसी असमर्थ हो जायें जैसे माता पिता और भाइयों के विना कन्यायें असहाय हो जाती हैं, तब नाड़ियों को रुधिर बहने से रोक दे।

२—मनुष्य के सब कार्य कुकामनाओं को रोक कर मर्यादापूर्वक करने से सफल होते हैं ॥१॥

तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥२॥

भाषार्थः—(अवरे) हे नीचे की [नाड़ी] (तिष्ठ) तू ठहर, (परे) हे ऊपर वाली (तिष्ठ) तू ठहर, (उत) और (मध्यमे) हे बीच वाली (त्वम्) तू (तिष्ठ) ठहर, (च) और (कनिष्ठिका) अति छोटी नाड़ी (तिष्ठति) ठहरती है, (मही) बड़ी (धमनिः) नाड़ी (इत्) भी (तिष्ठात्) ठहर जावे ॥२॥

भावार्थः—१—चिकित्सक सावधानी से सब नाड़ियों को अधिक रुधिर बहने से रोक देवे॥

२—मनुष्य अपने चित्त की वृत्तियों को ध्यान देकर कुमार्ग से हटावे, और हड़बड़ी करके अपने कर्तव्य को न बिगड़ने दे किन्तु यत्नपूर्वक सिद्ध करे ॥२॥

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥३॥

भाषार्थः—(शतस्य धमनीनाम्) सौ प्रधान नाड़ियों में से और (सहस्रस्य हिराणाम्) सहस्र शाखा नाड़ियों में से (इमाः) ये सब (मध्यमाः) बीच वाली (इत्) भी (अस्थुः) ठहर गयीं, (अन्ताः) अन्त की [अवशिष्ट नाड़ियां] (साकम्) एक साथ (अरंसत) क्रीड़ा करने लगी हैं। ३॥

भावार्थः—सिरा छेदन से असंख्य धमनी और सिरा नाड़ियों का रुधिर यथाविधि चिकित्सक निकाल कर बन्ध कर देवे कि नाड़ियां पहिले के समान चेष्टा करने लगें ॥३॥

२—मनुष्य अपनी अनन्त चित्तवृत्तियों को कुमार्ग से रोक कर सुमार्ग में चलावें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि॑ वः॒ सिक॑तावती ध॒नूर्बृ॑ह॒त्य॑ क्रमीत् ।
तिष्ठ॑ते॒लय॑ता॒ सु क॑म् ॥४॥

भाषार्थः—(सिकतावती) सेचन स्वभाव [कोमल रखने वाली] बालू आदि से भरी हुई (बृहती) बड़ी (धनूः) पट्टी ने (वः) तुम [नाड़ियों] को (परि अक्रमीत्) लपेट लिया है। (तिष्ठत) ठहर जाओ, (सु) अच्छे प्रकार (कम्) सुख से (इलयत) चलो ॥४॥

भावार्थः—(धनूः) अर्थात् धनु चार हाथ परिमाण को कहते हैं। इसी प्रकार की पट्टी से जो सूक्ष्म चूर्ण बालू से वा बालू के समान राल आदि औषध से युक्त होवे, चिकित्सक घाव को बांध देवे कि रक्त बहने से ठहर जाये और घाव पुरकर सब नाड़ियां यथा नियम चलने लगें, मन प्रसन्न और शरीर पुष्ट हो ॥

२—मनुष्य कुमार्गगामिनी मनोवृत्तियों को रोक कर यत्नपूर्वक हानि पूरी करे, और लाभ के साथ अपनी वृद्धि करे और आनन्द भोगे ॥४॥

सूक्तम् १८ ॥

१—४ ॥ द्रविणोदा ऋषिः ॥ सविता देवता । १, ४ ॥ अनुष्टुप्, २, ३ जगती ।

राजधर्मोपदेशः—राजा के लिये धर्म का उपदेश ॥

निर्ल॒क्ष्म्यं॑ लला॒म्यं १॒॑ निररा॑तिं सुवामसि ।
अथ॒ या भ॒द्रा तानि॑ नः प्र॒जाया॒ अरा॑तिं नयामसि ॥१॥

भाषार्थः—(ललाम्यम्=०—मीम्) [धर्म से] रुचि हटाने वाली निर्लक्ष्म्यम् = ०—क्ष्मीम्) अलक्ष्मी [निर्धनता] और (अरातिम्) शत्रुता को (निःसुवामसि = ०— मः) हम निकाल देवें। (अथ) और (या--यानि) जो (भद्रा=भद्राणि) मंगल हैं (तानि) उनको (नः) अपनी (प्रजायै) प्रजा के लिये (अरातिम्) सुख न देने हारे शत्रु से (नयामसि = ०—मः) हम लावें ॥१॥

भावार्थः—राजा अपने और प्रजा की निर्धनता आदि दुर्लक्षणों को मिटावे और शत्रु को दण्ड देकर प्रजा में आनन्द फैलावे ॥१॥

सायण भाष्य में 'लक्ष्म्यम्' के स्थान में 'लक्ष्मम्' पाठ है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निररणि सविता साविषत् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥२॥

भाषार्थः—(सविता) [सबका चलाने हारा] सूर्य [सूर्य रूप तेजस्वी] (वरुणः) सबके चाहने योग्य जल [जल समान शान्त स्वभाव] (मित्रः) चेष्टा देने हारा वायु [वायु समान वेगवान् उपकारी], (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी राजा (अरणिम्) पीड़ा को (पदोः) दोनों पदों और (हस्तयोः) दोनों हाथों से (निः) निरन्तर (निः साविषत्) निकाल देवे। (रराणा) दानशीला (अनुमतिः) अनुकूल बुद्धि (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (निः=निः साविषत्) [पीड़ा को] निकाल देवे, (देवाः) उदार चित्त वाले महात्माओं ने (इमाम्) इस [अनुकूल बुद्धि] को (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (प्र असाविषुः) भेजा है ॥२।

भावार्थः—मन्त्रोक्त शुभ लक्षणों वाला राजा और प्रजा परस्पर हितबुद्धि से और शुभचिन्तक महात्माओं के सहाय से क्लेशों का नाश करके सबका ऐश्वर्य बढ़ावें ॥२॥

टिप्पणी—सायण भाष्य में 'अरणिम्' के स्थान में 'अरणीम्' है और बंबई गवर्नमेन्ट के पुस्तक में लिखे 'साविषक्' के स्थान में सायण भाष्य में और अन्य दोनों पुस्तकों में 'साविषत्' पद है, वही पाठ हमने रक्खा है। गवर्नमेन्ट पुस्तक में टिप्पणी है कि 'साविषक् शब्द शोधकर लिखा है, परन्तु यह अशुद्ध है क्योंकि अथर्व० ६।१।३ में, ७।७७।७ में और ९।१५।४ में 'सविता साविषत्' पाठ है वही 'सविता साविषत्' यहां भी शुद्ध है ॥

यत्ते आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद् वाचापं हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] ! (यत्) जो कुछ (ते) तेरे (आत्मनि) आत्मा में और (तन्वाम्) शरीर में (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (केशेषु) केशों में (वा) अथवा (प्रतिचक्षणे) दृष्टि में (घोरम्) भयानक (अस्ति) है। (वयम्) हम (तत् सर्वम्) उस सबको (वाचा) वाणी से [विद्याबल से] (अप) हटाकर (हन्मः) मिटाये देते हैं। (देवः) दिव्य स्वरूप (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (सूदयतु) अंगीकार करे ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दुर्गुणों और दुर्लक्षणों को विद्वानों के उपदेश और सत्संग से छोड़ देता है, परमेश्वर उसे अपना करके अनेक सामर्थ्य देता और आनन्दित करता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं १ ता अस्मन्नाशयामसि ॥४॥

भाषार्थः—(रिश्यपदीम्) हरिण के समान [विना जमाये शीघ्र] पद की चेष्टा, (वृषदतीम्) बैल के समान दांत चबाना, (गोषेधाम्) बैल की सी चाल, (उत) और (विधमाम्) बिगड़ी भाथी [धौंकनी] के समान श्वास किया, (ललाम्यम्=०—मीम्) रुचि नाश करने हारी (विलीढ्यम् ०—ढिम्) चाटने की बुरी प्रकृति, (ताः) इन सब [कुचेष्टाओं] को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि=०—म) हम नाश करें ॥४॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष मनुष्यस्वभाव से विरुद्ध कुचेष्टाओं को छोड़ कर विद्वानों के सत्सङ्ग से सुन्दर स्वभाव बनावें और मनुष्यजन्म को सुफल करके आनन्द भोगें ॥४॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में 'रिश्यपदीम्' के स्थान में 'ऋष्यपदीम्' पाठ है। और जो 'विलीढ्यम्, ललाम्यम्' पदों का नपुंसक लिङ्ग माना है वह अशुद्ध है क्योंकि मन्त्र में 'ताः' स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम होने से ऊपर के सब छह पद स्त्रीलिङ्ग हैं ॥

सूक्तम् १९ ॥

१—४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता जयन्यायो । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३ पंक्तिः ॥

जयन्यायोपदेशः—जय और न्याय का उपदेश ॥

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय ॥१॥

भाषार्थः—(विव्याधिनः) अत्यन्त वेधने हारे शत्रु (नः) हम तक (मा विदन्) न पहुंचें, और (अभिव्याधिनः) चारों ओर से मारने हारे (मो विदन्) कभी न पहुंचे। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् (विषूचीः) सब ओर फैले हुए (शरव्याः) बाण समूहों को (अस्मत्) हमसे (आरात्) दूर (पातय) गिरा ॥१॥

भावार्थः—सर्वरक्षक जगदीश्वर पर पूर्ण श्रद्धा करके चतुर सेनापति अपनी सेना को रणक्षेत्र में इस प्रकार खड़ा करे कि शत्रु लोग पास न आ सकें और न उनके अस्त्र शस्त्रों के प्रहार अपने किसी के लगें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो बाण (अस्ताः) छोड़े गये हैं (च) और (ये) जो (आस्याः) छोड़े जायेंगे, (विष्वञ्चः) [वे] सब ओर फैले हुये (शरवः) बाण (अस्मत्) हमसे [दूर] (पतन्तु) गिरें। (दैवीः मनुष्येषवः) हे [हमारे] मनुष्यों के दिव्य बाणो! [बाण चलाने वाले तुम] (मम) मेरे (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे शत्रुओं को (वि विध्यत) छेद डालो ॥२॥

भावार्थः—सेनापति इस प्रकार अपनी सेना का व्यूह करे कि शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र जो चल चुके हैं अथवा चलें वे सेना के न लगें और उस निपुण सेनापति के योद्धाओं के (दैवीः) दिव्य अर्थात् आग्नेय [अग्निबाण] और वारुणेय [जलबाण जो बन्दूक आदि जल में वा जल से छोड़े जावें] अस्त्र शत्रुओं को निरन्तर छेद डालें ॥२॥

इस मन्त्र में वर्तमान काल का अभाव है क्योंकि वह अति सूक्ष्म और वेगवान् है और मनुष्यों को अगम्य है ॥

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्यया यैतान ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (नः) हमारी (स्वः) जाति वाला अथवा (यः) जो (अरणः) न बोलने योग्य शत्रु वा विदेशी, अथवा (सजातः) कुटुम्बी (उत) अथवा (यः) जो (निष्ट्यः) वर्णसङ्कर नीच (अस्मान्) हम पर (अभिदासति) चढ़ाई करे (रुद्रः) शत्रुओं को रुलाने वाला महा शूर वीर सेनापति (शरव्यया) बाणों के समूह से (मम) मेरे (एतान्) इन (अमित्रान्) पीड़ा देने हारे वैरियों को (वि विध्यतु) छेद डाले ॥३॥

भावार्थः—राजा को अपने और पराये का पक्षपात छोड़ कर दुष्टों को यथोचित दण्ड देकर राज्य में शान्ति रखनी चाहिये ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋ० ६ । ७५ । १९ में कुछ भेद से है ॥

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (सपत्नः) प्रतिपक्षी और (यः) जो (असपत्नः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट प्रतिपक्षी नहीं है (च) और (यः) जो (द्विषन्) द्वेष करता हुआ (नः) हमको (शपाति) कोसे [क्रोशे]। (सर्वे) सब (देवाः) विजयी महात्मा (तम्) उसको (धूर्वन्तु) नाश करें, (ब्रह्म) परमेश्वर, (वर्म) कवचरूप (मम) मेरे (अन्तरम्) भीतर है ॥४॥

भावार्थः—छानबीन करके प्रकट और अप्रकट प्रतिपक्षियों और अनिष्टचिन्तकों को (देवाः) शूरवीर विद्वान् महात्मा नाश कर डालें। वह परब्रह्म सर्वरक्षक, कवच रूप होकर, धर्मात्माओं के रोम रोम में भर रहा है वही आत्मबल देकर युद्ध क्षेत्र में सदा उनकी रक्षा करता है ॥४॥

मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० ६। ७५। १९ में है ॥

सूक्तम् २० ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः। सोमो मरुतश्च देवताः। १ जगती, २—४ अनुष्टुप् ॥

शत्रुभ्यो रक्षणोपदेशः—शत्रुओं से रक्षा का उपदेश ॥

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विदभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१॥

भाषार्थः—(देव) हे प्रकाशमय, (सोम) उत्पन्न करने वाले परमेश्वर! [वह शत्रु] (अदारसृत्) डर का न पहुंचाने वाला अथवा अपने स्त्री आदि के पास न पहुंचने वाला (भवतु) होवे, (मरुतः) हे [शत्रुओं के] मारने वाले देवताओ! (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पूजनीय काम में (नः) हम पर (मृडत) अनुग्रह करो। (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई, आपत्ति (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े, और (मो = मा उ) न कभी (अशस्तिः) अपकीर्ति और (या) जो (द्वेष्या) द्वेषयुक्त (वृजिना) पाप बुद्धि है [वह भी] (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर के सहाय से शत्रुओं को निर्बल कर दें अथवा घर वालों से अलग रक्खें और विद्वान् शूरवीरों से भी सम्मति लेवें, जिससे प्रत्येक विपत्ति, अपकीर्त्ति और कुमति हट जाय और निर्विघ्न अभीष्ट सिद्ध होवे ॥१॥

मरुत् देवताओं के बिजुली आदि के विमान हैं, इस पर वैज्ञानिकों को विशेष ध्यान देना चाहिये--ऋग्वेद में वर्णन है—

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ ऋ० १।८८। १॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मरुतः) हे शूर महात्माओ ! (विद्युन्मद्भिः) बिजुली वाले, (स्वर्कैः) अच्छी ज्वाला वाले [वा अच्छे विचारों से बनाये गये], (ऋष्टिमद्भिः) दोधारा तलवारों वाले [आगे--पीछे, दायें--बायें, ऊपर--नीचे चलाने की कलाओं वाले] (रथेभिः) रथों से (आ यात) तुम आओ, और (सुमायाः) हे उत्तम बुद्धि वाले ! (नः) हमारे लिये (वसिष्ठया) अति उत्तम (इषा) अन्न के साथ (वयः नः) पक्षियों के समान (आ पप्तत) उड़ कर चले आओ ॥

यो अद्य सेन्यो वधो घायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥२॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (अघायूनाम्) बुरा चीतने वाले शत्रुओं की (सेन्यः) सेना का चलाया हुआ (यः) जो (वधः) शस्त्र प्रहार (उदीरते) उठ रहा है। (मित्रावरुणौ) हे [हमारे] प्राण और अपान (युवम्) तुम दोनों (तम्) उस [शस्त्र प्रहार] को (अस्मत्) हम लोगों से (परि) सर्वथा (यावयतम्) अलग रक्खो ॥२॥

भावार्थः—'मित्रावरुणौ' का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने [य० २।३] प्राण और अपान किया है। जो वायु शरीर के भीतर जाता है वह प्राण और जो बाहिर निकलता है वह अपान कहाता है। जिस समय युद्ध में शत्रु सेना आ दबावे उस समय अपने प्राण अपान वायु को यथायोग्य सम रखकर और सचेत होकर शरीर में बल बढ़ाकर सैन्यक लोग युद्ध करें, तो शत्रुओं पर शीघ्र जीत पावें ॥

१—श्वास के साधने से मनुष्य स्वस्थ और बलवान् होते हैं ॥

२—प्राण और अपान के समान उपकारी और बलवान् होकर योद्धा लोग परस्पर रक्षा करें ॥२॥

इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३॥

भाषार्थः—(वरुण) हे सबमें श्रेष्ठ, परमेश्वर ! (इतः च) इस दिशा से (च) और (अमुतः) उस दिशा से (यत् यत्) प्रत्येक (वधम्) शत्रु प्रहार को (यावय) हटा दे। (महत्) [अपनी] बड़ी (शर्म) शरण को (वि) अनेक प्रकार से (यच्छ) [हमें] दान कर, और (वधम्) [शत्रुओं के] प्रहार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) फेंक दे ॥३॥

भावार्थः—जो सेनापति ईश्वर पर विश्वास करके अपनी सेना को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न पूर्वक शत्रु के प्रहार से बचाता और उनमें वैरी को जीतने का उत्साह बढ़ाता है वह शूरवीर जीत पाकर आनन्द पाता है ॥३॥

मन्त्र का पिछला आधा ऋ० १० । १५२ । ५ का दूसरा आधा है, वहां 'महत्' के स्थान में 'मन्योः' शब्द है ॥

शास इत्था महाँ असि मित्रसाहो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥४॥

भाषार्थः—(इत्था) सत्य सत्य (महान्) बड़ा (शासः) शासनकर्ता (अमित्रसहः) शत्रुओं को हराने हारा और (अस्तृतः) कभी न हारने हारा (असि) तू है। (यस्य) जिसका (सखा) मित्र (कदा चन) कभी भी (न) न (हन्यते) मारा जाता है और (न) न (जीयते) जीता जाता है ॥४॥

भावार्थः—वह परमात्मा (वरुण) सर्वशक्तिमान् शत्रुनाशक है इस प्रकार श्रद्धा करके जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक, आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक बल बढ़ाते रहते है वह ईश्वर के भक्त दृढ़ विश्वासी अपने शत्रुओं पर सदा जय प्राप्त करते हैं ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १५२ । १ में है ॥

सूक्तम् २१ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ८×४ अक्षराणि ॥

राजनीतिस्वस्तिस्थापनोपदेशः—राजनीति और शान्ति स्थापना का उपदेश ॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥१॥

भाषार्थः—(स्वस्तिदाः) मंगल का देने हारा, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) पालने हारा (वृत्रहा) अन्धकार मिटाने हारा (विमृधः) शत्रुओं को (वशी) वश में करने हारा (वृषा) महा बलवान् (सोमपाः) अमृत रस का पीने हारा (अभयंकरः) अभय दान करने हारा (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (नः) हमारे (पुरः) आगे आगे (एतु) चले ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य मन्त्रोक्त गुणों से युक्त राजा को अपना अगुआ बनाते हैं, वे अपने सब कामों में विजय पाते हैं ॥

२—वह जगदीश्वर सब राजा महाराजाओं का लोकाधिपति है उसको अपना अगुआ समझकर सब मनुष्य जितेन्द्रिय हों ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूक्त में ऋग्वेद १०। १५२ मन्त्र २—५ कुछ भेद के साथ हैं ॥

वि नं इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२॥

भाषार्थः— (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (नः) हमारे (मृधः) शत्रुओं को (वि जहि) मार डाल, (पृतन्यतः) और सेना चढ़ाकर लानेहारों को (नीचा) नीचे करके (यच्छ) रोक दे। (यः) जो (अस्मान्) हमको (अभिदासति) हानि पहुंचावे उसको (अधमम्) नीचे (तमः) अन्धकार में (गमय) पहुंचा दे ॥२॥

भावार्थः—१, न्यायशील, प्रतापी राजा अन्यायी दुराचारियों को परमेश्वर के दिये हुए बल से सब प्रकार परास्त करके दृढ़ बन्दीगृह में डाल दे ॥

२—महा बली परमेश्वर को हृदयस्थ समझ कर सब मनुष्य अपनी कुवृत्तियों का दमन करें ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥

भाषार्थः—(रक्षः = रक्षांसि) राक्षसों और (मृधः) हिंसकों को (वि वि) सर्वथा (जहि) तू मार डाल, (वृत्रस्य) शत्रु के (हनू) दोनों जाबड़ों को (विरुज) तोड़ दे, (वृत्रहन्) हे अन्धकार मिटाने हारे (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (अभिदासतः) चढ़ाई करने हारे (अमित्रस्य) पीड़ाप्रद शत्रु के (मन्युम्) कोप को (वि = वि रुज) भंग कर दे ॥३॥

भावार्थः—१, राजा को पुरुषार्थी हो कर शत्रुओं का नाश करके और प्रजा में शान्ति फैलाकर आनन्द भोगना चाहिये ॥

२—सर्वरक्षक परमेश्वर के प्रताप से मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी शत्रुओं को निर्बल करें ॥३॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (द्विषतः) वैरी के (मनः) मन को (अप = अपकृत्य) तोड़कर, और (जिज्यासतः) [हमारी] आयु की हानि चाहने हारे शत्रु के (वधम्) प्रहार को (अप = अपकृत्य) छिन्न भिन्न करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(महत् शर्म) [अपना] विस्तीर्ण शरण (वि यच्छ) [हमें] दान कर, और (वधम्) [शत्रु के] प्रहार को (वरीयः) बहुत दूर (यावय) फेंक दे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर के विश्वास से मनुष्य अपने पुरुषार्थ और बुद्धि बल से शत्रु को निरुत्साही करकें विजयी होवें ॥४॥

टिप्पणी—पिछले आधे मन्त्र के लिये १ । २० । ३ देखो ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २२ ॥

१—४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । सूर्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग नाश के लिये उपदेश ॥

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥१॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (हृद्-द्योतः) हृदय की सन्ताप [चमक] (च) और (हरिमा) शरीर का पीलापन (सूर्यम् अनु) सूर्य के साथ साथ (उद्अयताम्) उड़ जावे । (रोहितस्य) निकलते हुए लाल रंग वाले (गोः) सूर्य के (तेन) प्रसिद्ध (वर्णेन) रंग से (त्वा) तुझ को (परि) सब प्रकार से (दध्मसि) हम पुष्ट करते हैं ॥१॥

भावार्थः—प्रातः और सायंकाल सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने से रक्त वर्ण दीखती हैं, और वायु शीतल, मन्द, सुगन्ध चलता है । उस समय मानसिक और शारीरिक रोगी को सद्वृद्ध वायु सेवन और ओषधि सेवन करावें, जिससे वह स्वस्थ हो जाये और रुधिर के संचार से उसका रंग रक्त सूर्य के समान लाल चमकीला हो जाये ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—(गौः) सूर्य है वह रसों को ले जाता [और पहुँचाता] है, और अन्तरिक्ष में चलता है—निरु० २। १४॥

२—मनु महाराज ने भी दो सन्ध्याओं का विधान [स्वस्थता के लिये] किया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ मनु० २।१०१॥

प्रातः काल की सन्ध्या में गायत्री को जपता हुआ सूर्यदर्शन होने तक स्थित रहे और सायंकाल की सन्ध्या में तारों के चमकने तक बैठा हुआ ठीक ठीक जप करे॥

परि॑ त्वा रोहि॑तैर्वर्णै॑र्दी॒र्घायु॒त्वाय॑ दध्मसि ।
यथा॒यम॑र॒पा अस॑दथो॒ अह॑रि॒तो भुव॑त् ॥२॥

भाषार्थः—(रोहितैः) लाल (वर्णैः) रंगों के साथ (त्वा) तुझको (दीर्घायुत्वाय) चिर काल जीवन के लिये (परि) सब प्रकार से (दध्मसि) हम पुष्ट करते हैं। (यथा) जिससे (अयम्) यह (अरपाः) नीरोग (असत्) हो जाये, (अथो) और (अहरितः) पीले वर्ण रहित (भुवत्) रहे ॥२॥

भावार्थः—सद्वैद्य और कुटुम्बी लोग रोगी को प्रातः सायम् वायु सेवन और औषधि सेवन कराकर स्वस्थ करें कि रुधिर-संचार से उसका शरीर रक्त वर्ण हो जाय और ज्वर, पीलिया आदि रोग का पीलापन शरीर से जाता रहे ॥२॥

या रोहि॑णीर्दे॒वत्या॒ ३ गावो॒ या उ॒त रोहि॑णीः ।
रूपं॑रूपं॒ वयो॑वय॒स्ताभि॑ष्ट्वा॒ परि॑ दध्मसि ॥३॥

भाषार्थः—(याः) जो (देवत्याः) दिव्य गुण युक्त (रोहिणीः) स्वास्थ्य उत्पन्न करने वाली ओषधें (उत) और (याः) जो (रोहिणीः) लाल वर्ण वाली (गावः) दिशायें हैं। (ताभिः) उन सब के साथ (त्वा) तुझ को (रूपम् रूपम्) सब प्रकार की सुन्दरता और (वयः वयः) सब प्रकार के बल के लिये (परि दध्मसि) हम सर्वथा पुष्ट करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जब सूर्य की किरणों से दिशायें रक्त वर्ण दिखायी देती हैं तब प्रातः सायं दोनों समय सद्वैद्य रोगी को सुपरीक्षित औषधों और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथायोग्य वायु सेवन से स्वस्थ करके सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट और बलवान् करें ॥३॥

सुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥

भाषार्थः—(सुकेषु) उत्तम उत्तम उपदेशों में और (रोपणाकासु) लेप आदि क्रियाओं में (ते) तेरे (हरिमाणम्) सुख हरने वाले शरीर रोग को (दध्मसि) हम रखते हैं। (अथो) और भी (हारिद्रवेषु) रुचिर रसों में (ते) तेरे (हरिमाणम्) चित्त विकार को (नि) निरन्तर (दध्मसि) हम रखते हैं ॥४॥

भावार्थः—सद्वैद्य बाहिरी शारीरिक रोगों को यथायोग्य ओषधि और लेप आदि से, तथा भीतरी मानसिक रोगों को उत्तम उत्तम ओषधि रसों से नाश करके रोगी को स्वस्थ करें ॥४॥

यह मन्त्र ऋ० १ । ५० । १२ में कुछ भेद से है वहां (सुकेषु) के स्थान में [शुकेषु] है। और सायण भाष्य में भी [शुकेषु] माना है। परन्तु तीनों अथर्व-संहिताओं में (सुकेषु) पाठ है वही हमने लिया है। सायणाचार्य ने [शुक] का अर्थ तोता पक्षी और (रोपणाका) का [काष्ठशुक] नाम हरिद्वर्ण पक्षी अथर्ववेद में और [शारिका पक्षी विशेष] अर्थात् मैना ऋग्वेद में, और (हारिद्रव) का अर्थ [गोपी-तनक नाम हरिद्वर्ण पक्षी] अथर्ववेद में, और [हरिताल का वृक्ष] ऋग्वेद में किया है इस अर्थ का यह आशय जान पड़ता है कि रोग विशेषों में पक्षी विशेषों को रोगी के पास रखने से भी रोग की निवृत्ति होती है ॥

सूक्तम् २३ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । ओषधिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

महारोगनाशोपदेशः—महारोग के नाश के लिये उपदेश ॥

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे उष्णता रखने हारी, ओषधि तू (नक्तंजाता) रात्रि में उत्पन्न हुई (असि) है, जो तू (रामे) रमण करने हारी (कृष्णे) चित्त को खींचने हारी, (च) और (असिक्नी) निर्बन्ध [पूर्ण सार वाली] है। (रजनि) हे उत्तम रंग करने हारी ! तू (इदम्) यह (यत्) जो (किलासम्) रूप का बिगाड़ने हारा कुष्ठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि (च) और (पलितम्) शरीर का श्वेतपन रोग है [उसको] (रजय) रंग दे ॥१॥

भावार्थः—सद्वैद्य उत्तम परीक्षित औषधों से रोगों की निवृत्ति करे ॥१॥

१—रात में उत्पन्न हुई ओषधि से यह आशय है कि ओषधें, गेहूँ, जौ, चावल आदि अन्न, और कमल आदि रोगनिवर्त्तक पदार्थ, चन्द्रमा की किरणों से पुष्ट होकर उत्पन्न होते हैं ॥

२—इसी प्रकार मनुष्यों को गर्भाधान क्रिया रात्रि में करनी चाहिये ॥

३—ओषधि आदि मूर्तिमान् पदार्थ पाँच तत्त्वों से बने हैं तो भी उनके भिन्न २ आकार और भिन्न २ गुण हैं, यह मूल संयोग वियोग क्रिया ईश्वर के अधीन है, वस्तुतः मनुष्य के लिये यह कर्म रात्रि अर्थात् अंधकार वा अज्ञान में है ॥

४—प्रलय रूपी रात्रि के पीछे, पहिले अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं फिर मनुष्य आदि की सृष्टि होती है ॥१॥

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२॥

भाषार्थः—[हे ओषधि !] (इतः) इस [पुरुष] से (किलासम्) रूप बिगाड़ने वाले कुष्ठ आदि रोग को (च) और (पलितम्) शरीर के श्वेतपन (च) और (पृषत्) विकृत चिह्न को (निर्णाशय) निरन्तर नाश कर दे। (स्वः वर्णः) [रोग का] अपना रंग (त्वाम्) तुझमें [ओषधि में] (आ विशताम्) प्रविष्ट हो जाय और (शुक्लानि) [उसके] श्वेत चिह्नों को (परा पातय) दूर गिरा दे ॥२॥

भावार्थः—सद्वैद्य की उतम ओषधि से रोगी के शरीर का बिगड़ा हुआ रूप फिर यथापूर्वक सुन्दर रुचिर और मनोहर हो जाता है ॥२॥

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि (ते) तेरा (प्रलयनम्) लाभ (असितम्) निर्बन्ध वा अखंड है, और (तव) तेरा (आस्थानम्) विश्राम स्थान (असितम्) निर्बन्ध है, (असिक्नी असि) और तू निर्बन्ध [सारवाली] है, (इतः) इस [पुरुष] से (पृषत्) [विकृत] चिह्न को (निर्णाशय) सर्वथा नाश करदे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सद्वैद्य विचार करे कि यह ओषधि पूर्ण लाभयुक्त है यथायोग्य स्थान में उत्पन्न हुई है और सब अंशों में सारयुक्त है, ऐसी ओषधि के प्रयोग से रोग निवृत्ति होती है ॥३॥

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४॥

भाषार्थः—"दूष्या कृतस्य अस्थिजस्य तनूजस्य च किलासस्य यत् श्वेतम् लक्ष्म त्वचि अस्ति तत् ब्रह्मणा (अहम्) अनीनशम्-इत्यन्वयः" । (दूष्या) दुष्ट क्रिया से (कृतस्य) उत्पन्न हुए, (अस्थिजस्य) हड्डी से उत्पन्न हुए (च) और (तनूजस्य) शरीर से निकले हुए (किलासस्य) रूप बिगाड़ने हारे, कुष्ठ आदि रोग का (यत्) जो (श्वेतम्) श्वेत (लक्ष्म) चिह्न (त्वचि) त्वचा पर है [उसको] (ब्रह्मणा) वेद विज्ञान से (अनीनशम्) मैंने नाश कर दिया है ॥४॥

भावार्थः—भारी रोग दो प्रकार के होते हैं एक (अस्थिज) हड्डी से उत्पन्न होने वाले अर्थात् भीतरी रोग जो ब्रह्मचर्य के खण्डन और कुपथ्य भोजन आदि के कारण मज्जा और वीर्य के विकार से हो जाते हैं, और दूसरे (तनुज) शरीर से उत्पन्न हुए बाहरी रोग जो मलिन वायु, मलिन घर, आदि के कारण होते हैं, इस प्रकार (ब्रह्मणा) वैदिक ज्ञान से रोगों का निदान करके उत्तम परीक्षित ओषधियों से रोगियों को स्वस्थ करें ॥४॥

इस सूक्त का आशय यह है कि जिस प्रकार सद्वैद्य रोगों का आदि कारण जानकर ओषधि करके रोग निवृत्ति करता है, उसी प्रकार नीतिज्ञ राजा नियम पूर्वक दुष्टों का दमन करता है, सेनापति शत्रु के प्रहार से अपनी सेना की रक्षा करके जीत पाता है, और ब्रह्मज्ञानी और वैज्ञानिक लोग वाह्य और आभ्यन्तर विघ्नों को हटाकर अपना कार्य सिद्ध करते हैं ॥

सूक्तम् २४ ॥

१-४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । ओषधिर्देवता ॥ १, ३, ४, अनुष्टुप्, २ पंक्तिः, ८×५ अक्षराणि ॥

महारोगनाशोपदेशः—महारोग के नाश के लिये उपदेश ॥

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१॥

भाषार्थः—(सुपर्णः) उत्तम रीति से पालन करने हारा, वा अति पूर्ण परमेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वर (प्रथमः) सबका आदि (जातः) प्रसिद्ध है। (तस्य) उस [परमेश्वर] के (वित्तम्) पित्त [बल] को, [हे ओषधि !] (त्वम्) तूने (आसिथ) पाया था। (तत्) उस (युधा) संग्राम से (जिता) जीती हुई (आसुरी) असुर [प्रकाशमय परमेश्वर] की माया [प्रज्ञा वा बुद्धि] ने (वनस्पतीन्) सेवा करने वालों के रक्षा करने हारे वृक्षों को (रूपम्) रूपवान् (चक्रे) किया था ॥१॥

भावार्थः—सृष्टि से पहिले वर्त्तमान परमेश्वर की नित्य शक्ति से ओषधि अन्न आदि में पोषण सामर्थ्य रहता है। वह (आसुरी) परमेश्वर की शक्ति (युधाजिता) युद्ध अर्थात् प्रलय के अन्धकार के उपरान्त प्रकाशित होती है, जैसे अन्न, और घास पात आदि का बीज शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में भूमि के भीतर पड़ा रहता और वृष्टि का जल पाकर हरा हो जाता है ॥१॥

टिप्पणी—(असुर) शब्द के लिये अ० १। १०। १ और (आसुरी) के लिये अ० ७। ३९। १। देखो। हे ओषधि ! तू रात्रि में उत्पन्न हुई है, ऐसा अ० १। २३। १ में आया है। ऋग्वेद में कहा है—

तम॑ आसीत् तम॑सा गू॒ढमग्रे॒ऽप्रके॑तं स॒लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्

॥ ऋ० १०। १२९। ३ ॥

पहिले [प्रलय काल में] अन्धकार था। और यह सब अन्धकार से ढका हुआ चिह्नरहित समुद्र था।

आ॒सु॒री च॑क्रे प्रथ॒मेदं कि॑ला॒सभे॑ष॒जमि॒दं कि॑ला॒सना॑श॒नम्।
अ॒नी॒न॒शत् कि॒ला॒सं स॒रू॒पाम॑करत् त्व॒चम् ॥२॥

भाषार्थः—(प्रथमा) प्रथम प्रकट हुई (आसुरी) प्रकाशमय परमेश्वर की माया [बुद्धि वा ज्ञान] ने (इदम्) इस [वस्तु] को (किलासभेषजम्) रूपनाशक महा रोग की ओषधि और (इदम्) इस [वस्तु] को ही (किलासनाशनम्) रूप बिगाड़ने वाले महारोग की नाश करने हारी (चक्रे) बनाया। [उसने] [ईश्वर माया ने] (किलासम्) रूप बिगाड़ने वाले महारोग को (अनीनशत्) नाश किया और (त्वचम्) त्वचा को (सरूपाम्) सुन्दर रूप वाली (अकरत्) बना दिया ॥२॥

भावार्थः—(आसुरी) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की शक्ति से प्रलय के पश्चात् अनेक विघ्नों के हटाने पर मनुष्य के सुखदायक पदार्थ उत्पन्न हुए जिससे पृथिवी पर समृद्धि और क्षुधा आदि रोगों की निवृत्ति हुई ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमौषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥३॥

भाषार्थः (ओषधे) हे उष्णता रखने हारे अन्न आदि ओषधि (सरूपा) समान गुण वा स्वभाव वाली (नाम) नाम (ते) तेरी (माता) माता है, (सरूपः) समान गुण वा स्वभाव वाला (नाम) नाम (ते) तेरा (पिता) पिता है। (त्वम्) तू (सरूपकृत्) सुन्दर वा समान गुण करने हारी है, (सा=सा त्वम्) सो तू (इदम्) इस [अंग] को (सरूपम्) सुन्दर रूपयुक्त (कृधि) कर ॥३॥

भावार्थः—(ओषधि) क्षुधा रोगादि निवर्तक वस्तु को कहते हैं जिससे शरीर में उष्णता रहती है, उस की (माता) प्रकृति वा पृथिवी और (पिता) परमेश्वर वा मेघ वा सूर्य्य है जिन के गुण वा स्वभाव सब प्राणियों के लिये समान हैं। ईश्वर से प्रेरित प्रकृति से अथवा भूमि और मेघ वा सूर्य्य के संयोग से सब पुष्टिदायक और रोगनाशक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। विद्वान् लोग पदार्थों के गुणों को यथार्थ जानकर नियमपूर्वक उचित भोजन आदि के सेवन और यथोचित उपकार लेने से अपने को और अपने सन्तानों को रूपवान् और वीर्य्यवान् बनावें ॥३॥

श्यामा सरूपं करणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमूषु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥४॥

भाषार्थः—(श्यामा) व्यापनशीला वा सुखप्रदा, (सरूपंकरणी) सुन्दरता करने हारी तू (पृथिव्याः अधि) विख्यात वा विस्तीर्ण पृथिवी में से (उद्भृता) उखाड़ी गई है। (इदम् उ) इस [कर्म्म] को (सु) भली भांति से (प्र साधय) सिद्ध कर, (पुनः) और (रूपाणि) [इस पुरुष] की सुन्दरताओं को (कल्पय) पूर्ण कर ॥४॥

भावार्थः—जैसे उत्तम वैद्य उत्तम औषधों से रोग को निवृत्त कर रोगी को सर्वाङ्ग पुष्ट करके आनन्दयुक्त करते हैं, इसी प्रकार दूरदर्शी पुरुष सब विघ्नों को हटाकर कार्य्य सिद्धि कर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

सूक्तम् २५ ॥

१—४ ॥ भृग्वंगिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः, ११×३ एकादशाक्षराणि ॥

ज्वरादिरोगशान्त्युपदेशः— ज्वर आदि रोग की शान्ति के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद॒ग्निरापो॒ अद॑हत् प्र॒विश्य॒ यत्राकृ॑ण्वन् धर्म्म॒धृतो॒ नमां॑सि ।
तत्रं त आहुः पर॒मं ज॒नित्रं॒ स नं॑ः संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जिस [सामर्थ्य] से (अग्निः) व्यापक अग्नि [ताप] ने (प्रविश्य) प्रवेश करके (अपः) व्यापनशील जल को (आ अबहत्) तपा दिया है और (यत्र) जिस [सामर्थ्य] के आगे (धर्मधृतः) मर्यादा के रखने वाले पुरुषों ने (नमांसि) अनेक प्रकार से नमस्कार (अकृण्वन्) किया है। (तत्र) उस [सामर्थ्य] में (ते) तेरे (परमम्) सबसे ऊंचे (जनित्रम्) जन्म स्थान को (आहुः) वह [मर्यादापुरुष] बताते हैं, (सः=स त्वम्) सो तू, (तक्मन्) हे जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर!] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परि-वृङ्धि) छोड़ दे ॥१॥

भावार्थः—जो परमेश्वर उष्ण स्वभाव अग्नि द्वारा शीतल स्वभाव जल को तपाता है अर्थात् विरुद्ध स्वभाव वालों को संयोग वियोग से अनुकूल करके सृष्टि को धारण करता है, जिस परमेश्वर से बढ़ कर कोई मर्यादा पालक नहीं है जो स्वयंभू सबका अधिपति है, और ज्वर आदि रोगों से पापियों को दण्ड देता है उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुए हम पापों से बच कर सदा आनन्द भोगें, सब विद्वान् लोग उस ईश्वर के आगे सिर झुकाते हैं ॥१॥

यद्य॒र्चिर्यदि॒ वासि॑ शो॒चिः श॑कल्येषि॒ यदि॑ वा ते ज॒नित्र॑म् ।
ह्लू डु॒र्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नं॑. संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे तू (अर्चिः) ज्वाला रूप (यदि वा) अथवा (शोचिः) ताप रूप (असि) है (यदि वा) अथवा (ते) तेरा (जनित्रम्) जन्म स्थान (शकल्येषि) अंग अंग की गति में है। (हरितस्य) हे पीले रंग के (देव) देने वाले! (ह्लूडुः) दबाने की कल (नाम असि) तेरा नाम है, (सः) सो तू (तक्मन्) जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर! [ज्वर समान पीड़ा देने वाले ईश्वर] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परि वृङ्धि) छोड़ दे ॥२॥

भावार्थः—वह परब्रह्म ज्वर आदि रोग से दुष्कर्मियों की नाड़ी नाड़ी को दुःख से दबा डालता है जैसे कोई किसी को दबाने की कल में दबावे। उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुए पापों से बच कर सदा आनन्द भोगें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायण भाष्य में 'ह्रूडुः' के स्थान में रूढुः' पढ़ कर 'रोहकः' उत्पन्न करने वाला अर्थ किया है।

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे तू (शोकः) हृदयपीड़क (यदि वा) चाहे (अभिशोकः) सर्व शरीर पीड़क है, (यदि वा) अथवा तू (राज्ञः) तेज वाले (वरुणस्य) सूर्य वा जल का (पुत्रः) पुत्र रूप (असि) है। (हरितस्य) हे पीले रंग के (देव) देने वाले! (ह्रूडुः) दबाने की कल (नाम असि) तेरा नाम है (सः) सो तू, (तक्मन्) हे जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर! [ज्वर समान पीड़ा देने हारे!] (संविद्वान्) [यह बात] जानता हुआ (नः) हमको (परिवृङ्ग्धि) छोड़ दे ॥३॥

भावार्थः—मानसिक और शारीरिक पीड़ा, सूर्य्य की ताप वा जल से उत्पन्न ज्वर, और पीलिया आदि रोग, पाप अर्थात् ईश्वरीय नियम से विरुद्ध आचरण का फल है, इसलिये मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक परमेश्वर के नियमों का पालन करें, और दुष्ट आचरण छोड़कर सुखी रहें ॥३॥

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४॥

भाषार्थः—(शीताय) शीत (तक्मने) जीवन को कष्ट देने हारे ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार, और (रूराय) क्रूर (शोचिषे) ताप के ज्वर को [ज्वररूप परमेश्वर को] (नमः) नमस्कार (कृणोमि) मैं करता हूं। (यः) जो (अन्येद्युः) एकान्तरा ज्वर और (उभयद्युः) दो अन्तरा ज्वर (अभि एति) चढ़ता है, (तस्मै) [उस ज्वर रूप को और] (तृतीयकाय) तिजारी (तक्मने) ज्वर [ज्वर रूप परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर अनेक प्रकार के ज्वर आदि रोगों से पापियों को कष्ट देता है, उसके क्रोध से भय मान कर हम खोटे कामों से बचकर सदा शान्त चित्त और आनन्द में मग्न रहें ॥४॥

सूक्तम् २६ ॥

१—४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

युद्धप्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरे ३ ऽसावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥१॥

भाषार्थः—(देवासः) हे विजयी शूरवीरो ! (असौ) वह (हेतिः) सांग वा बरछी (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (अस्तु) रहे, और (अश्मा) वह पत्थर (आरे) दूर (असत्) रहे (यम्) जिसे (अस्यथ) तुम फेंकते हो ॥१॥

भावार्थः—युद्ध कुशल सेनापति लोग चक्रव्यूह, पद्मव्यूह, मकरव्यूह, क्रौञ्चव्यूह, सूचीव्यूह, आदि से अपनी सेना का विन्यास इस प्रकार करें कि शत्रु के अस्त्र शस्त्र का प्रहार अपने प्रजा और सेना के न लगें, और न अपने अस्त्र शस्त्र उलट कर अपने ही लगें, किन्तु शत्रुओं का विध्वंस करें ॥१॥

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः । सविता चित्रराधाः ॥२॥

भाषार्थः—(असौ) वह (रातिः) दानशील राजा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सखा) मित्र (अस्तु) होवे, (भगः) सबका सेवनीय, (सविता) लोकों को चलाने वाले सूर्य के समान प्रतापी, (चित्रराधाः) अद्भुत धन युक्त (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला (सखा) मित्र होवे ॥२॥

भावार्थः राजा अपनी प्रजा, सेना, और कर्मचारियों पर सदा उदारचित्त रहे और सूर्य के समान महाप्रतापी और ऐश्वर्यशाली और महाधनी होकर सबका हितकारी बने और सब की उन्नति से अपनी उन्नति करे ॥२॥

यूयं नः प्रवतो नपान् मरुतः सूर्यत्वचसः । शर्म यच्छाथ सप्रथः ॥३॥

भाषार्थः—(प्रवतः) हे [अपने] भक्त के (नपात्) न गिराने हारे राजन् ! और (सूर्यत्वचसः) हे सूर्य समान प्रताप वाले (मरुतः) शत्रुओं के मारने हारे शूरवीर महात्माओ ! (यूयम्) तुम सब (नः) हमारे लिये (सप्रथः) बहुत विस्तीर्ण (शर्म) सुख वा शरण (यच्छाथ) दान करो ॥३॥

भावार्थः—अपने भक्तों की रक्षा करने हारा राजा और महाप्रतापी धर्म धुरन्धर शूरवीर मन्त्री आदि मिल कर प्रजा की सर्वथा रक्षा करके अपने शरण में रक्खें ॥३॥

टिप्पणी—अजमेर वैदिक यन्त्रालय और बम्बई गवर्नमेन्ट के पुस्तक के संहिता पाठ में 'सप्रथाः' पाठ अशुद्ध दीखता है, सायण भाष्य और बंबई के सेवकलाल कृष्णदास शोधित पुस्तक का 'सप्रथः' पाठ शुद्ध जान कर हमने यहां पर लिया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४॥

भाषार्थः—(सुषूदत) तुम सब [हमें] अंगीकार करो, और (मृडत) सुखी करो, [हे राजन्!] तू (नः) हमारे (तनूभ्यः) शरीरों को (मृडय) सुख दे और (तोकेभ्यः) बालकों को (मयः) आनन्द (कृधि) कर ॥४॥

भावार्थः—महाप्रतापी राजा और सुयोग्य कर्मचारी मिल कर सब प्रजा और उनकी सन्तानों की उत्तम शिक्षा आदि से उन्नति करें और सुख पहुंचाते रहें ॥४॥

सूक्तम् २७ ॥

१—४ ॥ स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । १ पंक्तिः ८×५, २—४ अनुष्टुप् ॥

युद्धप्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

अमूः पारे पृदाक्व स्त्रिषप्ता निर्जरायवः । तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या ३ ' वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥१॥

भाषार्थः—(अमूः) वह (त्रिषप्ताः) तीन [ऊंचे, मध्यम और नीचे] स्थान में खड़ी हुई, (निर्जरायवः) जरायु [गर्भ की झिल्ली] से निकली हुई (पृदाक्वः) सर्पिणी [वा बाघिनी] रूप शत्रु सेनायें (पारे) उस पार [वर्तमान] हैं। (तासाम्) उनकी (जरायुभिः) जरायु रूप गुप्त चेष्टाओं सहित [वर्तमान] (अघायोः) बुरा चीतने वाले, (परिपन्थिनः) उलटे आचरण वाले शत्रु की (अक्ष्यौ) दोनों आंखों को (वयम्) हम (अपि व्ययामसि) ढके देते हैं ॥१॥

भावार्थः—जब शत्रु की सेना अपने पड़ावों से निकल कर घात स्थानों पर ऐसी खड़ी होवे, जैसे सर्पिणी वा बाघिन माता के गर्भ से निकल कर बहुत से उपद्रव फैलाती है, तब यद्ध कुशल सेनापति शत्रु सेना की गुप्त कपट चेष्टाओं का मर्म समझ कर ऐसी हलचल मचा दे कि शत्रु की दोनों आंखें हृदय की और मस्तक की मुंद जावें और वह घबराकर हारमान लेवे ॥१॥

सायणभाष्य में 'निर्जरायवः' के स्थान में 'निर्जरा इव' शब्द है ॥

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती ।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पिनाकम् इव) त्रिशूल सा (बिभ्रतो) उठाये हुए (कृन्तती) काटती हुई [हमारी सेना] (विषूची) सब ओर फैल कर (एतु) चले। और (पुनर्भुवाः) फिर जुड़ कर आई हुई [शत्रु सेना] का (मनः) मन (विष्वक्) इधर उधर उड़ाऊ [हो जावे] (अघायवः) बुरा चीतने वाले शत्रु लोग (असमृद्धाः) निर्धन हो जावें ॥२॥

भावार्थः—जैसे चतुर सेनापति अस्त्र शस्त्र वाली अपनी साहसी सेना के अनेक विभाग करके शत्रुओं पर झपट कर धावा मारता और उन्हें व्याकुल करके भगा देता है जिससे वह लोग फिर न तो एकत्र हो सकते और न धन जोड़ सकते हैं, ऐसे ही बुद्धिमान् मनुष्य कुमार्गगामिनी इन्द्रियों को वश में करके सुमार्ग में चलावें और आनन्द भोगें ॥२॥

सायण भाष्य में 'पुनर्भुवाः' के स्थान में [पुनर्भवाः] है ॥

न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः।
वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥३॥

भाषार्थः—(न) न तो (बहवः) बहुत से शत्रु (समशकन्) समर्थ हुए (न) और न (अर्भकाः) वह निर्बल हो जाने पर (अभिदाधृषुः) कुछ साहस कर सके, (वेणोः) बांस के (अद्गाः) मालपुओं के (इव) समान (अघायवः) बुरा चीतने वाले शत्रु (असमृद्धाः) निर्धन [होवें] ॥३॥

भावार्थः—राजा दुराचारी दुष्टों को ऐसा वश में करे कि वे एकत्र न हो सकें और न सता सकें, जैसे नीरस सूखे बांस आदितृण का भोजन पुष्टि-दायक नहीं होता, इसी प्रकार सर्वथा निर्बल कर दिये जाव। इसी प्रकार मनुष्य आत्म शिक्षा करें ॥३॥

सायणभाष्य में (दाधृषुः) के स्थान में [दादृशुः] और (अद्गाः) के स्थान में [उद्गाः] है ॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्।
इन्द्राण्यै तु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥४॥

भाषार्थः—(पादौ) हे हमारे दोनों पांव (प्रेतम्) आगे बढ़ो, (प्रस्फुरतम्) फुरती करे जाओ, (पृणतः) तृप्त करने वाले (गृहान्) कुटुम्बियों के पास [हमें] (वहतम्) पहुंचाओ। (प्रथमा) अपूर्व वा विख्यात (अजीता = अजिता) विना जीती और (अमुषिता) बिना लुटी हुई (इन्द्राणी) इन्द्र की शक्ति, महा सम्पत्ति (पुरः) [हमारे] आगे आगे (एतु) चले ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—१—महाप्रतापी शूरवीर पुरुषार्थी राजा विजय करके और बहुत धन प्राप्त करके सावधान होकर अपने घर को लौटे, और अपने मित्रों में अनेक प्रकार से उन्नति करके सुख भोग करे ॥

२—जितेन्द्रिय पुरुष आत्मस्थ परमेश्वर के दर्शन से परोपकार करके सुख प्राप्त करे ॥४॥

(इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये ॥ऋ० १ । २२ । १२ ॥)

इस मन्त्र में (इन्द्राणी) इन्द्र सूर्य वा वायु की शक्ति और (वरुणानी) वरुण जल की शक्ति ऐसा अर्थ श्रीमद्दयानन्द भाष्य में है ॥४॥

सूक्तम् २८ ॥

१—४ । चातन ऋषिः । अग्निर्देवता । १—३ अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

युद्ध प्रकरणम्—युद्ध का प्रकरण ॥

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्व्याविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥

भाषार्थः (रक्षोहा) राक्षसों का मार डालने वाला (अमीवचातनः) दुःख मिटाने वाला (देवः) विजयी (अग्निः) अग्निरूप सेनापति (द्व्याविनः) दुमुखे कपटी, (यातुधानान्) पीड़ा देने वाले (किमीदिनः) यह क्या है यह क्या है ऐसा करने वाले छली सूचकों वा लंपटों को (अप दहन्) मिटाकर भस्म करता हुआ (उप) हमारे समीप (प्र=अगात्) आ पहुंचा है ॥१॥

भावार्थः—जब सेनापति अग्निरूप होकर शतघ्नी [तोप] भुशुण्डी [बन्दूक], धनुष बाण तलवार आदि अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं का नाश करता है तब राज्य में शान्ति रहती है ॥१॥

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने संदह यातुधान्यः ॥२॥

भाषार्थः—(देव) हे विजयी सेनापति (यातुधानान्) दुःखदायी राक्षसों और (किमीदिनः) क्या क्या करने हारे छली सूचकों को (प्रति) एक एक करके (प्रति दह) जला दे। (कृष्णवर्तने) हे धुंआं धाड़ मार्ग वाले अग्नि रूप सेनापति (प्रतीचीः) सन्मुख धावा करती हुई (यातुधान्यः=०—नीः) दुःखदायिनी शत्रु सेनाओं को (सम् दह) चारों ओर से भस्म कर देवे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—युद्धकुशल सेनापति अपने घातस्थानों से तोप तुपक आदि द्वारा अग्नि के समान धुंआं धाड़ करता हुआ शत्रुओं के मुखियाओं और सेनादलों को व्याकुल करके भस्म कर देवे ॥२॥

सायण भाष्य में 'कृष्णवर्तने' के स्थान में 'कृष्णवर्त्मने' पद और उसका अर्थ 'हे कृष्णवर्त्मन्' है ॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

भाषार्थः—(या) जिस (शत्रुसेना) ने (शपनेन) शाप (कुवचन) से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दुःख की (मूरम्) मूल को (आदधे) आकर जमाया है। और (या) जिसने (रसस्य) रस (बलादि) के (हरणाय) हरण के लिए (जातम्) (हमारे) समूह को (आरेभे) हाथ लगाया है, (सा) वह (शत्रुसेना) (तोकम्) अपनी बढ़ती वा सन्तान को (अत्तु) खा लेवे ॥३॥

भावार्थः—रण क्षेत्र में जब शत्रु सेना कोलाहल मचाती, धावा मारती और लूट खसोट करती आगे बढ़ती आवे, तो युद्धकुशल सेनापति शत्रुओं में भेद डाल दे कि वह लोग आपस में लड़ मरें और अपने सन्तान अर्थात् हितकारियों का ही नाश करदें ॥३॥

सायण भाष्य में 'आदधे' के स्थान में 'आददे' पाठ है ॥

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् । अधास्मिथो विकेश्यो ३ ' वि घ्नतां यातुधान्यो ३ ' वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥

भाषार्थः—(यातुधानीः = ०—नी) दुःखदायिनी (शत्रुसेना) (पुत्रम्) (अपने) पुत्र को, (स्वसारम्) भली भांति काम पूरा करने हारी बहिन को (उत) और (नप्त्यम् = नप्त्रीम्) नातिनी वा धेवती को (अत्तु) खालेवे अर्थात् नष्ट करे। (अध) और (विकेश्यः) केश बिखेरे हुए वह सब (सेनायें) (मिथः) आपस में (विघ्नताम्) मर मिटें और (अराय्यः) दान अर्थात् कर न देने हारी (यातुधान्यः) दुःख पहुँचाने हारी (शत्रु प्रजायें) (वितृह्यन्ताम्) विविध प्रकार के दुःख उठावें ॥४॥

भावार्थः—चतुर सेनापति राजा अपनी बुद्धि बल से दुष्ट शत्रु सेना में हलचल मचादे कि वह सब घबराकर आपस में कट मर कर एक दूसरे को सताने लग और जो प्रजा गण हठ दुराग्रह करके कर आदि न देवें उनको दण्ड देकर वश में कर लेवे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायण भाष्य में 'यातुधानी' विसर्जनीय रहित व्याख्यात है ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ।

सूक्तम् २९ ॥

१—६ ॥ वसिष्ठ ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राज तिलक यज्ञ के लिए उपदेश ॥

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥

भाषार्थः—(येन) जिस (अभिवर्तेन) विजय करने वाले (मणिना) मणि से (प्रशंसनीय सामर्थ्य वा धन से) (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष (अभि) सर्वथा (ववृधे) बढ़ा था । (तेन) उसी से, (ब्रह्मणस्पते) हे वेद वा ब्रह्मा (वेदवेत्ता) के रक्षक परमेश्वर ! (अस्मान्) हम लोगों को (राष्ट्राय) राज्य भोगने के लिए (अभि) सब ओर से (वर्धय) तू बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार हमसे पहिले मनुष्य उत्तम सामर्थ्य और धन को पाकर महा प्रतापी हुये हैं, वैसे ही उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के अनन्त सामर्थ्य और उपकार का विचार करके हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ (मणि) विद्याधन और सुवर्ण आदि धन की प्राप्ति से सर्वदा उन्नति करके राज्य का पालन करें ॥१॥

मन्त्र १-३, ६ ऋग्वेद, मंडल १० सूक्त १७४ म० १-३ और ५ कुछ भेद से हैं । जैसे 'मणिना' के स्थान में 'हविषा' पद है, इत्यादि ॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे ब्रह्मणस्पते] (सपत्नान्), [हमारे] प्रतिपक्षियों को, और (याः) जो (नः) हमारी (अरातयः) कर न देने हारी प्रजायें हैं [उनको] (अभि) सर्वथा (अभिवृत्य) जीतकर (पृतन्यन्तम्) सेना चढ़ा कर लाने वाले शत्रु को [और उस पुरुष को] (यः) जो (नः) हमसे (दुरस्यति) दुष्ट आचरण करे, (अभि) सर्वथा (अभि तिष्ठ) तू दबा ले ॥२॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर पर श्रद्धा करके अपने स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार के शत्रुओं को यथायोग्य दंड देकर वश में रक्खे ॥२॥

टिप्पणी—'अरातयः' शब्द का अर्थ ऋ० १०। १७४। २। में सायणाचार्य ने भी अदानशील प्रजा किया है ॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!] (देवः) प्रकाशमय (सविता) लोकों के चलाने हारे, सूर्य्य और (सोमः) अमृत देने वाले, चन्द्रमा ने (त्वा) तेरी (अभि अभि) सब प्रकार से (अवीवृधत्) बड़ाई की है। और (विश्वा) सब (भूतानि) सृष्टि के पदार्थों ने (त्वा) तेरी (अभि) सब प्रकार [बड़ाई की है] (यथा) क्योंकि तू (अभिवर्तः) [शत्रुओं का] दबाने वाला (अससि) है ॥३॥

भावार्थः—सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों की रचना और उपकार से उस परमेश्वर की महिमा दीख पड़ती है, उसी अन्तर्यामी के दिये हुए आत्मबल से शूरवीर पुरुष रणभूमि में राक्षसों को जीत कर राज्य में शांति फैलाते हैं ॥३॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥

भाषार्थः—(अभिवर्तः) शत्रुओं का जीतने वाला, और (अभिभवः) हराने वाला, और (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियों का नाश करने वाला (मणिः) मणि [प्रशंसनीय सामर्थ्य], रत्न आदि राज्य चिह्न (मह्यम्) मुझ पर (राष्ट्राय) राज्य की वृद्धि के लिए और (सपत्नेभ्यः) वैरियों को (पराभुवे) दबाने के लिए (बध्यताम्) बांधा जावे ॥४॥

भावार्थः—राज्यलक्ष्मी का प्रभाव जताने के लिये राजा मणि रत्न आदि को धारण करके अपना सामर्थ्य बढ़ावे और राजसभा में राजसिंहासन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर विराजे कि जिससे शत्रु दल भयभीत होकर आज्ञाकारी बने रहें और राज्य में ऐश्वर्य की सदा वृद्धि होवे ॥४॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥

भाषार्थः—(असौ) वह (सूर्यः) लोकों को चलाने हारा सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है और (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत् = उत् अगात्) उदय हुआ है (यथा) जिससे कि (अहम्) मैं (शत्रुहः) शत्रुओं का मारने वाला, और (सपत्नहा) रिपु दल का नाश करने वाला होकर (असपत्नः) शत्रु रहित (असानि) रहूं ॥५॥

भावार्थः—राजा राज सिहासन पर विराजकर राजघोषणा करे कि जिस प्रकार पृथिवी पर सूर्य प्रकाशित है उसी प्रकार से यह राजघोषणा [ढढोरा] प्रकाशित की जाती है कि राज्य में कोई उपद्रव न मचावे, और न अराजकता फैलावे ॥५॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋ० १० । १५९ । १ का पूर्वार्ध है वहां 'वचः' के स्थान में 'भगः' है ॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

भाषार्थः—(यथा) जिससे कि (सपत्नक्षयणः) शत्रुओं का नाश करने वाला (वृषा) ऐश्वर्य वाला (विषासहिः) सदा विजय वाला (अहम्) मैं (अभिराष्ट्रः) राज्य पाकर (एषाम्) इन (वीराणाम्) वीर पुरुषों का (च) और (जनस्य) लोकों का (विराजानि) राजा रहूं ॥६॥

भावार्थः—राजा सिंहासन पर विराजकर राजघोषणा करते हुये शूरवीर योद्धाओं और विद्वान् जनों का सत्कार और मान करके शासन करे ॥६॥

सूक्तम् ३० ॥

१-४ ॥ आयुष्यकामोऽथर्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राज तिलक यज्ञ का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥१॥

भाषार्थः—(वसवः) हे श्रेष्ठ (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान महात्माओ! (इमम्) इस पुरुष की (रक्षत) रक्षा करो, (उत) और (आदित्याः) हे सूर्य समान तेज वाले विद्वानो! (यूयम्) तुम (अस्मिन्) इस राजा के विषय में (जागृत) जागते रहो। (सनाभिः) अपने बन्धु का (उत वा) अथवा (अन्यनाभिः) अबन्धु का, अथवा (पौरुषेयः) किसी और पुरुष का किया हुआ, (यः) जो (वधः) वध का यत्न है [वह] (इमम्) इस (इमम्) इस पुरुष को (मा मा) कभी न (प्रापत्) पहुंच सके ॥१॥

भावार्थः—राजा अपने सुपरीक्षित न्याय मन्त्री और युद्धमन्त्री आदि कर्मचारी शूरवीरों को राज्य की रक्षा के लिये सदा चैतन्य करता रहे कि कोई सजाती वा स्वदेशी वा विदेशी पुरुष प्रजा में अराजकता न फैलावे ॥१॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयी देवताओं! और (ये) जो (वः) तुम्हारे (पितरः) पितृगण (च) और (ये) जो (पुत्राः) पुत्रगण हैं, वह तुम सब (सचेतसः) सावधान होकर (मे) मेरे (इदम्) इस (उक्तम्) वचन को (शृणुत) सुनो (सर्वेभ्यः वः) तुम सब को मैं (एतम्) इसे [अपने को] (परि ददामि) सौंपता हूं, (एनम्) इस पुरुष के लिए [मेरे लिए] (स्वस्ति) कल्याण और मंगल (जरसे) स्तुति के अर्थ (वहाथ) तुम पहुंचाओ ॥२॥

भावार्थः—जो बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्रवित् विजयशील वृद्ध, युवा और ब्रह्मचारियों की सेवा में आत्मसमर्पण करता है वह पुरुष उन महात्माओं के सत्संग, उपदेश और सत्कर्मों से लाभ उठाकर संसार में अपनी स्तुति फैलाता है ॥२॥

टिप्पणी—'जरसे' शब्द का अर्थ "स्तुति के लिए" निघंटु ३। १४ निरु०. १०। ८ और सायणभाष्य ऋग्वेद १। २। २ के प्रमाण से किया है। यहां पर सायणभाष्य में "जरायै, जराप्राप्तिपर्यन्तम्" बुढ़ापे के लिए, "बुढ़ापे के आने तक" जो अर्थ है वह असंगत है, वेद में जीवन को स्वस्थ और स्तुतियोग्य रखने का उपदेश है। देखो—अथर्ववेद, का० ६ सू० १२० म० ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरहृताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

जहां पर पुण्यात्मा मित्र अपने शरीर का रोग छोड़ कर आनन्द भोगते हैं, वहां पर स्वर्ग में विना लंगड़े हुए और अंगों से विना टेढ़ हुए हम माता पिता और पुत्रों को देखते रहें।

और देखो यजुर्वेद २५ । २१ तथा ऋग्वेद १ । ८९ । ८

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

हे विद्वान् जनो ! कानों से हम शुभ सुनते रहें, हे पूज्य महात्माओ ! आंखों से हम शुभ देखते रहें। दृढ़ अङ्गों और शरीरों से स्तुति करते हुए हम लोग वह जीवन पावें जो विद्वानों का हितकारक है ॥

ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व १न्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वान् महात्माओ ! (ये) जो तुम (दिवि) सूर्य लोक में, (ये) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश वा मध्य-लोक में (ओषधीषु) ओषधियों में, (पशुषु) सब जीवों में और (अप्सु) व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं वा जल में (अन्तः) भीतर (स्थ) वर्तमान हो, (ते) वह तुम (अस्मै) इस पुरुष के लिये (जरसम्) कीर्तियुक्त (आयुः) जीवन (कृणुत) करो, [यह पुरुष] (अन्यान्) दूसरे प्रकार के (शतम्) सौ (मृत्यून्) मृत्युओं को (परि वृणक्तु) हटावे ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् सूर्य विद्या, भूमि विद्या, वायु विद्या, ओषधि अर्थात् अन्न, वृक्ष, जड़ी, बूटी आदि की विद्या, पशु अर्थात् सब जीवों की पालन विद्या और जल विद्या वा सूक्ष्म तन्मात्राओं की विद्या में निपुण हैं उनके सत्संग और उनके कर्मों के विचार से शिक्षा ग्रहण करके और पदार्थों के गुण, उपकार और सेवन को यथार्थ समझ कर मनुष्य अपना सब जीवन शुभ कर्मों में व्यतीत करें, और दुराचरणों में अपने जन्म को न गवां कर सुफल करें ॥३॥

टिप्पणी—'पशु' शब्द जीववाची है, देखो अथर्व० २ । ३४ । १ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।

जो पशुपति चौपाये और दोपाये पशुओं [अर्थात् जीवों] का राजा है। 'अप्सु' व्यापक सूक्ष्म तन्मात्राओं में। देखो श्रीमद्दयानन्द भाष्य, यजुर्वेद २७। २५ और २६ ॥

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः । येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥४॥

भाषार्थः—(येषाम्) जिन [तुम्हारे] (प्रयाजाः) उत्तम पूजनीय कर्म (उत वा) और (अनुयाजाः) अनुकूल पूजनीय कर्म, और (हुतभागाः) देने लेने के विभाग (च) और (अहुतादः) यज्ञ वा दान से बचे पदार्थों के आहार (देवाः) विजय करने हारे [वा प्रकाश वाले] हैं। और (येषाम् वः) जिन तुम्हारे (पञ्च) विस्तीर्ण [वा पांच] (प्रदिशः) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (विभक्ताः) अनेक प्रकार बटी हुई हैं (तान् वः) उन तुम को (अस्मै) इस [पुरुष] के हित के लिये [अपने लिये] (सत्रसदः) सभासद् (कृणोमि) बनाता हूं ॥४॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा विद्वान् पुरुष स्वार्थ छोड़कर दान करते हों और सब संसार के हित में दत्तचित्त हों, राजा उन महात्माओं को चुनकर अपनी राजसभा का सभासद् बनावे ॥४॥

यज्ञशेष के भोजन के विषय में भगवान् श्री कृष्ण महाराज ने भगवद्गीता में कहा है:—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ गीता. ४।३१॥

यज्ञ [दान वा देवपूजा] से बचे अमृत का भोजन करने वाले पुरुष सनातन ब्रह्म को पाते हैं। यज्ञ न करने वाले का यह लोक नहीं है, हे कौरवों में श्रेष्ठ! फिर उस का परलोक कहां से हो ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१—४ ब्रह्मा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। १, २ अनुष्टुप् ३, ४ त्रिष्टुप् उपरिष्टाज् ज्योतिः, ११×३+८=४१ ॥

पुरुषार्थानन्दोपदेशः—पुरुषार्थ और आनन्द के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥१॥

भाषार्थः—(इदम्) इस समय (वयम्) हम (आशानाम्) सब दिशाओं के मध्य (आशापालेभ्यः) आशाओं के पालने हारे, (चतुर्भ्यः) प्रार्थना के योग्य पुरुषों [अथवा, चार धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थों] के लिये (अमृतेभ्यः) अमर रूप वाले, (भूतस्य) संसार के (अध्यक्षेभ्यः) प्रधानों की (हविषा) भक्ति से (विधेम) सेवा करें ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उत्तम गुण वाले पुरुषों अथवा चतुर्वर्ग, धर्म, अर्थ, काम [ईश्वर में प्रेम] और मोक्ष की प्राप्ति के लिये सदा पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिये। इनके ही पाने से मनुष्य की सब आशायें वा कामनायें पूर्ण होती हैं ॥१॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे प्रकाशमय देवताओ ! (ये) जो तुम (आशानाम्) सब दिशाओं के मध्य (चत्वारः) प्रार्थना के योग्य [अथवा चार] (आशापालाः) आशाओं के रक्षक (स्थन) वर्तमान हो, (ते) वे तुम (नः) हमें (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी वा महामारी के (पाशेभ्यः) फंदों से और (अंहसो-अंहसः) प्रत्येक पाप से (मुञ्चत) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रयत्न पूर्वक सब उत्तम पदार्थों [अथवा चारों पदार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष] को प्राप्त करके सब क्लेशों का नाश करना चाहिये ॥२॥

अश्लामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (अश्लामः) श्रम रहित मैं (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति से (यजामि) पूजता हूं, (अश्लोणः) लंगड़ा न होता हुआ मैं (त्वा) तुझ को (घृतेन) [ज्ञान के] प्रकाश से [अथवा घृत से] (जुहोमि) स्वीकार करता हूं। (यः) जो (आशानाम्) सब दिशाओं में (आशापालः) आशाओं का पालन करने वाला, (तुरीयः) बड़ा वेगवान् परमेश्वर [अथवा, चौथा मोक्ष] (देवः) प्रकाश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मय है, (सः) वह (नः) हमारे लिये (इह) यहां पर (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य (आ+वक्षत्) पहुंचावे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य निरालस्य होकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं अथवा जो घृत से अग्नि के समान प्रतापी होते हैं वे शीघ्र ही जगदीश्वर का दर्शन करके [अथवा, धर्म, अर्थ, और काम की सिद्धि से पाये हुए चौथे मोक्ष के लाभ से] महासमर्थ हो जाते हैं ॥३॥

सायणभाष्य में 'अश्नामः' के स्थान में 'अश्नामः' और 'अश्नोणः' के स्थान में 'अश्नोणः' पाठ हैं ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

भाषार्थः—(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत) और (पित्रे) पिता के लिये (स्वस्ति) आनन्द (अस्तु) होवे, और (गोभ्यः) गौओं के लिये (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) आनन्द [होवे]। (विश्वम्) संपूर्ण (सुभूतम्) उत्तम ऐश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान वा कुल (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो, (ज्योक्) बहुत काल तक (सूर्यम्) सूर्य को (एव) ही (दृशेम) हम देखते रहें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य माता पिता आदि अपने कुटुम्बियों और अन्य माननीय पुरुषों और गौ आदि पशुओं से लेकर सब जीवों और संसार के साथ उपकार करते हैं, वे पुरुषार्थी सब प्रकार का उत्तम धन, उत्तम ज्ञान और उत्तम कुल पाते और वही सूर्य जैसे प्रकाशमान होकर दीर्घ आयु अर्थात् बड़े नाम को भोगते हैं ॥४॥

सूक्तम् ३२ ॥

१—४ ॥ ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्म देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविचारोपदेशः—ब्रह्म विचार का उपदेश ॥

इदं जनासो विदथं महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥

भाषार्थः—(जनासः) हे मनुष्यो ! (इदम्) इस बात को (विदथ) तुम जानते हो, वह [ब्रह्मज्ञानी] (महत्) पूजनीय (ब्रह्म) परब्रह्म का (वदिष्यति) कथन करेगा। (तत्) वह ब्रह्म (न) न तो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नो) और न (दिवि) सूर्यलोक में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है (येन) जिसके सहारे से (वीरुधः) यह उगती हुई जड़ी बूटी [लता रूप सृष्टि के पदार्थ] (प्राणन्ति) श्वास लेती हैं ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म भूमि वा सूर्य्य आदि किसी विशेष स्थान में वर्तमान नहीं है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधि अन्न आदि सब सृष्टि का नियमपूर्वक प्राणदाता है। ब्रह्मज्ञानी लोग उस ब्रह्म का उपदेश करते हैं ॥१॥

केनोपनिषद् में वर्णन है—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् विचचक्षिरे ॥ केन० उ० १। ३ ॥

न वहां आंख जाती है, न वाणी जाती है, न मन, हम न जानते हैं, न पहिचानते हैं, कैसे वह इस जगत् का अनुशासन करता है। वह जाने हुए से भिन्न है और न जाने हुए से ऊपर है। ऐसा हमने पूर्वजों से सुना है, जिन्हों ने हमें उसकी शिक्षा दी थी ॥

और भी केनोपनिषत् का वचन है—

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ केन उ० १। ८॥

जो प्राण द्वारा नहीं श्वास लेता है। जिस करके प्राण चलाया जाता है। उस को ही तू ब्रह्म जान, यह वह नहीं है जिस के पास वे बैठते हैं ॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षे) सब के भीतर दिखाई देने हारे आकाश रूप परमेश्वर में (आसाम्) इनका [लतारूप सृष्टियों का] (स्थाम) ठहराव है (श्रान्तसदाम् इव) जैसे थक कर बैठे हुए यात्रियों का पड़ाव। (वेधसः) बुद्धिमान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (अस्य भूतस्य) इस संसार का (आस्थानम्) आश्रय (विदुः) जानते हैं, (वा) अथवा (न) नहीं [जानते है] ॥२॥

भावार्थः—सूर्य आदि असंख्य लोक उसी परमब्रह्म में ठहरे हैं, वही समस्त जगत् का केन्द्र है। इस बात को विद्वान् लोग विधि और निषेध रूप विचार से निश्चित करते हैं जैसे ब्रह्म जड़ नहीं है किन्तु चैतन्य है, इत्यादि,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा जितना अधिक ब्रह्मज्ञान होता जाता है उतना ही वह ब्रह्म अत्यधिक अनन्त और अगम्य जान पड़ता है इससे वह ब्रह्मज्ञानी अपने को अज्ञानी समझते हैं ॥२॥

यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तद्‌द्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥३॥

भाषार्थः—(रोदसी=सि) हे सूर्य (च) और (भूमिः) भूमि ! (रेजमाने) कांपते हुए तुम दोनों ने (यत्) जिस [रस] को (निरतक्षतम्) उत्पन्न किया है, (तत्) वह (आर्द्रम्) रस (अद्य) आज (सर्वदा) सदा से (समुद्रस्य) सींचने वाले समुद्र के (स्रोत्याः) प्रवाहों के (इव) समान वर्त्तमान है ॥३॥

भावार्थः—जिस रस वा उत्पादन शक्ति को, परमेश्वर ने सूर्य और भूमि को (कंपमान) वश में रखके, सृष्टि के आदि में उत्पन्न किया था वह शक्ति मेघ आदि रस रूप से सदा संसार में सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का कारण है ॥३॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में (रोदसी इति) यह पदपाठ और उसका अर्थ [हे द्यावापृथिव्यौ] हे सूर्य और भूमि अशुद्ध है। यहाँ (रोदसी) एकवचन और केवल सूर्यवाची है क्योंकि (भूमिः च) [और भूमि] यह पद मन्त्र में वर्तमान है। फिर (भूमिश्च) का भी अर्थ [भूमि और द्युलोक] उक्त भाष्य में है ॥

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥

भाषार्थः—(विश्वम्) उस सर्वव्यापक [रस ने] (अन्याम्) एक [सूर्य्य वा भूमि] को (अभि) चारों ओर से (वार=ववार) घेर लिया, (तत्) वही [रस] (अन्यस्याम्) दूसरी में (अधि श्रितम्) आश्रित हुआ। (च) और (दिवे) सूर्य रूप वा आकाश रूप (च) और (पृथिव्यै) पृथिवी रूप (विश्ववेदसे) सबके जानने वाले [वा सब धनों के रखने वाले, वा सबमें विद्यमान ब्रह्म] को (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैंने किया है ॥४॥

भावार्थः—सृष्टि का कारण रस अर्थात् जल, सूर्य की किरणों से आकाश में जाकर फिर पृथिवी में प्रविष्ट होता, वही फिर पृथिवी से आकाश में जाता और पृथिवी पर आता है। इस प्रकार उन दोनों का परस्पर आकर्षण, जगत् को उपकारी होता है। विद्वान् लोग इसी प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीश्वर की अनन्त शक्तियों को विचार कर सत्कार पूर्वक उपकार लेकर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

यजुर्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ॥ यजु० ३।५ ॥

सबका आधार, सबमें व्यापक, सुखस्वरूप परमेश्वर बहुत्व के कारण [सब लोकों के धारण करने से] आकाश के समान और अपने फैलाव से पृथिवी के समान है ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१—४ ॥ शंतातिर्ऋषिः । आपो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सूक्ष्मतन्मात्राविचारः—सूक्ष्म तन्मात्राओं का विचार ॥

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥

भाषार्थः—[जो] (हिरण्यवर्णाः) व्यापनशील वा कमनीय रूप वाली (शुचयः) निर्मल स्वभाव वाली और (पावकाः) शुद्धि को जताने वाली हैं (यासु) जिनमें (सविता) चलाने हारा वा उत्पन्न करने हारा सूर्य और (यासु) जिनमें (अग्निः) [पार्थिव] अग्नि (जातः) उत्पन्न हुई । (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥१॥

भावार्थः—जैसे परमात्मा ने कामना के और खोजने के योग्य तन्मात्राओं के संयोग वियोग से अग्नि, सूर्य. और बिजुली, इन तीन तेजधारी पदार्थ आदि सब संसार को उत्पन्न किया है, उसी प्रकार मनुष्यों को शुभ गुणों के ग्रहण और दुर्गुणों के त्याग से आपस में उपकारी होना चाहिये ॥१॥

१—(आपः) = व्यापक तन्मात्रायें—श्रीमद्दयानन्द भाष्य, यजुर्वेद २७ । २५ ॥

२—(आपः) के विषय में सूक्त ४, ५ तथा ६ एवं सूक्त ४ में मनु महाराज का श्लोक भी देखें ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यासाम्) जिन तन्मात्राओं के (मध्ये) बीच में (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (राजा) राजा परमेश्वर (जनानाम्) सब जन्म वाले जीवों के (सत्यानृते) सत्य और असत्य को (अवपश्यन्) देखता हुआ (याति) चलता है। (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥२॥

भावार्थः—इन तन्मात्राओं का नियन्ता अर्थात् संयोजक और वियोजक (वरुण राजा) परमेश्वर है, वही सब जीवों के पुण्य पाप को देखकर यथावत् फल देता है। इन गुणों से उपकार लेकर मनुष्यों को सुख भोगना चाहिये ॥२॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) सब प्रकाशमय पदार्थ (दिवि) व्यवहार के योग्य आकाश में (यासाम्) जिनका (भक्षम्) भोजन (कृण्वन्ति) करते हैं और (याः) जो [तन्मात्रायें] (अन्तरिक्षे) सबके मध्यवर्ती आकर्षण में (बहुधा) अनेक रूपों से (भवन्ति) वर्त्तमान हैं। और (याः) जिन (सुवर्णाः) सुन्दर रूप वाली (आपः) तन्मात्राओं ने (अग्निम्) [बिजुली रूप] अग्नि को (गर्भम्) गर्भ के समान (दधिरे) धारण किया था, (ताः) वे [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥३॥

भावार्थः—अपरिमित तन्मात्रायें ईश्वरकृत परस्पर आकर्षण से संसार के (देवाः) सूर्य, अग्नि, वायु आदि सब पदार्थों के धारण और पोषण का कारण हैं। (देवाः) विद्वान् लोग इनके सूक्ष्म विचार से संसार में अनेक उपकार करके सुख पाते हैं ॥३॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

भाषार्थः—(आपः) हे तन्मात्राओ ! (शिवेन) सुखप्रद (चक्षुषा) नेत्र से (मा) मुझको (पश्यत) तुम देखो, (शिवया) अपने सुखप्रद (तन्वा) रूप से (मे) मेरे (त्वचम्) शरीर को (उप स्पृशत) तुम पास से छूओ। (याः) जो (आपः) तन्मात्रायें (घृतश्चुतः) अमृत बरसाने वाली, (शुचयः) निर्मल स्वभाव और (पावकाः) शुद्धि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जताने वाली हैं, (ताः) वह [तन्मात्रायें] (नः) हमारे लिये (शम्) शुभ करने हारी और (स्योनाः) सुख देने वाली (भवन्तु) होवें ॥४॥

भावार्थः—(आपः) तन्मात्रायें मुझे नेत्र से देखें, अर्थात् पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त हो और उससे हमारे शरीर और आत्मा स्वस्थ रहें। अथवा, (आपः) शब्द से तन्मात्राओं के ज्ञाता और वशयिता परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष का ग्रहण है। जो मनुष्य सृष्टि के विज्ञान से शरीर का स्वास्थ्य और आत्मा की उन्नति करके उपकारी होते हैं उनके लिये परमेश्वर की कृपा से सदा अमृत अर्थात् स्थिर सुख बरसता है ॥४॥

सूक्तम् ३४ ॥

१—५ ॥ अथर्वा ऋषिः । वीरुद् [लता] देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

विद्याप्राप्त्युपदेशः—विद्या की प्राप्ति का उपदेश ॥

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१॥

भाषार्थः—(इयम्) यह तू (वीरुत्) बढ़ती हुई [विद्या] (मधुजाता) ज्ञान से उत्पन्न हुई है, (मधुना) ज्ञान के साथ (त्वा) तुझको (खनामसि) हम खोदते हैं। (मधोः अधि) विद्या से (प्रजाता असि) तू जन्मी है (सा) सो तू (नः) हमको (मधुमतः) उत्तम विद्या वाले (कृधि) कर ॥१॥

भावार्थः—मधु शब्द [मन जानना—उ, न=ध] का अर्थ ज्ञान है। धात्वर्थ के अनुसार यह आशय है कि शिक्षा के ग्रहण, अभ्यास, अन्वेषण और परीक्षण से मनुष्य को उत्तम सुखदायक विद्या मिलती है ॥१॥

दूसरा अर्थ ॥

(इयम् वीरुत्) यह तू फैलती हुई बेल (मधुजाता) मधु [शहद] से उत्पन्न हुई है, (मधुना) मधु के साथ (त्वा) तुझको (खनामसि) हम खोदते हैं। (मधोः) अधि) वसन्त ऋतु से (प्रजाता असि) तू जन्मी है, (सा) सो तू (नः) हमको (मधुमतः) मधु रस वाले (कृधि) कर ॥१॥

भावार्थः—मधु शब्द उसी धातु [मन जानना] से सिद्ध होकर [शहद] के रस का वाचक है। इस अर्थ में विद्या को मधुलता अर्थात् शहद की बेल वा प्रेमलता माना है। (मधु) शहद वसन्त ऋतु में अनेक पुष्पों के रस से मधुमक्षिकाओं द्वारा मिलता है, इसी प्रकार (मधुना) प्रेम रस के साथ [खोदने] अर्थात् अन्वेषण और परीक्षण से विद्वान् लोग अनेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों से विद्यारूप मधु को पाकर (मधु) आनन्द रस का भोग करते हैं ॥१॥

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलंकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायंसि ॥२॥

भाषार्थः—(मे) मेरी (जिह्वायाः) रस जीतने वाली, जिह्वा के (अग्रे) सिरे पर (मधु) ज्ञान [वा मधु का रस] होवे और (जिह्वामूले) जिह्वा की मूल में (मधूलकम्) ज्ञान का लाभ [वा मधु का स्वादु] होवे। (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि में (इत्) ही (अह) अवश्य (असः) तू रह, (मम चित्तम्) मेरे चित्त में (उपायसि) तू पहुंच करती है ॥२॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्या को रटन, मनन और परीक्षण से प्रेम-पूर्वक प्राप्त करते हैं, तब विद्या उनके हृदय में घर करके सुख का वरदान देती है ॥२॥

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥३॥

भाषार्थः – (मे) मेरा (निक्रमणम्) पास आना (मधुमत्) बहुत ज्ञानवाला वा रस में भरा हुआ और (मे) मेरा (परायणम्) बाहिर जाना (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला वा रस में भरा हुआ होवे। (वाचा) वाणी से मैं (मधुमत्) बहुत ज्ञान वाला वा रसयुक्त (वदामि) बोलूं और मैं (मधुसन्दृश.) ज्ञान रूप वाला वा मधुर रूप वाला (भूयासम्) रहूं ॥३॥

भावार्थः – जो मनुष्य घर, सभा, राजद्वार, देश, परदेश आदि में आने जाने, निरीक्षण, परीक्षण, अभ्यास आदि समस्त चेष्टाओं और वाणी से बोलने अर्थात् शुभ गुणों के ग्रहण और उपदेश करने में (मधुमान्) ज्ञानवान् वा रस से भरे अर्थात् प्रेम में मग्न होते हैं, वही महात्मा (मधुसन्दृशः) रसीले रूप वाले अर्थात् संसार भर में शुभ कर्मी होकर उपकार करते हैं ॥३॥

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥४॥

भाषार्थः—(मधोः) मधुर रस से, मैं (मधुतरः) अधिक मधुर (अस्मि) होऊं,

. CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मदुघात्) लड्डू [वा मुलहटी ओषधि] से भी (मधुमत्तरः) अधिक मधुर रस वाला होऊं। (त्वम्) तू (माम् इत्) मुझसे ही (किल) निश्चय करके (वनाः) प्रेम कर, (इव) जैसे (मधुमतीम्) मधुर रसवाली (शाखाम्) शाखा से [अनुराग करते हैं] ॥४॥

भावार्थः—विद्या का रस सांसारिक स्वादिष्ट मिष्टान्न आदि रोचक पदार्थों से बहुत ही रसीला अर्थात् अधिक लाभदायक और उपकारी होता है। जैसे जैसे ब्रह्मचारी यत्नपूर्वक विद्या की लालसा करता है वैसे ही वैसे विद्या देवी भी उससे अनुराग करती है ॥४॥

मनु महाराज ने कहा है—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ मनु० ४।२०॥

जैसे जैसे ही पुरुष शास्त्र को पढ़ता जाता है, वैसे ही वैसे वह अधिक विद्वान् होता जाता है, और विज्ञान में उसकी रुचि होती है ॥

परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥५॥

भाषार्थः—(परितत्नुना) बहुत फैली हुई (इक्षुणा) लालसा के साथ [अथवा, ऊख जैसी मधुरता के साथ] (अविद्विषे) बैर छोड़ने के लिये (त्वा) तुझको (परि) सब ओर से (अगाम्) मैंने पाया है। (यथा) जिससे तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे तू (मत्) मुझसे (अपगाः) बिछुड़ने वाली (न) न (असः) होवे ॥५॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी पूर्ण अभिलाषा से विद्या के लिए प्रयत्न करता है तो कठिन से कठिन भी विद्या उसको अवश्य मिलती और अभीष्ट आनन्द देती है ॥५॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा २।३०।१ और ६।८।१—३ में भी है ॥

सूक्तम् ३५ ॥

१—४ ॥ अथर्वा ऋषिः । हिरण्यं देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सुवर्णादिधनलाभोपदेशः—सुवर्ण आदि धन प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जिस (हिरण्यम्) कामनायोग्य विज्ञान वा सुवर्णादि को (दाक्षायणाः) बल की गति रखने वाले, परम उत्साही, (सुमनस्यमानाः) शुभचिन्तकों ने (शतानीकाय) सौ सेनाओं के लिये (अबध्नन्) बांधा है। (तत्) उसको (आयुषे) लाभ के लिये, (वर्चसे) यश के लिये, (बलाय) बल के लिये और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये (ते) तेरे (बध्नामि) मैं बांधता हूं ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार कामना योग्य उत्तम विज्ञान और धन आदि से दूरदर्शी, शुभचिन्तक, शूरवीर विद्वान् लोग बहुत सेना लेकर रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य विज्ञान और धन की प्राप्ति से संसार में कीर्ति और सामर्थ्य बढ़ावें और अपना जीवन सुफल करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ३४ म० ५२ में है ॥

नैनं रक्षाँसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२॥

भाषार्थः—(न) न तो (रक्षांसि) हिंसा करने हारे राक्षस और (न) न (पिशाचाः) मांसाहारी पिशाच (एनम्) इस पुरुष को (सहन्ते) दबा सकते हैं, (हि) क्योंकि (एतत्) यह [विज्ञान वा सुवर्ण] (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम उत्पन्न (ओजः) सामर्थ्य है। (यः) जो पुरुष (दाक्षायणम्) बल की गति बढ़ाने वाले (हिरण्यम्) कमनीय तेजः स्वरूप विज्ञान वा सुवर्ण को (बिभर्त्ति) धारण करता है, (सः) वह (जीवेषु) सब जीवों में (आयुः) अपनी आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणुते) करता है ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था में गुणी माता, पिता और आचार्य से ब्रह्मचर्य सेवन करके शिक्षा पाते हैं, वह उत्साही जन सब विघ्नों को हटाकर दुष्ट हिंसकों के फंदे में नहीं फंसते हैं, और वही सत्कर्मी पुरुष विज्ञान और सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके संसार में यश पाते हैं, इसी का नाम दीर्घ आयु करना है ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ३४ म० ५१ में है ॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि। इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(अपाम्) प्राणों वा प्रजाओं के (तेजः) तेज, (ज्योतिः) कान्ति,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को (उत) और भी (वनस्पतीनाम्) सेवनीय गुणों के रक्षक विद्वानों की (वीर्याणि) शक्तियों को (अस्मिन् अधि) इस [पुरुष] में (धारयामः) हम धारण करते हैं, (इव) जैसे (इन्द्रे) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष में (इन्द्रियाणि) इन्द्र के चिह्न, [बड़े ऐश्वर्य वाले] होते हैं। [इसलिये] (दक्षमाणः) वृद्धि करता हुआ यह पुरुष (तत्) उस (हिरण्यम्) कमनीय विज्ञान वा सुवर्ण आदि को (बिभरत्) धारण करे ॥३॥

भावार्थः—विद्वानों के सत्संग से महा प्रतापी, विक्रमी, तेजस्वी, गुणी पुरुष वृद्धि करके विज्ञान और धन संचय करे और सामर्थ्य बढ़ावे ॥३॥

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४॥

भाषार्थः—(वयम्) हम लोग (त्वा) तुझको [आत्मा को] (समानाम्) अनुकूल (मासाम्) महीनों की (ऋतुभिः) ऋतुओं से और (संवत्सरस्य) वर्ष के (पयसा) दुग्ध वा रस से (पिपर्मि=पिपर्मः) पूर्ण करते हैं (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [वायु और अग्नि के समान गुण वाले] (ते) वह (विश्वे देवाः) सब दिव्य गुणयुक्त पुरुष (अहृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (अनु मन्यन्ताम्) [हम पर] अनुकूल रहें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य महीनों, ऋतुओं और वर्ष का अनुकूल विभाग करते हैं, वह वर्ष भर की उपज, अन्न, दूध, फल पुष्प आदि से पुष्ट रहते हैं, तथा वायु के समान वेग वाले, एवं अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् महात्मा उस पुरुषार्थी मनुष्य के सदा शुभचिन्तक होते हैं ॥४॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति प्रथमं काण्डम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०*:०*:०*०*:—

द्वितीयं काण्डम् ॥

—: * :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—*:०*:०*:०*—

सूक्तम् १ ॥

मन्त्राः १—५ ब्रह्म देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म के मिलने का उपदेश ॥

वे॒ नस्तत् प॑श्यत् पर॒मं गुहा॒ यद् यत्र॒ विश्वं॑ भव॒त्येक॑रूपम् ।
इ॒दं पृ॒श्निर॑दुह॒ज्जाय॑माना॒ः स्व॒र्विदो॑ अ॒भ्य॑नूषत व्रा॒ः ॥१॥

भाषार्थः—(वेनः) बुद्धिमान् पुरुष (तत्) उस (परमम्) अति श्रेष्ठ परब्रह्म को (पश्यत्=०—ति) देखता है, (यत्) जो ब्रह्म (गुहा=गुहायाम्) गुफा के भीतर [वर्त्तमान है], और (यत्र) जिसमें (विश्वम्) सब जगत् (एकरूपम्) एक रूप [निरन्तर व्याप्त] (भवति) वर्त्तमान है । (इदम्) इस परम ऐश्वर्य के कारण [ब्रह्मज्ञान] को (पृश्निः) [ईश्वर से] स्पर्श रखने वाले मनुष्य ने (जायमानाः) उत्पन्न होती हुई अनेक रचनाओं से (अदुहत्) दुहा है, और (स्वर्विदः) सुखस्वरूप वा आदित्यवर्ण ब्रह्म के जानने वाले (व्राः) वरणीय विद्वानों ने [उस ब्रह्म की] (अभि) विविध प्रकार से (अनूषत) स्तुति की है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—वह परम ब्रह्म सूक्ष्म तो ऐसा है कि वह (गुहा) हृदय आदि प्रत्येक सूक्ष्म स्थान का अन्तर्यामी है, और स्थूल भी ऐसा है कि संपूर्ण ब्रह्मांड उसके भीतर समा रहा है। धीर ध्यानी महात्मा उस जगदीश्वर की अनन्त रचनाओं से विज्ञान और उपकार प्राप्त करके मुक्त कण्ठ से आत्मसमर्पण करते हुए उसकी स्तुति करते और ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं ॥१॥

देखिये—यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ८।

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥१॥

(वेनः) पण्डित जन (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहितम्) वर्त्तमान (सत्) नित्यस्वरूप ब्रह्म को (पश्यत् = ०—ति) देखता है, (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रय वाला (भवति) होता है (च) और (तस्मिन्) उसमें (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (सम्) मिलकर (च) और (वि) अलग अलग होकर (एति) चेष्टा करता है, (सः) वह (विभूः) सर्वव्यापक परमात्मा (प्रजासु) प्रजाओं में [वस्त्र में सूत के समान] (ओतः) ताना किये हुए (च) और (प्रोतः) बाना किये हुए हैं ॥१॥

प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२॥

भाषार्थः—(विद्वान्) विद्वान् (गन्धर्वः) विद्या का धारण करने वाला पुरुष (अमृतस्य) अविनाशी ब्रह्म के (तत्) उस (परमम्) सब से ऊंचे (धाम) पद का (प्रवोचत्) उपदेश करे (यत्) जो पद (गुहा = गुहायाम्) गुफा [प्रत्येक अगम्य पदार्थ हृदय आदि] के भीतर है। (अस्य) इस [ब्रह्म] की (गुहा) गुफा [अगम्य शक्ति] में (त्रीणि) तीनों (पदानि) पद (निहिता = ०—तानि) ठहरे हुए हैं, (यः) जो [विद्वान् पुरुष] (तानि) उनको (वेद) जान लेता है, (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता (असत्) हो जाता है ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् महात्मा पुरुष उस परब्रह्म की महिमा का सदा उपदेश करते रहते हैं। वह ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। उसके ही वश में तीन पद, अर्थात् संसार की सृष्टि, स्थिति और नाश यह तीनों अवस्थायें, अथवा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान, तीनों काल, अथवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण वर्त्तमान हैं। जिस महापुरुष योगी को इन अवस्थाओं का विज्ञान व्यष्टि और समष्टि रूप से होता है। वह पिता का पिता अर्थात् महाविज्ञानियों में महाविज्ञानी होता है ॥२॥

१—यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—

२—मनु महाराज ने कहा है—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥मनु० २।१५३॥

अज्ञानी ही बालक होता है, वेदोपदेष्टा पिता होता है। [मुनिलोग] अज्ञानी को ही बालक, और वेदोपदेष्टा को ही पिता कहते हैं ॥१॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वही [ईश्वर] (नः) हमारा (पिता) पालक और (जनिता) जनक (उत) और (सः) वही (बन्धु) बान्धव है, वह (विश्वा = विश्वानि) सब (धामानि) पदों [अवस्थाओं] और (भुवनानि) लोकों को (वेद) जानता है (यः) जो [परमेश्वर] (एकः) अकेला (एव) ही (देवानाम्) दिव्य गुणवाले पदार्थों का (नामधः) नाम रखने वाला है (संप्रश्नम्) यथाविधि पूछने योग्य (तम्) उसको (सर्वा = सर्वाणि) सब (भुवना = ०—नानि) प्राणी (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर संसार का माता, पिता, बन्धु और सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है वही पिता के समान सृष्टि के पदार्थों का नामकरण संस्कार करता है, जैसे सूर्य, पृथिवी, मनुष्य, गौ, घोड़ा आदि। विद्वान् लोग सत्संग करके उस जगदीश्वर को पाते और आनन्द भोगते हैं ॥३॥

नामधः के स्थान पर सायणभाष्य, ऋग्वेद और यजुर्वेद में [नामधाः] है।

२—यह मन्त्र ऋ० १०।८२।३। तथा य० १७।२७। में कुछ भेद से है।

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे ३ ' षो अग्निः ॥४॥

भाषार्थः—(सद्यः) अभी (द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथिवीलोक में (परि = परीत्य) घूमता हुआ (आयम्) मैं [प्राणी] आया हूं (ऋतस्य) सत्य नियम के (प्रथमजाम्) पहिले से उत्पन्न करने वाले [परमेश्वर] को (उप = आतिष्ठे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं प्राप्त होता हूं, (इव) जैसे [श्रोतागण] (वक्तरि) वक्ता में [वर्त्तमान] (वाचम्) वाणी को [प्राप्त होते हैं]। (भुवनेष्ठाः) सम्पूर्ण जगत् में स्थित (एषः) यह परमेश्वर (धास्युः) पोषण करने वाला और (ननु) अवश्य करके (एषः) यह (अग्निः) अग्नि [सदृश उपकारी वा व्यापक परमात्मा] है ॥४॥

भावार्थः—तत्त्ववेत्ता पुरुष सूर्य और पृथिवी आदि प्रत्येक कार्य रूप पदार्थ के आकर्षण, धारणादि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा को साक्षात् करता है, जैसे श्रोता लोग वक्ता के बोलने पर उसकी वाणी के अभिप्राय को अपने आत्मा में ग्रहण करते हैं। वही ईश्वर वेदरूप सत्य नियम की सृष्टि के पहिले प्रकट करता और सब जगत् का धारण और पोषण करता रहता है, जैसे सूर्य का ताप अन्न आदि को परिपक्व करके, और जाठर अग्नि भोजन को पचा कर और उससे रुधिर आदि को उत्पन्न करके शरीर को पुष्ट करता है ॥४॥

पातंजल योगदर्शन में वर्णन है—

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ पाद ३ सूत्र २५ ॥

सूर्य में संयम से लोकों का ज्ञान [योगी को] होता है। अर्थात् वह सूर्य को केन्द्र मान कर सूर्य से लोकों का सम्बन्ध और परमेश्वर से सूर्य का सम्बन्ध अपनी विद्या द्वारा जान लेता है ॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५॥

भाषार्थः—(विश्वा = विश्वानि) सब (भुवनानि) लोकों में (परि = परीत्य) घूम कर (ऋतस्य) सत्य नियम के (विततम्) सब ओर फैले हुए (तन्तुम्) फैलने वाले [अथवा वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक] (कम्) प्रजापति परमेश्वर को (दृशे) देखने के लिये (आयम्) मैं [प्राणी] आया हूं। (यत्र) जिस [परमात्मा] में (देवाः) तेजस्वी महात्मा (अमृतम्) अमृत [अमरण अर्थात् जीवन की सफलता वा अनश्वर आनन्द] को (आनशानाः) भोगते हुए (समाने) साधारण (योनौ) आदि कारण ब्रह्म में [प्रविष्ट होकर] (अधि) ऊपर (ऐरयन्त) पहुंचे हैं ॥५॥

भावार्थः—ध्यानी धीर वीर पुरुष सामान्यतः समष्टि रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परीक्षा करके सब स्थान में व्यापक जगदीश्वर को साक्षात् करके आनन्द भोगते हैं, और यह अनुभव करते हैं कि सब महात्मा अपने को उस परम पिता में लय करके आत्मा की परम उन्नति करते हैं, अर्थात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो स्वार्थ छोड़ कर आत्मसमर्पण करते हैं वही परोपकारी सज्जन परम आनन्द की सिद्धि [मुक्ति] को सदा हस्तगत करते हैं ॥५॥

यजुर्वेद अ० ३२ म० १० इस प्रकार है।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१॥

वही हमारा बन्धु और उत्पन्न करने हारा है, और वही पोषण करने हारा परमेश्वर सब (धामानि) अवस्थाओं और (भुवनानि) लोकों को जानता है जिस तीसरे लोक परब्रह्म [प्राणियों और सब भुवनों के स्वामी] में तेजस्वी जन अमृत को भोगते हुए ऊपर पहुंचे हैं ॥

सूक्तम् २ ॥

१–५ ॥ गन्धर्वाप्सरा देवताः । १—३ त्रिष्टुप्, ४ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरः सर्वशक्तिमान्नित्युपदिश्यते—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है इसका उपदेश ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो तू (दिव्यः) दिव्य [अद्भुत स्वभाव] (गन्धर्वः) गन्धर्व [भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (भुवनस्य) सब ब्रह्मांड का (एकः) एक (एव) ही (पतिः) स्वामी, (विक्षु) सब प्रजाओं [वा मनुष्यों] में (नमस्यः) नमस्कार योग्य और (ईड्यः) स्तुति योग्य है। (तम्) उस (त्वा) तुझसे, (दिव्य) हे अद्भुत स्वभाव (देव) जयशील परमेश्वर ! (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (यौमि) मैं मिलता हूँ, (ते) तेरे लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, (दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (ते) तेरा (सधस्थानम्) सहवास है ॥१॥

भावार्थः—धीर, वीर, ऋषि, मुनि पुरुष उस परम पिता जगदीश्वर की सत्ता को अपने में और प्रत्येक पदार्थ में वैदिक ज्ञान की प्राप्ति से साक्षात् करके अभिमान छोड़ कर आत्मबल बढ़ाते हुए आनन्द भोगते हैं ॥१॥

१—(गन्धर्व) परमेश्वर का नाम है, देखिये—ऋग्वेद मं० ९ सू० ८३ म० ४।

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गन्धर्वः) पृथिवी आदि का धारण करने वाला, गन्धर्व, (इत्था) सत्यपन से (अस्य) इस जगत् की (पदम्) स्थिति की (रक्षति) रक्षा करता है और वह (अद्भुतः) आश्चर्यस्वरूप (देवानाम्) दिव्य गुणवालों के (जनिमानि) जन्मों अर्थात् कुलों की (पाति) चौकसी रखता है। (निधापतिः) पाश [बन्धन] का स्वामी (निधया) पाश से (रिपुम्) वैरी को (गृभ्णाति) पकड़ता है, (सुकृत्तमाः) बड़े बड़े सुकृती पुण्यात्मा लोगों ने (मधुनः) मधुर रस के (भक्षम्) भोग को (आशत) भोगा है ॥

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥२॥

भाषार्थः—(दिवि) प्रत्येक व्यवहार में (स्पृष्टः) स्पर्श किये हुए, (यजतः) पूजनीय, (सूर्यत्वक्) सूर्य को त्वचा अर्थात् रूप देने वाला, (दैव्यस्य) मदशील [प्रमत्त] मनुष्य के, अथवा आधिदैविक (हरसः) क्रोध का (अवयाता) हटाने वाला वह परमेश्वर (मृडात्) [सबको] आनन्द देवे, (यः) जो (गन्धर्वः) गन्धर्व, [म० १। भूमि, सूर्य, वेदवाणी वा गति का धारण करने वाला] (भुवनस्य) सब जगत् का (एकः) एक (एव) ही (पतिः) स्वामी (नमस्यः) नमस्कार योग्य और (सुशेवाः) अत्यन्त सेवा योग्य है ॥२॥

भावार्थः—वह सर्वव्यापी, सूर्यादि प्रकाशक जगत्पिता परमेश्वर हमें सामर्थ्य देकर हमारे कुक्रोध और आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्लेश का नाश करता है। उस अद्वितीय, सर्वसेवनीय परमेश्वर को उपासना से सब को आनन्द मिलता है ॥३॥

१—परमेश्वर आदित्यवर्ण रूप है, य० अ० ३१। १८ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (तमसः) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) परे होकर, (एतम्) इस (महान्तम्) पूजनीय वा सबसे बड़े (आदित्यवर्णम्) सूर्य को रूप देने वाले (पुरुषम्) अग्रगामी परमात्मा को (वेद) जानता हूं। (तम्) उस को (एव) ही (विदित्वा) जानकर [जीव] (मृत्युम्) मृत्यु को (अत्येति) लांघ जाता है, (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) चलने के लिए (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है ॥

२—परमेश्वर ने सूर्य और चन्द्र बनाया है। ऋग्वेद म० १०। सू० १९०। ३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

(धाता) विधाता ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्र को (यथापूर्वम्) पहिले के समान (अकल्पयत्) बनाया है ।

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३॥

भाषार्थः—(गन्धर्वः) गन्धर्व [म० १] (आभिः) इन (अनवद्याभिः) निर्दोष [अप्सराओं] के साथ (उ) अवश्य (संजग्मे) सङ्गति वाला था, और (अप्सरासु) अप्सराओं में [सब प्राणियों, वा अन्तरिक्ष वा बीज रूप जल में व्यापक, वा उत्तम रूप वाली अपनी शक्तियों में] (अपि) निःसन्देह (आसीत्) वर्त्तमान था । (आसाम्) इन [अप्सराओं] का (सदनम्) घर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में [वा समुद्र रूप गंभीर स्थान में] (मे) मुझको (आहुः) वे बताते हैं, (यतः) जिस स्थान से वे (च) अवश्य (आ यन्ति) आती (च) और (परा = परायन्ति) दूर चली जाती हैं ॥३॥

भावार्थः—(गन्धर्वः) भूमि आदि लोकों और वेदवाणी का धारक (अप्सराओं) अर्थात् सब प्राणियों और जल आदि सृष्टि के उपादान कारण पदार्थों में वर्त्तमान अपनी शक्तियों के साथ विराजमान रहता है, यह अद्भुत शक्तियां अति विस्तीर्ण आकाश में वर्त्तमान रहती, और मनुष्य आदि के शरीरों में परमाणुओं की संयोग दशा में दृश्य, और उनकी वियोग दशा में अदृश्य हो जाती हैं ॥३॥

टिप्पणी—(गन्धर्वः) और (अप्सरसः) शब्दों के लिए यजुर्वेद अ० १८ म० ३८-४३, छह मन्त्र देखें । वहां (अप्सरसः) शब्द है जो (अप्सराः) शब्द का पर्य्यायवाची है ।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयो ऽप्सरसो मुदो नाम ।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥१॥

(ऋताषाट्) सत्य नियम का सहने वाला, (ऋतधामा) सत्य प्रभाव वाला, (अग्निः) सर्व व्यापक, वा अग्नि समान रक्षक, परमेश्वर (गन्धर्वः) सूर्य, पृथिवी और वेद वाणी आदि का धारण करने वाला है । (तस्य) उसकी [गन्धर्व की बनाई] (मुदः) आनन्द देने वाली (ओषधयः) ओषधियां [अन्नादि वस्तुयें] (नाम) प्रसिद्ध रूप से (अप्सरसः) अप्सरायें अर्थात् आकाश वा प्राणों, वा जल में चलने वाली वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम रूप वाली सामग्री हैं। (सः) वह परमेश्वर (नः) हमारे लिए (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण कुल और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उस परमेश्वर को (स्वाहा) सुन्दर वाणी और (वाट्) आवाहन, और (ताभ्यः) उन सामग्रियों के लिए (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥

यह मन्त्र ३८ वां है। इसी प्रकार अन्य पांच मन्त्रों में (गन्धर्वः) शब्द (सूर्यः चन्द्रमाः, वातः, गज्ञः, मनः) शब्दों के साथ, और (अप्सरसः) शब्द (मरीचयः, नक्षत्राणि, आपः, दक्षिणाः, ऋक्सामानि) शब्दों के साथ क्रम से आए हैं।

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४॥

भाषार्थः—(अभ्रिये) अभ्र [मेघ] में [रहने वाली], (विद्युत् = ०—ति) बिजुली में [वर्त्तमान] और (नक्षत्रिये) नक्षत्रों में [रहने वाली] (याः) जो तुम सब (विश्वावसुम्) सब प्रकार के धनों के वा सब निवासस्थानों [लोकों] के स्वामी (गन्धर्वम्) गन्धर्व [पृथिवी, सूर्य वा वेदवाणी के धारण करने वाले परमेश्वर] की (सचध्वे) सेवा करती हो। (देवीः = हे देव्यः !) हे देवियो ! [दिव्य अर्थात् अद्भुत गुण वालियो !] (ताः) उन (वः) तुमको (नमः) नमस्कार (इत्) अवश्य (कृणोमि) मैं करता हूं ॥४॥

भावार्थः—यहां शक्तियों से शक्तिमान् परमेश्वर का ग्रहण है। संसार के प्रत्येक पदार्थ के अवलोकन से देखा जाता है कि यह अप्सराएं [परमेश्वर की अनन्त और अद्भुत शक्तियां] परमेश्वर के वशीभूत होकर सब सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त का कारण हैं। उन शक्तियों अर्थात् उनके स्वामी जगदीश्वर को बड़े छोटे प्राणी नम्रता से स्वीकार करते और उपकारों को विचार कर उपकारी बन कर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५॥

भाषार्थः—(याः) जो (क्लन्दाः) आवाहन करने हारी (तमिषीचयः) इच्छा की सींचने [पूरा करने] हारी, (अक्षकामाः) अवहारों में कामना करानेवाली, (मनोमुहः) मन को आश्चर्य में करने वाली हैं। (ताभ्यः) उन (गन्धर्वपत्नीभ्य.) गन्धर्व की पत्नी [परमेश्वर की रक्षा में रहने वाली] (अप्सराभ्यः) अप्सराओं [प्राणियों में रहने वाली ईश्वर शक्तियों] को मैंने (नमः) नमस्कार (अकरम्) किया है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस मन्त्र में भी अप्सराओं अर्थात् शक्तियों से उनके स्वामी परमेश्वर का ग्रहण है। वह परमेश्वर दुष्टों पर गरजता और शिष्टों का आवाहन करता, अनन्त बलवान्, उत्तम कर्मों में प्रीति कराने वाला और मनोहर स्वभाव है, सब जड़ और चेतन नमस्कार करके उस सर्वशक्तिमान् की आज्ञा मानते, और आनन्दित होते हैं ॥५॥

सूक्तम् ॥ ३ ॥

१—६ ॥ भेषजं देवता। अनुष्टुप् छन्दः ॥

शारीरिकमानसिकरोगनाशोपदेशः—शारीरिक और मानसिकरोग की निवृत्ति के लिए उपदेश।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात्।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो संगति योग्य ब्रह्म (अवत्कम्) नित्य चलने वाला जल प्रवाह [के समान] (पर्वतात् अधि) पर्वत के ऊपर से (अवधावति) नीचे को दौड़ता आता है। [हे औषध!] (तत्) उस [ब्रह्म] को (ते) तेरे लिए (भेषजम्) औषध (कृणोमि) मैं बनाता हूँ, (यथा) जिससे कि (सुभेषजम्) उत्तम औषध (असि) तू हो जावे ॥१॥

भावार्थः—हिम वाले पर्वतों से नदियां ग्रीष्म ऋतु में भी बहती रहती और अन्न आदि औषधों को हरा भरा करके अनेक विधि से जगत् का पोषण करती हैं, इसी प्रकार औषध का औषध, वह ब्रह्म सब के हृदय में व्यापक हो रहा है। सब मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन और सुविद्या ग्रहण से शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति करके सदा उपकारी बनें और आनन्द भोगें ॥१॥

आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥२॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे! (अङ्ग) हे [ब्रह्म!] (आत्) फिर (कुवित्) अनेक प्रकार से (या=यानि) जो (ते) तेरी [बनाई] (शतम्) सौ [असंख्य] (भेषजानि) भय निवर्त्तक औषधें हैं, (तेषाम्) उनमें से (त्वम्) तू आप (उत्तमम्) उत्तम गुण वाला, (अनास्रावम्) बड़े क्लेशों का हटाने वाला और (अरोगम्) रोग दूर करने वाला (असि) है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—संसार की सब ओषधियों में क्लेशनाशक और रोग-निवर्त्तक शक्ति का देने वाला वही ओषधियों का ओषधि परब्रह्म है ॥२॥

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥३॥

भाषार्थः—(असुराः) बुद्धिमान् पुरुष (इदम्) इस (अरुस्राणम्) व्रण [स्फोर = फोड़े] को पका कर भर देने वाली, (महत्) उत्तम ओषध को (नीचैः) नीचे नीचे (खनन्ति) खोदते जाते हैं। (तत्) वही विस्तृत ब्रह्म (आस्रावस्य) बड़े क्लेश की (भेषजम्) ओषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥३॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य बड़े बड़े परिश्रम और परीक्षा करके उत्तम ओषधों को लाकर रोगों की निवृत्ति करके प्राणियों को स्वस्थ करते हैं, वैसे ही विज्ञानियों ने निर्णय किया है कि उस परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ही मानसिक और शारीरिक रोगों की ओषधि उत्पन्न कर दी है ॥३॥

टिप्पणी—सायणभाष्य में (अनीनशत्) के स्थान में [अशीशमत्] पाठ है ॥

उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥४॥

भाषार्थः—(उपजीकाः) [परमेश्वर के] आश्रित पुरुष (समुद्रात् अधि) आकाश [समस्त जगत्] में से (भेषजम्) भयनिवारक ब्रह्म को, (उद्धरन्ति) ऊपर निकालते हैं। (तत्) वही [ब्रह्म] (आस्रावस्य) बड़े क्लेश का (भेषजम्) ओषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अशीशमत्) शान्त कर दिया है ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर का सहारा रखने वाले पुरुष संसार के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर को पाते हैं। और उस आदिकारण की महिमा को साक्षात् करके अपने सब क्लेशों का नाश करके आनन्द भोगते हैं ॥४॥

अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥५॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (अरुस्राणम्) फोड़े को पका कर भरने वाला (महत्) उत्तम [ओषध] (पृथिव्याः) पृथिवी से (अधि) ऊपर (उद्भृतम्) निकाल कर लाया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। (तत्) वही (ज्ञान) (आस्रावस्य) बड़े क्लेश का (भेषजम्) औषध है, (तत्) उसने (उ) ही (रोगम्) रोग को (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥५॥

भावार्थः—महाक्लेश नाशक ब्रह्मज्ञान रूप औषध पृथिवी आदि लोकों के प्रत्येक पदार्थ में वर्त्तमान है, मनुष्य उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करे, और रोगों की निवृत्ति करके स्वस्थचित्त होकर आनन्दित रहे ॥५॥

शं नो॑ भवन्त्वाप ओषधयः शि॒वाः। इन्द्र॑स्य व॒ज्रो अप॑ हन्तु रक्षस॑ आरा॒द् विसृ॑ष्टा इष॑वः पतन्तु र॒क्षसा॑म् ॥६॥

भाषार्थः—(आपः) जल और (ओषधयः) उष्णता धारण करने वाली वा ताप नाश करने वाली अन्नादि ओषधियें (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति कारक और (शिवा) मंगल दायक (भवन्तु) होवें। (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य वाले पुरुष का (वज्रः) वज्र (रक्षसः) राक्षस का (अपहन्तु) हनन कर डाले (रक्षसाम्) राक्षसों के (विसृष्टाः) छोड़े हुए (इषवः) बाण (आरात्) दूर (पतन्तु) गिरें ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर के अनुग्रह से हम पुरुषार्थ करते रहें, जिससे जल, अन्न आदि सब पदार्थ शुद्ध रह कर प्रजा में आरोग्यता बढ़ावें, और जैसे राजा चोर, डाकू आदि दुष्टों को दण्ड देता है कि प्रजा गण कष्ट न पावें और सदा आनन्द भोगें, ऐसे ही हम अपने दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ॥६॥

टिप्पणी—अजमेर के पुस्तक और सायणभाष्य की संहिता में 'अपः' पाठ है। और सायणभाष्य और पं० सेवकलाल मुद्रापित पुस्तक में 'आपः' पाठ है। हमने भी 'आपः' ही लिया है ॥

सूक्तम् ॥ ४ ॥

१—६ ॥ जङ्गिडो देवता। १—पूर्वार्धो द्विपदा त्रिष्टुप् ११२×२=२२, उत्तरार्धो द्विपदाऽनुष्टुप् ८×२=१६, २—६ अनुष्टुप्छन्दः ॥

मनुष्यः परमेश्वरभक्त्याऽऽयुः वर्धयेत्—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से आयु बढ़ावे।

दी॒र्घायु॒त्वाय॑ बृह॒ते रणा॑यारि॑ष्यन्तो दक्ष॑माणाः सदै॒व। म॒णिं वि॑ष्कन्ध॒दूष॑णं जङ्गि॒डं बि॑भृमो व॒यम् ॥१॥

भाषार्थः—(दीर्घायुत्वाय) बड़ी आयु के लिये और (बृहते) बड़े (रणाय) रण में (जीत) वा रमण के लिये (अरिष्यन्तः) [किसी को] न सताते हुए और (सदा एव) सदा ही, (दक्षमाणाः) वृद्धि करते हुए (वयम्) हम लोग (विष्कन्धदूष-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णम्) विघ्न निवारक और (मणिम्) प्रशंसनीय (जंगिडम्) शरीर भक्षक रोग वा पाप के निगलने वाले [औषध वा परमेश्वर] को (बिभृमः) हम धारण करें ॥१॥

भावार्थः—जगत् में कीर्त्तिमान् होना ही आयु का बढ़ाना है। मनुष्यों को परमेश्वर के ज्ञान और पथ्य पदार्थों के सेवन से पुरुषार्थ पूर्वक पाप और रोग रूप विघ्नों को हटा कर सत्पुरुषों की वृद्धि में अपनी और संसार की उन्नति समझ कर सदा सुख भोगना चाहिये ॥१॥

१—सायणभाष्य में (दक्षमाणाः) के स्थान में (रक्षमाणाः) पद है।

२—सायणाचार्य ने (जङ्गिड) वृक्ष विशेष वाराणसी में प्रसिद्ध बताया है॥

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ॥२॥

भाषार्थः—(सहस्रवीर्यः) सहस्रों सामर्थ्य वाला, (जंगिड.) शरीर भक्षक रोगों का निगलने वाला (मणिः) मणिरूप अति श्रेष्ठ औषध वा परमेश्वर (नः) हमको (जम्भात्) नाश से, (विशरात्) हिंसा से (विष्कन्धात्) विघ्न से, और (अभिशोचनात्) महा शोक से, (विश्वतः) सब प्रजा और (परि) सब ओर (पातु) बचावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वरक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर में श्रद्धालु होकर पथ्य पदार्थों का सेवन करता हुआ पुरुषार्थ करे कि आलस्य आदि दुर्व्यसन और हिंसक राक्षस आदि रोग न सतावें, किन्तु सुरक्षित होकर आनन्द प्राप्त करें ॥२॥

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (विश्वभेषजः) सर्वौषध (जङ्गिड) पापों वा रोगों का भक्षक [परमेश्वर वा औषध] (विष्कन्धम्) विघ्न को (सहते) दबाता है, (अयम्) यही (अत्रिणः) खाऊओं वा रोगों को (बाधते) रोकता है (अयम्) यही (नः) हमको (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥३॥

भावार्थः—उत्साही विचारवान् पुरुष परमेश्वर में विश्वास और पथ्य पदार्थों का सेवन करके अपनी दूरदर्शिता से मानसिक और शारीरिक बाधाओं को हटाकर अटल सुख भोगते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥

भाषार्थः—(देवैः) विद्वानों के (दत्तेन) दिये हुए [उपदेश किये हुए] (मणिना) मणि [अति श्रेष्ठ] (मयोभुवा) आनन्द के देने हारे (जङ्गिडेन) रोगों के भक्षक [परमेश्वर वा औषध] द्वारा (विष्कन्धम्) विघ्न और (सर्वा = सर्वाणि) सब (रक्षांसि) राक्षसों को (व्यायामे) संग्राम में (सहामहे) हम दबावें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्संग से दुःख नाशक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके पुरुषार्थ के साथ पथ्य द्रव्यों का सेवन करके विघ्नकारी दुष्ट जीवों पापों और रोगों को हटा कर सदा आनन्द में रहें ॥४॥

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५॥

भाषार्थः—(च) निश्चय करके (शणः) आत्मदान वा उद्योग (च) और (जङ्गिडः) रोग भक्षक परमेश्वर वा औषध दोनों, (मा) मुझको (विष्कन्धात्) विघ्न से (अभि) सर्वथा (रक्षताम्) बचावें । (अन्यः) एक (अरण्यात्) तप के साधन वा विद्याभ्यास से और (अन्यः) दूसरा (कृष्याः) कर्षण अर्थात् खोजने से (रसेभ्यः) रसों अर्थात् पराक्रमों वा आनन्दों के लिये (आभृतः) लाया जाता है ॥५॥

भावार्थः— आत्मदानी, उद्योगी, पथसेवी और परमेश्वर के विश्वासी पुरुष अपनी और सबकी रक्षा कर सकते हैं। वही योगी जन तपश्चर्या, विद्याभ्यास, और खोज करने से आत्मदान [ध्यानशक्ति] और परमेश्वर में श्रद्धा प्राप्त करके अनेक सामर्थ्य और आनन्द का अनुभव करते हैं ॥५॥

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (मणिः) प्रशंसनीय पदार्थ (कृत्यादूषिः) पीड़ा देने हारी विरुद्ध क्रियाओं में दोष लगाने वाला (अथो) और भी (अरातिदूषिः) अदानशीलों [कंजूसों] में दोष लगाने वाला है। (अथो) और भी (सहस्वान्) वही महाबली (जङ्गिडः) रोगभक्षक परमेश्वर वा औषध (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (तारिषत्) बढ़ती दशा करे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो कुचाली मनुष्य विरुद्ध मार्ग में चलते और सत्य पुरुषार्थों में आत्मदान अर्थात् ध्यान नहीं करते, वे ईश्वरीय नियम से महादु.ख उठाते हैं। सत्य पराक्रमी और पथ्य सेवी पुरुष उस महाबली परमेश्वर के गुणों के अनुभव से अपने जीवन को बढ़ाते हैं, अर्थात् संसार में अनेक प्रकार से उन्नति करके आनन्द भोगते और अपना जन्म सफल करते हैं ॥६॥

सूक्तम् ॥ ५ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता । १—३ अनुष्टुप्, ४—७ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

मनुष्यःसदैवोन्नतिप्रयत्नं कुर्य्यात्—मनुष्य सदैव उन्नति का उपाय करता रहे ॥

इन्द्र जुषस्व प्रवहा याहि शूर हरिभ्याम् ।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

भाषार्थः —(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (जुषस्व) तू प्रसन्न हो, (प्र वह) आगे बढ़, (शूर) हे शूर ! (हरिभ्याम्) हरणशील दिन और रात अथवा प्राण और अपान के हित के लिये (आ याहि) तू आ। (चारुः) मनोहर स्वभाव वाला (मदाय) हर्ष के लिये (चकानः) तृप्त होता हुआ तू, (इह) यहाँ पर (मतेः) बुद्धिमान् पुरुष के (सुतस्य) निचोड़ के (मधोः) मधुर रस का (पिब) पानकर ॥१॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि सदा प्रसन्न रहकर उन्नति करे और करावे, और सब के (हरिभ्याम्) दिन और रात अर्थात् समय को यद्वा प्राण और अपान वायु अर्थात् जीवन को परोपकार में लगावे और बुद्धिमानों के ज्ञान के सारांश [निचोड़] के रस का ग्रहण करके आनन्द भोगे ॥१॥

म० १—३, सामवेद उत्तरार्चिक प्रपाठक ३, अर्धप्रपाठक १ तृच २२ में कुछ भेद से हैं ॥

इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्व १ र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२॥

भाषार्थः— (इन्द्र) हे राजन् ! (नव्यः) नवीन [बहुत तृषित] के (न) समान, (दिवः) स्वर्ग के (न) सदृश (मधोः) मधुर रस से (जठरम्) अपने उदर को (पृणस्व) तृप्त कर। (अस्य) इस (सुतस्य) निचोड़ [तत्त्व] के (सुवाचः) सुन्दर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणियों से युक्त (मदाः) आनन्द (स्वर्) स्वर्ग में (न) जैसे [वर्त्तमान] (त्वा) तुझ को (उप अगुः) उपस्थित हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—राजा विद्वानों के साथ संभाषण करके बड़ी प्रीति से नीति का सारांश ग्रहण करके आनन्द प्राप्त करे ॥२॥

इस मन्त्र में तीनों 'न' सदृशतावाची हैं, और मन्त्र ३ में दोनों 'न' हैं।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥३॥

भाषार्थः—(यतीः) यति [यत्नशील] पुरुष के (न) समान (यः) जिस (तुराषाट्) शीघ्र जीतने वाले, (मित्रः) सब के प्रेरक (इन्द्रः) प्रतापी राजा ने (वृत्रम्) अन्धकार वा डाकू को (जघान) नाश किया था। (भृगुः) ज्ञान में परिपक्व ऋषि के (न) सदृश उस ने (वलम्) हिंसक दैत्य को (बिभेद) तोड़ फोड़ डाला और (सोमस्य) अपने ऐश्वर्य [ठाट] के (मदे) मद में (शत्रून्) शत्रुओं को (ससहे) हराया था ॥३॥

भावार्थः—महा प्रतापी राजा बड़े बड़े यत्न वाले और बुद्धिनिपुण वीरों का अनुकरण करके विरोधी शत्रुओं और अज्ञान का नाश करके प्रजा को आनन्द देते और आप आनन्द पाते हैं ॥३॥

यतीः पद के स्थान में सामवेद में उपरोक्त स्थल पर 'यतिः' पद है ॥

आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेहा नः ।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वे ह महे रणाय ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (सुतासः) यह निचोड़े हुए रस (त्वा) तुझमें (आ) यथाविधि (विशन्तु) प्रवेश करें, (कुक्षी) दोनों कुक्षियों को (पृणस्व) तू भर, और (विड्ढि=विध) शासन कर, (शक्र) हे शक्तिमान् (धिया) [अपनी अनुग्रह] बुद्धि से (नः) हमारे पास (आ+इहि—एहि) आ। (हवम्) पुकार (श्रुधि) सुन, (इन्द्र) हे राजन्! (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (जुषस्व) स्वीकार कर, और (स्वयुग्भिः) अपनी युक्तियों से (इह) यहां पर (महे) बड़े (रणाय) रण [जीतने] के लिये (आ) यथानियम (मत्स्व) हर्षित हो ॥४॥

भावार्थः—राजा अनेक श्रेष्ठ विद्याओं के रस से अपने आत्मा को सन्तुष्ट करे, और न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करता हुआ शत्रुओं को जीतकर आनन्द भोगे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायणभाष्य में 'विड्ढि' के स्थान में ('वृड्ढि' वर्धय) है ॥

इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के (वीर्याणि) पराक्रमों को (नु) शीघ्र (प्र) अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूँ (यानि) जिन (प्रथमानि) प्रसिद्ध, अथवा प्रथम श्रेणी के अति श्रेष्ठ कर्मों को (वज्री) उस वज्रधारी पुरुष ने (चकार) किया था, [अर्थात्] (अहिम्) सर्प के समान [हनन करने वाले], अथवा, बादल के समान [प्रकाश रोकने वाले] हिंसक जन को (अहन्) उसने मार डाला, (अनु) अनुक्रम से (अपः) [उस दुष्ट के] कर्म का (ततर्द) अपमान किया, और (पर्वतानाम्) मेघों के समान [अन्धकार से छाये हुए] अथवा पहाड़ों के समान [दृढ़ स्वभाववाले] दुराचारियों की, अथवा पहाड़ों में गुप्त (वक्षणाः) रुष्ट वा क्रुद्ध सेनाओं को (प्र) सर्वथा (अभिनत्) छिन्न भिन्न कर दिया ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वकालीन (इन्द्र) प्रतापी और (वज्री) तेजस्वी नीतिकुशल पुरुषों का यशकीर्तन इतिहास द्वारा करें, और उनका अनुकरण करके कुरीतियों के त्याग और सुरीतियों के प्रचार से आनन्द भोगें ॥५॥

मन्त्र ५ एवं ७ क्रमशः ऋग्वेद मं० १ सू० ३२ म० १—३ में आये हैं ॥

यहाँ 'प्रा' के स्थान पर ऋग्वेद में 'प्र' है ।

ईसाइयों की नवीन धर्म पुस्तक "New Testament" मत्ती पर्व १२ वाक्य ३४ में "सांप"—बुरे पुरुष के लिये आया है । "हे सांपों के वंश ! तुम बुरे हो के अच्छी बातें क्योंकर कह सकते हो क्योंकि जो मन में भरा है उसी को मुंह से बोलता है" ॥

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥६॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाले [सूक्ष्मदर्शी] पुरुष ने (पर्वते) बादल [के समान प्रकाश रोकने वाले जन समूह] में, अथवा पहाड़ पर (शिश्रियाणम्) ठहरे हुए (अहिम्) सर्परूप वा मेघरूप [हिंसक वा प्रकाश रोकने वाले] को (अहन्) वध किया, (अस्मै) इस [प्रयोजन] के लिये (स्वर्यम्) ताप वा पीड़ा देने वाला (वज्रम्) वज्र (ततक्ष) उसने तीक्ष्ण किया । (वाश्राः) रंभाती हुई (धेनवः इव) गौओं के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान, (स्यन्दमानाः) वेग से बहते हुए (अञ्जः) प्रकट (आपः) जल [जलरूप प्रजा गण] (समुद्रम्) समुद्र में [राजा के पास] (अव) उतर कर (जग्मुः) पहुंच गये ॥६॥

भावार्थः—पूर्वज विवेकी राजाओं ने दण्ड व्यवस्था स्थापन करके अपने प्रकट और गुप्त शत्रुओं को मारा, तब प्रजा गण प्रसन्न होकर उस हितकारी राजा को अभिनन्दन देने गये, जैसे रंभाती हुई गौएं बछड़ों के पास, अथवा वृष्टि के जल एकत्र होकर समुद्र में दौड़ कर जाते हैं। इसी प्रकार सब राजा और प्रजा गण परस्पर रहकर आनन्द मनाते रहें ॥६॥

मनु महाराज ने भी कहा है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ७।१८॥

दण्ड ही सब प्रजा पर शासन रखता, दण्ड ही सब ओर से रक्षा करता, दण्ड ही सोते हुओं में जागता है, विद्वान् लोग दण्ड को धर्म जानते हैं ॥

वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥

भाषार्थः—(वृषायमाणः) ऐश्वर्यवाले के समान आचरण करते हुए पुरुष ने (सुतस्य) उत्पन्न संसार के (त्रिकद्रुकेषु) तीन आवाहनों [उत्पत्ति, स्थिति और विनाश अथवा, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के विधानों] के निमित्तों में (सोमम्) ऐश्वर्य वा अमृत रस [कीर्त्ति] को (अवृणीत) अङ्गीकार किया और (अपिबत्) पान किया [आत्मा में दृढ़ किया]। (मघवा) उस पूजनीय पुरुष ने (सायकम्) काटने वाले बाण वा खड्ग और (वज्रम्) वज्र हथियार को (आ अदत्त) लिया और (अहीनाम्) बड़े घातकों [प्रकाश नाशक] मेघ वा सर्प रूप असुरों के बीच (प्रथमजाम्) प्रधानता से प्रसिद्ध अर्थात् अग्रगामी (एनम्) इस [समीपस्थ अर्थात् आत्मा में स्थित दुष्ट] को (अहन्) मार डाला ॥

भावार्थः—इस सूक्त के ५–७ तीन मन्त्रों में (इन्द्र) का (अहि) को मार कर उन्नति करने का वर्णन है और मन्त्र ७ में (त्रिकद्रुकेषु) पद तीन आवाहनों का द्योतक है। इसका प्रयोजन यह है कि जैसे तपस्वी, धैर्यवान्, शूर वीर पुरुषों ने जितेन्द्रिय वशिष्ठ होकर अपने आत्मिक, कायिक और समाजिक शत्रु कुक्रोध आदि को मारा, उन्होंने ही संसार की वृद्धि, पालन और नाश के कारण को खोजा, और तीन प्रकार की आत्मिक, शारीरिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सामाजिक उन्नति करके अमर अर्थात् महाकीर्त्तिमान् हुए, इसी प्रकार सब स्त्री पुरुष जितेन्द्रिय होकर संसार में उन्नति करके कीर्त्ति पाकर अमर हों और आनन्द भोगें ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—५ ॥ अग्निर्देवता ॥ १—४, ५ परार्धस्त्रिष्टुप्, ५ पूर्वार्धोऽनुष्टुप् ॥

राजधर्मेण मनुष्यः प्रतापी तेजस्वी च भूयात्—राजनीति से मनुष्य प्रतापी और तेजस्वी होवे ॥

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् ! (समाः) अनुकूल (ऋतवः) ऋतुयें (संवत्सराः) वर्ष, (ऋषयः) ऋषि लोग, और (यानि) जो (सत्या = सत्यानि तानि) सत्य कर्म हैं [वे सब] (त्वा) तुझ को (वर्धयन्तु) बढ़ावें । (दिव्येन) अपनी दिव्य वा मनोहर (रोचनेन) झलक से (सम्) भले प्रकार (दीदिहि) प्रकाशमान हो, और (विश्वाः) सब (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशाओं को (आभाहि) प्रकाशमान कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े प्रयत्न से अपने समय को यथावत् उपयोग से अनुकूल बनावें, ऋषि आप्त पुरुषों से मिल कर उत्तम शिक्षा प्राप्त करें, और सत्यसंकल्पी, सत्यवादी और सत्यकर्मी सदा रहें । इस प्रकार संसार में उन्नति करें और कीर्त्तिमान् होकर प्रसन्नचित्त रहें ॥१॥

१ से ५ तक के मन्त्र यजु० अ०२७ मन्त्र १, ३, ५, ६ में आये हैं । और वहां इनके ऋषि अग्नि माने हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्चा तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

भाषार्थः—(च) और (अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् ! (सम्) भले प्रकार (इध्यस्व) प्रकाशमान हो, (च) और (इमम्) [इस समाज] को (प्र=वर्धय) समृद्ध कर, (च) और (महते) बहुत (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (उत्=तिष्ठ) उठकर खड़ा हो। (अग्ने) हे विद्वान् (ते) तेरे (उपसत्तारः) पास बैठने हारे [उपासक] (मा रिषन्) कभी दुःख न पावें, (ते) तेरे [समीपवर्त्ती] (ब्रह्माणः) वेद जानने वाले ब्राह्मण (यशसः=यशसाः) यशस्वी (सन्तु) होवें, और (अन्ये) दूसरे (मा=मा सन्तु) न होवें ॥२॥

भावार्थ—:राजा को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से आत्मरक्षा, प्रजारक्षा, शिल्पविद्या, युद्ध विद्या आदि सामान्य और विशेष विद्याओं में निपुण होकर अपने सभासदों को निपुण करे, और विद्वानों का सत्कार तथा अविद्वानों का तिरस्कार करता हुआ सदा आनन्दयुक्त रहे ॥२॥

यजुर्वेद में (वर्धय, इमम्) के स्थान में [बोधय एनम्] और (ते, रिषन्, उपसत्तारः) के स्थान में [च, रिषत् उपसत्ता] पाठ है ॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्निवत् तेजस्वी राजन् ! (इमे) ये (ब्राह्मणाः) वेदवेत्ता विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (वृणते) चुनते हैं, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (नः) हमारे (संवरणे) चुनाव में (शिवः) मंगलकारी (भव) हो। (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (सपत्नहा) वैरियों का नाश करने वाला और (अभिमातिजित्) अभिमानियों का जीतने वाला (भव) हो, और (स्वे) अपने (गये) सन्तान पर 'वा धन पर' वा घर अर्थात् अधिकार में (अप्रयुच्छन्) चूक न करता हुआ, (जागृहि) जागता रह ॥३॥

भावार्थः—वेदवेत्ता चतुर सभासद् ऐसे पुरुषार्थी विद्वान् को अपना राजा वा प्रधान बनावें कि जो सब दोषों और दुष्टों को मिटाकर अपने अधिकार को सावधान होकर चलावे जिसमें सब राजा और प्रजा आनन्द युक्त रहें ॥३॥

यजुर्वेद में (अग्ने अभिमातिजित् भव) के स्थान में [नः अभिमातिजित् च] पाठ है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे तेजस्वी राजन् (स्वेन) अपने (क्षत्रेण) क्षत्रिय धर्म वा धन के साथ (सं रभस्व) उत्साह कर, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (मित्रेण) मित्र वर्ग के साथ (मित्रधाः) मित्रों का पुष्ट करने वाला होकर (यतस्व) प्रयत्न कर। और (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (सजातानाम्) तुल्य जन्म वालों के बीच (मध्यमेष्ठाः) पंचों में बैठने वाला, और (राज्ञाम्) क्षत्रियों के बीच में (विहव्यः) विशेष करके आवाहन योग्य होकर (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो ॥४॥

भावार्थः—नीति कुशल राजा धर्म कार्यों में स्फूर्ति रक्खे, और हितकारियों के साथ हित करे और सदैव न्याययुक्त व्यवहार रक्खे, जिससे सब छोटे और बड़ों में प्रेम के साथ उसकी कीर्ति बढ़े ॥४॥

यजुर्वेद अध्याय २७ म० ५ में ऐसा पाठ है—

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था ऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥

(अग्ने) हे अग्नि के तुल्य तेजस्विन् विद्वन् ! (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः = सु—आयुः) सुन्दर जीवन (सम् रभस्व) अच्छे प्रकार आरम्भ कर। (अग्ने) हे तेजस्विन् ! (मित्रेण) मित्र वर्ग के साथ (मित्रधेये) मित्रों के धारण करने में (यतस्व) यत्न कर। (सजातानाम्) समान अवस्था वालों में (मध्यमस्थाः) मध्यस्थ (एधि) हो, (अग्ने) हे न्याय प्रकाशक ! (राज्ञाम्) राजाओं के बीच (विहव्यः+सन्) विशेषकर बुलाने योग्य होकर (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशित हो ॥

अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यꣳ सहवीरꣳ रयिं दाः ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! [(अति) अत्यन्त (निहः) शत्रुनाशक शूर होकर। अथवा] (निहः) नीच गति वालों को (अति = अतीत्य) लांघकर, (सृधः) हिंसकों को (अति) लांघकर, (अचित्तीः) पापबुद्धि प्रजाओं को (अति) लांघकर, और (द्विषः) द्वेष करने वालों का (अति) तिरस्कार करके, (त्वम्) तू (हि) ही (विश्वा = विश्वानि) सब (दुरिता = ०—तानि) संकटों को (तर) पारकर, (अथ)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीरम्) वीर पुरुषों के सहित (रयिम्) धन (दाः) दे ॥५॥

भावार्थः—राजा सावधानी से प्रजा के सब क्लेशों को हरे, और ऐसा प्रयत्न करे कि प्रजा के सब पुरुष उत्साही, शूर, वीर और धनाढ्य हों ॥५॥

इस मन्त्र का पाठ यजुर्वेद २७ । ६ । में ऐसा है ।

अति निहो अतिस्निधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳसहवीराꣳरयिं दाः ॥

(अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (अति निहः) अत्यन्त शूर होकर (स्निधः) दुष्टों को (अति) हटाकर, (अचित्तिम्) अज्ञान को (अति) हटाकर, (अरातिम्) कंजूसपन को (अति) हटाकर (विश्वा दुरितानि) सब विघ्नों को (सहस्व) दबा दे, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीराम्) वीरों से युक्त सेना और (रयिम्) धन (दाः) दे ॥

१—(सूधः) के स्थान पर सायण भाष्य में (स्नधः) पद है ॥

सूक्तम् ७ ॥

१—५ ॥ ईश्वरो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी ।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥

भाषार्थः—(अघद्विष्टा) पाप में द्वेष [अप्रीति] करने वाली (देवजाता) विद्वानों में प्रसिद्ध (वीरुत्) ओषधि [ओषधि के समान फैली हुई ईश्वर शक्ति] (शपथयोपनी) शाप [क्रोध वचन को] हटाने वाली है । उसने (मत् अधि) मुझ से (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों [कुवचनों] को (प्र+अनैक्षीत्) धो डाला है, (इव) जैसे (आपः) जल (मलम्) मल को ॥१॥

भावार्थः—जैसे उत्तम ओषधि से शरीर के रोग मिट जाते, और जल से मलिन वस्त्र आदि शुद्ध होते हैं, वैसे ही पापी क्रोधी मनुष्य भी ब्रह्मज्ञान द्वारा पापों से छूट कर शुद्धात्मा हो जाते और ईश्वर के उपकारों को विचार कर उपकारी बनते और सदा आनन्द भोगते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश्च॑ सापत्नः श॒पथो॑ जाम्याः श॒पथ॑श्च॒ यः ।
ब्रह्मा यन्म॑न्यु॒तः श॒पात् सर्वं॒ तन्नो॑ अधस्प॒दम् ॥२॥

भाषार्थः—(च) और (यः) जो (सापत्नः) वैरियों का किया हुआ (शपथः) शाप [क्रोधवचन], (च) और (यः) जो (जाम्याः) कुल स्त्री का (शपथः) शाप है, और (ब्रह्मा) वेदवेत्ता ब्राह्मण (मन्युतः) क्रोध से (यत्) जो कुछ (शपात्) शाप दे, [क्रोध वचन कहे] (तत्) वह (सर्वम्) सब (नः) हमारे (अधस्पदम्) उद्योग के नीचे रहे ॥२॥

भावार्थः—यदि हमसे कोई वेदविरुद्ध खोटा कर्म हो जावे, जिस से हमारे शत्रु, हमारी स्त्रियां, हमारे ब्राह्मणादि विद्वान् लोग क्रुद्ध हों, तब हम पूरा पूरा प्रयत्न करें कि हमारे शिष्टाचार और वैदिक कर्म से शाप-मोचन हो जावे, अर्थात् वे सब हम से पूर्ववत् फिर प्रीति करने लगें ॥२॥

दि॒वो मू॒लम॑व॒ततं॑ पृथि॒व्या अ॒ध्यु॒त्ततम् ।
तेन॑ स॒हस्र॑काण्डे॒न॒ परि॑ णः पाहि विश्व॒तः ॥३॥

भाषार्थः—जो (मूलम्) मूल [तत्वज्ञान] (दिवः) सूर्यलोक से (अवततम्) नीचे को फैला हुआ है, और जो (पृथिव्याः अधि) पृथिवी पर से (उत्ततम्) ऊपर को फैला है। [हे ईश्वर!] (तेन) उस (सहस्रकाण्डेन) सहस्रों शाखा वाले [तत्वज्ञान] के द्वारा (विश्वतः) सब प्रकार से (नः) हमारी (परि) सब ओर (पाहि) रक्षा कर ॥३॥

भावार्थः—सूर्य द्वारा वृष्टि, प्रकाश आदि भूमि पर आते और भूमि से जल सूर्यलोक वा मेघमण्डल में जाता, और सब छोटे बड़े लोक परस्पर आकर्षण और धारण रखते हैं। इसी प्रकार ईश्वरीय अनन्त नियमों को देख कर सब प्रजागण राज नियमों में चल कर परस्पर उपकार करें ॥३॥

परि॒ मां परि॑ मे प्र॒जां परि॑ णः पाहि॒ यद् धन॑म् ।
अरा॑तिर्नो॒ मा ता॑रीन्मा नस्तारिषुरभिमा॑तयः ॥४॥

भाषार्थः—(माम्) मेरी (परि=परितः) सब प्रकार, (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा [पुत्र, पौत्र, भृत्य आदि] की (परि) सब प्रकार और (नः) हमारा (यत्) जो (धनम्) धन है [उसकी भी] (परि) सब प्रकार (पाहि) तू रक्षा कर। (अरातिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई अदानी, कंजूस, पुरुष (नः) हमें (मा तारीत्) न दबावे, और (अभिमातयः) अभिमानी लोग भी (नः) हमें (मा तारिषुः) न दबावें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मरक्षा, प्रजारक्षा, और धनरक्षा करके दुष्टों को न्याययुक्त दण्ड देकर सदा आनन्द से रहें ॥४॥

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥

भाषार्थः—(शपथः) [हमारा] क्रोधवचन (शप्तारम्) कुवचन बोलने वाले को (एतु) प्राप्त हो और (यः) जो (सुहार्त्) अनुकूल हृदय वाला [शुभचिन्तक] है (तेन) उस [मित्र] के साथ (नः) हमारा (सह=सहवासः) सहवास हो । (चक्षुर्मन्त्रस्य) आंख से गुप्त बात करने वाले, (दुर्हार्दः) दुष्टहृदय वाले पुरुष की (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) ही (शृणीमसि=०-मः) हम तोड़ डालें ॥५॥

भावार्थः—राजा को उचित है कि निन्दकों पर क्रोध और शुभचिन्तक सत्पुरुषों का आदर करे, और जो अनिष्टचिन्तक कपटी छली हों उनको भी दण्ड देता रहे ॥५॥

'चक्षुर्मन्त्रस्य' समासान्त पद को पदपाठ के विरुद्ध सायणाचार्य ने 'मन्त्रस्य चक्षुः' दो पद मान कर व्याख्या की है वह असाधु है । यह समस्त पद (दुर्हार्दः) पद का विशेषण है । इसका प्रयोग अ० १९ । ४५ । १ । में इस प्रकार है ।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ अ० १९ । ४५ । १ ॥

(अञ्जन) हे आंखें खोल देने वाले ! तू आंख से गुप्त बात करने वाले दुष्टहृदय वाले की पसलियां ही (शृण) तोड़ दे ॥

सूक्तम् ८ ॥

१—५ ॥ ब्रह्म देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३, ५ पंक्तिः ॥

पौरुषमुपदिश्यते—पौरुष का उपदेश किया जाता है ॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१॥

भाषार्थः—(भगवती)=० -त्यौ) दो ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) [अन्धकार से] छुड़ाने हारे (नाम) प्रसिद्ध (तारके) तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (उदगाताम्) उदय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं। वे दोनों (क्षेत्रियस्य) शरीर वा वंश के दोष वा रोग के (अधमम्) नीचे और (उत्तमम्) ऊँचे (पाशम्) पाश को (वि+मुच्यताम्) छुड़ा देवें ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्रमा संसार में उदय होकर अपने ऊपर और नीचे के अन्धकार का नाश करके प्रकाश करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य अपने छोटे और बड़े मानसिक, शारीरिक और वांशिक रोगों तथा दोषों को निवृत्त करके स्वस्थ और प्रतापी हों ॥१॥

अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (रात्री) रात (अप+उच्छतु) नष्ट हो जावे, (अभि—कृत्वरीः = ०—त्वर्यः) कतरने वाली वा हिंसाशील [कुवासनायें] (अप+उच्छन्तु) निकल जावें। (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को नाश करने वाली (वीरुत्) ओषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥२॥

भावार्थः—जैसे रात्रि के समाप्त होने पर आलस्य आदि का नाश होता, और जैसे ओषध से शरीर रोग निवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्यों को अपने और अपने वंश के अज्ञान का नाश करके ज्ञान के प्रकाश में आनन्दित रहना चाहिये ॥२॥

बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (ते) तेरे [दिये] (बभ्रोः) पोषण करने वाले, (अर्जुनकाण्डस्य) श्वेत स्तम्भ [डांठा] वाले (यवस्य) यव अन्न की (पलाल्या) पालन शक्ति से और (तिलस्य) तिल की (तिलपिञ्ज्या) चिकनाई से (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के रोग नाश करने वाली (वीरुत्) ओषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥३॥

भावार्थः—जैसे परिपक्व और नवीन यव, तिल आदि पदार्थों के यथावत् उपयोग से और ओषधों के सेवन से शारीरिक बल स्थिर रहता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम विद्या के प्रकाश से आत्मिक दोषों की निवृत्ति करके आनन्द प्राप्त करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नमः ईषायुगेभ्यः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] (लाङ्गलेभ्यः) हलों [की दृढ़ता] के लिये (नमः ते = नमस्ते) तुझे नमस्कार है और (ईषायुगेभ्यः) हरस [हल की लम्बी लकड़ी] और जूओं [की दृढ़ता] के लिये (नमः) नमस्कार है। (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के दोष वा रोग की नाश करने वाली (वीरुत्) ओषधि (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥४॥

भावार्थः—जैसे किसान लोग हल आदि उपयोगी और दृढ़ सामग्री के प्रयोग से अन्न उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य परमेश्वर के नियमों को साक्षात् करके उद्योग के साथ प्रयत्न से शरीर और अन्तःकरण की दृढ़ता करके उपकारी बनें और सदा आनन्द भोगें ॥४॥

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येभ्योः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥

भाषार्थः—(सनिस्रसाक्षेभ्यः) डबडबाती हुई आंखों वालों (रोगों से पीड़ित दीनों) के लिये (नमः) अन्न हो, और (संदेश्येभ्यः) यथार्थ दानशीलों के लिये (नमः) अन्न हो। (क्षेत्रस्य) खेत के (पतये) स्वामी के लिये (नमः) अन्न हो। (क्षेत्रियनाशनी) शरीर वा वंश के रोग की नाश करने वाली (वीरुत्) ओषध (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग को (अप+उच्छतु) निकाल देवे ॥५॥

भावार्थः—सब मनुष्य ऐसा सुप्रबन्ध करें कि दीन दुःखियों का यथावत् पालन हो, उद्योगी दानी पुरुष और किसान लोग अन्न आदि प्राप्त करें। और जैसे परमेश्वर ने ओषध आदि उत्पन्न करके उपकार किया है, उसी प्रकार सब को परस्पर उपकारी बनना चाहिये ॥५॥

टिप्पणी—(संदेश्येभ्यः) पद के स्थान पर सायणभाष्य में (संदेशेभ्यः) की व्याख्या है जो कि मन्त्रविरुद्ध होने से अशुद्ध है ॥

सूक्तम् ९ ॥

१—५ ॥ ईश्वरो देवता ॥ १, पूर्वार्धो द्विपदा त्रिष्टुप्, उत्तरार्धो द्विपदाऽनुष्टुप् २—५ अनुष्टुप् ॥

मनुष्य आत्मानमुन्नयेत्—मनुष्य अपने आप को ऊंचा करे ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१॥

भाषार्थः—(दशवृक्ष) हे प्रकाश वाले वा दर्शनीय विद्वानों के क्लेश काटने वाले वा स्वीकार करने वाले, अथवा, हे दस दिशाओं में सेवनीय परमेश्वर ! (इमम्) इस पुरुष को (रक्षसः) राक्षस [दुष्ट अज्ञान] की (ग्राह्याः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] से (अधि) सर्वथा (मुञ्च = मोचय) छुड़ा दे, (या) जिस [पीड़ा] ने (एनम्) इस [पुरुष] को (पर्वसु) सब जोड़ों में (जग्राह) पकड़ लिया है । (अथो) और (वनस्पते) हे वननीय, सेवनीय, सत्पुरुषों के पति [रक्षक] (एनम्) इस [पुरुष] को (जीवानाम्) जीवधारियों के (लोकम्) संसार में (उन्नय) ऊंचा उठा ॥१॥

भावार्थः—सब चर और अचर के सेवनीय और सत्पुरुषों के रक्षक परमेश्वर के उपकारों पर दृष्टि करके मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक क्लेशों और विघ्नों को हटाकर सदा अपनी उन्नति करे ॥१॥

१—सायणभाष्य में 'दशवृक्ष' पद का अर्थ "पलाश, उदुम्बर आदि दश वृक्षों के खंडों से बनाई हुई मणि" किया है ॥

२—ऐसा ही प्रयोग अथर्ववेद में आया है—

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् ॥ अ० ३ । ११ । १॥

(यदि) जो (एतत्) इस समय (एनम्) इस पुरुष को (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा ने (जग्राह) पकड़ लिया है (इन्द्राग्नि) हे सूर्य और अग्नि [के समान तेजस्वी विद्वान्] (तस्याः) उस [पीड़ा] से (एनम्) इस पुरुष को (प्रमुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [प्राणी] (आ+अगात्) आया है, (उत् अगात्) ऊपर आया है, (जीवानाम्) जीवितों (पुरुषार्थियों) के (व्रातम्) समूह में (अपि) भी (अगात्) प्राप्त हुआ है । वह (पुत्राणाम्) पुत्रों का (पिता) पिता (च) और (नृणाम्) मनुष्यों में (भगवत्तमः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (उ) अवश्य (अभूत्) हुआ है ॥२॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य ही जीवित होते हैं, इससे मनुष्य संसार में जन्म पाकर ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या ग्रहण करें, और पुरुषार्थी होकर पुत्रादि सब प्रजा का पालन पोषण करके महाप्रतापी और यशस्वी होवें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३॥

भाषार्थः—(अयम्) इस पुरुष ने (अधीतीः) अध्ययन योग्य शास्त्रों को (अधि+अगात्) अध्ययन किया है, और (जीवपुराः) प्राणियों के पुरों वा नगरों को (अधि+अगन्) जान लिया है। (हि) क्योंकि (अस्य) इस (पुरुष) के (शतम्) सौ [बहुत से] (भिषजः) वैद्य, (उत) और (सहस्रम्) सहस्र [बहुत से] (वीरुधः) औषध हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य वेदादि शास्त्रों के अध्ययन, मनुष्यों में निवास, विद्वानों के सत्संग, और पदार्थों के गुणों का बोध करने से संसार में उन्नति करते हैं ॥३॥

देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (ते) तेरे लिये (देवाः) प्रकाशमान (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानियों ने (उत) और (वीरुधः) ओषधियों ने (चीतिम् = चितिम्) ज्ञान (अविदन्) प्राप्त किया है। (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थों [सूर्य, चन्द्र, वायु आदि] ने (ते) तेरे लिये (चीतिम्) चैतन्यता को (भूम्याम् अधि) पृथिवी के ऊपर (अविदन्) प्राप्त किया है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् वेदवेत्ताओं के उपदेश से, तथा अन्न आदि ओषधियों, और सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आकाश आदि दिव्य पदार्थों में ईश्वरीय अटल नियमों से शिक्षा और उपकार प्राप्त करके ईश्वर की महिमा के ध्यान में निमग्न होकर और परोपकार करके आनन्द पाते हैं ॥४॥

यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (चकार) बनाया है, (सः) वही (निष्करत्) निस्तारा करेगा, (सः) वह (एव) ही (सुभिषक्तमः) बड़ा भारी वैद्य है। (सः) वह (एव) ही (शुचिः) पवित्रात्मा (भिषजा) वैद्य रूप से (तुभ्यम्) तेरे लिये (भेषजानि) ओषधों को (कृणवत्) करेगा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने इस सृष्टि को रचा है, वही जगदीश्वर अपने आज्ञाकारी, और पुरुषार्थी सेवकों का क्लेश हरण करके आनन्द देता है ॥५॥

टिप्पणी — 'भिषजा शुचिः' "वैद्यरूप से पवित्रात्मा" के स्थान में (भिषजां शुचिः) "वैद्यों में पवित्रात्मा" ऐसा पाठ अधिक ठीक दीखता है। लिपि प्रमाद से अनुस्वार नहीं लगा। नीचे के प्रयोगों को विचारिये ॥

१—ऋग्वेद में ऐसा पाठ है—

भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ऋ. २।३३।४॥

मैं तुझ को (भिषजाम्) वैद्यों में महावैद्य सुनता हूँ ॥

२—अथर्ववेद में ऐसा है—

आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ अ० ६।२४।२॥

(भिषजाम्) वैद्यों में अति पूजनीय वैद्य (आपः) परमेश्वर उन सब दुःखों को हटावे ॥

३—यजुर्वेद में ऐसा पाठ है—

सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा ॥य०२१।४०॥

बड़े रक्षक, परम ऐश्वर्य वाले, श्रेष्ठ (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) रक्षक को सुन्दर वाणी है ॥

सूक्तम् १० ॥

१-८ ॥ ब्रह्म देवता। १ त्रिष्टुप् २-७ प्रथम-द्वितीय-पंचम-षष्ठपादास्त्रिष्टुप्, तृतीय-चतुर्थौ च जगती छन्दः ॥

मुक्तिप्राप्त्युपदेशः—मुक्ति की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (त्वा) तुझ को (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के रोग से, (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी [महामारी दरिद्रता आदि] से, (जामिशंसात्) भक्षणशील मूर्ख के सताने से, (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (वरुणस्य) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (पाशात्) दंड पाश वा बन्ध से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं। (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (त्वा) तुमको (अनागसम्) निर्दोष (कृणोमि) करता हूं। (ते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) आकाश और पृथिवी (शिवे) मंगलमय (स्ताम्) होवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वेदज्ञान प्राप्ति से ऐसा प्रयत्न करे कि आत्मिक, शारीरिक, और दैवी विपत्तियों और मूर्खों के दुष्ट आचरणों से पृथक् रहे और न कभी कोई पाप करे जिस से परमेश्वर वा राजा उसे दण्ड न देवे, किन्तु सुशीलता के कारण संसार के सब पदार्थ आनन्दकारी हों ॥१॥

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्मृत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे लिये (अग्निः) अग्नि (अद्भिः सह) जल के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (सोमः) अमृत [ऐश्वर्य] (ओषधीभिःसह) अन्न आदि ओषधियों के साथ (शम्) सुखदायक हो। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के रोग से···[मन्त्र १] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को विज्ञानपूर्वक देश, काल, अग्नि, जल, वायु, खान, पान आदि पदार्थों का ठीक उपयोग करके स्वस्थ और ऐश्वर्यवान् रहकर आनन्द भोगना चाहिये ॥२॥

शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्मृत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥३॥

भाषार्थः—(ते) तेरे लिये (अन्तरिक्षे) मध्य में दीखने वाले आकाश में वर्त्तमान (शम्) सुखदायक (वातः) पवन (वयः) अन्न वा यौवन [शारीरिक बल] को (धात् = धेयात्) पुष्ट करे, (ते) तेरे लिये (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशायें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) होवें। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से [मन्त्र २] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न और परिश्रम करके अपने शरीरस्थ प्राण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु और देशस्थ वायु, और सब स्थानों को यथोचित शुद्ध और स्वस्थ रख कर आनन्द प्राप्त करे ॥३॥

(वयोधात् = वयःधात्) इन दो पदों के स्थान पर संहिता और पदपाठ के विरुद्ध सायणभाष्य में [वयोधाः] एक पद मानकर [वयसां पक्षिणां धाता धारयिता वयसाम् अन्नेन पोषयिता वा वातः] व्याख्या की है ॥

इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥४॥

भाषार्थः—(सूर्यः) चलने वा चलाने वाला सूर्यलोक (इमाः) इन (याः) जिन (देवीः) दिव्यगुणवाली (वातपत्नीः) वायु मण्डल से रक्षित (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशाओं को (अभि) सब प्रकार (विचष्टे) देखता है । (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से····· [मन्त्र २] ॥४॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपनी किरणों से आकर्षण करके पृथिवी आदि लोकों को धारण करता और वायु मण्डल पतन हो जाने से उन की रक्षा करता है, ऐसे ही मनुष्य को अपनी प्रजा का पोषण करके सुखी रहना चाहिये ॥४॥

तासु त्वान्तर्जरस्यादधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥५॥

भाषार्थः—(तासु) उन [दिशाओं] में (त्वा) तुझको (जरसि) स्तुति के (अन्तः) मध्य में (आ) भले प्रकार से (दधामि) धारण करता हूं, (यक्ष्मः) राज रोग [क्षयी आदि] और (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी [महामारी दरिद्रता आदि] भी (पराचैः) औंधे मुंह होकर (प्र+एतु) चली जावे । (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से···[मन्त्र २] ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य को परमेश्वर ने सब प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है, इसलिये पुरुष पुरुषार्थ करके सब विघ्नों को हटावे और कीर्त्तिमान् होकर सदा आनन्द भोगे और अमर होवे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—हमारे विचार में यहाँ 'जरसू' पद का अर्थ निघण्टु और निरुक्त आदि के अनुसार स्तुति वा कीर्त्ति है; [बुढ़ापे का अर्थ बेमेल है।] अथर्ववेद १। ३०। २। की टिप्पणी देखिये, और यजु० ३६। २४ भी विचारिये।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ य० ३६।२४॥

(तत्) परब्रह्म (चक्षुः) सब का द्रष्टा, (देवहितम्) विद्वान् देवताओं का हितकारी (शुक्रम्) वीर्यवान्, (पुरस्तात्) पहिले काल से वा सम्मुख होकर (उच्चरत्) ऊँचा चढ़ रहा है। [ऐसा ध्यान करते हुए] (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतु वा वर्ष तक (पश्येम) हम देखते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (शृणुयाम) हम सुनते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (प्रब्रवाम) हम बोलते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (अदीना.) दीनता रहित (स्याम) हम रहें, (च) और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक अर्थात् हम सर्वथा पुष्टांग रहें और कभी अङ्गहीन और धनहीन न हों॥

अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्॥६॥

भाषार्थः—(यक्ष्मात्) राज रोग [क्षयी आदि] से, (दुरितात्) दुर्गति से, और (अवद्यात्) अकथनीय निन्दनीय कर्म से (अमुक्थाः) तू मुक्त हो गया है, और (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्तन] से (च) और (ग्राह्याः) जकड़ने वाली पीड़ा के (पाशात्) पाश वा बन्ध से (उत्+अमुक्थाः) तू छूट चुका है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से··· [मन्त्र २] ॥६॥

भावार्थः—जैसे उत्तम वैद्य रोगी के रोगों को निवृत्त करके स्वस्थ कर देता है ऐसे ही ब्रह्मचारी वेद विज्ञान की प्राप्ति से निर्मल होकर सुखी होता है॥६॥

अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके। एवाहं त्वां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥७॥

भाषार्थः—(अरातिम्) कंजूसी वा बैर को (अहाः=अहासीः) तूने त्याग दिया है, (स्योनम्) हर्ष को (अविदः) तूने पाया है, (अपि) और भी (सुकृतस्य) सुकृत [पुण्य कर्म] के (भद्रे) आनन्दमय (लोके) लोक में (अभूः) तू वर्त्तमान हुआ है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से···[मन्त्र २] ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य वैर छोड़ कर उदार, उपकारी, सर्वमित्र बनकर अनेक बल अर्थात् मुक्ति के आनन्द को पाता है ॥७॥

पातञ्जल योगदर्शन, पाद ३ सूत्र २२ देखिये—

मैत्र्यादिषु बलानि।

मित्रता आदिकों में (संयम से) अनेक बल होते हैं ॥

टिप्पणी—'अभूः' के स्थान पर सायणभाष्य में 'अभूत्' माना है ॥

सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः। एवाहं
त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥८॥

भाषार्थः—(देवाः) [ईश्वर के] दिव्य सामर्थ्यों ने (ऋतम्) चलने वाले (सूर्यम्) सूर्य को (तमसः) अन्धकार की (ग्राह्याः) पकड़ से और (एनसः अधि) कष्ट से (मुञ्चन्तः) छुड़ा कर (निः+असृजन्) उत्पन्न किया है। (एव) ऐसे ही (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझ को (क्षेत्रियात्) शारीरिक वा वंशागत रोग से, (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि] से (जामिशंसात्) भक्षणशील मूर्ख के सताने से (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट चिन्ता] से और (वरुणस्य) दुष्कर्मों से रोकने वाले न्यायाधीश के (पाशात्) दण्ड पाश वा बन्ध से (मुञ्चामि) मैं छुड़ाता हूं। (ब्रह्मणा) वेद विज्ञान से (त्वा) तुझ को (अनागसम्) निर्दोष (कृणोमि) करता हूं, (ते) तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी=द्यौ०—वी०) आकाश और पृथिवी (शिवे) मंगलमय (स्ताम्) होवें ॥८॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर की शक्ति से सूर्य प्रलय वा ग्रहण के अन्धकार से छूट कर प्रकाशित होकर क्लेश हरण करता है, ऐसे ही मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सब विघ्नों का नाश करके आत्मिक बल बढ़ा कर संसार में उपकार करे, और आनन्द भोगे ॥८॥

सूक्तम् ११ ॥

१—५ ॥ पुरुषो देवता । १ पंचषट्का, २—५ प्रथमद्वितीयपादौ द्वयष्टका, तृतीयचतुर्थौ च द्विषट्का गायत्री ।

पुरुषार्थोपदेशः—पुरुषार्थ का उपदेश ॥

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयाँसमति समं क्राम ॥१॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] तू (दूष्याः) दूषित क्रिया का (दूषिः) खण्डनकर्ता (असि) है, और (हेत्या) बरछी का (हेतिः) बरछी (असि) है, (मेन्याः) वज्र का (मेनि) वज्र (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ी शक्ति दी है। जो पुरुष उन शक्तियों को परमेश्वर के विचार और अधिक गुण वालों के सत्संग से काम में लाते हैं वे निर्विघ्न होकर अन्य पुरुषों से अधिक उपकारी होकर आनन्द भोगते हैं ॥१॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयाँसमति समं क्राम ॥२॥

भाषार्थः—तू (स्रक्त्यः) गतिशील (असि) है, (प्रतिसरः) प्रत्यक्ष चलने वाला (असि) है और (प्रत्यभिचरणः) अभिचार [दुष्ट कर्म] का हटाने वाला (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी मनुष्य निष्कपट, सरल स्वभाव होकर अग्रगामी होता है वह संकटों को हटा कर आनन्द प्राप्त करता है। मन्त्र १ देखिये ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (तम् प्रति) उस [दुराचारी पुरुष] की ओर (अभिचर) चढ़ाई कर (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) वैर करता है, और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥३॥

भावार्थः—जो छली कपटी धर्मात्माओं से अप्रीति करें और जिन दुष्कर्मियों से धर्मात्मा लोग घृणा करते हों, राजा उन दुष्टों को वश में करके दण्ड देवे ॥३॥

२—सब मनुष्य शारीरिक और मानसिक रोगों को हटा कर सत्य धर्म में प्रवृत्त हों और प्रयत्न पूर्वक सदैव उन्नति करें ॥३॥

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥

भाषार्थः—हे राजन् ! तू (सूरिः) विद्वान् (असि) है, (वर्चोधाः) अन्न वा तेज का धारण करने वाला (असि) है, (तनूपानः) हमारे शरीरों का रक्षक (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् प्रतापी राजा अन्न आदि से अपनी प्रजा की सदा रक्षा और उन्नति करे ॥४॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

भाषार्थः—(शुक्रः) तू वीर्यवान् (असि) है (भ्राजः) प्रकाशमान (असि) है, (स्वः) तू स्वर्ग [सुखधाम] (असि) है, (ज्योतिः) [सूर्यादि के समान] तेजः स्वरूप (असि) है। (श्रेयांसम्) अधिक गुणी [परमेश्वर वा मनुष्य] को (आप्नुहि) तू प्राप्त कर, (समम्) तुल्य बल वाले [मनुष्य] से (अति=अतीत्य) बढ़ कर (क्राम) पद आगे बढ़ा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा महाशक्तिमान्, प्रतापी, और ऐश्वर्यवान् ईश्वर पर श्रद्धालु होकर अपनी और प्रजा की सदा वृद्धि करे ॥५॥

सूक्तम् १२ ॥

१—८ ॥ विश्वेदेवा देवताः । १—६ त्रिष्टुप्, ७, ८ अनुष्टुप्छन्दः ॥

सर्वरक्षोपदेशः—सबकी रक्षा के लिये उपदेश ॥

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) सूर्य और पृथिवी (उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) मध्य में दीखने वाला आकाश, (क्षेत्रस्य) निवास स्थान, संसार की (पत्नी) रक्षा करने वाली [दिशा वा वृष्टि], (अद्भुतः) आश्चर्यस्वरूप (उरुगायः) विस्तृत स्तुति वाला परमेश्वर, (उत) और (उरु) विस्तीर्ण (वातगोपम्) प्राण वायु से रक्षा किया हुआ (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्ती अन्तःकरण [ये सब जो देव हैं] (ते) वे सब (इह) यहां पर [इस जन्म में] (मयि) मुझ (तप्यमाने) तपश्चर्या करते हुए पर (तप्यन्ताम्) ऐश्वर्य वाले होवें ॥१॥

भावार्थः—जब मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि नियमों के पालन से विद्या ग्रहण करके देख भाल करता है, परमेश्वर और सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थ उस पुरुषार्थी पुरुष को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं ॥१॥

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे दिव्य गुण वाले महात्माओ ! (ये) जो तुम (यज्ञियाः) सत्कार योग्य (स्थ) हो, (इदम्) वह (शृणुत) सुनो, (भरद्वाजः) पुष्टिकारक अन्न एवं बल वा विज्ञान का धारण करने वाला, परमेश्वर (मह्यम्) मुझ को (उक्थानि) वेद वचनों का (शंसति) उपदेश करता है । (सः) वह मनुष्य (दुरिते) बड़े कठिन (पाशे) फांस में (बद्धः) बंधा हुआ (नि+युज्यताम्) आज्ञा में रहे, (यः) जो मनुष्य (अस्माकम्) हमारे (इदम्) इस [सन्मार्ग में लगे हुए] (मनः) मन को (हिनस्ति) सतावे ॥२॥

भावार्थः—विद्वानों को परस्पर मिल कर ब्रह्मविचार करना चाहिये । वह सर्वशक्तिमान् दुष्कर्मियों को क्लेश और सुकर्मियों को आनन्द देता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सर्वपोषक ने यह आज्ञा वेद द्वारा मनुष्य मात्र के लिये प्रकाशित की है ॥२॥

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥

भाषार्थः—(सोमप) हे ऐश्वर्य के रक्षक [वा अमृत पीने वाले वा अमृत की रक्षा करने वाले] (इन्द्र) राजन् ! परमेश्वर ! (इदम्) इस [वचन] को (शृणुहि) तू सुन (यत्) क्योंकि (शोचता) शोक करते हुए (हृदा) हृदय से (त्वा) तुझे (जोहवीमि) आवाहन करता रहता हूं । (इव) जैसे (कुलिशेन) कुठारी से (वृक्षम्) वृक्ष को [काटते हैं वैसे ही] मैं (तम्) उस [मनुष्य] को (वृश्चामि) काट डालूं (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदम्) [सन्मार्ग में लगे हुए] (मनः) मन को (हिनस्ति) सतावे ॥३॥

भावार्थः—जैसे प्रजा गण दुष्टों से पीड़ित होकर राजा के सहाय से उद्धार पाते हैं, वैसे ही बलवान् राजा उस परम पिता जगदीश्वर के आवाहन से पुरुषार्थ करके अपने कष्टों से छुटकारा पावे ॥३॥

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥

भाषार्थः—(तिसृभिः) तीन (अशीतिभिः) व्याप्तियों [अर्थात् ईश्वर, जीव, और प्रकृति] से (सामगेभिः=०—गै.) मोक्ष विद्या [ब्रह्म विद्या] के गाने वाले (आदित्येभिः=०—त्यै.) सर्वथा दीप्यमान, (वसुभिः) प्रशस्त गुण वाले (अङ्गिरोभिः) ज्ञानी पुरुषों के साथ (पितृणाम्) रक्षक पिताओं [पिता के समान उपकारियों] के (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्नदानादि पुण्य कर्म (नः) हमें (अवतुः) तृप्त करें, (दैव्येन) विद्वानों के सम्बन्धी (हरसा) तेज से (अमुम्) उस [दुष्ट] को (आ=ददे) मैं पकड़ता हूँ ॥४॥

भावार्थः—राजा बहुत से सत्यवादी, सत्यपराक्रमी, सर्वहितैषी, निष्कपटी, विद्वानों की सम्मति और सहाय और बड़े-बड़े पुरुषों के पुण्य कर्मों के अनुकरण, तथा दुष्टों को दण्ड दान से प्रजा में शान्ति स्थापित करके सदा सुखी रहे ॥४॥

द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) हे सूर्य और पृथिवी ! (मा) मुझ पर (अनु = अनुलक्ष्य) अनुग्रह करके (आ) भले प्रकार (दीधीथाम्) दोनों प्रकाशित हों, (विश्वे) हे सब (देवासः = ०—वाः) उत्तम गुण वाले महात्माओ ! (मा) मुझ पर (अनु) अनुग्रह करके (आ) भले प्रकार (रभध्वम्) उत्साही बनो । (अङ्गिरसः) हे ज्ञानी पुरुषो ! (पितरः) हे रक्षक पिताओ ! (सोम्यासः = ०—म्याः) हे सौम्य, मनोहर गुण वाले विद्वानो ! (अपकामस्य) अनिष्ट का (कर्त्ता) कर्त्ता (पापम्) दुःख (आ = ऋच्छतु) प्राप्त करे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए कि सूर्य और पृथिवी अर्थात् संसार के सब पदार्थ अनुकूल रहें और बड़े २ उपकारी विद्वानों के सत्संग से डाकू उचक्के आदि को यथोचित दण्ड देकर और वश में करके शान्ति रक्खे ॥५॥

अतीव॒ यो म॑रुतो॒ मन्य॑ते नो॒ ब्रह्म॑ वा॒ यो नि॒न्दिष॒त् क्रिय॑माणम् ।
तपूँ॑षि॒ तस्मै॑ वृजि॒नानि॑ सन्तु ब्रह्म॒द्विषं॒ द्यौर॑भि॒संत॑पाति ॥६॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शत्रुओं को मारने वाले शूरो ! (यः) जो [दुष्ट पुरुष] (नः) हम पर (अतीव=अतीत्य एव) हाथ बढ़ा कर (मन्यते = मानयते) मान करे, (वा) अथवा (यः) जो (क्रियमाणम्) उपयुक्त किये हुए (ब्रह्म) [हमारे] वेद विज्ञान वा धन की (निन्दिषत्) निन्दा करे, (वृजिनानि) [उसके] पाप कर्म (तस्मै) उस के लिये (तपूंषि) तापकारी [तुपक रूप] (सन्तु) हों । (द्यौः) दीप्यमान परमेश्वर (ब्रह्मद्विषम्) वेद विरोधी जन को (अभिसंतपाति) सब प्रकार से सन्ताप दे ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदों की सर्वोपकारी आज्ञाओं का उल्लंघन करे, उसे शूरवीर पुरुष योग्य दण्ड देवें, वह दुराचारी परमेश्वर की न्याय व्यवस्था से भी कष्ट भोगता है ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ६ । ५२ । २ में है ॥

सप्त॑ प्रा॒णान॒ष्टौ म॒न्यस्तांस्ते॑ वृश्चामि॒ ब्रह्म॑णा ।
अया॑ यमस्य सा॒दन॒मग्नि॑दूतो॒ अरं॑कृतः ॥७॥

भाषार्थः—[हे दुष्ट जीव] (ते) तेरे (तान्) उन [प्रसिद्ध] (सप्त) सात (प्राणान्) प्राणों को और (अष्टौ) आठ (मन्यः = मन्याः) नाड़ियों को (ब्रह्मणा) वेद नीति से (वृश्चामि) मैं तोड़ता हूं । तू (अग्निदूतः) अग्नि को दूत बनाता हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अरंकृतः) शीघ्रता करता हुआ (यमस्य) न्यायकारी वा मृत्यु के (सादनम् = सदनम्) घर में (अयाः) आ पहुंचा है ॥७॥

भावार्थः—सात प्राण अर्थात् दो आंख, दो नथनें, दो कान और एक मुख एवं आठ प्रधान नाड़ियाँ वा अवयव अर्थात् दो दो दोनों भुजाओं और दोनों टांगों के हैं। तात्पर्य यह है कि दण्ड के द्वारा शत्रु के अंगों को छेद कर अनेक क्लेशों के साथ भस्म करके शीघ्र नाश कर देना चाहिये कि फिर अन्य पुरुष दुष्ट कर्म न करने पावें ॥७॥

टिप्पणी—लिपि प्रमाद से 'मन्याः' के स्थान में 'मन्यः' पद जान पड़ता है।

अथर्ववेद १०। २। ६ में देखिये—

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्।
येषां पुरुत्रा विजयस्य महनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥

(कः) प्रजापति ने (शीर्षणि) मस्तक में (सप्त) सात (खानि) गोलक (वि = ततर्द) खोदे, (इमौ कर्णौ) यह दोनों कान, (नासिके) दो नथनें, (चक्षणी) दो आंखें, और (मुखम्) एक मुख। (येषाम्) जिनके (विजयस्य) विजय की (महनि) महिमा में (चतुष्पादः) चौपाये और (द्विपदः) दो पाये जीव (पुरुत्रा) अनेक प्रकार से (यामम्) मार्ग (यन्ति) चलते हैं ॥

आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपिं गच्छतु ॥८॥

भाषार्थः—[हे दुराचारी] (ते) तेरे (पदम्) पद [वा स्थान] को (समिद्धे) जलती हुई (जातवेदसि) वेदना अर्थात् पीड़ा देने वाली अग्नि में (आ+दधामि) डाले देता हूं। (अग्निः) अग्नि (शरीरम्) [तेरे] शरीर में (वेवेष्टु) प्रवेश करे, और (वाक्) वाणी (अपि) भी (असुम्) [अपने] प्राण [अंश] में (गच्छतु) जावे ॥८॥

भावार्थः—दुराचारी मनुष्य राजदण्ड और ईश्वर नियम से ऐसा शारीरिक और मानसिक ताप पाता है जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि में जल कर कष्ट पाता है ॥८॥

सूक्तम् १३ ॥

१—५। ब्रह्मचारी देवता ॥ १—३, ५ त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्छन्दः ॥

ब्रह्मचारिणः समावर्त्तने वस्त्रादिधारणोपदेशः—ब्रह्मचारी के समावर्त्तन, विद्या समाप्ति पर वस्त्र आदि के लिये उपदेश।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे तेजस्विन् परमेश्वर ! तू (आयुर्दाः) जीवन दाता और (जरसम्) स्तुति योग्य कर्म को (वृणानः) स्वीकार करने वाला, (घृतप्रतीकः) प्रकाश-स्वरूप और (घृतपृष्ठः) प्रकाश (वा सार तत्त्व) से सींचने वाला है । (अग्ने) हे तेजस्विन् ईश्वर ! (अग्नि के समान) (मधु) मधुर, (चारु) निर्मल, (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घृत को (पीत्वा) पीकर, (पिता इव) पिता के समान (पुत्रान्) पुत्रों को (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] की (अभि) सब ओर से (रक्षतात्) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—जैसे अग्नि गौ के घृत, काष्ठ आदि हवन सामग्री से प्रज्वलित होकर, हवन, अन्न संस्कार, शिल्प प्रयोग आदि में उपयोगी होता है वैसे ही परमेश्वर वेद विद्या के और बुद्धि, अन्न आदि पदार्थों के दान से मनुष्यों पर उपकार करता है, इसी प्रकार मनुष्यों को परस्पर उपकारी होना चाहिये ॥१॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसे मं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (नः) हमारे लिए (इमम्) इस [ब्रह्मचारी] को (परि+धत्त) वस्त्र पहराओ, और (वर्चसा) तेज वा अन्न से (धत्त) पुष्ट करो, [तथा इस का] (दीर्घम्) बड़ा (आयुः) आयु, वा आय, अर्थात् धन प्राप्ति, और (जरामृत्युम् = जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा) स्तुति से अमरपन, अथवा स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु (कृणुत) करो । (बृहस्पतिः) बड़े बड़े [विद्वानों] के रक्षक [राजा वा प्रधानाचार्य] ने (एतत्) यह (वासः) वस्त्र (सोमाय) सूर्य समान (राज्ञे) ऐश्वर्य वाले [ब्रह्मचारी] को (उ) ही (परिधातवै) धारण करने के लिए (प्र+अयच्छत्) दान किया है ॥२॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर चुके, तब विद्वान् पुरुष परस्पर उपकार के लिये उसकी योग्यता का सत्कार करें, और राजा वा आचार्य विशेष वस्त्र आदि से अलंकृत करके उसका मान बढ़ावें, जिससे विद्या का प्रचार और आपस में प्रीति अधिक होवे ॥

जैसे विद्वान् पुरुष विद्यादि चिह्नों से अलंकृत होकर पुरुषों में दर्शनीय होता है, वैसे ही मनुष्य शरीर का चोला पाकर सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ गिना जाता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—यह मन्त्र अथर्ववेद १९। २४। ३। में भी है।

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन्!] (इदम्) इस (वासः) वस्त्र को (स्वस्तये) आनन्द बढ़ाने के लिए (परि+अधिथाः) तूने धारण किया है, और (गृष्टीनाम्) ग्रहणीय गौओं की (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा करने वाला (उ) अवश्य (अभूः) तू हुआ है। (च) निश्चय करके (पुरूचीः) बहुत पदार्थों से व्याप्त (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीव) तू जीवित रह, (च) और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि [वृद्धि] को (उप+सं+व्ययस्व) अपने सब ओर धारण कर ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ब्रह्मचारी को विदित कर दें कि यह उसकी विद्या का सम्मान इस लिये किया गया है कि संसार में गौ आदि उपकारी पदार्थों और विद्या धन और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करे ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से अथर्ववेद १९। २४। ६ में है॥

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन्] (एहि=आ+इहि) तू आ, (अश्मानम्) इस शिला पर (आ+तिष्ठ) चढ़, (ते) तेरा (तनूः) तन [शरीर] (अश्मा) शिला (शिला जैसा दृढ़) (भवतु) होवे। (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण वाले [पुरुष और पदार्थ] (ते) तेरी (आयुः) आयु को (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (कृण्वन्तु) [दीर्घ] करें ॥४॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी को शिक्षा दें कि वह यथानियम पथ्य सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य और पौरुष करके अपने शरीर को दृढ़ और स्वस्थ रक्खे, और विद्वानों के मेल और उत्तम पदार्थों के सेवन से पूर्ण आयु भोगकर संसार में उपकार करे ॥४॥

अथर्व० १। २। २। में आया है "अश्मानं तन्वं कृधि" शरीर को पत्थर सा दृढ़ बना" ॥

यस्ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिन्] (यस्य) जिस (ते) तेरे (प्रथमवास्यम्) प्रधानता के धारण योग्य (वासः) वस्त्र को (हरामः) हम लाते हैं [धारण कराते हैं] (तम्) उस (त्वा) तेरी (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (अवन्तु) रक्षा करें, और (तम्) उस (सुवृधा) उत्तम सम्पत्ति से (वर्धमानम्) बढ़ते हुए, (सुजातम्) पूजनीय जन्म वाले (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (बहवः) बहुत से (भ्रातरः) भाई (जायन्ताम्) प्रकट हों ।।५।।

भावार्थः—जब ब्रह्मचारी इस प्रकार विद्वानों में बड़ा मान पावे, तब वह उत्तम गुणों की प्राप्ति से ऐसी वृद्धि और उन्नति करे कि उसी के समान उसके दूसरे भ्रातृगण संसार में यश प्राप्त करें ।।५।।

टिप्पणी—इस सूक्त में 'वासः' पद का चोला अर्थात् मनुष्य शरीर का अर्थ करने से आध्यात्मिक विषय का विनियोग भी हो सकता है। यथा मन्त्र २ देखिए ।।

सूक्तम् ।। १४ ।।

१—६ ।। अलक्ष्मीर्दुर्भिक्षता वा देवता। अनुष्टुप्छन्दः ।।

अलक्ष्मीर्मनुष्यैः प्रयत्नेन नाशनीया—निर्धनता का मनुष्यों को प्रयत्न से नाश करना चाहिए ।।

निः सालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ।।१।।

भाषार्थः—(निः सालाम्) विना साला = घर वाली, (धृष्णुम्) भयानक रूपवाली, (एकवाद्याम्) [दीनता का] एक वचन बोलने वाली, (धिषणम्) बोध वा उत्तम वाणी को (जिघत्स्वम्) खा लेने वाली, (चण्डस्य) क्रोध की (सर्वाः) इन सब (नप्त्यः = नप्त्रीः) सन्तानों, (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली यद्वा दानवों, दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीड़ाओं] को (नाशयामः) हम मिटा देवें ।।१।।

भावार्थः—निर्धनता के कारण मनुष्य घर से निकल जाता, कुरूप हो जाता, दीन वचन बोलता और मतिभ्रष्ट हो जाता है, और निर्धनता की पीड़ाएँ क्रोध अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुष्टताओं से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य को चाहिये कि दूरदर्शी होकर पुरुषार्थ से धन प्राप्त करके निर्धनता को न आने दे और सदा सुखी रहे ।।१।।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णन है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥ऋ०१०।१५५।१॥

(अरायि) हे अदानशील [कंजूसिनि] ! (काणे) हे कानी ! (विकटे) हे लंगड़ी ! (सदान्वे = सदा नोनुवे शब्दकारिके) सदा चिल्लाने वाली ! (गिरिम्) पहाड़ को (गच्छ) चली जा ! (शिरिम्बिठस्य) मेघ के (तेभिः) उन (सत्वभिः) जलों से (त्वा) तुझे (चातयामसि) हम मिटाये देते हैं ।।

इस ऋग्वेद मन्त्र की व्याख्या निरु० ६ । ३० में है। उससे और निरुक्त टीकाकार देवराज यज्वा के आधार पर यहाँ अर्थ किया है ॥

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥

भाषार्थः—(वः) तुमको (गोष्ठात्) [अपनी] गोठ अर्थात् वाचनालय वा गोशाला से (निर्+अजामसि) हम निकाले देते हैं, (अक्षात्) व्यवहार से (निर्) निकाले, (उपानसात्) अन्नगृह वा धान्य की गाड़ी से (निर्) निकाले देते हैं । (मगुन्द्याः) हे ज्ञान की मिथ्या करने वाली (कुवासना वा निर्धनता) की (दुहितरः) पुत्रियो ! [पुत्री समान उत्पन्न पीड़ाओ] (वः) तुम को (गृहेभ्यः) [अपने] घरों से (निर्) निकालकर (चातयामहे) हम नाश करते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य धन के उपार्जन और व्यय करने में ऐसा प्रबन्ध करे कि पठन पाठन, गौ आदि पशुओं, व्यापार और अन्न आदि में हानि न हो किन्तु सब पदार्थों के यथावत् संग्रह से सर्वदा सुख की वृद्धि रहे ॥२॥

टिप्पणी—गोट 'गोष्ठ' शब्द राजस्थान में बातचीत के स्थान अर्थ में लिया जाता है ।

असौ यो अंधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३॥

भाषार्थः—(असौ) वह (यः) जो (गृहः) घर (अधरात्) नीचे की ओर है, (तत्र) वहां पर (अराय्यः) निर्धनता वाली [विपत्तियां] (सन्तु) रहें । (तत्र) वहां ही (सेदिः) महामारी आदि क्लेश (नि+उच्यतु) नित्य निवास करे, (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) पीड़ा देने वाली क्रियायें भी ॥३॥

भावार्थः—जैसे राजा चोर आदि दुष्टों को पकड़ कर कारागार में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखता है, ऐसे ही मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक निर्धनता, दुर्भिक्षता, और दुःख-दायी रोगों को हटा कर आनन्दित रहना चाहिये ॥३॥

भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥

भाषार्थः—(भूतपतिः) न्याय, सत्य वा प्राणियों का रक्षक (च) और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला पुरुष (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली, अथवा, दानवों दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली [निर्धनता की पीड़ाओं] को (इतः) यहां से (निर्+अजतु) निकाल देवे । (इन्द्रः) वही महा प्रतापी पुरुष (गृहस्य) [हमारे] घर की (बुध्ने) जड़ में (आसीनाः) बैठी हुई (ताः) उन [पीड़ाओं] को (वज्रेण) वज्र [कुल्हाड़े आदि] से (अधि+तिष्ठतु) वश में करे ॥४॥

भावार्थः—क्लेशों के भीतरी कारणों को भली भांति विचार कर राजा और गृहपति सब पुरुषों को सचेत करके क्लेशों से बचावें और आनन्द में रक्खें ॥४॥

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥

भाषार्थः – [हे पीड़ाओ !] (यदि) यदि (क्षेत्रियाणाम्) शरीर सम्बन्धी, वा वंश सम्बन्धी रोगों की (वा) अथवा (यदि) यदि (पुरुषेषिताः) अन्य पुरुषों को प्रेषित (रथ) हो, (यदि) जो (दस्युभ्यः) चोर आदिकों से (जाताः) प्रकट हुई (स्थ) हो, वह तुम (सदान्वाः) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा दानवों के साथ रहने वाली [पीड़ाओ !] (इतः) यहां से (नश्यत) हट जाओ ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को अपने कुपथ्य सेवन, ब्रह्मचर्य आदि के खण्डन से अथवा माता पिता आदि के कुसंस्कार से शारीरिक वा आध्यात्मिक और शत्रु चोर आदि के अन्यथा व्यवहार से आधिभौतिक पीड़ायें प्राप्त होती हैं। मनुष्य पुरुषार्थ से सब प्रकार के क्लेशों का नाश करके आनन्द से रहें ॥५॥

परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६॥

भाषार्थ.—[वे विद्वान्] (आसाम्) इन [पीड़ाओं] के (धामानि) घरों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परि) सब प्रकार (असरन्) पहुंच गए हैं। (आशुः इव) जैसे शीघ्रगामी घोड़ा (गाष्ठाम्) अपने गमन स्थान [थान] पर। (वः) तुम्हारे (सर्वान्) सब (आजीन्) संग्रामों को (अजैषम्) मैंने जीत लिया है, (सदान्वाः) हे सदा चिल्लाने वाली, अथवा, दानवों के साथ रहने वाली [पीड़ाओं!] (इतः) यहाँ से (नश्यत) चंपत हो जाओ ॥६॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्वज विद्वान् लोग क्लेशों के कारण शीघ्र जान चुके हैं, जैसे कि घोड़ा मार्ग से लौटते समय अपने थान की ओर शीघ्र चलता है, अथवा, जैसे शूरवीर पुरुष संग्राम में शत्रुओं को हराकर शीघ्र विजयी होता है, वैसे ही मनुष्य आई हुई विपत्तियों का कारण सावधानी से जानकर शीघ्र प्रतीकार करे और सुख से आयु को भोगे ॥६॥

'असरन्' के स्थान पर सायणभाष्य में 'असरम्' और (गाष्ठाम्) के स्थान ९२ [ग्लाष्ठाम्] पद व्याख्यात है ॥

सूक्तम् १५ ॥

१—६ ॥ प्राणो देवता। गायत्री छन्दः ॥

मनुष्यो धर्मपालने निर्भयो भवेत्—मनुष्य धर्म के पालन में निर्भय रहे ॥

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (द्यौः) आकाश (च) और (पृथिवी) दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते हैं, और (न) न (बिभीतः) डरते हैं। (एव) ऐसे ही, (मे) मेरे (प्राण) प्राण! तू (मा बिभेः) मत डर ॥१॥

भावार्थः—यह आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम पालन से अपने २ स्थान और मार्ग में स्थिर रह कर जगत् का उपकार करते हैं ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापों को छोड़ कर और सुकर्मों को कर के सदा निर्भय और सुखी रहता है ॥१॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (अहः) दिन (च) और (रात्री) रात दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते हैं और (न) न (बिभीतः) डरते हैं, (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण! तू (मा बिभेः) मत डर ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य अपने काल प्रयोग में नहीं चूकते वे अपने सुप्रबन्ध से सदा निर्भय रहते हैं ॥२॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चन्द्र दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते हैं और (न) न (बिभीतः) डरते हैं, (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ? तू (मा बिभेः) मत डर ॥३॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के नियम से सूर्य अपनी राशियों में घूमकर संसार में किरणों और प्रकाश द्वारा वृष्टि आदि से, और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेकर अन्न आदि औषधों को पुष्ट करके उपकार करते और निर्भय विचरते हैं, ऐसे ही मनुष्य भी वेदविहित धर्म की रक्षा करके सदा प्रसन्न रहें ॥३॥

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (ब्रह्म) ब्राह्मण [ब्रह्मज्ञानी] जन (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय जन, दोनों (न) न (रिष्यतः) दुःख देते और (न) नहीं (बिभीतः) डरते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभे) मत डर ॥४॥

भावार्थः—जैसे सत्यवक्ता ब्राह्मण और सत्य पराक्रमी क्षत्रिय न सताते और न भय करते हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य सत्यवक्ता और सत्यपराक्रमी होकर ईश्वराज्ञा पालन में निर्भय होकर आनन्द उठावे ॥४॥

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (सत्यम्) यथार्थ (च) और (अनृतम्) अयथार्थ (न) न (रिष्यतः) दुःख देते, और (न) न (बिभीतः) डरते हैं। (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥५॥

भावार्थः—सत्य अर्थात् धर्म का विधान, और असत्य अर्थात् अधर्म का निषेध यह दो प्रधान अंग न्याय के हैं। मनुष्य विधि और निषेध के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथावत् रूप को समझ कर, कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग में निर्भय चलें और अचल आनन्द भोगें ॥५॥

यजुर्वेद में वर्णन है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳसत्ये प्रजापतिः ॥ य० १९।७७॥

(प्रजापतिः) प्रजाओं के रक्षक परमेश्वर ने (रूपे) दो रूप, (सत्यानृते) सत्य और झूंठ (दृष्ट्वा) देखकर (व्याकरोत्) समझाये । (प्रजापतिः) उस प्रजापति ने (अनृते) झूंठ में (अश्रद्धाम्) अश्रद्धा वा अप्रीति और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) श्रद्धा वा प्रीति को (अदधात्) धारण कराया ।

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥६॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (च) निश्चय करके (भूतम्) अतीत काल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् [होने हारा] काल (न) न (रिष्यतः) दुःख देते और (न) न (बिभीतः) डरते हैं (एव) वैसे ही (मे) मेरे (प्राण) प्राण ! तू (मा बिभेः) मत डर ॥६॥

भावार्थः—समर्थ, सत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य पहले विजयी हुए हैं और आगे होंगे । इसी प्रकार सब मनुष्य भूत और भविष्यत् का विचार करके जो कार्य करते हैं वे सुखी रहते हैं ॥६॥

सूक्तम् १६ ॥

१—५ ॥ आत्मा देवता । १ आसुरी पङ्क्तिः, २ आसुर्युष्णिक्, ३ आसुरी त्रिष्टुप्, ४—५ आसुरी गायत्री ॥

आत्मरक्षाया उपदेशः—आत्म रक्षा के लिये उपदेश ॥

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (मृत्योः) मृत्यु से (मा) मुझे (पातम्) बचाओ, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी [आशीर्वाद] हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य, व्यायाम, प्राणायाम, पथ्य भोजन आदि से प्राण अर्थात् भीतर जाने वाली श्वास, और अपान, अर्थात् बाहिर आने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली श्वास की स्वस्थता स्थापित करें और बलवान् रह कर चिरंजीवी होवें ॥१॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) हे आकाश और पृथिवी ! दोनों (उपश्रुत्या) पूर्ण श्रवण शक्ति के साथ (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करो (स्वाहा) यह सुवाणी [सुन्दर आशीर्वाद] हो ॥२॥

भावार्थः—सब दिशाओं में मनुष्य को अपनी श्रवणशक्ति बढ़ानी चाहिये ॥२॥

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य, तू (चक्षुषा) दृष्टि के साथ (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर, (स्वाहा) यह सुवाणी हो ॥३॥

भावार्थः—सूर्य प्रकाश का आधार है, और उसी से नेत्र में ज्योति आती है। मनुष्य को सूर्य के समान अपनी दर्शन शक्ति संसार में स्थिर रखनी चाहिये ॥३॥

अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(वैश्वानर) हे सबको चलाने वाले (अग्ने) अग्नि ! (विश्वैः) सब (देवैः) इन्द्रियों [वा विद्वानों] के साथ (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥४॥

भावार्थः—शरीर में अग्नि अर्थात् उष्णता का होना बल तेज और प्रताप का लक्षण है और इन्द्रिय आदि का चलाने वाला है। सब मनुष्य अन्न की पाचन शक्ति से शरीर में अग्नि स्थिर रखकर सब इन्द्रियों को पुष्ट करें और उत्तम पुरुषों के सत्संग से स्वस्थ और सुखी रहें ॥४॥

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(विश्वम्भर) हे सर्वपोषक परमेश्वर ! (विश्वेन) सब (भरसा) पोषण शक्ति से (मा) मेरी (पाहि) रक्षा कर, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥५॥

भावार्थः—सब शरीर को स्वस्थ रखकर मनुष्य उस (विश्वम्भर) परमेश्वर के अनन्त पथ्य, पोषक द्रव्यों और शक्तियों का उपयोग करें और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति बढ़ा कर सदा बलवान् रहकर (विश्वम्भर) सर्वपोषक बनें और आनन्द भोगें ॥५॥

सूक्तम् १७ ॥

१—७॥ ईश्वरो देवता ॥ १—६ आसुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुर्युष्णिक् ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने के लिए उपदेश ॥

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर] तू (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य (असि) है, (मे) मुझे (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य (दाः=दद्याः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥१॥

भावार्थः—(ओजः) बल और प्रकाश का नाम है। वैद्यक में रसादि सात धातुओं से उत्पन्न, आठवें धातु शरीर के बल और पुष्टि के कारण, और ज्ञानेन्द्रियों की नीरोगता को (ओजः) कहते हैं। जैसे (ओजः) हमारे शरीरों के लिये है वैसे ही परमात्मा सब ब्रह्माण्ड के लिये है ऐसा विचार कर मनुष्यों को शारीरिक शक्ति बढ़ानी चाहिये ॥१॥

इस सूक्त का पाठ यजुर्वेद के पाठ से प्रायः मिलता है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ य० १९।९ ॥

तू तेज है, मुझ में तेज धारण कर—इत्यादि ॥

सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मा !] तू (सहः) पराक्रम स्वरूप (असि) है, (मे) मुझे (सहः) आत्मिक पराक्रम (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥२॥

भावार्थः—अनन्त ब्रह्माण्डों का रचक और धारक परमेश्वर पराक्रम स्वरूप है। ऐसा सोचकर विद्यादि उपायों से मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ावें ॥२॥

बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे ईश्वर] तू (बलम्) सामाजिक बल (असि) है, (मे) मुझे (बलम्) सामाजिक बल (दाः) दे (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर में सब देवता, मनुष्य आदि समाजों का बल है, ऐसा जान कर मनुष्य अपने कुटुम्बी आदि से प्रीति बढ़ा कर सामाजिक बल बढ़ावे ॥३॥

आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (आयुः) आयु [जीवन शक्ति] (असि) है, (मे) मुझे (आयुः) आयु (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥४॥

भावार्थः—ईश्वर ने हमें अन्न, बुद्धि, ज्ञान आदि जीवन सामग्री देकर बड़ा उपकार किया है, ऐसे ही हम भी परस्पर उपकार से अपना जीवन बढ़ावें ॥४॥

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति (असि) है (मे) मुझे (श्रवणम्) श्रवण शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी अनन्त श्रवण शक्ति से हमारी टेर सुनता और संकटों को काटता है। ऐसे ही हम अपनी श्रवण शक्ति को नीरोग रख कर दूसरों के दुखों का निवारण करें और वेदादि शास्त्रों का श्रवण करें ॥५॥

चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] तू (चक्षुः) दृष्टि [दर्शन शक्ति] (असि) है, (मे) मुझे (चक्षुः) दर्शन शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥६॥

भावार्थः—ऋग्वेद पुरुष सूक्त १०।९०।१ में भी परमेश्वर का नाम (सहस्राक्षः) अनन्त दर्शन शक्ति वाला है, इस प्रकार परमात्मा को सर्वद्रष्टा समझ कर मनुष्य अपनी दर्शन शक्ति चंगी रक्खे, और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के बहुदर्शी और न्यायकारी होवे ॥६॥

परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (परिपाणम्) सब प्रकार पालन शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (परिपाणम्) सब प्रकार की पालन शक्ति (दाः) दे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर को अथर्व० १९।६।१।में. (सहस्रबाहुः) अनन्त भुजाओं की शक्ति वाला कहा है। मनुष्य उसकी अनन्त रक्षण शक्ति देख कर आप भी मनुष्यों में (सहस्रबाहुः) महा रक्षक और (शतक्रतुः) शतकर्मा अर्थात् बहुकार्यकर्त्ता होवे ॥७॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १८ ॥

१—५ ॥ ईश्वरो देवता । साम्नी बृहती छन्दः—१८ अक्षराणि ॥

शत्रुभ्यो रक्षा कर्तव्येत्युपदिश्यते—शत्रुओं से रक्षा करनी चाहिये इसका उपदेश ॥

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(भ्रातृव्यक्षयणम्) वैरियों की नाशन शक्ति (असि) तू है, (मे) मुझे (भ्रातृव्यचातनम्) वैरियों के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ॥१॥

भावार्थः—(भ्रातृव्य) वह छली पुरुष है जो देखने में भ्राता के समान प्रीति, और भीतर से दुष्ट आचरण करे। परमेश्वर वा राजा ऐसे दुराचारियों का नाश करता है, ऐसे ही मनुष्य मृगतृष्णारूप, इन्द्रिय लोलुपता और अन्य आत्मिक दोषों का नाश कर के सुख से रहें ॥१॥

सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहाः ॥२॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] तू (सपत्नक्षयणम्) प्रकट शत्रुओं की नाशशक्ति (असि) है, (मे) मुझे (सपत्नचातनम्) प्रकट शत्रुओं के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे ईश्वर वा राजा प्रकट कुचालियों का नाश करता है, वैसे ही मनुष्य अपने प्रकट दोषों का नाश करके सुख भोगे ॥२॥

अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] तू (अरायक्षयणम्) निर्धनता की नाशशक्ति (असि) है, (मे) मुझे (अरायचातनम्) निर्धनता के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् और महाधनी है, ऐसा विचार कर मनुष्य अपनी दुष्टता और दुर्मति से अथवा अन्य विघ्नों से उत्पन्न निर्धनता को उद्योग कर के मिटावें ॥३॥

पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—हे ईश्वर! तू (पिशाचक्षयणम्) मांस खाने वालों की नाश शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (पिशाचचातनम्) मांस खाने वालों के मिटाने का बल (दाः) दे। (स्वाहा) यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर की न्याय शक्ति का विचार करके मनुष्य कुविचार, कुशीलता और रोगादि दोषों को जो शरीर और आत्मा के हानिकारक हैं मिटावें तथा हिंसक सिंह सर्पादि जीवों का भी नाश करें ॥४॥

सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] तू (सदान्वाक्षयणम्) सदा चिल्लाने वाली वा दानवों के साथ रहने वाली (निर्धनता वा दुर्भिक्षता) की नाश शक्ति (असि) है, (मे) मुझे (सदान्वाचातनम्) सदा चिल्लाने वाली वा दानवों के साथ रहने वाली [निर्धनता वा दुर्भिक्षता] के मिटाने का बल (दाः) दे, (स्वाहा) यही सुन्दर आशीर्वाद हो ॥५॥

भावार्थः—निर्धनता और दुर्भिक्षता [अकाल] आदि विपत्तियों के मारे सब प्राणी महादुःखी होकर आर्त्तध्वनि करते, और चोर आदि उन्हें सताते हैं। परमेश्वर की दयालुता और पूर्णता पर ध्यान करके, मनुष्य प्रयत्नपूर्वक प्रभूत धन और अन्न का संचय करके आनन्द से रहें ॥५॥

सूक्तम् १९ ॥

१—५ ॥ अग्निर्देवता। १—४ साम्नी त्रिष्टुप्, २२ अक्षराणि, ५ साम्नी जगती ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिए उपदेश ॥

अग्ने॒ यत्ते॒ तप॒स्तेन॒ तं प्रति॑ तप॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप [ऐश्वर्य] है, (तेन) उस से (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करता है [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥१॥

भावार्थः—दुराचारी, कामी, क्रोधी आदि पुरुष की मति भ्रष्ट हो जाती है, और कुप्रयोग से शारीरिक और वाह्य अग्नि दुःखदायी होती, और वही अग्नि सुप्रयोग से विचारशील सदाचारियों को सुखप्रद होती हैं। ऐसा ही आगे समझना चाहिये ॥१॥

ऐसा कहा भी है—

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ॥

गुण गुणवान् को प्राप्त करके निखर उठते हैं, परन्तु वही निर्गुणी को पाकर दोष हो जाते हैं ॥

अग्ने॒ यत्ते॒ हर॒स्तेन॒ तं प्रति॑ हर॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाश शक्ति है, (तेन) उस से (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १ के समान ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

अग्ने॒ यत्तेऽर्चि॒स्तेन॒ तं प्रत्यर्च॒ यो३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधनशक्ति हैं, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

अग्ने यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [अग्नि पदार्थ] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

सूक्तम् २० ॥

१—५ ॥ वायुर्देवता । १—४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगतीछन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिए उपदेश ॥

वायो यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व !] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करता है, [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करते हैं ॥१॥

भावार्थः—कुप्रयोग से वायु तत्त्व दुःख देता और सुप्रयोग से आनन्द बढ़ाता है। सू० १९ म० १ देखें ॥१॥

वायो यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

वायो यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥३॥

वायो यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १ ॥ ४ ॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

वायो यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(वायो) हे पवन [पवन तत्त्व] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

सूक्तम् २१ ॥

१–५ । सूर्यो देवता । १–४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगती छन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागायोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिए उपदेश ॥

सूर्य यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [आदित्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सूर्य सृष्टि के पदार्थों को वीर्यवान् और तेजस्वी करता है किन्तु वही कुप्रयोग से दुःखदायी और सु प्रयोग से सुखदायी होता है ॥१॥

सूर्य यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो ३ ऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल] ! (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हर) नाश कर डाल, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

सूर्य यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से·····मन्त्र १॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥३॥

सूर्य यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे·····मन्त्र १॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

सूर्य यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(सूर्य) हे सूर्य [सूर्य मण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिस से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

सूक्तम् २२ ॥

चन्द्रो देवता ॥ १—४ साम्नी त्रिष्टुप्, ५ साम्नी जगती छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुप्रयोगत्यागोपदेशः—कुप्रयोग के त्याग के लिए उपदेश ।।

चन्द्र यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो ३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।१।।

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्रमण्डल !] (यत्) जो (ते) तेरा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तप) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ।।१।।

भावार्थः—शीतल स्वभाव चन्द्रमा स्वभावतः अपनी किरणों से अनिष्टों को हटाकर अन्न आदि औषधियों को पुष्ट करके प्राणियों को आनन्द देता है। परन्तु उसी चन्द्रमा के कुप्रयोग से मनुष्य पागल [Lunatic] और घोड़े आदि पशु रोगी हो जाते हैं। इस कुप्रयोग का त्याग करके सुप्रयोग से आनन्द प्राप्त करना चाहिये ।।१।।

चन्द्र यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो ३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।२।।

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] का (प्रति हर) नाश कर डाल, (य) जो (अस्मान्) हमसे·····मन्त्र १।।२।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ।।२।।

चन्द्र यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो ३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।३।।

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्च) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हम से···मन्त्र १।।३।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ।।३।।

चन्द्र यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो ३ ' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।४।।

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्र लोक !] (यत्) जो (ते) तेरी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोच) शुद्ध कर दे (यः) जो (अस्मान्) हमसे···मन्त्र १।।४।।

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ।।४।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(चन्द्र) हे चन्द्र [चन्द्रलोक !] (यत्) जो (ते) तेरा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणु) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

सूक्तम् २३ ॥

१–५ ॥ आपो देवताः । १–४ साम्नी जगती, ५ स्वराट् साम्नी जगती छन्दः ॥

कुप्रयोगत्यागोपदेशः—कुप्रयोग त्याग के लिए उपदेश ॥

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

भाषार्थः—(आपः) हे जल [जल पदार्थ !] (यत्) जो (वः) तुम्हारा (तपः) प्रताप है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (तपत) प्रतापी हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे, (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥१॥

भावार्थः—वृष्टि, नदी, कूप आदि का जल अनावृष्टि दोषों को मिटाकर अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करके प्राणियों को बल और सुख देता है, और वही कुप्रबन्ध से दुःख का कारण होता है ऐसे ही राजा सामाजिक नियमों के विरोधी दुष्टों का नाश करके प्रजा को समृद्ध करता और सुख देता है ॥१॥

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत यो३ऽस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः ॥२॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो (यत्) जो (वः) तुम्हारी (हरः) नाशन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति हरत) नाश कर डालो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे···म० १॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत यो ३' स्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः ॥३॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो (यत्) जो (वः) तुम्हारी (अर्चिः) दीपन शक्ति है, (तेन) उससे (तम् प्रति) उस [दोष] पर (अर्चत) प्रदीप्त हो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे ··म० १॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥३॥

आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत यो ३' स्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः ॥४॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो ! (यत्) जो (वः) तुम्हारी (शोचिः) शोधन शक्ति है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (प्रति शोचत) शुद्ध कर दो, (यः) जो (अस्मान्) हमसे ···मन्त्र १॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत यो ३' स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥

भाषार्थः—(आपः) हे जलो ! (यत्) जो (वः) तुम्हारा (तेजः) तेज है, (तेन) उससे (तम्) उस [दोष] को (अतेजसम्) निस्तेज (कृणुत) कर दो (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रिय करे (अथवा) (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रिय करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥५॥

सूक्तम् २४ ॥

१—८ ॥ ईश्वरो देवता । पूर्वार्धाः—१, २ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् २३; ३, ४ निचृत् साम्नी त्रिष्टुप् २१; ५ साम्नी बृहती १८; ६—७ भुरिक् साम्नी बृहतीछन्दः १९; उत्तरार्धाः सर्वत्र साम्नी बृहती १८ अक्षराणि ॥

म० —१—४ । कुसंस्काराणां ५—८ कुवासनानां च नाशायोपदेशः—म० १—४ कुसंस्कारों के और ५— ८ कुवासनाओं के नाश का उपदेश ॥

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शेरभक) अरे बधकपन में मन लगाने वाले ! (शेरभ) अरे रंग में भंग डालने वाले ! [दुष्ट !] और (किमीदिनः) अरे लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें, और (हेतिः) चोट (पुन. पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें। तुम (यस्य) जिसके [साथी] (स्थ) हो, (तम्) उस (पुरुष) को (अत्त) खाओ, (यः) जिस [पुरुष] ने (वः) तुमको (प्राहैत् = प्राहैषीत्) भेजा है, (तम्) उसको (अत्त) खाओ, (स्वा = स्वानि) अपने ही (मांसानि) मांस की बोटियाँ (अत्त) खाओ ॥१॥

भावार्थः—जैसे नीतिनिपुण राजा अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करता है कि शत्रु जो कुछ छलबल करे वह उसी को ही उलटा दुःखदायी हो और उसके मनुष्य उसकी कुनीतियों को जान कर उसका ही नाश कर दें, और वह लोग आपस में विरोध करके परस्पर मार डालें। इसी प्रकार आत्मजिज्ञासु पुरुष अपने शरीर और आत्मा की निर्बलता और दोषों और उनसे उत्पन्न दुष्ट फलों को समझ कर बुद्धिपूर्वक उन्हें एक एक करके नाश करदे, और जितेन्द्रिय हो कर आनन्द भोगे ॥१॥

सायणभाष्य में 'स्वा' पद के स्थान में 'सा' पद है और उसका अर्थ 'तस्य शत्रोः यद्वा सा हेतिः' ऐसा किया है, हमारी समझ में बहुवचनान्त (स्वा) पद ही ठीक है ॥

इस सूक्त के पहिले चार मन्त्रों में पुंल्लिङ्ग शब्दों का, और पिछले पांच मन्त्रों में स्त्रीलिङ्ग का सम्बोधन है ॥

शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥

भाषार्थः—(शेवृधक) अरे बधकपन में बढ़ने वाले ! (शेवृध) अरे सुख के नाश करने वाले [दुष्ट !] और (किमीदिनः) अरे लुतरे लोगों ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) (चोट)···मन्त्र १॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

ओकानुओक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३॥

भाषार्थः—(ओक) अरे चोर ! (अनुओक) अरे चोरों के साथी ! (किमी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनऽ) अरे तुम लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावे···मन्त्र १॥ ३॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥३॥

सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥

भाषार्थः—(सर्प) अरे सांप [क्रूर स्वभाव !] (अनुसर्प) अरे सांपों के साथी ! (किमीदिनः) अरे तुम लुतरे लोगो ! (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें···मन्त्र १॥ ४॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥४॥

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥

भाषार्थः—(जूर्णि) अरी जूड़ी [जाड़े के ज्वर] ! (किमीदिनीः = ०—न्यः) अरी तुम लुतरियो ! [कुवासनाओ !] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें···मन्त्र १॥ ५॥

भावार्थः—जो नीतिज्ञ पुरुष अपने मन की कुवासनाओं और उनके कारण को जानकर उनको सर्वथा मिटाता है, वह वशिष्ठ महा उपकारी जितेन्द्रिय होकर संसार का उपकार करके आनन्दित होता है ॥५॥

उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥

भाषार्थः—(उपब्दे) अरी चिघारने वाली ! और (किमीदिनीः = ०—न्यः) अरी तुम लुतरियो [कुवासनाओ !] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें···मन्त्र ५॥ ६॥

भावार्थः—कुवासनाओं और कुचिन्ताओं से मनुष्य [कटोरवादी हो जाता है ॥६॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अर्जुनि) अरे कुटिनी [दूती!] (किमीदिनीः=न्यः) अरी तुम लुतरियो! [कुवासनाओ] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें..... मन्त्र ५॥ ७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कुवासनाओं को कुटिनी वा दूती इत्यादि माना है—शेष मन्त्र ५ के समान ॥७॥

भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

भाषार्थः—(भरूजि—भरुजि) अरी नीच शृगाली [गीदड़नी, लोमड़ी!] (किमीदिनीः=०—न्यः) अरी तुम लुतरी [कुवासनाओ!] (वः) तुम्हारी (यातवः) पीड़ायें, और (हेतिः) चोट (पुनः पुनः) लौट लौट कर (यन्तु) चली जावें। तुम (यस्य) जिसकी [साथिनी] (स्थ) हो, (तम्) उस [पुरुष] को (अत्त) खाओ, (यः) जिस [पुरुष] ने (वः) तुम को (प्राहैत्) भेजा है, (तम्) उसे (अत्त) खाओ, (स्वा=स्वानि) अपने ही (मांसानि) मांस की बोटियां (अत्त) खाओ ॥८॥

भावार्थः—(भरूजी वा भरुजी) गीदड़नी को कहते हैं। जैसे गीदड़नी छल कपट करके पीड़ा देती है, ऐसे ही मनुष्य कुवासनाओं के कारण कपटी छली होकर सताने लगता है। कुवासनाओं के नाश करने का उपाय पुरुष को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये—म० ५ देखो ॥८॥

टिप्पणी—'भरूजि' पद के स्थान में सायणभाष्य में 'भरूचि' पद व्याख्यात है॥

सूक्तम् २५॥

१—५॥ पृश्निपर्णी देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

शत्रुनाशायोपदेशः—शत्रुओं के नाश के लिए उपदेश॥

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥

भाषार्थः—(देवी) दिव्य गुण वाली (पृश्निपर्णी) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा, सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली औषधि रूप परमेश्वर शक्ति] ने (नः) हमारे [पुरुषार्थियों के] लिए (शम्) सुख, और (निर्ऋत्यै) दुःखदायिनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलक्ष्मी, महामारी आदि पीड़ा के लिये (अशम्) दुःख (अकः=अकार्षीत्) किया है। (हि) क्योंकि वह शक्ति (उग्रा) प्रचंड और (कण्वजम्भनी) पाप का नाश करने वाली है, [इसलिये] (ताम्) उस (सहस्वतीम्) बलवती को (अभक्षि) मैंने भजा वा पूजा है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सूर्य आदि बड़े बड़े लोकों को धारण किया है और जैसे पृथिवी पर अन्नादि औषधियां अपने पत्ते, फलादि से उपकार करती हैं, वैसे ही परमेश्वर की सृष्टि में सूर्यादि लोक आकर्षण, धारण, वृष्टि आदि से परस्पर उपकारी होते हैं। परमेश्वर अपने आज्ञापालक पुरुषार्थियों को सुख, और आज्ञानाशक कर्महीनों को दुःख देता है। उस दयालु और प्रचंड परमात्मा की आज्ञा मान कर हम सदा आनन्द भोगें ॥१॥

टिप्पणी—'पृश्नि' शब्द का अर्थ सूर्य है—निरु० २। २४। और पृथिवी छोटा और विचित्र भी है, और 'पर्ण' का अर्थ पालन, और पत्ते हैं। सायणाचार्य ने 'पृश्निपर्णी' का अर्थ चित्रपर्णी ओषधि लिखा है। शब्दकल्पद्रुमकोष में वर्णन है कि 'पृश्नपर्णी' छोटे पत्तें वाली लताविशेष है, उसे बंगला में "चाकुलिया" और नागरी में "चकरौत्" कहते हैं, इसके गुण कटुत्व, और अतिसार कास, वातरोग, ज्वर, उन्माद, व्रण, और दाहनाशक हैं॥

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥

भाषार्थः—(सहमाना) जीतने वाली (इयम्) यह (पृश्निपर्णी) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा, सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधि रूप परमेश्वरी शक्ति] (प्रथमा) सब से पहिले (अजायत) प्रकट हुई है। (तया) उस [शक्ति] से (अहम्) मैं (दुर्णाम्नाम्) बुरे नाम वाले दोषों के (शिरः) शिर को (वृश्चामि) तोड़ डालूं, (इव) जैसे (शकुनेः) पक्षी के [शिर को तोड़ डालते हैं] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य आदिकारण परमेश्वर के विश्वास पर अपना शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर अपने शत्रुओं और दोषों का नाश करके आनन्द भोगें ॥२॥

टिप्पणी—'दुर्नाम' शब्द का शब्दकल्पद्रुम कोष में 'अर्श' अर्थात् बवासीर रोग अर्थ भी लिखा है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥

भाषार्थः—(पृश्निपर्णि) हे सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधि रूप परमेश्वर शक्ति] (अरायम्) निर्धनता को, (च) और (यः) जो [रोग] (स्फातिम्) बढ़वार को (जिहीर्षति) छीनना चाहे, [उस] (असृक्पावानम्) रक्त पीने वाले, और (गर्भादम्) गर्भ खाने वाले [गर्भाधान शक्ति का नाश करने वाले] (कण्वम्) पाप [रोग] को (सहस्व) जीत ले (च) और (नाशय) मिटा दे ॥३॥

भावार्थः—जिन आलस्यादि दोषों और ब्रह्मचर्यादि खण्डन रूप कुकर्मों से हम धन हीन, तन क्षीण, मन मलीन होकर वंशच्छेद करें, ऐसे दोषों को हम सर्वथा त्यागें, और उस [पृश्निपर्णी] सूर्यादि जगत् के रचक, पोषक अखण्डव्रत परमात्मा का ध्यान करके विद्यावृद्धि धनवृद्धि और कुलवृद्धि करके आनन्द भोगें ॥३॥

गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्य गुण वाली (पृश्निपर्णि) सूर्य वा पृथिवी की पालने वाली [अथवा सूर्य वा पृथिवी जैसे पत्ते वाली ओषधिरूप परमेश्वर शक्ति] (एनान्) इन (जीवितयोपनान्) प्राणों के मोहने वाले [व्याकुल करने वाले] (कण्वान्) पाप रोगों को (गिरिम्) पहाड़ [अगम्य स्थान] में (आ वेशय) गाड़ दे । और (त्वम्) तू (अनुदहन्) क्रम से दाह करती हुई (अग्निः इव) आग के समान (तान्) उन पर (इहि) पहुंच ॥४॥

भावार्थः—जिन (कण्वान्) आत्मदोषों से मनुष्य का जीवन द्विविधा में पड़े और विघ्न में फंसकर अपकीर्ति मिले, उन दुःखदायी दोषों को परमेश्वर का सहाय लेकर सर्वथा नाश करे ॥४॥

टिप्पणी—पातञ्जल योगदर्शन, पाद १ सूत्र ३० में इन विघ्नों का वर्णन किया है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शना-
लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

१—(व्याधि) रोग, २—(स्त्यान) भारीपन, ३—(संशय) द्विविधा, ४—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रमाद) भूल, ५—(आलस्य) ढीलापन, ६—(अविरति) जंजाल में फंस जाना, ७—(भ्रान्तिदर्शन) भ्रम वा अज्ञान से कुछ का कुछ देखना, ८—(अलब्धभूमिकत्व) ठिकाने का न पाना, और ९—(अनवस्थितत्वानि) अदृढ़ता, (चित्तविक्षेपाः) चित्त की हलचलें हैं, और (ते अन्तरायाः) वे विघ्न हैं ॥

परांच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (एनान्) इन (जीवितयोपनान्) प्राणों के मोहने वाले (कण्वान्) पाप रोगों को (पराचः) ओंधेमुख (प्र णुद) ढकेल दे । (यत्र) जहां (तमांसि) अन्धकार (गच्छन्ति) व्याप्त रहते हैं, (तत्=तत्र) वहाँ (क्रव्यादः) मांस खाने वाले [रोगों] को (अजीगमम्) मैंने पहुंचा दिया है ॥५॥

भावार्थः—जैसे राजा महापापी दुराचारी पुरुष को बन्ध करके अंधेरे कारागार में डाल देता है, इसी प्रकार पुरुषार्थी पुरुष व्यायाम करने और पथ्य पदार्थों के सेवन से आलस्य, ज्वर आदि शारीरिक रोगों को मिटाकर अविद्यादि मानसिक रोगों का नाश करें ॥५॥

सूक्तम् २६ ॥

१—५ ॥ त्वष्टा सविता वा देवता । १—२ त्रिष्टुप्, ३—५ अनुष्टुप् ॥

सङ्गतिकरणोपदेशः—मेल करने का उपदेश ॥

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(पशवः) वे पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (इह) यहां (आ यन्तु) आ जावें, (ये) जो (परेयुः) भटक गये हैं । (येषाम्) जिनके (सहचारम्) साथ साथ चलना (वायुः) पवन ने (जुजोष) अङ्गीकार किया है । (त्वष्टा) सूक्ष्म क्रियाओं का रचने वाला [सूक्ष्मदर्शी पुरुष] (येषाम्) जिनके (रूपधेयानि) रूपों [शारीरिक रूपों और मानसिक स्वभावों] को (वेद) पहिचानता है, (सविता) वह सब का चलाने वाला [गोपाल वा सभाप्रधान पुरुष] (तान्) उन [पशुओं] को (अस्मिन्) इस (गोष्ठे) [गोठ, अर्थात् गोशाला वा सभा] में (नियच्छतु) बांध कर रक्खे ॥१॥

भावार्थः—इस सूक्त में (पशु) शब्द का अर्थ गौ आदि और सब प्राणी मात्र है। 'पशु व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले हैं—" निरु० ११ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९। अर्थात् मनुष्य आदि और गौ आदि। जैसे विचारशील गोपाल, गो-रक्षक वायु लगने से इधर उधर भटकते हुए गौ आदि पशुओं को प्रेम के साथ बाड़े में लाकर बाँधता है, वैसे ही सूक्ष्मदर्शी प्रधान पुरुष अपने आश्रितों और सम्बन्धियों को, जो वायु लगने अर्थात् कुसंस्कार पाने से भटक गये हों, उन्हें उपकार और प्रीति की दृष्टि से एकत्र करके सभा में नियमबद्ध करे ॥१॥

पशु शब्द प्राणी मात्र के अर्थ में प्रायः वेद में आया है, जैसे—

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ॥

अ० २। २८। ३ ॥

तू पृथिवी के पशुओं [प्राणियों] का राजा है जो उत्पन्न हुए हैं अथवा जो उत्पन्न होंगे।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ॥अ० २। ३४। १॥

जो पशुपति चौपाये और जो दोपाये पशुओं का स्वामी है ॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषां अनुमते नि यच्छ ॥२॥

भाषार्थः—(पशवः) सब पशु [गौ आदि वा मनुष्यादि प्राणी] (इमम्) इस (गोष्ठम्) स्थिर वचन वाले पुरुष [गोपाल वा प्रधान] से (सम् स्रवन्तु) आ आकर मिलें और वह (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का स्वामी [गोपाल वा सभापति] (प्रजानन्) पहचान पहचान कर [उनको] (आ नयतु) ले आवे (सिनीवाली) अन्न देने वाली देवी [गृहपत्नी वा नीतिविद्या, आप] (एषाम्) इन का (अग्रम्) आगमन (आ नयतु) स्वीकार करे। (अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि वाली [गृहपत्नी वा नीतिविद्या] (आजग्मुषः) इन आये हुओं को (नियच्छ) नियम में बांध कर रख ॥२॥

भावार्थः—जैसे सायंकाल में गौ आदि मिल कर अपने गो वाले के पास आते हैं, और (बृहस्पति) बड़े उपकारी गौ आदि का रक्षक उनको ढूंढ़ २ कर लाता है, और उस की गृहपत्नी आगे आकर उनको अन्न तृण आदि देकर प्रसन्न करती और अपने २ स्थान पर बांध देती है, इसी प्रकार उत्तम सभापति अपने संगठित सभासदों को यथायोग्य आसन दे और नीति अर्थात् सुशीलता और विनय के साथ उनका आदर सत्कार करके नियम में रक्खे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अनुमते' पद के स्थान में सायण भाष्य में 'अनुगते' व्याख्यात है ॥

सं संस्रवन्तु पशवः समश्वाः सम् पुरुषाः ।
संधान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

भाषार्थः -- (पशवः) गौ आदि (सम्) मिल कर, (अश्वाः) घोड़े (सम्) मिल कर, (उ) और (पूरुषाः) सब पुरुष (सम् सम्) मिल मिल कर (स्रवन्तु) चलें। और (या) जो (धान्यस्य) धान्य [अन्न] की (स्फातिः) बढ़ती है, [वह भी] (सम् = सम् स्रवन्तु) मिल कर चले (संस्राव्येण) कोमलता से युक्त (हविषा) भक्ति वा अन्न के साथ [उन सब को] (जुहोमि) मैं ग्रहण करूं ॥३॥

भावार्थः—सब उपकारी गौ, अश्व आदि पशु और मनुष्य नियम के साथ मिल कर रहें एवं प्रयत्नपूर्वक पुष्कल जीविका प्राप्त करें, और प्रधान पुरुष उन के शिक्षादान तथा भरण पोषण की यथोचित सुधि रक्खे ॥३॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४॥

भाषार्थः -- (गवाम्) गौओं का (क्षीरम्) दूध [अपने मनुष्यों पर] (सम्) यथानियम (सिञ्चामि) मैं सींचता हूं, और [उन मनुष्यों के] (बलम्) बल और (रसम्) शरीर पोषक धातु को (आज्येन) घृत से (सम्) यथानियम [सींचता हूं] (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर पुरुष [दूध, घी आदि से] (संसिक्ताः) अच्छे प्रकार सिंचे रहें, [इसलिए] (मयि) मुझ (गोपतौ) गोपति में (गावः) गौएं (ध्रुवाः) स्थायी [रहें] ॥४॥

भावार्थः मनुष्य प्रयत्न से गौओं की रक्षा करके उन के दूध घी आदि के सेवन से अपने और अपने पुरुषों के शारीरिक धातुओं को पुष्ट कर के और बल और बुद्धि बढ़ा कर शूरवीर बनावें। इसी प्रकार जो प्रधान पुरुष अपने उपकारी सभासदों को भरण पोषण आदि उचित व्यवहार से पुष्ट करते रहते हैं, वही नीतिनिपुण संसार की वृद्धि करते हैं ॥४॥

टिप्पणी—इस मन्त्र के अर्थ से "दूधों नहाओ पूतों फलो" इस आशीर्वाद का मिलान कीजिये ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं१ रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५॥

भाषार्थः—(गवाम्) गौओं के (क्षीरम्) दूध को (आ हरामि) मैं प्राप्त करूं, [क्योंकि दूध से] (धान्यम्) पोषण वस्तु अन्न और (रसम्) शारीरिक धातु को (आ अहार्षम्) मैंने पाया है। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर पुरुष (आहृताः) लाये गये हैं, और (पत्नीः=पत्न्यः) पत्नियां भी (इदम्) इस (अस्तकम्=अस्तम्) घर में (आ=आहृताः) लाई गई हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा गौओं की रक्षा करनी चाहिये, जिससे सब स्त्री पुरुष दूध घी का सेवन करके हृष्ट पुष्ट होकर शूरवीर रहें और घरों में सब प्रकार की सम्पत्ति बढ़ती जावे ॥५॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २७ ॥

१–७ ॥ १–६ ओषधिर्देवता, ७ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप्छन्दः ॥

बुद्ध्या विवादः कर्तव्य इत्युपदिश्यते—बुद्धि से विवाद करे, इसका उपदेश ॥

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१॥

भाषार्थः—(शत्रुः) वैरी (प्राशम्) प्रश्न कर्ता [मुझ] को (न इत्) कभी न (जयाति) जीते, [हे बुद्धि] तू (सहमाना) जयशील और (अभिभूः) प्रबल (असि) है। (प्राशम्) [मुझ] प्रश्न कर्ता के (प्रतिप्राशः) प्रतिकूलवादियों को (जहि) मिटादे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ज्वरादिताप हरने वाली औषध के समान बुद्धि उन सबको] (अरसान्) नीरस [फीका] (कृणु) कर ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस सूक्त में ओषधि के उदाहरण से बुद्धि का ग्रहण है। ओषधि का अर्थ निरु० ९। २७ में किया है "औषधिर्यं ओषत्, दाह वा ताप को पी लेती हैं अथवा ताप में इन को पीते हैं, अथवा ये दोष को पी लेती हैं"।

मन्त्र का आशय जिस प्रकार शुद्ध परीक्षित ओषधि के सेवन करने से ज्वर आदि रोग नाश होते हैं, ऐसे ही मनुष्य के बुद्धिपूर्वक, प्रमाण युक्त विवाद करने से बाहिरी और भीतरी प्रतिपक्षी हार जाते है ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२॥

भाषार्थः—(सुपर्णः) सुन्दर पक्ष वाले [गरुड़, गिद्ध आदि पक्षी के समान दूरदर्शी पुरुष] ने (त्वा) तुझ को (अनु=अन्विष्य) ढूंढ कर (अविन्दत्) पाया है, (सूकरः) सूकर [सूअर पशु के समान तीव्रबुद्धि और बलवान् [पुरुष] ने (त्वा) तुझ को (नसा) नासिका से (अखनत्) खोदा है। (प्राशम्) मुझ प्रश्न कर्त्ता के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥२॥

भावार्थः—(सुपर्णः) गिद्ध, मोर आदि पक्षी बड़े तीव्रदृष्टि होते हैं और सूकर एक बलवान् पशु अपनी नासिका से अपने खाद्य तृण को पृथिवी में से खोद कर खा जाता है। इसी प्रकार दूरदर्शी, परिश्रमी और बलवान् पुरुष बुद्धि की महिमा को साक्षात् करके यथायोग्य उसका प्रयोग करते हैं और सदा जय पाते हैं ॥२॥

इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष ने (ह) ही (त्वा) तुझको (बाहौ) अपनी भुजा पर (असुरेभ्यः) असुरों से (स्तरीतवे) रक्षा के लिये (चक्रे) किया है। (प्राशम्) [मेरे] प्रश्न के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥३॥

भावार्थः—(इन्द्र) महाप्रतापी महा बली पुरुष ही अपने बुद्धि बल से (असुर) देवताओं के विरोधी अधर्मियों का नाश करते आये हैं, करते हैं और करेंगे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायणभाष्य में "स्तरीतवे" के स्थान में "तरीतवे" है।

पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (पाटाम्) चमकती हुई [ओषधि रूप बुद्धि] को (असुरेभ्यः) असुरों से (स्तरीतवे) रक्षा के लिए (वि) विविध प्रकार से (आश्नात्) भोजन किया है। (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [औषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥४॥

भावार्थः—जैसे उत्तम ओषधि के सेवन से रोग का नाश होकर शरीर और चित्त को आनन्द मिलता है, वैसे ही ऐश्वर्यशाली पुरुष बुद्धि के यथावत् प्रयोग से शत्रुओं का नाश करके शान्तिलाभ करते हैं ॥४॥

तीनों संहिताओं के 'पाटाम्' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'पाठाम्' है, और भाष्यकार ने उसे औषधि विशेष माना है। शब्दकल्पद्रुम कोष में लिखा है कि 'पाठा' लता विशेष है, आकनादि भाषा नाम है। उसके गुण तिक्तता गुरुता, उष्णता, और वातपित्त, ज्वरपित्त, दाह, अतीसार, शूल नाशन आदि है।

तयाहं शत्रूंस्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥५॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (तया) उस [ओषधि रूप बुद्धि] से (शत्रून्) बैरियों को (साक्षे) हरा दूं, (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली [गृह पति] (सालावृकान् इव) जैसे घर के भेड़ियों, कुत्ते, बिलाव आदिकों को (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे (ओषधे) हे ताप को पी लेने वाली [ओषधि के समान बुद्धि ! उन सब को] (अरसान्) फीका (कृणु) कर ॥५॥

भावार्थः—जैसे ओषधि बल से रोग निवृत्त होता है, वैसे ही मनुष्य बुद्धि बल से, अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करके आनन्द लाभ करें ॥५॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत्।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे ज्ञान प्रापक ! हे दुःख विनाशक ! (जलाषभेषज) हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखदायक ओषधि वाले ! (नीलशिखण्ड) हे निधियों वा निवास स्थानों के प्राप्त कराने वाले ! (कर्मकृत्) हे कार्य्य में कुशल पुरुष ! (प्राशम्) मुझ वादी के (प्रतिप्राशः) प्रतिवादियों को (जहि) मिटा दे, (ओषधे) हे ताप को पीने वाली [ओषधि रूप बुद्धि ! उन सब को !] (अरसान्) फीका (कृणु) कर दे ॥६॥

भावार्थः—जैसे उपकारी चतुर सद्वैद्य सुपरीक्षित ओषधियों से संसार में उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को अपने बुद्धि प्रभाव से कार्यकुशल होकर सदा उपकारी रहना चाहिये ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो नो इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले [पुरुष !] (त्वम्) तू (तस्य) उस पुरुष के (प्राशम्) प्रश्न को (जहि) मिटा दे, (यः) जो (नः) हमको (अभि-दासति) दबावे । (नः) हमसे (शक्तिभिः) अपनी शक्तियों के साथ (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूहि) कथन कर, और (प्राशि) विवाद में (माम्) मुझ को (उत्तरम्) अधिक उत्तम (कृधि) कर दे ॥७॥

भावार्थः—जैसे न्यायी राजा सत्यवादी को जिताता और मिथ्यावादी को हराता है । वैसे ही प्रत्यक मनुष्य अपने कुविचारों को दबाकर और सुविचारों को प्रबल करके आनन्द भोगें । ऐसे ही मनुष्य (इन्द्र) परम सामर्थ्य वाले होते हैं । ॥७॥

'प्राशि' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'प्राशम्' है ॥

सूक्तम् २८ ॥

१—५ ॥ अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(जरिमन्) हे स्तुति योग्य परमेश्वर ! (तुभ्यम्) तेरे [शासन मानने के] लिये (एव) ही (अयम्) यह पुरुष (वर्धताम्) बढ़े, (ये) जो (अन्ये) दूसरे (शतम्) सौ (मृत्यवः) मृत्यु हैं, [वे] (इमम्) इस पुरुष को (मा हिंसिषुः) न मारें । (प्रमनाः) प्रसन्न मन (माता इव) माता जैसे (पुत्रम्) कुलशोधक पुत्र को (उपस्थे) गोद में [पालती है वैसे ही] (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला, वा बड़ा स्नेही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर (एनम्) इस पुरुष को (मित्रियात्) मित्र सम्बन्धी (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अपने जीवन को सदैव ईश्वर की आज्ञा पालन अर्थात् शुभ कर्म करने में बितावे, और प्रयत्न करे कि उसकी मृत्यु निन्दनीय कामों में कभी न हो और न उसके मित्रों में फूट पड़े और न वे दुष्कर्मी हों। और न कोई दुष्ट पुरुष अपने मित्रों को सता सके। जैसे प्रसन्नचित्त विदुषी माता की गोद में बालक निर्भय क्रीड़ा करता है, वैसे ही वह नीतिज्ञ पुरुष परमेश्वर की शरण पाकर अपने भाई बन्धुओं के बीच सुरक्षित रह कर आनन्द भोगे ॥१॥

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२॥

भाषार्थः—(मित्रः) सर्व प्रेरक, काम में लगाने वाला दिन का समय (वा) और (रिशादाः) श्रम का भक्षण करने वाला (वरुणः) रात्रि का समय (संविदानौ) दोनों मिले हुए (एनम्) इस पुरुष को (जरामृत्युम्=जरा—अमृत्युं जरा—मृत्युं वा) स्तुति के साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें। (तत्) इसलिये (होता) महादानी और (वयुनानि) सब व्यवस्थाओं को (विद्वान्) जानने वाला (अग्निः) अग्नि [तेजस्वी परमेश्वर] (देवानाम्) दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा=विश्वानि) सब (जनिमा=०—मानि) जन्म विधानों को (विवक्ति) बतलावे ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य दिन और रात ईश्वर की आज्ञा पालन में लगे रहते हैं, वे ही अन्त में यशस्वी होते हैं, और सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर उनके हृदय में सब उत्तम उत्तम व्यवस्थाओं और नियमों को प्रकट करता जाता है ॥२॥

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हांसीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर!) (त्वम्) तू (पार्थिवानाम्) पृथिवी पर के (पशूनाम्) पशुओं [जीवों] का (ईशिषे) स्वामी है, (ये) जो (जाताः) उत्पन्न हो चुके हैं (उत) और (वा) अथवा (ये) जो (जनित्राः) उत्पन्न होंगे। (इमम्) इस पुरुष को (प्राणः) प्राण [बाहिर जाने वाला श्वास] (मा हासीत्) न त्यागे, (मो=मा+उ) और न (अपानः) अपान [भीतर आने वाला प्रश्वास]। (इमम्) इस पुरुष को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मित्राः) मित्र (मा वधिषुः) न मारें, (मो=मा+उ) और न (अमित्राः) अमित्र [विरोधी अर्थात् वैरी लोग] ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर महा उपकार करके संसार के चर और अचर का शासक और नियन्ता है, इसी प्रकार मनुष्य को उपकारी होकर प्रयत्न करना चाहिये कि उसका स्वयम्, आत्मा और अन्य मित्र अथवा शत्रु सब प्रीति से आनन्द बढ़ाते रहें ॥३॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरूपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४॥

भाषार्थः—(पिता) पिता [के समान रक्षक] (द्यौः) सूर्य लोक और (माता) माता [के समान प्रीति करने वाली] (पृथिवी) पृथिवी लोक, (संविदाने) दोनों मिले हुए, (त्वा) तुझको (जरामृत्युम्=जरा-अमृत्युं जरा-मृत्युं वा) स्तुति के साथ अमर, अथवा, स्तुति वा बुढ़ापे से मृत्यु वाला (कृणुताम्) करें। (यथा) जिससे (अदितेः) अखण्ड परमेश्वर [अथवा अदीन प्रकृति, वा पृथिवी] की (उपस्थे) गोद में (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान से (गुपितः) रक्षा किया हुआ तू (शतम्) सौ (हिमाः) हेमन्त ऋतुओं तक (जीवाः) जीता रहे ॥४॥

भावार्थः—पुरुषार्थी पुरुष प्रबन्ध रक्खे कि सूर्य का तेज और आकर्षण आदि सामर्थ्य और पृथिवी की अन्न आदि की उत्पादनादि शक्ति, और अन्य सब पदार्थ अनुकूल रहें, जैसे माता पिता सन्तानों पर प्रीति रखते हैं, जिससे वह पुरुष परमेश्वर के अनुग्रह से पृथिवी पर यशस्वी होकर पूर्ण आयु भोगे ॥४॥

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि तत्त्व ! (वरुण) हे जल तत्त्व ! (राजन्) हे बड़ी शक्ति वाले (मित्र) चेष्टा कराने वाले प्राण वायु ! (इमम्) इस पुरुष को (आयुषे) आयु [बढ़ाने] के लिये और (वर्चसे) तेज वा अन्न के लिये (प्रियम्) प्रसन्न करने वाला (रेतः) वीर्य वा सामर्थ्य (नय) प्राप्त करा। (अदिते) हे अदीन वा अखण्ड प्रकृति वा भूमि ! (माता इव) माता के समान (अस्मै) इस जीव को (शर्म) आनन्द (यच्छ) दान कर। (विश्वे) हे सब (देवाः) दिव्य पदार्थ वा महात्माओ ! (यथा) जिससे [यह पुरुष] (जरदष्टिः) स्तुति के साथ प्रवृत्ति वा भोजन वाला (असत्) होवे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य अग्नि, जल, वायु, और पृथिवी तत्त्वों को प्रयत्न पूर्वक उचित खान पान ब्रह्मचर्यादि के नियम पालन से अनुकूल रक्खे, जिससे शरीर की पुष्टि और आत्मा की उन्नति करके उत्साही और यशस्वी होवें ॥१॥

टिप्पणी—बम्बई गवर्नमेन्ट पुस्तक की संहिता और पद पाठ में 'मित्रराजन्' एक पद है। परन्तु सायणभाष्य और अन्य दो पुस्तकों में 'मित्र राजन्' दो पद हैं वही हमने लिये हैं ॥

सूक्तम् २९ ॥

१—७ ॥ बृहस्पतिरिन्द्रो वा देवता। १ अनुष्टुप्; ४ चतुर्थे चतुर्थौ दैवी त्रिष्टुप्; अन्ये पादास्त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यः स्वोन्नतिं कुर्यादित्युपदिश्यते—मनुष्य अपनी उन्नति करता रहे, इसका उपदेश ॥

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो ३' बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहारकुशल महात्माओ ! (अग्निः) सर्वव्यापक, (सूर्यः) लोकों में चलने वाला, वा लोकों का चलाने वाला, (बृहस्पतिः) बड़े बड़े [ब्रह्माण्डों] का रक्षक परमेश्वर ! (पार्थिवस्य) पृथिवी पर वर्त्तमान (भगस्य) ऐश्वर्य के (तन्वः) विस्तार के (रसे) रस अर्थात् तत्त्व ज्ञान, और (बले) बल में (अस्मै) इस [जीव] को (आयुष्यम्) आयु बढ़ाने वाला (वर्चः) तेज [शरीर कान्ति और ब्रह्मवर्चस्] (आ) सब ओर से (धात्=धत्तात्) देवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से आध्यात्मिक पक्ष में परमेश्वर के ज्ञान से, और आधिभौतिक पक्ष में (अग्नि) जो बिजुली आदि रूप से सब शरीरों में बड़ा उपयोगी पदार्थ है, और (सूर्य) जो अनेक बड़े बड़े लोकों को अपने आकर्षण आदि में रखता है, इनके विज्ञान से, अपनी शरीर कान्ति और आत्मिक शक्ति बढ़ावें और पृथिवी आदि पदार्थों के सारतत्त्व से उपकार लेकर प्रतापी, यशस्वी, और चिरंजीवी बनें ॥१॥

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्राणियों को जानने वा धन देने वाले परमेश्वर !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वा अग्नि] (अस्मै) इस [जीव] को (आयुः) आयु (धेहि) दे, (त्वष्टः) हे सूक्ष्म रचना करने वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (प्रजाम्) प्रजा जन (अधि-निधेहि) अधिक अधिक संग्रह कर। (सवितः) हे परम ऐश्वर्य वाले परमेश्वर ! [वा सूर्य] (अस्मै) इसको (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टता (आसुव) भेज दे, (तव) तेरा [सेवक] (अयम्) यह [जीव] (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवाति) जीता रहे ॥२॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के गुणों को विचार कर मनुष्य को (जातवदाः) अपने लोगों को जानने वाला, (त्वष्टा) विश्वकर्मा, सब कामों में कुशल और (सविता) महाप्रतापी होकर अपनी सामाजिक और आर्थिक शक्ति बढ़ा कर और संसार में कीर्ति फैला कर पूर्ण आयु भोगनी चाहिये ॥२॥

२— अग्नि के प्रभाव से शरीर में चेष्टा होती है, और सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से बल होता है। जो मनुष्य योग्य प्रयोग से इनको अनुकूल रखता है वह प्रजावान् धनवान् और आयुष्मान् होता है ॥२॥

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (आशीः) आशीर्वाद [हो] (सचेतसौ) हे समान चित्त वाले [माता पिता तुम दोनों] ! (ऊर्जम्) अन्न, (सौप्रजास्त्वम्=०=जस्त्वम्) उत्तम प्रजायें, (दक्षम्) बल, (उत) और (द्रविणम्) धन (धत्तम्) दान करो।

(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर (अयम्) यह [जीव] (सहसा) [आप के] बल से (जयम्) जय और (क्षेत्राणि) ऐश्वर्य के कारण खेतों को (कृण्वानः) करता हुआ, और (अन्यान्) जीवित [वा भिन्न भिन्न] (सपत्नान्) विपक्षियों को (अधरान्) नीचे [करता हुआ] [जीवाति=जीता रहे—मन्त्र २ से] ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (जीवाति) जीता रहे, इस पद की अनुवृत्ति मन्त्र २ से है। माता पिता प्रयत्न करें कि उनके पुत्र पुत्री सब सन्तान् बड़े अन्नवान्, बलवान् और धनवान् होकर, उत्तम गृहस्थी बनें और जितेन्द्रिय होकर अपने दोषों और शत्रुओं का नाश करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४॥

भाषार्थः—(एषः) यह [जीव] (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा करके (दत्तः) दिया हुआ, (वरुणेन) श्रेष्ठ गुण वाले पिता करके (शिष्टः) शिक्षा किया हुआ, और (मरुद्भिः) शूर वीर महात्माओं करके (प्रहितः) भेजा हुआ, (उग्रः) तेजस्वी होकर, (नः) हम लोगों में (आ अगन्=अगमत्) आया है। (द्यावापृथिवी=०—द्यौ) हे सूर्य और भूमि ! (वाम्) तुम दोनों की (उपस्थे) गोद में [यह जीव] (मा क्षुधत्) न भूखा रहे और (मा तृषत्) न पियासा मरे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपनी न्याय व्यवस्था से इस जीव को मनुष्य जन्म दिया है, माता पिता ने शिक्षा दी है, विद्वानों ने उत्तम विद्याओं का अभ्यास कराया है, इस प्रकार वह अध्ययन समाप्ति पर समावर्तन करके संसार में प्रवेश करे, और सूर्य पृथिवी आदि सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगे ॥४॥

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५॥

भाषार्थः—(ऊर्जस्वती=०—त्यौ) हे अन्न वाली [पिता और माता] दोनों ! (अस्मै) इस [जीव को] (ऊर्जम्) अन्न (धत्तम्) दान करो, (पयस्वती=०—त्यौ) हे दूध वाली तुम दोनों ! (अस्मै) इस को (पयः) दूध वा जल (धत्तम्) दान करो। (द्यावापृथिवी=०—द्यौ) सूर्य और पृथिवी ने (अस्मै) इस [जीव] को (ऊर्जम्) अन्न (अधाताम्) दिया है, (विश्वे) सब (देवाः) दिव्यगुण वाले (मरुतः) दोषनाशक, प्राण अपानादि वायु और (आपः) व्यापन शील जल ने (ऊर्जम्) अन्न [अधुः] [दिया है] ॥५॥

भावार्थः—माता पिता संतानों को ऐसी शिक्षा देकर उद्यमी करें कि वे खान पान आदि प्राप्त करके सदा सुखी रहें। सूर्य भूमि वायु जलादि प्राकृतिक पदार्थ खान पानादि देकर बड़ा उपकार कर रहे हैं। उस से सबको लाभ उठाना चाहिये ॥५॥

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमे तमश्विनौ रूपं परिधाय मायाम् ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे जीव !] (शिवाभिः) मङ्गल करने वाली [विद्याओं वा शक्तियों] से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (तर्पयामि) मैं तृप्त करता हूँ, तू (अनमीवः) नीरोग और (सुवर्चाः) उत्तम कान्ति वाला होकर (मोदिषीष्ठाः) हर्ष प्राप्त कर (सवासिनौ) मिलकर निवास करने वाले दोनों [स्त्री पुरुष] (अश्विनोः) माता पिता के (रूपम्) स्वभाव और (मायाम्) बुद्धि को (परिधाय) सर्वथा धारण करके (एतम्) इस (मन्थम्) रस का (पिबताम्) पान करें ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर कहता है कि हे मनुष्य तेरे आनन्द के लिये मैंने तुझे अनेक विद्यायें और शक्तियां दी हैं तुम दोनों स्त्री पुरुषो ! माता पिता रूप से संसार का उपकार करके इस [मेरे दिये] आनन्द रस को भोगो ॥६॥

इन्द्रं एतां ससृजे विद्धो अग्रे ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७॥

भाषार्थः—(विद्धः) सेवा किये हुए (इन्द्रः) परमेश्वर ने (एताम्) इस (अजराम्) अक्षय (ऊर्जाम्) अन्नयुक्त (स्वधाम्) अमृत को (अग्रे) पहिले से (ससृजे) उत्पन्न किया है। (सा एषः) सो यह (ते) तेरे लिये [है], (तया) उस [अमृत] से (त्वम्) तू (सुवर्चाः) उत्तम कान्ति वाला होकर (शरदः) बहुत शरद् ऋतुओं तक (जीव) जीता रह, (मा) और [सा स्वधा] [वह] (ते) तेरे लिये (मा सुस्रोत्) न घट जावे। (भिषजः) वैद्यों ने (ते) तेरे लिए [उस अमृत को] (अक्रन्) बनाया है ॥७॥

भावार्थः—अनादि परमेश्वर ने सृष्टि के पहिले मनुष्य को अमृत रूप सार्वभौम ज्ञान दिया है उसकी कभी हानि नहीं होती, मनुष्य जितना जितना उसे काम में लाता है उतना ही वह बढ़ता जाता है और सुखदायक होता है। उसके उचित प्रयोग से मनुष्य पूर्ण आयु भोगता है। बुद्धिमानों ने बुद्धि को महौषधि बताया है ॥७॥

'ऊर्जाम्' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'ऊर्जम्' व्याख्यात है।

सूक्तम् ॥ ३० ॥

१—५ ॥ अश्विनौ देवते ॥ १ पङ्क्तिः, २—५ अनुष्टुप् ॥

गृहस्थाश्रमप्रवेशायोपदेशः—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति । एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार (वातः) वायु (भूम्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (इदम्) इस (तृणम्) तृण को (मथायति) चलाता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे (मनः) मन का (मथ्नामि) मैं चलाता हूं, (यथा) जिससे तू (माम् कामिनी) मेरी कामना वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे तू (मत्) मुझ से (अपगाः) वियोग करने वाली (न) न (असः) होवे ॥१॥

भावार्थः—विद्यासमाप्ति पर ब्रह्मचारी अपने अनुरूप गुणवती कन्या को ढूंढे, और कन्या भी अपने सदृश वर ढूंढ़े। इस प्रकार विवाह होने से वियोग न होकर आपस में प्रेम बढ़ता और आनन्द मिलता है ॥१॥

'भूम्याः' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'भूम्याम्' पद व्याख्यात है।

इस मन्त्र का अन्तिम भाग "यथा मां—मन्नापगा असः" अ० १। ३४। ५, और ६। ८। १–३ में भी है।

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२॥

भाषार्थः—(च) और (अश्विना=०—नौ) हे कार्य में व्याप्ति वाले माता और पिता, तुम दोनों, (इत्) ही (कामिना=०—नौ) कामना वाले दोनों [वर कन्या] को (सम्) मिल कर (नयाथः) ले चलो, (च) और (सम्) मिल कर वक्षथः) आगे बढ़ाओ। (वाम्) तुम दोनों के (भगासः=भगाः) सब ऐश्वर्य (सम् अग्मत) [हम को] मिल गये हैं, (चित्तानि) [हमारे] चित्त (सम=सम्+अग्मत) मिल गये हैं, (उ) और भी (व्रता=व्रतानि) नियम और कर्म (सम्+अग्मत) मिल गये हैं ॥२॥

भावार्थः—वर और कन्या माता पिता आदि बड़ों की भी सम्मति प्राप्त करें। उनके अनुग्रह से दोनों ने विद्या धन और सुवर्ण आदि धन, तथा परस्पर एक चित्त होने और नियम पालन की शक्ति को पाया है। यह मूल मन्त्र गृहस्थाश्रम में आनन्दवर्धक है ॥२॥

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्=यत्र) जहां (सुपर्णाः) बड़ी पूर्त्ति वाले [अथवा गरुड़ गिद्ध, मोर आदि के समान दूरदर्शी पुरुष] (विवक्षवः) विविध प्रकार से राशि वा समूह करने वाले, और (अनमीवाः) रोगरहित स्वस्थ पुरुष (विवक्षवः) बोलने वाले हों, (तत्र) उस स्थान में [वह वर वा कन्या] (मे) मेरी [वर व कन्या की] (हवम्) पुकार [विज्ञापन] को (गच्छतात्) पावे, (शल्यः इव) जैसे बाण की कील (यथा) जिस प्रकार (कुल्मलम्) अपने दण्डे में [पहुंचती है] ॥३॥

भावार्थः—जहां विद्वान् पुरुषों में रहकर वर ने, और विदुषी स्त्रियों में रहकर कन्या ने विद्या और सुवर्णादि धन प्राप्त किये हों, और नीरोग रहने और धर्म उपदेश करने की शिक्षा पायी हो, वहां पर उन दोनों के विवाह की बातचीत पहुँचे और ऐसी दृढ़ हो जावे जैसे बाण की कील, बाण की दंडी में पक्की जम जाती है ॥३॥

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥४॥

भाषार्थः—[हे वर!] (यत्) जो कुछ [प्रीति भाव आदि] (अन्तरम्) भीतर [तेरे हृदय में] है, (तत्) वह (बाह्यम्) बाहिर [कन्या को प्रकट] हो और (यत्) जो कुछ [प्रीतिभाव] (बाह्यम्) बाहिर [प्रकट किया जाय] (तत्) वह (अन्तरम्) भीतर [कन्या के हृदय में स्थित हो] (ओषधे) हे ताप नाशक [ओषधि रूप वर] (विश्वरूपाणाम्) सर्वसुन्दरी (कन्यानाम्) कन्याओं [कन्या] के (मनः) मन को (गृभाय) ग्रहण कर ॥४॥

भावार्थः—वर हार्दिक प्रीति से कन्या के साथ व्यवहार करे, और पत्नी भी पति से हार्दिक प्रीति रक्खे। इस प्रकार परस्पर प्रसन्नता से गृह लक्ष्मी बढ़ेगी और नित्य प्रति आनन्द रहेगा। (कन्यानाम्) बहुवचन एक के लिए आदरार्थ है. और मन्त्र में जो वर को उपदेश है वही कन्या के लिए भी समझना चाहिये ॥४॥

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५॥

भाषार्थः—(इयम्) यह (पतिकामा) पति की कामना करती हुई कन्या (आ—अगन्=आगमत्) आयी है, और (जनिकामः) पत्नी की कामना वाला (अहम्) मैं (आ+अगमम्) आया हूँ। (अहम्) मैं (भगेन) ऐश्वर्य के (सह) साथ (आ+अगमम्) आया हूं। (यथा) जैसे (कनिक्रदत्) हींसता हुआ (अश्वः) घोड़ा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे बलवान् घोड़ा मार्ग गमन, अन्न, घास आदि भोजन के समय हिनहिनाकर प्रसन्नता प्रकट करता है, इसी प्रकार विद्या समाप्ति पर पूर्ण विद्वान् और समर्थ कन्या और वर गृहाश्रम में प्रवेश करके आनन्द भोगते हैं ॥५॥

सूक्तम् ३१ ॥

१—५ ॥ इन्द्रो देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप् ।

स्वल्पानपि दोषान्नाशयेत्—छोटे २ दोषों का भी नाश करे ॥

इन्द्रस्य या महो दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर की (या) जो (महो) विशाल [सर्वव्यापिनी विद्यारूप] (दृषत्) शिला (विश्वस्य) प्रत्येक (क्रिमेः) क्रिमि [कीड़े] की [तर्हणी] नाश करने वाली है, (तया) उससे (क्रिमीन्) सब क्रिमियों को (सम्) यथा नियम (पिनष्मि) पीस डालूं, (इव) जैसे (दृषदा) शिला से (खल्वान्) चनों को [पीसते हैं] ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी अटूट न्याय व्यवस्था से प्रत्येक दुराचारी को दंड देता है इस प्रकार मनुष्य अपने छोट २ दोषो को नाश करे। क्योंकि छोटे छोटों से ही बड़े बड़े दोष उत्पन्न होकर अन्त में बड़ी हानि पहुंचाते हैं। जैसे कि शिर वा उदर में छोटे २ कीड़े उत्पन्न होकर बड़ी व्याकुलता और रोग के कारण होते हैं ॥१॥

इस सूक्त में क्रिमियों के उदाहरण से क्षुद्र दोषों के नाश का उपदेश है ॥

इस सूक्त और आगामी सूक्त का मिलान अथर्व० का० ५ सूक्त २३ से कीजिये ॥

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् । अलगण्डूनत्सर्वा-
ञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥२॥

भाषार्थः—(दृष्टम्) दीखते हुए और (अदृष्टम्) न दीखते हुए [क्रिमिगण] को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है, (अथो) और भी (कुरूरुम्) भूमि पर रेंगने वाले, वा बुरे प्रकार से सताने वा भिनभिनाने वाले को (अतृहम्) मैंने नष्ट कर दिया है। (सर्वान्) सब (अलगण्डून्) उपधानों [तकियों] में भरे हुए (शलुनान्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेग वेग चलने वाले (क्रिमीन्) कीड़ों को (वचसा) वचन से (जम्भयामसि = ०—मः) हम मार डालें ॥२॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य बड़े और छोटे क्षुद्र जन्तुओं को, जो अशुद्धि, मलिनता आदि से उत्पन्न होकर बड़े २ रोगों के कारण होते हैं, मार डालते हैं, इसी प्रकार अपने छोटे २ दोषों का शीघ्र ही नाश करना चाहिये ॥२॥

२—(वचसा जम्भयामसि) वचन से हम मार डालें। इसका यह अभिप्राय है कि (१) वचन मात्र से अर्थात् शीघ्र ही, (२) औषधि शौच आदि के हित उपदेश से, ३—ओ३म् शब्द, गायत्री आदि मन्त्र के जप से, ४—रोचक कथा, लौरी वा गीत आदि के सुनाने से चित्त को शान्ति और शान्ति से कुरोग और कुवासनाओं का नाश होता है ॥

टिप्पणी—'कुरूरुम्' के स्थान पर सायणभाष्य में 'कुरीरम्' और 'शलुनान्' के स्थान पर 'शल्गान्' व्याख्यात है ॥

अलगण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥३॥

भाषार्थः—(अलगण्डून्) उपधानों [तकियों] में भरे हुए जन्तुओं को (महता) बड़ी (वधेन) चोट से (हन्मि) मैं मारता हूँ। (दूनाः) तपे हुए और (अदूनाः) विना तपे हुए [पक्के और कच्चे कीड़े] (अरसाः) नीरस [निर्बल] (अभूवन्) हो गए हैं। (शिष्टान्) बचे हुए (अशिष्टान्) दुष्टों को (वाचा) वचन से (नि) नीचे डाल कर (तिरामि) मार डालूं, (यथा) जिससे (क्रिमीणाम्) कीड़ों में से (नकिः) कोई भी न (उच्छिषातै) बचा रहे ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र १, और २ के समान है ॥३॥

अन्वान्त्र्यं शीर्ष्ण्यं १ मथो पार्ष्ट्येयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४॥

भाषार्थः—(अन्वान्त्र्यम्) आंतों में के (शीर्ष्ण्यम्) शिर पर वा शिर में के (अथो = अथ-उ) और भी (पार्ष्ट्येयम्) पसलियों में के (क्रिमीन्) इन सब कीड़ों को, (अवस्कवम्) नीचे २ रंगने वाले [जैसे दद्रु क्रिमि] और (व्यध्वरम्) छेद करने वाले वा पीड़ा देने वाले, वा यज्ञ के विरोधी (क्रिमीन्) इन सब कीड़ों को (वचसा) बात मात्र से (जम्भयामसि = ०—मः) हम नाश करें ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र १ और २ के समान है ॥४॥

सायणभाष्य में 'पार्ष्ट्येयम्' के स्थान पर 'पार्ष्ण्येयम्' है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व १न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (पर्वतेषु) पहाड़ों में, (वनेषु) वनों में (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियों में, (पशुषु) गौ आदि पशुओं में और (अप्सु) जल के (अन्तः) भीतर हैं। और (ये) जो (अस्माकम्) हमारे (तन्वम्) शरीर में (आविविशुः) प्रविष्ट हो गए हैं, (क्रिमीणाम्) क्रिमियों के (तत्) उस (सर्वम्) सब (जनिम) जन्म को (हन्मि) मैं नाश करूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सब स्थानों, सब वस्तुओं और अपने शरीरों को शुद्ध रक्खें कि छोट बड़े कोई अन्य क्लेश न देवें, ऐसे ही सब पुरुष आत्मशुद्धि करके अपने भीतरी बाहिरी, छोटे बड़े दोषों को मिटाकर आनन्द से रहें ॥५॥

सायणभाष्य में (ये) के स्थान में [ते] और (तन्वम्) के स्थान में [तन्वः] है ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ।

सूक्तम् ३२ ॥

१—६ ॥ आदित्यो देवता । १—गायत्री, २—६ अनुष्टुप् छन्दः ॥

क्रिमितुल्यान् दोषान् नाशयेत्, इत्युपदेशः—कीड़ों के समान दोषों का नाश करे, इसका उपदेश ॥

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥

भाषार्थः—(उद्यन्) उदय होता हुआ (आदित्यः) प्रकाशमान सूर्य (क्रिमीन्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन कीड़ों को (हन्तु) मारे और (निम्रोचन्) अस्त हुआ [भी सूर्य] (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (हन्तु) मारे, (ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (गवि) पृथिवी के (अन्तः) भीतर हैं ॥१॥

भावार्थः—(१) प्रातःकाल और सायंकाल में सूर्य की कोमल किरणों और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायुके सेवन से शारीरिक रोग के कीड़ों का नाश होकर मन हृष्ट और शरीर पुष्ट होता है ॥१॥

(२) उदय और अस्त होते हुए सूर्य के समान मनुष्य बालपन से बुढ़ापे तक अपने दोषों का नाश करके सदा प्रसन्न रहे ॥

टिप्पणी—इस सूक्त और ३३वें सूक्त का मिलान अथर्व० का० ५ सू० २३ से करें ॥

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२॥

भाषार्थः—(विश्वरूपम्) नाना आकार वाले (चतुरक्षम्) [चार दिशाओं में] नेत्र वाले, (सारंगम्) रींगने वाले [वा चितकबरे] और (अर्जुनम्) संचयशील [वा श्वेत वर्ण] (क्रिमिम्) कीड़े को (शृणामि) मैं मारता हूँ, (अस्य) इसकी (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) भी, और (यत्) जो (शिरः) शिर है [उसको भी] (वृश्चामि) तोड़े डालता हूं ॥२॥

भावार्थः—पृथिवी और अन्तरिक्ष के नाना आकार और नाना वर्ण वाले मकड़ी मक्खी आदि क्षुद्र जन्तुओं को शुद्धि आदि द्वारा पृथक् रखने से शरीर स्वस्थ रहता है, इसी प्रकार आत्मिक दोषों की निवृत्ति से आत्मिक शान्ति होती है ॥२॥

टिप्पणी—'चतुरक्ष' = चार आंख वाला—ऐसा प्रयोग वेद में अन्यत्र भी आया है, वहां भी चारों दिशाओं का ही ग्रहण है। देखिए—

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्चतुरक्ष्याः ॥ अ० ४। २०। ७ ॥

तू (कश्यपस्य) सूर्य की और (चतुरक्ष्याः) चार आंख वाली (शुन्याः) व्याप्ति वाली दिशा की (चक्षुः) आंख है। [ऋ० १०। १४। १०, ११ भी देखिए ॥]

अत्त्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(क्रिमयः) हे कीड़ो ! (वः) तुमको (अत्रिवत्) दोष भक्षक, वा गतिशील, मुनि के समान (कण्ववत्) स्तुति योग्य मेधावी पुरुष के समान, (जमदग्निवत्) आहुति खाने वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष के समान, (हन्मि) मैं मारता हूँ। (अगस्त्यस्य) कुटिल गति पाप के छेदने में समर्थ परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (अहम्) मैं (क्रिमीन्) कीड़ों (सम् पिनष्मि) पीसे डालता हूँ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य को ऋषि, मुनि, धर्मात्माओं के अनुकरण से वेद ज्ञान प्राप्त करके पाप का नाश करना चाहिये ॥३॥

मन्त्र ३-५ अथर्ववेद का० ५ सू० २३ मन्त्र १०—१२ में भी हैं ॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन (क्रिमीणाम्) कीड़ों का (राजा) राजा (हतः) नष्ट होवे, (उत) और (स्थपतिः) द्वार पाल (हतः) नष्ट होवे। (हतमाता) जिसकी माता नष्ट हो चुकी है, (हतभ्राता) जिसका भ्राता नष्ट हो चुका है और (हतस्वसा) जिसकी बहिन नष्ट हो चुकी है, (क्रिमिः) वह चढ़ाई करने वाला कीड़ा (हतः) मार डाला जावे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य अपने दोषों और उनके कारणों को उचित प्रकार से समझकर नष्ट करे, जैसे वैद्य दोषों के प्रधान और गौण कारणों को समझ कर रोग निवृत्ति करता है ॥४॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [क्रिमि] के (वेशसः) मुख्य सेवक (हतासः = हताः) नष्ट हों, और (परिवेशसः) साथी भी (हतासः) नष्ट हों, (अथो = अथ – उ) और भी (ये) जो (क्षुल्लकाः इव) बहुत सूक्ष्म आकार वाले से हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (क्रिमयः) कीड़े (हताः) नष्ट हों ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी स्थूल और सूक्ष्म कुवासनाओं का और उनकी सामग्री का सर्वनाश कर दे, जैसे रोग जनक जन्तुओं को औषध आदि से नष्ट करते हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र ते भृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (शृङ्गे) दो सींगों को (प्र+भृणामि) मैं तोड़े डालता हूं, (याभ्याम्) जिन दोनों से (वितुदायसि) तू सब ओर टक्कर मारता है। (ते) तेरे (कुषुम्भम्) जल पात्र को (भिनद्मि) तोड़ता हूं (यः) जो (ते) तेरे (विषधानः) विष की थैली है ॥६॥

भावार्थः—जैसे दुष्ट वृषभ अपने सींगों से अन्य जीवों को सताता है, इसी प्रकार जो क्षुद्र क्रिमियों के समान आत्मदोष दिन रात कष्ट देते हैं, उनको और उनके कारणों को खोजकर नष्ट करना चाहिये ॥६॥

'कुषुम्भम्' के स्थान पर सायण भाष्य में 'षुकम्भम्' पद है ॥

सूक्तम् ३३ ॥

१–७ ॥ आत्मा देवता । १–६ अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ॥

शारीरिकविषये शरीररक्षा—शारीरिक विषय में शरीर रक्षा ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

भाषार्थ—[हे प्राणी] (ते) तेरी (अक्षीभ्याम्) दोनों आंखों से (नासिकाभ्याम्) दोनों नथुनों से (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों, से (छुबुकात्=चुबकात् अधि) ठोड़ी में से, (ते) तेरे (मस्तिष्कात्) भेजे से, और (जिह्वायाः) जिह्वा से (शीर्षण्यम्) शिर में के (यक्ष्मम्) क्षयी [छयी] रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥१॥

भावार्थः—(१) इस मन्त्र में शिर के अवयवों का वर्णन है। जैसे सद्वैद्य उत्तम औषधों से रोगों की निवृत्ति करता है, ऐसे ही मनुष्य अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को विचार पूर्वक नाश करे ॥१॥

(२) सायणभाष्य में 'छुबुकात्, के स्थान में 'चुबुकात्' है, और ऋग्वेद में भी (छुबुकात्) पाठ है।

(३) इस सूक्त के ७ मन्त्रों के स्थान में ऋग्वेद म० १० सू० १६३ में ६ मन्त्र हैं। मन्त्र ३ का पहिला आधा 'हृदयात् ते परि···' और म० ४ का दूसरा आधा 'यक्ष्मं कुक्षिभ्यां...' ऋग्वेद में नहीं है, शेष मन्त्र कुछ भेद से हैं। ऋग्वेद में इस सूक्त के ऋषि विवृहा काश्यप हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१ मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (ग्रीवाभ्यः) गले की नाड़ियों से, (उष्णिहाभ्यः) गुद्दी की नाड़ियों से, (कीकसाभ्यः) हंसली की हड्डियों से, (अनूक्यात्) रीढ़ से और (ते) तेरे (अंसाभ्याम्) दोनों कन्धों से और तेरे (बाहुभ्याम्) दोनों भुजाओं से (दोषण्यम्) मुड्ढे वा बक्खे के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ग्रीवा के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ म० १ के समान है ॥२॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से, (क्लोम्नः) फेफड़े से, (हलीक्ष्णात्) पित्ते से, (पार्श्वाभ्याम् परि) दोनों कांखों [कक्षाओं वा वगलों] से और (ते) तेरे (मतस्नाभ्याम्) दोनों मतस्नों [गुर्दों] से, (प्लीह्नः) प्लीहा, वा पिलई [तिल्ली] से, और (यक्नः) यकृत् [काल खण्ड वा जिगर] से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामसि = ०—मः) हम उखाड़े देते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कन्धों के नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥३॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (आन्त्रेभ्यः) आंतों से, (गुदाभ्यः) गुदा की नाड़ियों से, (वनिष्ठोः) वनिष्ठु [भीतरी मलस्थान] से, (उदरात् अधि) उदर में से, और (ते) तेरी (कुक्षिभ्याम्) दोनों कोखों से, (प्लाशेः) कोख में की थैली से, और (नाभ्याः) नाभि से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि वृहामि) मैं उखाड़े देता हूँ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उदर के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥४॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्य१ श्रोणिभ्यां भासदं मंससो वि वृहामि ते ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ते) तेरे (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से, (पार्ष्णिभ्याम्) दोनों एड़ियों से, (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पंजों से, और (ते) तेरे (श्रोणिभ्याम्) दोनों कूल्हों से [वा नितम्बों से] और (भंससः) गुह्य स्थान से (भसद्यम्) कटि [कमर] के और (भासदम्) गुह्य के (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि बृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कटि से नीचे के अवयवों का वर्णन है। भावार्थ मन्त्र १ के समान है ॥५॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि बृहामि ते ॥६॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (अस्थिभ्यः) हड्डियों से (मज्जभ्यः) मज्जा धातु [अस्थि के भीतर के रस] से (स्नावभ्यः) पुठ्ठों से और (धमनिभ्यः) नाड़ियों से, और (ते) तेरे (पाणिभ्याम्) दोनों हाथों से, (अङ्गुलिभ्यः) अंगुलियों से, और (नखेभ्यः) नखों से (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (वि बृहामि) मैं जड़ से उखाड़ता हूँ ॥६॥

भावार्थः - मनुष्य अपने शरीर के भीतरी धातुओं, नाड़ियों और हाथ आदि बाहिरी अंगों को यथायोग्य आहार, विहार से पुष्ट और स्वस्थ रक्खें, जिससे आत्मिक शक्ति सदा बढ़ती रहे ॥६॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि। यक्ष्मं त्वचस्यं
ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि बृहामसि ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो [क्षयी रोग] (ते) तेरे (अङ्गे-अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में, (लोम्नि-लोम्नि) रोम रोम में (पर्वणि-पर्वणि) गांठ गांठ में है। (वयम्) हम (ते) तेरे (त्वचस्यम्) त्वचा के और (विष्वञ्चम्) सब अवयवों में व्यापक (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (कश्यपस्य) ज्ञान दृष्टि वाले विद्वान् के (विबर्हेण) विविध उद्यम से (वि-बृहामसि) जड़ से उखाड़ते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपसंहार वा समाप्ति है अर्थात् प्रसिद्ध अवयवों का वर्णन करके अन्य सब अवयवों का कथन है। जिस प्रकार सद्वैद्य निदान पूर्वक रोगी के जोड़ जोड़ में से रोग का नाश करता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष निदिध्यासन पूर्वक आत्मिक दोषों को मिटा कर प्रसन्नचित्त होता है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३४ ॥

१—५ ॥ पशुपतिर्देवता ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

बन्धात् मोक्षायोपदेशः—बन्ध से मुक्ति के लिये उपदेश ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो (पशुपतिः) पशुओं [जीवों] का स्वामी परमेश्वर (चतुष्पदाम्) चौपाये, (उत) और (यः) जो (द्विपदाम्) दोपाये (पशूनाम्) जीवों का (ईशे = ईष्टे) राजा है (सः) वह परमेश्वर (निष्क्रीतः) अनुकूल होकर (यज्ञियम्) हमारे पूजा योग्य (भागम्) भजन वा अंश को (एतु) प्राप्त करे। (रायः) धन की (पोषाः) वृद्धियां (यजमानम्) पूजनीय कर्म करने वाले को (सचन्ताम्) सींचती रहें ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यादि दोपाये और गौ आदि चौपाये तथा सब संसार का स्वामी है, वह मनुष्यों के धर्मानुकूल चलने से उनका (निष्क्रीतः) मोल लिया हुआ अर्थात् उन का इच्छावर्ती होकर उन को सब प्रकार का आनन्द देता है ॥१॥

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वान् महात्माओ ! (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज [वृद्धि सामर्थ्य] का (प्रमुञ्चन्तः) दान करते हुए तुम, (यजमानाय) पूजनीय कर्म करने वाले पुरुष को (गातुम्) मार्ग (धत्त) दान करो, (यत्) जो (शशमानम्) उछल कर प्राप्त होता हुआ (उपाकृतम्) समीप लाया गया (पाथः) रक्षा साधन अन्नादि (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियम्) प्रिय [हितकारक] (अस्थात्) स्थित हुआ है [वह हमें] (अपि) अवश्य (एतु) प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् महात्मा लोग वेद द्वारा संसार की वृद्धि और स्थिति का कारण विचार कर सब को सत्य मार्ग का उपदेश करें जिस से मनुष्य ईश्वरकृत रक्षा साधन, ज्ञान, खान पान आदि पदार्थों का [जो सब को सब जगह सुलभ है] यथावत् प्राप्त कर दुःखों से मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्रमुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो [महाविद्वान्] (बध्यमानम् अनु) बन्धन में पड़ते हुए [जीव] पर (दीध्याना+सन्तः) प्रकाश करते हुए, (मनसा) मन से (च) और (चक्षुषा) नेत्र से (अन्वैक्षन्त) दया से देख चुके हैं, (तान्) उन (अग्रे=अग्रे-वर्त्तमानान्) अग्रगामियों को (अग्निः) सर्वव्यापक, (देवः) प्रकाशस्वरूप, (विश्वकर्मा) सब का रचने वाला परमेश्वर, (प्रजया) प्रजा [सृष्टि] के साथ (संरराणः=संरममाणः) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) [विघ्न से] मुक्त करे ॥३॥

भावार्थः—जो महात्मा अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति से अज्ञान के कारण से दुःख में डूबे हुओं के उद्धार में समर्थ होते हैं, वह सर्वशक्तिमान् सर्वकर्त्ता परमेश्वर उन परोपकारी जनों का सदा सहायक और आनन्ददायक होता है ॥३॥

'वध्यमानम्' के स्थान पर 'वध्यमानम्' और 'अनु दीध्यानाः, दो पद के स्थान पर 'अनुदीध्यानाः, एक पद सायण भाष्य में है ॥

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो (ग्राम्याः) ग्राम में बसने वाले, (विश्वरूपाः) सब वर्ण वाले (पशवः) जीव (बहुधा) प्रायः (विरूपाः) पृथक् २ रूप वाले (सन्तः) होकर (एकरूपाः) एक स्वभाव वाले हैं, (तान्) उन (अग्रे=अग्रे वर्त्तमानान् पशून्) अग्रवर्त्ती जीवों को (वायुः) सर्वव्यापी वा बलदायक (देवः) प्रकाशस्वरूप, (प्रजापतिः) प्रजाओं का रक्षक परमेश्वर (प्रजया) प्रजा [अपने जनों] से (संरराणः=संरममाणः) आनन्द करता हुआ (प्र) भली प्रकार (मुमोक्तु) मुक्त करे ॥४॥

भावार्थः—जो (ग्राम्याः) मिलकर भोजन करने वाले मनुष्य भिन्न देश, भिन्न अन्न जल वायु होने से भिन्न वर्ण होकर भी एक ईश्वर की आज्ञा पालन में (एकरूप) तत्पर रहते हैं, परमेश्वर प्रसन्न होकर उन पुरुषार्थी महात्माओं को दुःख से छुड़ा कर सदा आनन्द देता है ॥

२—शुद्ध वायु सब प्राणियों को शारीरिक और आत्मिक सुख देता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥५॥

भाषार्थः—(प्रजानन्तः) बड़े ज्ञान वाले (पूर्वे=पूर्वे वर्त्तमानाः+भवन्तः) प्रथम स्थान में वर्त्तमान महात्मा पुरुष आप (अङ्गेभ्यः) सब के अङ्गों के हित के लिये (परि) सब ओर (आचरन्तम्) चलने वाले (प्राणम्) अपने प्राण [बल] को (प्रति) प्रत्यक्ष (गृह्णन्तु) ग्रहण करें।

[हे मनुष्य!] (दिवम्) ज्ञान प्रकाश वा व्यवहार को (गच्छ) प्राप्त कर, (शरीरैः) सब अङ्गों के साथ (प्रति तिष्ठ) तू प्रतिष्ठित रह, (देवयानैः) देवताओं के चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (स्वर्गम्) स्वर्ग [महा आनन्द] में (याहि) तू पहुंच ॥५॥

भावार्थः—ज्ञानी महात्मा पुरुष जो श्वास लें वह संसार के उपकार के लिये ही लें, अर्थात् प्रतिक्षण परोपकार में लगकर अपना सामर्थ्य और जीवन बढ़ावें। और प्रत्येक मनुष्य को योग्य है कि अपने आत्मा में ज्ञान का प्रकाश करके सब व्यवहारों में चतुर हो, और आंख, कान, हाथ, पग आदि अङ्गों से शुभ कर्म करके प्रतिष्ठा बढ़ावें, और जिन वेद मार्गों पर देवता चलकर स्वर्ग भोगते हैं उन्हीं वेदरूपी राजपथों पर चल कर जीवन्मुक्त होकर आनन्द भोगें ॥५॥

टिप्पणी—स्वर्ग का लक्षण टिप्पणी, अ० १। ३०। २ में अथर्व० का० ६। सू० १२० म० ३ के प्रमाण से दिया है, वहां देख लीजिये ॥

सूक्तम् ३५ ॥

१—५ ॥ विश्वकर्मा देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

पापत्यागात् सुखलाभ इत्युपदिश्यते— पाप के त्याग से सुखलाभ है, इस का उपदेश ॥

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यान्नग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१॥

भाषार्थः—(ये) जिन मनुष्यों ने (भक्षयन्तः) पेट भरते हुए (वसूनि) धनों को (न) नहीं (आनृधुः) बढ़ाया, और (यान्) जिन पर (धिष्ण्याः) बोलने, काम वा बुद्धि में चतुर (अग्नयः) गतिशील ज्ञानी [वा अग्नि समान तेजस्वी] पुरुषों ने (अन्वतप्यन्त) अनुताप किया है। [शोक माना है] (तेषाम्) उन [कंजूसों] की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(या) जो (अवयाः) विनाश हेतु (दुरिष्टिः) खोटी सङ्गति है, (विश्वकर्मा) सब कर्मों में चतुर [वा संसार का रचने वाला] परमेश्वर (ताम्) उस [कुसंगति] को (नः) हमारे लिये (स्विष्टिम्) उत्तम फलदायक (कृणवत्) करे ॥१॥

भावार्थः—जो स्वार्थी मनुष्य केवल अपना पेट भरना जानते हैं और जो धन एकत्र करके उपकार नहीं करते, उनकी दशा उदारशील महात्माओं को शोचनीय होती है, सब कर्मकुशल मनुष्यों को [परमेश्वर] सुमति दे कि उनका मन स्वार्थपन छोड़ कर जगत् की भलाई में लगे। सब मनुष्य (विश्वकर्मा) विहित कर्मों में कुशल होकर, और कुसंगति का दुष्ट फल देख कर दुष्कर्मों से बचें और सदा आनन्द से रहें ॥१॥

यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥२॥

भाषार्थः—(ऋषयः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि (प्रजाः) मनुष्यादि प्रजाओं पर (अनुतप्यमानम्) अनुताप [अनुकम्पा] करने वाले (यज्ञपतिम्) उत्तम कर्मों के रक्षक पुरुष को (एनसा) पाप से (निर्भक्तम्) पृथक् किया हुआ (आहुः) बताते हैं। उसने (यान्) जिन (मथव्यान्) मथने योग्य (स्तोकान्) प्रसन्न करने वाले, सूक्ष्म विषयों को (अप) आनन्द से (रराध) सिद्ध किया है (विश्वकर्मा) संसार का रचने वाला परमेश्वर (तेभिः=तैः) उन [सूक्ष्म विषयों] के साथ (नः) हमें (सं सृजतु) संयुक्त करे ॥२॥

भावार्थः—ऋषि लोग उस पुरुषार्थी पुरुष को निष्पाप और पुण्यात्मा मानते हैं जो सब जीवों पर दया और उपकार करता है वही धर्मात्मा आप्तपुरुष, सत्य सिद्धान्तों को साक्षात् करके आनन्द से संसार में प्रकाशित करता है। (विश्वकर्मा) परमेश्वर उन अटल वैदिक धर्मों को हम सब के हृदय में स्थापित करे, जिससे हम पुरुषार्थपूर्वक सदा आनन्द भोगें ॥२॥

टिप्पणी—'अनुतप्यमानम्' के स्थान पर 'अनु तप्यमानम्' दो पद और 'मथव्यान्' के स्थान पर [मघव्यान्] पद सायणभाष्य में हैं ॥

अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३॥

भाषार्थः—(अदान्यान्) दान के अयोग्य पुरुषों को (सोमपान्) अमृत पान करने वाले (मन्यमानः) मानता हुआ पुरुष, (यज्ञस्य) शुभ कर्म का (विद्वान्) जानने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला और (समये) समय पर (धीरः) धीर (न) नहीं होता। (एषः) इस पुरुष ने (बद्धः) [अज्ञान में] बन्ध होकर (यत्) जो (एनः) पाप (चकृवान्) किया है, (विश्वकर्मन्) हे संसार के रचने वाले परमेश्वर! (तम्) उस पुरुष को (स्वस्तये) आनन्द भोगने के लिये (प्र मुञ्च) मुक्त कर दे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अविवेक के कारण मूढ़ होकर अपनी और संसार की हानि कर डालता है। वह पुरुष अपने प्रमाद पर पश्चात्ताप कर और पाप कर्म छोड़कर ईश्वर आज्ञा का पालन करके आनन्द भोगे ॥३॥

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्य१' स्मान् ॥४॥

भाषार्थः—(ऋषयः) सूक्ष्मदर्शी पुरुष (घोराः) [पाप कर्मों पर] क्रूर होते हैं, (एभ्यः) उन [ऋषियों] को (नमः) अन्न वा नमस्कार (अस्तु) होवे, (यत्) क्योंकि (एषाम्) उन [ऋषियों] के (मनसः) मन की (चक्षुः) आंख (च) निश्चय करके (सत्यम्) यथार्थ [देखने वाली] है। (महिष) हे पूजनीय परमेश्वर! (बृहस्पतये) सब बड़े बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी [आप] को (द्युमत्) स्पष्ट (नमः) नमस्कार है, (विश्वकर्मन्) हे संसार के रचने वाले! (नमस्ते) तेरे लिये नमस्कार है, (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर ॥४॥

भावार्थः—जिन महात्मा आप्त ऋषियों के मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म, संसार को दुःख से मुक्त करने के लिए होते हैं, उनके उपदेशों को सब मनुष्य प्रीति पूर्वक ग्रहण करें, और जो परमेश्वर समस्त सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता है, उस के उपकारों को हृदय में धारण करके उसकी उपासना करें और सदा पुरुषार्थ करके श्रेष्ठों की रक्षा करते रहें ॥४॥

'महिष' के स्थान पर सायण भाष्य में 'महि सत्' दो पद हैं ॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

भाषार्थः—[जो पुरुष] (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म का (चक्षुः) नेत्र [नेत्र समान प्रदर्शक], (प्रभृतिः) पुष्टि (च) और (मुखम्) मुख [समान मुख्य] है, [उस को] (वाचा) वाणी से, (श्रोत्रेण) कान से और (मनसा) मन से (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ। (सुमनस्यमानाः) शुभ चिन्तकों के जैसे आचरण वाले (देवाः) व्यवहार-कुशल महात्मा (विश्वकर्मणा) संसार के रचने वाले परमेश्वर करके (विततम्) फैलाये हुए (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय धर्म को (आ यन्तु) प्राप्त करें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सत्य सङ्कल्पी, सत्यसन्ध, ऋषि महात्माओं के वैदिक उपदेश को वाणी से पठन पाठन, श्रोत्र से श्रवण श्रावण, और मन से निदिध्यासन अर्थात् बारम्बार विचार करके ग्रहण करें। और सब अनुग्रहशील महात्मा परमेश्वर के दिये हुए विज्ञान और धर्म का प्रचार करते रहें ॥१॥

सूक्तम् ३६ ॥

१—८ अग्निर्देवता । १, ३, ४ त्रिष्टुप्, २, ५, ६, ७, अनुष्टुप्, ८ गायत्री ॥

विवाहसंस्कारोपदेशः—विवाह संस्कार का उपदेश ॥

आ नो अग्ने सुमतिं सम्भलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥१॥

भाषार्थः —(अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी राजन् (सम्भलः) यथाविधि सम्भाषण वा निरूपण करने वाला वर (इमाम्) इस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि वाली (कुमारीम्) कुमारी को (नः) हमारे लिये (भगेन सह+वर्त्तमानः सन्) ऐश्वर्य के साथ वर्त्तमान होकर (नः) हममें (आ=आगत्य) आकर (गमेत्) ले जावे। [इयम् कुमारी] [यह कन्या] (वरेषु) वर पक्ष वालों में (जुष्टा) प्रिय और (समनेषु) साधु विचार वालों में (वल्गुः) मनोहर है (अस्यै) इस [कन्या] के लिए (ओषम्) शीघ्र (पत्या) पति के साथ (सौभगम्) सुहागपन (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः —यहां (अग्नि) शब्द राजा के लिए है। माता पिता आदि राजव्यवस्था के अनुसार योग्य आयु में गुणवती कन्या का विवाह गुणवान् वर से करें। जिस से वह कन्या पतिकुल में सब को प्रसन्न रक्खे और आप आनन्द से रहे। इसी आशय का राजप्रकरण में मनु महाराज ने अ० ७। १५२ में वर्णन किया है—"कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ।" "कन्याओं के नियमपूर्वक दान [विवाह] का और कुमारों की रक्षा का [राजा चिन्तन करे]" ॥१॥

'ओषम्' के स्थान पर सायण भाष्य में 'ऊषम्' है ॥

सोमंजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२॥

भाषार्थः— (धातुः) सब के धारण करने वाले (देवस्य) प्रकाश स्वरूप पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेश्वर के (सत्येन) सत्यनियम से (सोमजुष्टम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के प्रिय (ब्रह्मजुष्टम्) ब्रह्म ज्ञानी पुरुषों से सेवित और (अर्यम्णा) श्रेष्ठों के मान करने वाले राजा से (संभृतम्) पुष्ट किये हुए (भगम्) सेवनीय वा ऐश्वर्ययुक्त (पतिवेदनम्) पत्नी [वा पति] की प्राप्ति [विवाह] (कृणोमि) मैं करता [वा करती] हूं ॥२॥

भावार्थः—यह गृहस्थाश्रम ईश्वरकृत नियम है। इसकी रक्षा के लिए सब बड़े बड़े महात्मा प्रयत्न करते और राजा नियम बनाते हैं। उस के निर्वाह के लिये माता पिता आदि वर और कन्या को यथावत् उपदेश करें और उनका विवाह करें ॥२॥

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! (इयम्) यह (नारी) नर [अपने पति] का हित करने वाली कन्या (पतिम्) पति को (विदेष्ट) प्राप्त करे, (हि) क्योंकि (सोमः) ऐश्वर्यवान् वा चन्द्र समान आनन्द प्रद (राजा) राजा [ऐश्वर्यवान् वर] [इस को] (सुभगाम्) सौभाग्यवती (कृणोति) करता है। [यह कन्या] (पुत्रान्) कुलशोधक वा बहुरक्षक वीर पुत्रों को (सुवाना) उत्पन्न करती हुई (महिषी) पूजनीय महारानी (भवाति) होवे, और (पतिम्) पति को (गत्वा) पाकर (सुभगा) सौभाग्यवती होकर (वि) अनेक प्रकार से (राजतु) राज्य करे ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर के अनुग्रह से यह दोनों पति और पत्नी, बड़े ऐश्वर्य वा ठाट वाले राजा और रानी के समान गृह कार्यों को चलावें और वीर पुत्र पौत्र आदिकों को उत्तम शिक्षा देते हुए सदा आनन्द भोगें ॥३॥

मनु महाराज ने कहा है—

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ मनु० ३।६०॥

भार्या से भर्त्ता और भर्त्ता से भार्या, जिस कुल में संतुष्ट हों, वहां पर अवश्य ही नित्य कल्याण रहता है ॥

यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे पूजनीय, वा महाधनी परमेश्वर, (यथा) जैसे (एषः) यह (चारुः) सुन्दर (आखरः) खोह और मांद (मृगाणाम्) जंगली पशुओं का (प्रियः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय और (सुषदाः) रमणीक घर (बभूव) हुआ है [होता है], (एव = एवम्) ऐसे ही (इयम्) यह (नारी) नारी (भगस्य) ऐश्वर्यवान् [पति] की (जुष्टा) दुलारी और (संप्रिया) प्रियतमा होकर (पत्या) पति से (अविराधयन्ती) वियोग न करती हुई (अस्तु) रहे ॥४॥

भावार्थः— जिस प्रकार आरण्यक नर नारी पशु आनन्दपूर्वक अपने बिलों में विश्राम करते हैं, इसी प्रकार मनुष्यजातीय पति पत्नी परस्पर मिलजुल कर उपकार करते हुए सदा सुख से रहें ॥४॥

मनु भगवान् ने कहा है—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥मनु० ५।१४८॥

स्त्री बालकपन में पिता के, युवावस्था में पति के, और पति के मरने पर पुत्रों के वश में रहे, स्त्री स्वतन्त्रता का उपभोग न करे ॥

सायणभाष्य में 'मघवन्' के स्थान में 'मघवान्' और 'अविराधयन्ती' के स्थान में 'अभिराधयन्ती = अभि वर्धयन्ती, समृद्धा भवन्ती' है ॥

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥५॥

भाषार्थः—[हे कन्या !] (भगस्य) ऐश्वर्य की (पूर्णाम्) भरी भरायी और (अनुपदस्वतीम्) अटूट (नावम्) नाव पर (आ रोह) चढ़ । और (तया) उस [नाव] से [अपने वर को] (उप-प्रतारय) आदर पूर्वक पार लगा, (यः) जो (वरः) वर (प्रति-काम्यः) प्रतिज्ञा करके चाहने [प्रीति करने] योग्य है ॥५॥

भावार्थः— इस मन्त्र में गृहपत्नी की भारी उत्तरदातृता [जिम्मेदारी] का वर्णन है । जैसे नाविक खान पान आदि आवश्यक सामग्री से लदी लदायी और बड़ी दृढ़ नौका से जल यात्रियों को समुद्र से पार लगाता है, वैसे ही गृहपत्नी अपने घर को धन धान्य आदि ऐश्वर्य से भरपूर और दृढ़ रक्खे और पति को नियम बांधकर पूरे प्रेम से प्रसन्न रखकर गृहस्थाश्रम से पार लगावे ॥५॥

आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(धनपते) हे धनों की रक्षा करने वाली [कन्या !] (वरम्) वर को (आ) आदर पूर्वक (क्रन्दय) बुला, और (आमनसम्) अपने मन के अनुकूल (कृणु) कर। [उस वर को] (सर्वम्) सर्वथा (प्रदक्षिणम्) अपनी दाहिनी ओर (कृणु) कर, (यः) जो (वरः) वर (प्रतिकाम्यः) नियम कर के चाहने योग्य है ॥६॥

भावार्थः—पत्नी धनों की रक्षा करती है, वह पति को आदरपूर्वक बुलावे और उस की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता जाने, और सदा उसे अपनी दाहिनी ओर रक्खे, अर्थात् जैसे दाहिना हाथ बायें हाथ की अपेक्षा अधिक सहायक होता है, इसी प्रकार पत्नी अपने पति को सब से अधिक अपना हितकारी जानकर सदा प्रीति से सत्कार मान करती रहे। इसी विधि से पति भी पत्नी को अपना हितकारी जाने, और उस के साथ प्रीति और प्रतिष्ठा के साथ वर्ताव रक्खे ॥६॥

टिप्पणी—(१) विवाह संस्कार में वर का आसन वधू के दाहिने हाथ को किया जाता है ॥

(२) मन्त्र ५ और ६ का आशय मनु महाराज इस प्रकार कहते हैं—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥मनु० ५।१५०॥

स्त्री घर के कामों में प्रसन्नचित्त और चतुर होवे, घर की सामग्री, बासन, वस्त्र आदि को संभाल कर रक्खे, और व्यय करने में हाथ संकोचे रक्खे ॥

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (हिरण्यम्) सुवर्ण और (गुल्गुलु) गुल्गुले [गुड़ का पका भोजन] (अथो) और (अयम्) यह (औक्षः) महात्माओं के योग्य [वा ऋषभ औषध सम्बन्धी] (भगः) ऐश्वर्य है [और हे कन्या !] (एते) इन कन्या के पक्ष वालों ने (पतिभ्यः) पति पक्ष वालों के हितार्थ (त्वाम्) तुझे (प्रतिकामाय) प्रतिज्ञा पूर्वक कामना योग्य [पति] के लिये (वेत्तवे) लाभ पहुंचाने को (अदुः) दिया है ॥७॥

भावार्थः—कन्या के माता पिता आदि कन्या और वर को विवाह के उपरान्त दाय अर्थात् यौतुक [दैजा, जहेज] में सुन्दर अलंकार, वस्त्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन पदार्थ, वाहन, गौ, धन आदि देवें, और कन्या को पति सेवा की यथायोग्य शिक्षा करें जिस से पति पत्नी मिलकर सदा आनन्द भोगें ॥७॥

'गुल्गुलु' पद के स्थान पर सायणभाष्य में 'गुग्गुलु' पद है ॥

आ तें नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः ।
त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८॥

भाषार्थः—[हे कन्ये] (सविता) सर्व प्रेरक, सर्व जनक परमेश्वर (ते) तेरे लिये [उस पति को] (आ नयतु) मर्यादा पूर्वक चलावे, और (नयतु) नायक बनावे, (यः पतिः) जो पति (प्रतिकाम्यः) प्रतिज्ञा पूर्वक चाहने योग्य है। (ओषधे) हे ताप नाशक परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अस्यै) इस [कन्या] के लिये [उस पति को] (धेहि) पुष्ट रख ॥८॥

भावार्थः—यह आशीर्वाद का मन्त्र है। पति और पत्नी उस सर्व-नियन्ता परमेश्वर का सदा ध्यान करते हुए परस्पर हार्दिक प्रीति रखकर वेदोक्त मर्यादा पर चलें, जिससे वे दोनों प्रधान पुरुष और प्रधान स्त्री होकर संसार में कीर्तिमान् होवें, और अन्न आदि औषधि के समान सुखदायक होकर सदा हृष्ट पुष्ट बने रहें ॥८॥

यजुर्वेद का वचन है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥यजु० ४०।२॥

मनुष्य (इह) यहां (कर्माणि) वेदोक्त कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति द्वितीयं काण्डम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०❀:०❀:०❀:०❀:—

तृतीयं काण्डम् ॥

—: ❀ :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—❀:०❀:०❀:०❀—

सूक्तम् १ ॥

१—६ ॥ १ अग्निः, २ मरुतः, ३—६ इन्द्रश्च देवताः । १, २, ४ त्रिष्टुप्; ३, ६ अनुष्टुप्; ५ स्वराड् गायत्री ॥

युद्धविद्योपदेशः—युद्ध विद्या का उपदेश ॥

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (विद्वान्) विद्वान् राजा (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रतिदहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ, (नः) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं पर (प्रति, एतु) चढ़ाई करे । (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला वा बहुत धनवाला राजा (परेषाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे, (च) और [उन वैरियों को] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रजा में अपकीर्ति और अशान्ति फैलावे, विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् नीतिनिपुण राजा ऐसे दुष्टों और उनके साथियों को यथावत् दण्ड देवे, जिससे वे लोग निर्बल होकर उपद्रव न मचा सकें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से सूक्त २ मन्त्र १ में है।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्हैषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥

भाषार्थः —(मरुतः) हे शत्रुघातक शूरो ! (यूयम्) तुम (ईदृशे) ऐसे [कर्म, संग्राम] में (उग्राः) तीव्रस्वभाव (स्थ) हो। (अभि, प्र, इत) आगे बढ़ो, (मृणत) मारो, और (सहध्वम्) जीत लो। (इमे) इन (नाथिताः) प्रार्थना किये हुए (वसवः) श्रेष्ठ पुरुषों [मरुत् गणों] ने [दुष्टों को] (अमीमृणन्) मरवा डाला है। (एषाम्) इन शत्रुओं का (दूतः) दाहकारी (अग्निः) अग्नि [समान] (विद्वान्) विद्वान् राजा (हि) अवश्य करके (प्रत्येतु) चढ़ाई करे ॥२॥

भावार्थः—जो शूरवीर संग्रामविजयी हों, जो बैरियों के नाश करने में सहायक रहे हों, उन वीरों को अग्रगामी करें और उनका उत्साह बढ़ाते रहें, और राजा विजयी सेनापतियों की पुष्टि करता हुआ शत्रुओं पर चढ़ाई करे ॥२॥

टिप्पणी—'मरुतः' देवताओं के लिये अ० १ । २० । १ देखिये ॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥

भाषार्थः —(मघवन्) हे धनवान्, (वृत्रहन्) अन्धकार वा शत्रुओं के नाश करने वाले, (इन्द्र) सूर्य [समान तेजस्वी] (च) और (अग्निः) हे अग्नि [समान शत्रुदाहक] ! (युवम्) तुम दोनों (अस्मान्) हम पर (शत्रूयतीम्) शत्रुओं के समान आचरण करती हुई (अमित्रसेनाम्) बैरियों की सेना को (अभि = अभिभूय) हराकर (तान्) चोरों वा म्लेच्छों को (प्रति, दहतम्) जला डालो ॥३॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करके और अग्नि अशुद्धतादि दुर्गुणों को जलाकर हटाते और अनेक प्रकार से उपयोगी होते हैं, ऐसे ही धनी और प्रतापी राजा कुमार्गियों को हटाकर उपकारी होवें ॥३॥

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (प्रवता) उत्तम गति वा मार्ग से (हरिभ्याम्) स्वीकरण और प्रापण [ग्रहण और दान] के साथ (ते) तेरा (प्रसूतः) चलाया हुआ (वज्रः) वज्र अर्थात् दण्ड (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणन्) पीड़ा देता हुआ (प्र, एतु) आगे चले। (प्रतीचः) सन्मुख आते हुए, (अनूचः) पीछे से आते हुए और (पराचः) तिरस्कार करके चलते हुए [शत्रुओं] को (जहि) नाश करदे, और (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (चित्तम्) चित्त को (विष्वक्) सब प्रकार (सत्यम्) सत्पुरुषों का हितकारी (कृणु) बना दे ॥४॥

भावार्थः—नीतिज्ञ राजा प्रजा और शत्रुओं से कर लेकर उन के हित-कार्य में लगावे, जिससे सब बाहिरी भीतरी शत्रु लोग नष्ट होकर दबे रहें और श्रेष्ठों का पालन किया करें ॥४॥

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहय) व्याकुल कर दे। (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (ध्राज्या) झोंके से (विषूचः) सब ओर फिरने वाले (तान्) चोरों को (वि, नाशय) नाश कर डाल ॥५॥

भावार्थः राजा अपनी सेना के बल से शत्रुसेना को जीते और जैसे दावानल वन को भस्म करता और प्रचंड वायु वृक्षादि को गिरा देता है, वैसे ही विघ्नकारी वैरियों को मिटाता रहे ॥५॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा अ० ३ । २ । ३ । में आया है ॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) प्रतापी सूर्य (सेनाम्) [शत्रु] सेना को (मोहयतु) व्याकुल करदे। (मरुतः) दोष नाशक पवन के झोंके (ओजसा) बल से (घ्नन्तु) नाश करदें। (अग्निः) अग्नि (चक्षूंषि) नेत्रों को (आ, दत्ताम्) निकाल लेवे। [जिससे] (पराजिता) हारी हुई सेना (पुनः) पीछे (एतु) चली जावे ॥६॥

भावार्थः—युद्धकुशल सेनापति राजा अपनी सेना का व्यूह ऐसा करे जिससे उसकी सेना सूर्य, वायु और अग्नि वा बिजुली और जल के प्रयोग वाले अस्त्र, शस्त्र, विमान, रथ, नौकादि के बल से शत्रु सेना को नेत्रादि से अंग भंग करके सर्वदा हरा कर भगा दे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २ ॥

१—६ ॥ १—२ अग्निः, ३—४ इन्द्रः,५ अप्वा । ६ मरुतो देवताः ।१, ५, ६ त्रिष्टुप्,२—४ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिकृत्यमुपदिश्यते । सेनापति के कर्त्तव्य का उपदेश॥

अग्निर्नोदूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी] (दूतः) अग्रगामी वा तापकारी (विद्वान्) विद्वान् राजा (नः) हमारे लिये (अभिशस्तिम्) मिथ्या अपवाद और (अरातिम्) शत्रुता को (प्रतिदहन्) सर्वथा भस्म करता हुआ (प्रत्येतु) चढ़ाई करे । (सः) वह (जातवेदाः) प्रजाओं का जानने वाला [सेनापति] (परेषाम्) शत्रुओं के (चित्तानि) चित्तों को (मोहयतु) व्याकुल कर देवे (च) और [उनको] (निर्हस्तान्) निहत्था (कृणवत्) कर डाले ॥१॥

भावार्थः—राजा सेनादि से ऐसा प्रबन्ध रक्खे कि प्रजा गण आपस में मिथ्या कलङ्क न लगावें और न वैर करें और दुराचारियों को दंड देता रहे कि वे शक्तिहीन होकर सदा दबे रहें, जिससे श्रेष्ठों को सुख मिले और राज्य बढ़ता रहे ॥१॥

यह मन्त्र इसी काण्ड के सूक्त १ मन्त्र १ में कुछ भेद से है ॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) इस (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी राजा] ने (चित्तानि) उन ज्ञानों को (अमूमुहत्) उलट पलट कर दिया है (यानि) जो (वः) तुम्हारे (हृदि) हृदय में [थे] । वह (वः) तुमको (ओकसः) घर से (वि, धमतु) निकाल देवे, वह (वः) तुमको (सर्वतः) सब स्थान से (प्र,धमतु) बाहिर कर देवे ॥२॥

भावार्थः—जिस सेनापति राजा ने दुष्टों को वश में करके रक्खा था, वह राजा विरोधियों को प्रतिज्ञा भंग करने पर देशनिकाला आदि दण्ड देवे ॥२॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे महाप्रतापी राजन्! [शत्रुओं के] (चित्तानि) चित्त को (मोहयन्) व्याकुल करता हुआ (अर्वाङ्) हमारे सन्मुख (आकूत्या) उत्तम संकल्प से (चर) आ। (अग्नेः) अग्नि के और (वातस्य) पवन के (आज्या) झोंके से (तान्) उन (विषूचः) विरुद्ध गति वालों को (वि, नाशय) नाश कर डाल ॥३॥

भावार्थः—जैसे अग्नि और वायु मिलकर प्रचंड हो जाते हैं, इसी प्रकार राजा प्रचण्ड होकर दुष्टों को दण्ड देवे और सत्कर्मी पुरुषों का शिष्टाचार करे ॥३॥

इस मन्त्र का दूसरा आधा अ० ३। १। ५ में आ चुका है ॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥

भाषार्थः—हे (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (आकूतयः) विचारो! (वि) उलट पलट होकर (इत) चले जाओ, (अथो) और हे (चित्तानि) इनके चित्तो! (मुह्यत) व्याकुल हो जाओ।

(अथो) और [हे राजन्] (यत्) जो कुछ [मनोरथ] (अद्य) अब (एषाम्) इनके (हृदि) हृदय में है, (एषाम्) इनके (तत्) उस [मनोरथ] को (परि) सर्वथा (निर्जहि) नाश कर दे ॥४॥

भावार्थः—नीतिकुशल राजा दुराचारियों में परस्पर मतभेद करादे और उनका मनोरथ सिद्ध न होने दे ॥४॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरग्राह्या मित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥

भाषार्थः—(अप्वे) हे शत्रुओं को मार डालने वा हटा देने वाली सेना (अमीषाम्) उन [शत्रुओं] के (चित्तानि) चित्तों, और (अङ्गानि) शरीर के अवयवों और सेना विभागों को (प्रतिमोहयन्ती) व्याकुल करती हुई (गृहाण) पकड़ ले, और (परा, इहि) पराक्रम से चल। (अभि) चारों ओर से (प्र, इहि) धावा कर (हृत्सु) उनके हृदयों में (शोकैः) शोकों से (निर्दह) जलन करदे, और (ग्राह्या) ग्रहण शक्ति [बन्धनादि] से और (तमसा) अन्धकार से (अमित्रान्) पीड़ा देने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को (विध्य) छेद डाल ॥५॥

भावार्थः—सेनापति इस प्रकार व्यूह रचना करे कि उसकी उत्साहित सेना धावा करके अश्ववार अश्ववारों को, रथी रथियों को, पदाति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदातियों को व्याकुल करदें, अर्थात् आग्नेय अस्त्रों से धूंआ धड़क, और वारुणेय अस्त्रों से बन्धन में करके जीत लें ॥५॥

इस मन्त्र का ऋग्वेद १० । १०३ । १२ । यजुर्वेद १७ । ४४ । सामवेद उ० ६ । ३ । ५ तथा निरुक्त ६ । ३३ में इस प्रकार समान पाठ है ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥

(अप्वे) हे शत्रुओं को मार डालने वा हटा देने वाली सेना ! (अमीषाम्) उनके (चित्तम्) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) व्याकुल करती हुई (अङ्गानि) अङ्गों को (गृहाण) पकड़ ले और (परा, इहि) पराक्रम से चल । (अभि) चारों ओर से (प्र, इहि) आगे बढ़ (हृत्सु) उनके हृदयों में (शोकैः) शोकों से (निर्दह) जलन कर दे । (अन्धेन) गाढ़े [दृष्टि रोकने वाले] (तमसा) अन्धकार से (अमित्राः) पीड़ा देने वाले लोग (सचन्ताम्) संयुक्त हो जावें ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे शूर पुरुषो (परेषाम्) वैरियों की (असौ) वह (या) जो (सेना) सेना (अस्मान्) हम पर (अभि) चारों ओर से (ओजसा) बल के साथ (स्पर्धमाना) ललकारती हुई (आ-एति) चढ़ी आती है । (ताम्) उसको (अपव्रतेन) क्रियाहीन कर देने वाले (तमसा) अन्धकार से (विध्यत) छेद डालो, (यथा) जिससे (एषाम्) इनमें से (अन्यः) कोई (अन्यम्) किसी को (न) न (जानात्) जाने ॥६॥

भावार्थः—सेनापति अपनी पलटनों को घातस्थानों में इस प्रकार खड़ा करे कि आती हुई शत्रुसेना को रोक कर सब नष्ट करदेवें ॥६॥

(मरुतः) शब्द के लिए अ० १ । २० । १ । देखो ॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में इस प्रकार है -

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी ऽअन्योऽअन्यन्न जानन् ॥
यजु० । १७ । ४७ ॥

(मरुतः) हे शूरो ! (परेषाम्) वैरियों की (असौ या सेना) वह जो सेना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमको (अभि) चारों ओर से (ओजसा स्पर्धमाना) बल के साथ ललकारती हुई (आ, एति) चली आती हैं। (ताम्) उसको (अपव्रतेन तमसा) क्रियाहीन कर देने वाले अन्धकार से (गूहत) ढक दो, (यथा) जिससे (अमी) वे लोग (अन्यः, अन्यम्) एक दूसरे को (न जानन्) न जानें ॥

सूक्तम् ॥३॥

१-६ ॥ इन्द्रो देवता। १-४ त्रिष्टुप्, ५,६ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(अचिक्रदत्) उस [परमेश्वर] ने पुकार कर कहा है, "(इह) यहां पर (स्वपाः) अपने जनों का पालने वाला, अथवा, उत्तम कर्मों वाला प्राणी (भुवत्) होवे।"

(अग्ने) हे अग्नि [समान तेजस्वी राजन्!] (उरूची) बहुत पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (रोदसी) सूर्य और पृथिवी में (वि) विविध प्रकार से (अचस्व) गति कर। (विश्ववेदसः) सब प्रकार के ज्ञान या ध्यान वाले (मरुतः) शूर और विद्वान् पुरुष (त्वा) तुझसे (युञ्जन्तु) मिलें। [हे राजन्] (रातहव्यम्) भेंट वा भक्ति का दान करने वाले (अमुम्) उस [प्रजागण] को (नमसा) अन्न वा सत्कार के साथ (आ, नय) अपने समीप ला ॥१॥

भावार्थः— परमेश्वर ने यजुर्वेद में भी कहा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥ यजु० ४०।२ ॥

मनुष्य (इह) यहां पर (कर्माणि कुर्वन् एव) कर्मों को करता हुआ ही (शतं-समाः) सौ वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे ॥

इस प्रकार राजा परमेश्वर की आज्ञा पालन और स्वप्रजापालन में कुशल होकर सूर्य विद्या और पृथिवी आदि विद्या में निपुण बन कर विज्ञानी होवे, शूरवीर विद्वान् लोग उससे मिलें और राजा उन भक्त प्रजागणों का सत्कार करे ॥१॥

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२॥

भाषार्थः—(अरुषासः=०—षाः) गति शील [उद्यमी] पुरुष (दूरे) दुर्गम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा दूर देश में (चित्) भी (सन्तम्) विद्यमान (विप्रम्) बुद्धिमान् (इन्द्रम्) बड़े प्रतापी राजा को (सख्याय) अपना सखा बनाने के लिये (आ, च्यावयन्तु) ले आवें। (यत्) क्योंकि (देवाः) व्यवहार कुशल महात्माओं ने (गायत्रीम्) गान क्रिया, (बृहतीम्) स्तुति क्रिया और (अर्कम्) अन्न वा सत्कार क्रिया को (अस्मै) इस [इन्द्र] के लिये (सौत्रामण्या) सुत्रामा [उत्तमरक्षक] के योग्य भक्ति के साथ (दधृषन्त) एकत्र किया है ॥२॥

भावार्थः—उद्योगी प्रजागण प्रजापालक नीतिकुशल राजा को दूर देश से भी अपनी सहायता के लिये बुलावें और अनेक प्रकार से उनका उत्साह और अपना आनन्द बढ़ाने के लिये उसका योग्य अभिनन्दन करें, और गायत्री, बृहती आदि छन्दों से भी उसका यश गावें ॥२॥

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजराजेश्वर !] (वरुणः) अति श्रेष्ठ (राजा) शासन कर्त्ता पुरुष (त्वा) तुझको (अद्भ्यः) प्राणों के लिये (ह्वयतु) बुलावे, (सोमः) औषधों का रस निकालने वाला [वैद्यराज] (त्वा) तुझको (पर्वतेभ्यः) [शरीर की] पुष्टियों के लिये (ह्वयतु) बुलावे। (इन्द्रः) बड़ा प्रतापी सेनापति वा निधिपति (त्वा) तुझको (आभ्यः विड्भ्यः) इन प्रजाओं के लिये (ह्वयतु) बुलावे [हे महाराजाधिराज !] (श्येनः) शीघ्र गति वाला [वा बाज पक्षी के समान शीघ्र गतिवाला] (भूत्वा) होकर (इमाः) इन (विशः) प्रजाओं में (आ, पत) उड़कर आ ॥३॥

भावार्थः—राजा वरुण, सोम, इन्द्रादि पदवी वाले बड़े २ अधिकारी अपने अधिकार की उन्नति के लिये राजाज्ञा का पालन करें और प्रधान राजा अपनी प्रजा के हित का उद्योग सदा करता रहे ॥३॥

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥

भाषार्थः—(श्येनः) शीघ्रगति वाले आप्त (अन्यक्षेत्रे) परदेश में (अपरुद्धम्) रोक दिये गये (चरन्तम्) उत्तम आचरण करते हुए (हव्यम्) बुलाने योग्य पुरुष को (परस्मात्) दूर देश से (आ नयतु) समीप लावें। (अश्विना = ०—नौ) सूर्य और चन्द्रमा (ते) तेरे (पन्थाम् = पन्थानम्) मार्ग को (सुगम्) सुगम (कृणुताम्) करें। (सजाताः) हे सजातीय लोगो ! (इमम्) इस [वीर पुरुष] से (अभि-सं-विशध्वम्) चारों ओर से मिलो ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यदि कोई सत्पुरुष प्रजागण परदेश में रोक दिया गया हो, राजा उसे प्रयत्नपूर्वक बुला लेवे। और सूर्य चन्द्रमा के समान नियम से प्रजा पालन करे जिससे सब प्रजागण उससे मिले रहें ॥४॥

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५॥

भाषार्थः—(प्रतिजनाः) प्रतिकूल जन (त्वा) तुझे (ह्वयन्तु) बुलावें। (मित्राः) स्नेही पुरुषों ने (प्रति) प्रत्यक्ष (अवृषत) सेवा की है। (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि [के समान गुणवाले] (ते) उन (विश्वे देवाः) सब तेजस्वी पुरुषों ने (विशि) प्रजा में (क्षेमम्) कुशल (अदीधरन्) स्थापित की है ॥५॥

भावार्थः—जिस राजा को प्रजा गण चुनते हैं, वैरी लोग उस राजा के आधीन रहते हैं। और विद्वान् शूर वीर पुरुष प्रजा में उन्नति करते हैं ॥५॥

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६॥

भाषार्थः—(अथ) और (इन्द्र) हे महाप्रतापी राजन् ! (यः) जो (सजातः) सजातीय (च) और (यः) जो (निष्ट्यः) विजातीय पुरुष (ते) तेरे (हवम्) विज्ञापन में (विवदत्) विवाद करे, (तम्) उसको (अपाञ्चम्) बहिष्कृत [देश बाहिर] (कृत्वा) करके (इमम्) इस [विज्ञापन] को (इह) यहां पर (अव, गमय) जता दे ॥६॥

भावार्थः—राजा अपने और पराये का विचार छोड़ पक्षपात रहित होकर शान्तिनाशक विवादी पुरुष को देश बाहिर कर दे, और यह विज्ञापन राज्य भर में प्रसिद्ध कर दे जिससे फिर कोई धर्मविरुद्ध चेष्टा न करे ॥६॥

सूक्तम् ४ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राज्याभिषेकोत्सवः—राज तिलक का उत्सव।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज । सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूप सद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् ! (राष्ट्रम्) यह राज्य (त्वा) तुझको (आ, गन् = अगमत्) प्राप्त हुआ है। (वर्चसा सह) तेज के साथ (उत्+इहि = उदिहि) उदय हो। (प्राङ्) अच्छे प्रकार पूजा हुआ, (विशाम्) प्रजाओं का (पतिः) रक्षक, (एकराट्) एक महाराजाधिराज (त्वम्) तू (वि, राज) विराजमान हो। (सर्वाः) सब (प्रदिशः) पूर्वादि दिशायें (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें। (उपसद्यः) सबका सेवनीय और (नमस्यः) नमस्कार योग्य (इह) यहां पर [अपने राज्य में] (भव) तू हो ॥१॥

भावार्थः—राजा सिंहासन पर विराज कर महाप्रतापी और प्रजा-पालक हो, सब दिशाओं में उसकी दुहाई फिरे, और सब प्रजागण उसकी न्यायव्यवस्था पर चलकर उसका सदा आदर और अभिनन्दन करते रहें ॥१॥

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वाम्) तुझको (राज्याय) राज्य के लिये (विशः) प्रजायें, और (त्वाम्) तुझको ही (इमाः) यह सब (पञ्च) विस्तीर्ण वा पांच (देवीः = ०—व्यः) दिव्य गुणवाली (प्रदिशः) महा दिशायें (वृणताम्) स्वीकार करें। (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन् = ०—णि) ऐश्वर्ययुक्त वा ऊंचे (ककुदि) शिखर पर (श्रयस्व) आश्रय ले। (ततः) फिर (उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) धनों का (वि, भज) विभाग कर ॥२॥

भावार्थः—राजा को सब प्रजागण चुनें। और सब मनुष्यादि प्रजा और चारों पूर्वादि दिशाओं और पांचवी ऊपर नीचे की दिशा के पदार्थ [जैसे आकाश मार्ग और भूगर्भादि के पदार्थ] सब राजा के आधीन रहें और यह बड़ा ऐश्वर्यवान् होकर राजभक्त सुपात्रों को विद्या और सुवर्णादि धनों का दान करता रहे ॥२॥

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः संचरातै ।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥

भाषार्थः—(हविनः) पुकार करने वाले (सजाताः) सजातीय लोग (त्वा) तुझको (अच्छ) सन्मुख आकर (यन्तु) मिलें। (अग्निः) आग के समान (दूतः) तापकारी और (अजिरः) वेगवान् [आप] (सम्) यथायोग्य (चरातै) आचरण करें। (जायाः) हमारी धर्मपत्नियां और (पुत्राः) कुलशोधक वा बहुरक्षक सन्तान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुमनसः) प्रसन्नमन (भवन्तु) रहें। (उग्रः) तेजस्वी तू (बहुं बलिम्) बहुत भेंट को (प्रति) सन्मुख (पश्यासै) देखे ॥३॥

भावार्थः—सब भाई बन्धु और प्रजागण राजा से मिले रहें, और प्रसन्न होके (बलि) राजग्राह्य भाग कर आदि देवें, और वह राजा भी उनकी रक्षा में सर्वथा तत्पर रहे ॥३॥

अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४॥

भाषार्थः—(अग्रे) अगले वा मुख्य पद पर [विराजमान] (त्वा) तुझको (अश्विना = ०—नौ) सूर्य और चन्द्र, और (उभा=उभौ) दोनों (मित्रावरुणा= ०—णौ) प्राण और अपान वा दिन और रात और (विश्वे देवाः) सब व्यवहार-कुशल (मरुतः) शूर पुरुष (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें [मार्गदर्शक हों]। (अधा) और, तू (मनः) अपने मन को (वसुदेयाय) धन का दान करने के लिये (कृणुष्व) स्थिर कर। (ततः) फिर (उग्रः) तेजस्वी तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) धनों का (वि, भज) विभाग कर ॥४॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्र परस्पर आकर्षण से, दिन और रात, प्राण और अपान अपने २ क्रम से, और शूर विद्वान् पुरुष नियम पर चलने से संसार का उपकार करते हैं इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा विचारपूर्वक सुपात्रों को दान देकर प्रजा की उन्नति करे ॥४॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद (ततो न उग्रो···) मन्त्र २ में आ चुका है। ऋ० म० ५ सू० १५ म० १५ का भी मिलान करें ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ॥

(सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (स्वस्ति) कल्याण-युक्त (पन्थाम्) मार्ग पर (अनुचरेम) हम चलते रहें ॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५॥

भाषार्थः—(परमस्याः) अत्यन्त (परावतः) दूर देश से (आ, प्र, द्रव) आकर पधार। (ते) तेरे लिये (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी = ०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी (शिवे) मङ्गलकारी (स्ताम्) होवें। (तथा) वैसा ही (अयम्) यह (राजा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (वरुणः) सब में श्रेष्ठ परमेश्वर (तत्) वह (आह) कहता है। सो (सः अयम्) इस [वरुण परमेश्वर] ने (त्वा) तुझको (अह्वत्) बुलाया है। (सः = सः त्वम्) सो तू (इदम्) इस [राज्य] को (उप) आदर पूर्वक (आ) आकर (इहि) प्राप्त कर ॥५॥

भावार्थः—प्रजा गण श्रेष्ठ राजा को दूर देश से भी बुला लेवें, और वह अपने बुद्धिबल से ऐसा प्रबन्ध करे कि राज्य भर में दैवी और पार्थिव शान्ति रहे, अर्थात् अनावृष्टि और दुर्भिक्षादि में भी उपद्रव न मचे, और आकाश, पृथिवी और समुद्रादि के मार्ग अनुकूल रहें। यही आज्ञा परमेश्वर ने वेदों में दी है, उसको राजा यथावत् माने ॥५॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्या ३ँ: परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६॥

भाषार्थः—(इन्द्रेन्द्र) हे राजराजेश्वर! (मनुष्याः = मनुष्यान्) मनुष्यों को (परेहि) समीप से प्राप्त कर, (हि) क्योंकि (वरुणैः) श्रेष्ठ पुरुषों से (संविदानः) मिलाप करता हुआ तू (सम्) यथाविधि (अज्ञास्थाः) जाना गया है। (सः अयम्) सो इस [प्रत्येक मनुष्य] ने (त्वा) तुझको (स्वे सधस्थे) अपने समाज में (अह्वत्) बुलाया है। (सः = सः भवान्) सो आप (देवान्) व्यवहार कुशल पुरुषों का (यक्षत्) सत्कार करें, (सः उ = सः उ भवान्) वही आप (विशः) प्रजाओं को (कल्पयात्) समर्थ करें ॥६॥

भावार्थः—प्रजापालक राजा विद्वान् चतुर मनुष्यों से मिलता रहे और सुपात्रों को योग्यतानुसार पदाधिकारी करे ॥६॥

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन्।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७॥

भाषार्थः—(पथ्याः) मार्ग पर चलने वाली, (रेवतीः = ०—त्यः) धन वाली, (बहुधा) प्रायः (विरूपाः) विविध आकार वा स्वभाव वाली (सर्वाः) सब [प्रजाओं] ने (संगत्य) मिलकर (ते) तेरे लिये (वरीयः) अधिक विस्तीर्ण वा श्रेष्ठ [पद] (अक्रन्) किया है। (ताः सर्वाः) वे सब [प्रजायें] (संविदानाः) एकमत होकर (त्वा) तुझको (ह्वयन्तु) पुकारें। (उग्रः) तेजस्वी और (सुमनाः) प्रसन्न चित्त तू (इह) इस [राज्य] में (दशमीम्) दसवी [नव् वे वर्ष से ऊपर] अवस्था को (वश) वश में कर ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब प्रजा गण मिलकर और सुमार्ग में चलकर राजा को सिंहासन पर बिठलावें और अपना रक्षक बनावें। और वह राजा भी इस प्रकार से न्याय और आनन्द करता हुआ नीरोग पूर्ण आयु भोगे ॥७॥

सूक्तम् ५ ॥

१—८ ॥ पर्णमणिर्देवता । १, ४ त्रिष्टुप् । २, ३, ५—८ अनुष्टुप् ॥

तेजोबलायुर्धनादिपुष्टचुपदेशः—तेज, बल, आयु, धनादि बढ़ाने का उपदेश ॥

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन् त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (बली) बली (पर्णमणिः) पालन करने वालों में प्रशंसनीय [परमेश्वर] (बलेन) अपने बल से (सपत्नान्) हमारे वैरियों को (प्रमृणन्) विध्वंस करता हुआ (आ अगन्) प्राप्त हुआ है (देवानाम्) इन्द्रियों का (ओजः) बल और (ओषधीनाम्) अन्नादि औषधों का (पयः) रस, (अप्रयावन्=०—वा) भूल न करने वाला वह (मा) मुझको (वर्चसा) तेज से (जिन्वतु) सन्तुष्ट करे ॥१॥

भावार्थः—जैसे अन्तर्यामी परम कारण परमेश्वर अपने सामर्थ्य से हमारे विघ्नों को हटाकर हमें ओजस्वी इन्द्रियां और पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ देकर उपकार करता है वैसे ही हम ओजस्वी, पराक्रमी होकर परस्पर उपकार करते रहें ॥१॥

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥

भाषार्थः—(पर्णमणे) हे पालन करने वालों में प्रशंसनीय ! तू (मयि) मुझ में (क्षत्रम्) बल, और (मयि) मुझ में ही (रयिम्) सम्पत्ति (धारयताद्) स्थापित कर। (अहम्) मैं (राष्ट्रस्य) राज्य के (अभीवर्गे) मण्डल में (निजः) आप ही (उत्तमः) उत्तम (भूयासम्) बना रहूँ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने बुद्धिबल और बाहुबल से शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति और सुवर्णादि धन प्राप्त करके संसार भर में कीर्त्ति बढ़ावे और आनन्द भोगे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (गुह्यम्) गुप्त, (प्रियम्) प्रिय वा हितकारी (मणिम्) प्रशंसनीय [परमेश्वर] को (देवाः) व्यवहार जानने वाले देवताओं ने (वनस्पतौ) वननीय अर्थात् सेवनीय गुणों के रक्षक [पुरुष] में (निदधुः) अवश्य दान किया है, (तम्) उस [परमेश्वर] को (अस्मभ्यम्) हमें (देवाः) तेजस्वी महात्मा पुरुष (आयुषा सह) बड़ी आयु के साथ (भर्तवे) हमारे पोषण करने के लिये (ददतु) दान करें ॥३॥

भावार्थः—सूक्ष्मदर्शी देवताओं ने निश्चय किया है कि वह अन्तर्यामी, सर्वहितकारी परमेश्वर प्रत्येक शुभचिन्तक पुरुष में वर्तमान रह कर साहस बढ़ाता है, उसी परमात्मा का उपदेश विद्वान् महात्मा संसार में करें ॥३॥

सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले और (वरुणेन) स्वीकरणीय श्रेष्ठ, गुरु आदि करके (दत्तः) हमें दिया हुआ और (शिष्टः) सिखाया हुआ (सोमस्य) अमृत का (पर्णः) पूर्ण करने वाला परमेश्वर, (उग्रम्) पराक्रम वाला (सहः) बल [बलरूप], (आ) सब ओर से (अगन्) मिला है। (बहु) अनेक प्रकार से (रोचमानः) रुचि करता हुआ मैं (तम्) उस [अमृतपूरक परमेश्वर] को (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतु युक्त (दीर्घायुत्वाय) बड़े जीवन के लिये (प्रियासम्) प्रसन्न करूं ॥४॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वानों की शिक्षा पाकर शुद्ध मुक्त स्वभाव परमेश्वर के ज्ञान से आत्मा में बल पाता है, तब वह धर्मात्मा बड़े उत्साह से परमात्मा की आज्ञा पालता हुआ बड़े अर्थात् यशस्वी जीवन के साथ आनन्द भोगता है ॥४॥

'इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः' यह पाद, अ० २ । २९ । ४ में और 'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' यह पाद, अ० १ । ३५ । १ । में आ चुके हैं ॥

आ मारुक्षत् पर्णमणिर्गव्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः –(पर्णमणिः) पालन करने वालों में श्रेष्ठ परमेश्वर (मह्यं अरिष्टतातये) बड़ी कुशलता के लिए (मा) मेरे (आ, अरुक्षत्) ऊपर बैठा है। (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अर्यम्णः) श्रेष्ठों के मान करने वाले, (उत) और (संविदः) ज्ञानी पुरुष से (उत्तरः) अधिक श्रेष्ठ (असानि) हो जाऊं ॥५॥

भावार्थः—सर्वोपरि परमेश्वर अन्तर्यामी होकर हमें दुष्कर्मों से बचने की प्रेरणा करता है जिससे हम श्रेष्ठों में अति श्रेष्ठ और ज्ञानियों में अति ज्ञानी होवें ॥५॥

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥

भाषार्थः—(ये) जो (धीवानः) तीक्ष्ण बुद्धिवाले (रथकाराः) रथों के बनाने वाले, और (ये) जो (मनीषिणः) बड़े पण्डित (कर्माराः) कर्मों में गति रखने वाले शिल्पी जन हैं। (पर्ण) हे पालन करनेवाले परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिये (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनों को (अभितः) चारों ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्ती (कृणु) कर ॥६॥

भावार्थः - सब मनुष्यों और विशेष कर राजा लोगों को चाहिये कि भूमिरथ, आकाशरथ, जलरथ आदि के बनाने वाले और अन्य शिल्पकर्मी विश्वकर्मा चतुर विद्वानों का सत्कार करते रहें जिससे अनेक व्यापारों से संसार में उन्नति होवे ॥६॥

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जो (राजानः) ऐश्वर्य वाले (राजकृतः) राजाओं के बनाने वाले, (च) और (ये) जो (सूताः) सर्वप्रेरक, (ग्रामण्यः) ग्रामों के नेता लोग हैं। (पर्ण) हे पालन करने वाले परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मह्यम्) मेरे लिए (सर्वान्) उन सब (जनान्) जनों को (अभितः) चारों ओर से (उपस्तीन्) समीपवर्त्ती (कृणु) कर ॥७॥

भावार्थः—चक्रवर्ती राजा सबके राजाधिराज परमेश्वर का ध्यान करता हुआ अपने हितकारी माण्डलिक राजाओं और अन्य प्रधान पुरुषों को यथोचित व्यवहार से अपना इष्ट मित्र बनाये रक्खे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

भाषार्थः—(मणे) हे प्रशंसनीय परमेश्वर ! तू (पर्णः) हमारा पूर्ण करने वाला, (तनूपानः) शरीर रक्षक और (वीरेण मया) मुझ वीर के साथ (सयोनिः) मिलने योग्य घर में रहने वाला (वीरः) वीर (असि) है । (संवत्सरस्य) सब में यथानियम वास करने वाले [तेरे] (तेन तेजसा) उस तेज से (त्वा) तुझको (बध्नामि) मैं बांधता हूं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य उस उत्तम कामनाओं के पूरक, और शरीर रक्षक महापराक्रमी परमेश्वर को अपने साथ सब स्थानों में निवास करता हुआ जानकर, और उसके तेजोमय स्वरूप को हृदय में धारण करके पराक्रमी और तेजस्वी होकर आनन्द भोगे ॥८॥

ईश्वर का जीव के साथ नित्य सम्बन्ध है जैसे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० १ । १६४ । २०, अ० ९ । ९ । २० ॥

(द्वा) दो (सुपर्णा) सुन्दर पालन शक्ति वाले, (सयुजा) समान सम्बन्ध रखने वाले, (सखाया) मित्रों के समान वर्त्तमान [ईश्वर और जीव] (समानम्) एक (वृक्षम्) सेवनीय [संसार वा वृक्ष] से (परि) सब प्रकार (सस्वजाते) सम्बन्ध रखते हैं । (तयोः) उन दोनों में (अन्यः) एक [जीव, ईश्वराधीन होने से] (स्वादु) चखने योग्य (पिप्पलम्) फल [पुण्य पाप का] (अत्ति) खाता है (अन्यः) दूसरा [परमात्मा] (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि) भले प्रकार [जीवों को] (चाकशीति) देखता है ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—८ ॥ अश्वत्थो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

उत्साहवर्धनायोपदेशः—उत्साह बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह (पुमान्) रक्षाशील (अश्वत्थः) अश्वत्थामा अर्थात् अश्वों, बलवानों में ठहरने वाला पुरुष, अथवा वीरों के ठहरने का स्थान पीपल का वृक्ष, (पुंसः) रक्षाशील (खदिरात् अधि) स्थिर स्वभाव वाले परमेश्वर से, अथवा खैर वृक्ष से (परिजातः) प्रकट होकर (मामकान् शत्रून्) मेरे उन शत्रुओं वा रोगों को (हन्तु) नाश करे (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूं (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते हैं] ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष सर्वरक्षक दृढ़ स्वभावादि गुण वाले परमेश्वर को विचार करके अपने को सुधारते हैं, वे शूरों में महाशूर होकर कुकर्मी शत्रुओं से बचाकर संसार में कीर्ति पाते हैं ॥१॥

२—अश्वत्थ, पीपल का वृक्ष, दूसरे वृक्षों के खोखले, घरों की भीतों, और अन्य स्थानों में उगता है और बहुत गुणकारी है। खैर के वृक्ष पर उगने से अधिक गुणदायक हो जाता है। लोग बड़ा आदर करके पवित्र पीपल की चित्तप्रसादक छाया और वायु में सन्ध्या, हवन, व्यायाम आदि करते, और इस के दूध, पत्ते, फल, लकड़ी से बहुत ओषधियां बनाते हैं। शब्दकल्पद्रुम कोष में इसको मधुर, कसैला, शीतल, कफ पित्त विनाशी, रक्तदाहशान्तिकारक आदि, और खदिर अर्थात् खैर को शीतल, तीखा, कसैला, दांतों का हितकारी, कृमि, प्रमेह, ज्वर, फोड़े, कुष्ठ, शोथ, आम, पित्त, रुधिर पांडु और कफ का विनाशक आदि लिखा है ॥

पाद्मोत्तरखण्ड अध्याय १२६, १६०—१६१ में अश्वत्थ की कथा सविस्तार लिखी है ॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (अश्वत्थ) हे बलवानों में ठहरने वाले शूर [वा पीपल वृक्ष !] (वृत्रघ्ना) अन्धकार मिटाने वाले (इन्द्रेण) सूर्य से, (मित्रेण) प्रेरणा करने वाले वायु से (च) और (वरुणेन) स्वीकार करने योग्य जल से (मेदी+सन्) स्नेही होकर (तान्) उन (वैबाधदोधतः) विविध बाधा डालने वाले क्रोधशील (शत्रून्) शत्रुओं वा रोगों को (निः) सर्वथा (भृणीहि) मार डाल ॥२॥

भावार्थः—राजा सूर्यादि के समान गुणयुक्त होकर भीतरी और बाहरी वैरियों का और सद्वैद्य पीपल के प्रयोग से रोगों का नाश करके प्रजा में शान्ति रक्खे ॥२॥

यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे वीरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (यथा) जैसे (महति) बड़े (अर्णवे अन्तः) समुद्र के बीच में (निरभनः) निश्चय करके तू भद्र करने वाला हुआ है। (एव) वैसे ही (तान् सर्वान्) उन सब को (निर्) निरन्तर (भङ्ग्धि) नष्ट कर दे, (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूँ, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते हैं] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को शूरवीर और सद्वैद्य होकर दुःखसागर में डूबे हुए प्रजागणों के उभारने में प्रयत्न करना चाहिये ॥३॥

यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष] ! (यः) जो तू (सहमानः) [वैरियों को] दबाता हुआ, (सासहानः) महाबली (ऋषभः इव) श्रेष्ठ पुरुष वा बलीवर्द वा ऋषभ औषध के समान (चरसि) विचरता है। (तेन त्वया) उस तेरे साथ (वयम्) हम (सपत्नान्) वैरियों को (सहिषीमहि) हरा देवें ॥४॥

भावार्थः—प्रजागण शूरवीर नीतिनिपुण राजा और सद्वैद्य के सहाय से शत्रुओं को वश में करते रहें। ऋषभ औषध विशेष है। इसको शब्दकल्पद्रुम कोष में मीठा, शीतल, रक्त-पित्त विरेक नाशक, वीर्य-श्लेष्मकारी, और दाहक्षय ज्वरहारी आदि लिखा है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥५॥

भाषार्थः—(अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले राजन् ! [वा पीपल वृक्ष !] (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (मृत्योः) मृत्यु के (अमोक्यैः) न खुल सकने वाले (पाशैः) पाशों से (एनान्) इन (मामकान् शत्रून्) मेरे शत्रुओं को (सिनातु) बांध लेवे, (यान्) जिन्हें (अहम्) मैं (द्वेष्मि) वैरी जानता हूँ, (च) और (ये) जो (माम्) मुझे [वैरी जानते हैं] ॥५॥

भावार्थः—राजा सत्पुरुषों के विरोधी दुराचारियों को दृढ़ बन्धनों में डालकर निर्धन और नष्ट कर दे ॥५॥

यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्धि सहस्व च ॥६॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (अश्वत्थ) हे शूरों में ठहरने वाले अश्वत्थामा राजन् ! [वा पीपल वृक्ष ! (वानस्पत्यान्) सेवकों वा सेवनीय गणों के रक्षक [आप] से सम्बन्ध वाले पुरुषों [वा वृक्ष समूहों] पर (आरोहन्) ऊंचा होकर (अधरान्) नीचे (कृणुषे) तू करता है (एव) वैसे ही (मे शत्रोः) मेरे शत्रु के (मूर्धानम्) मस्तक को (विष्वक्) सब विधि से (भिन्धि) तोड़ दे (च) और (सहस्व) जीत ले ॥६॥

भावार्थः समस्त और प्रत्येक प्रजागण समर्थ शूरवीर पुरुष वा सद्वैद्य को नायक बनाकर शत्रुओं और रोगों से अपने को बचावें ॥६॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥७॥

भाषार्थः—(ते) वे (अधराञ्चः) अधोगति वाले लोग वा रोग (बन्धनात्) बन्धन से (छिन्ना) छूटी हुई (नौः इव) नाव के समान (प्र प्लवन्ताम्) बहते चले जावें जिससे (वैबाधप्रणुत्तानाम्) विविध बाधा डालने वालों में पड़े हुए लोगों का (पुनः) फिर (निवर्तनम्) लौटना (न) नहीं (अस्ति) हो ॥७॥

भावार्थः—महादुष्ट रोग वा दुराचारियों के हटाने के लिए कठिन उपाय करने चाहियें, क्योंकि कोमलता से उनका सुधार नहीं हो सकता ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८॥

भाषार्थः—(एनान्) इन [शत्रुओं] को (मनसा) मनन शक्ति से, (चित्तेन) ज्ञान शक्ति से (उत) और (ब्रह्मणा) वेदशक्ति से (प्र प्र) सर्वथा (नुदे) मैं हटाता हूँ। (एनान्) इनको (वृक्षस्य) स्वीकार करने योग्य (अश्वत्थस्य) बलवानों में ठहरने वाले शूर [वा पीपल] की (शाखया) व्याप्ति [वा शाखा] से (प्र, नुदामहे) हम निकाले देते हैं ॥८॥

भावार्थः—प्रत्येक व्यक्ति और सब लोग मिलकर शूरवीर वा पीपल के प्रभाव से आगा पीछा विचारकर शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ॥८॥

सूक्तम् ७ ॥

१—७ ॥ १–३ हरिणो देवता, ४–७ मन्त्रोक्ताः देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशनायोपदेशः—रोग नाश करने के लिए उपदेश ॥

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥

भाषार्थः—(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरिणस्य) अन्धकार हरने वाले सूर्य रूप परमेश्वर के (शीर्षणि अधि) आश्रय में ही (भेषजम्) भय जीतने वाला औषध है, (सः) उस [ईश्वर] ने (विषाणया) विविध सींगों से (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (विषूचीनम्) सब ओर से (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ने आदि सृष्टि में वेद द्वारा हमारे स्वाभाविक और शारीरिक रोगों की औषधि दी है उसी के आज्ञापालन में हमारा कल्याण है ।.१ ।

'हरिण" शब्दकल्पद्रुम कोष में विष्णु शिव, सूर्य, हंस और पशु-विशेष मृग का नाम है और पहिले चारों नाम प्रायः परमेश्वर के हैं ॥

दूसरा अर्थ

(रघुष्यदः) शीघ्रगामी (हरिणस्य) हरिण के (शीर्षणि अधि) मस्तक के भीतर (भेषजम्) औषध है। (सः) उस [हरिण] ने (विषाणया) [अपने] सींग से (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (विषूचीनम्) सब ओर (अनीनशत्) नष्ट कर दिया है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मृग के सींग आदि से मनुष्य बड़े २ रोग नष्ट करें। मृग की नाभि में प्रसिद्ध औषधि कस्तूरी होती है। उस का सींग पसली आदि की पीड़ा में लगाया जाता हैं, प्रायः घरों में रक्खा रहता है और उस में नौसादर भी होता है। विषाणम्=सींग कुष्ठ का औषध है ॥१॥

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (वृषा) परम ऐश्वर्यवाला (हरिणः) विष्णु भगवान् (चतुर्भिः) मांगने योग्य [अथवा चार, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] (पद्भिः) पदार्थों के साथ (त्वा अनु) तेरे साथ २ (अक्रमीत्) पद जमाकर आगे बढ़ा है। (विषाणे) [परमेश्वर के] विविध दान में [उस राग को] (विष्य) नाश कर दे (यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अस्य) इसके (हृदि) हृदय में (गुष्पितम्=गुफितम्) गुंथा हुआ है ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर अनेक उत्तम २ पदार्थ देकर सदा सहायक रहता है। उसकी अनन्त दया से औषधि द्वारा नीरोग रहकर अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥२॥

दूसरा अर्थ

[हे मनुष्य !] (वृषा) बलवान् (हरिणः) हरिण (चतुर्भिः पद्भिः) चारों पैरों से (त्वा अनु) तेरे अनुकूल (अक्रमीत्) प्राप्त हुआ है।

(विषाणे) हे सींग !) [उस रोग को] (विष्य) नाश कर दे (यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अस्य हृदि) इसके हृदय में (गुष्पितम्) गुंथा हुआ है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य हरिण के सींग आदि औषधि से रोगनिवृत्ति करें ॥२॥

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिवच्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो [वा पूजनीय ब्रह्म] (चतुष्पक्षम्) याचनीय व्यवहारों से युक्त, अथवा चार पक्ष वाले (छदिः इव) घर के समान (अवरोचते) चमकता है। (तेन) उसके द्वारा (ते अङ्गेभ्यः) तेरे अङ्गों से (सर्वम्) सब (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (नाशयामसि=०—मः) हम नाश करते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः —ज्ञानी पुरुष उस सर्वत्र विराजमान परब्रह्म की रचनाओं में उत्तम कर्मों से युक्त घर के समान आनन्द पाकर अपने सब विघ्नों का सब जगह नाश करके आगे बढ़े चले जाते हैं ॥३॥

२—हरिण के सींग आदि औषध से रोग नष्ट करना चाहिये ॥३॥

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥

भाषार्थः (अमू) वे (ये) जो (सुभगे) बड़े ऐश्वर्य वाले (विचृतौ [अन्धकार से] छुड़ाने वाले (नाम) प्रसिद्ध (तारके) दो तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (दिवि) आकाश में हैं, वे दोनों (क्षेत्रियस्य) शरीर वा वंश के दोष वा रोग के (अधमम्) नीचे और (उत्तमम्) ऊंचे (पाशम्) पाश को (वि+मुञ्चताम्) छुड़ा देवे ॥४॥

भावार्थः जैसे सूर्य और चन्द्रमा परस्पर आकर्षण से प्रकाश, वृष्टि और पुष्टि आदि देकर संसार का उपकार करते हैं, इसी प्रकार मनुष्य सुमार्ग में चलकर सब विघ्नों को हटाकर स्वस्थ और यशस्वी हों ॥४॥

यह मन्त्र अ० २ । ८ । १ । में कुछ भेद से आ चुका है ।

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥

भाषार्थः —(आपः) सर्वव्यापक परमेश्वर वा जल (इत् वै उ) अवश्य ही (भेषजीः=० ज्यः) भय निवारक है, (आपः) परमेश्वर, वा जल (अमीवचातनीः=०—न्यः) पीड़ानाशक है । (आपः) परमेश्वर वा जल (विश्वस्य) सब का (भेषजीः) भय निवारक है, (ताः) वह (त्वा) तुझ को (क्षेत्रियात्) शरीर वा वंश के दोष वा रोग से (मुञ्चन्तु) छुड़ावे ॥५॥

भावार्थः - परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि, नेत्र, हस्तादि, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि, और अन्नादि पदार्थ देकर बड़ा उपकार किया है, सो हम भी उसको धन्यवाद देते हुए सब के साथ उपकार करें, और खेती आदि में जल के सुप्रयोग से पुरानी और नवी दरिद्रता, और स्नान आदि में प्रयोगों से सब रोग नाश करें ॥५॥

'आपः' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त है, इसी से उस के विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त हैं । 'आपः' शब्द परमेश्वरवाची भी है, प्रमाण में अगला मन्त्र है । उसमें एकवचनान्त शब्दों के साथ प्रयोग से उसका अर्थ एक परमेश्वर का है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(तत्) विस्तार करने वाला प्रसिद्ध ब्रह्म (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप, (तत्) ब्रह्म ही (आदित्यः) प्रकाश स्वरूप, (तत्) ब्रह्म ही (वायुः) गतिशील बलवान् और (तत् उ) ब्रह्म ही (चन्द्रमाः) आनन्द कारक है। (तत् एव) ब्रह्म ही (शुक्रम्) शुक्ल वा शुद्धस्वभाव, (तत्) सब में विस्तृत ब्रह्म (ब्रह्म) महान् (ताः) वही (आपः) सर्वव्यापक, और (सः) वही (प्रजापतिः) प्रजापालक है ॥

तनोति विस्तारयतीति तद् ब्रह्म। तनु विस्तारे अदिः, स च डित् (उ० १। १३२)।

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जो (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (क्रियमाणायाः) बिगड़ते हुए (आसुतेः) काढ़े से (त्वा) तुझ में (व्यानशे) व्याप गया है। (अहम्) मैं (तस्य) उसका (भेषजम्) औषध (वेद) जानता हूं। (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश के रोग को (त्वत्) तुम से (नाशयामि) नाश करता हूं ॥६॥

भावार्थः—विकृत औषध और विकृत अन्न के काढ़े वा पाक रस आदि से शरीर में भारी रोग व्याप जाते हैं, मनुष्य हितकारक पदार्थों का सेवन प्रयत्न करके किया करें ॥६॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

भाषार्थः—(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (अपवासे) छिपने पर (उत) और (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (अपवासे) चले जाने पर (अस्मत्) हमसे (सर्वम्) सब (दुर्भूतम्) अनिष्ट (अप=अप उच्छतु) चला जावे, और (क्षेत्रियम्) शरीर वा वंश का रोग (अप) हट जावे ॥७॥

भावार्थः—यह मन्त्र उपसंहार है, अर्थात् जैसे प्रतापी सूर्य के चमकने पर तारे छिप जाते और उषाओं का रङ्ग फीका पड़ जाता है, वैसे ही उद्योगी पुरुष आलस्यादि अनिष्टों और रोगों को दबाकर आनन्द भोगता है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ८ ॥

१—६ । प्रजापतिर्मन्त्रोक्ता देवता वा । १ – ४, ६ त्रिष्टुप् ५ अनुष्टुप् ॥

प्रीतिजननायोपदेशः—प्रीति उत्पन्न करने का उपदेश ॥

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः ।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥१॥

भाषार्थः—(ऋतुभिः) ऋतुओं से (कल्पमानः) समर्थ होता हुआ और (उस्रियाभिः) किरणों से (पृथिवीम्) पृथिवी को (संवेशयन्) सुखी करता हुआ (मित्रः) मरण से बचाने वाला वा लोकों का चलाने वाला सूर्य (आयातु) आवे । (अथ) और (वरुणः) वृष्टि आदि का जल (वायुः) पवन और (अग्निः) अग्नि (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (बृहत्) विशाल (संवेश्यम्) शान्तिदायक (राष्ट्रम्) राज्य को (दधातु) स्थिर करे ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रयत्न करे कि उसके प्रजागण सब ऋतुओं से पृथिवी पर भानुताप [सूर्य की किरणों को कांच के दर्पणों से खींचने का यन्त्र] आदि यन्त्रों द्वारा सूर्य से, जल चक्र, जल नाली आदि द्वारा जल से, पवन चक्रादि द्वारा पवन से, और आग्नेय अस्त्र शस्त्र द्वारा अग्नि से, विमान, अग्निरथ, नौका आदि में अनेक विधि से उपकार लेकर राज्य की उन्नति करें ॥१॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥२॥

भाषार्थः—(धाता) पोषणकर्ता, (रातिः) दानकर्ता, (सविता) सर्वप्रेरक, (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान्, और (त्वष्टा) देवशिल्पी वा विश्वकर्मा [यह सब पुरुष] (मे) मेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य के कारण (वचः) वचन को (जुषन्ताम्) विचारें और (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (हर्यन्तु) स्वीकार करें । (देवीम्) दिव्य गुणवाली, (शूरपुत्राम्) शूर पुत्रों वाली (अदितिम्) अदान वा अखण्ड व्रतवाली देव माता [चतुर स्त्री वा विद्या] को (हुवे) मैं आवाहन करता हूं, (यथा) जिससे मैं (सजातानाम्) अपने समान जन्मवाले भाई बन्धुओं में (मध्यमेष्ठाः) प्रधान मध्यस्थ [mediator] होकर (असानि) रहूं ॥२॥

भावार्थः राजा बड़े-बड़े गुणवान् पुरुषों, बड़ी-बड़ी गुणवती स्त्रियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विद्या की प्रतिष्ठा बढ़ावे, जिससे वह उनके सहाय से अपनी उन्नति करे ॥२॥

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (सोमम्) ऐश्वर्य वाले और (सवितारम्) सर्वप्रेरक पुरुष को और (विश्वान्) सब (आदित्यान्) अदीन देवमाता के पुत्रों वा तेजस्वी शूर जनों को (उत्तरत्वे) श्रेष्ठता के निमित्त (नमोभिः) अनेक सत्कारों से (हुवे) आवाहन करता हूं। (अप्रतिब्रुवद्भिः) प्रतिकूल न बोलने वाले (सजातैः) समान जन्म वाले भाई बन्धुओं करके (इद्धः) प्रकाशित किया हुआ (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [सदृश तेजस्वी पुरुष] (दीर्घम्) बहुत काल तक (एव) अवश्य (दीदयत्) ज्योति वाला रहे ॥३॥

भावार्थः—जो राजा शूर वीर सत्यवादी पुरुषों और भाई बन्धुओं का सत्कार करता रहता है, वह उनकी सहायता से चिरकाल तक तेजस्वी होकर संसार में कीर्त्ति पाता है ॥३॥

इहेदसाथ न परो गमाथेयो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥४॥

भाषार्थः—[हे प्रजाओ ! स्त्री पुरुषो !] (इह इत्) यहां पर ही (असाथ) रहो, (परः) दूर (न) मत (गमाथ) जाओ, (इर्यः) अन्नवान् वा विद्यावान् (गोपाः) भूमि, वा विद्या वा गौ का रक्षक, (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी पुरुष (वः) तुम को (आ, अजत्) यहां लावे। (अस्मै) इस [पुरुष] के अर्थ (कामाय) कामना [की पूर्ति] के लिए (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम उत्तम गुण (कामिनीः) उत्तम कामना वाली (वः) तुम प्रजाओं को (उप) अच्छे प्रकार से (उपसंयन्तु) आकर प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—राजा राज्य की वृद्धि के लिए प्रजा अर्थात् स्त्री पुरुषों को नगरों में बसावे और अन्नादि से पोषण करके शुभ गुणों के उपार्जन में सदा प्रवृत्त रक्खे ॥४॥

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (सम्) ठीक रीति से, (व्रता=व्रतानि) कर्मों को (सम्) ठीक रीति से, (आकूतीः) संकल्पों को (सम्) ठीक रीति से (नमामसि=०—मः) हम झुकते हैं। (अमी ये) यह जो तुम (विव्रताः) विरुद्ध कर्मी (स्थन) हो, (तान् वः) उन तुम को (सम्) ठीक रीति से (नमयामसि=० मः) हम झुकाते हैं ॥५॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष सब के उत्तम विचारों, उत्तम कर्मों और उत्तम मनोरथों को माने और धर्म पथ में विरुद्ध मत वालों को भी सहमत कर लेवे ॥५॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (मनसा) अपने मन से (मनांसि) तुम्हारे मनों को (गृभ्णामि=गृह्णामि) थामता हूं, (मम) मेरे (चित्तम् अनु) चित्त के पीछे पीछे (चित्तेभिः=चित्तैः) अपने चित्तों से (आ इत) आओ। (मम वशेषु) अपने वश में (वः हृदयानि) तुम्हारे हृदयों को (कृणोमि) मैं करता हूं, (मम यातम्) मेरी चाल पर (अनुवर्त्मानः) मार्ग चलते हुए (आ इत) यहां आओ ॥६॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष अपने शुभ विचार और साहस से सब सभासदों और प्रजागणों को धर्म पथ पर चलाकर परस्पर मेल के साथ साहसी और उत्साही बनावे ॥६॥

सूक्तम् ९ ॥

१-६ । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

विघ्नशमनायोपदेशः—विघ्न की शान्ति के लिए उपदेश ॥

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथा कृणुता पुनः ॥१॥

भाषार्थः—(कर्शफस्य) निर्बल का और (विशफस्य) प्रबल का (द्यौः) प्रकाशमान परमेश्वर (पिता) पिता और (पृथिवी) विस्तीर्ण परमेश्वर (माता) निर्मात्री, माता है। (देवाः) हे विजयी पुरुषो ! (यथा) जैसे [शत्रुओं को] (अभिचक्र) तुमने हराया था, (तथा) वैसे ही (पुनः) फिर [उन्हें] (अपकृणुत) हटा दो ॥१॥

भावार्थः—जगत् के माता पिता परमेश्वर ने वृष्टि द्वारा सूर्य और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी के संयोग से सब निर्बल और प्रबल जीवों को उत्पन्न किया है, इसलिये सब सबल और निर्बल मिलकर अविद्या, निर्धनता आदि शत्रुओं को मिटाकर आनन्द से रहें ॥१॥

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥

भाषार्थः—(अश्रेष्माणः) दाह [डाह] न करने वाले पुरुषों ने [जगत् को] (अधारयन्) धारण किया है, (तथा) उसी प्रकार से ही (तत्) वह [जगत् का-धारण] (मनुना) सर्वज्ञ परमेश्वर करके (कृतम्) किया गया है। (विष्कन्धम्) विघ्न को (वध्रि) निर्बल (कृणोमि) मैं करता हूँ, (गवाम् इव) जैसे बैलों के (मुष्का-बर्हः) अण्डकोष तोड़ने वाला [बैलों को निर्बल कर देता है] ॥२॥

भावार्थः—पक्षपातरहित परमेश्वर संसार का धारण पोषण करता है, उसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष किसी से वैर न करके उपकार करते आये हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य विघ्नों को हटाकर उन्नति करे, जैसे दुर्दमनीय बैल को असह्य बल से हीन करके कृषि आदि में चलाते हैं ॥२॥

पिशङ्गे सूत्रे खगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥

भाषार्थः—(वेधसः) बुद्धिमान् पुरुष (पिशंगे) व्यवस्था वा अवयवों से युक्त वा दृढ़ (सूत्रे) सूत में (तत्) विस्तीर्ण (खगलम्) खनती वा छिद्र में गलाने वाले, विघ्न को (आ) सब ओर से (बध्नन्ति) बांधते हैं। (बन्धुरः = ० —राः) बन्धुजन (श्रवस्युम्) प्रसिद्ध, (शुष्मम्) सुखाने वाले (काबवम्) स्तुतिनाशक शत्रु को (वध्रिम्) निर्वीर्य (कृण्वन्तु) कर देवें ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेद द्वारा छोटे छोटों के मेल से बड़ी २ विपत्तियों को हटा देते हैं, इससे सब बान्धव मिलकर बाहरी और भीतरी दोषों को मिटाकर सुख भोगें ॥३॥

येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥४॥

भाषार्थः—(येन) जिस [बल] के साथ (श्रवस्यवः) हे प्रसिद्ध महापुरुषो ! (देवाः इव) विजयी लोगों के समान (असुरमायया) प्रकाशमान ईश्वर की बुद्धि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चरथ) तुम आचरण करते हो, [उसी बल के साथ] (शुनाम्) कुत्तों के (दूषणः) तुच्छ जानने वाले (कपिः इव) बन्दर के समान (बन्धुरा) बन्धन शक्ति [नीति-विद्या] (च) निश्चय करके (काबवस्य) स्तुतिनाशक शत्रु की [तुच्छ करने वाली होती है] ॥४॥

भावार्थः—शास्त्र बल से प्रसिद्ध पुरुष अन्य महात्माओं का अनुकरण करके तीव्र बुद्धि के साथ उदाहरण बनते हैं, इसी प्रकार सब पुरुष नीति बल से शत्रुओं पर प्रबल रहें, जैसे बन्दर वृक्ष पर चढ़कर कुत्तों से निर्भय रहता है ॥४॥

दुष्टयै॑ हि त्वा॑ भत्स्यामि॑ दूषयिष्यामि॑ काब॒वम् ।
उदा॒शवो॒ रथा॑ इव शपथे॑भिः सरिष्यथ ॥५॥

भाषार्थः—(दुष्टयै) दुष्टता [हटाने] के लिए (हि) ही (काबवम्) स्तुति नाशक (त्वा) तुझ को (भत्स्यामि) मैं बांधूंगा और (दूषयिष्यामि) दोषी ठहराऊंगा। (आशवः) शीघ्रगामी (रथाः इव) रथों के समान (शपथेभिः = ०—थैः) हमारे शाप अर्थात् दण्ड वचनों से (उत् सरिष्यथ) तुम सब बन्धन में चले जाओगे ॥५॥

भावार्थः—राजा नाम में धब्बा लगाने वाले दुष्ट को कारागार में रख कर उसके दोष प्रसिद्ध कर दे, और उसके सहायकों को भी उचित दण्ड देवे ॥५॥

एक॑शतं॒ विष्क॑न्धानि॒ विष्ठि॑ता पृथि॒वीम॑नु॑ ।
तेषां॑ त्वामग्र॒ उज्ज॑हरु॒र्मणि॑ विष्क॒न्धदू॑षणम् ॥६॥

भाषार्थः—(एकशतम्) एक सौ एक (विष्कन्धानि) विघ्न (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (विष्ठिता = ०—तानि) फैले हुए हैं [हे शूर!] (तेषाम् अग्रे) उनके सन्मुख (विष्कन्धदूषणम्) विघ्न नाशक (मणिम्) प्रशंसनीय मणिरूप (त्वाम्) तुझ को उन्होंने [देवताओं ने] (उत् जहरुः) ऊंचा उठाया है ॥६॥

भावार्थः—प्रतिष्ठित लोग राजा को 'एकशतम्' अनेक विघ्नों से रक्षा के लिए अग्रगामी बनाते हैं, इसलिये राजा अपने धर्म का यथार्थ पालन करे ॥६॥

सूक्तम् १० ॥

१—१३। रात्रिरेकाष्टका वा देवता। १-३, ८-११, १३ अनुष्टुप्, ४ ६, १२ त्रिष्टुप्, ७ षट्पदानुष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्टिवर्धनाय प्रकृतिवर्णनम्—पुष्टि बढ़ाने के लिये प्रकृति का वर्णन ॥

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१॥

भाषार्थः—(सा) वह [ईश्वरी वा लक्ष्मी] (प्रथमा) प्रसिद्ध वा पहली शक्ति [प्रकृति] (ह) निश्चय करके (वि, उवास) प्रकाशित हुई। वह (यमे) नियम में (धेनुः) तृप्त करने वाली [वा गौ के समान] (अभवत्) हुई है। (सा) वह (पयस्वती) दुधेल [प्रकृति] (नः) हम को (उत्तराम्-उत्तराम्) उत्तम उत्तम (समाम्) सम [समान वा निष्पक्ष] शक्ति से (दुहाम्) भरती रहे ॥१॥

भावार्थः—इस सूक्त में 'रात्रि' म० २ और 'एकाष्टका' म० ५ दोनों शब्द प्रकृति के वाचक हैं। प्रकृति ईश्वर शक्ति वा जगत् की सामग्री, सृष्टि से पहिले विद्यमान थी, उसने ईश्वरनियम से [मन्त्र २ वा ८ देखो] विविध पदार्थ सूर्य, अन्नादि उत्पन्न किये हैं। विद्वान् लोग प्रकृति के विज्ञान और प्रयोग से अधिक २ ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध 'सा नः पयस्वती' ऋ० ४। ५७। ७ में हैं ॥

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) महात्मा पुरुष, वा सूर्य, वायु चन्द्रादि दिव्य पदार्थ (उपायतीम्) पास आती हुई (धेनुम्) तृप्त करने वाली (याम्) जिस (रात्रिम्) दानशीला और ग्रहणशीला शक्ति, वा रात्रि रूप [प्रकृति] को (प्रतिनन्दन्ति) अभिनन्दन करते [धन्य मानते] हैं और (या) जो (संवत्सरस्य) यथावत् निवास देने वाले [परमेश्वर] की (पत्नी) पालन शक्ति है, (सा=सा सा) वह ईश्वरी (नः) हमारे लिये (सुमंगली) बड़े २ मंगल करने वाली (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—प्रकृति ईश्वर नियम से पदार्थों को उत्पन्न करके जीवों को सुख देकर उनका दुःख हरती है, और अनन्त होने से वह रात्रि वा अन्धकार रूप है। विज्ञानी पुरुष खोज लगा २ कर उससे उपकार लेकर विविध उन्नति करते हैं ॥२॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(रात्रि) हे सुखदात्री वा दुःखहर्त्री वा रात्रिरूप [प्रकृति] (संवत्सरस्य) यथावत् निवास देने वाले परमेश्वर की (प्रतिमाम्) प्रतिमा [प्रतिरूप वा प्रतिनिधि] (याम्) सर्वत्र व्यापिनी (त्वा) तुझको (उपास्महे) हम भजते हैं। (सा) वह लक्ष्मी तू (नः) हमारे लिये (आयुष्मतीम्) चिरंजीविनी (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेण) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर ॥३॥

भावार्थः— अनन्त परमेश्वरी प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल रूप के ज्ञान से उपकार लेकर हम अपनी सन्तान के सहित धनी, स्वस्थ और चिरंजीवी बने रहें ॥३॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ।४॥

भाषार्थः—(इयम् एव) यही (सा) वह ईश्वरी, [रात्रि, प्रकृति] है (या) जो (प्रथमा) प्रथम (वि-औच्छत्) प्रकाशमान हुई है, और (आसु) इन सब और (इतरासु) दूसरी [सृष्टियों] में (प्रविष्टा) प्रविष्ट होकर (चरति) विचरती है। (अस्याम् अन्तः) इसके भीतर (महान्तः) बड़ी २ (महिमानः) महिमायें हैं। उस (नवगत्) नवीन २ गति वाली (वधूः) प्राप्ति योग्य (जनित्री) जननी ने [अनर्थों को] (जिगाय) जीत लिया है ॥४॥

भावार्थः— परमाणुरूपा प्रकृति जगत् के सब पदार्थों में प्रविष्ट है। विद्वान् लोग जैसे २ खोजते हैं उसकी नवीन २ शक्तियों का प्रादुर्भाव करके सुख पाते हैं ॥४॥

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।५॥

भाषार्थः (वानस्पत्याः) वनस्पति अर्थात् सेवकों वा सेवनीय गुणों के रक्षक परमेश्वर से संबन्ध वाले (ग्रावाणः) सूक्ष्मदर्शी, स्तोता पुरुषों ने, (परिवत्सरीणम्) परिवत्सर, सब प्रकार निवास देने वाले परमेश्वर से सिद्ध किये हुए (हविः) ग्राह्य वस्तु को (कृण्वन्तः) उत्पन्न करते हुए, (घोषम्) ध्वनि (अक्रत) की है।" (एकाष्टके) हे अकेली व्याप्ति वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति]! (वयम्) हम लोग (सुप्रजसः) उत्तम सन्तान वाले, (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले और (रयीणाम्) सब प्रकार के धनों के (पतयः) पति (स्याम्) होवें" ॥५॥

भावार्थः ऋषि मुनि प्रकृति द्वारा परमेश्वर रचित पदार्थों के गुणों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान और प्रयोग से सब प्रकार का सुख भोगते हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य उद्योग करके आनन्द भोगें ॥५॥

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के ज्ञान वाले पुरुष ! (इडायाः) प्राप्ति योग्य [प्रकृति] के (घृतवत्) सारयुक्त और (सरीसृपम्) अत्यन्त रेंगते हुए (पदम् प्रति) पद से (हव्या=हव्यानि) देने लेने योग्य वस्तुओं को (गृभाय) ग्रहण कर। (ये) जो (ग्राम्यः) ग्राम निवासी, (विश्वरूपाः) नाना रूप वाले (पशवः) व्यक्त और अव्यक्त वाणी वाले जीव हैं (तेषाम्) उन सब (सप्तानाम्) आपस में मिले हुए प्राणियों की (रन्तिः) प्रीति वा क्रीड़ा (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—सृष्टि विद्या में निपुण पुरुष संसार के पदार्थों से विज्ञान द्वारा उपकार लेकर सब प्राणियों को सुखी रखकर आप सुखी रहते हैं ॥६॥

आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७॥

भाषार्थः—(रात्रि) हे सुख देने वाली वा दुःख हरने वाली, वा रात्री रूप [प्रकृति] (पुष्टे) धन की समृद्धि (च) और (पोषे) अन्नादि की वृद्धि में (च) निश्चय करके (मा) मुझको (आ=आ भर) भर दे, [जिससे] (देवानाम्) देवताओं की (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें। (दर्वे) हे दुःख दलने वाली ! [वा चमसा-रूप!] (पूर्णा) भरी भराई (परापत) ऊपर आ, और (पुनः) बार २ (सुपूर्णा) भले प्रकार भरी भराई (आ पत) पास आ ! (सर्वान्) सब (यज्ञान्) पूजनीय गुणों का (सम्भुञ्जती) ठीक ठीक पालन करती हुई तू (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल (नः) हमें (आ भर) लाकर भर दे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सृष्टि के पदार्थों के गुण साक्षात् करके जितना २ आगे बढ़ता है, उतना २ ही वह धनी और बली होकर देवताओं का प्रिय होता और आनन्द भोगता है ॥७॥

'पूर्णा दर्वे... पुनरापत' इतना भाग यजुर्वेद अ० ३। ४९ में है, वहां 'दर्वे' के स्थान पर 'दर्वि' पद है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥

भाषार्थः—(एकाष्टके) अकेली व्यापक रहने वाली, वा अकेली भोजन स्थान शक्ति ! [प्रकृति] (अयम्) यह (संवत्सरः) यथावत् निवास देने वाला, (तव) तेरा (पतिः) पति वा रक्षक [परमेश्वर] (आ अगन्) प्राप्त हुआ है। (सा) लक्ष्मी तू (नः) हमारे लिए (आयुष्मतीम्) बड़ी आयु वाली (प्रजाम्) प्रजा को (रायः) धन की (पोषेण) बढ़ती के साथ (संसृज) संयुक्त कर ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् साक्षात् कर लेते हैं कि परमेश्वर ही प्रकृति, जगत् सामग्री का स्वामी अर्थात् उसके अंशों का संयोजक और वियोजक है, और प्रकृति के यथावत् प्रयोग से मनुष्य अपनी सन्तान सहित चिरंजीवी और धनी होते हैं ॥८॥

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥९॥

भाषार्थः—(ऋतून्) ऋतुओं, (ऋतुपतीन्) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य वायु आदिकों], (आर्तवान्) ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले (हायनान्) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों से (संवत्सरान्) यथाविधि निवास देनेवाले (मासान्) कर्मों के नापने वाले महीनों (उत) और (समाः) सब अनुकूल क्रियाओं को (भूतस्य) सत्ता में आये हुए जगत् के (पतये) पति के (यजे यजे) मैं बार बार अर्पण करता हूँ ॥९॥

भावार्थः—तत्त्वज्ञानी पुरुष ग्रीष्म, वर्षा, शीतादि ऋतुओं, और उनके कारण सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी आदि, एवं संसार के अन्य पदार्थों तथा क्रियाओं का आदि कारण जगत् पिता परमेश्वर को मानते और उसका धन्यवाद करते हैं ॥९॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०॥

भाषार्थः—[हे काष्टके प्रकृति !] (त्वा) तुझ को (ऋतुभ्यः) ऋतुओं के लिए, (आर्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिए, (माद्भ्यः) महीनों के लिए और (संवत्सरेभ्यः) यथावत् निवास देने वाले वर्षों के [सुधार के] लिए, (धात्रे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करने वाले, (विधात्रे) रचने वाले, (समृधे) यथा नियम बढ़ाने वाले (भूतस्य) जगत् के (पतये) पति के लिए (यजे) मैं समर्पण करता हूं ॥१०॥

भावार्थः—परमेश्वर नियम से जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति की चेष्टाओं को सब ऋतुओं में देखते हुए विद्वान् लोग अपने समय को उपकार में लगाते हैं ॥१०॥

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं संविशेमोप गोमतः ॥११॥

भाषार्थः—(इडया) स्तुति योग्य प्रकृति [की विद्या] से (घृतवता = घृतवता कर्मणा) सार युक्त [कर्म] के द्वारा (जुह्वतः) होम [आत्म दान] करने वाले (देवान्) देवताओं को (वयम्) हम (यजे = यजामहे) पूजते हैं [जिससे] (अलुभ्यतः) तृष्णा रहित [सर्वथा भरे पूरे] और (गोमतः) बहुत सी उत्तम २ गौओं वाले (गृहान्) घरों में (उप = उपेत्य) आकर (वयम्) हम (संविशेम) सुख से रहें ॥११॥

भावार्थः—संसार के ज्ञान से उत्तम कामों में आत्मदान करने वाले महात्माओं के हम आदर पूर्वक अनुगामी बनें और सब कामनाओं तथा घृत दुग्धादि पोषक पदार्थों को प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥११॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२॥

भाषार्थः—(एकाष्टका) अकेली व्यापक रहने वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] ने (तपसा) बड़े ऐश्वर्य वाले ब्रह्म द्वारा (तप्यमाना) ऐश्वर्य वाली होकर (गर्भम्) स्तुति योग्य, (महिमानम्) पूजनीय (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले जीव को (जजान) प्रकट किया। (तेन) उस [इन्द्र, जीव] के द्वारा (देवाः) प्रकाशमान इन्द्रियों ने (शत्रून्) शत्रुओं [दोषों] को (वि) विविध प्रकार से (असहन्त) हराया है. और (शचीपतिः) वाणियों वा कर्मों वा बुद्धियों का पति [इन्द्र, जीव] (दस्यूनाम्) दस्युओं को (हन्ता) मारने वाला (अभवत्) हुआ है ॥१२॥

भावार्थः - मनुष्य ईश्वर नियम से प्रकृति के संयोग वियोग से शरीर पाकर इन्द्रियों द्वारा परीक्षा करके दोषों का त्याग और गुणों का ग्रहण करके आनन्द भोगते और भुगाते हैं ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तपस्' शब्द ब्रह्म वा परमेश्वरवाची है, जैसे—"ओं तपः। ओं सत्यम्" प्राणायाम मन्त्र में है। ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १९० मन्त्र १ में भी ऐसा वर्णन है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥

(ऋतम्) यथार्थ वेदशास्त्र (च) और (सत्यम्) सत्ता वाला जगत् (च) भी (अभीद्धात्) सर्वथा प्रकाशमान (तपसःअधि) तप अर्थात् ऐश्वर्य वाले ब्रह्म से ही (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः।
कामानस्माकं पूरय प्रतिं गृह्णाहि नो हविः ॥१३॥

भाषार्थः—(इन्द्रपुत्रे) हे सूर्य जैसे पुत्र वाली! (सोमपुत्रे) हे चन्द्रमा जैसे पुत्र-वाली! [प्रकृति] तू (प्रजापतेः) प्रजा रक्षक परमेश्वर के (दुहिता) कार्यों की पूर्ण करने वाली (असि) है, (अस्माकम्) हमारे (कामान्) मनोरथों को (पूरय) पूर्ण कर, (नः) हमारी (हविः) भक्ति को (प्रति गृह्णाहि) स्वीकार कर ॥१३॥

भावार्थः— परमेश्वर ने प्रकृति से सूर्य चन्द्रादि लोक और बड़े बड़े प्रतापी तथा उपकारी मनुष्य उत्पन्न किये हैं, उस प्रकृति की शक्तियों के ज्ञानऔर प्रयोग से संसार की भलाई चाहने वाले पुरुष अपनी कामनायें पूरी करते हैं ॥१३॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ११ ॥

१—८ ॥ राजयक्ष्मघ्नं देवता। १—४ त्रिष्टुप्। ५, ६ अनुष्टुप्, ७ पथ्या पङ्क्तिः। ८ षट्पदानुष्टुप् ॥

रोगनाशनायोपदेशः— रोग नाश करने के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझ को (हविषा) भक्ति के साथ (कम्) सुख से (जीवनाय) जीवन के लिए (अज्ञातयक्ष्मात्) अप्रकट रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) राज रोग से (मुञ्चामि) मैं छड़ाता हूं । (यदि) जो (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया रोग] ने (एतत्) इस समय में (एनम्) इस प्राणी को (जग्राह) पकड़ लिया है, (तस्याः) उस [पीड़ा] से (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और अग्नि ! (एनम्) इस [प्राणी] को (प्र मुमुक्तम्) तुम छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—सद्वैद्य गुप्त और प्रकट रोगों से विचार पूर्वक रोगी को अच्छा करता है, ऐसे ही प्रत्यक मनुष्य (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि अर्थात् सूर्य से लेकर अग्नि पर्यन्त अर्थात् दिव्य और पार्थिव सब पदार्थों से उपकार लेकर, अथवा सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी विद्वानों से मिलकर, अपने दोषों को मिटाकर यशस्वी होवे ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व० का० २ सू० ९ मं० १ से करो ॥

मन्त्र १—४ ऋग्वेद १० । १६१ । १-४ में कुछ भेद से, और फिर अथर्व० २० । ९६ । ६–९ में हैं । ऋग्वेद में इस सूक्त का ऋषि "प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः" और देवता "राजयक्ष्मघ्नम्" है ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे [यह] (क्षितायुः) टूटी आयु वाला, (यदि वा) अथवा (परेतः) अंग भङ्ग है, (यदि) चाहे (मृत्योः) मृत्यु के (अन्तिकम्) समीप (एव) ही (नीतः = नि—इतः) आ चुका है । (तम्) उस को (निर्ऋतेः) महामारी की (उपस्थात्) गोद से (आ हरामि) लिये आता हूं, (एनम्) इसको (शतशारदाय + जीवनाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले [जीवन] के लिये (अस्पार्षम्) मैंने प्रबल किया है ॥२॥

भावार्थः—जैसे चतुर वैद्य यत्न करके भारी २ रोगियों को चङ्गा करता है, ऐसे ही मनुष्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कठिन संकट पड़ने पर अपने आत्मा को प्रबल रक्खे ॥२॥

अथर्व० १ । ३५ । १ में 'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय' पाठ है, यहाँ 'जीवनाय' पद मन्त्र १ से लाया गया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य दो संहिताओं, सायणभाष्य और ऋग्वेद में 'अस्पार्षम्' पाठ है, परन्तु बम्बई गवर्नमेंट संहिता में शोधा हुआ और अथर्व० का० २० सू० ९६ म० ७ में 'अस्पार्शम्' पाठ है। हमने 'अस्पार्षम्' लिया है।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

भाषार्थः—(सहस्राक्षेण) सहस्रों नेत्र वाले, (शतवीर्येण) सैकड़ों सामर्थ्य वाले, (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) मैंने उभारा है। (यथा) जिससे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मनुष्य (एनम्) इस [देही] को (विश्वस्य) प्रत्येक (दुरितस्य) कष्ट के (पारम्) पार (अति = अतीत्य) निकाल कर (शरदः) [सौ] शरद् ऋतुओं तक (नयाति) पहुँचावे ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य एकाग्रचित्त होकर अनेक प्रकार से अपनी दर्शन शक्ति, कर्मशक्ति और जीविकाशक्ति बढ़ाकर अपने को सुधारता है, तब वह इन्द्र पुरुष सब उलझनों को सुलझा कर यशस्वी होकर चिरंजीवी होता है।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥४॥

भाषार्थः (वर्धमानः + त्वम्) बढ़ती करता हुआ तू (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतुओं तक (शतम् हेमन्तान्) सौ शीत ऋतुओं तक (उ) और (शतम् वसन्तान्) सौ वसन्त ऋतुओं तक (जीव) जीता रह। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी विद्वान्, (सविता) सबका चलाने वाला, (बृहस्पतिः + अहं जीवः) बड़ों बड़ों के रक्षक मैंने (शतम्) अनेक प्रकार से (ते) तेरे लिये (शतायुषा) सैकड़ों जीवन शक्ति वाले (हविषा) आत्मदान वा भक्ति से (एनम्) इस [आत्मा] को (आ अहार्षम्) उभारा है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य उचित रीति से वर्षा, शीत और उष्ण ऋतुओं को सह कर बहु प्रकार मन्त्रोक्त विधि पर विद्यादि बल से शक्तिमान् होकर जीविका उपार्जन करता हुआ आत्मा की उन्नति करे ॥४॥

ऋग्वेद में (इन्द्रः अग्निः) = इन्द्राग्नी और (आ अहार्षम् एनम्) = [इमम् पुनः दुः] ॥

प्र विंशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —(प्राणापानौ) हे श्वास और प्रश्वास तुम दोनों, [इस शरीर में] (प्र विशतम्) प्रवेश करते रहो, (अनड्वाहौ-इव) रथ ले चलने वाले दो बैल जैसे (व्रजम्) गोशाला में (अन्ये) दूसरे (मृत्यवः) मृत्यु के कारण (वि यन्तु) उलटे चले जावें (यान्) जिन (इतरान्) कामना नाशक [मृत्युओं] को (शतम्) सौ प्रकार का (आहुः) बतलाते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य प्राणायाम, व्यायामादि से अपने प्राण और अपान को अनुकूल रखकर शारीरिक अवस्था सुधारे रहें और दुराचारों से बचकर अपना जीवन शुभ कामों में लगावें ॥५॥

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥

भाषार्थः —(प्राणापानौ) हे श्वास प्रश्वास ! (युवम्) तुम दोनों (इह एव) इसमें ही (स्तम्) रहो, (इतः) इससे (मा अप गातम्) दूर मत जाओ । (अस्य) इस [प्राणी] के (शरीरम्) शरीर और (अङ्गानि) अंगों को (जरसे) स्तुति के लिये (पुनः) अवश्य (वहतम्) तुम दोनों ले चलो ॥६॥

भावार्थः प्राण और अपान वायु का संचार ठीक न होने से रुधिर जम कर रोग उत्पन्न होता है इससे मनुष्य सब शरीर में वायु संचार ठीक रख कर दृढ़ शरीर वाले हों और स्तुति प्राप्त करें ॥६॥

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझे (जरायै) स्तुति पाने के लिये (परि) सब प्रकार (ददामि) दान करता हूं । (जरायै) स्तुति के लिये (त्वा) तेरे (नि धुवामि) निहोरे करता हूं [अथवा, तुझे झकझोरता हूं] (जरा) स्तुति (त्वा) तुझे (भद्रा=भद्राणि) अनेक सुख (नेष्ट) पहुंचावे । (अन्ये) दूसरे (मृत्यवः) मृत्यु के कारण (वि यन्तु) उलटे चले जावें, (यान्) जिन (इतरान्) कामनानाशक [मृत्युओं] को (शतम्) सौ प्रकार का (आहुः) बतलाते हैं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य कभी नम्र, कभी कठोर होकर स्तुति के लिये अपनी आत्मा लगावे, और निर्धनता, रोगादि मृत्यु के कारणों को हटाकर सुखी रहे ॥७॥

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८॥

भाषार्थः—[हे प्राणी!] (जरिमा) निर्बलता ने (त्वा) तुझको (अभि अहित) बांधा है, (उक्षणम्) बलवान् (गाम् इव) बैल को जैसे (रज्ज्वा) रस्सी से (यः मृत्युः) जिस मृत्यु ने (जायमानम्) उत्पन्न वा प्रसिद्ध होते हुए (त्वा) तुझको (सुपाशया) दृढ़ फंदे से (अभि अधत्त) बन्धन में किया है, (तम्) उस [मृत्यु] को (सत्यस्य) सत्य के (ते) तेरे (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के हित के लिये (बृहस्पतिः) बड़ों बड़ों के रक्षक [देवगुरु] परमेश्वर वा आचार्य ने [तुझ से] (उत् अमुञ्चत्) छुड़ा दिया है ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य जन्म से लेकर भूख, पियास, रोग आदि विपत्तियों से ईश्वरदत्त ज्ञान और विद्वानों की रक्षा तथा शिक्षा द्वारा छूट कर दोनों हाथों अर्थात् सब प्रकार से धर्म आचरण के लिये आगे बढ़ता है ॥८॥

सूक्तम् १२ ॥

१—९। शाला देवता ॥ १, २, ४—६, ८ त्रिष्टुप्। ३ पथ्या पङ्क्तिः। ७, ९ अनुष्टुप् ॥

नवशालानिर्माणं प्रवेशश्च नवीन शाला का निर्माण और प्रवेश ॥

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥

भाषार्थः—(इह एव) यहां पर ही (ध्रुवाम्) ठहराऊ (शालाम्) शाला को (नि मिनोमि) जमाकर बनाता हूं। वह (घृतम्) घी (उक्षमाणा) सींचती हुई (क्षेमे) लब्ध वस्तु की रक्षा में (तिष्ठाति) ठहरी रहे। (शाले) हे शाला (ताम् त्वा) उस तुझमें (उप=उपेत्य) आकर (सर्ववीराः) सब वीर पुरुषों वाले (सुवीराः) अच्छे अच्छे पराक्रमी पुरुषों वाले और (अरिष्टवीराः) नीरोग पुरुषों वाले (संचरेम) हम चलते फिरते रहें ॥१॥

भावार्थः—हम अपने घर दृढ़ और उचित विभाग वाले बनावें जिससे वायु घाम आदि के यथावत् सेवन से सब गृहस्थ स्त्री पुरुष सदा हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! तू (इह एव) यहाँ पर ही (अश्वावती) बहुत घोड़ों वाली, (गोमती) बहुत गौओं वाली और (सूनृतावती) बहुत प्रिय सत्य वाणियों वाली होकर (ध्रुवा) ठहराऊ (प्रति तिष्ठ) जमी रह। (ऊर्जस्वती) बहुत अन्न वाली, (घृतवती) बहुत घी वाली और (पयस्वती) बहुत दूध वाली होकर (महते) बड़ी (सौभगाय) सुन्दर सौभाग्य के लिये (उत् श्रयस्व) ऊंची हो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य शाला में योग्य योग्य स्थान बनाकर उनको आवश्यक पदार्थों से भरपूर रक्खे ॥२॥

धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥३॥

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! तू (बृहच्छन्दाः) विशाल छतवाली, वा बहुत से छन्द वा वेद मन्त्रों वाली, (पूतिधान्या) शुद्ध धान्य वाली (धरुणी) भण्डार (असि) है। (त्वा) तुझमें (वत्सः) बछड़ा (आ) और (कुमारः) बालक (आ गमेत्) आवे। (सायम्) सायंकाल में (आस्पन्दमानाः) कूदती हुई (धेनवः) दुधैल गौयें (आ=आगच्छन्तु) आवें ॥३॥

भावार्थः—स्पष्ट है। और और स्थानों के साथ घरों में वैदिकभवन भी होवे ॥३॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूदना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥

भाषार्थः—(इमाम् शालाम्) इस शाला को (सविता) सब का चलाने वाला पुरुष [वा सूर्य,] (वायुः) वेगवान् पुरुष [वा पवन] (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष [वा मेघ] और (प्रजानन्) ज्ञानवान् (बृहस्पतिः) बड़े बड़े कामों का रक्षक पुरुष [प्रत्येक] (नि मिनोतु) जमाकर बनावे। (मरुतः) शूर देवता [विद्वान् लोग] (उदना) जल से और (घृतेन) घी से (उक्षन्तु) सींचें, और (भगः) भाग्यवान् (राजा) राजा [प्रधान पुरुष] (नः) हमारे लिये (कृषिम्) खेती को (नि) सदैव (तनोतु) बढ़ावे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—शाला निर्माण में प्रधान पुरुष और सब कार्यकर्ता कर्म—कुशल हों, घाम, वायु और मेघ, तथा जल, घी आदि सामग्री के लिये यथावत् अवकाश रहे। और निर्वाह के लिए खेती विद्या का विस्तार करें ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

भाषार्थः—(मानस्य) हे मान अर्थात् प्रतिष्ठा की (पत्नि) रक्षा करने वाली, (शरणा) शरण देने वाली, (स्योना) सुखदायिनी, (देवी) उजियाले वाली तू (देवेभिः=०—वैः) देवताओं [विश्वकर्मा पुरुषों] करके (निमिता) मायी हुई (अग्रे) हमारे सम्मुख (असि) वर्त्तमान है। (तृणम्) घास को (वसाना) पहिने हुए (त्वम्) तू (सुमनाः) प्रसन्न मन वाली (असः) हो, (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीरम्) वीर पुरुषों के सहित (रयिम्) धन (दाः) दे ॥५॥

भावार्थः—सब मनुष्य गृहनिर्माण विद्या में कुशल पुरुषों से सम्मति लेकर बाहिर और भीतर से मनोरम घर बनावें, जिससे संसार में सम्मान हो, और सब गृहस्थ स्वस्थ वीर और उद्योगी होकर धनवान् होवें ॥५॥

'अथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः' यह पाद अ० २। ६। ५। में आया है॥

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्। मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६॥

भाषार्थः—(वंश) हे बांस तू (ऋतेन) अपने सत्य से (स्थूणाम्) थूनी [टेक वा खूंटी] पर (अधि रोह) चढ़ जा, और (उग्रः) दृढ़ वा प्रचंड होकर (विराजन्) विशेष रूप से प्रकाशित होता हुआ तू (शत्रून्) शत्रुओं को (अप वृङ्क्ष्व) दूर हटा दे। (शाले) हे शाला! (ते) तेरे (गृहाणाम्) घरों के (उपसत्तारः) रहने वाले पुरुष (मा रिषन्) दुःखी न होवें। (सर्ववीराः) सब वीरों को रखते हुए हम लोग (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं तक (जीवेम) जीते रहें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य अपने घर ऊंचे, दृढ़ और प्रकाशयुक्त बनावें जिससे चोर डाकू सिंहादि हिंसक और रोग न सता सकें तथा सब लोग स्वस्थ होकर वीर रहें ॥६॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरयुः ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इमाम्) इस [शाला] में (कुमारः) बालक, (आ) और (तरुणः) युवा, (आ) और (जगता सह) चलने वाले गौ आदि के साथ (वत्सः) बछड़ा, (आ) और (इमाम्) इस [शाला] में (परिस्रुतः) पिघलते हुए रस का (कुम्भः) घड़ा (दध्नः) दही के (कलशैः) कलशों के साथ (आ अगुः) आये हैं ॥७॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग सब प्रकार की आवश्यक सामग्री अपने घरों में रक्खें ॥७॥

पूर्णे नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८॥

भाषार्थः—(नारि) हे नर का हित करने वाली गृहपत्नी ! (एतम्) इस (पूर्णम्) पूरे (कुम्भम्) घड़े में से (अमृतेन) अमृत [हितकारी पदार्थ] से (संभृताम्) भरी हुई (घृतस्य) घी की (धाराम्) धारा को (प्र, भर=हर) अच्छे प्रकार ला । (इमाम्) इस [शाला] को और (पातॄन्) पानकर्ताओं वा रक्षकों को (अमृतेन) अमृत से (सम्) अच्छे प्रकार (अङ्ग्धि) पूर्ण कर । (इष्टापूर्तम्) यज्ञ और वेदों का अध्ययन, अन्नदानादि पुण्य कर्म (एनाम्) इस [शाला] की (अभि) सब ओर से (रक्षाति) रक्षा करे ॥८॥

भावार्थः—गृहपत्नी घर को घृत, दुग्ध आदि अमृत पदार्थों से परिपूर्ण रखकर सब कुटुम्बियों को स्वस्थ और पुष्ट रक्खे । और सब स्त्री पुरुष धार्मिक, पुरुषार्थी तथा धनी होकर चोर उचक्के सिंहादि दुष्टों स रक्षा करते हुए बस्ती को बसाये रक्खें ॥८॥

मनु भगवान् ने कहा है—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ मनु० ५।१५०॥

स्त्री सदा प्रसन्नचित्त और घर के कामों में चतुर हो और (सुसंस्कृतोपस्करया) घर की सामग्री बासन भांडे भली भांति ठीक रखती हुई, व्यय करने में हाथ सकोड़े रहे ॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥

भाषार्थः—(इमाः) इस (अयक्ष्माः) रोगरहित (यक्ष्मनाशनीः) रोगनाशक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अपः) जल को (प्र) अच्छे प्रकार (आ भरामि) मैं लाता हूं। (अमृतेन) मृत्यु से बचाने वाले अन्न, घृत, दुग्धादि सामग्री और (अग्निना सह) अग्नि के सहित (गृहान्) घरों में (उप = उपेत्य) आकर (प्र) अच्छे प्रकार (सीदामि) मैं बैठता हूं ॥६॥

भावार्थः—गृहपति रोगों से बचने और स्वास्थ्य बढ़ने के लिये अपने घर में शुद्ध जल, अग्नि आदि पदार्थों का सदा उचित प्रयोग करें ॥६॥

सूक्तम् १३ ॥

१—७॥ आपो देवताः। १—४, ५ अनुष्टुप्। ५, ६ त्रिष्टुप्।

अपां गुणा उपदिश्यन्ते—जल के गुणों का उपदेश ॥

यद्दः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥

भाषार्थः—(सिन्धवः) हे बहने वाली नदियो! (संप्रयतीः = संप्रयत्यः+यूयम्) मिलकर आगे बढ़ती हुई तुमने (अहौ हते) मेघ के ताड़े जाने पर (अदः) वह (यत्) जो (अनदत) नाद किया है। (तस्मात्) इसलिये (आ) ही (नद्यः) नाद करने वाली, नदी (नाम) नाम (स्थ) तुम हो, (ता = तानि) वह [वैसे ही] (वः) तुम्हारे (नामानि) नाम हैं ॥१॥

भावार्थः—जब मेघ आपस में टकराकर गरजकर बरसते हैं, तब वह जल पृथिवी पर एकत्र होकर नाद करता हुआ बहता है, इससे उसका नदी नाम है। इसी प्रकार वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति समझकर अर्थ करना चाहिये ॥१॥

अजमेर पुस्तक में 'संप्रयतिः' है हमने अन्य पुस्तकों से 'संप्रयतीः' पाठ लियाहै ॥

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जब (आत्) फिर (वरुणेन) सूर्य करके (प्रेषिताः) भेजे हुए तुम (शीभम्) शीघ्र (समवल्गत) मिलकर चलो, (तत्) तब (इन्द्रः) जीव ने [वा सूर्य ने] (यतीः) चलते हुए। (वः) तुमको (आप्नोत्) प्राप्त किया (तस्मात्) उससे (अनु) पीछे (आपः) प्राप्ति योग्य जल [नाम] (स्थन) तुम हो ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—इस मन्त्र में 'आप्नोत्' और 'आपः' शब्द एक ही धातु 'आप्लृ व्याप्तौ' से सिद्ध है। जब सूर्य की शक्ति से जल भूमि पर आकर फैलता है, तब जीव उसे पाता है, [और सूर्य भी फिर ले लेता है] इससे जल का नाम 'आपः' पाने योग्य वस्तु है। 'आपः' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त है ॥२॥

अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥३॥

भाषार्थः—(वः) वेगवान् वा वरणीय (इन्द्रः) जीव [वा सूर्य्य] ने (हि) ही (अपकामम्) व्यर्थ (स्यन्दमानाः) बहते हुए (वः) तुमको (शक्तिभिः) अपनी शक्तियों द्वारा (कम्) सुख से (अवीवरत) वरण [स्वीकार] अथवा, वारण [रोकना] किया, (तस्मात्) इससे (देवीः = देव्यः) हे दिव्य गुण वाली वा खेलवाली जल धाराओ ! (वः) तुम्हारा (नाम) नाम (वार्) वरण योग्य वा वारण योग्य जल (हितम्) रक्खा गया है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य भूमि पर अन्नादि के लिये और सूर्य्य आकाश में वृष्टि के लिये जल को चाहता है वा रोकता है, इसलिये जल का नाम 'वार्' है। 'अवीवरत' क्रिया और 'वार्' शब्द दोनों 'वृञ्' चाहना वा रोकना धातु से बनते हैं ॥३॥

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥

भाषार्थः—(एकः) अकेला (देवः) जयशील परमात्मा (यथावशम्) इच्छानुसार (स्यन्दमानाः) बहते हुए (वः) तुम्हारा (अपि अतिष्ठत्, अधिष्ठाता हुआ। (महीः = महत्यः) शक्ति वाले [आप जल] ने (इति) इस प्रकार (उत्+आनिषुः) ऊपर को श्वास ली, (तस्मात्) इस लिये (उदकम्) ऊपर को श्वास लेने वाला उदक वा जल (उच्यते) कहा जाता है ॥४॥

भावार्थः—ईश्वर की सामर्थ्य से सूर्य्य द्वारा, जल आकाश में चढ़ता है इस लिये 'उदक' जल का नाम है। 'उत् आनिषुः' और 'उदकम्' उत्+अन, श्वास लेना-धातु से बनते हैं ॥४॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —(आपः) जल (भद्राः) मंगलमय, और (आपः) जल (इत्) ही (घृतम्) घृत (आसन्) था। (ताः) वह (इत्) ही (आपः) जल (अग्नीषोमौ) अग्नि और चन्द्रमा को (बिभ्रति) पुष्ट करता है। (मधुपृचाम्) मधुरता से भरी [जल धाराओं] का (अरंगमः) परिपूर्ण मिलने वाला, (तीव्रः) तीव्र [तीक्ष्ण, शीघ्र प्रवेश होने वाला] (रसः) रस (मा) मुझ को (प्राणेन) प्राण और (वर्चसा सह) कान्ति वा बल के साथ (आ गमेत्) आगे ले चले ॥५॥

भावार्थः—जल से घृत सारमय पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जल अग्नि अर्थात् जठराग्नि, बिजुली, बड़वानल आदि और चन्द्र लोक से मिलकर हमें पुष्टि देता है और कृषि आदि में प्रयुक्त होकर अन्नादि उत्पन्न करके प्राणियों का बल और तेज बढ़ाता है ॥५॥

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥

भाषार्थः (आत्) तब (इत्) ही (पश्यामि) मैं देखता हूं, (उत) और (वा) अथवा (शृणोमि) मैं सुनता हूँ, (आसाम्) इसकी [जल के रस की] (घोषः) ध्वनि (मा) मुझे (आ गच्छति) आती है और (वाक्) वाक् शक्ति (मा) मुझे [आती है]। (हिरण्यवर्णाः) हे कमनीय पदार्थ वा सुवर्ण का विस्तार करने वाले [जल]। (तर्हि) तभी (अमृतस्य) अमृत का (भेजानः) भोग करता हुआ मैं (मन्ये) अपने को मानूं, (यदा) जब (वः) तुम्हारी (अतृपम्) तृप्ति मैंने पाई हो ॥६॥

भावार्थः—जल के यथावत् प्रयोग से प्राणी में दर्शन शक्ति और श्रवण शक्ति, और 'घोष' ध्वन्यात्मक शब्द और 'वाक्' वर्णात्मक शब्द बोलने की शक्ति होती है, और तभी वह इष्ट सुवर्णादि धन की प्राप्ति से भूख आदि से मृत्यु दुःख का त्याग करके अमृत अर्थात् आनन्द भोगता है ॥६॥

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥

भाषार्थः—(आपः) हे प्राप्ति के योग्य जल धाराओं! (इदम्) यह (वः) तुम्हारा (हृदयम्) स्वीकार योग्य हृदय वा कर्म है। (ऋतावरीः) हे सत्यशील [जल धाराओं!] (अयम्) यह (वत्सः) निवास देने वाला, आश्रय है। (शक्वरीः) हे शक्ति वालियो! (इत्थम्) इस प्रकार से (इह) यहाँ पर (आ इत) आओ, (यत्र) जहां (वः) तुम्हारे (इदम्) जल को (वेशयामि) प्रवेश करूं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—कृषि, यन्त्र, औषधादि में जल के यथायोग्य प्रयोग से प्राणियों को सुख मिलता है ॥७॥

सूक्तम् १४ ॥

१ ६ ॥ गावो देवताः । १-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ॥

गोरक्षोपदेशः— गोरक्षा का उपदेश ॥

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१॥

भाषार्थः —[हे गौओ !] (वः) तुम को (सुषदा) सुख से बैठने योग्य (गोष्ठेन) गोशाला से (सम्) मिलाकर (रय्या) धन से (सम्) मिलाकर और (सुभूत्या) बहुत सम्पत्ति से (सम्) मिलाकर और (अहर्जातस्य) प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले [प्राणी] का (यत् नाम) जो नाम है, (तेन) उस [नाम] से (वः) तुम को (सम्, सृजामसि = ०—मः) हम मिलाकर रखते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं को स्वच्छ नीरोग गोशाला में रखकर पालें, और उनको अपने धन और संपत्ति का कारण जानकर अन्य प्राणियों के समान उनके नाम बहुला, कामधेनु, नन्दिनी आदि रक्खे ॥१॥

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२॥

भाषार्थः—(वः) तुमको (अर्यमा) अरि अर्थात् हिंसकों का नियामक [गोपाल] (सम्) मिलाकर (पूषा) पोषण करने वाला [गृहपति] (सम्) मिलाकर और (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक [विद्वान् वैद्यादि पुरुष] (सम्) मिलाकर, और (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा, (यः धनंजयः) जो धनों का जीतने वाला है, (सम् सृजतु) मिलाकर रक्खे। (मयि) मुझमें (यत्) पूजनीय (वसु) धन को (पुष्यत) तुम पुष्ट करो ॥२॥

भावार्थः—सब प्रजागण और प्रजापालक राजा राज नियम से गौओं की वृद्धि करें जिससे कृषि, व्यापारादि द्वारा संसार में धन बढ़े ॥२॥

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्मिन् गोष्ठे, इस गोशाला में (संजग्माना:) मिलकर चलती हुई, (अबिभ्युषी:=०ष्य:) निर्भय रहती हुई, (करीषिणी:=०—ष्य:) गोबर करने वाली, (सोम्यम्) अमृतमय (मधु) रस (बिभ्रती:=०—त्य:) धारण करती हुई, (अनमीवा:) नीरोग तुम (उपेतन=उप, आ, इत) चली आओ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं को हिंसक जीवों से बचाकर नीरोग रक्खें जिससे वे रोगनाशक, अमृतमय दूध, घृत आदि पदार्थ देती रहें। गौ के मूत्र, गोबर, दूध आदि के गुण और प्रयोग बहुत हैं ॥३॥

शब्दकल्पद्रुम कोष में गौ के गुण वर्णन करते हुए कहा है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं सर्पिर्दधि च रोचना।
षड़ङ्गमेतन्मङ्गल्यं पवित्रं सर्वदा गवाम् ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, घी, दही और गोरोचना, गौओं के यह छह प्रकार के सर्वदा मङ्गलकारी शुद्ध पदार्थ हैं ॥

मनु भगवान् का वचन है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥मनु० ११।२१२॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशा का पानी, एक दिन [खावे] फिर एक दिन रात उपवास करे। यह कृच्छ्र सान्तपन कहाता है॥

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥

भाषार्थः -(गावः) हे गौओ! (इह एव) यहां ही (एतन) आओ (इहो=इह उ) यहां ही (शका इव) समर्था [गृहपत्नी] के समान (पुष्यत) पोषण करो। (उत) और (इह एव) यहां पर ही (प्रजायध्वम्) बच्चों से बढ़ो। (मयि) मुझ में (वः) तुम्हारा (संज्ञानम्) प्रेम (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—जैसे समर्थ गृहपत्नी घर वालों का पोषण करके प्रसन्न रखती हैं, ऐसे ही गौएं अपने दूध घी, आदि से अपने रक्षकों को पुष्ट और स्वस्थ करती हैं। इससे सब मनुष्य प्रीतिपूर्वक उनका पालन करें और उन का वंश बढ़ावें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकैव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५॥

भाषार्थः—(वः) तुम्हारी (गोष्ठः) गोशाला (शिवः) मङ्गलदायक (भवतु) होवे। (शारिशाका इव) शालि [साठी चावल] की शाखा [उपज] के समान (पुष्यत) पोषण करो। (उत) और (इह एव) यहां ही (प्रजायध्वम्) बच्चों से बढ़ो। (मया = अस्माभिः) अपने साथ (वः) तुमको (संसृजामसि = ० मः) हम मिलाकर रखते हैं ॥५॥

भावार्थः—जैसे 'शारि, शालि' साठी चावल की शाखा 'शाका' थोड़े प्रयत्न से साठ दिन में ही पक जाती है, वैसे ही मनुष्य यत्नपूर्वक थोड़े परिश्रम से पालन करके गौओं से दूध, घी, और खेती के लिये बैल आदि पाकर बहुत लाभ उठाते हैं ॥५॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६॥

भाषार्थः—(गावः) हे गौओं! (मया गोपतिना) मुझ गोपति से (सचध्वम्) मिली रहो। (इह) यहां (अयम्) यह (पोषयिष्णुः) पोषण करने वाली (वः) तुम्हारी (गोष्ठः) गोशाला है। (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (बहुलाः) बहुत पदार्थ देने वाली अथवा वृद्धि करने वाली (भवन्तीः) होती हुई और (जीवन्तीः) जीती हुई (वः) तुमको (जीवाः) जीते हुए हम लोग (उप) आदर से (सदेम) प्राप्त करते रहें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य गौओं की सेवा से दुग्ध, घृत, कृषि आदि की उन्नति करके बहुत काल तक जीते और सुख भोगते रहें ॥६॥

सूक्तम् १५ ॥

१—८ ॥ इन्द्रो देवता। १—६, त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप्, ८ पूर्वार्धोऽनुष्टुप्, द्वितीयार्धस्त्रिष्टुप् ॥

व्यापारलाभोपदेशः—व्यापार के लाभ का उपदेश ॥

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (वणिजम्) वणिक् को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चोदयामि) आगे बढ़ाता हूँ, (सः) वह (नः) हम में (एतु) आवे, और (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (अस्तु) होवे। (अरातिम्) वैरी, (परिपन्थिनम्) डाकू और (मृगम्) वनैले पशु को (नुदन्) रगेदता हुआ (सः) वह (ईशानः) समर्थ पुरुष (मह्यम्) मुझे (धनदाः) धन देने वाला (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य व्यापारकुशल पुरुष को अपना मुखिया बनाकर वाणिज्य और मार्ग की ऊंच नीच समझकर वाणिज्य में धन लगाने से लाभ उठाते हैं ॥१॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवयानाः) विद्वान् व्यापारियों के यानों रथादिकों के योग्य (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (द्यावापृथिवी=०—व्यौ) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं, (ते) वे [मार्ग] (पयसा) दूध से और (घृतेन) घी से (मा) मुझको (जुषन्ताम्) तृप्त करें, (यथा) जिससे (क्रीत्वा) मोल लेकर [व्यापार करके] (धनम्) धन (आहराणि) मैं लाऊं ॥२॥

भावार्थः—व्यापारी लोग विमान, रथ, नौकादि द्वारा आकाश, भूमि, समुद्र, पर्वत, आदि से देश देशान्तरों में जाकर अनेक प्रकार व्यापार करके मूलधन बढ़ावें और धनाढ्य होकर घर आव ॥२॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (इच्छमानः) [लाभ की] इच्छा करता हुआ मैं (इध्मेन) इन्धन और (घृतेन) घृत से (तरसे) तराने वाले वा जिताने वाले (बलाय) बल के लिए (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूं, (यावत्) जहाँ तक (ब्रह्मणा) ब्रह्म द्वारा [दी हुई] (इमाम्) इस (देवीम्) व्यवहार कुशल (धियम्) निश्चल बुद्धि की (वन्दमानः) वन्दना करता हुआ मैं (शतसेयाय) सैकड़ों उद्यम के लिए (ईशे) समर्थ हूं ॥३॥

भावार्थः—जैसे समिधा और घृतादि से अग्नि का तेज बढ़ कर अन्धकार हटाता है, वैसे ही मनुष्य सर्वोत्तम वेदविद्या को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करके सामर्थ्य भर वाणिज्य में उद्योग करके प्रभूत धन पावें और दरिद्रतादि को मिटावें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद म० ३ सू० १८ म० ३ में है ॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् । शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि सदृश तेजस्वी विद्वान् ! (नः) हमारी (इमाम्) इस (शरणिम्) पीड़ा को [उस मार्ग में] (मीमृषः) तूने सहा है (यम् दूरम् अध्वानम्) जिस दूर मार्ग को (अगाम) हम चले गये हैं । (नः) हमारा (प्रपणः) क्रय [मोल लेना] (च) और (विक्रयः) विक्री (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (प्रतिपणः) वस्तुओं का लौट फेर (मा) मुझ को (फलिनम्) बहुत लाभ वाला (कृणोतु) करे। (संविदानौ) एक मत होते हुए तुम दोनों [हम और तुम] (इदम हव्यम्) इस भेंट को (जुषेथाम्) सेवें । (नः) हमारा (चरितम्) व्यापार (च) और (उत्थितम्) उठान [लाभ] (शुनम्) सुखदायक (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विनयपूर्वक अपनी चूक मानकर विद्वानों की सम्मति से अपना सुधार करते हैं, वे व्यापार में अधिक लाभ उठाकर आनन्द पाते हैं ॥४॥

इस मन्त्र की प्रथम पंक्ति कुछ भेद से ऋ० म० १ सू० ३१ म० १६ में है ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ॥५॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहार कुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहने वाला मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूं, (तत्) वह धन (मे) मेरे लिये (भूयः) अधिक अधिक (भवतु) होवे, (कनीयः) थोड़ा (मा) न [होवे] । (अग्ने) हे अग्निसदृश तेजस्वी विद्वान् ! (सातघ्नः) लाभ नाश करने वाले (देवान्) मूर्खों को (हविषा) हमारी भक्ति द्वारा (निषेध) रोक दे ॥५॥

भावार्थः—नवशिक्षित व्यापारी बड़े बड़े व्यापारियों से लाभ हानि की रीतें समझकर अपने मूल धन को बढ़ाते रहें और कुव्यवहारियों के फंदे में न पड़ें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥६॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहारकुशल व्यापारियो ! (धनेन) मूल धन से (धनम्) धन (इच्छमानः) चाहता हुआ मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणम्) व्यापार (चरामि) चलाता हूं (तस्मिन्) उस [धन] में (मे) मुझे (प्रजापतिः) प्रजापालक (सविता) ऐश्वर्यवान् (सोमः) चन्द्र [समान शान्त स्वभाव] (अग्निः) अग्नि [समान तेजस्वी], (इन्द्रः) बड़ा समर्थ प्रधान पुरुष (रुचिम्) रुचि (आदधातु) देवे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम स्वभाव वाले अनुभवी पुरुषों की सम्मति से व्यापार में मन लगाकर लाभ के साथ मूल धन को बढ़ावें ॥६॥

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥

भाषार्थः—(होतः) हे दानशील ! (वैश्वानर) हे सब नरों के हितकारक, वा सब के नायक पुरुष ! (वयम्) हम लोग (नमसा) नमस्कार के साथ (त्वा) तुझको (उप) आदर से (स्तुमः) सराहते हैं । (सः=सः त्वम्) सो तू (नः) हमारी (प्रजासु) प्रजाओं पर, (आत्मसु) आत्माओं वा शरीरों पर (गोषु) गौओं पर और (प्राणेषु) प्राणों वा जीवनों पर (जागृहि) जागता रह ॥७॥

भावार्थः—व्यापारी लोग सर्वहितकारी, कर्मकुशल पुरुष को प्रधान बना कर अपने धनादि की रक्षा करें ॥७॥

विश्वाहा ते सदमिद् भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्तम धन वाले पुरुष ! (विश्वाहा=०—हानि) सब दिनों (ते) तेरे [उद्देश्य के] लिये (इत्) ही (सदम्) समाज को (भरेम) भरते रहें, (इव) जैसे (तिष्ठते) थान पर ठहरे हुए (अश्वाय) घोड़े को [घास अन्नादि भरते हैं] । (अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी विद्वान् ! (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से और (इषा) अन्न से (सम्) अच्छे प्रकार (मदन्तः) आनन्द करते हुए (ते) तेरे (प्रतिवेशाः) सन्मुख रहने वाले हम लोग (मा रिषाम) न दुःखी होवें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे मार्ग से आये घोड़े को अन्न घासादि से पुष्ट करते हैं, इसी प्रकार सब व्यापारी बड़ी बड़ी वणिक् मंडली बना कर प्रधान पुरुष की शक्ति बढ़ावें, जिससे सब लोग बहुत सा धन और अन्नादि पाकर आनन्द भोगें ॥८॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १६ ॥

१—७। वसिष्ठर्षिः। १ लिङ्गोक्तदेवताः, २—६ भगः, ७ उषाः। १ जगतीछन्दः। २, ३, ५—७ त्रिष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ॥

बुद्धिवर्धनाय प्रभातगीतिः—बुद्धि बढ़ाने के लिये प्रभाती गीत ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥

भाषार्थः—(प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) [पार्थिव] अग्नि को, (प्रातः) प्रातःकाल (इन्द्रम्) बिजुली वा सूर्य को, (प्रातः) प्रातःकाल (मित्रावरुणा=०—णौ) प्राण और अपान को, (प्रातः) प्रातःकाल (अश्विना) कामों में व्याप्ति रखने वाले माता पिता को (हवामहे) हम बुलाते है। (प्रातः) प्रातःकाल (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (पूषणम्) पोषण करने वाले (ब्रह्मणः) वेद, ब्रह्माण्ड, अन्न वा धन के (पतिम्) पति परमेश्वर को, (प्रातः) प्रातःकाल (सोमम्) ऐश्वर्य कराने वाले वा मथन किये हुए पदार्थ वा आत्मा [अपने बल] वा अमृत [मोक्ष, वा अन्न, दुग्ध, घृतादि] को (उत) और (रुद्रम्) दुःख नाशक वा ज्ञान दाता आचार्य को (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रातःकाल [सूर्य निकलने से छः घड़ी पहिले] परमेश्वर का ध्यान करता हुआ, मन्त्र में वर्णित पार्थिव और सौर अग्नि के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग आदि अन्य आवश्यक कर्मों का विचार करके आत्मा को बढ़ाता हुआ अपने कर्त्तव्य में लगे ॥१॥

यह पूरा सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद ७ । ४१ । १-७ और यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ३४-५० में है ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

भाषार्थः—(वयम्) हम (प्रातर्जितम्) प्रातःकाल में [अन्धकारादि को] जीतने वाले (भगम्) सूर्य [समान] (उग्रम्) तेजस्वी (पुत्रम्) पवित्र, अथवा बहुविधि से रक्षा करने वाले, अथवा नरक से बचाने वाले [परमेश्वर] को (हवामहे) बुलाते हैं, (यः) जो [परमेश्वर] (अदितेः) प्रकृति वा भूमि का (विधर्त्ता) धारण करने वाला और (यम्) जिस [परमेश्वर] को (मन्यमानः) पूजता हुआ (आध्रः) सब प्रकार धारण योग्य कंगाल, (चित्) भी, और (तुरः) शीघ्रकारी बलवान् (चित्) भी, और (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा (चित्) भी (इति) इस प्रकार (आह) कहता है, "(यम्) यश और (भगम्) धन को (भक्षि=अहं भक्षीय) मैं सेवूं" ॥२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य प्रातःकाल अन्धकार, आलस्यादि मिटाकर जीवों में नयी शक्ति देता है, ऐसे ही सब छोटे बड़े जीव और पृथिवी आदि लोक भी परमात्मा की शक्ति से अपनी अपनी शक्ति बढ़ाते हैं, उसी का धन्यवाद हम सब पिता पुत्रादि मिलकर गावें ॥२॥

'हवामहे' के स्थान पर ऋग्वेद और यजुर्वेद में 'हुवेम' पद है ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

भाषार्थः—(भग) हे भगवान् ! (प्रणेतः) हे बड़े नेता ! (भग) हे सेवनीय ! (सत्यराधः) हे सत्य धनी ! (भग) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (इमाम्) इस [वेदोक्त] (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देता हुआ तू (नः) हमारी (उत्) उत्तमता से (अवा) रक्षा कर । (भग) हे ज्योतिःस्वरूप ! (नः) हम को (गोभिः) गौओं से और (अश्वैः) घोड़ों से (प्र जनय) अच्छे प्रकार बढ़ा । (भग) हे शिव (नृभिः) नेता पुरुषों के साथ हम (नृवन्तः) नेता पुरुषों वाले होकर (प्र स्याम) समर्थ होवें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना और आज्ञा पालन करते और नेता वा वीर पुरुषों को अपनाते हैं, वे संसार में उन्नति करके यशस्वी और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

भाषार्थः—(उत) और (इदानीम्) इस समय (उत उत) और भी (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) मध्य (प्रपित्वे) पाये हुए [ऐश्वर्य] में हम (भगवन्तः) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें। (उत) और (मघवन्) हे महाधनी ईश्वर! (सूर्यस्य) सूर्य के (उदितौ) उदय में (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में (वयम्) हम (स्याम) रहें ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के अनुसार पाये हुए ऐश्वर्य को हम सब और आगे भी बढ़ावें, और जैसे सूर्य के उदय में प्रकाश बढ़ता जाता है वैसे ही देवताओं के अनुकरण से हम अपनी धार्मिक बुद्धि का अभ्युदय करें ॥४॥

'उदितौ' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'उदिता' है।

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

भाषार्थः—"(भगः) सेवनीय (देवः) विद्वान् विजयी पुरुष (एव) ही (भगवान्) भगवान् [भाग्यवान्, बड़े ऐश्वर्य वाला] (अस्तु) होवे" (तेन) इसी [कारण] से (वयम्) हम (भगवन्तः) भाग्यवान् (स्याम) होवें। (तम् त्वा) उस तुझ को, (भग) हे ईश्वर! (सर्वः=सर्वः अहम्) मैं सब (इत्) ही (जोहवीमि) बार बार पुकारता हूं। (सः=सः त्वम्) सो तू, (भग) हे शिव! (इह) यहां पर (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (भव) हो ॥५॥

भावार्थः—"सुकर्मी पुरुषार्थी पुरुष ही भाग्यवान् होवें" यह ईश्वर आज्ञा है, इस से सब लोग धार्मिक पुरुषार्थी होकर भाग्यवान् बनें। ईश्वर ही अपने ध्यानी आज्ञापालकों का मार्गदर्शक होता है ॥५॥

'देवः, जोहवीमि' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'देवा, जोहवीति' पद हैं ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - (उषसः) उषायें [प्रभात वेलायें] (अध्वराय) मार्ग देने के लिए, अथवा हिंसारहित यज्ञ के लिए (सम् नमन्त = ०—न्ते) झुकती हैं, (दधिक्रावा इव) जैसे चढ़ाकर चलने वाला, वा हींसने वाला घोड़ा (शुचये, शुद्ध [अचूक] (पदाय) पद रखने के लिये। (वाजिनः) अन्नवान् वा बलवान् वा ज्ञानवान् (अर्वाचीनम्) नवीन नवीन और (वसुविदम्) धन प्राप्त कराने वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (मे) मेरे लिये (आ वहन्तु) लावें (अश्वाः इव) जैसे घोड़े (रथम्) रथ को [लाते हैं] ॥६॥

भावार्थः—जैसे उषा देवी अन्धकार हटाकर मार्ग खोलती चलती है अथवा, जैसे बली और वेगवान् घोड़ा अपने अश्ववार वा रथको मार्ग चलकर ठिकाने पर शीघ्र पहुंचाता है, इसी प्रकार पुरुषार्थी पुरुष बड़े बड़े महात्माओं के सत्सङ्ग और अनुकरण से अपना ऐश्वर्य बढ़ाते रहें ॥६॥

'मे' के स्थान पर ऋग् और यजुर्वेद में 'नः' पद है ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न ॥७॥

भाषार्थः — (अश्ववतीः = ० त्यः) उत्तम उत्तम घोड़ों वाली, (गोमतीः) उत्तम उत्तम गौओं वाली, (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों वाली और (भद्राः) मङ्गल करने वाली (उषासः = उषसः) उषायें (नः सदम्) हमारे समाज पर (उच्छन्तु) चमकती रहें। (घृतम्) घृत [सार पदार्थ] को (दुहानाः) दुहते हुए और (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) भरे हुए (यूयम्) तुम [वीर पुरुषो!] (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके अपने घरों को घोड़ों, गौओं और वीर पुरुषों से भरे रक्खें, और सब मिलकर तत्त्व ग्रहण करके सदा परस्पर रक्षा करें ॥७॥

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः' यह पाद प्रायः ऋग्वेद मण्डल ७ के सब सूक्तों के अन्त में है ॥

सूक्तम् १७ ॥

१—९ ॥ कृषीवला देवताः । १ गायत्री; २, ५, ९ त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः, ४, ६, ८ अनुष्टुप्; ७ पुर उष्णिक्छन्दः ॥

कृषिविद्योपदेशः—खेती की विद्या का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥

भाषार्थः—(धीराः) धीर (कवयः) बुद्धिमान् [किसान] लोग (देवेषु) व्यवहारी पुरुषों पर (सुम्नयौ) सुख पाने [की आशा] में (सीरा=सीराणि) हलों को (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं, और (युगा=युगानि) जुओं को (पृथक्) अलग अलग करके [दोनों ओर] (वि तन्वते) फैलाते हैं ॥१॥

भावार्थः—जैसे किसान लोग खेती करके अन्य पुरुषों को सुख पहुँचाते और आप सुखी रहते हैं, इसी प्रकार सब मनुष्यों को परस्पर उपकारी होकर सुख भोगना चाहिये ॥१॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥

भाषार्थः—(विराजः) हे शोभायमान [किसानो !] (सीरा=सीराणि) हलों को (युनक्त) जोड़ो, (युगा=युगानि) जूओं को (वितनोत) फैलाओ, और (कृते) बने हुए (योनौ) खेत में (इह) यहां पर (बीजम्) बीज (वपत) बोओ। (श्नुष्टिः) [तुम्हारी] अन्न की उपज (नः) हमारे लिये (सभराः) भरी पूरी (असत्) होवे, (सृण्यः) हंसुये वा दरांत (इत्) भी (पक्वम्) पके अन्न को (नेदीयः) अधिक निकट (आ यवन्) लावें ॥२॥

भावार्थः—चतुर किसान यथाविधि खेत जोत कर उत्तम बीज आदि साधनों से उत्तम अन्न आदि पाते हैं, इसी सिद्धान्त पर विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य सेवन से यथावत् क्रिया के साथ बलवान् बुद्धिमान् और आयुष्मान् सन्तान उत्पन्न करते हैं देखो—श्रीमद्दयानन्दकृत संस्कारविधि गर्भाधान प्रकरण ॥२॥

यह मन्त्र कुछ पद भेद से ऋ० १० । १०१ । ३ और य० १२ । ६८ में है ॥

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु । उदिद् वपतु गामधं
प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(पवीरवत्) अच्छे फाले वाला (सुशीमम्) बहुत सुख देने वाला, और (सोमसत्सरु=सोमसत्+रु, यद्वा, स—ऊम, उम वा,+सत्सरु) ऐश्वर्य युक्त व अमृत युक्त मूठ वाला, अथवा रस्सी वाला और मूठ वाला (लाङ्गलम्) हल (इत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही (अविम्) रक्षा करने वाली, और (पीवरीम्) वृद्धि वाली (गाम्) भूमि को (च) और (प्रस्थावत्) प्रस्थान वा चढ़ाई के योग्य और (प्रफर्व्यम्) शीघ्र गति वाले (रथवाहनम्) रथयान [गाड़ी] को (उत्) उत्तमता से (वपतु) उत्पन्न करे ॥३॥

भावार्थः—उत्तम साधनों से खेती में अधिक धान्य उत्पन्न होता है उस से राज्य की और अश्व, बैल आदि की वृद्धि से राजा और प्रजा सुख भोगते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ शब्दभेद से यजुर्वेद १२ । ७१ में है ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) भूमि जोतने वाला (सीताम्) हल की रेखा [जुती-धरती] को (नि) नीचे (गृह्णातु) दबावे, (पूषा) पोषण करने वाला [किसान] (ताम्) उस [जुती धरती] की (अभिरक्षतु) सब ओर से रखवाली करे । (सा) वह (पयस्वती) पानी से भरी [जुती धरती] (नः) हम को (उत्तराम्—उत्तराम्) उत्तम उत्तम (समाम्) अनुकूल क्रिया से (दुहाम्) भरती रहे ॥४॥

भावार्थः—किसान बीज बोने के पीछे जुती धरती को पटेले से चौरस करके रक्षा करे और यथासमय पानी देता रहे जिससे खेतों में ठीक ठीक उपज होवे ॥४॥

यह मंत्र कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ७ में है और इसका उत्तरार्ध अ० ३ । १० । १ । में आ चुका है ॥४॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥

भाषार्थः—(सुफालाः) सुन्दर फाले (शुनम्) सुख से (भूमिम्) भूमि को (वि तुदन्तु) जोतें । (कीनाशाः) क्लेश सहने वाले किसान (वाहान् अनु) बैलादि वाहनों के पीछे पीछे (शुनम्) सुख से (यन्तु) चलें । (हविषा) जल से (तोशमाना = तोषमानौ) सन्तुष्ट करने वाले (शुनासीरा = ०—रौ) हे पवन और सूर्य तुम दोनों ! (अस्मै) इस पुरुष के लिए (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलवाली (ओषधीः) जौ, चावल आदि औषधियां (कर्तम्) करो ॥५॥

भावार्थः चतुर किसान लोग उत्तम कृषिशस्त्रों, उत्तम बैल आदिकों और पानी आदि की सुधि रखने से उत्तम अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, इसी प्रकार विद्वान् लोग विद्याबल से अनेक शिल्पों का आविष्कार करके संसार को सुख पहुंचाते और आप सुख भोगते हैं ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ८ और य० १२ । ६९ में है ॥

यजुर्वेद अ० २२ म० २२ में वर्णन है—

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ॥

कामना के अनुसार ही हमारे लिए मेह बरसे, हमारे लिए उत्तम फल वाली जौ आदि ओषधियां पकें ॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥६॥

भाषार्थः—(वाहाः) बैल आदि पशु (शुनम्) सुख से रहें । (नरः) हांकने वाले किसान (शुनम्) सुख से रहें । । (लाङ्गलम्) हल (शुनम्) सुख से (कृषतु) जोते । (वरत्राः) हल की रस्सियां (शुनम्) सुख से (बध्यन्ताम्) बांधी जावें । (अष्ट्राम्) पैना [आर वा कांटे] को (शुनम्) सुख से (उत् इङ्गय) ऊपर चला ॥६॥

भावार्थः—किसान लोग सब सामग्री उत्तम रीति से बनाकर रखने से अपने सब काम सुख से चलावें ॥६॥

मन्त्र ६—८ कुछ भेद से ऋ० ४ । ५७ । ४ – ६ में है ।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥७॥

भाषार्थः—(शुनासीरा=०—रौ) हे वायु और सूर्य तुम दोनों ! (इह स्म) यहां पर ही (मे) मेरी [विनय] (जुषेथाम्) स्वीकार करो, (यत् पयः) जो जल (दिवि) आकाश में (चक्रथुः) तुम दोनों ने बनाया है, (तेन) उससे (इमाम्) इस [भूमि] को (उप सिञ्चतम्) सींचते रहो ॥७॥

भावार्थः—पवन और सूर्य के द्वारा पृथिवी का जल आकाश में जाकर फिर पृथिवी पर बरसता है, वह खेती के लिए बहुत उपयोगी होता है ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से निरु० ९ । ४१ में भी है ।

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सीते) हे जुती धरती ! [लक्ष्मी, खेती] (त्वा) तेरी (वन्दामहे) हम वन्दना करते हैं, (सुभगे) हे सौभाग्यवती [बड़े ऐश्वर्य वाली] (अर्वाची) हमारे सन्मुख (भव) रह, (यथा) जिससे तू (नः) हमारे लिए (सुमनाः) प्रसन्न मन वाली (असः) होवे, और (यथा) जिससे (नः) हमारे लिए (सुफला) सुन्दर फल वाली (भुवः) होवे ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य खेती को मन लगा करके चौकसी रक्खे जिससे अन्नवान् और धनवान् होकर सदा आनन्द भोगें ॥८॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९॥

भाषार्थः—(घृतेन) घी से और (मधुना) मधु [शहद] से (समक्ता) यथाविधि सानी हुई (सीता) जुती धरती (विश्वैः) सब (देवैः) व्यवहार कुशल (मरुद्भिः) विद्वान् देवताओं करके (अनुमता) अङ्गीकृत है। (सीते) हे जुती धरती ! (सा) सो (ऊर्जस्वती) बलवती और (घृतवत्) घृतयुक्त [अन्न आदि] से (पिन्वमाना) सींचती हुई तू (पयसा) दूध के साथ (नः) हमारे (अभ्याववृत्स्व) सब ओर से सन्मुख वर्तमान हो ॥९॥

भावार्थः—चतुर किसान युक्ति से बीज में वा धरती में घी और मधु आदि मिलाकर धान्य आदि को पुष्ट और मधुर बनावें, जैसे क्रिया विशेष से, माली लोग आम, दाख, केसर, फूल आदि को उत्तम बनाते और मनुष्य उत्तम सन्तान उत्पन्न करते हैं ॥९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० १२ म० ७० में है ॥

सूक्तम् १८ ॥

१—६ ॥ ऋषिः—इन्द्राणी। देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम्। १—५ अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ॥

उपनिषत्सपत्नीबाधनोपदेशः—ब्रह्मविद्या की सपत्नी अविद्या के नाश का उपदेश ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

भाषार्थः—(वीरुधाम्) उगती हुई लताओं [सृष्टि के पदार्थों] में (इमाम्) इस (बलवत्तमाम्) बड़ी बल वाली (ओषधिम्) रोगनाशक ओषधि [ब्रह्मविद्या] को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(खनामि) मैं खोदता हूँ, (यया) जिस [ओषधि] से [प्राणी] (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (बाधते) हटाता है, और (यया) जिससे (पतिम्) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (संविन्दते) यथावत् पाता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मविद्या परिश्रमपूर्वक प्राप्त करें। ईश्वर ज्ञान से ही विज्ञान बढ़कर मिथ्या ज्ञान का नाश होकर परम ऐश्वर्य वा मोक्ष मिलता है ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १०। १४५। १—६ में है। अजमेर वैदिक यन्त्रालय की ऋग्वेदसंहिता, मोहमयी [मुम्बई] की शाकलऋक्संहिता, और ऋग्वेदीय सायणभाष्य में "उपनिषत्सपत्नीबाधनम्" इस सूक्त का देवता लिखा है, इससे इस सूक्त में ब्रह्मविद्या का ही उपदेश है ॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥

भाषार्थः—(उत्तानपर्णे) हे विस्तृत पालन वाली ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (देवजूते) हे विद्वानों करके प्राप्त की हुई ! (सहस्वति) हे बलवती [ब्रह्मविद्या] ! (मे) मेरी (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (परा नुद) दूर हटा दे और (पतिम्) सर्वरक्षक वा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (मे) मेरा (केवलम्) सेवनीय (कृधि) कर ॥२॥

भावार्थः—अनन्यवृत्ति पुरुष ब्रह्मविद्या से अविद्या को हटाकर आनन्दस्वरूप जगदीश्वर को जान कर आनन्द भोगता है ॥२॥

नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥

भाषार्थः—[हे सपत्नी अविद्या] (ते) तेरा (नाम) नाम (नहि) कभी नहीं (जग्राह) मैंने लिया है, (अस्मिन्) इस (पतौ) जगत् पति परमेश्वर में (नो) कभी नहीं (रमसे) तू रमण करती है। (पराम्) वैरिनि (सपत्नीम्) विरोध डालने वाली [अविद्या] को (परावतम् एव) बहुत दूर ही (गमयामसि) हम पहुंचाते हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अविद्या का मान नहीं करके अविद्या रहित सर्वविद्यायुक्त परमात्मा का ध्यान करते, और अविद्या को हटाकर सत्यज्ञान पाते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्त॑रा॒हमु॑त्तर॒ उत्त॒रेदुत्त॑राभ्यः ।

अ॒धः स॒पत्नी॒ या ममाध॑रा॒ साध॑राभ्यः ॥४॥

भाषार्थः—(उत्तरे) हे अति उत्तम [ब्रह्मविद्या] (अहम्) मैं [प्रजा] (उत्तरा) अधिक उत्तम [भूयासम् = हो जाऊं], (उत्तराभ्यः) अन्य उत्तम [पशु आदि प्रजाओं] से (इत्) तो (उत्तरा) अधिक उत्तम [प्रजा अस्मि = प्रजा हूँ] (मम) मेरी (या) जो (अधरा) नीच (सपत्नी) विरोधिनी [अविद्या है], (सा) वह (अधराभ्यः) नीच [विपत्तियों] से (अधः) नीची है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सब पशु आदि प्राणियों से उत्तम है, इससे वह सब उत्तम विद्याओं में परम उत्तम ब्रह्मविद्या प्राप्त करके सर्वोत्कृष्ट होवे, और सब विपत्तियों वा क्लेशों के मूल अविद्या को निकालता रहे ॥४॥

भगवान् पतञ्जलि का वचन है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनूविच्छिन्नोदाराणाम् ॥यो.द. २।३,४॥

१—(अविद्या) मिथ्याज्ञान २—(अस्मिता) अहंकार, ३—(राग) राग, वा तृष्णा, ४—(द्वेष) द्वेष वा घृणा, और ५—(अभिनिवेश) शरीर से प्रीति वा मरण से भय, यह पांच क्लेश हैं ॥

अविद्या पिछले चार [अस्मिता आदि] का खेत है, चाहे वे १—सोते हुए २—सूक्ष्म, ३—दबे हुए, वा ४—फैले हुए हों ॥

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मा॒नाथो॒ त्वम॑सि सास॒हिः ।

उ॒भे सह॑स्वती भू॒त्वा स॒पत्नीं॑ मे सहावहै ॥५॥

भाषार्थः—[हे विद्या] (अहम्) मैं (सहमाना) जयशील [प्रजा] (अस्मि) हूं, (अथो) और (त्वम्) तू भी (सासहिः = ससहिः) जयशील (असि) है। (उभे) दोनों हम [तू और मैं] (सहस्वती = ० - त्यौ) जयशील (भूत्वा) होकर (मे) मेरी (सपत्नीम्) विरोधिनी [अविद्या] को (सहावहै) जीत लें ॥५॥

भावार्थः—योगी जन ब्रह्मविद्या में एकवृत्ति होकर अविद्या को जीतकर आनन्द भोगते हैं ॥५॥

अ॒भि तेऽधां॒ सह॑माना॒मुप॑ तेऽधां॒ सही॑यसीम् ।

मामनु॒ प्र ते॒ मनो॑ व॒त्सं गौरि॑व धावतु प॒था वारि॑व धावतु ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे जीव !] (ते) तेरे लिए (सहमानाम्) प्रबल [अविद्या] को (अभि=अभिभूय) हराकर (अधाम्) मैंने रक्खा है, और (ते, तेरे लिये (सहीयसीम्) अधिक प्रबल [ब्रह्मविद्या] को (उप) आदर से (अधाम्) मैंने रक्खा है, सो (ते मनः) तेरा मन (माम् अनु) मेरे पीछे पीछे [योगी के स्वरूप में] (प्रधावतु) दौड़ता रहे और (धावतु) दौड़ता रहे, (गौः इव) जैसे गौ (वत्सम्) अपने बछड़े के पीछे, और (वाः इव) जैसे जल (पथा) अपने मार्ग से [दौड़ता है] ॥६॥

भावार्थः—योग वृत्तियों के निरोध से अविद्या को जीतकर स्वरूप अर्थात् अपनी और परमात्मा की शक्ति को जानकर परोपकार में आगे बढ़ता है, जैसे स्वभाव से गो अपने छोटे बच्चे के पीछे दौड़ती फिरती है और पानी नीचे मार्ग से समुद्र को चला जाता है ॥६॥

भगवान् पतञ्जलि ने कहा है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ यो० द० १।२, ३ ॥

योग चित्त की वृत्तियों का रोकना है ॥१॥
तब देखने वाले को अपने रूप में चित्त का ठहराव होता है ॥२॥

सूक्तम् १९ ॥

१—८ ॥ पुरोहितो देवता । १, २, ४ अनुष्टुप्, ३ पूर्वार्धस्त्रिष्टुप्, द्वितीयोऽनुष्टुप् ५ त्रिष्टुप् ६, उद्धर्षन्तां मघवन् इति त्रिष्टुप्, पृथग् घोषा इत्यनुष्टुप्, ७ पूर्वार्धोऽनुष्टुप्, द्वितीयस्त्रिष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ॥

युद्धविद्याया उपदेशः—युद्धविद्या का उपदेश ॥

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये [इन वीरों को] (इदम्) यह (ब्रह्म) वेदज्ञान वा अन्न वा धन (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया गया है, और (वीर्यम्) वीरता और (बलम्) सेना दल (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया गया है, (संशितम्) यथाविधि सिद्ध किया हुआ (क्षत्रम्) राज्य (अजरम्) अटल (अस्तु) होवे, (येषाम्) जिनका मैं (जिष्णुः) विजयी (पुरोहितः) पुरोहित अर्थात् प्रधान (अस्मि) हूँ ॥१॥

भावार्थः—सेनापति राजा विद्या, अन्न, और धन आदि की यथावत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि करके अपने वीरों और सेना का उत्साह बढ़ाता रहे, जिससे राज्य चिरस्थायी हो ॥१॥

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥

भाषार्थः (अहम्) मैं (एषाम्) इन [अपने वीरों] के (राष्ट्रम्) राज्य (ओजः) शारीरिक बल, (वीर्यम्) वीरता और (बलम्) सेना दल को (सम्) भले प्रकार (संस्यामि) जोड़ता हूँ। (अहम्) मैं (शत्रूणाम्) शत्रुओं की (बाहून्) भुजाओं को (अनेन) इस (हविषा) अन्न वा आवाहन से (वृश्चामि) काटता हूं ॥२॥

भावार्थः - राजा सत्कारपूर्वक अपने वीरों को, सामाजिक शारीरिक और 'हविषा' आर्थिक दशा के सुधार से, सन्तुष्ट रखकर शत्रुओं का नाश करे ॥२॥

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥

भाषार्थः—वे [शत्रु] (नीचैः) नीचे (पद्यन्ताम्) गिरें और (अधरे) नीचे (भवन्तु) रहें, (ये) जो (नः) हमारे (मघवानम्) धनी (सूरिम्) सूरमा राजा पर (पृतन्यान्) सेना चढ़ावें। (अहम्) मैं (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से (अमित्रान्) शत्रुओं को (क्षिणामि) मारे डालता हूँ और (स्वान्) अपने लोगों को (उन्नयामि) ऊंचा करता हूं ॥३॥

भावार्थः—सैनिक लोग ललकार कर वैरियों पर धावा करके मार गिरावें, और राजा उन अपने वीरों को ऊंची २ पदवी देवें ॥३॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४॥

भाषार्थः—वे वीर (परशोः) परसे [कुल्हाड़ी] से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण, (अग्नेः) अग्नि से (तीक्ष्णतराः) अधिक तीक्ष्ण (उत) और (इन्द्रस्य) मेघ के (वज्रात्) वज्र [बिजुली] से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं, (येषाम्) जिनका मैं (पुरोहितः) पुरोहित वा मुखिया (अस्मि) हूं ॥४॥

भावार्थः- सेनापति अपनी सेना का आत्मबल बढ़ावे। आत्मबल से अस्त्र शस्त्र आदि की अपेक्षा अधिक कार्य सिद्ध होता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषामहमायुधा सं स्यम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवे ३ षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (एषाम्) इन [वीरों] के (आयुधा=०—नि) हथियारों को (संस्यामि) जोड़ता हूं [दृढ़ करता हूं], (एषाम्) इनके (सुवीरम्) साहसी वीरों वाले (राष्ट्रम्) राज्य को (वर्धयामि) बढ़ाता हूं, (एषाम्) इनका (क्षत्रम्) क्षत्रियपन (अजरम्) अजर [अटल] और (जिष्णु) विजयी (अस्तु) होवे। (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य [विजयी, कमनीय, वा प्रशंसनीय धार्मिक] गुण (एषाम्) इनके (चित्तम्) चित्त को (अवन्तु) तृप्त करें ॥५॥

भावार्थः—चतुर सेनापति अपने योधाओं के बाण [तोप, तुपक, धनुषादि,] तरवारि, शक्ति, भाले आदि अस्त्र शस्त्र धनुर्वेद की रीति से दृढ़ बनवावे, और प्रसिद्ध वीरों का पद बढ़ाकर उत्साह बढ़ावे ॥५॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः । पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे बड़े धनी राजन् ! (वाजिनानि) सेना दल (उत् हर्षन्ताम्) मन को ऊंचा उठावें और (जयताम्) जीतते हुए (वीराणाम्) वीरों का (घोषः) जयजयकार वा सिंहनाद (उत् एतु) ऊंचा उठे।

(उलुलयः) जलाने वालों के जलाने वाले, (केतुमन्तः) ऊंचे झण्डा वाले (घोषाः) जयजयकार शब्द (पृथक्) नाना रूप में (उत् ईरताम्) ऊपर चढ़ें।

(इन्द्रज्येष्ठाः) इन्द्र प्रतापी पुरुष को ज्येष्ठ वा स्वामी रखने वाले (मरुतः) शूर (देवाः) जय चाहने वाले देवता लोग (सेनया) सेना के साथ (यन्तु) चलें ॥६॥

भावार्थः—समस्त सेनादल बड़ी उमंग से व्यूह बनाकर नानारूप में मारू बाजे गाजे के साथ "जय जय" करते हुए आगे बढ़ें और सब दलपति लोग प्रधान सेनापति की आज्ञानुसार अपनी २ टुकरी लेकर धावा करें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद १०।१०३।१० और यजुर्वेद १७।४२ में है ॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(नरः) हे नरो (प्र इत) धावा करो, (जयत) जीतो। (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजायें (उग्राः) प्रचण्ड [कट्टर] (सन्तु) होवें। (तीक्ष्णेषवः) हे तीखे बाण वाले! (उग्रायुधाः) हे कट्टर हथियारों वाले (उग्रबाहवः) हे कट्टर भुजाओं वाले वीरों! (अबलधन्वनः) निर्बल धनुष वाले (अबलान्) निर्बल [शत्रुओं] को (हत) मारो ॥७॥

भावार्थः—'प्रेता जयता' पदों में दीर्घत्व उत्साह के लिए है। सेनापति की आज्ञा से सब सैनिक लोग उमंग के साथ मारू बजाते गाते धावा करके तुच्छ वैरियों को मारें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद १०। १०३। १३। और यजुर्वेद १७।४६ में है।

अव॑सृष्टा॒ परा॑ पत॒ शर॑व्ये॒ ब्रह्म॑संशिते।
जया॒मित्रा॒न् प्र प॑द्यस्व ज॒ह्ये॑षां॒ वरं॑वरं॒ मामीषां॑ मोचि॒ कश्च॒न ॥८॥

भाषार्थः—(ब्रह्मसंशिते) हे ब्रह्माओं, वेदवेत्ताओं से प्रशंसित वा यथावत् तीक्ष्ण की हुई (शरव्ये) बाण विद्या में चतुर सेना! (अवसृष्टा) छोड़ी हुई तू (परा) पराक्रम के साथ (पत) झपट। (अमित्रान्) वैरियों को (जय) जीत, (प्र पद्यस्व) आगे बढ़, (एषाम्) इनमें से (वरंवरम्) एक एक बड़े वीर को (जहि) मार डाल, (अमीषाम्) इनमें से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥८॥

भावार्थः—धर्मज्ञ और युद्ध विद्या में कुशल आचार्यों से शिक्षा पाकर सेना के स्त्री पुरुष सेनापति की आज्ञा पाते ही उमंग से धावा करके शत्रुओं को मार गिरावें ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ६।७५। १६। और यजुर्वेद १७। ४५। में है॥

सूक्तम् २०॥

१—१०॥ १, २, ५, अग्निर्देवता, अन्यत्र मन्त्रोक्ता देवताः। १—५, ७, ९, १० अनुष्टुप् ६ पङ्क्तिः, ८ जगती॥

ब्रह्मज्ञानोपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तो अरो॑चथाः।
तं जा॒नन्न॑ग्न॒ आ रो॒हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम् ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष! (अयम्) यह [सर्वव्यापी परमेश्वर] (ते) तेरा (ऋत्वियः) सब ऋतुओं [कालों] में मिलने वाला (योनिः) कारण है, (यतः) जिससे (जातः) प्रकट होकर (अरोचथाः) तू प्रकाशमान हुआ है, (तम्) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[योनि] को (जानन्) पहिचान कर (आ रोह) ऊंचा चढ़, (अथ) और (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन (वर्धय) बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता से हमें बड़ा समर्थ और उपकारी मनुष्य देह दिया है। ऐसा जानकर हम अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ३। २९। १०। और यजुर्वेद ३। १४ और १२। ५२ एवं १५। ५६। में है ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष! (अच्छ) अच्छे प्रकार से (इह) यहां पर (नः) हमसे (वद) बोल, और (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष होकर (नः) हमारे लिए (सुमनाः) प्रसन्न मन (भव) हो। (विशाम् पते) हे प्रजाओं के रक्षक! (नः) हमें (प्र यच्छ) दान दे, (त्वम्, तू (नः) हमारा (धनदाः) धन दाता (असि) है ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों से विद्या ग्रहण करके संसार में ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥२॥

मन्त्र २-७ ऋग्वेद म० १० सू० १४१ म० १-५ में कुछ भेद से हैं। यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ९ मन्त्र २८ में है ॥

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥

भाषार्थः—(अर्यमा) वैरियों का नियन्ता वीर पुरुष, (प्र) अच्छे प्रकार (भगः) ऐश्वर्यवान् धनी पुरुष (प्र) अच्छे प्रकार, और (बृहस्पतिः) बड़ी बड़ी विद्याओं का स्वामी, प्रधान आचार्य (प्र) अच्छे प्रकार (नः) हमें (देवीः) दिव्य शक्तियां (प्र यच्छतु) प्रदान करे। (उत) और (सूनृता) प्रिय सत्य वाणी (देवी) देवी [दिव्य गुण वाली] (मे) मुझे (रयिम्) ऐश्वर्य (प्र) अच्छे प्रकार (दधातु) देवे ॥३॥

भावार्थः मनुष्य, विशेष गुणी आचार्यों से विशेष शिक्षाएं पाकर, सत्यवादी सत्यकर्मी होकर ऐश्वर्यवान् होवें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ९। २९। में है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥

भाषार्थः—(अवसे) रक्षा के लिए (गीर्भिः) स्तुतियों से (सोमम्) ऐश्वर्य के कारण, (राजानम्) सबके शासक (अग्निम्) विद्वान् (आदित्यम्) बड़े दीप्यमान, (विष्णुम्) सबमें व्यापक, (सूर्यम्) सबके चलाने वाले, (ब्रह्माणम्) सबमें बड़े वेद प्रकाशक ब्रह्मा (च) और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के रक्षक बृहस्पति [परमेश्वर वा मनुष्य] को (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्य जगदीश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के ज्ञान और बड़े लोगों के आश्रय से अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ९ । २६ में है ॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! [परमेश्वर वा पुरुष] (अग्निभिः) विद्वानों के द्वारा (त्वम्) तू (नः) हमारे (ब्रह्म) वेद ज्ञान वा ब्रह्मचर्य (च) और (यज्ञम्) यज्ञ [१—विद्वानों के पूजन, २—पदार्थों के संगतिकरण, और ३—विद्यादि के दान] को (वर्धय) बढ़ा, (देव) हे दानशील, ! (त्वम्) तू (नः) हममें से (दातवे) दानशील पुरुष को (दानाय) दान के लिए (रयिम्) धन (चोदय) भेज ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के ज्ञान से अपना ज्ञान और कर्मकौशल्य बढ़ावें और उपकारी कामों में आप सहायक बनें और दूसरों को सहायक बनावें ॥५॥

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥६॥

भाषार्थः—(उभौ) दोनों (सुहवा = ०—वौ) सुख से बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) सूर्य और पवन [के समान स्त्री पुरुष] को (इह इह) यहाँ पर ही (हवामहे) हम बुलाते हैं, (यथा) जिससे (सर्वः इत्) सभी (जनः) जने (नः) हमारी (संगत्याम्) संगति में (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, (च) और (नः) हमारी (दानकामः) दान के लिए कामना (भुवत्) होवे ॥६॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष प्रयत्न करके घर में और सभा में परस्पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोपकारी, प्रसन्न चित्त, धार्मिक और धर्मकार्यों में दानशील हों, जैसे सूर्य अपने प्रकाश और वृष्टि आदि से और पवन अपने चेष्टादान और शीघ्र-गमन आदि से असंख्य लाभ पहुँचाते हैं ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ३३ । ८६ में है ॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (अर्यमणम्) वैरियों के रोकने वाले राजा, (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के रक्षक गुरु और (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष और (वातम्) पवन, (विष्णुम्) यज्ञ, (च) और (वाजिनम्) वेग वाले, वा अन्नवाले, वा बलवाले (सवितारम्) लोकों के चलाने वाले सूर्य से (सरस्वतीम्) विज्ञानों के भंडार सरस्वती, वेद विद्या को (दानाय) दान के लिये (चोदय) प्रवृत्त कर ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर भक्त (अर्यमा) राजा वा सेनापति, (बृहस्पति) प्रधान आचार्य और (इन्द्र) दण्डनेता वा कोषाध्यक्ष आदि अधिकारी अपने २ पदों पर दृढ़ रह कर पवन, सूर्य, अग्नि, जल, पृथिवी आदि अद्भुत पदार्थों द्वारा वेदविज्ञान फैलावें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद अ० ९ म० २७ में है ॥

मनु महाराज ने लिखा है—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु० १२ । १०० ॥

वेद शास्त्र का जानने वाला पुरुष, सेनापति के पद, राजा के पद, और दण्ड दाता के पद और सब लोगों पर आधिपत्य [चक्रवर्त्ति राज्य] के योग्य होता है ॥७॥

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥

भाषार्थः—(वाजस्य) बल के (प्रसवे) उत्पत्ति में (नु) ही (संबभूविम) हम समर्थ हुए हैं, (च) और (इमा = इमानि) यह (विश्वा = विश्वानि) सब (भुवनानि) लोक (अन्तः) [उसी के] भीतर हैं, (प्रजानन्) ज्ञानवान् ईश्वर (अदित्सन्तम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने की इच्छा न करने वाले से (उत) भी (दापयतु) दिलावे। (च) और [हे ईश्वर] (नः) हमें (सर्ववीरम्) सर्ववीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छ) दे ॥८॥

भावार्थः—सब चराचर जगत् अन्न के आश्रित ठहरा है। सर्वज्ञ परमेश्वर अदानी पुरुषों को भी सुपात्रों के लिये दान शक्ति देवे, और हमें और हमारे वीरों को धनी बनावे ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद १९। २५ वा २४ में है॥

दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम्।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥

भाषार्थः—(पञ्च) फैली हुई [वा पांच] (प्रदिशः) उत्तम दान क्रियायें [वा प्रधान दिशायें] (मे) मेरे लिये (उर्वीः) फैली हुई शक्तियों को (यथाबलम्) यथाशक्ति (दुहाम्) भरती रहें, (दुहाम्) भरती रहें। (मनसा) मन [मनन शक्ति] से (च) और (हृदयेन) हृदय [ग्रहण शक्ति] से (सर्वाः) सब (आकूतीः) संकल्पों को (प्र, आपेयम्) मैं पाता रहूं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या आदि के दान से अपना सामर्थ्य बढ़ावें और सब दिशाओं से उत्तम गुण प्राप्त करें तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन [ध्यान देकर विचार] से अपने मनोरथ सिद्ध करें ॥९॥

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

भाषार्थः—(गोसनिम्) गोलोक [गौओं वा स्वर्ग] की देने वाली (वाचम्) वाणी को (उदेयम्) मैं बोलूं। [हे ईश्वर! (वर्चसा) तेज के साथ (मा=माम्) मेरे ऊपर (अभ्युदिहि) सब ओर से उदय हो। (वायुः) प्राण वायु [मुझको] (सर्वतः) सब प्रकार से (आ रुन्धाम्) घेरे रहे। (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर वा सूर्य (मे) मेरे लिए (पोषम्) पोषण (दधातु) देता रहे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर के ध्यान से सत्यवादी और सत्यकर्मी होकर अपने प्राणों को वश में रक्खे और पुरुषार्थी होकर सूर्य से वृष्टि द्वारा अपना पोषण प्राप्त करे ॥१०॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २१ ॥

१—१० ॥ १—७ अग्नयो देवताः, ८—१० मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १—४, ७, ८ त्रिष्टुप्, ५ जगती; ६, ९ १० अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरस्य गुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

भाषार्थः—(ये) जो (अग्नयः) अग्नियाँ [ईश्वर के तेज] (अप्सु अन्तः) जल के भीतर, (ये) जो (वृत्रे) मेघ में, (ये) जो (पुरुषे) पुरुष [मनुष्य शरीर] में और (ये) जो (अश्मसु) शिलाओं में हैं। (यः) जिस [अग्नि] ने (ओषधीः) औषधियों [अन्न, सोम लता आदि] में, और (यः) जिसने (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [वृक्ष आदि] में (आ विवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्म समर्पण] (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—इस सूक्त में गुणों के वर्णन से गुणी परमेश्वर का ग्रहण है, अर्थात् जिस परमेश्वर की शक्ति से समुद्र में बड़वानल, मेघ में बिजुली, मनुष्य में अन्न पाचक अग्नि और पत्थर में चकमक, ओषधियों में फलपाक अग्नि आदि अद्भुत उपकारी शक्तियाँ वर्त्तमान हैं, उनके प्रेरक परमेश्वर को हमारा प्रणाम है ॥१॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो [अग्नि] (सोमे) सोम [चन्द्र, अमृत वा दूध, घी, आदि] के (अन्तः) भीतर, (यः) जो (गोषु अन्तः) गौ आदि पालतू पशुओं में, (यः) जो (वयःसु) पक्षियों में और (यः) जो (मृगेषु) बनैले जीवों में (आविष्टः) प्रविष्ट है, और (यः) जिसने (द्विपदः) दोपायों, और (यः) जिसने (चतुष्पदः) चौपायों में (आविवेश) प्रवेश किया है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः जो अग्नि चन्द्रमा में सूर्य से है और जो सोमलता वा दूध आदि में रस पकाकर पौष्टिक बनाता है, और जो प्राणियों में वेग, बलवत्ता, जंगलीपन, और अन्य विशेषता का कारण है, उस अग्नि के संयोजक, वियोजक परमात्मा को हमारा नमस्कार है ॥२॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवः) प्रकाशमान वा जय चाहने वाला [अग्नि] (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शूर के साथ (सरथम्) एक रथ पर चढ़कर (याति) चलता है, और [जो हमारे] (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी, (उत) और [जो शत्रु का] (विश्वदाव्यः) सब कुछ जलाने वाला है, और (यम्) जिस (सासहिम्) विजयी [अग्नि] को (पृतनासु) संग्रामों में (जोहवीमि) वारंवार आवाहन करता हूं, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के तेज को हृदय में धारण करके साहसी शूर आग्नेय अस्त्र-शस्त्रधारी सेना के द्वारा शत्रुओं को शीघ्र जीत लेता है, उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥३॥

यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवः) प्रकाशमान अग्नि, [वैरियों में] (विश्वात्) सबका खाने वाला है, (यम्) जिसको (उ) ही (कामम्) कमनीय वा कामना पूरी करने वाला (आहुः) लोग कहते हैं, (यम्) जिसको (दातारम्) देने वाला और (प्रतिगृह्णन्तम्) लेने वाला (आहुः) बताते हैं। (यः) जो (धीरः) पुष्टि करने वाला, (शक्रः) शक्तिमान् (परिभूः) सर्वव्यापक और (अदाभ्यः) न दबने योग्य है, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को विद्वान् लोग आनन्ददाता और प्रार्थना का मानने वाला जानते हैं, और जिसके ध्यान से पुरुषार्थी लोग शत्रुओं को जीतते हैं, उसको हमारा प्रणाम है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥

भाषार्थः—(त्रयोदश) तेरह [दो कान, दो नथनें, दो आंखें और एक मुख यह सात शिर के, और दो हाथ, दो पद, एक उपस्थेन्द्रिय, और एक गुदास्थान, यह छः शिर के नीचे के] (भौवनाः) भुवनों से संबन्ध वाले प्राणी, और (पञ्च) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांच तत्त्व] से संबन्ध वाले (मानवाः) मनुष्य (मनसा) मनन शक्ति से (वर्चोधसे) तेज धारण कराने वाले और (सूनृतावते) प्रिय सत्य वाणी वाले (यशसे) यश के लिये (यम्) जिस (त्वा) तुझ [अग्नि] को (होतारम्) दानी (अभि) सब प्रकार (संविदुः) ठीक ठीक जानते हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥५॥

भावार्थः—सब शरीरधारी उस परमपिता की महिमा विचारपूर्वक गाकर तेजस्वी, सत्यवादी और यशस्वी होते हैं, उसको यह हमारा नमस्कार है ॥५॥

'पञ्च मानवाः' शब्द 'पञ्चजनाः' शब्द का पर्यायवाची है जिसका अर्थ "मनुष्य" है—निघ० २ । ३ । उसकी व्याख्या, निरु० ३ । ८ में इस प्रकार की है "पञ्च जनाः···गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस, ऐसा कोई २ मानते हैं, चारों वर्ण और निषाद पाँचवां, यह औपमन्यव ऋषि का मत है निषाद किस लिये, इसमें पाप स्थित है ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

भाषार्थः—(उक्षान्नाय) प्रबलों के अन्नदाता, (वशान्नाय) वशीभूत निर्बल प्रजाओं के अन्नदाता, (सोमपृष्ठाय) अमृत सींचने वाले और (वेधसे) उत्पन्न करने वाले (तेभ्यः) उन [चार प्रकार के] (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः) सब नरों के हितकारी [परमेश्वर] को प्रधान रखने वाले (अग्निभ्यः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—जिस (वैश्वानर) सब मनुष्य आदि के हितकारी परमेश्वर की शक्ति से सब प्राणी पुष्ट होते हैं, उसको हमारा नमस्कार है ॥६॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋग्वेद ८ । ४३ । ११ में है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वातें अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जो [तेज] (दिवम्) सूर्यलोक में, (पृथिवीम्) पृथिवी में और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (अनु) लगातार और (विद्युतम्) बिजुली में (अनुसंचरन्ति) लगातार चलते रहते हैं, (ये) जो (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर और (ये) जो (वाते अन्तः) पवन के भीतर हैं, (तेभ्यः) उन (अग्निभिः) अग्नियों [ईश्वर तेजों] को (एतत्) यह (हुतम्) दान [आत्मसमर्पण] (अस्तु) होवे ॥७॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के तेज सब लोकों, सब पदार्थों और सब दिशाओं में हैं, उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥७॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८॥

भाषार्थः—(हिरण्यपाणिम्) सूर्य आदि तेजों से स्तुति किये हुए (सवितारम्) सबके प्रेरक (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक (वरुणम्) सबमें श्रेष्ठ, (मित्रम्) हितकारी (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर से (विश्वान्) सब (देवान्) विजय कराने वाले (अङ्गिरसः) ज्ञानों वा पुरुषार्थों को (हवामहे) हम मांगते हैं (इमम्) इस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (अग्निम्) अग्नि [समान दुःख] को (शमयन्तु) वे शान्त कर दें ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर के अनुपम गुणों का अनुभव करके पुरुषार्थी बनें और अग्नि समान तापकारी और शरीरशोषक दुःखों का नाश करें ॥८॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९॥

भाषार्थः—(क्रव्यात्) मांस खाने वाला (अग्निः) अग्नि [समान तापकारी दुःख] (शान्तः) शान्त हो । (पुरुषरेषणः) पुरुषों का सताने वाला [कष्ट] (शान्तः) शान्त हो । (अथो) और भी (यः) जो (विश्वदाव्यः) सब [सुखों] का जलाने वाला है (तम्) उस (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले [अग्निरूप दुःख] को (अशीशमम्) मैंने शान्त कर दिया है ॥९॥

भावार्थः—दूरदर्शी पुरुष विघ्नों को हटाकर आप सुखी रहते और सब को सुखी रखते हैं ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आपः उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥

भाषार्थः—(ये) जो (पर्वताः) पहाड़ (सोमपृष्ठाः) सोम [अमृत अर्थात् ओषधि वा जल] को पीठ पर रखने वाले हैं, [उन्होंने और] (उत्तानशीवरीः) ऊपर को मुख करके सोने वाले [सूर्य की ओर चढ़ने वाले] (आपः) जल, (वातः) पवन, (पर्जन्यः) मेघ, (आत्) और (अग्निः) अग्नि, (ते) उन सब ने (क्रव्यादम्) मांस भक्षक [अग्नि रूप दुःख] को (अशीशमन्) शान्त कर दिया है॥१०॥

भावार्थः मनुष्य प्रयत्न करें कि सोमलता आदि औषध उत्पन्न करने वाले पर्वत, जल, वायु, मेघ, अग्नि आदि सब पदार्थ शुद्ध रहकर सुखदायक होवें ॥१०॥

सूक्तम् २२ ॥

१—६ ॥ विश्वे देवा देवताः । १,३ त्रिष्टुप्, २, ४—६ अनुष्टुप् ॥

कीर्त्तिप्राप्त्युपदेशः—कीर्ति पाने के लिये उपदेश ॥

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥

भाषार्थः—(हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल से युक्त (बृहत्) बड़ा (यशः) यश (प्रथताम्) फैले, (यत्) जो (अदित्याः) अदीन वेद वाणी वा प्रकृति के (तन्वः) विस्तार से (संबभूव) उत्पन्न हुआ है, (तत्) सो (एतत्) यह [यश] (मह्यम्) मुझ को (सजोषाः) समान प्रीति वाली (अदितिः) अखण्ड वेदवाणी वा प्रकृति और (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान गुणों ने (सर्वे) सर्वव्यापक विष्णु भगवान् में (सम्) ठीक प्रकार से (अदुः) दिया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वेद विद्या और प्रकृति के यथावत् ज्ञान से (जिस सब का केन्द्र परमेश्वर है) हाथी आदि का सामर्थ्य पाकर यशस्वी होता है। म० ६ देखो ॥१॥

भगवान् पतञ्जलि का वचन है—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ यो० द० ३ । २३ ॥

बलों में [संयम करने से] हाथी के से बल हो जाते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥

भाषार्थः (मित्रः) सबका मित्र, (च) और (वरुणः) अति श्रेष्ठ (च) और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (च) और (रुद्रः) ज्ञानदाता वा दुःखनाशक परमेश्वर (चेतत्तु) चेताता रहे, और (ते) वे [प्रसिद्ध] (विश्वधायसः) सब जगत् के पोषण करने वाले (देवासः = देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि] (मा) मुझ को (वर्चसा) तेज वा बल से (अञ्जन्तु) कान्ति वाला करें ॥२॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष परमेश्वर की महिमा को जानें और विज्ञान-पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेकर तेजस्वी और यशस्वी होवें ॥२॥

येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३॥

भाषार्थः— (येन) जिस (वर्चसा) तेज से (हस्ती) हाथी, और (येन) जिस [तेज] से (राजा) ऐश्वर्यवान् राजा (मनुष्येषु) मनुष्यों और (अप्सुअन्तः) जल और अन्तरिक्ष के भीतर (संबभूव) पराक्रमी हुआ है, और (येन) जिस [तेज] से (देवाः) देवताओं [महात्मा पुरुषों] ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया है, (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! (तेन वर्चसा) उस तेज से (माम्) मुझको (अद्य) आज (वर्चस्विनम्) तेजस्वी (कृणु) कर ॥३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष हाथी आदि पशुओं, और पूर्वज शूरवीर ऋषि महात्माओं के बुद्धि बल का अनुभव करके (अद्य) आज अर्थात् शीघ्र उपाय से जल, यज्ञ, और आकाश में, (अग्नि) परमेश्वर की भक्ति के साथ अपनी गति बढ़ावें और अग्नि के समान तेजस्वी होकर संसार में कीर्तिमान् होवें ॥३॥

योगेश्वर पतञ्जलि का वचन है—

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ यो० द० १ । २१ ॥

[समाधि लाभ] उग्र अच्छे वेगवालों के समीप होता है ॥

यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (जातवेदः) उत्पन्न संसार के ज्ञान वाले परमेश्वर ! (ते) तेरे लिये (आहुतेः) आहुति [आत्मदान] से [हमारा] (वर्चः) तेज (बृहत्) बड़ा (भवति) होता है, (यावत्) जितना (वर्चः) तेज वा बल (आसुरस्य) प्राणियों वा मेघों के हितकारक सूर्यस्य) सूर्य का (च) और (हस्तिनः) हाथी का है, (तावत्) उतना (वर्चः) तेज वा बल (मे) मेरे लिये (पुष्करस्रजा—०-जौ) पोषण देने वाले (अश्विना=०—नौ) माता पिता वा सूर्य्य चन्द्रमा (आधत्ताम्) सब प्रकार देवें ॥४॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष माता पिता की सुशिक्षा और सूर्य चन्द्रमा के समान नियम से परमेश्वर की आज्ञा पालन में मन लगाकर अपना बल बढ़ावें और सूर्य आदि दूरस्थ और हाथी आदि पृथिवीस्थ पदार्थों का बल, विज्ञान द्वारा जानकर उन्नति करें ॥ ४॥

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ।।५॥

भाषार्थः—(यावत्) जितनी दूर (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) महादिशायें हैं, और (यावत्) जितनी दूर (चक्षुः) आंख [दर्शन शक्ति] (समश्नुते) फैलती है, (तावत्) वहां तक (मयि) मुझमें (तत्) वह (हस्तिवर्चसम्) हाथी के बल वाला (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य (समैतु) आकर मिले ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य सब पार्थिव और दिव्य पदार्थों के यथावत् ज्ञान से सामर्थ्य बढ़ा कर उन्नति करें ॥५॥

हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् । ६॥

भाषार्थः—(हि) क्योंकि (सुषदाम्) सुखसे चढ़ने योग्य (मृगाणाम्) पशुओं में (हस्ती) हाथी (अतिष्ठावान्) प्रतिष्ठा वाला (बभूव) हुआ है, (तस्य) उसके (भगेन) सेवनीय (वर्चसा) कान्ति से (अहम्) मैं (माम्) अपने को (अभिषिञ्चामि) भले प्रकार सींचूं [शुद्ध करूं] ॥६॥

भावार्थः—जैसे हाथी में अन्य पशुओं से अधिक बुद्धि बल होता है, वैसे ही प्रधान पुरुष अन्य पुरुषों से अधिक बुद्धिबल वाला होवे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २३ ॥

१—६ ॥ माता देवता । १—४ अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः, ६ पूर्वार्धस्त्रिष्टुप्, उत्तरार्धोऽनुष्टुप् ।

वीरसन्तानोत्पादनोपदेशः—वीर सन्तान उत्पन्न करने के उपदेश ॥

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि । १॥

भाषार्थः—[हे स्त्री] (येन) जिस कारण से तू (वेहत्) बन्ध्या [बांझ] (बभूविथ) हुई है, (तत्) उस कारण को (त्वत्) तुझसे (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं । (इदम् = इदानीम्) अभी (तत्) उस को (त्वत्) तुझसे (अन्यत्र) और कहीं (दूरे) दूर (अप = अपहृत्य) हटा कर (निदध्मसि = ०—ध्मः) हम रखते हैं ॥१॥

भावार्थः—सद्वैद्य पुत्रेष्टि यज्ञ करके ओषधि द्वारा बाँझपन मिटा कर वीर सन्तान उत्पन्न करते हैं, देखो—श्रीमद् दयानन्दकृत संस्कार विधि—गर्भाधान प्रकरण ॥१॥

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२॥

भाषार्थः—[हे सुभगे] (पुमान्) रक्षा करने वाला, पराक्रमी (गर्भः) गर्भ (ते) तेरे (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे, (बाणः इव) जैसे बाण (इषुधिम्) तूणीर [तीरों के थैले] में । (अत्र) इस घर में (दशमास्यः) दश महीने तक पुष्ट हुआ, (ते) तेरा (वीरः) वीर, (पुत्रः) कुलशोधक बालक (आ जायताम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न हो ॥२॥

भावार्थः—वधू और वर यथाविधि ब्रह्मचारी रहकर युक्त आहार विहार करके सन्तान उत्पन्न करें, जिससे गर्भ अवश्य स्थिर रहे और पूर्ण रीति से पुष्ट होकर वीर सन्तान उत्पन्न हो ॥२॥

यहां पर अथर्ववेद का० १ सू० ११ मन्त्र ६ का मिलान करो ।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णन है—

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ऋ० ५।७८।९॥

(मातरि अधि) माता के गर्भ में जो (कुमारः) बालक (दश मासान्) दश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीनों तक (शशयानः) सोता रहा है, वह (जीवः) जीता हुआ (अक्षतः) घाव से रहित (जीवः) जीव (जीवन्त्याः अधि) जीवती हुई माता से (निरैतु) बाहिर आवे।

श्री सायणाचार्य ने यह मन्त्र इस प्रकार श्लोक में लिखा है—

दश मासानुषित्वासौ जननीजठरे सुखम्।
निर्गच्छतु सुखं जीवो जननी चापि जीवतु॥ऋ०।सा०भा०।५।७८।९।

(जननीजठरे) माता के पेट में (सुखम्) सुख से (दश मासान्) दस महीनों तक (उषित्वा) सोकर (असौ जीवः) वह जीव (निर्गच्छतु) बाहिर आवे, (च) और (जननी अपि) माता भी (जीवतु) जीवित रहे ॥२॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥३॥

भाषार्थः—[हे वधू] (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) बहुरक्षक, वीर सन्तान (जनय) उत्पन्न कर, (तम् अनु) उसके पीछे (पुमान्) रक्षा करने वाला वीर बालक (जायताम्) उत्पन्न होवे,। (जातानाम्) उत्पन्न हुए (पुत्राणाम्) नरक से बचाने वाले सन्तानों की (माता) माननीय माता (भवासि) हो, (च) और [उनकी भी] (यान्) जिनको (जनयाः) तू उत्पन्न करे ॥३॥

भावार्थः - माता पिता ब्रह्मचर्य और इष्ट भोजन, छादन, व्यायाम आदि से प्रयत्न करें कि उनके सब पुत्र पुत्री सदैव पराक्रमी उत्पन्न होवें और माता पिता तथा संसार की सेवा करके 'पुमान्' रक्षक बने रहें ॥३॥

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥४॥

भाषार्थः—(च) और (यानि) जैसे (भद्राणि) मङ्गलदायक (बीजानि) बालकों को (ऋषभाः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि लोग, अथवा, ऋषभ ओषधि के रस (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं, (तैः) वैसे ही [सन्तानों] के साथ (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुलशोधक वा बहुरक्षक बालक को (विन्दस्व) प्राप्त कर, (सा = सा त्वम्) सो तू (प्रसूः) जनने वाली (धेनुका) दूध पिलाने वाली माता [अथवा दुधैल गौ के समान] (भव) हो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े लोगों से ब्रह्मचर्य विद्या और ओषधि विद्या प्राप्त करके बली धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न करें। और बलवती माता अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों को अपना दूध पिला कर बलवान् करे, जैसे गौ दूध पिला कर बच्चे को पुष्ट बनाती है ॥४॥

शब्दकल्पद्रुम कोष में ऋषभ औषध को मधुर, शीतल, रक्तपित्तविकारनाशी वीर्य श्लेष्मकारी, और दाहज्वरहारी लिखा है ॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भं एतु ते । विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ।।५॥

भाषार्थः—(ते) तेरे लिये (प्राजापत्यम्) सन्तान रक्षक कर्म [गर्भाधान, पुंसवनादि संस्कार] (कृणोमि) मैं करता हूं, (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (योनिम्) गर्भाशय में (आ एतु) आवे । (नारि) हे नर की हितकारिणी ! (त्वम्) तू (पुत्रम्) कुलशोधक सन्तान (विन्दस्व) प्राप्त कर (यः) जो (तुभ्यम्) तुझको (शम्) सुख-दायक (असत्) होवे, (उ) और (त्वम्) तू (तस्मै) उसको (शम्) सुख दायक (भव) हो ॥५॥

भावार्थः—सब मनुष्य वैद्यक शास्त्र के अनुसार उचित काल में उचित रीति से अमोघ गर्भाधानादि संस्कार करके सन्तान उत्पन्न करें, जिससे उस सन्तान का जन्म, आप उसको और माता पिता सबको सुखदायक हो ॥५॥

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव । तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥६॥

भाषार्थः—(यासाम् वीरुधाम्) जिन उगने वाली अन्नादि ओषधियों का (द्यौः) सूर्य (पिता) पालने वाला, (पृथिवी) पृथिवी (माता) उत्पन्न करने वाली, और (समुद्रः) समुद्र [जल] (मूलम्) जड़ (बभूव) हुआ है, (ताः) वे (देवीः) दिव्य गुणवाली (ओषधयः) औषधें (पुत्रविद्याय) सन्तान पाने के लिये (त्वा) तेरी (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थः—अन्न आदि अनेक ओषधियां सूर्य द्वारा वृष्टि और प्रकाश पाकर पृथिवी और जल के संयोग से उत्पन्न होती हैं, उनमें से उत्तम २ बलवर्धक ओषधों के उचित खान पान से माता पिता उत्तम सन्तान उत्पन्न करें ॥६॥

सूक्तम् २४ ॥

१—७ ॥ प्रजापतिर्देवता । १, ३—७ अनुष्टुप्, २ पङ्क्तिः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान्यसमृद्धिकर्मोपदेशः—धान्य बढ़ाने के कर्म का उपदेश ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥१॥

भाषार्थः—(ओषधयः) ओषधियां, चावल जौ आदि वस्तुएं (पयस्वतीः = ०—त्यः) सारवाली होवें, और (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (पयस्वत्) सार वाला होवे। (अथो) और भी (अहम्) मैं (पयस्वतीनाम्) सारवाली [ओषधियों] का (सहस्रशः) सहस्रों प्रकार से (आ) यथा विधि (भरे) धारण करूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यापूर्वक अन्न आदि पदार्थों को उत्तम बनावें और दृढ़ सत्य वचन बोलें। ऐसा करने से शारीरिक और आत्मिक उन्नति होती है ॥१॥

मनु महाराज का वचन है—

उद्भिजाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ मनु० १ । ४६ ॥

भूमि को फोड़कर उपजने वाले, और बीज वा शाखा से उगने वाले सब वृक्ष हैं, फल पाक के साथ नष्ट होने वाली और बहुत फूल फल वाली ओषधियां [चावल, जौ आदि] हैं ॥१॥

वेदाहं पयस्वन्तं चकारं धान्यं बहु । संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो यो अयज्वनो गृहे ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (पयस्वन्तम्) सार वाले परमेश्वर को (वेद) जानता हूं। (बहु) बहुत सा (धान्यम्) धान्य (चकार) उसने उत्पन्न किया है। (यः) जो (देवः) दानशील ईश्वर (संभृत्वा) यथावत् पोषक (नाम) नाम (अयज्वनः) यज्ञ न करने वाले के (गृहे) घर में (योयः = यस्-यः) गति वाला है, (तम्) उस [परमात्मा] का (वयम्) हम (हवामहे) आवाहन करते हैं ॥२॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राणी उस उत्तम पदार्थों के भण्डार परमात्मा को जानता है जो अनेक अन्न उपजा कर [धर्मात्माओं का तो क्या कहना है] पापियों तक के घर भोजन पहुंचाता है। हम उसकी उपासना नित्य किया करें ॥२॥

शेखसादी शीराजी ने अपनी पुस्तक पुष्पवाटिका [गुलिस्तां] में इस मन्त्र का आशय इस प्रकार दिखलाया है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐ करीमे कि अज खजानै गैब । गन्नो तर्सा वजीफा खुरदारी ॥१॥

दोस्तां रा कुजा कुनी महरूम् । तो कि वा दुश्मनां नजरदारी ॥२॥"

हे ऐसे उदार कि तू गुप्त कोष के विरोधी और नास्तिक को पेटियां खिलाता है । मित्रों को तू कब निराश करे, जब कि तू द्वेषियों पर आंख रखता है ॥

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३॥

उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥४॥

भाषार्थः –(इमाः) यह (याः) जो (मानवीः = ०—व्यः) मानुषी (पञ्च) पांच भूत [पृथिवी आदि] से सम्बन्ध वाली (कृष्टयः) प्रजायें (पञ्च प्रदिशः) पांच फैली हुई दिशाओं में हैं, वे प्रजायें (शापम्) अनिष्ट वा मलिनता हटा कर (इह) यहां पर (स्फातिम्) बढ़ती को (समावहान्) यथावत् लावें, और (नदीः इव नद्यः इव) जैसे नदियां (वृष्टे) बरसने पर [अनिष्ट वा मलिनता हटा कर] (शतधारम्) सैकड़ों धाराओं वाले और (सहस्रधारम्) सहस्रों विधि से धारण करने वाले, (अक्षितम्) अक्षय (उत्सम्) सींचने के साधन [झरना, कूप आदि] को (उत् = उदावहन्ति) निकालती हैं (एव = एवम्) ऐसे ही (अस्माक = अस्माकम्) हमारा (इदम्) यह (धान्यम्) धान्य (सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से धारण करने वाला और (अक्षितम्) अक्षय [होवे] ॥३, ४॥

भावार्थः—मनुष्य खेती व्यापार आदि द्वारा पूर्वादि चार दिशाओं और ऊपर नीचे की दिशा [वायु मण्डल वा पाताल] से बहुत धन प्राप्त करें और अनेक प्रयोगों से उसकी यथावत् वृद्धि करें, जैसे बरसा का जल नदियों में एकत्र होकर और झरनों, कूपों, नालियों से खेती आदि में पहुंच कर दरिद्रता आदि मिटा कर संसार को लाभ पहुंचाता है ॥३, ४॥

मन्त्र ३ व ४ युग्मक छन्द है ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५॥

भाषार्थः—(शतहस्त) हे सैकड़ों हाथों वाले ! [मनुष्य !] [धान्य को—म० ४] (समाहर) बटोर कर ला, और (सहस्रहस्त) हे सहस्रों हाथों वाले (सम्) अच्छे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार से (किर) फैला। (च) और (कृतस्य) किये हुए और (कार्यस्य) कर्तव्य कर्म की (स्फातिम्) बढ़ती को (इह) यहां पर (समावह) मिलकर ला ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य सैकड़ों तथा सहस्रों प्रकार से कर्मकुशल होकर, और सहस्रों कर्मकुशलों से मिल कर धन धान्य एकत्र करे और उत्तम कर्मों में व्यय करके आगा पीछा सोच कर सदैव उन्नति करता रहे ॥५॥

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभिमृशामसि ॥६॥

भाषार्थः— (तिस्रः) तीन (मात्राः) मात्रायें [भाग] (गन्धर्वाणाम्) विद्या वा पृथिवी धारण करने वालों की, और (चतस्रः) चार (गृहपत्न्याः) गृहपत्नी [घर की पालन शक्ति] की [होवें], (तासाम्) उन सब [मात्राओं] में से (या) जो (स्फातिमत्तमा) अत्यन्त समृद्धि वाली है, (तया) उस [मात्रा] से (त्वा) तुझको (अभि) सब ओर से (मृशामसि = ०—मः) हम छूते [संयुक्त करते] हैं ॥६॥

भावार्थः—सब कुटुम्बी लोग जो धन धान्य कमावें उसमें से उत्तम अधिकांश अनदेखे विपत्ति समय के लिए प्रधान पुरुष को सौंपें, और शेष के सात भाग करके तीन भाग विद्यावृद्धि और राजप्रबन्ध आदि और चार भाग सामान्य निर्वाह खान पान वस्त्र आदि में व्यय करें। यह वैदिक शिक्षा सब मनुष्यों के सुख का मूल है ॥६॥

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
तावि॒हा व॑हतां स्फा॒तिं ब॒हुं भू॒मान॒मक्षि॑तम् ॥७॥

भाषार्थः—(प्रजापते) हे प्रजापालक गृहस्थ! (उपोहः) योग [प्राप्ति] (च) और (समूहः) संग्रह [क्षेम वा रक्षा] दोनों (च) निश्चय करके (ते) तेरे (क्षत्तारौ) क्षत्रिय [क्षति वा हानि से बचाने वाले] हैं। (तौ) वे दोनों (इह) यहां पर (स्फातिम्) बढ़ती और (बहुम्) बहुत (अक्षितम्) अचूक (भूमानम्) अधिकाई (आ वहताम्) लावें ॥७॥

भावार्थः - गृहस्थ लोग पुरुषार्थ करके विद्या, धन, धान्य आदि जीवन सामग्री की १—प्राप्ति, २—रक्षा और ३—वृद्धि वा ऋद्धि सिद्धि करके आनन्द भोगें ॥७॥

यजुर्वेद में आया है—

योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ य० २२।२२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारा (योगक्षेमः) योग-अप्राप्त वस्तु का लाभ, और क्षेम-प्राप्त पदार्थ की रक्षा (कल्पताम्) समर्थ अर्थात् पर्याप्त होवे ॥

सूक्तम् २५ ॥

१—६ ॥ कामो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

अविद्यानाशेन विद्यालाभोपदेशः—अविद्या के नाश से विद्या की प्राप्ति का उपदेश ।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१॥

भाषार्थः—[हे अविद्या !] (उत्तुदः) तेरा उखाड़ने वाला [विद्वान्] (त्वा) तुझको (उत् तुदतु) उखाड़ दे । (स्वे शयने) अपने शयन स्थान [हृदय] में (मा धृथाः) मत ठहर । (कामस्य) सुकामना का (या) जो [तेरे लिये] (भीमा) भयानक (इषुः) तीर है, (तया) उससे (त्वा) तुझको (हृदि) हृदय में (विध्यामि) बेधता हूं ॥१॥

भावार्थः सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यादि तपोबल द्वारा अविद्या को हृदय से मिटावें, जैसे शूर वीर योद्धा शत्रु सेना को अस्त्र शस्त्रों से मार गिराता है ॥१॥

इस सूक्त में स्त्रीलिङ्ग शब्द अविद्या और विद्या के लिए आये हैं । पहले तीन मन्त्र अविद्यापरक, और पिछले तीन विद्यापरक हैं । अलङ्कार से अविद्या को दुःखदायिनी और विद्या को सुखदायिनी मानकर संबोधन किया है ॥

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२॥

भाषार्थः—(आधीपर्णाम्) अधिष्ठान वा प्रतिष्ठा के पंख वाले, (कामशल्याम्) वीर्य [तपोबल] की अणि वाले (संकल्पकुल्मलाम्) संकल्प के दंड छिद्र वाले (ताम्) उस [प्रसिद्ध, बुद्धि रूपी] (इषुम्) तीर को (सुसंनताम्) ठीक २ लक्ष्य पर सीधा (कृत्वा) करके (कामः) सुन्दर मनोरथ (त्वा) तुझ [अविद्या] को (हृदि) हृदय में (विध्यतु) बेधे ॥२॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी योगी बुद्धि बल से अविद्या को हटाकर प्रतिष्ठावान्, बलवान्, और सत्यसंकल्पी होता है ॥२॥

मुण्डकोपनिषद् का वचन है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ मुण्ड० उ० २ । २ । ४ ॥

(प्रणवः) ओ३म् (धनुः) धनुष् (आत्मा हि) आत्मा ही (शरः) तीर, और (ब्रह्म) ब्रह्म (तल्लक्ष्यम्) उसका लक्ष्य (उच्यते) कहा जाता है, (अप्रमत्तेन) अप्रमत्त, अति सावधान मनुष्य (वेद्धव्यम्) बेधे, और वह (शरवत्) तीर के समान (तन्मयः) उसमें लय (भवेत्) हो जावे ॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३॥

भाषार्थः—(कामस्य) सुन्दर मनोरथ का (सुसंनता) ठीक २ लक्ष्य पर चलाया हुआ, (प्राचीनपक्षा) प्राचीन [वेदविज्ञान] का पंख रखने वाला, (व्योषा) विविध प्रकार से [अविद्या का] दाह करने वाला [बुद्धिरूपी] (या) जो (इषुः) तीर [अविद्या] की] (प्लीहानम्) गति [वा तिल्ली नाम मर्मस्थान] को (शोषयति) सुखा देता है, (तया) उससे (त्वा) तुझ [अविद्या] को (हृदि) हृदय में (विध्यामि) बेधता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य और दृढ़ प्रतिज्ञा से वेदविज्ञान द्वारा अविद्या मिटाकर आनन्द भोगे, जैसे शूर वैरी का मर्मस्थान छेद कर सुखी होता है ॥३॥

शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥४॥

भाषार्थः—[हे विद्या,) (व्योषया) विशेष दाह करने वाली (शुचा) पीड़ा से (विद्धा) बिंधी हुई, (शुष्कास्या) सूखे मुख वाली, (मृदुः) कोमल स्वभाव वाली (निमन्युः) निरभिमान, (केवली) सेवनीया, (प्रियवादिनी) प्रिय बोलने वाली और (अनुव्रता) अनुकूल आचरण वाली [पतिव्रता स्त्री के समान] तू (मा अभि) मेरी ओर (सर्प) चली आ ॥४॥

भावार्थः—यहां से तीन मन्त्र विद्यापरक हैं । मन्त्र का आशय यह है, जो ब्रह्मचारी विद्या के लिए पूरी लालसा से यत्नपूर्वक परिश्रम करता है, विद्या शीघ्र ही उसको मिल कर हितकारिणी होती है, जैसे सती गुणवती स्त्री मन, वचन और कर्म से अपने पति की सेवा करती है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद के परमब्रह्मज्ञान सूक्त वा विद्यासूक्त में भी विद्या की उपमा पतिव्रता स्त्री से दी है।

उत त्वः पश्यन्नददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

ऋ० १० । ७१ । ४ ॥

(त्वः) एक पुरुष ने (पश्यन् उत) देखते हुए भी (वाचम्) वेद वाणी को (न ददर्श) नहीं देखा है, (त्वः) एक पुरुष (शृण्वन् उत) सुनता हुआ भी (एनाम्) इसको (न शृणोति) नहीं सुनता है। (उतो, किन्तु (त्वस्मै) एक पुरुष को [अपना] (तन्वम्) स्वरूप [परमज्ञान] (विसस्रे) उसने दिखाया है, (इव) जैसे (उशती) अनुरागवती (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र वाली (जाया) पत्नी [अपने] (पत्ये) पति को ॥

आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥५॥

भाषार्थः—[हे विद्या !] (त्वा) तुझ को (आजन्या) पूरे उपाय से [अपनी] (मातुः) माता से (अथो) और (पितुः) पिता से (परि) सब ओर (आ) यथानियम (अजामि) प्राप्त करता हूं, (यथा) जिससे (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि में (असः) तू रहे, (मम चित्तम्) मेरे चित्त में (उपायसि) तू पहुंचती है ॥५॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष माता-पिता आदि से विद्या पाकर परीक्षा द्वारा साक्षात् करके हृदय में दृढ़ करें ॥५॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध कुछ भेद से अथर्व० १ । ३४ । २ में आया है ॥

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान (अस्यै) इस [विद्या] के लिए [मेरे] (हृदः) हृदय के (चित्तानि) विचारों को (वि अस्यतम्) फैलाओ। (अथ) और (एनाम्) इसको (अक्रतुम्) अहिंसिका [हितकारिणी] (कृत्वा) करके (मम एव) मेरे ही (वशे) वश में (कृणुतम्) करो ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी प्राण और अपान अर्थात् इन्द्रियों को जीतकर अपने विचारों को बढ़ाकर महाहितकारिणी विद्या को उपयोगी बनावें ॥६॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २६ ॥

१—६ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः । जगती त्रिष्टुप् वा छन्दः ॥

युद्धगीतिः—मारू गीत ॥

ये ३' स्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्नि-रिषवः । तेनो मृडत ते नोऽधिब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्राच्याम्) पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा में (हेतयः) वज्र रूप (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले (स्थ) हो (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (अग्निः) अग्नि [अग्नि विद्या] (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिये (अधि) अधिकार-पूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशंसा] होवे ॥१॥

भावार्थः—सेनानी अपनी सेना का व्यूह करके आग्नेय अस्त्र वाले शूरवीरों को पूर्व दिशा में वा अपने सन्मुख स्थान में रक्खें, वे लोग शत्रुओं को जीत कर अपने राजा की दुहाई वा जयघोषणा करें, और राजा सत्कार-पूर्वक ऊंचे २ अधिकार देकर उनका उत्साह बढ़ावे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ३॑ स्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (दक्षिणायाम्) दक्षिण वा दाहिनी (दिशि) दिशा में (अविष्यवः) रक्षा की इच्छा वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् नः) उन तुम्हारा (कामः) मनोरथ (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें···[म० १] ॥२॥

भावार्थः—दक्षिण दिशा वा दाहिनी ओर वाले रक्षक विजयी वीर दृढ़ मनोरथ से शत्रुओं को जीतकर·····[म० १] ॥२॥

ये ३॑ स्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आपइषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (वैराजाः) विविध ऐश्वर्य वाले क्षत्रिय (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (आपः) जल [जल विद्या] (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें·····[म० १] ॥३॥

भावार्थः—पश्चिम वा पीछे वाली दिशा के क्षत्रिय लोग वारुणेय वा जलास्त्रों से शत्रुओं को जीतकर·····[म० १] ॥३॥

ये ३॑ स्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (उदीच्याम्) उत्तर वा बायीं ओर वाली (दिशि) दिशा में (प्रविध्यन्तः) वेधने वाले (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (वातः) पवन (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें·····[म० १] ॥४॥

भावार्थः—उत्तर वा बायीं ओर वाली दिशा में बरछी, भाले, गोली आदि से छेदने वाले वायु विद्या में कुशल योद्धा, वायव्य अस्त्र शस्त्र, विमानों द्वारा वैरियों को जीत कर·····[म० १] ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ३ स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधी-रिषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ध्रुवायाम्) स्थिर वा निश्चित (दिशि) दिशा में (निलिम्पाः) लेप करने वाले वैद्य (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हों, (तेषाम् वः) उन तुम्हारी (ओषधीः) अन्न, सोमलतादि ओषधियां (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें···[म० १] ॥५॥

भावार्थः—लेप पट्टी आदि करने वाले सद्वद्य दृढ़ निश्चित स्थान में ओषधालय बना कर सैनिकों को स्वस्थ रख कर शत्रुओं को जीत कर····· [म० १] ॥५॥

ये ३ स्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पति-रिषवः। ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (अस्याम्) इस (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशामें (अवस्वन्तः) रक्षा के अधिकारी (नाम) नाम (देवाः) विजय चाहने वाले वीर (स्थ) हो, (तेषाम् वः) उन तुम्हारा (बृहस्पतिः) बड़ों का स्वामी, मुख्य सेनापति (इषवः) तीर हैं, (ते) वे तुम (नः) हमें (मृडत) सुखी करो, (ते) वे तुम (नः) हमारे लिए (अधि) अधिकार पूर्वक (ब्रूत) बोलो, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (नमः) सत्कार वा अन्न होवे, (तेभ्यः वः) उन तुम्हारे लिए (स्वाहा) सुन्दर वाणी [प्रशंसा] होवे ॥६॥

भावार्थः—बड़े साहसी रक्षाधिकारी, युद्ध विद्या में कुशल योधा लोग ऊँचे स्थान पर रहकर मुख्य सेनापति की सहायता से वैरियों को जीत कर अपने राजा की दुहाई वा जय घोषणा करें, और राजा सत्कार पूर्वक ऊँचे २ अधिकार देकर उनका उत्साह बढ़ावे ॥६॥

सूक्तम् २७ ॥

१—६ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः। प्रथमा पङ्क्तिः—द्विपदा त्रिष्टुप्, द्वितीया द्विपदा भुरिग् जगती, तृतीया द्विपदानुष्टुप् ॥

सेनाव्यूहोपदेशः—सेना व्यूह का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

भाषार्थः—(प्राची = प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (अग्निः) अग्नि [अग्नि विद्या में निपुण सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (असितः) कृष्ण सर्प [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (आदित्याः) सूर्य से संबन्ध वाले (इषवः) बाण हों। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और (रक्षितृभ्यः) रक्षकों के लिये (नमो नमः) बहुत बहुत सत्कार वा अन्न और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों [बाण वालों] के लिये (नमोनमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे (यः) जो [वैरी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [वैरी से] (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे शूरो] (तम्) उस को (वः) तुम्हारे (जम्भे) जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥१॥

भावार्थः (आदित्याःइषवः) बाण अर्थात् सब अस्त्र शस्त्र सूर्य वा बिजुली वा अग्नि के प्रयोग से चलने वाले हों। शत्रु दो प्रकार के होते हैं, एक वे जो अपनी दुष्टता से धर्मात्माओं को बुरा जानते हैं, दूसरे वे जिनको धर्मात्मा लोग उनकी दुष्टता के कारण बुरा समझते हैं। उक्त दिशा में (अग्नि) पद वाला सेनापति (असित) नाम काले साँप के समान सेना व्यूह से ऐसे दुष्टों को जीतकर सैनिकों सहित यशस्वी होकर धर्मात्माओं की रक्षा करे ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो ३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

भाषार्थः (दक्षिणा—०—णायाः) दक्षिण वा दाहिनी ओर वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला इन्द्र [अधिकारी सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (तिरश्चिराजिः) तिरछी धारी वाले सांप यद्वा पशु पक्षी आदि की पंक्ति [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, (पितरः) रक्षा करने हारे (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाताओं और..... [म० १] ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—उक्त दिशा में [इन्द्र पदधारी सेनापति] (तिरश्चिराजिः) नाम सेना व्यूह करके शत्रुओं को जीतकर···[म० १] ॥२॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।३॥

भाषार्थः—(प्रतीची = ०—च्याः) पश्चिम वा पीछे की (दिक् = दिशः) दिशा का (वरुणः) शत्रुओं का रोकने वाला, वरुण [पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (पृदाकूः) अजगर, बिच्छू, बाघ, चीता वा हाथी [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक हो, और (अन्नम्) अन्न (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और·····[म० १] ॥३॥

भावार्थः—उक्त दिशा में (वरुण) नाम अधिकारी सेनापति (पृदाकूः) नाम सेनाव्यूह बना कर, और अन्न आदि सामग्री एकत्र रखकर शत्रुओं को जीत कर···[म० १] ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

भाषार्थः—(उदीची = ०—च्याः) उत्तर वा बाईं ओर वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (सोमः) प्रेरक वा उत्तेजक [सोम पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (स्वजः) आप उत्पन्न होने वाला वा बहुत दौड़ने वाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, और (अशनिः) बिजुली (इषवः) बाण होवें। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और ···· [म० १] ॥४॥

भावार्थः—इस दिशा में (सोम) नाम अधिकारी सेनापति (स्वज) नाम सेना व्यूह रच कर बिजुली के अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को जीतकर··· [म० १] ॥४॥

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

भाषार्थः—(ध्रुवा = ध्रुवायाः) स्थिर (दिक् = दिशः) दिशा का (विष्णुः) कामों में व्यापक [सद्वैद्य] (अधिपतिः) अधिष्ठाता होवे, (कल्माषग्रीवः) चितकबरे वा काले गले वाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, और (वीरुधः) जड़ी बूटी औषधें (इषवः) बाण होवें । (तेभ्यः अधिपतिभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और ·····[म० १] ॥५॥

भावार्थः—सद्वैद्य दृढ़ वा निश्चित स्थान में औषधालय से सैनिकों को स्वस्थ रक्खे और उसके साथ सेना 'कल्माषग्रीवा' नाम व्यूह बनाकर रहे, और सब मिलकर शत्रुओं को जीत कर···[म० १] ॥५॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो
नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वा—उर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (बृहस्पतिः) बड़े २ शूरों का स्वामी, बृहस्पति [पद वाला सेनापति] (अधिपतिः) अधिष्ठाता हो, (श्वित्रः) श्वेत वर्णवाले सांप [के समान सेना व्यूह] (रक्षिता) रक्षक होवे, (वर्षम्) वर्षा [वृष्टि विद्या] (इषवः) बाण होवें । (तेभ्यः अधिपतिभ्यःरक्षितृभ्यः) उन अधिष्ठाताओं और रक्षकों के लिये (नमोनमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न, और (एभ्यःइषुभ्यः) उन बाणों [बाण वालों] को (नमो नमः) बहुत २ सत्कार वा अन्न (अस्तु) होवे । (यः) जो [वैरी] (अस्मान् द्वेष्टि) हमसे वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिससे (वयम् द्विष्मः) हम वैर करते हैं, [हे शूरो!] (तम्) उसको (वः जम्भे) तुम्हारे जबड़े में (दध्मः) हम धरते हैं ॥६॥

भावार्थः (बृहस्पतिः) मुख्य सेनापति पर्वत आदि उच्च स्थान में (श्वित्र) नाम सेनाव्यूह रचकर ठहरे और वारुणेय अर्थात् जल संबन्धी अस्त्र शस्त्रों से, अथवा अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करके वैरियों को मिटाकर संग्राम में सैनिकोंसमेत कीर्ति पावे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी—यही मन्त्र [अथर्व० का० ३ सू० २७ म० १–६] महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत पुस्तक "पञ्चमहायज्ञविधिः" में "मनसा परिक्रमा मन्त्राः" के नाम से ईश्वरपरक अर्थ में आये हैं, वह अर्थ इस प्रकार होता है—

भाषार्थः—(प्राची=प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (असितः) बन्धन रहित (रक्षिता) रक्षक है, [जिसके] (आदित्याः) प्राण और किरणें (इषवः) बाण [के समान] हैं (तेभ्यः) उन (अधिपतिभ्यः) अधिष्ठाता, (रक्षितृभ्यः) रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुणों को (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार, और (एभ्यः) इन (इषुभ्यः) बाणों [पापियों के लिये बाणरूप गुणों] को (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार (अस्तु) होवे। (यः) जो [अज्ञानी] (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, [अथवा] (यम्) जिस [अज्ञानी] से (वयम्) हम (द्विष्मः) वैर करते हैं, [हे ईश्वर गुणों!] (तम्) उस को (वः) तुम्हारे (जम्भे) मुख वा वश में (दध्मः) हम धरते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सन्मुख और पूर्व दिशा में जगद्रक्षक परमात्मा को साक्षात् जानकर पापों मे बचें और सब प्राणी अज्ञान और वैर छोड़ कर परस्पर मित्रवत् रहें। यही भावार्थ अगले मन्त्रों में लगालें ॥१॥

भाषार्थः—(दक्षिणा=दक्षिणस्याः) दक्षिण वा दाहिनी (दिक्=दिशः) दिशा का (इन्द्रः) पूर्ण ऐश्वर्य वाला परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (तिरश्चिराजिः=०–जेः) तिरछे चलने वाले कीट, पतङ्ग, बिच्छू आदि की पंक्ति से (रक्षिता) बचाने वाला है, और (पितरः) ज्ञानी लोग (इषवः) बाण [के समान] हैं। (तेभ्यः) उन·····[म० १] ॥२॥

भाषार्थः—(प्रतीची=०–च्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिक्=दिशः) दिशा का (वरुणः) सब में उत्तम परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता, (पृदाकु=०–कुभ्यः) बड़े २ अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से (रक्षिता) बचाने वाला है, (अन्नम्) जिसके अन्न [अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ] (इषवः) बाण [बाणों के समान श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के लिये] हैं। (तेभ्यः) उन···[म० १] ॥३॥

भाषार्थः—(उदीची=०–च्याः) उत्तर वा बाईं (दिक्=दिशः) दिशा का (सोमः) सब जगत् का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (स्वजः) अच्छे प्रकार अजन्मा (रक्षिता) बचाने वाला है, [जिसके] (अशनिः) बिजुली (इषवः) बाण हैं। (तेभ्यः) उन···[१] ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (ध्रुवा = ध्रुवायाः) नीचे वाली (दिक् = दिशः) दिशा का (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (कल्माषग्रीवः) हरित रंग वाले वृक्षादि की ग्रीवा वाला (रक्षिता) बचाने वाला है, [जिसके] (वीरुधः) सब वृक्ष (इषवः) बाण [के समान] हैं। (तेभ्यः) उन···]म० १] ॥५॥

भाषार्थः (ऊर्ध्वा = ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिक् दिशः) दिशा का (बृहस्पतिः) बड़ी वाणी अर्थात् वेदशास्त्र, और बड़े आकाशादि का स्वामी परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता और (शिवत्रः) ज्ञानमय और वृद्धिमय (रक्षिता) बचाने वाला है, जिसके (वर्षम्) बरसा के बिन्दु (इषवः) बाण [के समान] हैं। (तेभ्यः) उन··· [म० १] ॥६॥

सूक्तम् २८ ॥

१—६ ॥ यमिनी देवता ॥ भुरिग् जगती २, ३ अनुष्टुप्, ४ स्वराड् गायत्री। ५ त्रिष्टुप्। ६ पूर्वार्धः स्वराड् गायत्री, द्वितीयस्त्रिष्टुप् ॥

सुनियमेन सुखं भवति = उत्तम नियम से सुख होता है।

एकैकयैषा सृष्ट्या संबभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥१॥

भाषार्थः—(एषा) यह [साधारणी सृष्टि] (एकैकया) एक एक (सृष्ट्या) सृष्टि [सृष्टि के परमाणु] से (सम् = संभूय) मिलकर (बभूव) हुई है, (यत्र) जिसमें (भूतकृतः) पृथ्वी आदि भूतों से बनाने वाले (विश्वरूपाः) नाना रूप वाले [ईश्वर गुणों] ने (गाः) भूमि, सूर्य आदि लोकों को (असृजन्त) सृजा है। (यत्र) जहाँ पर (यमिनी) उत्तम नियम वाली [बुद्धि] (अपर्तुः) ऋतु अर्थात् क्रम वा व्यवस्था से विरुद्ध (विजायते) हो जाती है [वहाँ] (सा) वह [व्यवस्था विरुद्ध बुद्धि] (रिफती) पीड़ा देती हुई और (रुशती) सताती हुई (पशून्) व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले जीवों को (क्षिणाति) नष्ट कर देती है ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता से एक एक परमाणु के संयोग से नियमानुसार यह इतनी बड़ी सृष्टि रची है। जो प्राणी ईश्वरीय नियम तोड़ता है, वह दुःख उठाता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषा पशून् सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२॥

भाषार्थः –(एषा) यह [व्यवस्था विरुद्ध बुद्धि] (क्रव्याद्) मांस खाने वाली और (व्यद्वरी) अनेक विधि से भक्षणशीला (भूत्वा) होकर (पशून्) दो पाए और चौपाये जीवों को (संक्षिणाति) सर्वथा नष्ट करती है। (उत) इस लिये (एनाम्) इस [अनिष्ट बुद्धि को] (ब्रह्मणे) ब्रह्म [ईश्वर, वेद, वा ब्राह्मण को] दद्यात्) वह सौंपे, (तथा) तो वह (स्योना) सुखदायिनी और (शिवा) कल्याणी (स्यात्) हो जावे ॥२॥

भावार्थः—कुबुद्धि पापी मनुष्य परमात्मा वा वेद वा उत्तम विद्वान् की शरण लेकर उत्तम कर्म करने से सुधर जाता है ॥२॥

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा नं इहैधि ॥३॥

भाषार्थः (हे यमिनी,) उत्तम नियमवालीबुद्धि ! (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये (शिवा) कल्याणी और (गोभ्यः) गौओं को और (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (शिवा) कल्याणी (भव) हो, (इह) यहाँ (अस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय) इस सब खेत को (शिवा) कल्याणी और (नः) हमको (शिवा) कल्याणी (एधि) हो ॥३।

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर ज्ञान से उत्तम बुद्धि पाकर सब संसार को सुखदायी होता है ॥३॥

इह पुष्टिरिह रसं इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय ॥४॥

भाषार्थः—(इह) यहां पर (पुष्टिः) पुष्टि, और (इह) यहां पर ही (रसः) रस होवे। (यमिनि) हे उत्तम नियम वाली बुद्धि ! (इह) यहाँ पर (सहस्रसातमा) अत्यन्त करके सहस्रों प्रकार से धन देने वाली (भव) हो, और (पशून्) व्यक्त और अव्यक्त वाणी वाले जीवों को (पोषय) पुष्ट कर ॥४॥

भावार्थः—उत्तम नियम युक्त बुद्धि से मनुष्य अनेक प्रकार की वृद्धि,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूध, घी, आदि रस, और बहुत सा धन पाकर सब जीवों की रक्षा करता है ॥४॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥५॥

भाषार्थः —(यत्र) जहां पर (सुहार्दः) सुन्दर हृदय वाले (सुकृतः) सुकर्मी लोग (स्वायाः तन्वः) अपने शरीर का (रोगम्) रोग (विहाय) त्याग कर (मदन्ति) आनन्द भोगते हैं। (तम्) उस (लोकम्) लोक [जनसमूह] को (यमिनी) उत्तम नियम वाली [सुमति] (अभिसंबभूव) साक्षात् आकर मिली है। (सा) वह [सुमति] (नः) हमारे (पुरुषान्) पुरुषों (च) और (पशून्) ढोरों को (मा हिंसीत्) न पीड़ा दे ॥५॥

भावार्थः—जिस घर में परस्पर हितैषी पुण्यात्मा स्त्री पुरुष नीरोग रहकर विद्या और धन को भोगते हैं, वह उनकी नियमवती सुमति देवी का साक्षात् फल है। वहाँ पर सब मनुष्य और गौ, घोड़े आदि बहुत काल तक जीकर आपस में उपकारी होते हैं ॥५॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध अ० का० ६ सू० १२० म० ३ में इस प्रकार है—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरहृताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

जहां पर सुन्दर हृदय वाले सुकर्मी लोग अपने शरीर का रोग त्याग कर आनन्द भोगते हैं, (तत्र) वहां पर (स्वर्गे) स्वर्ग में (अश्लोणाः) बिना लंगड़े हुए और (अङ्गैः अहृताः) अंगों से बिना टेढ़े हुए हम (पितरौ) माता पिता (च) और (पुत्रान्) सन्तानों को (पश्येम) देखते रहें ॥

यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः । तं लोकं यमिन्य-
भिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥६॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (सुहार्दाम्) सुन्दर हृदय वाले (सुकृताम्) सुकर्मियों का और (यत्र) जहाँ पर (अग्निहोत्रहुताम्) अग्निहोत्र करने वालों का (लोकः) लोक [जन समूह] है, (तम् लोकम्) उस लोक को (यमिनी) उत्तम नियम वाली [सुमति] (अभिसम्बभूव) साक्षात् आकर मिली है। (सा) वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सुमति] (नः पुरुषान्) हमारे पुरुषों (च) और (पशून्) ढोरों को (मा हिंसीत्) न पीड़ा दे ॥६॥

भावार्थः—जहां सब स्त्री पुरुष एक मन रह कर पुण्यात्मा पुरुषार्थी होकर अग्निहोत्र करते अर्थात् वेद मन्त्रों से अग्नि में मिष्ट सुगन्ध द्रव्य चढ़ा कर वायुशुद्धि करते और अग्निविद्या द्वारा अग्निनौका, अग्नियान, विमान आदि रचते, वहां (यमिनी) नियमवती सुमति के निवास से सब जने आनन्द भोगते हैं ॥६॥

सूक्तम् २९ ॥

१—८ ॥ १—६ अविर्देवता, ७, ८ कामो देवता ॥ १ प्रस्तारपङ्क्तिः । २, ४—६ अनुष्टुप् । ३ पङ्क्तिः । ७ साम्नी गायत्री । ८ पूर्वार्धो द्विपदानुष्टुप्, उत्तरार्धो द्विपदा त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यः परमेश्वरभक्त्या सुखं लभते=मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से सुख पाता है ॥

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (यमस्य) नियमकर्ता परमेश्वर के (अमी सभासदः) यह सभासद् (राजानः) ऐश्वर्य वाले राजा लोग (इष्टापूर्तस्य) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्न दानादि पुण्यकर्म के [फल], (षोडशम्) सोलहवें पदार्थ मोक्ष को [चार वर्ण, चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त की रक्षा, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए का अच्छे मार्ग में व्यय करना, इन पन्द्रह प्रकार के अनुष्ठान से पाये हुए सोलहवें मोक्ष को] (विभजन्ते) विशेष करके भोगते हैं, तस्मात्) उसी कारण से [आत्मा को] (दत्तः) दिया हुआ, (शितिपात्) उजियाले और अन्धेरे में गति वाला, (अविः) प्रभु (स्वधा) हमारे आत्मा को पुष्ट करने वाला वा धन का देने वाला अमृत रूप वा अन्न रूप होकर [पुरुषार्थी को] (प्र) अच्छे प्रकार से (मुञ्चति) मुक्त करता है ॥१॥

भावार्थः—धर्मराज परमेश्वर की आज्ञा मानने वाले पुरुषार्थी स्त्री पुरुष मोक्ष सुख भोगते रहते हैं, इसी से सब लोग उस अन्तर्यामी को हृदय में रख कर पुरुषार्थ से (स्वधा) अमृत अर्थात् आत्मबल और धनधान्य पाकर मोक्ष आनन्द भोगें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥२॥

भाषार्थः—(आकूतिप्रः) संकल्पों का पूरा करने वाला, [आत्मा को] (दत्तः) दिया हुआ, (शितिपात्) प्रकाश और अप्रकाश में गति वाला (अविः) रक्षक प्रभु (आभवन्) व्यापक, (प्रभवन्) समर्थ और (भवन्) वर्तमान होता हुआ (सर्वान् कामान्) सब सुन्दर कामनाओं को (पूरयति) पूरा करता है, और (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है ॥२॥

भावार्थः—उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा का इतना बड़ा कोश है कि सब सृष्टि की शुभ कामनाओं को पूरा करते करते भी भरपूर ही बना रहता है ॥२॥

बृहदारण्यकोपनिषद में पाठ है—

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ बृहदा० ५।१।१॥

ओ३म्। वह [ब्रह्म] पूर्ण [भरपूर] है, यह [जगत्] पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण उदय होता है, पूर्ण से पूर्ण लेकर पूर्ण ही बच रहता है ॥१॥

यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (लोकेन) संसार कर के (संमितम्) सम्मान किये गए, (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (ददाति) दान करता है, (सः) वह पुरुष (नाकम्) दुःख-रहित स्वर्ग को (अभ्यारोहति) चढ़ जाता है, (तत्र) जहाँ पर (अबलेन) निर्बल करके (बलीयसे) अधिक बलवान् को (शुल्कः) शुल्क [कर] (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है ॥३॥

भावार्थः—जो कोई सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म को अपने में ग्रहण करता है, वह सन्मार्गी बड़ों और छोटों के साथ एक सा न्याय करता हुआ सदा आनन्द भोगता है ॥३॥

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पञ्चापूपम्) विस्तीर्ण वा [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे की पांचवीं] पाँचों दिशाओं में अटूट शक्ति वाले, अथवा बिना सड़ी रोटी देने वाले (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले, (लोकेन) संसार करके (संमितम्) सम्मान किये गए (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (दाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (पितृणाम्) रक्षक पुरुषों [बलवान् और विद्वानों] के (लोके) लोक में (अक्षितम्) अक्षयता [नित्य वृद्धि] को (उपजीवति) भोगता है ॥४॥

भावार्थः—अक्षय शक्ति वाले, सृष्टि भर को नित्य नवीन भोजन देने वाले सर्वद्रष्टा परमेश्वर का उपासक माता पिता आदि विद्वान् वीर पितरों के साथ अक्षय (नित्य नवीन) सुख पाता है ॥४॥

पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥५॥

भाषार्थः—(पञ्चापूपम्) विस्तीर्ण वा [पूर्वादि चार और ऊपर नीचे की पांचवीं] पांचों दिशाओं में अटूट शक्ति वाले, अथवा बिना सड़ी रोटी देने वाले, (शितिपादम्) प्रकाश और अन्धकार में गति वाले, (लोकेन) संसार करके (संमितम्) सम्मान किये गए (अविम्) रक्षक प्रभु का [अपने आत्मा में] (प्रदाता) अच्छे प्रकार दान करने वाला (सूर्यामासयोः) सूर्य और चन्द्रमा में [उनके नियम में] (अक्षितम्) अक्षयता [नित्यवृद्धि] का (उप जीवति) भोगता है ॥५॥

भावार्थ—सूर्य आकर्षण और वृष्टि आदि से पृथिवी आदि लोकों का धारण करता और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश पाकर हमें पुष्टि पहुँचाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य मन्त्रोक्त ईश्वर को अपने हृदय में रखकर परोपकार करता है उसका सुख नित्य बढ़ता है ॥५॥

इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत् ।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति । ६॥

भाषार्थः—(शितिपात्) प्रकाश और अन्धकार में गतिवाला परमेश्वर (इरा इव) भूमि वा विद्या के समान और (समुद्रः) समुद्र, अर्थात् (महत्) बड़े (पयः इव) जलराशि के समान (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है, और (देवौ) दिव्य गुण वाले (सवासिनौ इव) साथ साथ निवास करने वाले दोनों [प्राण और अपान वा दिन-रात] के समान वह (न) नहीं (उप दस्यति) घटता है ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे भूमि, विद्या, जल, वायु आदि उचित प्रयोग से अधिक अधिक उपकारी होते हैं, इसी प्रकार ईश्वर का उपकारी कोश विज्ञान द्वारा मनुष्य को बढ़ाता चला जाता है ॥६॥

क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥

भाषार्थः—(कः) किसने (इदम्) यह [कर्मफल] (कस्मै) किसको (अदात्) दिया है ? [इसका उत्तर] (कामः) मनोरथ [वा कामना योग्य परमेश्वर] ने (कामाय) मनोरथ [वा कामना करने वाले जीव] को (अदात्) दिया है।

(कामः) मनोरथ [वा कमनीय ईश्वर] (दाता) देने वाला और (कामः) मनोरथ [वा कामना वाला जीव] (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है। (कामः) मनोरथ ने (समुद्रम्) समुद्र [पार्थिव समुद्र वा अन्तरिक्ष] में (आ विवेश) प्रवेश किया है।

(काम) हे मनोरथ ! [वा कमनीय ईश्वर] (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णामि) मैं जीव ग्रहण करता हूं, (एतत्) यह [सब काम] (ते) तेरा है ॥७॥

भावार्थः—संसार में देना लेना अर्थात् सब उपकारी काम कामना से सिद्ध होते हैं, कामना से ही प्रयत्न के साथ मन देने पर मनुष्य के सब कठिन कामों को परमेश्वर सुगम कर देता है ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद ७ । ४८ में है। उसका अर्थ यहाँ श्रीमद् दयानन्द सरस्वती के भाष्य के आधार पर किया है।

कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ य० ७।४८॥

(कः) किसने [कर्मफल] (अदात्) दिया है, और [कस्मै] किसको [अदात्] दिया है। इन दो प्रश्नों के उत्तर, (कामः) कामना योग्य परमेश्वर ने (अदात्) दिया है, और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) दिया है। (कामः) योगीजनों के कामना योग्य परमेश्वर [दाता] देने वाला है। (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है। (काम) हे कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिये (एतत्) यह सब है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥

भाषार्थः—(हे) काम (भूमिः) भूमि और (इदम्) यह (महत्) बड़ा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (त्वा) तुझको (प्रति गृह्णातु) स्वीकार करे। (अहम्) मैं जीव, (प्रतिगृह्य) पाकर, (मा) न (प्राणेन) प्राण [शरीर बल] से, (मा) न (आत्मना) आत्मबल से, और (मा) न (प्रजया) प्रजा से, (वि राधिषि) अलग हो जाऊं ॥८॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य सत्य कामना से भूमि और आकाश का राज्य हस्तगत कर लेता है, और शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल दृढ़ करके संसार में सुखी रहता है ॥८॥

सूक्तम् ३० ॥

१—७ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १—४ अनुष्टुप् । ५ विराड् जगती वा । ६ प्रस्तारपङ्क्तिः । ७ त्रिष्टुप् ।

परस्परप्रीत्युदेशः—परस्पर मेल का उपदेश ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या । १।

भाषार्थः—(सहृदयम्) एक हृदयता, (सांमनस्यम्) एकमनता और (अविद्वेषम्) निर्वैरता (वः) तुम्हारे लिये (कृणोमि) मैं करता हूँ। (अन्यो अन्यम्) एक दूसरे को (अभि) सब ओर से (हर्यत) तुम प्रीति से चाहो (अघ्न्या इव) जैसे न मारने योग्य, गौ (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़े को [प्यार करती है] ॥१॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है, सब मनुष्य वेदानुगामी होकर सत्य ग्रहण करके एकमता करें और आपा छोड़ कर सच्चे प्रेम से एक दूसरे को सुधारें, जैसे गौ आपा छोड़ कर तद्रूप होकर पूर्ण प्रीति से उत्पन्न हुए बच्चे को जीभ से चाट कर शुद्ध करती और खड़ा करके दूध पिलाती और पुष्ट करती है ॥१॥

१—तैत्तिरीयारण्यक में पाठ है—

ओ३म् । सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । तैत्ति० आ० १०।१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्। (सह) वही (नौ) हम दोनों को (अवतु) बचावे। (सह) वही (नौ) हम दोनों को (भुनक्तु) पाले। हम दोनों (सह) मिलकर (वीर्यम्) उत्साह (करवावहै) करें। (नौ) हम दोनों का (अधीतम्) पढ़ा हुआ (तेजस्वि) तेजस्वी (अस्तु) होवे। (मा विद्विषावहै) हम दोनों झगड़ा न करें॥

२—भगवान् यास्क मुनि कहते हैं।

(अघ्न्या) गौ का नाम है—निघ० २।११। वह अहन्तव्या, [अवध्या न मारने योग्य] अथवा, अघघ्नी [पाप अर्थात् शारीरिक दुःख अथवा दुर्भिक्षादि पीड़ा नाश करने वाली] होती है—निरुक्त ११। ४३॥

श्रीमान् महीधर यजुर्वेदभाष्य अ० १ म० १ में लिखते हैं—अघ्न्या गौएं हैं। गोवध उपपातक 'भारी पाप' है, इसलिये वे न मारने योग्य 'अघ्न्या' कही जाती हैं॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥

भाषार्थः—(पुत्रः) कुल शोधक पवित्र, बहुरक्षक वा नरक से बचाने वाला पुत्र [सन्तान] (पितुः) पिता के (अनुव्रतः) अनुकूल व्रती होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) जैसे मधु में सनी और (शन्तिवाम्) शान्ति से भरी (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले॥२॥

भावार्थः—सन्तान माता पिता के आज्ञाकारी, और माता पिता सन्तानों के हितकारी, पत्नी और पति आपस में मधुरभाषी तथा सुखदायी हों। यही वैदिक कर्म आनन्द मूल है। मन्त्र १ देखो॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥३॥

भाषार्थः—(भ्राता) भ्राता (भ्रातरम्) भ्राता से (मा द्विक्षत्) द्वेष न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से भी (मा) नहीं। (सम्यञ्चः) एक मत वाले और (सव्रताः) एक व्रती (भूत्वा) होकर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाचम्) वाणी (वदत) बोलो॥३॥

भावार्थः—भाई भाई, बहिन बहिन, और सब कुटुम्बी नियमपूर्वक मेल से वैदिक रीति पर चल कर सुख भोगें॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥

भाषार्थः—(येन) जिस [वेद पथ] से (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (न) नहीं (वियन्ति) विरुद्ध चलते हैं (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस में (विद्विषते) विद्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेद पथ को (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (पुरुषेभ्यः) सब पुरुषों के लिये (संज्ञानम्) ठीक ठीक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सार्वभौम हितकारी वेद मार्ग पर चलकर घर के सब लोग आनन्द भोगें ॥४॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥

भाषार्थः—(ज्यायस्वन्तः) बड़ों का मान रखने वाले (चित्तिनः) उत्तम चित वाले, (संराधयन्तः) समृद्धि [धन धान्य की वृद्धि] करते हुए और (सधुराः) एक धुरा होकर (चरन्तः) चलते हुए तुम लोग (मा वि यौष्ट) अलग अलग न होओ, और (अन्यो अन्यस्मै) एक दूसरे से (वल्गु) मनोहर (वदन्तः) बोलते हुए (एत) आओ। (वः) तुमको (सध्रीचीनान्) साथ साथ गति [उद्योग वा विज्ञान] वाले और (संमनसः) एक मन वाले (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥५॥

भावार्थः—वेदानुयायी मनुष्य विद्यावृद्ध, धनवृद्ध, आयुवृद्धों का आदर करके उत्तम गुणों की प्राप्ति, और मिलकर उद्योग से, धन धान्य राज आदि बढ़ाते और आनन्द भोगते हैं ॥५॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥

भाषार्थः—(वः) तुम्हारी (प्रपा) जल शाला (समानी) एक हो, और (अन्नभागः) अन्न का भाग (सह) साथ साथ हो, (समाने) एक ही [योक्त्रे] जोते में (वः) तुमको (सह) साथ साथ (युनज्मि) मैं जोड़ता हूं। (सम्यञ्चः) मिलकर गति [उद्योग वा ज्ञान] रखने वाले तुम (अग्निम्) अग्नि [ईश्वर वा भौतिक अग्नि] को (सपर्यत) पूजो (इव) जैसे (अराः) अरा [पहिये के दंडे] (नाभिम्) नाभि [पहिये के बीच वाले काठ] में (अभितः) चारों ओर से [सटे होते हैं] ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे अरे एक नाभि में सटकर पहिये को रथ का बोझ सुगमता से ले चलने योग्य करते हैं, ऐसे ही मनुष्य एक वेदानुकूल धार्मिक रीति पर चल कर अपना खान पान मिलकर करें मिल कर रहें और मिलकर ही (अग्नि) को पूजें अर्थात् १– परमेश्वर की उपासना करें, २ - शारीरिक अग्नि को, जो जीवन और वीरपन का चिह्न है, स्थिर रक्खें ३– हवन करके जलवायु शुद्ध रक्खें, और ४- शिल्प व्यवहार में प्रयोग करके उपकार करें और सुख से रहें ॥६॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

भाषार्थः - (संवननेन) यथावत् सेवन वा व्यापार से (वः सर्वान्) तुम सबको (सध्रीचीनान्) साथ साथ गति [उद्योग वा ज्ञान] वाले, (संमनसः) एक मन वाले और (एकश्नुष्टीन्) एक भोजन वाले (कृणोमि) मैं करता हूं। (देवाः इव) विजय चाहने वाले पुरुषों के समान (अमृतम्) अमरपन [जीवन की सफलता] को (रक्षमाणाः) रखते हुए तुम [बने रहो] (सायं प्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल में (सौमनसः) चित्त की प्रसन्नता (वः) तुम्हारे लिये (अस्तु) होवे ॥७॥

भावार्थः—'देव' पुरुषार्थी विजयी पुरुष मिलकर मृत्यु के कारण आलस्य आदि छोड़ने से अमर अर्थात् यशस्वी होते हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य आपस में मिलकर उद्योग करके सुखी रहें और सायं प्रातः दो काल परमेश्वर की आराधना करके चित्त प्रसन्न करें ।७॥

सूक्तम् ३१ ॥

१—११ ॥ प्रजापतिर्देवता । १—४, ६ - ११ अनुष्टुप्, ५ बृहती ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने का उपदेश ॥

वि देवाः जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१॥

भाषार्थः —(देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (जरसा) आयु के घटाव से (वि) अलग (अवृतन्) रहे हैं। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष (त्वम्) तू (अरात्या) कंजूसी वा शत्रुता से (वि=वि वर्तस्व) अलग रह। (अहम्) मैं (सर्वेण) सब (पाप्मना) पाप कर्म से (वि) अलग और (यक्ष्मेण) राजरोग, क्षयी आदि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वि=विवर्त्तें) अलग रहूं और (आयुषा) जीवन [उत्साह] से (सम्=सम्वर्तें) मिला रहूं ॥ ॥

भावार्थः—पुरुषार्थी लोग ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से सदा बलवान् रहते हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य मानसिक पाप और शारीरिक रोग के त्याग और शुभ गुणों के सेवन से बल बढ़ाकर अपना जीवन सफल करें ॥१॥

व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्ययां ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२॥

भाषार्थः—(पवमानः) शोधन करने वाला पुरुष (आर्त्या) पीड़ा से (वि) अलग, और (शक्रः) शक्तिमान् पुरुष (पापकृत्यया) पाप क्रिया से (वि=वि वर्तताम्) अलग रहे। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना] सब पाप कर्म से····· [म० १] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध आचरण से सामाजिक आत्मिक और शारीरिक पीड़ा मिटावें और बलवान् होकर पाप को हटावें ॥२॥

वि ग्राम्याः पशवं आरण्यैर्व्यापस्तृष्ण्यासरन् ।
व्य १ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३॥

भाषार्थः—(ग्राम्याः) ग्राम वाले (पशवः) जीव (आरण्यैः) जङ्गली जीवों से (वि) अलग, और (आपः) जल (तृष्ण्या) पियास से (वि) अलग, (असरन्) चले हैं। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से···[म० १] ॥३॥

भावार्थः—जैसे ग्राम्य पशु जङ्गली जीवों से अलग रहकर प्रसन्न रहते हैं और जल की उपस्थिति में पियास से निवृत्ति होती है, इसी प्रकार मनुष्य पाप से निवृत्त होकर सब के सुख में प्रवृत्त हों ॥३॥

वी३ ' मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४॥

भाषार्थः—(इमे) यह दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (वि) अलग अलग (इतः) चलते हैं, (पन्थानः) सब मार्ग (दिशंदिशम्) दिशा दिशा को (वि=वियन्ति) अलग अलग जाते हैं। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से···[म० १] ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सूर्य पृथिवी और मार्ग अलग अलग रहकर संसार का क्लेश हरते हैं, ऐसे ही सब मनुष्य दुःख का नाश करके सुख भोगें ॥४॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वियाति ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पिता (दुहित्रे) बेटी को (वहतुम्) दायज [स्त्री धन] (युनक्ति=वि युनक्ति) अलग करके देता है। (इति) इसी प्रकार (इदम् विश्वम्) यह प्रत्येक (भुवनम्) लोक (वि याति) अलग अलग चलता है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से··· [म० १] ॥५॥

भावार्थः जैसे पिता पुत्री को दायज देकर सदा हित करता रहता है, सब लोक और पदार्थ अलग अलग रहकर परस्पर उपकार करते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोष हटाकर परस्पर सुख बढ़ावें ॥५॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋग्वेद १०। १७१। १। में इस प्रकार है—

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ॥

(त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पिता (दुहित्रे) बेटी के लिये (वहतुम) दायज (कृणोति) करता है, (इति) इस प्रकार (इदम् विश्वम् भुवनम्) यह सब जगत् (समेति) मिलकर चलता है ॥

अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६॥

भाषार्थ - (अग्निः) अग्नि (प्राणान्) प्राणों, जीवन शक्तियों को (सम्=सम्भूय) मिलकर (दधाति) पुष्ट करता है, और (चन्द्रः) चन्द्र (प्राणेन) प्राण के साथ (संहितः) सन्धि वाला है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से ·· [म० १] ॥६॥

भावार्थः सूर्य का ताप श्वास प्रश्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर नेत्र आदि इन्द्रियो को अन्न रस पहुँचाता है, और चन्द्रमा की शीतलता प्राण द्वारा रुधिर आदि में प्रणित रस से इन्द्रियों को पुष्ट करती है। ऐसे ही मनुष्य अपने दोष मिटा कर शुभ गुणों से युक्त होवें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १—५ में दोषों से (वि) वियोग के और मन्त्र ६—१० में पुरुषार्थ से (सम्) संयोग के वर्णन से आयु बढ़ाने का उपदेश है।

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्।
व्य१ हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७॥

भाषार्थः—(देवाः) विजय चाहने वाले महात्माओं ने (विश्वतोवीर्यम्) सब ओर से वीर्यवान् (सूर्यम्) सर्वप्रेरक वा सर्वत्रगति परमेश्वर वा सूर्य को (प्राणेन) प्राण से (सम्) मिलकर (ऐरयन्) पाया है। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से···[म० १] ॥७॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय वीरों ने आत्मा के सहारे, अर्थात् आत्मज्ञान और आत्मबल से, परमात्मा को पाकर और सूर्य आदि लोकों तक गति करके परम पद पाया है। मनुष्य आत्मिक और शरीरिक दोष मिटाकर जीवन सफल करें ॥७॥

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः।
व्य१ हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८॥

भाषार्थः—(आयुष्मताम्) बड़ी आयु वाले, और [दूसरों की] (आयुष्कृताम्) बड़ी आयु करने वाले [देवताओं] के (प्राणेन) प्राण के साथ (जीव) जीता रह, (मा मृथाः) मरा मत जा। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से··· [म० १] ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य अपने और दूसरों के सुधारने वाले वीर योगियों [देवताओं—म०] के अनुकरणी होकर पुरुषार्थ करें और आलस्य आदि में व्यर्थ जन्म न खोव ॥८॥

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः।
व्य१ हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९॥

भाषार्थः—(प्राणताम्) जीते हुओं के (प्राणेन) श्वास से (प्राण) श्वास ले, (इह) यहां पर (एव) ही (भव) रह, (मा मृथाः) मरा मत जा। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से···[म० १] ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थियों के समान अपने श्वास श्वास पर कर्तव्य करे और संसार में रहकर भूल, आलस्य आदि दोष छोड़कर कीर्ति पावे ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥

भाषार्थः—(आयुषा) जीवन [उत्साह] के साथ (उत्=उद्भव) खड़ा हो (आयुषा) जीवन के साथ (सम्=सम् भव) पराक्रमी हो। (ओषधीनाम्) ओषधियों अन्न आदि के (रसेन) रस [भोग[से (उत्=उद्भव) ऊंचा हो। (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब कर्म से···[म० १] ॥१०॥

भावार्थः - मनुष्य जीवन भर उद्योगी तथा पराक्रमी रहे, और अन्न आदि पदार्थों के भोगों के अनुसार उपकार का प्रतिफल देकर जीवन सुफल करे ॥१०॥

इस मन्त्र में 'भव' पद की अनुवृत्ति मन्त्र ९ से आती है ॥

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्य१ ' हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११॥

भाषार्थः—(वयम्) हम (अमृताः) अमर होकर (पर्जन्यस्य) सींचने वाले मेघ की (वृष्ट्या) बरसा से [जैसे] (आ) सब ओर से (उत् अस्थाम) उठ खड़े हुए हैं, (अहम्) मैं (सर्वेण पाप्मना) सब पाप कर्म से (वि) अलग, और (यक्ष्मेण) राजरोग, क्षयी आदि से (वि=विवर्त्ते) अलग रहूं, और (आयुषा) जीवन [उत्साह] से (सम् = सम् वर्त्ते) मिला रहूं ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य इस सूक्त में वर्णित उपदेश के अनुसार ब्रह्मज्ञान के श्रवण मनन, और निदिध्यासन [विचार] से ऐसे हर्ष में बढ़ें हैं जैसे अन्न आदि औषधें जल की बरसा से नवीन जीवन पाकर उगती हैं, इसलिए प्रत्येक मनुष्य आत्मिक और शारीरिक दोष छोड़कर अपना जीवन का लाभ उठावें ॥११॥

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति तृतीयं काण्डम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०*१०*:०*०*:—

चतुर्थं काण्डम् ॥

—: * :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—*:०*१०*१०* -

सूक्तम् ॥१॥

मन्त्राः १—७ ॥ वेनो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

सृष्टिविद्यया ब्रह्मविचारः—सृष्टि विद्या से ब्रह्म का विचार ।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

भाषार्थः – (वेनः) प्रकाशमान वा मेधावी परमेश्वर ने (पुरस्तात्) पहिले काल में (प्रथमम्) प्रख्यात (जज्ञानम्) उपस्थित रहने वाले (ब्रह्म) वृद्धि के कारण अन्न को और (सुरुचः) बड़े रुचिर लोकों को (सीमतः) सीमाओं वा छोरों से (वि आवः) फैलाया है । (सः) उसने (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में वर्तमान (उपमाः) [परस्पर आकर्षण से] तुलना करने वाले (विष्ठाः) विशेष विशेष स्थानों, अर्थात् (अस्य) इस (सतः) विद्यमान [स्थूल] के (च, और (असतः) अविद्यमान [सूक्ष्म जगत्] के (योनिम्) घर को (च) निश्चय करके । वि वः) खोला है ॥१॥

भावार्थः – जैसे उत्पन्न होने से पहिले बालक के लिए माता के स्तनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दूध हो जाता है। ऐसे ही जगत् के जननी जनक परमेश्वर ने सृष्टि से पूर्व प्रत्येक शरीरी के लिये प्रभूत (ब्रह्म) अन्न वा पालन शक्ति और पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, आदि को बनाया, जो परस्पर आकर्षण से स्थिर हैं। यही सब लोक कार्य वा मूर्त और कारण वा अमूर्त दो प्रकार के जगत् के भण्डार हैं ॥१॥

यह मन्त्र यजुर्वेद अ० १३ म० ३ और सामवेद पूर्वार्चिक प्र० ४ द० ३ म० ९ में है ॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२॥

भाषार्थः—(पित्र्या) पिता [जगत् पिता परमेश्वर] से आई हुई, (भुवनेष्ठाः) सब जगत् में ठहरी हुई (इयम्) यह (राष्ट्री) राजराजेश्वरी शक्ति [वेद वाणी] (प्रथमाय) सबसे उत्तम (जनुषे) जन्म के लिये (अग्रे) हमारे आगे (एतु) आवे, [अर्थात्] "(तस्मै) उस (प्रथमाय) सबसे ऊपर विराजमान (धास्यवे) संसार का धारण पोषण चाहने वाले परमात्मा के लिये (एतम्) इस (सुरुचम्) बड़े रुचिर (ह्वारम्) अनिष्ट को झुका देने वाले (अह्यम्) प्राप्ति के योग्य, वा प्रति दिन वर्तमान (घर्मम्) यज्ञ को (श्रीणन्तु) सब लोग परिपक्व करें" ॥२॥

भावार्थः—जैसे पतृक धन सब सन्तानों को यथावत् मिलता है वैसे ही जगत् पिता परमेश्वर की सर्वव्यापिनी, सर्वनियन्त्री यह वेदवाणीरूप शक्ति सबके हृदय में बसे कि सब मनुष्य अपना यज्ञ अर्थात् पुरुषार्थ परमात्मा को समर्पण करें जिससे मनुष्य-जन्म सफल होवे ॥२॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

भाषार्थः—(यः विद्वान्) जो विद्वान् परमेश्वर (अस्य) इस [जगत्] का (बन्धुः) बन्धन वा नियम करने वाला, अथवा, बन्धु हितकारी (प्र) अच्छे प्रकार (जज्ञे) प्रकट हुआ था, और जो (देवानाम्) भूमि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों वा महात्माओं के (विश्वा = विश्वानि) सब (जनिमा) जन्मों को (विवक्ति) बतलाता है। उसने (ब्रह्मणः) ब्रह्म [अपने परब्रह्म स्वरूप] के (मध्यात्) मध्य से (ब्रह्म) वेद को (उज्जभार) उभारा था, वही (नीचैः) नीचे और (उच्चैः) ऊंचे (स्वधाः) अनेक अमृतों वा अन्नों को (अभि = अभिलक्ष्य) सन्मुख करके (प्र) उत्तमता से (तस्थौ) स्थित हुआ था ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—अनादि, सर्वज्ञ सर्वोत्तम परमात्मा ने सब चराचर जगत् को यथानियम रचा और वेद विद्या को अपने में से प्रकट करके नीचे ऊंचे लोकों की सृष्टि के अनुकूल अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं, सब मनुष्य उस जगत् नियन्ता की उपासना द्वारा पुरुषार्थ करके आनन्द भोगें ॥३॥

इस मन्त्र का 'विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति' यह पाद अ० २। २८। २। में आया है।

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥

भाषार्थः—(सः) उस (सः) विष्णु वा शिव ने (हि) ही (दिवः) सूर्य के और (पृथिव्याः) पृथिवी के (ऋतस्थाः+सन्) सत्य वा कारण में स्थित होकर (मही=महत्यौ) विशाल (रोदसी=०-स्यौ) सूर्य और पृथिवी को (क्षेमम्) क्षेम के साथ (अस्कभायत्) ठहराया। (महान्) उस विशाल परमेश्वर ने (जात+सन्) प्रकट होकर (मही=महत्यौ) दोनों विशालों, अर्थात् (द्याम्) सूर्यरूप (सद्म) घर (च) और (पार्थिवम्) पृथिवी वाले (रजः) लोक को (वि) अलग अलग (अस्कभायत्) स्थिर किया ॥४॥

भावार्थः - सूर्य आदि के (ऋतस्थाः) कारण के कारण परमेश्वर ने सूर्य आदि लोकों को रचा, और परस्पर आकर्षणरूप डोरी लगाकर उनको पृथक् पृथक् कर दिया। उस परमेश्वर की ऐसी बड़ी महिमा देखकर हम सदा पुरुषार्थ करें ॥४॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥

भाषार्थः—(सः) ईश्वर (जनुषः) उत्पन्न जगत् के (बुध्न्यात्) मूल देश से लेकर (अग्रम् अभि) उपरि भाग तक (आष्ट्र=आष्ट) व्याप्त हुआ। (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का स्वामी (देवता) प्रकाशमान परमेश्वर (तस्य) उस [जगत्] का (सम्राट्) सम्राट् [राजराजेश्वर] है। (यत्) क्योंकि (ज्योतिषः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर से (शुक्रम्) चमचमाता हुआ (अहः) दिन [सूर्य] (जनिष्ट=अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ, (अथ) तभी (विप्राः) इन्द्रियां वा बुद्धिमान् लोग (द्युमन्तः) प्रकाशमान होकर (वि) विविध प्रकार से (वसन्तु) निवास करें ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर इस सब जगत् के आदि अन्त में विराजमान है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही सार्वभौम शासक है, उसी ने सूर्य को बनाया है जिससे इन्द्रियां प्रकाश पाकर अपना व्यापार करती हैं। उसी से पंडित जन विद्या प्रकाश करके कीर्तिमान होते हैं ॥५॥

पं० सेवकलाल कृष्णदास की संहिता और सायणभाष्य में 'आष्ट्र' के स्थान में 'आष्ट' है ।

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥

भाषार्थः—(काव्यः) स्तुति योग्य परमेश्वर [वेनः,म० १] (अस्य) इस (पूर्व्यस्य) समग्र जगत् के हित करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (तत्) उस (महः) विशाल (धाम) तेज को (नूनम्) अवश्य (हिनोति) भेजता है। (ससन्) सोता हुआ (एषः) यह परमेश्वर (पूर्वे) समस्त (अर्धे) प्रवृद्ध जगत् के (विषिते) खुलने पर (इत्था) इस प्रकार से [जैसे सूर्य] (बहुभिः साकम्) बहुत [लोकों] के साथ (नु) शीघ्र (जज्ञे) प्रकट हुआ है ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर प्रलय की अवस्था में सोता हुआ सा था, उसने सृष्टि उत्पन्न करने पर, आकर्षण, आतप वृष्टि आदि द्वारा संसार के हित के लिए सूर्य, पृथिवी, बृहस्पति, शुक्र आदि असंख्य लोक रचे। उस जगदीश्वर का सामर्थ्य विचार कर हम अपना सामर्थ्य बढ़ाकर उपकार करें ॥६॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥

भाषार्थः—(यः) गतिवाला, पुरुषार्थी पुरुष (अथर्वाणम्) निश्चल, (पितरम्) पिता, (देवबन्धुम्) विद्वानों वा सूर्यादि दिव्य लोकों का बन्धु वा नियामक, (बृहस्पतिम्) बड़े बड़ों के स्वामी परमेश्वर को (नमसा) नमस्कार के साथ (च) निश्चय करके (अव गच्छात्) पहिचाने। [हे परमेश्वर !] (त्वम्) तू (विश्वेषाम्) सब [सुखों] का (जनिता) उत्पादक (असः) हो, (यथा) क्योंकि (कविः) मेधावी, (स्वधावान्) अन्नवान् वा स्वयं धारण सामर्थ्य वाला (देवः) परमेश्वर (न) कभी नहीं (दभायत्) ठगता है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य विश्वास करके सत्य स्वभावरूप परमेश्वर से प्रार्थना करें—"हे ईश्वर आप दुःखों से मुक्ति दाता हैं और आप कभी किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं सताते" और पुरुषार्थ से पाप कर्मों को त्यागकर सुख प्राप्त करें ॥७॥

सूक्तम् ॥२॥

१—८ ॥ कः प्रजापतिर्देवता । १—७ त्रिष्टुप्छन्दः, ८ आपो वत्समिति अनुष्टुप्, कस्मै देवायेति त्रिष्टुप् पादः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यो ३' स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो (आत्मदाः) प्राण [आत्मबल] का देने वा शुद्ध करने वाला और (बलदाः) शारीरिक बल का देने वा शुद्ध करने वाला है, (यस्य) जिस (यस्य) व्यापक वा पूजनीय के (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे) सब (देवाः) देवता [सूर्य चन्द्रादि सब लोक] (उपासते) सेवते हैं (यः) जो (यः) व्यापक वा पूजनीय (अस्य) इस (द्विपदः) दुपाये और (चतुष्पदः) चौपाये जीव समूह का (ईशे = ईष्टे) ईश्वर है, उस (कस्मै = काय) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की आज्ञा में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब देवता [यजु० १४ । २०] और मनुष्य गौ आदि सब प्राणी चलते हैं, उस जगदीश्वर की उपासना करके हम लोग आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाकर सुख भोगें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । २, और य० २५ । १३ में है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्येच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (महित्वा = ० त्वेन) अपनी महिमा से (प्राणतः) श्वास लेते हुए, चेतन और (निमिषतः) आँख मूंदे हुए, अचेतन (जगतः) जगत् का (एकः) एक (राजा) राजा (बभूव) हुआ है (यस्य) जिसकी (छाया) छाया [छाया समान अनुगामी अथवा आश्रय वा कान्ति अर्थात् ज्ञान] (अमृतम्) अमरपन [जीवन वा पुरुषार्थ वा जीवन की सफलता, मोक्ष पद] है और (यस्य = यस्यच्छाया) जिसकी [छाया अर्थात् छाया समान अनुगामी अथवा अनाश्रय, वा प्रकाश का ढकना,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञान] (मृत्युः) मरण [शरीर त्याग वा निरुत्साह, वा जीवन की विफलता, नरक] है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) श्रेष्ठ गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब चेतन और अचेतन जगत् के एक स्वामी परमेश्वर की आज्ञा में चलता है, वह जीते जागते हृदय वाला पुरुष पुरुषार्थ करके अमर [यशस्वी वा मुक्त] हो जाता है और इसके विपरीत मरे मन वाला निरुत्साही मृतक सा होकर नरक भोगता है ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। ३, और यजु० २५। ११, में है ॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

भाषार्थः—(यम्) जिसको (चस्कभाने) परस्पर रोकती हुई (क्रन्दसी) ललकारती हुई दो सेनायें (अवतः) प्राप्त होती हैं, और [जिसको] (भियसाने) हे डरती हुई (रोदसी) सूर्य और भूमि ! (अह्वयेथाम्) तुम दोनों ने पुकारा है। (यस्य) जिसका (असौ पन्थाः) यह मार्ग (रजसः) संसार का (विमानः) विविध प्रकार नापने वाला वा विमान रूप है, उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) उत्तम गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर को ही दो लड़ती हुई सेनायें पुकारती हैं, उसी की आज्ञा में सूर्य आदि लोक रहते हैं, उसी की व्याप्ति संसार भर में है, उसी परब्रह्म की भक्ति करके सब मनुष्य पुरुषार्थ करें ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। ६ और यजु० ३२। ७ और उत्तरार्ध यजु० ३२। ६ में है ॥

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्यादुर्वंऽन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसकी (महित्वा = ०-त्वेन) महिमा से (उर्वी) विस्तीर्ण (द्यौः) सूर्य (च) और (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी है, (यस्य) जिसकी [महिमा से] (अदः) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक है (यस्य) जिसकी [महिमा से] (असौ) यह (सूरः) धर्म प्रचारक विद्वान् मनुष्य (विततः) विस्तार वाला है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस (कस्मै) प्रजापति सुखदाता परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने सूर्य आदि अनेक लोकों को रचकर परस्पर आकर्षण द्वारा स्थिर किया है, और जिसने मनुष्य को अद्भुत शक्तियां देकर ऐश्वर्यवान् और प्रतापी बनाया है, उसकी भक्ति करके हम पुरुषार्थ के साथ अपनी उन्नति करें ॥४॥

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रं यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसकी (महित्वा = ० —त्वेन) महिमा से (विश्वे) सब (हिमवन्तः) हिम वाले पहाड़ हैं, और (यस्य) जिसकी [महिमा से] (समुद्रं) समुद्र [अन्तरिक्ष, वा पार्थिव समुद्र] में (रसाम्) नदी को (इत्) भी (आहुः) बताते हैं। (च) और (इमाः) यह (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (यस्य) जिसकी (बाहू) दो भुजायें हैं, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥५॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य अपनी दो भुजाओं के बल से अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सामर्थ्य से प्रजा पालन आदि बड़े २ बोझ उठाते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर ने दिशाओं अर्थात् अवकाश के भीतर सब लोकों को रचकर परस्पर आकर्षण द्वारा स्थापित किया है, उस जगदीश्वर की आज्ञा में चलकर हम यज्ञ से उत्तम गुण प्राप्त करें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १० । १२१ । ४ और यजु० २५ । १२ में है ॥

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

भाषार्थः—(गर्भम्) बीज को (दधानाः) धारण करते हुए, (अमृताः) मरण रहित [जीवन शक्ति वाले] (ऋतज्ञाः) सत्य नियम को जानने वाले (आपः) उन व्यापक जलों [वा तन्मात्राओं] ने (अग्रे) पहिले (विश्वम्) जगत् की (आवन्) रक्षा की थी, (यासु देवीषु अधि) जिन दिव्य गुण वालों के ऊपर (देवः) परमेश्वर (आसीत्) था उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥६॥

भावार्थः—सृष्टि की आदि में ईश्वर नियम से जल [वा तन्मात्रा]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भीतर जगत् का बीज और जीवन सामर्थ्य था, जिससे यह सृष्टि हुई है। उसी परमात्मा के नियम पर चलकर हम अपने जीवन को पुरुषार्थ करके सुधारें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। ७, ८ और यजु० २७। २५, २६ में है।

मनु महाराज ने भी ऐसा कहा है—

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ मनु० १।८॥

उस परमात्मा ने सब ओर ध्यान करके अपने शरीर [अव्याकृत रूप वा सामर्थ्य] से नानाविध प्रजाएं उत्पन्न करने की इच्छा करते हुए जल को पहिले उत्पन्न किया और उसमें बीज छोड़ दिया ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

भाषार्थः—(हिरण्यगर्भः) तेज वाले लोकों का आधार (अग्रे) पहिले ही पहिले (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्त्तमान था। वही (जातः) प्रकट होकर (भूतस्य) पृथिवी आदि पंचभूत का (एकः) एक (पतिः) पति, ईश्वर (आसीत्) हुआ, (सः) उसने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया, उस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥७॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् अविनाशी परमात्मा प्रलय काल में विद्यमान था। उसके कर्मों से ज्ञात होता है कि उस अकेले ने सूक्ष्म पंचभूत का यथावत् संयोग वियोग करके पृथिवी, सूर्य आदि सृष्टि को रचा और धारण किया है, उसकी उपासना से उत्तम गुण प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। १, यजु० १३। ४ तथा २५। १० और निरु० १०। २३ में है ॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्। तस्योत जायमानस्योल्ब
आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्रे) पहिले ही पहिले (वत्सम्) निवास स्थान संसार को वा बालक रूप संसार को (जनयन्तीः=० न्त्यः) उत्पन्न करते हुए (आपः) जल-धाराओं [वा तन्मात्राओं] ने (गर्भम्) बालक [रूप संसार] को (समैरयन्) यथावत् प्रकट किया, (उत) और (तस्य) उस (जायमानस्य) उत्पन्न होते हुए [बालक, संसार] का (उल्बः) जरायु [गर्भ की झिल्ली] (हिरण्ययः) तेजोमय परमात्मा (आसीत्) था, इस (कस्मै) सुखदायक प्रजापति परमेश्वर की (देवाय) दिव्य गुण के लिये (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा किया करें ॥८॥

भावार्थः—जल [वा तन्मात्राओं] की उत्पादन शक्ति से यह संसार उत्पन्न हुआ है और सृष्टि का आदिकारण परमेश्वर है, जो सृष्टि को सब ओर से गर्भ की झिल्ली के समान ढके हुए है और बीज में भी उत्पादन शक्ति देने वाला वही है—मन्त्र ६ देखो ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। १२१। ७ और यजु० २७। २५ में है।

मनु भगवान् ने इस प्रकार कहा है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ मनु० १।९॥

वह [बीज] सूर्य के समान प्रकाशवाला चमकीला अंडा हो गया, उस [अण्डे] में ब्रह्मा [परमात्मा] सब लोकों का पितामह [दादा] अपने आप प्रकट हुआ [अर्थात् उसमें परमात्मा की महिमा जान पड़ी] ॥

सूक्तम् ॥ ३ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता। १ पथ्या पङ्क्तिः, २—४—७ अनुष्टुप्, ३ गायत्री

शत्रुनाशोपदेशः=वैरी के नाश का उपदेश ॥

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः। हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१॥

भाषार्थः—(त्रयः) तीनों, (व्याघ्रः) सूंघकर पकड़ने वाला, बाघ, (पुरुषः) आगे बढ़ने वाला, [चोर] मनुष्य, और (वृकः) हुंडार वा भेड़िया (इतः) यहां से (उदक्रमन्) फलांगकर निकल गए। (सिन्धवः) नदियां (हि) अवश्य (हिरुक्) नीचे को (यन्ति) जाती हैं, (देवः) दिव्य गुण वाला (वनस्पतिः) सेवकों का [रक्षक होता है], वृक्ष भी (हिरुक्) नीचे को, [इसी प्रकार] (शत्रवः) हमारे वैरी [विरुद्ध नहीं होता है] (नमन्तु) झुकें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करे कि हिंसक मनुष्य और अन्य प्राणी वशीभूत होकर झुके रहें, जैसे नदी और वृक्ष नीचे को झुकते हैं ॥१॥

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२॥

भाषार्थः—(वृकः) हुण्डार वा भेड़िया (परेण) दूर (पथा) मार्ग से (एतु) चला जावे, (उत) और (तस्करः) पीड़ा देने वाला चोर (परमेण) अधिक दूर मार्ग से (दत्वती) दान्त वाली (रज्जुः) रसरी अर्थात् साँप (परेण) दूर से, और (अघायुः) बुरा चीतने वाला पापी (परेण) दूर से (अर्षतु) भाग जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने घर ऐसे बनावें और ऐसा प्रबन्ध करें जिससे दुष्ट मनुष्य और हिंसक जीवों से रक्षा रहे ॥२॥

अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३॥

भाषार्थः (व्याघ्र) हे बाघ ! (ते) तेरी (अक्ष्यौ) दोनों [हृदय और मस्तक की] आंखों को (च) और (च) भी (ते मुखम्) तेरे मुख को, (आत्) और भी (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नखों को (जम्भयामसि=०—मः) हम नष्ट करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे हिंसक जन्तुओं को अंग भंग करके नष्ट कर देते हैं, इसी प्रकार मनुष्य अपने अपने शत्रुओं को सेनादि और शरीर के अंगों से नष्ट करके प्रजा में शान्ति रक्खें ॥३॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४॥

भाषार्थः—(दत्वताम्) दाँत वालों में से (प्रथमम्) पहिले (व्याघ्रम्) बाघ, (आत् उ) और भी (अहिम्) सांप, (अथो) और भी (वृकम्) भेड़िये, (स्तेनम्) चोर (अथो) और भी (यातुधानम्) पीड़ा देने वाले राक्षस को (वयम्) हम (जम्भयामसि) नष्ट करते हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक दुष्ट जन्तुओं और उनके समान दुष्ट स्वभाव वाले चोर डाकुओं और रोगों तथा दोषों को नष्ट करें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ।।५।।

भाषार्थः—(यः स्तेनः) जो कोई चोर (अद्य) आज (आयति) आवे, (संपिष्टः] चूर चूर किया हुआ (सः) वह (अप अयति) हट जावे, और (पथाम्) मार्गों के (अपध्वंसेन) विनाश से (एतु) चला जावे, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रतापी मनुष्य (वज्रेण) वज्र से (तम्) उसको (हन्तु) मार डाले ।।५।।

भावार्थः—मनुष्य घर और रक्षकों का ऐसा प्रबन्ध करें कि यदि चोर आदि आ भी जावें तो मार्ग भूलकर निराश होकर भागने लगे, और राजा पकड़ कर उसे यथोचित दंड देवे ।।५।।

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ।।६।।

भाषार्थः—[हे चोर !] (मृगस्य) पशु [अर्थात् तेरी गाह] के (दन्तः) दान्त (मूर्णा) बन्द वा मोंथरे (उ) और (पृष्टयः) पसलियां (अपि शीर्णाः) चूर चुर [हो जावें], (ते) तेरी (गोधा) गोह (निम्रक्) नीचे (भवतु) हो जावे, और (मृगः) वह पशु (शशयुः) सोता हुआ [निरुद्यमी होकर] (नीचा) नीचे (अयात्) आ जावे ।।६।।

भावार्थः—(गोधा) गोह वा गेसांप एक छपकली जाति का जन्तु होता है, चोर उसकी पूंछ में डोरी बांधकर ऊंचे घरों पर फेंक देते, और उसे पकड़कर ऊपर चढ़ जाते हैं। मनुष्य घर ऐसे चिकने और दृढ़ बनावें और सावधानी रक्खें कि चोर, डाकुओं की गोह आदि फंदे घरों पर न चिपट सकें किन्तु निकम्मे होकर नीचे फिसल पड़ें ।।६।।

यत् संयमो न वि यंमो वि यंमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजा सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ।।७।।

भाषार्थः—(यत्) जिससे (इन्द्रजाः) परमेश्वर से प्रकट हुआ, और (सोमजाः) मंथन करने वाले तत्ववेत्ताओं अथवा सर्वप्रेरक शूरवीर पुरुषों से प्रकाशित हुआ (संयमः) यथावत् नियम (वि यमः) विरुद्ध नियम (न, नहीं होता), और (यत् जिससे (वि यमः) विरुद्ध नियम (संयमः) यथावत् नियम (न) नहीं होता है, [इसलिये हे मनुष्य तू] (आथर्वणम्) निश्चल वा मंगलप्रद परमेश्वर से आया हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्याघ्रजम्भनम्) व्याघ्रों [व्याघ्र स्वभाव वाले शत्रुओं और विघ्नों] के नाश का सामर्थ्य (असि) है ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर ने, और वेदवेत्ता आप्त पुरुषों ने जिन कर्मों को सत्य, और जिनको विरुद्ध वा असत्य बताया है, वे सर्वदा वैसे ही हैं, इसलिये मनुष्य विवेकपूर्वक विघ्नों को निर्मूल करके सदा आनन्द भोगें ॥७॥

सूक्तम् ॥ ४ ॥

१—८ ॥ वृषेन्द्रश्च देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्यो बलं वर्धयेत्—मनुष्य बल को बढ़ावे ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥

भाषार्थः—(याम् त्वा) जिस तुझको (गन्धर्वः) वेद विद्या धारण करने वाले पुरुष ने (मृतभ्रजे) नष्ट बल वाले (वरुणाय) उत्तम गुणयुक्त मनुष्य के लिये (अखनत्) खना है, (ताम् त्वा) उस तुझ (शेपहर्षणीम्) सामर्थ्य बढ़ाने वाली (ओषधिम्) ओषधि को (वयम्) हम (खनामसि) खनते हैं ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्व ऋषियों ने मनुष्य के हित के लिये परीक्षा करके श्रेष्ठ औषधियों को प्राप्त किया है, उसी प्रकार हम उत्तम औषधियों की परीक्षा और सेवन से बलवान् होकर सुखी रहें ॥१॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥२॥

भाषार्थः—(वाजिना) वेग रखने वाले (शुष्मेण) बल वा प्रभाव से (उषाः) प्रभात वेला (उत्=उदेजतु) ऊंची होवे, (उ) और (सूर्यः) सूर्य (उत्) ऊंचा चढ़े, (इदम्) यह (मामकम्) मेरा (वचः) वचन (उत्) ऊंचा होवे, (प्रजापतिः) प्रजाओं की पालन करनेवाली (वृषा) बल बढ़ाने वाली [कोई औषधि वा मूसाकन्नी ओषधि विशेष] (उदेजतु) ऊंची होवे ॥२॥

भावार्थः मनुष्य प्रभात समय उठकर ईश्वर चिन्तनादि, सूर्य के उदय होने पर जीविकादि की प्राप्ति, और आप्त पुरुषों से वेद अध्ययनादि और बलवर्द्धक वृषा आदि ओषधि सेवन से बलवृद्धि करके आनन्द भोगें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषा 'स्त्रीलिंग' ओषधि के नाम अमरकोश में ये हैं—

चित्रोपचित्रा न्यग्रोधी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ।
प्रत्यक्श्रेणी सुतश्रेणी रण्डा मूषिकपर्ण्यपि ॥ अम० को० २।५॥

चित्रा, उपचित्रा, न्यग्रोधी, द्रवन्ती, शम्बरी, वृषा, प्रत्यक्श्रेणी सुतश्रेणी, रण्डा, मूषिकपर्णी, ये दस नाम मूषापर्णी के हैं ॥

यथा॑ स्म ते विरोह॑तोऽभित॑प्तमि॒वान॑ति ।
तत॑स्ते शुष्म॑वत्तरमि॒यं कृ॑णोत्वोष॑धिः ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (यथा स्म) जिस प्रकार से ही (ते विरोहतः) तुझ वृद्धिशील का [मन विद्या से] (अभितप्तमिव) प्रतापयुक्त सा (अनति) चेष्टा करता है, (ततः) उस प्रकार से ही (ते=त्वाम्) तुझे (इयम् ओषधिः) यह ओषधि (शुष्मवत्तरम्) अधिक बल युक्त (कृणोतु, करे ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार विद्याभ्यास से मनुष्यों का मन बढ़ता जावे उसी प्रकार परीक्षित उत्तम उत्तम बलवर्धक वृषा आदि ओषधि और यथावत् आहार विहार से अपना शरीर बल भी बढ़ावें ॥३॥

उच्छु॒ष्मौष॑धीनां सार॑ ऋष॒भाणा॑म् ।
सं पुं॒सामि॑न्द्र वृष्ण्य॑मस्मिन् धेहि तनूव॑शिन् ॥४॥

भाषार्थः—(ऋषभाणाम्) श्रेष्ठ [अथवा कांकड़ासिंगी आदि] (ओषधीनाम्) ओषधियों में से (शुष्मा) बल वाली (सारा) श्रेष्ठ [वा वृषा नाम ओषधि] (उत्=उद्वेजतु) उदय हो । (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में रखने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य वाले सद्वैद्य ! (पुंसाम्) रक्षाशील पुरुषों के मध्य (वृष्ण्यम्) बल (अस्मिन्) इस मनुष्य में (संधेहि) यथावत् धारण कर दे ॥४॥

भावार्थः—सद्वैद्य प्रयत्न करें कि उत्तम सारवती बलवर्धक [वृषा आदि] ओषधियों के सेवन से मनुष्य ऐसे वीर्यवान् हों कि शूरवीरों के मध्य उनके बल की प्रशंसा होवे ॥४॥

'ऋषभ' और 'सारा' श्रेष्ठ वाचक हैं और ओषधि विशेष भी हैं ॥

अपां॑ रस॑ः प्रथम॒जोऽथो॒ वन॒स्पती॑नाम् ।
उ॒त सोम॑स्य॒ भ्रात॑स्युता॒र्शम॑सि वृष्ण्य॑म् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः [हे औषध !] तू (अपाम्) व्यापन शील जलों का (अथो) और भी (वनस्पतीनाम्) अपने सेवा करने वालों के पालक वृक्षों का (प्रथमजः) प्रथम उत्पन्न होने वाला (रसः) रस, (उत) और (सोमस्य) अमृत वा ऐश्वर्य का (भ्राता) प्रकाशक वा धारक और पोषक (असि) है, (उत) और (आर्शम्) शूरों का हितकारक (वृष्ण्यम्) बल (असि) है ॥५॥

भावार्थः उत्तम जल और उत्तम वृक्षों और अन्न आदिकों के यथावत् सेवन से मनुष्य ऐश्वर्यवान् और बलवान् होते हैं ॥५॥

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (अग्ने) हे भौतिक अग्नि ! (अद्य) आज (सवितः) हे लोकप्रेरक सूर्य ! (अद्य) आज (देवि) दिव्य गुण वाली (सरस्वति) विज्ञानवति विद्या ! (अद्य) आज (ब्रह्मणस्पते) हे अन्न, वा धन, वा वेद, वा ब्राह्मण के रक्षक परमेश्वर ! (अस्य) इसके (पसः) राज्य को (धनुः इव) धनुष के समान (आ) भले प्रकार (तानय) फैला ॥६॥

भावार्थः मनुष्य यथावत् ओषधि-सेवन से अपना शारीरिक और मानसिक बल बढ़ाकर अग्नि, सूर्य आदि पदार्थों और अनेक उत्तम विद्याओं से नित्य उपकार करता हुआ, ईश्वर के आश्रय से अन्न आदि प्राप्त करके अपना राज्य और सुख फलावे, जैसे धनुष् को लक्ष्य के लिये दृढ़ तानते हैं ॥६॥

अहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शे इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७॥

भाषार्थः - (अहम्) मैं [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (पसः) राज्य को (आ) यथावत् (तनोमि) फैलाता हूं (ज्याम् इव) जैसे डोरी को (धन्वनि अधि) धनुष् में । (अनवग्लायता) विना ग्लानि वा थकावट के (सदा) सदा [शत्रुओं पर] (क्रमस्व) धावा कर, (ऋशःइव) जैसे हिंसकजन्तु, सिंह आदि (रोहितम्) हरिण पर ॥७॥

भावार्थः—जैसे लक्ष्य बेधने के लिये धनुष् में डोरी को दृढ़ कसते हैं, वैसे ही बलवान् पुरुष राज्य प्रबन्ध को प्रजा के सुख के लिये यथाशास्त्र दृढ़ रक्खे, और जैसे सिंह आदि हरिण आदि को दबोच लेते हैं, वैसे ही शत्रुओं पर धावा करके कुरीतियों को मिटावे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८॥

भाषार्थः -(अश्वस्य) घोड़े के, (अश्वतरस्य) खच्चर के, (अजस्य) बकरे के, (च) और (पेत्वस्य) मेढ़े के, (अथ) और भी (ऋषभस्य) बलीवर्द के (ये वाजाः) जो बल हैं, (तान्) उनको, (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में रखने वाले शूर ! (अस्मिन्) इस पुरुष में (धेहि) धारण कर ॥८॥

भावार्थः शूर-वीर पुरुष अश्व आदि उपकारी पशुओं को पालकर खेती, वाणिज्य, सेना आदि के यथायोग्य कामों में लगाकर संसार में सुख बढ़ावें ॥८॥

सूक्तम् ५ ॥

१ ७ इन्द्रो देवता । १—६ अनुष्टुप्, ७ पथ्या पङ्क्तिः ॥

प्रजास्वापनार्थं गीतम्—बच्चों के सुलाने का गीत अर्थात् लोरी ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥१॥

भाषार्थः (यः) जो (वृषभः) सुख बरसाने वाला (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों अर्थात् तेज नक्षत्रों वाला चन्द्रमा [अथवा सहस्रों किरणों वाला सूर्य] (समुद्रात्) आकाश से (उदाचरत्) उदय हुआ है, (तेन) उस (सहस्येन) बल के लिये हितकारक [चन्द्रमा] से (वयम्) हम लोग (जनान्) सब जनों को (नि स्वापयामसि) सुला दें ॥१॥

भावार्थः—माता पिता आदि बच्चों को चन्द्रमा के दर्शन कराते हुए सुलावें, जिससे उनके शरीर की पुष्टि और नेत्रों की ज्योति बढ़े (सहस्रशृङ्गः) का अर्थ सूर्य भी है, अर्थात् सूर्य का प्रकाश आने से यह घर स्वास्थ्यकारक है । हम सब सोवें] ॥१॥

इस सूक्त के चार मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद म० ७ । सू० ५५ के हैं जिनका इन्द्र देवता है, इससे यहां भी सूक्त का इन्द्र ही देवता है । यह मन्त्र उक्त सूक्त का मन्त्र ७ है ॥

न भूमिं वातो अति वाति नातिं पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः – (न) न (वातः) पवन (भूमिम्) भूमि पर (अति) अत्यन्त (वाति) चलता है, और (न) न (कश्चन) कोई जन (अति) ऊपर से (पश्यति) देखता है [हे पवन !] (इन्द्रसखा) इन्द्र अर्थात् जीवात्मा को अपना सखा रखने वाला तू, (चरन्) चलता हुआ, (सर्वाः स्त्रियः) सब स्त्रियों (च) और (शुनः) कुत्तों को (च) भी (स्वापय) सुला दे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करे कि रात्रि को सोते समय तीव्र वायु वा अन्य किसी तुच्छ कारण से निद्रा भंग न हो और न बाहिरी पुरुष गुप्त बातें सुने ॥२॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ता सर्वाः स्वापयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(प्रोष्ठेशयाः) बड़े घर वा बड़े आंगन में सोने वाली, (तल्पेशयाः) खाटों पर सोने वाली, और (वह्यशीवरीः—०—र्यः) हिंडौला आदि में सोने वाली (याः) जो (नारीः=नार्यः) नारियां हैं, और (याः) जो (स्त्रियः) स्त्रियाँ (पुण्यगन्धयः) पुण्य गति वाली हैं, (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापया—मसि=०—मः) हम सुलाते हैं ॥३॥

भावार्थः - गृहस्थ लोग स्त्रियों के रहने के घर ऐसे उत्तम बनावें जिससे रात्रि को वे सुखपूर्वक सोया करें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० ७ । ५५ । ८ में है ॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे । ४॥

भाषार्थः —(एजदेजत्) इधर उधर पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु को (अजग्रभम्) मैंने संग्रह कर लिया है, (चक्षुः) नेत्र और (प्राणम्) प्राण मार्ग [नासिका] को (अजग्रभम्) मैंने ग्रहण कर लिया है, और (रात्रीणाम्) रात्रियों के मध्य (अतिशर्वरे) अत्यन्त अन्धकार में (सर्वा=सर्वाणि) सब (अङ्गानि) अङ्गों को (अजग्रभम्) मैंने थाम लिया है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रिय निग्रह करके शान्तचित्त होकर रात्रि में सोवें ॥४॥

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यः) जो कोई (आस्ते) बैठता है, (यः) जो (चरति) चलता है, (च) और (यः) जो (तिष्ठन्) खड़े होकर (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है, (तेषाम्) उनकी (अक्षीणि) आंखों को (तथा) उस प्रकार से (संदध्मः) हम मूंदते हैं, (यथा) जैसे (इदम्) इस (हर्म्यम्) हर्म्य [धनियों के मनोहर घर] को ॥५॥

भावार्थः—जैसे धनिक लोगों के घर सुरक्षित होते हैं, जिन्हें बन्ध करके सुखपूर्वक वे सोते हैं वैसे ही घर सब गृहस्थ बनावें, जिनमें निर्भय होकर रात्रि को आनन्द से सोवें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद मं० ७ । ५५ । ६ । में है ॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥६॥

भाषार्थः—(अस्यै) इस [सन्तति, पुत्री वा पुत्र के हित] के लिये (माता) माता (स्वप्तु) सोवे, (पिता) पिता (स्वप्तु) सोवे, (श्वा) कुत्ता (स्वप्तु) सोवे, (विश्पतिः) प्रजापालक गृहपति (स्वप्तु) सोवे । (ज्ञातयः) ज्ञाति के लोग (स्वपन्तु) सोवें, और (अयम्) यह (जनः) सब जने (अभितः) चारों ओर (स्वप्तु) सोवें ॥६॥

भावार्थः—अब रात्रि में लोग चुपचाप सो जावें खलबल न मचावें जिससे यह बालक सुखपूर्वक सो जावे ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ७ । ५५ । ५ में है ॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् । ओत्सूर्य-
मन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः ॥७॥

भाषार्थः (स्वप्न) हे निद्रा ! (स्वप्नाभिकरणेन) नींद के उपाय वा साधन से (सर्वं जनम्) सब जनों को (नि, स्वापय) सुलादे । (अन्यान्) दूसरे पुरुषों को (ओत्सूर्यम्) सूर्य उदय तक (स्वापय) सुला, (अहम्) मैं (इन्द्रः इव) प्रतापी मनुष्य के समान (अरिष्टः) नाश रहित और (अक्षितः) हानि रहित (आव्युषम्) प्रभात तक (जागृतात्=जागराणि) जागरण करूं ॥७॥

भावार्थः—घर के अन्य सब स्त्री पुरुष अपने अपने स्थानों पर सो जावें और गृहपति यथावत् जागकर सावधानी रक्खें ॥७॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—८ ॥ विषं देवता । १, ३—८ अनुष्टुप्, २ यावतीति त्रिष्टुप्, वाचमित्यनुष्टुप् ॥

विषनिवारणायोपदेशः—विष दूर करने के लिये उपदेश ॥

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१॥

भाषार्थः—(प्रथमः) सब वर्णों में प्रधान, (दशशीर्षः) दस प्रकार के [१—दान, २—शील, ३—क्षमा, ४—वीर्य, ५—ध्यान, ६—बुद्धि, ७—सेना, ८—उपाय, ९—गुप्तदूत, और १०—ज्ञान] बलों में शिर रखने वाला और (दशास्यः) दस दिशाओं में मुख के समान पोषण शक्ति वाला वा दश दिशाओं में स्थिति वाला (ब्राह्मणः) ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ । (सः प्रथमः) उस प्रधान पुरुष ने (सोमम्) सोम नाम ओषधि का रस (पपौ) पिया, और (सः) उसने (विषम्) विष को (अरसम्) निर्गुण कर दिया ॥१॥

भावार्थः—जैसे वेदवेत्ता सद्वैद्यों ने पूर्ण विद्या प्राप्त करके सब दिशाओं में खोजकर संसार के उपकार के लिये सोम रस को पाया और आरोग्यनाशक और शरीरविकारक विष को हटाया है, हम लोग इसी-प्रकार सोमलता आदि औषधों की प्राप्ति और परीक्षा करके संसार का कष्ट मिटाकर सबको सुख पहुंचावें और ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता होकर अगुआ बनें ॥१॥

सोम का विशेष वर्णन ऋग्वेद मण्डल ९, और सामवेद उत्तरार्चिक प्रपाठक १ आदि में है, यहां दो मन्त्र लिखते हैं ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् ।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद ९ । १ । १, २ ॥ यजु० । २६ । २५, २६ ॥ साम उत्तरा० प्र० १ अ० १ त्रिक १५ ॥

(सोम) हे सोम रस (स्वादिष्ठया) बड़ी स्वादिष्ठ और (मदिष्ठया) अति आनन्द कारक (धारया) धारा से (इन्द्राय) बड़े प्रतापी इन्द्र, पुरुष के लिये (पातवे) पीने को (सुतः) छनकर (पवस्व) शुद्ध हो ॥१॥

(रक्षोहा) रोगादि दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले (विश्वचर्षणिः) सब मनुष्यों के हितकारक उस [सोम] ने (अयोहतम्) सुवर्ण से बने हुए (सधस्थम्) एक साथ ठहरने योग्य (योनिम्) स्थान (द्रुणा = द्रोणे) द्रोण कलश में (अभि) व्याप कर (आ असदत्) पाया है ॥२॥

सोम का वृत्तांत सुश्रुत चरक आदि वैद्यक ग्रन्थों में सविस्तार है वहां देख लेवें ॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी = ०—द्यौ) सूर्य और पृथिवी लोक (वरिम्णा) अपने विस्तार से (यावती = ०=त्यौ) जितने हैं, और (सप्त) जीव से मिली हुई वा गमन शील, वा सात (सिन्धवः) बहने वाली नदी रूप इन्द्रियां [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (यावत्) जितने (वितष्ठिरे) फैलकर स्थित हैं। (इतः) इस स्थान से (विषस्य) विष की (दूषणीम्) खंडन करने वाली (ताम्) उस (वाचम्) वाणी को (निरवादिषम्) मैंने कह दिया है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उपाय करें कि आकाश और पृथिवी के सब गोचर पदार्थों में विष का संसर्ग न हो और पुष्टिकारक और बलवर्धक वस्तुओं के स्पर्श, दर्शन, श्रवण, मनन, संभोग आदि से आनन्द प्राप्त हो ॥२॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३॥

भाषार्थः—(विष) हे विष ! (सुपर्णः) शीघ्रगामी (गरुत्मान्) सुन्दर पंख वाले गरुड़ ने (प्रथमम्) प्रसिद्ध (त्वा) तुझ को (आवयत्) खाया, तूने [उसे] (न) न तो (अमीमदः) मत्त किया और (न) न (अरूरुपः) घबरा दिया, (उत) किन्तु तू (अस्मै) उसके लिये (पितुः) अन्न (अभवः) हुआ है ॥३॥

भावार्थः—जैसे गरुड़, मोर आदि पक्षी अपनी विष पाचक शक्ति से विषधारी सर्प को खाकर अपना शरीर पुष्ट करते हैं, इसी प्रकार सद्वैद्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधि द्वारा विषजनक रोगों का नाश करके संसार में नीरोगता फैलाते हैं ॥३॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥४॥

भाषार्थः – (यः) जिस किसी पुरुष ने (पञ्चाङ्गुरिः) पांचों अंगुली जमा कर (वक्रात्) टेढ़े (चित्) ही (धन्वनः अधि) धनुष पर से (अपस्कम्भस्य) तीर के बन्धन की (शल्यात्) अणि व पैनी कील से (ते) तेरे लिये [विष] (आस्यत्) चलाया है, (अहम्) मैंने (विषम्) उस विष को (निः) निकाल कर (अवोचम्) वचन बोला है ॥४॥

भावार्थः—यदि शत्रु अपने छल बल से दृढ़ हाथ से छोड़े हुए विष में बुझे तीर से किसी वीर मनुष्य के शरीर में विष प्रवेश करदे, चतुर वैद्य उसकी चिकित्सा करके यश प्राप्त करे ॥४॥

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५॥

भाषार्थः—(शल्यात्) बाण की अणि से, (प्राञ्जनात्) लेप से (उत) और (पर्णधेः) पंख वाले तीर के भाग से (विषम्) विष को (निः) निकाल कर (अवोचम्) मैंने वचन बोला है। (शृङ्गात्) तीक्ष्ण (अपाष्ठात्) बाण के फल से और (कुल्मलात्) बाण छिद्र से (विषम्) विष को (निः=निर्गमय्य) निकाल कर (अहम्) मैंने (अवोचम्) वचन कहा है ॥५॥

भावार्थः— विषैले बाण के जिस जिस खंड से जहाँ जहाँ शरीर में घाव हों, बुद्धिमान् वैद्य वहाँ वहाँ से सावधानी के साथ विष निकालकर घायल पुरुष का स्वस्थ करे ॥५॥

अरसस्ते इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥६॥

भाषार्थः—(इषो) हे हिंसक वैरी ! (ते) तेरे (शल्यः) बाण की अणि (अरसः) निर्बल, (अथो) और भी (ते) तेरा (विषम्) विष (अरसम्) निर्बल [हो जावे] । (उत) और (अरस) हे निर्बल शत्रु ! (अरसस्य) निर्बल (वृक्षस्य) वृक्ष का (ते धनुः) तेरा धनुष (अरसम्) निकम्मा [हो जावे] ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - चिकित्सक लोग ऐसी उत्तम संजीवनी औषधें उपस्थित रक्ख जिनसे शत्रुओं के अस्त्र शस्त्रों के घाव योधाओं के अंगों में भर कर तुरन्त अच्छे हो जावें ॥६॥

ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जिन शत्रुओं ने [विष को] (अपीषन्) पीसा है, (ये) जिन्होंने (अदिहन्) लेप किया है, (ये) जिन्होंने (आस्यन्) दूर से फेंका है, और (ये) जिन्होंने (अवासृजन्) पास से छोड़ा है। (ते सर्वे) वे सब (वध्रयः) असमर्थ (कृताः) कर दिये गये, और (विषगिरिः) विष पर्वत भी (वध्रिः) निर्वीर्य (कृतः) कर दिया गया है ॥७॥

भावार्थः—राजा विष प्रयोगी पुरुषों को यथावत् दंड देकर सर्वथा बलहीन कर देवे, और विष के उत्पत्ति स्थानों को भी नियमबद्ध रक्खें ॥७॥

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥८॥

भाषार्थः (ओषधे) हे दाह [जलन] के धारण करने वाले विष ! (ते) तेरे (खनितारः) खोदने वाले (वध्रयः) असमर्थ [हो जावें] और (त्वम्) तू भी (वध्रिः) निर्वीर्य (असि) है। (सः) वह (पर्वतः) अवयव वाला (गिरिः) पहाड़ (वध्रिः) असमर्थ [हो जावे] (यतः) जिससे (इदम् विषम्) यह विष (जातम्) उत्पन्न हुआ है ॥८॥

भावार्थः—राजा विष व्यापारियों और विष स्थानों को नीति, विधान से अपने वश में रक्खे ॥८॥

सूक्तम् ७॥

१—७ ॥ विषो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

विषनाशायोपदेशः—विष नाश करने का उपदेश ॥

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वरणावत्याम् अधि) उत्तम गुण वाली क्रिया में [अथवा वरुण नाम वाली ओषधि में] वर्तमान (इदम्) यह (वाः) जल (वारयातै) [विष को] हटावे ! (तत्र) उस [जल] में (अमृतस्य) अमृत अर्थात् स्वास्थ्य का (आसिक्तम्) रस है। (तेन) उस [जल] से (ते विषम्) तेरे विष को (वारये) मैं हटाता हूं ॥१॥

भावार्थः—(१) यथावत् क्रिया के किये हुए जल के अभिषेक आदि से और (२) वरुण नाम औषध के रस प्रयोग से विष और विष जनक रोगों की निवृत्ति होती है ॥१॥

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥२॥

भाषार्थः—(प्राच्यम्) पूर्व वा सन्मुख दिशा का (विषम् विष (अरसम्) अरस होवे, और (यत्) जो (उदीच्यम्) उत्तर वा बांयी दिशा में है [वह भी] (अरसम्) अरस होवे। (अथ) और (इदम्, यह (अधराच्यम्, नीचे की दिशा का [विष] (करम्भेण) जल सेचन से [वा दही मिले सत्तुओं से] (विकल्पते) असमर्थ हो जाता है ॥२॥

भावार्थः—चिकित्सक लोग विष और विषैले रोगों को यथावत् जल सेचन से अथवा सत्तुओं के प्रयोग से हटावें ॥२॥]

'करम्भ' शब्द का अर्थ जल क्रिया वा जल सेचन अथवा दही मिले हुए सत्तुओं का है [करम्भो दधिसक्तवः—इत्यमरः, २ । ९ । ४८]

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३॥

भाषार्थः—(दुष्टनो) हे शरीर के दुःख दायक [विष !] (किल) तिरस्कार के साथ (त्वा) तेरे लिये [तेरे हटाने के लिये] (तिर्यम्) रोग जीतने में समर्थ, (पीवस्पाकम्) मुटाई वा चर्बी रोग पचाने वाले और (उदारथिम् जाठर अग्नि बढ़ाने वाले (करम्भम्) जल सेचन [वा दही सत्तुओं] को (कृत्वा) बनाकर (क्षुधा) भूख के कारण (जक्षिवान् = यः जक्षिवान् तम्) जिसने खा लिया, उसको (सः = स त्वम्) उस तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥३॥

भावार्थः—जल सेचन और सत्तुओं के सेवन से विषैले रोगों का नाश होता है ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४॥

भाषार्थः—(मदावति) हे मूर्छा करने वाली [विष पीड़ा] (ते) तेरे (मदम्) मद्यपन को (शरमिव) तीर के समान (वि) अलग (पातयामसि = ०—मः) हम फेंके देते हैं। और (येषन्तम्) खदबदाते हुए (चरुमिव) चरुये [वासन] के समान (त्वा) तुझ को (वचसा) वचन मात्र से [शीघ्र] (प्रस्थापयामसि = ०—मः) हम हटाते हैं ॥४॥

भावार्थः—वैद्य लोग विषैली, मदकरी पीड़ाओं को बहुत शीघ्र प्रयत्न करके हटावें, जैसे धनुष से तीर को फेंकते अथवा अतितप्त बरतन को आग पर से हटाते हैं ॥४॥

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभिखाते न रूरुपः ॥५॥

भाषार्थः—(आचितम्) एकत्र हुए (ग्रामम् इव) जन समूह [शत्रु वृन्द] के समान [तुझको] (वचसा) वचन मात्र से (परि स्थापयामसि = ०—मः) हम घेरते हैं। (वृक्षः इव) वृक्ष के समान (स्थाम्नि) अपने स्थान पर (तिष्ठ) ठहर। (अभिखात) हे कुद्दाल से खोदी हुई! तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया हैं ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् वैद्य विचारपूर्वक उपाय के साथ विष को प्रभाव रहित करके निकाल देते हैं जैसे शूर पुरुष शत्रुसेना को घेरकर हरा देते हैं ॥५॥

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभिखाते न रूरुपः ॥६॥

भाषार्थः—(त्वा) तुझसे (पवस्तैः) मंडप वा घरों के लिये, (दूर्शेभिः=दूर्शैः) वस्त्र गृहों के लिये, (उत) और (अजिनैः) चर्म के लिये (परि अक्रीणन्) उन्होंने [पुरुषों ने] व्यापार किया है। (ओषधे) हे दाहधारण करने वाली! (त्वम्) तू (प्रक्रीः) बिकाऊ वस्तु (असि) है। (अभिखाते) हे कुद्दाल से खोदी हुई! तूने (न) नहीं (रूरुपः) मूर्छित किया है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य अपने लाभ के लिये विष का व्यापार भी करते हैं, विद्वान् लोग अपनी योग्यता से विष को निर्बल करके रखते हैं ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जिन (प्रथमाः) प्रधान (अनाप्ताः) अत्यन्त यथार्थ ज्ञानी पुरुषों ने (वः) तुम्हारे लिये (यानि) पूजनीय (कर्माणि) कर्म (चक्रिरे) किये हैं, वे (नः) हम (वीरान्) वीरों को (अत्र) यहां पर (मा दभन्) न मारें (तत्) सो (एतत्) इस कर्म को (वः) तुम्हारे (पुरः) आगे (दधे) मैं धरता हूँ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि जगत् हितकारी महात्मा लोग आनन्द प्राप्त करके सब की यथावत् रक्षा करते रहें ॥७॥

यह मन्त्र अ० ५ । ६ । २ । में भी है ।

सूक्तम् ८ ॥

१—७ ॥ भूतानामधिपतिर्देवता ॥ १, ३, ७ त्रिष्टुप् शिष्टानुष्टुप् ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राजतिलक यज्ञ का उपदेश ॥

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥

भाषार्थः—(भूतः) विभूति वा ऐश्वर्य वाला पुरुष (भूतेषु) सब स्थावर जंगम पदार्थों में (पयः) दूध, अन्न जल आदि (आ) अच्छे प्रकार (दधाति) धारण करता है, (सः) वही (भूतानाम्) प्राणी और अप्राणियों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता (बभूव) हुआ है । (मृत्युः) मृत्यु [मारणसामर्थ्य] (तस्य) उसके (राजसूयम्) राजतिलक यज्ञ में (चरति) अनुचर होता है । (सः राजा) वह राजा (इदम् राज्यम्) इस राज्य को (अनु मन्यताम्) अङ्गीकार करे ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रतापी पुरुष को विद्वान् पुरुषों ने राजा बनाया है, वह अपनी बुद्धि, नीति और वीरता से प्रजा के प्राण और धन की रक्षा करता है, और वही शिष्टों का पालन करके मृत्यु से बचाता और दुष्टों को दण्ड देकर मारता है ॥१॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (उग्रः) तेजस्वी, (चेत्ता) चैतन्य स्वभाव और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सपत्नहा) शत्रुनाशक तू (अभि) सब ओर से (प्रेहि) आगे बढ़, (मा अप वेनः) पीछे न हट। (मित्रवर्धन) हे मित्रों के बढ़ाने हारे! (आतिष्ठ) [सिंहासन वा हाथी आदि पर] आकर बैठ। (देवाः) विजय चाहने वाले वीर विद्वानों ने (तुभ्यम्) तेरे लिये (अधिब्रुवन्) यह अनुग्रह वचन दिया है ॥२॥

भावार्थः—(देवाः) मुख्य मुख्य शूर विद्वान् लोग राजा को सहाय वचन के साथ अभिनन्दन करके राजसिंहासन और हाथी आदि यान पर बिठलावें और (मित्रवर्धन) राजा माननीय पुरुषों का आदर मान करे ॥२॥

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वे) सब जनों ने (आतिष्ठन्तम्) [सिंहासन आदि पर] बैठते हुए राजा को (परि अभूषन्) सब प्रकार से अलंकृत वा प्राप्त किया है। (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (वसानः) धारण करता हुआ, (स्वरोचिः) स्वयं प्रकाशमान वह (चरति) वर्त्तमान होता है। (वृष्णः) उस ऐश्वर्य वाले (असुरस्य) प्राणदाता का (तत्) वह (महत्) विशाल (नाम) नाम है। (विश्वरूपः) अनेक प्रकार के स्वभाव वाले उससे (अमृतानि) अनश्वर सुखों को (आ तस्थौ) प्राप्त किया है ॥३॥

भावार्थः—प्रजा गण सिंहासन पर बैठे हुए राजा को भेंट आदि देकर सेवा करें, और राजा यथायोग्य सबसे बर्त्ताव करके आनन्द प्राप्त करे ॥३॥

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (व्याघ्रः) बाघ के समान पराक्रमी तू (वैयाघ्रे अधि) बाघ के स्वभाव में [स्थित होकर] (महीः दिशः) बड़ी दिशाओं को (वि क्रमस्व) विक्रम से जीत। (सर्वाः) सब (विशः) प्रजायें, और (दिव्याः) उत्तम (पयस्वतीः=०—त्यः) सार वाली (आपः) जल धारायें (त्वा) तुझको (वाञ्छन्तु) चाहें ॥४॥

भावार्थः—राजा व्याघ्र के समान पराक्रमी और जल के समान उपकारी होवे, सब प्रजागण उससे प्रीति करें और राज्य में अनावृष्टि आदि न हो ॥४॥

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में की (उत वा) और भी (पृथिव्याम्) पृथिवी पर की (याः) जो (दिव्याः) दिव्य (आपः) जल धारायें (पयसा) अपने रस से (मदन्ति) [प्राणियों को] तृप्त करती हैं, (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब (अपाम्) जल धाराओं के (वर्चसा) बलदायक सार से (त्वा) तुझको (अभि षिञ्चामि) अभिषेक कराता हूँ ॥५॥

भावार्थः—राजगद्दी पर बैठने के समय राजा को ओषधियों के रस से मिले हुए वृष्टि, नदी, कूप आदि के उत्तम जलों से स्नान करावें, जिससे उसका शरीर पुष्ट रहे और जल के समान वह अपने प्रजा को सुख पहुँचावे ॥५॥

अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वा) तुझको (दिव्याः) दिव्य (पयस्वतीः=० - त्यः) सारयुक्त (आपः) जल धाराओं ने (वर्चसा) अपने बलदायक सार से (अभि असिचन्) सब प्रकार सींचा हैं, (यथा) जिससे तू (मित्रवर्धनः) मित्रों की वृद्धि करने वाला (असः) होवे। (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (तथा) वैसे गुण वाला [जैसा जल] (करत्) करे ॥६॥

भावार्थः - अभिषेक के उपरान्त सब लोग आशीर्वाद दें, हे राजन् ! तुझे यह अभिषेक वा स्नान इसलिये कराया है कि जैसे जल अन्न आदि उत्पन्न करके संसार का उपकार करता है, वैसे ही सर्वप्रेरक परमेश्वर के अनुग्रह से तू प्रजाप्रेरक होकर अपने हितैषी जनों की सदा उन्नति करता रहे ॥६॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व १न्तः ॥७॥

भाषार्थः—(परिषस्वजानाः) सब ओर से चिपटे हुए लोग (एना=एनम्) इस (व्याघ्रम्) व्याघ्ररूप और (सिंहम्) सिंह समान [पराक्रमी राजा] को (महते) बहुत ही (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (हिन्वन्ति) तृप्त करते हैं, और (सुभुवः) सुन्दर जन्म वा बड़ी भूमिवाले पुरुष (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर (तस्थिवांसम्) स्थित हुए, (समुद्रम् न) समुद्र के समान [गम्भीर स्वभाव] और (द्वीपिनम्) चीते [के तुल्य पराक्रमी राजा] को (मर्मृज्यन्ते) अनेक प्रकार से शुद्ध करते वा सजाते हैं ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—अभिषेक विधि के समाप्त हो चुकने पर बड़े बड़े लोग प्रशंसा करके राजा का उत्साह बढ़ावें और अलंकार आदि से उसको यथावत् शोभायमान करें ॥७॥

सूक्तम् ९ ॥

१—१० ॥ आञ्जनं देवता ॥ १, २, ४—१० अनुष्टुप् । ३ पथ्या पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१॥

भाषार्थः—(एहि) आ (जीवम्) जीव को (त्रायमाणम्) पालता हुआ (पर्वतस्य) पूर्ति करने वाले वा अवयवों वाले मेघ के (अक्ष्यम्) व्यवहार के लिये हितकारक, (विश्वेभिः) सब (देवैः) दिव्य गुणों के साथ (दत्तम्) दिया हुआ (कम्) तू सुख स्वरूप ब्रह्म (जीवनाय) हमारे जीवन के लिये (परिधिः) परकोटा रूप (असि) है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर मेघ के समान जगत् की रक्षा करने वाला हमारे हृदयों में विराजमान होकर हमारा प्राणाधार है, ऐसा समझ कर हम पुरुषार्थ के साथ सुख प्राप्त करें ॥१॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥

भाषार्थः—तू (पुरुषाणाम्) अग्रगामी मनुष्यों का (परिपाणम्) रक्षासाधन, और (गवाम्) गौओं का (परिपाणम्) रक्षा साधन (असि) है। और (अर्वताम्) शीघ्रगामी (अश्वानाम्) घोड़ों के (परिपाणाय) पूर्ण रक्षा के लिये (तस्थिषे) तू ही स्थित हुआ है ॥२॥

भावार्थः—वह परब्रह्म कृपा करके हमसे सब पदार्थों की रक्षा कराता है, इस कारण अभिमान छोड़कर हम पुरुषार्थ करते रहें ॥२॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन । उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(उत) और (आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तू (परिपाणम्) हमारी रक्षा का साधन, (यातुजम्भनम्) पीड़ाओं का नाश करने वाला (असि) है, (उत) और (त्वम्) तू (अमृतस्य) अमृत अर्थात् मोक्ष सुख का (वेत्थ) ज्ञाता है, (अथो) और भी तू (जीवभोजनम्) जीवों का पालने वाला (अथो) और भी (हरितभेषजम्) रोग से उत्पन्न पीतरंग की ओषधि (असि) है ॥३॥

भावार्थः—संसार के कर्ता धर्ता परमेश्वर के उपकारों को देखकर मनुष्य प्रयत्नपूर्वक विद्यादि सुखसाधनों की प्राप्ति से मोक्षानन्द भोगें ॥३॥

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥

भाषार्थः - (आञ्जन) हे संसार के प्रकट करने वाले ब्रह्म ! तू (यस्य) जिसके (अङ्गमङ्गम्) अङ्ग अङ्ग में और (परुष्परुः) जोड़ जोड़ में (प्रसर्पसि) व्याप जाता है, (ततः) उस पुरुष से (यक्षमम्) राजरोग को (विबाधसे) तू सर्वदा हटा देता है, (इव) जैसे (उग्रः) प्रबल (मध्यमशीः) विचौलिया पुरुष ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष पूर्ण भक्ति से परमात्मा को अपने रोम २ में व्यापक जानकर पुरुषार्थ करता है। परमात्मा उसके सब विघ्नों का नाश कर देता है, जैसे सद्वैद्य बड़े बड़े रोगों को, और नीतिकुशल मध्यस्थ राजा आदि वादी और प्रतिवादी के टंटों को मिटा देता है ॥४॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥

भाषार्थः—(न) न तो (एनम्) इस [पुरुष] को (शपथः) क्रोध वचन, (न) न (कृत्या) हिंसा क्रिया और (न) न (अभिशोचनम्) महाशोक (प्राप्नोति) पहुंचता है, और (न) न (एनम्) इसको (विष्कन्धम्) विघ्न (अश्नुते) व्यापता है, (यः) जो [पुरुष] (आञ्जन) हे संसार को व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! (त्वा) तुझको (बिभर्ति) धारण करता है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा को आत्मा में स्थिर करता है, उसको आध्यात्मिक शान्ति होने से आधिभौतिक और आधिदैविक शान्ति भी मिलती है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥

भाषार्थः—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तू (असन्मन्त्रात्) असत्य भाषण से (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे हुए कुविचार से, (दुष्कृतात्) दुष्ट कर्म से, (शमलात्) अशुद्धता से (उत) और (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले (घोरात्) घोर वा भयानक (चक्षुषः) नेत्र से (तस्मात्) इस सबसे (नः) हमें (पाहि) बचा ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के सहाय से प्रयत्न करें कि वे कभी मिथ्या न बोलें, स्वप्न में बुरा विचार न करें, और दुष्कर्मों से बच कर शुद्ध आचरण रक्खें तथा नेत्र आदि इन्द्रियों से कुचेष्टा न करें ॥६॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥

भाषार्थः—(आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म ! तेरे (इदम्) परम ऐश्वर्य को (विद्वान्) जानता हुआ मैं (सत्यम्) सत्य (वक्ष्यामि) बोलूंगा, (अनृतम्) असत्य (न) नहीं। (पूरुष=पुरुष) हे सबके अगुआ पुरुष, परमेश्वर ! (तव) तेरे [दिये हुए] (अश्वम्) घोड़े, (गाम्) गौ वा भूमि और (आत्मानम्) आत्मबल को (अहम्) मैं (सनेयम्) सेवन करूं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा देख कर सदा सत्य ही बोले और पुरुषार्थ पूर्वक सब पदार्थों से उपकार लेवे ॥७॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० १० । ९७ । ४ और यजु० १२ । ७८ में इस प्रकार है—

सनेयमश्वं गां वासं आत्मानं तव पूरुष ॥

हे पुरुष ! तेरे [दिये हुए] घोड़े, गौ वा भूमि वस्त्र और आत्मबल को सेवन करूं ॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तवमा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥

भाषार्थः—(तक्मा) जीवन को कष्ट देने वाला ज्वर, (बलासः) बल का गिराने वाला संनिपात, कफादि रोग, (आत्) और (अहिः) जीवों को मारने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला सांप, (त्रयः) यह तीनों (आञ्जनस्य) संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म के (दासाः) दास हैं। [हे आञ्जन, ईश्वर!] (वर्षिष्ठः) सबमें वृद्ध, (पर्वतानाम्) अवयव वाले स्थूल लोकों का (पिता) पालनकर्त्ता, (त्रिककुत्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] सुखों का पहुंचाने वाला यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाला (ते) तेरा (नाम) नाम है ॥८॥

भावार्थः—ईश्वरीय नियम तोड़ने वाले मनुष्यों को परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से रोग आदि कष्ट देता है, और अपने आज्ञाकारियों को वह अत्यन्त सुख पहुंचाता है ॥८॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूंश्च सर्वान् जम्भयत्सर्वांश्च यातुधान्यः ॥९॥

भाषार्थः—(यत्) सबका पूजनीय वा पदार्थों की संगति करने वाला, (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों के पहुंचाने वाले यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर, (जातम्) सबमें प्रसिद्ध, (हिमवतः) हिंसा वाले कर्म से (परि) पृथक् वर्त्तमान, (आञ्जनम्) संसार का व्यक्त करने वाला ब्रह्म (सर्वान्) सब (यातून्) पीड़ा देने वाले दुष्टों (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः=०—नीः) पीड़ा देने वाली शत्रु सेनाओं को (च) भी (जम्भयत्) नाश करने वाला है ॥९॥

भावार्थः—जो पुण्यात्मा पुरुष विद्याबल से सब प्रकार के सुखों को पहुँचाते, और तीनों द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों, और तीनों भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालों के वृत्तान्त जानते हैं, वे परब्रह्म की छत्र छाया में रह कर सब विघ्नों को हटा कर आनन्द भोगते हैं ॥९॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

भाषार्थः—(यदि वा) चाहे तू (त्रैककुदम्) तीन प्रकार के [आध्यात्मिक आदि] सुखों को पहुँचाने वाले, यद्वा तीनों लोकों वा कालों में गति वाले पुरुषों का ईश्वर (असि) है, (यदि=यदि वा) चाहे तू (यामुनम्) यमों, नियन्ताओं, न्यायकारियों का हितकारी (उच्यसे) कहा जाता है, (उभे) दोनों (ते) तेरे (नाम्नी) नाम (भद्रे) कल्याण कारक हैं, (आञ्जन) हे संसार के व्यक्त करने वाले ब्रह्म! (ताभ्याम्) उन दोनों से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उत्तम उत्तम गुणों का चिन्तन करके पुरुषार्थ के साथ दुष्कर्मों से बच कर सदा आनन्द भोगें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १० ॥

१—७। शङ्खो देवता ॥ १-५ अनुष्टुप्, ६ पथ्या पङ्क्तिः, ७ पञ्चपदा त्रिष्टुप् ॥

विघ्ननिवारणायोपदेशः—विघ्नों के हटाने के लिए उपदेश ।

वातज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(वातात्) पवन से, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (विद्युतः) बिजुली से, और (ज्योतिषः) सूर्य से, (परि) ऊपर (जातः) प्रकट होने वाला, (सः) दुःख नाशक ईश्वर (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला, (शङ्खः) सबों का विवेचन करने वाला वा देखने वाला, वा शान्ति देने वाला परमेश्वर (नः) हमको (अंहसः) रोगजनक दुष्कर्म से (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर संसार के सब सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों का रचने वाला और हमारे गुप्त प्रकट कर्मों का देखने और विचारने वाला है, उसका सदा ध्यान करके हम दुष्कर्मों से बचकर सत्कर्म करते रहें ॥१॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ॥२॥

भाषार्थः (यः=यः त्वम्) जो तू (रोचनानाम्) प्रकाशमान लोकों के (अग्रतः) आगे और (समुद्रात्) जल समूह समुद्र से भी (अधि) ऊपर [देश और काल में] (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, [उस तुझ] (शङ्खेन) सबों के विवेचन करने वाले, वा देखने वाले, वा शान्ति देने वाले, परमेश्वर [के आश्रय] से (रक्षांसि) जिनसे रक्षा की जावे उन राक्षसों को (हत्वा) मारकर (अत्रिणः) पेटार्थियों को (वि) विविध प्रकार से (सहामहे) हम दबाते हैं ॥२॥

भावार्थः—सर्वदा सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर की महिमा और उपकारों को विचारकर, हम लोग कुव्यवहार से बचकर पुरुषार्थ के साथ आनन्द भोगें ॥२॥

शङ्खेनामीवामर्मतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शङ्खेन) सबों के विचार करने वाले परमेश्वर से (अमीवाम्) अपनी पीड़ा और (अमतिम्) कुमति को (उत) और भी (शङ्खेन) सबों के देखने वाले परमेश्वर से (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली, यद्वा, दानवों, दुष्टों के साथ रहने वाली निर्धनता आदि विपत्तियों को [विषहामहे म० २] [हम दबाते हैं म० २]। (शङ्खः) शान्ति देने वाला, (विश्वभेषजः) सब भय का जीतने वाला, (कृशनः) सूक्ष्म रचना करने वाला परमात्मा (नः) हमको (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर के सर्वोपकारक गुणों को विचारता हुआ प्रयत्न करके दुष्कर्मों से अपनी रक्षा करे ॥३॥

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४॥

भाषार्थः—(दिवि) सूर्यमण्डल में (जातः) प्रकट, (समुद्रजः) अन्तरिक्ष में प्रकट, (सिन्धुतः) पार्थिव समुद्र से (परि) ऊपर (आभृतः) सर्वथा पुष्टि को प्राप्त, (सः) दुःखनाशक, (हिरण्यजाः) सूर्यादि तेजों का उत्पन्न करने वाला (शङ्खः) शान्तिकारक, (मणिः) प्रशंसा योग्य परमेश्वर (नः) हमारा (आयुष्प्रतरणः) जीवन बढ़ाने वाला है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सबके ऊपर, नीचे, मध्य में विराजमान होकर अपनी न्यायव्यवस्था से हमारे उत्तम कर्मों के अनुसार हमें उत्तम फल देता है ॥४॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥

भाषार्थः (वृत्रात्) ढकने वाले मेघ से (जातः) प्रकट हुए (दिवाकरः) सूर्य [के समान] (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (जातः) प्रकट हुआ, (मणिः) प्रशंसा योग्य (सः) दुःखनाशक, विष्णु (अस्मान्) हमको (सर्वतः) सब ओर से (हेत्या) अपने वज्र द्वारा (देवासुरेभ्यः) देवताओं के गिराने वाले शत्रुओं से (पातु) बचावे ॥५॥

भावार्थः जैसे सूर्य मेघमंडल से निकल कर देदीप्यमान होता है, इसी प्रकार परमात्मा अन्तरिक्षस्थ प्रत्येक पदार्थ से विज्ञानियों को प्रकाशमान दीखता है। वह जगदीश्वर दुष्टों को दण्ड और शिष्टों को आनन्द देता है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

भाषार्थः -(हिरण्यानाम्) सूर्यादि तेजों के बीच तू (एकः) एक (असि) है, (त्वम्) तू सोमात्) सूर्य लोक से (अधि) ऊपर (जज्ञिषे) प्रकट हुआ था, (त्वम्) तू (रथे) रथ में (दर्शतः) दृश्यमान और (त्वम्) तू (इषुधौ) तूणीर में (रोचनः) प्रकाशमान (असि) है। [आप] (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥६॥

भावार्थः--अद्वितीय प्रकाशस्वरूप परमात्मा सूर्यादि लोकों से काल और विस्तार में बड़ा है, वही रथारूढ़ और बाणधारी शूर को रणक्षेत्र में बल देता है, उसी जगदीश्वर के आश्रय से हम अपना जीवन धार्मिक बनाकर आनन्द भोगें ॥६॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

भाषार्थः —(कृशनम्) सूक्ष्म रचना करने वाला ब्रह्म (देवानाम्) दिव्य गुणों और प्रकाशमान पदार्थों का (अस्थि) प्रकाशक (बभूव) हुआ था। (तत्) विस्तृत ब्रह्म (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर [ठहरे हुए] (आत्मन्वत्) आत्मा वाले जगत् में (चरति) विचरता है। [हे प्राणी !] (तत्) उस ब्रह्म को (ते) तेरे (आयुषे) लाभ के लिये, (वर्चसे) तेज वा यश के लिये (बलाय) बल के लिये, और (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) चिरकाल जीवन के लिये [अन्तः करण के भीतर] (बध्नामि) मैं बांधता हूं। (कार्शनः) अनेक सुवर्णादि धनों और तेजों वाला परमेश्वर (त्वा) तुझको (अभि) सब प्रकार (रक्षतु) पाले ॥७॥

भावार्थः - विश्वकर्मा ब्रह्म ने बुद्धि आदि गुण और मनुष्य शरीर आदि दिव्य पदार्थ रचे हैं, वही सबमें रम कर जीवन शक्ति दे रहा है, उसी को मनुष्य हृदय में धारण करके पुरुषार्थ के साथ यशस्वी होकर आनन्द भोग ॥७॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ११ ॥

१—१२ ॥ अनड्वान् देवता ॥ १—६ त्रिष्टुप्, ७ षट्पदा त्रिष्टुप्, ८ १२ अनुष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्या पुरुषार्थश्चोपदिश्येते । ब्रह्मविद्या और पुरुषार्थ का उपदेश ॥

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥१॥

भाषार्थः—(अनड्वान्) प्राणी जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (उरु) चौड़े (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक वा आकाश को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि, नीचे और उपकारी छह (उर्वीः) चौड़ी (प्रदिशः) महादिशाओं को (दाधार) धारण किया था । (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाले परमेश्वर ने (विश्वं भुवनम्) सब जगत् में (आ विवेश) सब प्रकार प्रवेश किया था ॥१॥

भावार्थः—पुनरुक्ति निश्चय द्योतक है, अर्थात् एक परमात्मा ही सब जीवन साधन देकर सब पदार्थों को रचता है । सब मनुष्य भक्तिपूर्वक उसकी अपार महिमा को विचार कर सदा पुरुषार्थ करें ॥१॥

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो विमिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद् भुवना दृहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥२॥

भाषार्थः —(सः) वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला (अनड्वान्) प्राण और जीविका पहुंचाने वाला परमेश्वर (पशुभ्यः) व्यक्त वाणी वाले और अव्यक्त वाणी वाले जीवों के लिए (वि) विविध प्रकार से (चष्टे) देखता है (शक्रः) वह समर्थ परमात्मा (त्रयान्) तीन अवयव [भूमि सूर्य और अन्तरिक्ष] वाले (अध्वनः) मार्गों को (वि) विशेष करके (मिमीते) नापता है । (भूतम्) भूत, (भविष्यत्) भविष्यत् और (भुवना = ०—नि) लोकों वा वर्त्तमान वस्तुओं को (दृहानः) परिपूर्ण करता हुआ वह (देवानाम्) इन्द्रियों के (सर्वा व्रतानि) सब कामों को (चरति) सिद्ध करता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर संसार के कर्मों का साक्षी होकर तीनों लोकों और तीनों कालों की सुधि रखता, और देखना आदि सब काम करता है ॥२॥

इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्धर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३॥

भाषार्थः—(तप्तः) तपते हुए (घर्मः) सूर्य के समान (शोशुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान (इन्द्रः) परमेश्वर (मनुष्येषु अन्तः) मननशील मनुष्यों के भीतर (जातः) प्रकट होकर (चरति) विचरता है। (यः) जो पुरुष (अनडुहः) प्राण और जीविका पहुँचाने वाले परमेश्वर का (न विजानन्) विज्ञान न रखता हुआ (अश्नीयात्) भोजन करे, (सः) वह (सन्) विद्यमान पुरुष (उदारे) बड़े पद पर वर्तमान (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा गणों को (न सर्षत्) न पावे ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा मनुष्यादि प्राणियों में निःसन्देह प्रकाशमान है, जो अज्ञानी पुरुष उसकी महिमा को नहीं जानता, वह दुष्ट आप, और उसके साथी प्रजा गण महा दुःख भोगते हैं ॥३॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक एनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४॥

भाषार्थः—(अनड्वान्) प्राण वा जीविका पहुंचाने वाला परमेश्वर (सुकृतस्य) पुण्य के (लोके) स्थान में (दुहे=दुग्धे) पूर्ण करता है, (पवमानः) शुद्ध करने वाला परमात्मा (पुरस्तात्) पहिले से ही (एनम्) इस [जीव] को (आ प्याययति) सब प्रकार बढ़ाता है। (अस्य) इस [परमेश्वर] की (धाराः) धारण शक्तियां (पर्जन्यः) मेघ [के समान] हैं और (ऊधः) वहन वा ले चलने का सामर्थ्य (मरुतः) पवन [के समान] है, (अस्य) इस की (यज्ञः) संगति क्रिया (पयः) दूध [के समान] है, और (दक्षिणा) दान शक्ति (दोहः) दोहनी [के समान] है ॥४॥

भावार्थः—वह जगदीश्वर पुण्यात्माओं की इच्छा पूर्ण करता है, और सृष्टि की आदि में वेद देकर सबकी वृद्धि करता है, और जैसे मेघ, वायु आदि पदार्थ उपकारी हैं, इसी प्रकार वह परमात्मा मेघ, पवन आदिकों का धारण करने वाला आदिमूल है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥५॥

भाषार्थः—(न) न तो (यज्ञपतिः) संगतिकर्ता पुरुष, और (न) न (यज्ञः) संगतिकर्म (यस्य) जिस [परमेश्वर] का (ईशे=ईष्टे) ईश्वर है. (न) न तो (दाता) दाता (न) न (प्रतिग्रहीता) ग्रहणकर्ता (अस्य) इस का (ईशे) ईश्वर है, (यः) जो (विश्वजित्) सबका जीतने वाला, (विश्वभृत्) सबका पोषण करने वाला, (विश्वकर्मा) सब काम करने वाला, और (यतमः) जौन सा (चतुष्पात्) चारों दिशाओं में स्थित वा गति वाला है, (घर्मम्) उस प्रकाशमान सूर्यसदृश परमात्मा को (नः) हमें, [हे ऋषियो !] (ब्रूत) बताओ ॥५॥

भावार्थः— उस परमात्मा का शासक कोई अन्य नहीं है, वह सर्वशक्तिमान्, सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप है। उसकी उपासना और अन्वेषणा से सब मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥५॥

येन देवाः स्वं रारुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६॥

भाषार्थः—(येन) जिस [परमात्मा] के द्वारा (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुष (शरीरम्) नाशमान शरीर [देह अभिमान] (हित्वा) छोड़ कर (अमृतस्य) अमरपन के (नाभिम्) केन्द्र (स्वः) स्वर्ग को (आरुरुहुः) चढ़े थे। (तेन) उसी [ईश्वर] के सहारे से (यशस्यवः) यश चाहने वाले हम लोग (घर्मस्य) दीप्यमान सूर्य के [समान] (व्रतेन) कर्म और (तपसा) सामर्थ्य से (सुकृतस्य) पुण्य के (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (गेष्म) खोजें ॥६॥

भावार्थः जैसे पूर्वज महात्मा परमात्मा की भक्ति से मोक्ष सुख पाकर अमर अर्थात् कीर्तिमान हुए हैं, उसी प्रकार हम परमेश्वर की आज्ञा पाल कर संसार में उपकार करके यशस्वी होवें, जैसे सूर्य अपने तेज से वृष्टि दान और आकर्षण आदि करके लोक का उपकार करता है ॥६॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वर्हेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् । विश्वानरे अक्रमत
वैश्वानरे अक्रमतानुहयक्रमत । सोदहंयत सोधारयत् ॥७॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) उत्पन्न पदार्थों का रक्षक, (परमेष्ठी) ऊंचे स्थान पर ठहरने वाला, (विराट्) विशेष प्रकाशमान, (अग्निः) व्यापक वा अग्निरूप (इन्द्रः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य (रूपेण) अपने रूप से और (वहेन) चलाने के सामर्थ्य से (विश्वानरे) सबके नायक परमात्मा में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ, (वैश्वानरे) सब नायकों के हितकारी परमेश्वर में (अक्रमत) प्राप्त हुआ, (अनडुहि) जीवन पहुंचाने वाले जगदीश्वर में (अक्रमत) प्रविष्ट हुआ है। (सः) उस [जगदीश्वर] ने [सूर्य को] (अदृंहयत) दृढ़ किया और (सः) उसने ही (अधारयत) धारण किया है ॥७॥

भावार्थः—सूर्य अर्थात् सूर्य आदि बड़े बड़े लोक अपने आकर्षण आदि शक्तियों के साथ सर्वनियन्ता जगदीश्वर में स्थित हैं, वही उनका धारण पोषण करता है। उसी की उपासना हम सदा करें ॥७॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८॥

भाषार्थः (अनडुहः) जीविका पहुंचाने वाले परमात्मा का (एतत्) यह [स्थान वा काल] (मध्यम्) मध्य है (यत्र) जहां (एषः) यह (वहः) [आकर्षित] भार (आहितः) धरा हुआ है। (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु का (एतावत्) उतना ही (प्राचीनम्) प्राचीन काल वा देश है, (यावान्) जितना (प्रत्यङ्) आगामी काल वा देश (समाहितः) सिद्ध है ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर की सर्वव्यापकता और नित्यता को विचार कर मनुष्य सावधानी से प्रयत्न करता रहे ॥८॥

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥

भाषार्थः—(यः) जो कोई (अनडुहः) जीवन पहुंचाने वाले परमेश्वर के (दोहान्) पूर्ति के प्रवाहों को (सप्त) नित्य संबन्ध वाले और (अनुपदस्वतः) अक्षय (वेद) जानता है, वह (प्रजाम्) प्रजा (च) और (लोकम्) लोक (च) भी (आप्नोति) पाता है, तथा ऐसा (सप्तऋषयः) सात व्यापनशील वा दर्शनशील, [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख और मुख यह सात छिद्र] (विदुः) जानते हैं [प्रत्यक्ष करते हैं] ॥९॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष जीवनदाता परमेश्वर के सर्वव्यापी और अनन्त कोश को अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन और बुद्धि द्वारा साक्षात् करके अपना आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाते हैं ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥

भाषार्थः (कीनाशः) निन्दित कर्म का नाश करने वाला (अनड्वान्) जीवन पहुँचाने वाला परमेश्वर, (श्रमेण) परिश्रम से (अभिगच्छतः) चलते फिरते पुरुष के (सेदिम्) विषाद को (पद्भिः) अपनी स्थितियों से (अवक्रामन्) दबाता हुआ, (च, और (जङ्घाभिः) अपनी अत्यन्त व्याप्तियों से [उसके] (कीलालम्) बन्ध के निवारण, अर्थात् (इराम्) अन्न को (उत् खिदन्) उत्पन्न करता हुआ [वर्तमान है] ॥१०॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष सब स्थानों में परमेश्वर रचित पदार्थों से अन्नादि प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥१०॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनड्वाँहो व्रतम् ॥११॥

भाषार्थः—(द्वादश) बारह (एताः) प्राप्ति योग्य (रात्रीः) विषय ग्रहण करने वाली और विज्ञान देने वाली मन बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों को (प्रजापतेः) प्रजापालक परमात्मा के (व्रत्याः) व्रतयोग्य (वै) निश्चय करके [वे विज्ञानी] (आहुः) बताते हैं। (तत्र) उन [मन बुद्धि सहित इन्द्रियों] में (यः) गतिशील पुरुषार्थी पुरुष (अनड्वहः) जीवन पहुंचाने वाले परमेश्वर के (तत्) विस्तृत (ब्रह्म) वेद विज्ञान और (व्रतम्) व्रत को (वै) निश्चय करके (उप) आदर से (वेद) जानता है ॥११॥

भावार्थः—मन बुद्धि और इन्द्रियों से योगी पुरुषार्थी लोग परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव को जान कर संसार में उन्नति करते हैं ॥११॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यं दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानु पदस्वतः ॥१२॥

भाषार्थः—वह [परमेश्वर] (सायम्) सायंकाल में (परि) सब ओर से (दुहे=दुग्धे) पूर्ण करता है। (प्रातः) प्रातः काल (दुहे) पूर्ण करता है। (मध्यंदिनम्) मध्याह्न में (दुहे) पूर्ण करता है। (अस्य) सर्वव्यापक वा सर्वरक्षक विष्णु के (ये) जो (दोहाः) पूर्ति प्रवाह (संयन्ति) बटुरते रहते हैं। (तान्) उनको (अनुपदस्वतः) अक्षय (विद्म) हम जानते हैं ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—परमेश्वर का सदा अक्षय भण्डार है। ऐसा जानकर मनुष्य विज्ञानपूर्वक आगे बढ़ता रहे ॥१२॥

सूक्तम् १२ ॥

१—७ ॥ धाता देवता । १ गायत्री, २—५ अनुष्टुप्, ६ पदपङ्क्तिः, ७ बृहती छन्दः ॥

स्वदोषनिवारणायोपदेशः—अपने दोष मिटाने का उपदेश ॥

रोहंण्यसि रोहंण्यस्थन्श्छिन्नस्य रोहंणी ।
रोहयेदमरुन्धति ॥१॥

भाषार्थः—[हे मानुषी प्रजा तू] (छिन्नस्य) टूटी (अस्थ्नः) हड्डी की (रोहणी) पूरने वाली (रोहणी) रोहिणी वा लाक्षा [के समान] (रोहणी) पूरने वाली शक्ति (असि) है। (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति तू ! (इदम्) ऐश्वर्य (रोहय) सम्पूर्ण कर ॥१॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष विज्ञानपूर्वक अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को मिटावे जैसे सद्वैद्य रोहिणी वा लाक्षा [लाख वा लाह] आदि ओषधि से रोगों को निवृत्त करता है ॥१॥

सायण भाष्य में (रोहणी) पद के स्थान में [रोहिणी] मानकर "लाक्षा" अर्थ किया है ॥

यत् तें रिष्टं यत् तें घुत्तमस्ति पेष्टं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जो कुछ (ते) तेरा (रिष्टम्) टूटा हुआ और (यत्) जो (ते) तेरा (घुत्तम्) जलता हुआ, और जो (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पेष्टम्) पिसा हुआ (अस्ति) है। (धाता) पोषण करने वाला वैद्य (भद्रया) कल्याण करने वाली क्रिया से (तत् परुः) उस जोड़ को (परुषा) दूसरे जोड़ से (पुनः) फिर (संदधत्) सन्धि कर देवे ॥२॥

भावार्थः—विचारवान् पुरुष आप ही अपने दोषों का वैद्य होता है ॥२॥

सं तें मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं तें मांसस्य विस्रंस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —[हे विद्वान्] (ते) तेरे (मज्जा) हाड़ की मींग (मज्ज्ञा) हाड़ की मींग से (संभवतु) मिल जावे (उ) और (ते परुः) तेरा जोड़ (परुषा) जोड़ से (सम् = संभवतु) मिल जावे। (ते) तेरे (मांसस्य) मांस का (विस्रस्तम्) हटा हुआ अंश (सम् = सं रोहतु) जुड़ जावे, और (अस्थि) हाड़ (अपि) भी (संरोहतु) जुड़ कर ठीक हो जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने चंचल मन को ज्ञान प्राप्ति में ऐसा जोड़ दे जैसे वैद्य विचलित अवयवों को जोड़ देता है ॥३॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥

भाषार्थः—(मज्जा) हाड़ की मींग (मज्ज्ञा) हाड़ की मींग से (सं धीयताम्) मिल जावे, (चर्म) चाम (चर्मणा) चाम के साथ (रोहतु) जम जावे। (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड़ (रोहतु) जमे, और (मांसम्) मांस (मांसेन) माँस के साथ (रोहतु) जमे ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र ३ के समान ॥४॥

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ताप नाशक ओषधि [के समान मनुष्य !] (लोम) रोम को (लोम्ना) रोम के साथ (संकल्पय) जमा दे, (त्वचम्) त्वचा को (त्वचा) त्वचा के साथ (संकल्पय) जोड़ दे, (ते) तेरा (असृक्) रुधिर और (अस्थि) हाड़ (रोहतु) उगे, (छिन्नम्) टूटा अंग भी (संधेहि) अच्छे प्रकार मिला दे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर विचार से अपने दोषों की चिकित्सा करे जैसे वैद्य ओषधि करते हैं ॥५॥

स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६॥

भाषार्थः—(सः = स त्वम्) सो तू (उत्तिष्ठ) उठ, (प्रेहि) आगे बढ़, (सुचक्रः) सुन्दर पहिये वाले, (सुपविः) दृढ़ नेमि वा पुट्ठी वाले, (सुनाभिः) सुन्दर मध्य छिद्र वाले (रथः) रथ [के समान] (प्र द्रव) वेग से चल और (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक आगे बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त करे जैसे उत्तम शिल्पी का बनाया हुआ सुदृढ़ रथ अन्य रथों से आगे निकल जाता है ॥६॥

यदि॑ क॒र्तं प॑ति॒त्वा सं॑श॒श्रे यदि॒ वाश्मा॒ प्रहृ॑तो ज॒घान॑ ।
ऋ॒भू रथ॑स्ये॒वाङ्गा॑नि॒ सं द॑ध॒त् परु॑षा॒ परुः॑ ॥७॥

भाषार्थः—(यदि) यदि (कर्तम्) कटारी आदि हथियार ने (पतित्वा) गिर कर (संशश्रे) काट दिया है, (यदि वा) अथवा (प्रहृतः) फेंके हुए (अश्मा) पत्थर ने (जघान) चोट लगाई है। (ऋभुः) बुद्धिमान् पुरुष (रथस्य अङ्गानि इव) रथ के अंगों के समान (परुः) एक जोड़ को (परुषा) दूसरे जोड़ से (सं दधत्) मिला देवे ॥७॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष अपने विचलित मन को इस प्रकार ठीक करे, जैसे चिकित्सक चोट को, और शिल्पी टूटे रथ को फिर जोड़कर सुधार लेते हैं ॥७॥

सूक्तम् १३ ॥

१—७ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

स्वास्थ्यरक्षोपदेशः—स्वास्थ्य रक्षा का उपदेश ॥

उ॒त दे॑वा॒ अव॑हितं॒ देवा॒ उन्न॑यथा॒ पुनः॑ ।
उ॒ताग॑श्च॒क्रुषं॑ देवा॒ देवा॑ जी॒वय॑था॒ पुनः॑ ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) हे व्यवहारकुशल (देवाः) विद्वान् लोगो। (अवहितम्) अधोगत पुरुष को (उत) अवश्य (पुनः) फिर (उन्नयथ) तुम उठाते हो (उत) और भी, (देवाः) हे दानशील (देवाः) महात्माओ! (आगः) अपराध (चक्रुषम्) करने वाले प्राणी को (पुनः) फिर (जीवयथ) तुम जिलाते हो ॥१॥

भावार्थः—महात्मा लोग स्वभाव से ही अधोगत पुरुषों को ऊंचा करते और मृतक समान अपराधियों को पाप से छुड़ा कर उनका जीवन सुफल कराते हैं। मनुष्य सत्पुरुषों के सत्संग से अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को त्याग कर जीवन सुधारें ॥१॥

इस सूक्त के मन्त्र १—५, ७ ऋग्वेद १०। १३७ के म० १—५, ७ कुछ भेद से हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः ॥२॥

भाषार्थः—(इमौ) यह (द्वौ) दोनों (वातौ) पवन, अर्थात् प्राण और अपान वायु (आसिन्धोः) बहने वाले इन्द्रियदेश तक और (आ परावतः) बाहिर दूर स्थान तक (वातः) चलते रहते हैं। (अन्यः) एक [प्राण वायु] (ते) तेरा (दक्षम्) वृद्धि करने वाले बल को (आवातु) बह कर लावे और (अन्यः) दूसरा [अपान वायु] (यत् रपः) जो दोष है उसे (विवातु) बह कर निकाल देवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध स्थान में शुद्ध वायु के सेवन से प्राण वायु के सञ्चार द्वारा शरीर का बल बढ़ाकर और अपान से पसीना आदि मल दोष नाश करके स्वस्थ रहें ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥

भाषार्थः—(वात) हे वायु (भेषजम्) स्वास्थ्य को (आ वाहि) बह कर ला और, (वात) हे वायु (यत् रपः = यत् रपः तत्) जो दोष है उसे (विवाहि) बह कर निकाल दे (हि) क्योंकि (विश्वभेषज) हे सर्वरोगनाशक वायु! (त्वम्) तू (देवानाम्) इन्द्रियों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों के बीच (दूतः) चलने वाला वा दूत [समान सन्देश पहुँचाने वाला] होकर (ईयसे) फिरता रहता है ॥३॥

भावार्थः—वायु के संचार से शरीर का मल निकलकर स्वास्थ्य मिलता है और तार, विमान, ताप, वृष्टि आदि का संचार होता है ॥३॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥

भाषार्थः—(देवाः) इन्द्रियां (इमम्) इस [जीव] की (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, और (मरुताम्) पवनों [श्वास प्रश्वासों] के (गणाः) प्रवाह (त्रायन्ताम्) रक्षा करें। और (विश्वा = ०—नि) सब (भूतानि) पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, पांच तत्त्व (त्रायन्ताम्) रक्षा करें, (यथा) जिससे (अयम् यह [प्राणी] (अरपाः) दोष रहित (असत्) रहे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों के शोधन और श्वास प्रश्वास के यथावत् प्राणायाम से पंच भूतों को सम रख कर सदा हृष्ट पुष्ट रहें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (त्वा) तुझको (शन्तातिभिः) शान्तिदायक कर्मों से (अथो) और भी (अरिष्टतातिभिः) अहिंसाकारक कर्मों से (आगमम्) मैं प्राप्त हुआ हूं। (ते) तेरे लिये (उग्रम्) उग्र (दक्षम्) वृद्धिकारक बल (आ अभारिषम्) मैं लाया हूं, [उससे] (ते) तेरे (यक्ष्मम्) महारोग को (परा सुवामि) दूर हटाता हूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य श्वास प्रश्वास और पंच भूतों की यथावत् समता और ब्रह्मचर्य आदि शुभ कर्मों द्वारा दुष्कर्मों से बच कर बलवान् धनवान् और नीरोग होवे ॥५॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥

भाषार्थः— (अयम्) यह (मे) मेरा (हस्तः) [बायां] हाथ (भगवान्) भाग्यवान् है, और (अयम्) यह (मे) मेरा [दायां हाथ] (भगवत्तरः) अधिक भाग्यवान् है। (अयम्) यह (मे) मेरा [हाथ] (विश्वभेषजः) सर्वरोगनाशक, और (अयम्) यह (शिवाभिमर्शनः) छूने में मंगलदायक है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य श्वास प्रश्वास और पंच भूतों के परिज्ञान से स्पर्श द्वारा रोगों का निदान करके शरीर को रोग रहित और पुष्ट करे ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । सू० ६० । म० १२ ।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

भाषार्थः—(दशशाखाभ्याम्) दश शाखा वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के द्वारा (जिह्वा) जिह्वा (वाचः) वाणी की (पुरोगवी) आगे ले चलने वाली है। (ताभ्याम्) उन (अनामयित्नुभ्याम्) आरोग्य देने वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (त्वा) तुझको (अभि मृशामसि) हम छूते हैं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण अपान और पंच भूत परीक्षा द्वारा दस अंगुलियों से दस इन्द्रियों और दस दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके दुःख की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति करें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १४ ॥

१—९ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, ५–७ त्रिष्टुप् । २, ४, अनुष्टुप् । ३ प्रस्तार-पङ्क्तिः । ८ पञ्चपदा जगती, ९ जगती ॥

ब्रह्मप्राप्त्युपदेशः—ब्रह्म की प्राप्ति का उपदेश ॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥१॥

भाषार्थः—(अजः) अजन्मा, वा गतिशील अज अर्थात् जीवात्मा (शोकात्) दीप्यमान (अग्नेः) सर्वव्यापक अग्नि अर्थात् परमेश्वर से (हि) ही (अजनिष्ट) प्रकट हुआ । (सः) उस [जीवात्मा] ने (अग्रे) पहिले से वर्तमान (जनितारम्) अपने जनक [परमात्मा] को (अपश्यत्) देखा । (तेन) उस [ज्ञान] से (देवाः) देवताओं ने (अग्रे) पहिले काल में (देवताम्) देवतापन (आयन्) पाया, (तेन) उससे ही (मेध्यासः) मेधावी वा पवित्रस्वभाव पुरुष (रोहान्) चढ़ने योग्य पदों पर (रुरुहुः) चढ़े ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य आदि पिता जगदीश्वर से अपना शरीर और सामर्थ्य पाकर अपने जन्म और वंश का गौरव बढ़ाते हैं, जैसे पूर्वज महात्माओं ने परमात्मा की महिमा पहचान कर मोक्ष आदि उच्च पद पाये हैं ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद १३ । ५१ में है ॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे वीरो !] (उख्यान्) पके हुए आहारों को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) भरे हुए तुम (अग्निना) अग्नि अर्थात् परमेश्वर के सहारे से [अथवा अपने शरीर की उष्णता वा बल से] (नाकम्) पूर्ण सुख (क्रमध्वम्) पराक्रम से प्राप्त करो । और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मिश्राः) मिलते हुए तुम (दिवः) व्यवहार के (पृष्ठम्) सींचने वा बढ़ाने वाले अथवा पीठ के समान सहायक (स्वः) सुखस्वरूप परमात्मा को (गत्वा) प्राप्त होकर (आध्वम्) बैठो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की अपार सृष्टि में पुरुषार्थ पूर्वक परोपकार के लिये अन्न प्राप्त करें और विद्वानों से व्यवहार शिक्षा पाकर आनन्द भोगें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से य० १७ । ६५ में है ॥

पृष्ठात् पृथिव्याः अहमन्तरिक्ष मारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वं १ र्ज्योतिरगामहम् ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक, आकाश को (आ अरुहम्) चढ़ गया (अन्तरिक्षात्) आकाश लोक से (दिवम्) सूर्य लोक को (आ अरुहम्) मैं चढ़ गया । (नाकस्य) सुख देने हारे (दिवः) प्रकाशमान सूर्य लोक के (पृष्ठात्) पृष्ठ से (अहम्) मैंने (स्वः) सुख स्वरूप और (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप परमात्मा को (अगाम्) प्राप्त किया ॥३॥

भावार्थः—योगी पुरुष विद्याभ्यास और योगाभ्यास से पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्यलोक में खोजता हुआ तुरीय अर्थात् इन तीनों से चौथे आनन्दघन, ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाता है ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजु० १७।६७ में है ॥

स्वं १ र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो (सुविद्वांसः) बड़े विद्वान् योगी जन (द्याम्) अन्तरिक्ष और (रोदसी) सूर्य और पृथिवी लोक तक (आरोहन्ति) चढ़ते हैं, और जिन्होंने (विश्वतोधारम्) सब प्रकार से धारण शक्ति वाले (यज्ञम्) देव अर्थात् ब्रह्म के पूजन को (वितेनिरे) फैलाया है, वे ही योगी पुरुष (यन्तः न) चलते फिरते उद्योगी पुरुषों के समान (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अपेक्षन्ते) हृदय से चाहते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् योगी जन संसार के सब पदार्थों के विज्ञानी होकर परमात्मा की महिमा को विचारते हैं, वे ही उससे प्रीति करके आत्मबल पाकर यशस्वी होते हैं ॥४॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—य० अ० १७ म० ६८ ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (प्रेहि) प्राप्त हो, तू (देवता-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम्) सब विद्वानों में (प्रथमः) पहिला और (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों का (उत) और भी (मानुषाणाम्) मनुष्य जातियों का (चक्षुः) नेत्र [के समान देखने वाला] है। (इयक्षमाणाः) संगति चाहने वाले (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञानी वेदज्ञ ब्राह्मणों के साथ (सजोषाः) एक सी प्रीति करते हुए, (यजमानाः) दानशील यजमान लोग (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म और (स्वस्ति) कल्याण को (यन्तु) प्राप्त होवें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबका आदि गुरु है वही सबका साक्षी और नियन्ता है, पुरुषार्थी सदाचारी पुरुष विज्ञानी महात्माओं के सत्संग से ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति करके परमगति प्राप्त करें ॥५॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० १७ । ६९ ॥

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ।।६॥

भाषार्थः—(दिव्यम्) दिव्य गुण वाले, (सुपर्णम्) बड़े पूर्ण शुभ लक्षण वाले (पयसम्) गतिमान् वा उद्योगी (बृहन्तम्) बड़े बली (अजम्) जीवात्मा को (घृतेन) प्रकाशमान (पयसा) ज्ञान से (अनज्मि) मैं [मनुष्य] संयुक्त करता हूं। (तेन) उस [ज्ञान] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःख रहित (स्वः) सुखस्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लख कर (आरोहन्तः) चढ़ते हुए हम (सुकृतस्य लोकम्) पुण्य लोक को (गेष्म) खोजें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की दी हुई अद्भुत शक्तियों से अपना ज्ञान बढ़ावे और उस आनन्दस्वरूप जगत्पति की अनन्त महिमा को खोजता हुआ निरन्तर उन्नति करके मोक्ष पद प्राप्त करे ॥६॥

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गलिभिर्दर्व्यौद्धरं पञ्चधैतमोदनम् । प्राच्यां
दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७॥

भाषार्थः—(एतम्) इस (पञ्चधा) पांच प्रकार पर (पञ्चौदनम्) पांच भूतों से सींचे हुए (ओदनम्) वृद्धि करने वाले आत्मा को (पञ्चभिः) विस्तृत (अङ्गुलिभिः) चेष्टाओं के साथ (दर्व्या) विदारण वा पृथक् करण शक्ति से (उद्धर=उत्हर) ऊपर ला, (प्राच्याम्) अपने से पूर्व वा सन्मुख (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा का (शिरः) शिर (धेहि) धर, (दक्षिणायाम् दिशि) दक्षिण दिशा में (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पंच भूत निर्मित स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर वाला आत्मा इन्द्रियों सहित रहता है। योगी विवेक दृष्टि द्वारा आत्मा को स्थूल शरीर से पृथक् करे, और आत्मा के सूक्ष्म अवयवों को मन्त्र ७ व ८ के अनुसार स्थापित करके मन्त्र ९ के अनुसार मोक्षफल प्राप्त करे ॥७॥

प्रतीच्यां दिशि भसदस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम्। ऊर्ध्वायां दिश्यस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥८॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (प्रतीच्याम्) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशि) दिशा में (अस्य) इस [जीवात्मा] के (भसदम्) दीप्ति वा कटि भाग को (धेहि) धर, (उत्तरस्याम्) उत्तर वा बाईं (दिशि) दिशा में (उत्तरम्) बायें (पार्श्वम्) कक्षा के नीचे भाग को (धेहि) धर। (ऊर्ध्वायाम्) ऊपर वाली (दिशि) दिशा में (अजस्य) जीवात्मा की (अनूकम्) रीढ़ को (धेहि) धर, (ध्रुवायाम्) स्थिर (दिशि) दिशा में (अस्य) इसके (पाजस्यम्) बल देने वाले उदर को, और (अन्तरिक्षे) आकाश में (मध्यतः) बीचोंबीच (मध्यम्) मध्य भाग को (धेहि) धर ॥८॥

भावार्थः—मन्त्र ७ देखो ॥८॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम्। स उत् तिष्ठतो अभि नाकमुत्तमं पङ्भिश्चतुर्भिः प्रतिं तिष्ठ दिक्षु ॥९॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (विश्वरूपम्) संपूर्ण रूप से (सर्वैः) सब (अङ्गैः) अंगों के साथ (संभृतम्) भले प्रकार पुष्ट, और (शृतम्) परिपक्व [दृढ़ ज्ञानी] (अजम्) जीवात्मा को (शृतया) परिपक्व (त्वचा) विस्तृत शक्ति से (प्र) भले प्रकार (ऊर्णुहि) ढक ले। (सः) सो तू (इतः) यहां से (उत्तमम्) सर्वोत्तम (नाकम्) सुख स्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लखकर (उत् तिष्ठ) उठ, और (चतुर्भिः पङ्भिः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थों के सहित (दिक्षु) सब दिशाओं में (प्रतितिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य उपरोक्त रीति से पंच भूत और जीवात्मा के विवेक से पक्का ज्ञानी होकर सब प्रकार पुष्टि और परमात्मा में लवलीन होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की प्राप्ति से संसार भर में प्रतिष्ठावान् होता है ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १५ ॥

१–१६ ॥ पर्जन्यो देवता ॥ १–३,–५ जगती, ४, ७, ८, १३–१५ अनुष्टुप्, ६, १०, ११, १६ त्रिष्टुप् १२ जगती ज्योतिष्मती ॥

वृष्टेः प्रार्थना गुणाश्चोपदिश्यन्ते—वृष्टि की प्रार्थना और गुणों का उपदेश ॥

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(नभस्वतीः=०—त्यः) बादल से छायी हुई (प्रदिशः) दिशायें (समुत्पतन्तु) भले प्रकार उदय हों, (वातजूतानि) पवन से चलाये गये (अभ्राणि) जल भरे बादल (संयन्तु) छा जावें । (महऋषभस्य) बड़े गमन शील (नदतः) गरजते हुए (नभस्वतः) आकाश में छाए [बादल] के (वाश्राः) धड़ धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥१॥

भावार्थः – पवन द्वारा वर्षा होने से दिशायें निर्मल और पृथिवी अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करने योग्य हो जाती है, इसी प्रकार मनुष्य उपकारी बनें ॥१॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२॥

भाषार्थः – (तविषाः) विशाल गुण वाले (सुदानवः) बड़े दान करने वाले [मेघ, हमें वृष्टि] (समीक्षयन्तु) दिखावें, (अपाम्) जल के (रसाः) रस (ओषधीभिः) अन्नादि ओषधियों से (सचन्ताम्) एक रस हो जावें । (वर्षस्य) वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि को (महयन्तु) समृद्ध करें, (विश्वरूपाः) नाना रूप वाली (ओषधयः) चावल, यवादि ओषधें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उत्पन्न होवें ॥२॥

भावार्थः—जैसे मेघों की वर्षा से सब लोग आनन्द पाते हैं, वैसे ही मनुष्य विद्वानों के सत्संग से लाभ उठावें ॥२॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर !] (गायतः) गान करने वाले लोगों को (नभांसि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादलों का (समीक्षयस्व) दर्शन करा। (अपाम्) जल के (वेगासः) प्रवाह (पृथक्) नाना प्रकार से (उद् विजन्ताम्) उमड़ कर चलें। (वर्षस्य) वर्षा की (सर्गाः) धारायें (भूमिम्) भूमि को (महयन्तु) समृद्ध करें, (विश्वरूपाः) नाना रूप (वीरुधः) झाड़ लतायें (पृथक्) नाना प्रकार से (जायन्ताम्) उपजें ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान है ।३॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४॥

भाषार्थः—(पर्जन्य) हे मेघ ! (घोषिणः) आनन्द ध्वनि करने वाले (मारुताः) ऋत्विज् लोगों के (गणाः) समूह (त्वा) तेरा (पृथक्) नाना प्रकार से (उप) आदर पूर्वक (गायन्तु) गान करें। (वर्षतः) बरसते हुए (वर्षस्य) वृष्टि जल की (सर्गाः) धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥४॥

भावार्थः—वृष्टि से अन्न आदि यज्ञ के पदार्थ उत्पन्न होते और याजक गण वृष्टि के गुणों को गा गाकर आनन्द मनाते हैं ॥४॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे वायुवेगो ! (अर्कः=अर्कस्य) सूर्य के (त्वेषः=त्वेषेण) प्रकाश द्वारा (नभः) जल को (समुद्रतः) समुद्र से (उदीरयत) उठाओ और (उत् पातयाथ) ऊपर ले जाओ। (मह ऋषभस्य) बड़े गमनशील, (नदतः) गरजते हुए, (नभस्वतः) आकाश में छाये [बादल] की (वाश्राः) धड़धड़ाती (आपः) जल धारायें (पृथिवीम्) पृथिवी को (तर्पयन्तु) तृप्त करें ॥५॥

भावार्थः—जल, पवन और प्रकाश द्वारा पृथिवी से मेघमंडल में चढ़ता और फिर पृथिवी पर बरसकर अनेक पदार्थ उपजाता है, इसी प्रकार सज्जन पुरुष विज्ञान से परिपूर्ण होकर संसार में विद्या फैलाते हैं ॥५॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमेतु वर्षमाशारैषी कुशगुरेत्वस्तम् ॥६॥

भाषार्थः—(पर्जन्य) हे मेघ ! तू (अभि) सब ओर (क्रन्द) गड़गड़ कर, (स्तनय) गरज, (उदधिम्) समुद्र को (अर्दय) हिला दे, (भूमिम्) भूमि को (पयसा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल से (सम्अङ्धि) भरदे। (त्वया) तुझ करके (सृष्टम्) भेजा हुआ (बहुलम्) बहुत पदार्थ लाने वाला, (वर्षम्) वृष्टि जल (ऐतु) आवे, (आशारैषी) शरण चाहने वाला, (कृशगुः) दुबली गौ बैल वाला किसान (अस्तम्) अपने घर (एतु) जावे ॥६॥

भावार्थः—पृथिवी पर वृष्टि होने से अनेक पदार्थ उपजते हैं, तब किसान आनन्दपूर्वक थके दुर्बल पशुओं को चराकर घर ले जाते हैं ॥६॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (सुदानवः) महा दानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत्) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवन से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (वर्षन्तु) बरसें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य मेह के समान परस्पर उपकार करें ॥७॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः संयन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

भाषार्थः—(वाताः) पवनें (दिशोदिशः) दिशा दिशा से (द्योतताम्) दीप्यमान (आशाम्-आशाम्) प्रत्येक दिशा को (वि) विविध प्रकार से (वान्तु) चलें। (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु) अनुकूल (संयन्तु) उमड़ कर आवें ॥८॥

भावार्थः—जैसे मेह पवन द्वारा एक देश से दूसरे देश में बरसते हैं वैसे ही मनुष्य प्रयत्न करके देश देशान्तरों में वेद विद्या फैलावें ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्ष सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

भाषार्थः—(आपः) जल धारायें, (विद्युत्) बिजुली, (अभ्रम्) जल से भरा मेह (वर्षम्) बरसा और (सुदानवः) महादानी, (अजगराः) अजगर [समान स्थूल आकार वाले] (उत्साः) स्रोते (वः) तुम्हें (उत) अत्यन्त करके (सम्) यथावत् (अवन्तु) तृप्त करें। (मरुद्भिः) पवनों से (प्रच्युताः) चलाये गए (मेघाः) मेघ (पृथिवीम्) पृथिवी को (अनु) अनुकूल (प्र) भले प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः – जैसे जल, बिजुली आदि मिलकर जगत् का उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परस्पर मिलकर संसार का सुधार करें ॥९॥

मन्त्र ७ व ८ का मिलान करो ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्ष वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ।।१०।।

भाषार्थः—(यः) जो (अग्निः) [सूर्य ताप] (अपाम्) जलों के (तनूभिः) विस्तारों से (संविदानः) मिलता हुआ (ओषधीनाम्) चावल, यवादियों का (अधिपाः) विशेष पालन कर्ता (बभूव) हुआ है। (सः) वह (जातवेदाः) धनों का उत्पन्न करने वाला, वा उत्पन्न पदार्थों में सत्ता वाला अग्नि (नः प्रजाभ्यः) हम प्रजाओं के लिये (दिवः) अन्तरिक्ष से (परि) सब ओर (वर्षम्) बरसा, (प्राणम्) प्राण और (अमृतम्) अमृत [मरण से बचाव का साधन] (वनुताम्) देवे ॥१०॥

भावार्थः—जैसे सूर्य जल को खेंच लेकर फिर बरसा कर सब प्राणियों का जीवन आधार होता है, वैसे ही मनुष्य विद्या और धन प्राप्त करके संसार का उपकार करें ॥१०॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादार्पं ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११।

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापालक सूर्य (सलिलात्) व्यापक (समुद्रात्) आकाश से (आपः=अपः) जल (आ ईरयन्) भेजता हुआ (उदधिम्) [पार्थिव] समुद्र को (अर्दयाति) दबावे [जल खेंचे]। (अश्वस्य) व्यापक (वृष्णः) बरसने वाले मेघ का (रेतः) जल (प्रप्यायताम्) अच्छे प्रकार बढ़े। [हे पर्जन्य ! तू] (एतेन) इस (स्तनयित्नुना) गर्जन के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख (आ इहि) आ ॥११॥

भावार्थः—मन्त्र १० के समान है ॥११॥

इस मन्त्र का चौथा पाद 'अर्वाङेतेन···' ऋ० ५। ८३। ६ का तीसरा पाद है ॥

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव
नीचीरपः सृज । वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (पिता) पालन करने वाला (असुरः) प्राण दाता मेघ (अपः) जल धारायें (निषिञ्चन्) उंडेलता हुआ [वर्तमान हो]। (अपाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल के (गर्गराः) गड़गड़ाते हुए गगरे (श्वसन्तु) श्वास लेवें। (वरुण) हे वरणीय मेघ! (अपः) जलधाराओं को (नीचीः) नीचे की ओर (अव सृज) छोड़ दे। (पृश्निबाहवः) छोटी २ भुजा वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंढके (इरिणा = इरिणानि) ऊसर भूमियों को (अनु = अनुहाय) छोड़कर (वदन्तु) ध्वनि करें ॥१२॥

भावार्थः- बरसा होने पर जैसे मेंढकों में फिर प्राण आ जाते हैं इसी प्रकार अनेक पदार्थ उगकर आनन्ददायक होते हैं ॥१२॥

इस मन्त्र का पहिला पाद 'अपो॰॰ नः' (ऋ० ५।८३।६) का चौथा पाद है।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्य जिन्विता प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३॥

भाषार्थः—(संवत्सरम्) बोलने के समय तक (शशयानाः) शयन करने वाले (मण्डूकाः) शोभा बढ़ाने वाले वा डुबकी लगाने वाले मेंडुके, (व्रतचारिणः) व्रतधारी (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों के समान, (पर्जन्यजिन्विताम्) मेंह से तृप्त की हुई (वाचम्) वाणी को (प्र) अच्छे प्रकार (अवादिषुः) बोलें ॥१३॥

भावार्थः—जैसे वेदज्ञानी पुरुष वेदों में मौन [मनन] व्रत साधकर सत्य ज्ञान से तृप्त होकर संसार में उपदेश करते हैं, इसी प्रकार मेंडुके वृष्टि होने से संतुष्ट होकर बोलते हैं ॥१३॥

यह मन्त्र ऋ० ७। १०३। १ में है और निरुक्त ९। ६ में भी व्याख्यात है॥

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४॥

भाषार्थः—(मण्डूकि) हे शोभा बढ़ाने वाली वा डुबकी लगाने वाली मेंडुकी! (उप प्रवद) पास आकर बोल, (तादुरि) हे तैरने वाली वा उतने [शरीर जितना] उदरवाली (वर्षम्) वर्षा को (आवद) बुला (ह्रदस्य) पोखर के (मध्ये) बीच में (चतुरः) चारों (पदः) पदों को (विगृह्य) फैला कर (प्लवस्व) तैर ॥१४॥

भावार्थः—जैसे मेंडुकी वर्षा होने पर आनन्द से जल के भीतर तैरती फिरती है, ऐसे ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्मविद्या में मग्न होकर विचरते हैं ॥१४॥

यह मन्त्र निरुक्त ९। ७ में उदाहृत है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५॥

भाषार्थः—(खण्वखा ३ इ=खण्वाखे) हे खनती में लंगड़ाने वाली (खैमखा ३ इ=खेमखे) हे कष्ट में ठहरी हुई (तदुरि=ददुरि) हे [भूमि वा कान] फोड़ने वाली दादुरी ! (मध्ये) [जल के] भीतर वर्तमान ! और (पितरः) हे पालन करनेवाले विद्वान् किसान आदि लोगो ! (वर्षम्) वर्षा का (वनुध्वम्) सेवन करो (मरुताम्) याजकों के (मनः, मन को (इच्छत) चाहो [प्रसन्न करो] ॥१५॥

भावार्थः—वृष्टि होने से अन्न आदि पदार्थों की उत्पत्ति से सब प्राणी मेंडुकी के समान प्रसन्न होते हैं। और यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं ॥१५॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (महान्तम्) बड़े (कोशम्) धन भण्डार को (उत् अच) ऊंचा कर, (अभि) सब ओर से (सिञ्च) बरसा दे। (सविद्युतम्) समान विविध प्रकाशित [जगत्] (भवतु) होवे। (वातः) वायु (वातु) [अनुकूल] चले। (बहुधा) अनेक प्रकार से (विसृष्टाः) फैली हुई (ओषधयः) चावल, यव आदि ओषधें (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वताम्) फैलावें, और (आनन्दिनीः=०—न्यः) आनन्द युक्त (भवन्तु) होवें ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा के अनुग्रह से मनुष्य प्रयत्नपूर्वक धन संचय करें और वायु, वृष्टि आदि से उपकार लेकर यज्ञ अर्थात् अनेक विज्ञान युक्त कर्मों को फैलावें और अन्न आदि पदार्थ को पुष्टिकारक करें ॥१६॥

इस मन्त्र का प्रथम पाद 'महान्तं··· षिञ्च' ऋ० ५। ८३। ८ में है।

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १६ ॥

१—९ ॥ वरुणो देवता । १ अनुष्टुप्, २—६ त्रिष्टुप् ७ जगती, ८, ९ त्रिपदा त्रिष्टुप् ॥

वरुणस्य सर्वव्यापकतोपदिश्यते—वरुण की सर्वव्यापकता का उपदेश ॥

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन [लोकों] का (बृहन्) बड़ा (अधिष्ठाता) अधिष्ठाता [वह वरुण] (अन्तिकात् इव) समीप में वर्तमान सा (पश्यति) देखता है, (यः) जो [वरुण] (तायत्) विस्तार वा पालन (चरन्) करता हुआ (सर्वम्) सब जगत् को (मन्यते) जानता है। (देवाः) व्यवहार में कुशल देवता लोग (इदम्) यह बात (विदुः) जानते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वनियन्ता, सर्वज्ञाता, सर्वस्रष्टा और सर्वरक्षक है, इस बात को ऋषि महात्मा साक्षात् करते हैं ॥१॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तिष्ठति) खड़ा होता है, वा (चरति) चलता है, (च) और (यः) जो पुरुष (वञ्चति) ठगी करता है, और (यः) जो (निलायन्) भीतर घुस कर, और (यः) जो (प्रतङ्कम्) बाहिर निकल कर (चरति) काम करता है और (द्वौ) दो जने (संनिषद्य) एक साथ बैठ कर (यत्) जो कुछ (मन्त्रयेते) कानाफूसी करते हैं, (तृतीयः) तीसरा (राजा) राजा (वरुणः) वरणीय वा दुष्टनिवारक वरुण परमेश्वर (तत्) उसे (वेद) जानता है ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर प्राणियों के गुप्त से गुप्त कर्मों को सर्वथा जानता और उनका यथावत् फल देता है ॥२॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इयम् भूमिः) यह भूमि (उत) भी, (उत) और (असौ) वह (बृहती) बड़ा, (दूरे अन्ता) [पृथिवी से] दूर गति वाला (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा का है, (उतो) और भी [पृथिवी और आकाश के] (समुद्रौ) दोनों समुद्र (वरुणस्य) वरुण की (कुक्षी) दो कोखें हैं, (उत) और वह (अस्मिन्) इस (अल्पे) थोड़े से (उदके, जल में भी (निलीनः) लीन हो रहा है ॥३॥

भावार्थः—वरुण परमात्मा की ईश्वरता बड़ों से बड़े और छोटों से छोटे पदार्थों में है, अर्थात् यह स्थूल और सूक्ष्म जगत् उसी के आकर्षण, धारण, संयोग, वियोग सामर्थ्य में स्थित है। उसकी उपासना करके सब मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥३॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥

भाषार्थः—(उत) और (यः) जो [दुष्ट] (परस्तात्) दूर देश में (द्याम्) सूर्य लोक को (अतिसर्पात्) पार करके चुपके से रेंग जावे, (सः) वह पुरुष (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा की (न मुच्यातै) मुक्ति न पा सके। (दिवः) प्रकाशमान (अस्य) इस [वरुण] के (स्पशः) बन्धन सामर्थ्य (इदम्, इस [जगत्] में (प्र चरन्ति) चलते रहते हैं, [उनको] (सहस्राक्षाः) सहस्र प्रकार की दृष्टि वा व्यवहार वाले पुरुष (भूमिम् अति) भूमि के पार (पश्यन्ति) देखते हैं ॥४॥

भावार्थः—चाहे कोई दुष्कर्म करके कहीं छिप जावे, तो भी वह वरुण परमेश्वर के अखंड दण्ड से नहीं बच सकता। वह अपनी करनी का फल इस जन्म वा परजन्म में अवश्य पाता है ॥४॥

सर्वं तद् राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥

भाषार्थः—(राजा वरुणः) राजा वरुण (तत् सर्वम्) वह सब (वि चष्टे) देखता रहता है, (यत्) जो कुछ (रोदसी अन्तरा) सूर्य और भूमि के बीच में और (यत्) जो कुछ (परस्तात्) परे है। (जनानाम्) मनुष्यों के (निमिषः) पलक मारने (अस्य) इस [वरुण] के (संख्याताः) गिने हुए हैं, वह (तानि) हिंसा कर्मों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नि मिनोति) गिरा देता है (श्वघ्नी इव) जैसे धन हारने वाला जुआरी (अक्षान्) पासों को [गिरा देता है] ॥५॥

भावार्थः—वरुण सर्वज्ञ सर्वनियन्ता है, वह दुष्टों को दण्ड देकर ऐसे गिरा देता है जैसे हारा जुआरी निर्धन होकर क्रोध से पासे आदि पटक देता है। यहां गिराने मात्र में दृष्टान्त है ॥५॥

ये ते पाशा॑ वरुण स॒प्तस॑प्त त्रे॒धा ति॒ष्ठ॑न्ति॒ वि॒षि॒ता रु॒शन्तः॑ ।
छि॒न॒न्तु॒ सर्वे॑ अनृ॑तं॒ वद॑न्तं॒ यः स॑त्य॒वाद्य॑ति॒ तं सृ॑जन्तु ॥६॥

भाषार्थः—(वरुण) हे दुष्ट निवारक परमेश्वर! (सप्तसप्त = सप्तसप्ताः) सात धाम [पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट् अर्थात् स्थूल जगत्, परमाणु और प्रकृति] से सम्बन्ध वाले, (त्रेधा) तीन प्रकार से [भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में] (विषिताः) फैले हुए (रुशन्तः) [दुष्टों वा दोषों को] नाश करते हुए (ये) जो (ते) तेरे (पाशाः) फांस वा जाल (तिष्ठन्ति) स्थित हैं। (सर्वे) वे सब [फांस] (अनृतं वदन्तम्) मिथ्या बोलने वाले को (छिनन्तु) छिन्न भिन्न करें, और (यः) जो (सत्यवादी) है (तम्) उसको (अति) सत्कार पूर्वक (सृजन्तु) छोड़ें ॥६॥

भावार्थः—वह परमात्मा प्रत्येक वस्तु और काल में व्यापक होकर दुष्टों को यथावत् दण्ड और शिष्टों को यथावत् आनन्द देता है ॥६॥

श॒तेन॑ पाशै॒रभि धे॑हि वरुणै॒नं मा तं॑ मोच्यनृ॒तवाङ् नृ॒चक्षः॑ ।
आस्तां॑ जाल्म उ॒दरं॑ श्रंशयित्वा कोश॑ इवाब॒न्धः प॑रिकृ॒त्यमा॑नः ॥७॥

भाषार्थः—(वरुणः) हे दुष्टनिवारक परमेश्वर! (शतेन) सौ (पाशैः) फांसों से (एनम्) इस [मिथ्यावादी] को (अभि धेहि) बाँध ले, (नृचक्षः) हे मनुष्यों के देखने वाले! (अनृतवाक्) मिथ्यावादी पुरुष (ते) तेरी (मा मोचि) मुक्ति न पावे। (जाल्मः) नीच अन्यायी (उदरम्) युद्ध कर्म को (श्रंशयित्वा = स्रंसयित्वा) नीचे गिरा कर (परिकृत्यमानः) कटी हुई, (अबन्धः) अपने से छुटी (कोशःइव) फूल की कली के समान (आस्ताम्) बैठा रहे ॥७॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के दण्ड से कोई मिथ्यावादी नहीं छूट सकता, और अधर्मी दुष्ट, धर्मात्माओं के सन्मुख ऐसा गिर जाता है, जैसे फूल की अधखिली कली अधिक पवन आदि के कारण गिर कर कुम्हला जाती है ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः समाम्यो ३ ' वरुणो व्याम्यो ३ ' यः संदेश्यो ३ ' वरुणो यो विदेश्यः । यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥

भाषार्थः—(वरुणः) वरुण परमेश्वर (यः) व्यापक, (समाम्यः) समान सेवनीय, (यः) सर्वनियन्ता और (व्याम्यः) पीड़ा रहित है, (वरुणः) वरुण ही (यः) यत्नशील, (संदेश्यः) समान देशीय, (यः) संयोग और वियोग करने वाला, (विदेश्यः) विदेशीय है। (वरुणः) वरुण ही (यः) पूजनीय, (दैवः) दिव्य गुण वालों में वर्त्तमान, (च) और (यः) दाता, और (मानुषः) मननशील मनुष्यों में वर्त्तमान है ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की महिमा भले प्रकार जानकर अपने आत्मा की उन्नति करें ॥८॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननु संदिशामि ॥९॥

भाषार्थः—(असौ = असौ त्वम्) वह तू (आमुष्यायण) हे अमुक पिता के पुत्र ! और (अमुष्याः पुत्र) हे अमुक माता के पुत्र ! (त्वा) तुझको (तैः सर्वैः) उन सब (पाशैः) नियम बन्धनों से (अभि ष्यामि) मैं [वरुण] बांधता हूँ, और (तान् सर्वान्) उन सबों को (उ) अवश्य (ते) तेरे लिये (अनुसंदिशामि) समीप से समझाता हूँ ॥९॥

भावार्थः—परमेश्वर ने वेद द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है कि सत्कर्म सुख के और दुष्कर्म दुःख के मूल हैं। इसलिये मनुष्य दुष्कर्मों को छोड़ कर सत्कर्म करके आनन्द भोगें ॥९॥

सूक्तम् १७ ॥

१—८ ॥ ओषधिर्वापामार्गो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजलक्षणोपदेशः—राजा के लक्षणों का उपदेश ॥

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ईशानाम्) समर्थ (भेषजानाम्) भय निवारक पुरुषों में (त्वा) तेरा (उज्जेषे) [शत्रुओं को] जीतने के लिये (आरभामहे) हम आश्रय लेते हैं। (ओषधे) हे ताप नाशक [वा अन्न आदि ओषधि के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपकारक !] (सर्वस्मै) सब जनों के लिये (त्वा) तुझे (सहस्रवीर्यम्) सहस्रों सामर्थ्य वाला (चक्रे) उस [परमात्मा] ने बनाया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थियों में महा पुरुषार्थी पुरुष को अपना प्रधान बनावें और उससे अपनी रक्षा का सहारा लें ॥१॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२॥

भाषार्थः—(सत्यजितम्) सत्य से जीने वाली, (शपथयावनीम्) शाप वा क्रोध वचन हटाने वाली, (सहमानाम्) शत्रुओं को हराने वाली और (पुनः सराम्) वारंवार आगे बढ़ाने वाली सेना को, और (सर्वाः) सब (ओषधीः) ताप नाश करने वाली प्रजाओं को (सम् अह्वि) यथावत् मैंने आवाहन किया है, (इतः) इस [कठिन कर्म] से (नः) हमें (पारयात्) वह [पुरुषार्थी] पार लगावे, (इति) इस अभिप्राय से ॥२॥

भावार्थः - प्रजा प्रतिनिधि सब हितकारी सेना और प्रजा गणों को बुला कर शत्रुओं से बचाने के लिये राजा बनाने का प्रयोजन प्रकाशित करे ॥२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

भाषार्थः—(या) जिस [शत्रुसेना] ने (शपनेन) शाप [कुवचन] से (शशाप) कोसा है और (या) जिसने (अघम्) दुःख देने वाली (मूरम्) मूल को (आदधे) जमा लिया है, और (या) जिसने (रसस्य) रस के (हरणाय) हरण के लिए (जातम्) [हमारे] समूह को (आरेभे) छूआ है, (सा) वह [शत्रुसेना] (तोकम्) अपनी बढ़ती वा संतान को (अत्तु) खा लेवे ॥३॥

भावार्थः—जल शत्रु सेना दुर्वचन बोलती और उपद्रव मचाती बढ़ती आवे, युद्धकुशल सेनापति उनमें भेद डाल दे कि वह लोग अपने संतान अर्थात् इष्ट मित्रों को ही नाश कर दें ॥३॥

यह मन्त्र पहले अ० १ । २८ । ३ में आ चुका है ॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे राजन् !] (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (आमे) भोजन में, वा (पात्रे) पानी में (चक्रुः) उन्होंने [हिंसाकारियों ने] किया है, (याम्) जिसको [तेरे] (नीललोहिते = नीलरोहिते) नीलों अर्थात् निधियों की उत्पत्ति में (चक्रुः) उन्होंने किया है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को [तेरे] (आमे) चलने में वा (मांसे) ज्ञान काल वा मांस में (चक्रुः) उन्होंने किया है, (तया) उस [हिंसा] के कारण (कृत्याकृतः) हिंसाकारियों को (जहि) नाश करदे ॥४॥

भावार्थः—जो दुष्कर्मी राजा के खान, पान, धनसंचय, मार्ग, तथा सत्य सत्य जानने, वा काल के सुप्रयोग एवं शरीर में विपत्ति डाले, राजा उन को यथावत् दंड देकर नाश कर दे ॥४॥

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥

भाषार्थः—(दौष्वप्न्यम्) नींद में बेचैनी, (दौर्जीवित्यम्) जीवन का कष्ट, (अभ्वम्) बड़े (रक्षः) राक्षस, (अराय्यः) अनेक अलक्ष्मियों और (दुर्णाम्नीः) दुष्ट नाम वाली (दुर्वाचः) कुवाणियों, (ताः सर्वाः) इन सब को (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि) हम नाश करें ॥५॥

भावार्थः—राजा ऐसी नीति चलावे कि प्रजागण बाहिर भीतर से निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोवें, उद्यमी होकर आनन्द भोगें, चोर डाकू आदिकों से निर्भय रहें, धन की वृद्धि करें और विद्या बल से कलह छोड़कर परस्पर उन्नति करने में लगे रहें ॥५॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥

भाषार्थः—(क्षुधामारम्) भूख से मरना, (तृष्णामारम्) पियास से मरना, (अगोताम्) गौओं की हानि, और (अनपत्यताम्) बच्चों का अभाव, (तत् सर्वम्) इस सब को, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक ! [वा अपामार्ग औषध के समान उपकारी राजन् !] (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥६॥

भावार्थः—राजा के सुप्रबन्ध से सूखा के समय भी अन्न, जल, गौ, बैल आदि की बहुतायत से मनुष्य यथावत् बढ़ते रहते हैं ॥६॥

"अपामार्ग" का अर्थ सर्वथा सशोधक है, और एक औषध भी है, जिससे कफ, बवासीर, खुजली, उदर रोग और विष रोग का नाश होता है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥

भाषार्थः – (तृष्णामारम्) पियास से मरना, (क्षुधामारम्) भूख से मरना, (अथो) और भी (अक्षपराजयम्) व्यवहारों वा इन्द्रियों की हार, (तत् सर्वम्) इस सब को (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक राजन् ! (त्वया) तेरे साथ (वयम् अपमृज्महे) हम शोधते हैं ॥७॥

भावार्थः—राजा के उत्तम प्रबन्ध से न तो जल, अन्न और दैनिक काम काज की हानि, और न शरीर और आत्मा की दुर्बलता होती है ॥७॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

भाषार्थः—(अपामार्गः) सब दोषों का शोधने वाला परमेश्वर (सर्वासाम्) सब (ओषधीनाम्) तापनाशक अन्न आदि पदार्थों का (एकः इत्) एक ही (वशी) वश में रखने वाला है। (तेन) उस [के आश्रय] से [हे राजन् !] (ते) तेरे (आस्थितम्) उपस्थित [भय] को (मृज्मः) हम शोधते हैं, (अथ) इस लिये (त्वम्) तू (अगदः) नीरोग होकर (चर) विचर ॥८॥

भावार्थः प्रजागण कहते हैं—"परमात्मा सब संसार का स्वामी है, उसी के सहारे से हम आप पर यह राज्यभार रखते हैं, आप भी उसी के सहारे से निश्चिन्त होकर अपना कर्तव्य करें" ॥८॥

सूक्तम् १८ ॥

१—८ ॥ अपामार्गो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥१॥

भाषार्थः—(ज्योतिः) ज्योति (सूर्येण समम्) सूर्य के साथ साथ और (रात्री) रात्रि (अह्ना समावती) दिन के साथ वर्तमान है, [ऐसे ही] मैं (सत्यम्) सत्यकर्म को (ऊतये) रक्षा के लिये (कृणोमि) करता हूं, (कृत्वरीः=कृत्वर्यः) कतरने वाली विपत्तियां (अरसाः) नीरस (सन्तु) हो जावें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे प्रकाश के साथ सूर्य का और दिन के साथ रात्रि का नित्य सम्बन्ध है, ऐसे ही मनुष्य का सत्य के साथ नित्य सम्बन्ध है। इससे राजा और प्रजा सदा सत्य में प्रवृत्त होकर मिथ्या कामों की विपत्तियों से बचें ॥१॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (यः) जो पुरुष (कृत्याम्) हिंसा (कृत्वा) करके (अविदुषः) अजान मनुष्य के (गृहम्) घर को (हरात्) हर लेवे। वह दुष्कर्म (प्रत्यक्) लौट कर (तम्) उसी [दुष्कर्मी] को (उप पद्यताम्) जा मिले (इव) जैसे (धारुः) दूध पीने वाला (वत्सः) बछड़ा (मातरम्) अपने माता [गौ के पीछे पीछे दौड़ता है] ॥२॥

भावार्थः—दुष्ट मनुष्य को उसकी दुष्टता का दण्ड राजप्रबन्ध वा ईश्वर व्यवस्था से अवश्य पहुँचता है, जैसे छोटा बछड़ा अनेक गौओं में से अपनी ही माता को चिपट जाता है ॥२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तेन अमा) चोर वा म्लेच्छ के साथ होकर (पाप्मानम्) पाप कर्म (कृत्वा) करके (अन्यम्) दूसरे को (जिघांसति) मारना चाहे, (बहुलाः) वृद्धि करने वाले (अश्मानः) व्यापनशील वा पाषाण के समान दृढ़स्वभाव पुरुष (तस्याम्) उस [दुष्क्रिया] के (दग्धायाम्) भस्म किये जाने पर (फट्) [उस दुष्ट का] नाश (करिक्रति) कर डालें ॥३॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष दुष्टों से मिल कर लोगों में उपद्रव मचावें, राजपुरुष अनुसन्धान करके उन दोनों को यथावत् दण्ड देवें ॥३॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ् छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥

भाषार्थः—(सहस्रधामन्) हे सहस्रों धारण, पोषण और दान वाले राजन् ! (त्वम्) तू (विशिखान्) विरुद्ध प्रकार से सोने वाले, वा विरुद्ध गति वाले, (विग्रीवान्) विरुद्ध प्रकार से खाने वाले, [दुष्टों] को (शायय) सुला दे [गिरा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे]। (कृत्याम्) दुष्क्रिया (चक्रुषे) करने वाले पुरुष को (प्रति) प्रत्यक्ष (स्म) अवश्य [वैसी ही दण्ड पीड़ा] (हर) पहुंचा [जैसे] (प्रियाम्) प्रिया, भार्या को (प्रियावते) उसके स्वामी के पास [प्रत्यक्ष पहुँचाते हैं] ॥४॥

भावार्थः—राजा अनेक प्रकार से प्रजा का रक्षण आदि करता हुआ दुष्टों को दण्ड पहुंचावे, जैसे भूली भटकी स्त्री को उसके स्वामी के पास प्रत्यक्ष पहुँचा देते हैं ॥४॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥५॥

भाषार्थः –(अहम्) मैंने (अनया ओषध्या) इस ओषधिरूप [तापनाशक तुझ राजा] के साथ (सर्वाः कृत्याः) सब हिंसाओं को (अदूदुषम्) खंडित कर दिया है, (याम्) जिस [हिंसा] को (क्षेत्रे) खेत में, अथवा (याम्) जिसको (गोषु) गौओं में (वा) अथवा (याम्) जिसको (ते) तेरे (पुरुषेषु) पुरुषों में (चक्रुः) उन लोगों ने किया था ॥५॥

भावार्थः—जो दुष्ट लोग प्रजा को किसी प्रकार से सतावें, प्रजा गण और राजपुरुष मिलकर दुष्टों का नाश करें ॥५॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जिस दुष्ट ने (कर्तुम्) हिंसा को (चकार) किया था, वह (न शशाक) समर्थ न था, उसने (पादम्) अपना पैर और (अंगुरिम्) अंगुरी (शश्रे) तोड़ ली। (सः) उसने (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भद्रम्) आनन्द, और (आत्मने) अपने लिये (तु) तो (तपनम्) तपन (चकार) कर लिया ॥६॥

भावार्थः – पापी का आत्मा दुर्बल होता है, वह दण्ड पाने से आप ही अपने हाथ पैर में कुल्हाड़ी मारता है। उससे शिष्टों को सुख और उस दुष्ट को दुःख होता है ॥६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाहं यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७॥

भाषार्थः—(अपामार्गः) दोषों का शोधने वाला राजा (क्षेत्रियम्) देह वा वंश के दोष को, (च) और (यः) जो कुछ (शपथः) दुर्वचन हो [उसे भी]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप मार्ष्टु) शुद्ध कर देवे। (अह) अरे (यातुधानीः) यातना देने वाली शत्रु-सेनाओं को (अप = अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले, और (सर्वाः) सब (अराय्यः = अरायीः) अलक्ष्मियों को (अप = अप मार्ष्टु) शुद्ध कर डाले ॥७॥

भावार्थः—राजा अपनी सुनीति से प्रजा के दुःखों का नाश करके उनके स्वास्थ्य और धन की वृद्धि करे ॥७॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

भाषार्थः -(यातुधानान्) पीड़ा देने वाले राक्षसों को (अपमृज्य) शोधकर, और (सर्वाः) सब प्रकार की (अराय्यः) दरिद्रताओं को (अप = अपमृज्य) शोधकर, (अपामार्ग) हे सर्वसंशोधक राजन्! (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम लोग (तत् सर्वम्) उस सब [कष्ट कर्म] को (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥८॥

भावार्थः—नीतिनिपुण राजा के शासन में सब प्रजागण अपने कष्टों को दूर करके आनन्द भोगते हैं ॥८॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध सूक्त १७ मन्त्र ६ में आया है ॥

॥ सूक्तम् १९ ॥

१—८ ॥ अपामार्गो देवता ॥ १, ३ - ८ अनुष्टुप्, २ पथ्या पङ्क्तिः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवाच्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन्] तू (अबन्धुकृत्) अबन्धुओं का काटने वाला (उतो) भी (असि) है, (नु) और (जामिकृत्) बन्धुओं का बनाने वाला (उतो) भी (असि) है। (उतो) इससे (कृत्याकृतः) हिंसा करने वालों और (प्रजाम्) उनके सेवकों को (आच्छिन्धि) काट डाल, (इव) जैसे (वार्षिकम्) वर्षा में उत्पन्न (नडम्) नरकट घास को ॥१॥

भावार्थः—राजा अपने उत्तम शासन से हिंसक दुष्टों का नाश करके इष्ट मित्रों में मेल बढ़ावे ॥१॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन। सेनैवैषि त्विषीमती
न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे राजन् !] तू (ब्राह्मणेन) वेदज्ञानी ब्राह्मण, (कण्वेन) मेधावी, (नार्षदेन) नायकों की सभा के हितकारी पुरुष करके (पर्युक्ता) उपदिष्ट [औषध समान] (असि) है। (त्विषीमती) प्रकाशयुक्त (सेना) सेना अर्थात् सूर्य की किरण पुंज के (इव) समान (एषि) तू चलता है। (तत्र) वहां पर (भयम्) भय (न अस्ति) नहीं होता, (यत्र) जहां पर (ओषधे) हे ओषधि तुल्य तापनाशक राजन् (प्राप्नोषि) तू व्यापक होता है ॥२॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य की बतलाई ओषधि बड़ी गुणकारी होती है और जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार मिटाता है, वैसे ही राजा वेदज्ञानी बुद्धिमान् नरशिरोमणि पुरुषों के उपदेश और सत्संग से प्रतापी होकर शत्रुओं का नाश करके प्रजा को सुख देता है ॥२॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्यार्थो हन्तासि रक्षसः ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ज्योतिषा इव) अपने तेज से जैसे (अभिदीपयन्) सब ओर प्रकाश फैलाता हुआ (ओषधीनाम्) ओषधि तुल्य उपकारी पुरुषों में (अग्रम्) आगे आगे (एषि) तू चलता है। (उत) और तू (पाकस्य) पक्का (दृढ़) करने योग्य अथवा रक्षा योग्य दुर्बल पुरुष का (त्राता) रक्षक (असि) है (अथो) और भी तू (रक्षसः) राक्षस का (हन्ता) हनन करने वाला (असि) है ॥३॥

भावार्थः—प्रतापी राजा सब उपकारी पुरुषों में अग्रगामी होकर यथावत् शासन करता है ॥३॥

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥

भाषार्थः—(अदः) वह (यत्) जो (अग्रे) पूर्वकाल में (त्वया) तेरे साथ होकर (देवाः) देवताओं [विद्वान् शूरों] ने (असुरान्) असुरों को (निरकुर्वत) निकाल दिया है, (तत्) उसी से (ओषधे) हे ओषधि समान तापनाशक राजन् ! (त्वम्) तू (अपामार्गः) संशोधक (अधि) अधिक करके (अजायथाः) प्रकट हुआ है ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य प्रशंसनीय काम करने से ही संसार में प्रशंसा पाते हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ।५।।

भाषार्थः – [हे राजन् !] (विभिन्दती) रोगों को छिन्न भिन्न करने वाली (शतशाखाः) सैकड़ों शाखा वाली [ओषधि के समान] (विभिन्दन्) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाला (नाम) प्रसिद्ध (ते) तेरा (पिता) पिता है। (त्वम्) तू भी (प्रत्यक्) लौटाकर (तम्) उसको (विभिन्धि) छिन्न भिन्न करदे, (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) सताता रहता है ।।५।।

भावार्थः—शूरवीर पिता का पुत्र भी अपने पिता के तुल्य शूरवीर होकर वैरियों का नाश करता है ।।५।।

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्त्तारमृच्छतु ।।६।।

भाषार्थः—(तत्) वह (महत्) बड़ा (व्यचः) परस्पर मिला हुआ वा फैला हुआ (असत्) अनित्य जगत् (भूम्याः) भूमि से (समभवत्) उत्पन्न हुआ है, [जो जगत्] (याम्) जिस [भूमि] को (एति) चला जाता है। (ततः) उसी कारण से (तत्) वह [दुष्ट कर्म] (वै) अवश्य (प्रत्यक्) लौटकर (कर्त्तारम्) हिंसक को (विधूपायत्) संताप देता हुआ [उसको ही] (ऋच्छतु) पहुंचे ।।६।।

भावार्थः—जैसे ईश्वर नियम से कार्य रूप स्थूल पदार्थ भूमि आदि तत्त्वों से उत्पन्न होकर फिर छिन्न भिन्न होकर भूमि आदि अपने कारणों में लौट जाते हैं, ऐसे ही राजा के दण्ड से दुष्ट की दुष्टता उसी को ही लौटती और सताती है ।।६।।

बम्बई गवर्नमेंट पुस्तक में टिप्पणी है कि जर्मनी के भट्ट रोथ और ह्विटनी महाशय के मत में 'याम्' के स्थान पर 'द्याम्' होना चाहिये और ग्रिफिथ महाशय ने भी 'द्याम्' मानकर स्वर्ग [heaven] अनुवाद किया है, परन्तु पदपाठ और सायण भाष्य में 'याम्' है, और हमारे मत में भी 'याम्' ही शुद्ध है ।।

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ।।७।।

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वम्) तू (हि) ही (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष होकर (प्रतीचीनफलः) प्रतिकूल गति में रहने वालों का नाश करने वाला (संबभूविथ) हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, [इस कारण] (मत्) मुझसे [शत्रु के] (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों को और (वरीयः) अधिक विस्तीर्ण (वधम्) हथियार को (अधि) अधिकार पूर्वक (यवय) पृथक् कर ॥७॥

भावार्थः—पराक्रमी विजयी राजा शत्रुओं का नाश करके प्रजा को सुख पहुंचावे ॥७॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (शतेन) सौ [उपाय] से (मा) मेरा (परि पाहि) सब प्रकार पालन कर, (सहस्रेण) सहस्र साधन से (मा) मेरी (अभि) सब ओर से (रक्ष) रक्षा कर । (वीरुधां पते) हे विविध प्रकार बढ़ने वाली प्रजाओं के पालक ! (उग्रः) महाबली (इन्द्रः) परमेश्वर (ते) तुझको (ओज्मानम्) पराक्रम (आ) यथावत् (दधत्) देता हुआ वर्तमान है ॥८॥

भावार्थः—राजा अपनी प्रजा की सदा रक्षा करे वह पुरुषार्थी पुरुष परमेश्वर की न्याय व्यवस्था से सदा बल पाता रहता है ॥८॥

सूक्तम् २० ॥

१—९ । ब्रह्म देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मोपासनोपदेशः—ब्रह्म की उपासना का उपदेश ॥

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्यशक्ति परमात्मन् ! तू, (तत्) विस्तार करने वाला वा विस्तीर्ण ब्रह्म आप (आ) अभिमुख (पश्यति) देखता है, (प्रति) पीछे से (पश्यति) देखता है, (परा) दूर से (पश्यति) देखता है, और (पश्यति) सामान्यतः देखता है । (दिवम्) सूर्य लोक, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि अर्थात् (सर्वम्) सबको (पश्यति) देखता है ॥१॥

भावार्थः—वह ब्रह्म सब संसार को एकरस देखता रहता है इसलिए सब मनुष्य उसकी उपासना करके दुष्कर्मों से बचकर सत्कर्मों में प्रवृत्त रहें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वं भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥

भाषार्थः—(देवि) हे दिव्यशक्ति, (ओषधे) तापनाशक परमात्मन् ! (त्वया) तेरे सहारे से (अहम्) मैं (तिस्रः) तीनों (दिवः) सूर्य लोकों,(तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों (च) और (इमाः) इन (षट्) छह (प्रदिशः) फैली हुई दिशाओं और (सर्वा) सब (भूतानि) सृष्ट पदार्थों को (पृथक्) नाना प्रकार से (पश्यानि) देखूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा के साथ तीन उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार से संसार के सब पदार्थों को साक्षात् करके विज्ञान-पूर्वक उनसे उपकार लेवे ॥२॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य ह्यसि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥

भाषार्थः—(तस्य) उस (दिव्यस्य) दिव्य गुण वाले (सुपर्णस्य) यथावत् पालनीय जीव की, तू (ह) अवश्य (कनीनिका) कमनीया देवी, अथवा नेत्र तारा समान (असि) है । (सा=सा त्वम्) उस तूने (भूमिम्) हृदय भूमि को (आ रुरोहिथ) प्राप्त किया है, (इव) जैसे (श्रान्ता) थकी हुई, शान्त स्वभाव, वा जितेन्द्रिय (वधूः) स्त्री (वह्यम्) अपने पाने योग्य पदार्थ को [प्राप्त करती है] ॥३॥

भावार्थः—जैसे जैसे योगी समाधि लगाकर परमात्मा की महिमा देखता है वैसे वैसे ही परमात्मा उसके हृदय में दृढ़ भूमि होता है, जैसे जितेन्द्रिय स्त्री वा पुरुष ठिकाने पर पहुंचकर ठहर जाता है ॥३॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्चं शूद्र उतार्यः ॥४॥

भाषार्थः—(सहस्राक्षः) असंख्य दर्शन शक्तिवाला अथवा सहस्रों व्यवहारों वाला (देवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दक्षिणे) प्रवृद्ध (हस्ते) प्रकाश के निमित्त (ताम्) उपकारशक्ति (मे) मुझको (आ) सब ओर से (दधत्) दान कर रहा है, (तया) उस [उपकारशक्ति] से (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूं, (यः च) जो कोई (शूद्रः) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख (उत) अथवा (आर्यः) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥४॥

भावार्थः—सर्व व्यवहार कुशल, सर्वद्रष्टा, सर्वनियन्ता जगदीश्वर की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी हुई उपकारशक्ति द्वारा मनुष्य सब मनुष्यों और पदार्थों का यथावत् विवेक करके संसार की उन्नति करें ॥४॥

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥

भाषार्थः—(रूपाणि) [पदार्थों के] रूपों अर्थात् बाहिरी आकार को (आविष्कृणुष्व) प्रकट कर दे, (आत्मानम्) [वस्तुओं के] आत्मा अर्थात् भीतरी स्वभाव को (मा अप गूहथाः) गुप्त मत रख (अथो) और भी (सहस्रचक्षो) हे असंख्य दर्शन शक्ति वाले परमात्मन् ! (त्वम्) तू (किमीदिनः) अब क्या, यह क्या हो रहा है, ऐसे गुप्त कर्म करने वाले को लुतरे लोगों को (प्रति) प्रत्यक्ष (पश्याः) देख ले ॥५॥

भावार्थः मनुष्य पदार्थों के आकार और गुण को स्थूल और सूक्ष्म रीति से पहचान कर दोषों से बचें और दूसरों को बचावें ॥५॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शयं यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥

भाषार्थः [हे परमात्मन् !] (यातुधानान्) यातना देने वाले दोषों को (मा) मुझे (दर्शय) दिखा, (यातुधान्यः=०-नीः) महापीड़ा देने वाली कुवासनाओं को (दर्शय) दिखा, (सर्वान्) सब (पिशाचान्) मांस खाने वाले विघ्नों को (दर्शय) दिखा, (ओषधे) हे तापनाशक परमेश्वर ! (इति) इसके लिये (त्वा) तेरा (आरभे) मैं सहारा लेता हूँ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य की बाहिरी कुचेष्टाएं और भीतरी कुवासनाएं उसकी उन्नति के महाविघ्न हैं। इसलिये वह विवेकपूर्वक उनका संशोधन करे ॥६॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं सा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] तू (कश्यपस्य) रस पीने वाले सूर्य का (च) और (चतुरक्ष्याः) पूर्वादि चार प्रकार से व्याप्ति वाली (शुन्याः) बढ़ी हुई दिशा का (चक्षुः) देखने वाला ब्रह्म (असि) है। (पिशाचम्) मांस खाने वाले [पीड़ादायक] विघ्न को (मा तिरस्करः) गुप्त मत रख [प्रकाश करदे] (वीध्रे) विशेष चमकने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय अर्थात् मध्याह्न में (सर्पन्तम्) चलते हुए (सूर्यमिव) सूर्य को जैसे [नहीं छिपा सकते] ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा इस सब विशाल संसार को सर्वथा देखता है, और सबके दोषों को इस प्रकार जानता है, जैसे दोपहर के सूर्य को। इससे सब मनुष्य दोषों को त्याग कर सदा सुख से रहें ॥७॥

उद॑ग्रभं परि॒पाणा॑द् यातु॒धानं॑ किमी॒दिन॑म् ।
ते॒नाहं सर्वं॑ पश्याम्यु॒त शू॒द्रमु॒तार्यं॑म् ॥८॥

भाषार्थः—(परिपाणात्) रक्षास्थान [अपने हृदय देश] से (यातुधानम्) पीड़ा देने हारे (किमीदिनम्) पिशुन रूप अपने दोष को (उत् अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है। (तेन) उसी से (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (पश्यामि) देखता हूँ, (उत) जो कोई (शूद्रम्) शोचनीय शूद्र अर्थात् मूर्ख, (उत) अथवा (आर्यम्) प्राप्त करने योग्य आर्य अर्थात् विद्वान् [ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य] हो ॥८॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष आत्मदोष के निवारण और बुरे भले के विवेक से शिवसंकल्पी होकर अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करके सुखी होता है ॥८॥

इस मन्त्र के उत्तरार्ध के लिए मन्त्र ४ देखो ॥

यो अ॒न्तरि॑क्षेण पत॑ति दि॒वं यश्चा॑तिसर्प॑ति ।
भूमिं॒ यो मन्य॑ते॒ ना॒थं तं पि॑शा॒चं प्र द॑र्शय ॥९॥

भाषार्थः—(यः) जो [उपद्रवी] (अन्तरिक्षेण) मध्यवर्ती हृदय अवकाश द्वारा (पतति) नीचे गिरता है, (च) और (यः) जो (दिवम्) व्यवहार वा प्रकाश को (अतिसर्पति) लांघकर रेंगता है, और (यः) जो (भूमिम्) अपनी सत्ता को [अहंकार से] (नाथम्) ईश्वर (मन्यते) मानता है, (तम्) उस (पिशाचम्) मांसभक्षक, दुःखदायक, आत्मा को (प्रदर्शय) तू दिखा दे ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनोविकार से वेद मर्यादा छोड़ कुकर्मी बन जाता है, वह मनुष्य ईश्वर भक्ति से अपने अविद्या दोषों को छोड़कर सुखी होवे ॥९॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २१ ॥

१--७ ॥ गावो देवताः । १, ५--७ त्रिष्टुप् २--४ जगती ॥

विद्यागुणोपदेशः—विद्या के गुणों का उपदेश ॥

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥

भाषार्थः—(गावः) पाने वा स्तुति योग्य विद्याएं (आ अग्मन्) प्राप्त हुई हैं, (उत) और उन्होंने (भद्रम्) कल्याण (अक्रन्) किया है । वे (गोष्ठे) हमारी गोठ अर्थात् विद्यासमाज में (सीदन्तु) प्राप्त होवें और (अस्मे) हमें (रणयन्तु = रमयन्तु) सुख देवें । वे (इह) यहां समाज में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के लिये (पूर्वीः) बहुत (उषसः) प्रभात वेलाओं तक (प्रजावतीः) उत्तम मनुष्यों वाली, (पुरुरूपाः) अनेक लक्षण वाली होकर (दुहानाः) [कामनाओं को] पूर्ण करती हुई (स्युः) रहें ॥१॥

भावार्थः—विद्याएं परमेश्वर से आकर संसार को महा उपकारी हुई हैं । मनुष्य ईश्वर विद्या, शिल्प विद्या आदि अनेक विद्याओं को प्राप्त कर और 'इन्द्र' महापुरुषार्थी प्रधान पुरुष के सहायक होकर बहुत काल तक सुख भोगें ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद, म० ६ सू० २८ म० १—७ में है । वहाँ सूक्त के भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि हैं ॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (यज्वने) यज्ञ करने वाले (च) और (गृणते) उपदेशक पुरुष को (शिक्षते) शिक्षा देता है, और (उप = उपेत्य) आदर करके (स्वम्) धन (ददाति) देता है, और (न) न (मुषायति) चुराता है, और (देवयुम्) दिव्य गुण वा विद्वानों के प्राप्त कराने वाले (रयिम्) धन को (भूयोभूयः) अधिक अधिक (इत्) ही (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (इत् अस्य) इस संसार के (अभिन्ने) अटूट (खिल्ये) कण कण प्राप्ति के लाभ में (निदधाति) निधि रूप से रखता है ॥२॥

भावार्थः प्रतापी राजा स्वार्थ छोड़कर विद्यादानादि में धन को व्यय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, विद्याबल से धन बढ़ाता हुआ संसार को बहुत लाभ पहुंचाता है ॥२॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥

भाषार्थः—(ताः) वे [विद्यायें] (न) नहीं (नशन्ति) नष्ट होती हैं, (न) न [उन्हें] (तस्करः) चोर (दभाति) ठगता है, (न) न (आमित्रः) पीड़ा देने वाला (व्यथिः) व्यथाकारी शत्रु (आसाम्) इनकी (आ दधर्षति) हंसी उड़ाता है। (च) और (गोपतिः) विद्याओं का स्वामी, वाचस्पति (याभिः) जिन [विद्याओं] से (देवान्) दिव्य गुणों को (यजते) पूजता (च) और (ददाति) देता है, (ताभिःसह) उन [विद्याओं] के साथ (ज्योक् इत्) बहुत ही काल तक वह (सचते) मिला रहता है ॥३॥

भावार्थः—विद्या अक्षय कोश है। जो मनुष्य विद्याओं को सत्कार-पूर्वक ग्रहण करके संसार में फैलाता है, वह यशस्वी होकर सदा आनन्द भोगता है ॥३॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

भाषार्थः—(न) न तो (अर्वा) घोड़े के समान विषयासक्त, अथवा हिंसक पुरुष, और (न) न (रेणुककाटः) धूलि के कूए के समान गिर जाने वाला मनुष्य (ताः) उन [विद्याओं] को (अश्नुते) पाता है। (ताः) वे विद्यायें (संस्कृतत्रम्) संस्कृत [शुद्ध] विद्याओं के रक्षक जन को (अभि) सब ओर से (उप यन्ति) आती हैं। (ताः गावः) वे विद्यायें (तस्य) उस (यज्वनः) देवताओं के पूजने वाले (मर्तस्य) मनुष्य के (उरुगायम्) बड़े प्रशंसनीय (अभयम्) निर्भय राज्य में (अनु) अनुकूलता से (विचरन्ति) विचरती हैं ॥४॥

भावार्थः—विषयी, अदृढ़स्वभाव, दुष्ट जन विद्या के उत्तम फल को नहीं पा सकते हैं। जितेन्द्रिय, विद्वानों के सत्कार करने वाले राजा के सुरक्षित राज्य में अनेक उत्तम विद्यायें उन्नति को प्राप्त होती हैं ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

भाषार्थः (गावः) विद्यायें ही (भगः) धन हैं, (गावः) विद्यायें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य हैं, (गावः) विद्यायें (प्रथमस्य) अति श्रेष्ठ (सोमस्य) सोमरस अर्थात् अमृत वा मोक्ष का (भक्षः) सेवन हैं, [इति] (मे इच्छात्) [यह] मेरी इच्छा हो। (जनासः) हे मनुष्यो ! (इमाः) ये (याः) जो (गावः) विद्यायें हैं, (सः) सो ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य हैं। (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य की (चित्) ही (हृदा) हृदय अर्थात् आत्मा और (मनसा) विज्ञान के साथ (इच्छामि) मैं चाह करता हूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य विद्याओं को धन, ऐश्वर्य और मोक्ष का मुख्य साधन जानकर पूर्ण श्रद्धा से प्राप्त करें ॥५॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६॥

भाषार्थः (गावः) हे विद्याओ ! (यूयम्) तुम (कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी, (अश्रीरम्) श्रीरहित निर्धन से (चित्) भी (मेदयथ) स्नेह करती हो और (सुप्रतीकम्) बड़ी प्रतीति वाला वा बड़े रूप वाला (कृणुथ) बना देती हो। (भद्रवाचः) हे कल्याणी विद्याओ ! (गृहम्) घर को (भद्रम्) मंगलमय (कृणुथ) कर देती हो, (सभासु) विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (वः) तुम्हारा ही (वयः) बल (बृहत्) बड़ा (उच्यते) बखाना जाता है ॥६॥

भावार्थः—विद्या से दुर्बल मनुष्य सबल, और निर्धन बड़ा विश्वासी और रूपवान् होता है, विद्वानों के घर में सदा आनन्द रहता, और विद्वानों की ही राजसभा और पंचायतों में बड़ाई होती है ॥६॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य प्रजाओ !] (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (सुयवसे) सुन्दर यव आदि अन्न वाले [घर] में [अन्न] (रुशन्तीः) खाती हुई, और (सुप्रपाणे) सुन्दर जलस्थान में (शुद्धाः) शुद्ध (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (वः) तुमको (स्तेनः) चोर (मा ईशत) वश में न करे, और (मा) न (अघशंसः) बुरा चीतने वाला, डाकू उचक्का आदि [वश में करे]। (रुद्रस्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ानाशक परमेश्वर की (हेतिः) हनन शक्ति (वः) तुमको (परि) सब ओर से (वृणक्तु) त्यागे रहे ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यायें उपार्जन करके अपनी सन्तानों को उत्तम शिक्षा देते हुए और अन्न जल आदि का सुप्रबन्ध करते हुए सदा हृष्ट पुष्ट बुद्धिमान् और धर्मनिष्ठ रहें जिससे उन्हें न चोर आदि सता सके और न परमेश्वर दण्ड देवे ॥७॥

'मा वस्तेन ईशत माघशंसः' इतना मन्त्रांश य० १ । १ और 'परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु' यह मन्त्रांश य० १६ । ५० में है ॥

सूक्तम् २२ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

संग्रामजयायोपदेशः—संग्राम में जय के लिये उपदेश ॥

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (इमम्) इस (क्षत्रियम्) राज्य करने में चतुर राजा को (मे) मेरे लिये (वर्धय) बढ़ा, और (इमम्) इसको (विशाम्) मनुष्यों का (एकवृषम्) अद्वितीय प्रधान अर्थात् सार्वभौम शासक (कृणु) बना । (अस्य) इसके (सर्वान्) सब (अमित्रान्) वैरियों को (निरक्ष्णुहि) निर्बल करदे, और (तान्) उन्हें (अस्मै) इसके लिये (अहमुत्तरेषु) मैं ऊंचा होता हूं, मैं ऊंचा होता हूं ऐसे कथनस्थान रणक्षेत्रों में (रन्धय) नाश कर वा वश में कर ॥१॥

भावार्थः—प्रजागण सर्वश्रेष्ठ पुरुष को राजा बनावें जो परमेश्वर में विश्वास करके युद्धभूमि में शत्रुओं को मारकर प्रजा को सुखी रक्खे ॥१॥

सायणाचार्य ने "अहमुत्तरेषु" पद को पदपाठ के विरुद्ध "अहम् उत्तरेषु" ऐसे दो पद मानकर व्याख्या की है ॥

एमं भंज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भंज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्मं क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रूँ रन्धय सर्वमस्मै ॥२॥

भाषार्थः—(इमम्) इसको (ग्रामे) ग्राम में, (अश्वेषु) घोड़ों में, और (गोषु) गौ आदिकों में (आभज) भाग्यवान् कर और (यः) जो (अस्य) इसका (अमित्रः) वैरी है, (तम्) उसको (निर्भज) अलग कर दे । (अयम्) यह (राजा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा (क्षत्राणाम्) क्षत्रियों का (वर्ष्म) मस्तक [समान ऊंचा] (अस्तु) होवे। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र भगवान्! (अस्मै) इसके लिये (सर्वम्) सब (शत्रुम्) शत्रु को (रन्धय) वश में कर ॥२॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर में श्रद्धा रखता हुआ अपनी प्रजा, सेना, और गो आदि पशुओं की रक्षा करता हुआ अपने सब शत्रुओं का नाश करके क्षत्रियों का शिरोमणि बने ॥२॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (धनानाम्) बहुत प्रकार के धनों का (धनपतिः) धनपति (अस्तु) होवे। (अयम्) यह (राजा) राजा (विशाम्) बहुत प्रजाओं का (विश्पतिः) प्रजापति (अस्तु] होवे। (इन्द्र) हे परमेश्वर! (अस्मिन्) इस राज्य में (महि=महीनि) बड़े बड़े (वर्चांसि) तेजों को (धेहि) धारण कर, (अस्य) इसके (शत्रुम्) वैरी को (अवर्चसम्) निस्तेज (कृणुहि) कर दे ॥३॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर के अनुग्रह से पुरुषार्थ पूर्वक बहुत धन एकत्र करके प्रजा की रक्षा करे और महा प्रतापी होकर शत्रुओं को वश में रक्खे ॥३॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां धर्मदुघे इव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों! (अस्मै) इस राजा के लिये (धर्मदुघे) यज्ञ की पूर्ति करने वाली (धेनू इव) दो गौओं के समान (भूरि) बहुत (वामम्) उत्तम धन (दुहाथाम्) पूर्ण करो। (अयम्) यह (राजा) राजा (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (प्रियः) प्रिय (गवाम्) विद्याओं का, (ओषधीनाम्) सब अन्नों का और (पशूनाम्) दोपाये और चौपाये जीवों का (प्रियः) प्रिय (भूयात्) होवे ॥४॥

भावार्थः—राजा सूर्य पृथिवी आदि सब लोकों और पदार्थों से विज्ञान पूर्वक उपकार लेकर धन संचय करे, और अनेक विद्याओं और अन्नों और सब प्राणियों की वृद्धि करके सुख प्राप्त करे ॥४॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा कदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ते !) तेरे लिये (उत्तरावन्तम्) अत्यन्त उत्तम गुण वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (युनज्मि) मैं संयुक्त करता हूं, (येन) जिसके साथ [शूर जन] (जयन्ति) जय पाते हैं, और (न) कभी नहीं (पराजयन्ते) हारते हैं। (यः) जो (त्वा) तुझको (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (एकवृषम्) अद्वितीय प्रधान, और (मानवानाम्) मननशील अथवा माननीय (राज्ञाम्) राजाओं में (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (करत्) करे ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष राजा को परमेश्वर का उपदेश करें, जिसके आश्रय से वह राजा धीर वीर होकर प्रजा का पालन करे और उत्तमों में उत्तम राजा हो ॥५॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥

भाषार्थः—[राजन् !] हे राजन् ! (त्वम्) तू (उत्तरः) अधिक ऊंचा हो, (च) और (ये के) जो कोई (ते) तेरे (प्रतिशत्रवः) प्रतिकूलवर्ती शत्रु और (ते) तेरे (सपत्नाः) साथ झगड़ने वाले हैं, [वे] (अधरे) नीचे होवें। (इन्द्रसखा) परमेश्वर का मित्र, (जिगीवान्) विजयी और (एकवृषः) अद्वितीय प्रधान तू (शत्रुयताम्) शत्रुओं जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (भोजनानि) भोगों के साधन, धन धान्यों को (आभर) लाकर भर दे ॥६॥

भावार्थः—राजा प्रतिकूलवर्ती सब शत्रुओं को परमेश्वर के सहाय से जीतकर सर्वथा निर्बल करे और प्रजा को सुख देवे ॥६॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (सिंहप्रतीकः) सिंह तुल्य पराक्रमी तू (सर्वाः) सब [शत्रुओं को] (विशः) मनुष्यों को (अद्धि) खाले, (व्याघ्रप्रतीकः) व्याघ्र समान झपट कर (शत्रून्) दुष्ट वैरियों को (अव बाधस्व) हटा दे। (इन्द्रसखा) परमेश्वर का मित्र, (जिगीवान्) विजयी और (एकवृषः) अद्वितीय प्रधान तू (शत्रूयताम्) शत्रु जैसे आचरण वाले मनुष्यों के (भोजनानि) भोगों के साधन धन धान्यों को (आ खिद) छीन ले ॥७॥

भावार्थः—राजा पूर्ण पराक्रम से शत्रुओं की सेनाओं और शत्रुओं का नाश करे और सब प्रकार से विजय प्राप्त करके उन्हें अपने आधीन रक्खे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् २३ ॥

१—७ ॥ अग्निर्देवता । १, २, ५, ७, पादत्रयं जगती, अन्तिमोऽनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती ४ अनुष्टुप्, ६ पूर्वार्धस्त्रिष्टुप्, उत्तरोऽनुष्टुप् ॥

कष्टनिवारणायोपदेशः—कष्ट हटाने के लिये उपदेश ॥

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(प्रथमस्य) सबसे पहिले वर्तमान, (प्रचेतसः) बड़े ज्ञान वाले (पाञ्चजन्यस्य) पांच भूतों से उत्पन्न मनुष्य आदि के हितकारक (अग्नेः) सर्वव्यापक अग्नि, अर्थात् परमेश्वर का (मन्वे) मैं मनन करता हूं, (यम्) जिसको [ऋषि लोग] (बहुधा) बहुत प्रकार से (इन्धते) प्रकाशित करते हैं (विशोविशः) सब प्रवेश स्थानों में (प्रविशिवांसम्) प्रवेश करने वाले परमेश्वर को (ईमहे) हम पहुंचते हैं । (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) पीड़ा से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥१॥

भावार्थः—सबके आदि कारण, सर्वज्ञ, सर्वहितकारक, सर्वव्यापक परमेश्वर की महिमा विचारते हुए मनुष्य पुरुषार्थ करके अधर्म को छोड़कर धर्म में प्रवृत्त होकर आनन्द भोगें ॥१॥

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार से (हव्यम्) देने वा खाने योग्य अन्न को (वहसि) तू पहुंचाता है, (यथा) जिस प्रकार से (यज्ञम्) पूजनीय कर्म को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ (कल्पयसि) तू रचता है । (एव) वैसे ही (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (सुमतिम्) सुमति (नः) हमें (आवह) पहुंचा, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) पीड़ा से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने पुष्टिकारक और सुखदायक अन्न सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न करके हम पर बड़ा उपकार किया है, उसके गुणों को जानकर विज्ञानपूर्वक अपनी धार्मिक बुद्धि बढ़ावें और दुष्कर्मों से पृथक् रहकर जीवनलाभ उठावें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यामंन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(यामन् यामन्) प्रत्येक गति वा उद्योग में (उपयुक्तम्) उपयोग किये, (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (आभगम्) अच्छे प्रकार से भक्ति योग्य, (वहिष्ठम्) अतिवली, (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करनेहारे, (यज्ञवृधम्) पूजनीय कर्म के बढ़ाने वाले, (घृताहुतम्) प्रकाश के भलीभाँति देनेवाले, (अग्निम्) सर्वज्ञ अग्नि, परमात्मा की (ईडे) मैं स्तुति करता हूं। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रत्येक कर्म में परमात्मा का ध्यान करके उद्योग करते हैं, वही बाहिरी और भीतरी शत्रुओं को हटाकर संसार में सुख भोगते हैं ॥३॥

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(सुजातम्) बड़े प्रसिद्ध, (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले अथवा धन प्राप्त कराने हारे (वैश्वानरम्) सब नरों [नायकों] के हित करने वाले, (विभुम्) सर्वशक्तिमान् (हव्यवाहम्) उत्तम अन्न पहुंचाने वाले (अग्निम्) सर्वव्यापक परमेश्वर को (हवामहे) हम पुकारते हैं. (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर के गुण और कर्मों को जानकर मनुष्य अपना सामर्थ्य बढ़ावें और परस्पर उपकार करके आनन्दित रहें ॥४॥

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(येन) जिस (युजा) मित्र परमेश्वर के साथ (ऋषयः) ऋषि लोगों ने (बलम्) बल (अद्योतयन्) प्रकाशित किया है, और (येन) जिसके साथ (असुराणाम्) असुरों की (मायाः) मायाओं [छलों] को (अयुवन्त) हटाया है। और (येन) जिस (अग्निना) सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष ने (पणीन्) कुव्यवहारी मनुष्यों को (जिगाय) जीता है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमात्मा का आश्रय लेकर सूक्ष्मदर्शी महात्माओं ने सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश किया है और जिसपर विश्वास करके प्रतापी मनुष्यों ने दुष्टों को जीता है, उसी परमात्मा की शरण लेकर हम विघ्नों को हटा कर सुख पावें ॥५॥

येन॑ दे॒वा अ॒मृत॑मन्व॒विन्द॒न येनौष॑धीर्मधु॒मती॑रकृ॒ण्वन्।
येन॑ दे॒वाः स्व॑ १ राभ॑र॒न्त्स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥६॥

भाषार्थः—(येन) जिसके द्वारा (देवाः) विद्वान् देवताओं ने (अमृतम्) अपरपन [मृत्यु से छुटकारा अर्थात् मोक्ष वा कीर्ति] को (अनु—अविन्दन्) अनन्तर पाया है, और (येन) जिसके आश्रय से (ओषधीः) यव आदि पदार्थों को (मधुमतीः) मधुर रस वाली (अकृण्वन्) बनाया है, और (येन) जिसके द्वारा (देवाः) देवताओं ने (स्वः) स्वर्ग अर्थात् महा आनन्द (आ अभरन्) यथावत् धारण किया है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥६॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर की महिमा से महापुरुषों ने पुरुषार्थ करके अमरपन अर्थात् सुन्दर नाम प्राप्त किया है, और सांसारिक पदार्थों से विज्ञानपूर्वक उपकार लेकर अत्यन्त सुख पाया है, उसी जगदीश्वर के आश्रय से हम भी उद्योग करके दुःख से छूटें ॥६॥

यस्ये॒दं प्र॒दिशि॒ यद् विरो॑च॒ते यज्जा॒तं ज॑नि॒तव्यं॑ च॒ केव॑लम्।
स्तौम्य॒ग्निं ना॑थि॒तो जो॑हवी॒मि॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥७॥

भाषार्थः—(केवलम्) केवल (यस्य) जिस परमेश्वर के (प्रदिशि) शासन में (इदम्) यह [जगत्] है, अर्थात् (यत्) जो कुछ (विरोचते) चमकता है और (यत्) जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ है (च) और (जनितव्यम्) उत्पन्न होगा। (नाथितः) मैं भक्त (अग्निम्) उस सर्वव्यापक परमेश्वर को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) वारंवार पुकारता हूं। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥७॥

भावार्थः—जगत्पिता परमेश्वर की आज्ञा में यह सब जगत् वर्तमान है, उसी की प्रार्थना उपासना करके मनुष्य अपने विघ्नों को हटाकर सदा धर्म में प्रवृत्त होकर प्रसन्न रहें ॥७॥

सूक्तम् २४ ॥

१—७ ॥ इन्द्रो देवता। १, ४ पादत्रयं जगती, अन्तिमोऽनुष्टुप्, २, ३, ५—७ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः— पूर्ण सुख पाने का उपदेश ॥

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उपमेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा का (मन्महे) हम मनन करते हैं, (शश्वत् इत्) सदा ही (अस्य) इस (वृत्रघ्नः) शत्रुनाशक वा अन्धकार निवारक का (मन्महे) हम मनन करते हैं। (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति के ज्ञान (मा) मुझको (उप आ अगुः) प्राप्त हुए हैं। (यः) जो परमेश्वर (दाशुषः) दानशील और (सुकृतः) सुकर्मी पुरुष के (हवम्) आवाहन को (एति) प्राप्त होता है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर के गुणों को नित्य गाते हुए हम लोग पाप से बचकर धर्म प्रचार करें ॥१॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (ययुः) शीघ्रगामी परमात्मा (उग्रीणाम्) प्रचण्ड सेनाओं की (उग्रबाहुः) भुजाओं को प्रचण्ड करने वाला है, (यः) जिसने (दानवानाम्) छेदनशील राक्षसों का (बलम्) बल (आरुरोज) तोड़ दिया है, (येन) जिस परमेश्वर करके (सिन्धवः) जल और (येन) जिस करके (गावः) वायु, सूर्य, और भूलोक (जिताः) जीते गये हैं, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥२॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने सब विघ्नों का नाश करके जल पृथिवी आदि पदार्थों को उपकारी बनाया है, उसी की उपासना से हम सामर्थ्य बढ़ाकर क्लेशों से बचें ॥२॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (चर्षणिप्रः) उद्योगी पुरुषों का मनोरथ पूरा करने वाला, (वृषभः) सुख की वर्षा करने वाला, श्रेष्ठ और (स्वर्वित्) स्वर्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने हारा है। और (यस्मै) जिसके [आज्ञा पालन के] लिये (ग्रावाणः) शास्त्र वेत्ता पण्डित जन (नृम्णम्) बल वा धन (प्रवदन्ति) बताते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। (यस्य) जिसका (अध्वरः) सन्मार्गदर्शक वा हिंसारहित व्यवहार (सप्तहोता) सातहोताओं से [अर्थात् विषयों के ग्रहण करने और देने वाले त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि से] साक्षात् किया हुआ (मदिष्ठः) अतिशय आनन्द-दायक है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥३॥

भावार्थः - मनुष्य परमेश्वर के अनन्त सुखदायक गुणों को साक्षात् करके पुरुषार्थपूर्वक कष्टों को नाश करके आनन्द प्राप्त करें ॥३॥

यहां पर 'सप्त प्राणान्' (अ० २। १२। ७) और 'सप्त ऋषयः' (अ० ४। ११। ६) इन पदों की भी व्याख्या देखो ॥

यस्य॑ व॒शास॑ ऋ॒षभास॑ उ॒क्षणो॒ यस्मै॑ मी॒यन्ते॒ स्वर॑वः॒ स्वर्वि॑दे ।
यस्मै॑ शु॒क्रः पव॑ते ब्र॒ह्मशु॑म्भितः॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥४॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमेश्वर के (वशासः) वशीभूत होकर (ऋषभासः) धर्म जानने वाले ऋषि लोग (उक्षणः) सुख की वर्षा करने वाले होते हैं, और (यस्मै) जिस (स्वर्विदे) सुख प्राप्त कराने वाले के लिये (स्वरवः) जयस्तम्भ (मीयन्ते) गाड़े जाते हैं। (यस्मै) जिसके लिये (ब्रह्मशुम्भितः) वेदों से कहा गया (शुक्रः) निर्मल सोम रस [अमृत वा मोक्षानन्द] (पवते) शुद्ध किया जाता है। (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की आज्ञा पालन से ऋषि महात्मा वेदों का उपदेश करके संसार को सुख देते हैं और शूरवीर लोग शत्रुओं पर जय पाते हैं तथा ब्रह्मज्ञानी मोक्षसुख प्राप्त करते हैं, वही परमात्मा हमारे कष्टों को मिटावे ॥४॥

यस्य॑ जु॒ष्टिं सो॑मिनः॒ काम॑यन्ते॒ यं हव॑न्त इषु॒मन्तं॑ गवि॒ष्टौ ।
यस्मि॒न्नर्कः॑ शिशि॒श्रिये॒ यस्मि॒न्नोजः॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥५॥

भाषार्थः—(सोमिनः) सोम अर्थात् ऐश्वर्य वाले पुरुष (यस्य) जिस परमात्मा की (जुष्टिम्) प्रीति की (कामयन्ते) कामना करते हैं, (यम्) जिस (इषुमन्तम्) दृष्टि वाले परमात्मा को (गविष्टौ) वज्रों के दान स्थान, संग्राम में [शूर लोग] (हवन्ते) पुकारते हैं। (यस्मिन्) जिसमें (अर्कः) अन्न और (यस्मिन्) जिसमें (ओजः) पराक्रम (शिश्रिये) आश्रित हुआ है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥५॥

भावार्थः जिस परमात्मा के आश्रय से ऐश्वर्य, विजय, अन्न और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराक्रम प्राप्त होते हैं, उसी के विश्वास पर हम पुरुषार्थपूर्वक दुःखों का नाश करें ॥५॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रो ऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः । ६॥

भाषार्थः—(यः) जो (प्रथमः) मुख्य परमात्मा (कर्मकृत्याय) कर्म करने वाले के हित के लिये (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (यस्य) जिस (प्रथमस्य) श्रेष्ठ परमात्मा का (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुबुद्धम्) सर्वत्र जाना गया है। (येन) जिस परमात्मा करके (उद्यतः) उठाये गए (वज्रः) वज्र ने (अहिम्) हनन करने वाले शत्रु को (अभ्यायत) हनन कर दिया है, (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥६॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वैदिक कर्म करने वालों का सदा आनन्ददायक है, उसी शत्रुनाशक जगदीश्वर की कृपा से हम अपने दोषों को त्याग कर सदा प्रसन्न रहें ॥६॥

यः संग्रामान् नयति संयुधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

भाषार्थः—(यः) जो (वशी) स्वतन्त्र परमात्मा (संग्रामान्) संग्राम करने वाले योधाओं को (युधे) युद्ध करने के लिये (संनयति) यथावत् ले चलता है, और (यः) जो (द्वयानि) दो प्रकार की [शारीरिक और आत्मिक] (पुष्टानि) पुष्टियां (संसृजति) यथावत् देता है। (नाथितः) मैं भक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले परमात्मा को (स्तौमि) सराहता हूँ और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूँ (सः) वह (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥७॥

भावार्थः—जो परमेश्वर सत्यवादी शूरों का जय करता है और वेद द्वारा शरीर और आत्मा को सुख देता है, उसी परमात्मा की उपासना और प्रार्थना से सब मनुष्य पुरुषार्थी होकर कष्टों को निवारें ॥७॥

सूक्तम् २५ ॥

१—७॥ वायुसवितारौ देवते १, २, ४—६ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ७ बृहती छन्दः ॥

वायुसूर्यगुणोपदेशः—पवन और सूर्य के गुणों का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(वायोः) गतिशील वा दोषनाशक पवन के और (सवितुः) सर्वप्रेरक सूर्य के (विदथानि) कर्मों को (मन्महे) हम विचारते हैं। (यौ) जो तुम (यौ) गमनशील होकर (आत्मन्वत्) आत्मा वाले जगत् में (विशथः) प्रवेश करते हो (च) और (रक्षथः) रक्षा करते हो, (यौ) जो तुम दोनों (विश्वस्य) सब जग के (परिभू) सहारा देने वाले (बभूवथुः) हुए हो, (तौ) वह तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—वायु और सूर्य के यथावत् गुण जानकर मनुष्य आत्मिक शारीरिक और सामाजिक उन्नति करें ॥१॥

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों [वायु सूर्य] के (संख्याता) गिने हुए (पार्थिवानि) पृथिवी के (वरिमा) विस्तार हैं, (याभ्याम्) जिन दोनों करके (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजः) जल वा जगत् (युपितम्) विमोहित किया गया [मेघ मण्डल में ताड़न शक्ति से रोका गया] है। (ययोः) जिन दोनों की (प्रायम्) उत्तम गति को (कश्चन) कोई भी जीव (न) नहीं (अन्वानशे) पहुंचा है, (तौ) वह तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः—जगत् व्यापी वायु और सूर्य के प्रभाव से जल पृथिवी से आकाश पर और आकाश से पृथिवी पर आता है, और उनको मनुष्य जितना जितना खोजते हैं, उतना उतना ही अधिक उनका विषय जानते जाते हैं, उन वायु और सूर्य से यथावत् उपकार लेकर हम लाभ उठावें ॥२॥

तव व्रते निविशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

भाषार्थः—[हे वायु] (तव) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (जनासः) सब जने (निविशन्ते) प्रवृत्त होते हैं, और (चित्रभानो) हे विचित्र प्रकाश वाले सूर्य! (त्वयि उदिते) तेरे उदय होने पर [कामों में] (प्रेरते) लगते हैं, (वायो) हे वायु! (च) और (सविता) हे सूर्य! (युवम्) तुम दोनों (भुवनानि) सब प्राणियों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रक्षथः) बचाते हो, (तौ) तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥३॥

भावार्थः—वायुविद्या और सूर्यविद्या से उपकार लेकर मनुष्य अनेक प्रकार के लाभ उठावें ॥३॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
संसृ३जथा ऊर्जया संसृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(वायो) हे वायु (च) और (सविता) हे सूर्य ! तुम दोनों (इतः) यहां से (दुष्कृतम्) मलिन काम को (अप=अप सेधतम्) हटा दो, (रक्षांसि) निवारणीय रोगों (च) और (शिमिदाम्) कर्म छेदन करने हारी पीड़ा को (अप सेधतम्) निकाल दो। (हि) क्योंकि (ऊर्जया) आत्मिक पुष्टि के साथ (संसृजथः) तुम दोनों मिलाते हो और (बलेन) शारीरिक बल के साथ (सम्=संसृजथः) तुम दोनों संयुक्त करते हो (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य पवन और सूर्य के यथावत् सेवन और उपयोग से दोषों और मलिनता को दूर करके स्वस्थ रहें और आत्मिक तथा शारीरिक बल बढ़ाकर संसार में उन्नति करें ॥४॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं महः इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(सविता) सूर्य (उत) और (वायुः) पवन (मे) मेरे लिये (तनू=तन्वाम्) अपने शरीर में वर्त्तमान (सुशेवम्) अति सुखदायक (रयिम्) धन, (पोषम्) पुष्टि और (दक्षम्) बल को (आ सुवताम्) भेजें। (इह) यहां पर (अयक्ष्मतातिम्) नीरोगता और (महः) तेज (धत्तम्) तुम दोनों दान करो, (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य वायु और सूर्य के विज्ञान से ऋद्धि, सिद्धि, बल और स्वस्थता प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥५॥

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्र वतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

भाषार्थः—(सवितः) हे सूर्य ! (वायो) हे वायु ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (सुमतिम्) सुमति और (महस्वन्तम्) तेज वाले (मत्सरम्) हर्ष को (प्र) अच्छे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (मादयाथः) तुम दोनों परिपूर्ण करो। (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (प्रवतः) बड़ाई वाले (वामस्य) धन का (नि) नियमपूर्वक (यच्छतम्) तुम दोनों दान करो। (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और वायु के गुणों का यथावत् प्रयोग करके बुद्धि प्रताप और धन बढ़ा कर आनन्द भोगें ॥६॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

भाषार्थः - (देवयोः) उन दोनों देवों की [=के लिये] (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ (आशिषः) कामनायें (नः) हमारे (धामन्) देह में (उप अस्थिरन्) उपस्थित हुई हैं। (देवम्) दिव्य (सवितारम्) सूर्य (च) और (वायुम्) वायु की (स्तौमि) मैं स्तुति करता हूँ। (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और वायु से गुण ग्रहण करने के लिये पूरी इच्छा अपने हृदय में स्थित करके प्रयत्नपूर्वक लाभ उठावें और सदा सुखी रहें ॥७॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २६ ॥

१—७ ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप् । शेषाः पादाः—१ स्वराट् पथ्याबृहती, २–५ त्रिष्टुप्, ६, ७ बृहती ॥

द्यावापृथिव्योर्गुणोपदेशः— सूर्य और पृथिवी के गुणों का उपदेश ॥

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाम् अमिता योजनानि। प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सुभोजसौ) हे उत्तम भोग देने वाली वा पालन करने वाली (सचेतसौ) समान ज्ञान कराने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवी ! (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूँ, (ये) जिन तुम दोनों ने (अमिता) अगणित (योजनानि) संयोग कर्मों को (अप्रथेथाम्) प्रसिद्ध किया है और (हि) अवश्य ही (वसूनाम्) धनों की (प्रतिष्ठे) आधार (अभवतम्) हुई हो, (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी के परस्पर आकर्षण से अन्न, धन और अनेक संयोग वियोग क्रियाएँ प्रकट होती हैं, मनुष्य उनके गुणों का यथावत् उपयोग करके आनन्द भोगें ॥१॥

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी मवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(प्रवृद्धे) हे बड़ी वृद्धि वाली, (देवी) दिव्य स्वरूप (सुभगे) बड़े ऐश्वर्य वाली, (उरूची) बहुत पदार्थ प्राप्त कराने वाली तुम दोनों (हि) ही (वसूनाम्) धनों की (प्रतिष्ठे) आधार (अभवतम्) हुई हो। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये (स्योने) सुखवती (भवतम्) होओ। (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य और पृथिवी के विज्ञान से अनेक ऐश्वर्य प्राप्त करके सुखी रहें ॥२॥

असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(सुतपसौ) सुन्दर ताप रखने वाली, (असंतापे) संताप न देने वाली, (उर्वी) चौड़ी, (गम्भीरे) गहरी [शान्त स्वभाव वाली] (कविभिः) विद्वानों से (नमस्ये) नमस्कार योग्य तुम दोनों को (अहम्) मैं (हुवे) पुकारता हूं। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये·····म० २ ॥३॥

भावार्थः—सूर्य के पिण्ड में ताप है जिससे पृथिवी तापयुक्त होती है। इस प्रकार दोनों के ताप से सब जगत् के पदार्थ रक्षित रहते हैं। उन दोनों के यथावत् ज्ञान से मनुष्य बुद्धिमान् होकर आनन्द प्राप्त करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम दोनों (अमृतम्) मृत्यु से बचने के साधन और (ये) जो तुम (हवींषि) देने और ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थों को (बिभृथः) धारण करती हो, (ये) जो तुम दोनों (स्रोत्याः) जल वा नदियों को और (ये) जो तुम दोनों (मनुष्यान्) मनुष्यों को (बिभृथः) धारण करती हो। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये ···म० २ ॥४॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी के परस्पर आकर्षण से वृष्टि होकर अन्न आदि उत्पन्न होते हैं, जिनसे मनुष्य आदि प्राणियों को अमृत अर्थात् अन्न आदि पदार्थ मिलते हैं ॥४॥

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम दोनों (उस्रियाः) गौओं को और (ये) जो तुम दोनों (वनस्पतीन्) वनस्पतियों को (बिभृथः) धारण करती हो, (ययोः वाम्) जिन तुम दोनों के (अन्तः) भीतर (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक हैं। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मेरे लिये ···म० २ ॥५॥

भावार्थः—सूर्य के ताप और पृथिवी के संयोग से किरण द्वारा वृष्टि होकर गौ आदि सब पशु और सब वृक्ष पुष्ट होते हैं और सब लोक उनके ही प्रभाव में ठहरे हैं ॥५॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम दोनों (कीलालेन) जाठराग्नि के निवारण करने वाले अन्न से, और (ये) जो तुम दोनों (घृतेन) जल से (तर्पयथः) तृप्त करती हो, (याभ्याम् ऋते) जिन तुम दोनों के विना [सब प्राणी] (किम् चन) कुछ भी (न) नहीं (शक्नुवन्ति) शक्ति रखते हैं। (द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी (मे) मेरे लिये (स्योने) सुखवती (भवतम्) हो। (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥६॥

भावार्थः—सूर्य और पृथिवी के प्रभाव से अन्न और जल आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ उत्पन्न होकर जगत् का उपकार करते हैं। उनके विज्ञान से सब मनुष्य सुखी रहें ॥६॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

भाषार्थः—(येनयेन) जिस किसी कारण से (पौरुषेयात्) पुरुष [इस शरीर] से किया हुआ (वा) अथवा (दैवात्) दैव [प्रारब्ध, पूर्वजन्म] के फल से प्राप्त हुआ (यत्) जो (इदम्) यह (कृतम्) कर्म (न) इस समय (मा) मुझको (अभिशोचति) शोक में डालता है। [इसलिये] (नाथितः) मैं अधीन होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) बार-बार पुकारता हूं (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ सुकर्म करके इस जन्म वा प्रारब्ध से प्राप्त हुए दुःख का नाश करके सूर्य पृथिवी आदि लोकों के उपयोग से सुख भोगें ॥७॥

सूक्तम् २७ ॥

१—७ ॥ मरुतो देवताः ॥सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप्, शेषाः पादाः— १—४, ६, ७, त्रिष्टुप्, ५ बृहती छन्दः ॥

मरुतां गुणोपदेशः—पवन के गुणों का उपदेश ॥

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(मरुताम्) दोष नाशक वायुओं का (मन्वे) मैं मनन करता हूं। (मे) मेरे लिये (अधि) अनुग्रह से (ब्रवन्तु) बोलें और (इमम्) इस (वाजम्) बल को (वाजसाते) अन्न के सुख वा दान के निमित्त (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) तृप्त करें। (आशून् इव) शीघ्रगामी घोड़ों के समान (सुयमान्) उन सुन्दर नियम वालों को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अह्वे) मैंने पुकारा है। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण अपान व्यानरूप वायुओं के शोधन, सेवन, और प्राणायाम से बल और अन्न प्राप्त करके अपनी रक्षा करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो [मरुत् देवता] (सदा) सदा (अक्षितम्) अक्षय (उत्सम्) सींचने वाले जल को (व्यचन्ति) विविध प्रकार से पहुंचाते हैं, और (ये) जो (रसम्) रस को (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियों में (आसिञ्चन्ति) सींच देते हैं। (पृश्निमातॄन्) छूने योग्य पदार्थों को वा आकाश के नापने वाले (मरुतः) उन वायु देवताओं को (पुरो दधे) मैं सन्मुख रखता हूं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य वायु के गुणों में विज्ञान प्राप्त करके सदा आनन्दित रहें ॥२॥

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (कवयः) चलने फिरने वाले अथवा सुखाने वाले [मरुत् देवता] (धेनूनाम्) गौओं का (पयः) दूध, (ओषधीनाम्) अन्न आदि ओषधियों का (रसम्) रस और (अर्वताम्) घोड़ों का (जवम्) वेग (इन्वथ) भर देते हो। (शग्माः) शक्ति वाले (मरुतः) वे आप दोषनाशक वायु गण (नः) हमारे लिये (स्योनाः) सुख दायक (भवन्तु) होवें। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥३॥

भावार्थः—प्राण अपान आदि द्वारा सब पदार्थों में शक्ति पहुँचती है। उन वायु प्रवाहों का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सदा प्रसन्न रहें ॥३॥

अपः समुद्राद् दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(ये) जो [वायुगण] (अपः) जल को (समुद्रात्) पार्थिव समुद्र से (दिवम्) आकाश में (उद्वहन्ति) उठाकर पहुंचाते हैं और (दिवः) आकाश से (पृथिवीम् अभि) पृथिवी पर (सृजन्ति) छोड़ देते हैं। और (ये) जो (ईशानाः) समर्थ (मरुतः) वायुगण (अद्भिः) जल के साथ (चरन्तु) चलते रहते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥४॥

भावार्थः—सूर्य के किरणों से मिल कर वायु गण जल आकाश में ले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते और पृथिवी पर बरसाते हैं। उनके उपकारों को समझ कर मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ॥४॥

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो [मरुद्गण] (वयः) जीवन को (कीलालेन) अन्न से और (ये) जो (घृतेन) जल से (तर्पयन्ति) तृप्त करते हैं, (वा) और (ये) जो (मेदसा) मेदा अर्थात् चर्बी से (संसृजन्ति) संयुक्त करते हैं। और (ये) जो (ईशानाः) समर्थ (मरुतः) वायुगण (अद्भिः) जल से [प्राणियों को] (वर्षयन्ति) सींचते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥५॥

भावार्थः—वायु वेग द्वारा अन्न, जल मिलकर शरीर रक्षा के लिये रक्त अस्थि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उन वायु गणों के गुणों से हम सदा स्वस्थ और पुष्ट रहें ॥५॥

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगारं ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयशील (मरुतः) दोषनाशक वायुगण ! (यदि) यत्नशील (इदम्) चलता हुआ जगत् (इत्) निश्चय करके [तुम्हारे] (मारुतेन) दोषनाशक धर्म से और (दैव्येन) दिव्यपन से (ईदृक्) ऐसा (यदि) यत्नशील (आर) प्राप्त हुआ है। (वसवः) हे निवास कराने वाले ! (यूयम्) तुम (तस्य) उस जगत् के (निष्कृतेः) उद्धार के (ईशिध्वे) समर्थ होते हो। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥६॥

भावार्थः—यह सब जगत् वायु के कारण चेष्टा करता हुआ उद्योगी रहता है, उस वायु के गुणों को जान कर सब मनुष्य प्रसन्न रहें ॥६॥

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७॥

भाषार्थः—(मारुतम्) दोषनाशक वायु गणों का (अनीकम्) सेनादल और (शर्धः) बल (पृतनासु) संग्रामों में (तिग्मम्) तीक्ष्ण, (सहस्वत्) बड़ा साहसी और (उग्रम्) बड़ा प्रचण्ड (विदितम्) विदित है। (नाथितः) अधीन मैं (मरुतः) वायु गणों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) बारंबार पुकारता हूं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥७॥

भावार्थः—जो साहसी शूरवीर संग्रामों में अपने श्वास प्रश्वास को सावधान रखके वायु का यथावत् प्रयोग करते हैं, वे विजयी होकर आनन्द भोगते हैं ॥७॥

सूक्तम् २८ ॥

१—७ ॥ भवाशर्वौ देवते ॥ पादत्रयं त्रिष्टुप्, अन्तिमोऽनुष्टुप् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः – परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः । १॥

भाषार्थः –(भवाशर्वौ) हे सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रुनाशक [परमेश्वर के गुणो !] (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूं। (तस्य) उस [जगत्] का (वित्तम्) वे तुम दोनों ज्ञान रखते हो, (ययोः वाम्) जिन तुम दोनों के (प्रदिशि) शासन में (इदम्) यह (यत्) जो कुछ जगत् (विरोचते) प्रकाशमान है। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनों (चतुष्पदः) चौपाये संसार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वजनक सर्वशासक और सर्वज्ञ है। उसकी उपासना करके सब मनुष्य सुखी रहें ॥१॥

इस सूक्त में गुणों के वर्णन से गुणी अर्थात् ईश्वर का ग्रहण है ॥

ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदितावसुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों का [वह सब है] (यत् चित्) जो कुछ (अभ्यध्वे) समीप में (उत) और (दूरे) दूर देश में है। (यौ) जो तुम दोनों (इषुभृताम्) हिंसाकारियों के (असिष्ठौ) अत्यन्त गिराने वाले (विदितौ) विदित हो। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये·· म० १ ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्व अन्तर्यामी और शत्रुनाशक है हम उसकी उपासना से सदा पुरुषार्थी रहें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्, मैं (स्तुवन्) स्तुति करता हुआ (उग्रौ) उग्र स्वभाव वाले, (सहस्राक्षौ) सहस्रों व्यवहारों में व्यापक रहने वाले वा दृष्टि रखने वाले, (वृत्रहणा = ० - णौ) शत्रुओं वा अन्धकार के नाश करने वाले, (दूरेगव्यूती) दूर तक प्रकाश का संयोग रखने वाले, दोनों को (हुवे) मैं पुकारता हूं और (एमि) प्राप्त होता हूं। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये···म० १ ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वदर्शक, शत्रु वा अज्ञान नाशक और सूर्य आदि लोकों का प्रकाशक है, उसकी स्तुति उपासना करके हम सदा पुरुषार्थ करें ॥३॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्रचेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(यौ) जिन तुम दोनों ने (बहु) बहुत सा जगत् (साकम्) एक साथ (अग्रे) पूर्वकाल में (आरेभाथे) आरम्भ किया (च) और जिन तुम दोनों ने (इत्) ही (जनेषु) प्राणियों में (अभिभाम्) प्रतिभा अर्थात् बुद्धि को (प्र अस्राष्ट्रम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये··· म० १ ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सृष्टि को उत्पन्न करके प्राणियों में इष्ट अनिष्ट और सुख दुःख जानने के लिये बुद्धि दी है, उसकी ही भक्ति से हम सदा प्रसन्न रहें ॥४॥

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन तुम दोनों के (वधात्) हनन सामर्थ्य से (देवेषु) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों (उत) और (मानुषेषु अन्तः) मनुष्यों के बीच (कश्चन) कोई भी (न) नहीं (अपपद्यते) छटकर जाता है। (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये···म० १ ॥५॥

भावार्थः—सर्व नियन्ता जगदीश्वर की आज्ञा पालन करके सब मनुष्य आनन्द प्राप्त करें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।६।।

भाषार्थः—(यः) जो (कृत्याकृत्) हिंसाकारी, (मूलकृत्) मूल कतरने वाला और (यातुधानः) पीड़ा देने वाला पुरुष है, (तस्मिन्) उस पर (उग्रौ) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनों (वज्रम्) वज्र (निधत्तम्) गिराओ (यौ) जो तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह के और (यौ) जो तुम दोनों (चतुष्पदः) चौपाये संसार के (ईशाथे) ईश्वर हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ।।६।।

भावार्थः—परमेश्वर दुष्टनाशक और शिष्टरक्षक है, उसकी ही उपासना से मनुष्य बलवान् होवें ।।६।।

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ संवज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।७।।

भाषार्थः—(उग्रौ) हे उग्र स्वभाव वाले तुम दोनों (नः) हमसे (पृतनासु) संग्रामों में (अधि) अनुग्रह से (ब्रूतम्) बोलो और [उसको] (वज्रेण) वज्र के साथ (सम् सृजतम्) संयुक्त करो (यः) जो (किमीदी) अब क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, ऐसा खोजने वाला लुतरा पुरुष है, (नाथितः) मैं अधीन होकर (भवाशर्वौ) सुख उत्पन्न करने वाले और शत्रु नाश करने वाले तुम दोनों को (स्तौमि) सराहता हूं और (जोहवीमि) वारंवार पुकारता हूं । (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ।।७।।

भावार्थः—मनुष्य सदाचारी और सत्यवादी होकर शत्रुओं को संग्राम में जीतें और परमेश्वर की उपासना करके सदा प्रसन्न रहें ।।७।।

सूक्तम् २९ ।।

१—७ ।। मित्रावरुणौ देवते ।। सर्वत्रान्तिमः पादोऽनुष्टुप्, ५–७ जगती ।।

पुरुषार्थकरणायोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ।।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।१।।

भाषार्थः—(ऋतावधौ) हे सत्य के बढ़ाने वाले (सचेतसौ) समान ज्ञान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराने हारे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण [प्राण और अपान अथवा दिन और रात] (वाम्) तुम दोनों का (मन्वे) मैं मनन करता हूं, (यौ) जो तुम दोनों (द्रुह्वणः) द्रोहकारियों को (नुदेथे) निकाल देते हो और (सत्यावानम्) सत्यवान् पुरुष को (भरेषु) संग्रामों में (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्राणायाम करके श्वास प्रश्वास पर दिन रात शुभ चिन्तन करते हैं, वे सत्यवादी सत्यसंकल्पी पुरुष आत्मदोषों को त्याग कर संसार में विजय पाते और आनन्द भोगते हैं ॥१॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥

भाषार्थः—(सचेतसौ) हे समान ज्ञान कराने वाले ! (यौ) जो तुम दोनों (द्रुह्वणः) उपद्रवियों को (नुदेथे) निकाल देते हो और (सत्यावानम्) सत्यवान् पुरुष को (भरेषु) संग्रामों में (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (नृचक्षसौ) मनुष्यों के देखने वाले (यौ) जो तुम दोनों (बभ्रुणा) पोषण के साथ (सुतम्) उत्पन्न जगत् वा पराक्रमी वा पुत्र समान सेवक पुरुष को (गच्छथः) प्राप्त होते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य श्वास प्रश्वास और पल पल पर दृष्टि रख कर वैदिक कर्म करते रहते हैं, वे सत्यप्रतिज्ञ पुरुष बल पराक्रम प्राप्त करके सदा प्रसन्न रहते हैं ॥२॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण तुम दोनों (अङ्गिरसम्) उद्योगी वा ज्ञानी पुरुष को और (यौ) जो तुम दोनों (अगस्तिम्) वक्रगति पाप के गिरा देने वाले, (जमदग्निम्) [यज्ञ वा शिल्प सिद्धि में] प्रकाशमान अग्नि वाले और (अत्रिम्) दोष के नाश करने वाले, यद्वा निरन्तर गतिशील, यद्वा कायिक वाचिक और मानसिक तीन दोष रहित महात्मा को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (कश्यपम्) सोमरस पीने वाले वा सूक्ष्मदर्शी पुरुष को और (यौ) जो तुम दोनों (वसिष्ठम्) बड़े धनी और बड़े श्रेष्ठ जन को (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य (मित्रावरुणा) दिन रात अर्थात् समय, और प्राण, अपान अर्थात् इन्द्रियों के यथावत् प्रयोग से ज्ञानी, शुद्ध चित्त, और सूक्ष्मदर्शी होकर सदा आनन्द भोगते हैं ॥३॥

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण तुम दोनों (श्यावाश्वम्) ज्ञान में व्याप्ति रखने वाले को, (वध्र्यश्वम्) मित भोजन करने वाले को, (पुरुमीढम्) बड़े धनी को और (अत्रिम्) नित्य उद्योगी को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (विमदम्) मदरहित वा अदीन पुरुष को और (सप्तवध्रिम्) [पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि इन] सात को संयम में रखने वाले पुरुष को (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य समय और प्राण के संयम से ज्ञानपूर्वक शुद्ध आहार विहार करके निरभिमानी और अदीन अर्थात् उत्साही, स्वस्थ और धनी होकर सदा आनन्दित रहते हैं ॥४॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्र वरुण) मित्र और वरुण तुम दोनों (भरद्वाजम्) अन्न वा बल, वा ज्ञान के धारण करने वाले को, (यौ) जो तुम (गविष्ठिरम्) वेद वाणी में स्थिर को, (विश्वामित्रम्) सब के मित्र को, वा सब हैं मित्र जिसके उसको, और (कुत्सम्) संगतिशील वा दोषों के कतरने वाले को (अवथः) बचाते हो, (यौ) जो तुम दोनों (कक्षीवन्तम्) उद्योगी वा शासनशील (उत) और (कण्वम्) स्तुति करने वाले मेधावी पुरुष को (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो। (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥५॥

भावार्थः—पुरुषार्थी, वेदों की आज्ञा पालन करने वाले सर्वहितकारक आदि पुरुषों के लिये समय और आत्मबल सदा अनुकूल रहते हैं ॥५॥

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यौ) जो (मित्रावरुणौ) दिन रात वा प्राण और अपान तुम दोनों ! (मेधातिथिम्) धारणावती बुद्धि के नित्य प्राप्त करने वाले को और (यौ) जो तुम दोनों (त्रिशोकम्) कायिक, वाचिक, और मानसिक तीन दोषों पर शोक करने वाले को, और (यौ) जो तुम दोनों (उशनाम्) कामना योग्य नीति को और (काव्यम्) बुद्धिमानों के कर्म को (अवथः) बचाते हो। (यौ) जो तुम दोनों (गोतमम्) अतिशय स्तुति करने वाले वा विद्या की कामना करने वाले को (उत) और (मुद्गलम्) मोद अर्थात् हर्ष देने वाले को (प्र) अच्छे प्रकार (अवथः) बचाते हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य तपश्चर्या करके अपने समय और शारीरिक मानसिक शक्तियों का यथावत् उपयोग करते हैं वे उत्तम नीति और कर्म प्राप्त करके आनन्दित होते हैं ॥६॥

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों का (सत्यवर्त्मा) सत्यमार्ग वाला, (ऋजुरश्मिः) सरल व्याप्ति वा डोरी वाला (रथः) रथ (मिथुया) हिंसा के साथ (चरन्तम्) चलते हुए पुरुष को (दूषयन्) सताता हुआ (अभियाति) चढ़ाई करता है। (नाथितः) मैं अधीन होकर (मित्रावरुणौ) दिन रात वा प्राण अपान को (स्तौमि) सराहता हूं। और (जोहवीमि) वारंवार पुकारता हूं, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य समय और आत्मिक शक्तियों का कुप्रयोग करते हैं, वे ही कर्म उन दुराचारियों का नाश कर देते हैं, इसलिये मनुष्य अपने काल और सामर्थ्य को उत्तम कामों में लगाकर प्रसन्न रहें ॥७॥

सूक्तम् ३० ॥

१—८ ॥ राष्ट्री देवता। १—५, ७, ८ त्रिष्टुप्, ६ जगती ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं [परमेश्वर] (रुद्रेभिः) ज्ञानदाताओं वा दुःखनाशकों (वसुभिः) निवास कराने वाले पुरुषों के साथ (उत) और (अहम्) मैं ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वदेवैः) सब दिव्य गुण वाले (आदित्यैः) प्रकाशमान, अथवा अदीन प्रकृति से उत्पन्न हुए सूर्य आदि लोकों के साथ (चरामि) चलता हूं। (अहम्) मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणा) दिन और रात को, (अहम्) मैं (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि को, (अहम्) मैं ही (उभा) दोनों (अश्विना) सूर्य और पृथिवी को (बिभर्मि) धारण करता हूं ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वोत्पादक और सर्वपोषक है, उसकी उपासना से सब मनुष्य नित्य उन्नति करें ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १२५ में है। वहाँ सूक्त का वागाम्भृणी ऋषि और वागाम्भृणी ही देवता है ॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (वसूनाम्) धनों की (संगमनी) पहुंचाने वाली और (यज्ञियानाम्) संगति योग्य पूजनीय विषयों की (चिकितुषी) जानने वाली (प्रथमा) पहिली (राष्ट्री) नियम करने वाली शक्ति हूं। (देवाः) विद्वानों ने (पुरुत्रा) बहुत प्रकारों से (भूरिस्थात्राम्) अनेक पदार्थों में ठहरी हुई (ताम् मा) उस मुझको (भूरि) अनेक विधि से (आवेशयन्तः) [अपने आत्मा में] प्रवेश कराके (व्यदधुः) विविध प्रकार धारण किया है ॥२॥

भावार्थः—अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वपोषक, सर्वनियन्ता परमेश्वर सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में विद्यमान है। विद्वान् लोग ही उसकी अपार महिमा का अनुभव करते हैं ॥२॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्। ३।

भाषार्थः—(अहम्) मैं (एव) ही (स्वयम्) आप (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों (उत) और (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों का (जुष्टम्) प्रिय (इदम्) यह वचन (वदामि) कहता हूं। [अर्थात्] (यम्) जिस जिसको (कामये) मैं चाहता हूं (तम्-तम्) उस उस को ही [कर्मानुसार] (उग्रम्) तेजस्वी, (तम्) उसको ही (ब्रह्माणम्) वृद्धिशील ब्रह्मा, (तम्) उसी को (ऋषिम्) सन्मार्गदर्शक ऋषि, (तम्) उसी को (सुमेधाम् = ०—धस्) उत्तम बुद्धि वाला (कृणोमि) बनाता हूं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकों और प्राणियों को शरण में रखकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश करता है कि मैं अपने आज्ञाकारियों को प्रीतिपूर्वक उत्तम गति देता हूं ॥३॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

भाषार्थः—(मया) मेरे द्वारा ही (सः) वह (अन्नम्) अन्न (अत्ति) खाता है (यः) जो कोई (विपश्यति) विशेष करके देखता है, (यः) जो (प्राणति) श्वास लेता है और (यः) जो (ईम्) यह (उक्तम्) वचन (शृणोति) सुनता है। (माम्) मुझे (अमन्तवः) न जानने वाले (ते) वे पुरुष (उप) हीन होकर (क्षियन्ति) नष्ट हो जाते हैं। (श्रुत) हे सुनने में समर्थ जीव ! (श्रुधि) तू सुन, (ते) तुझसे (श्रद्धेयम्) आदर योग्य सत्य (वदामि) बताता हूं ॥४॥

भावार्थः—विवेकी पुरुष परमात्मा को जान कर आनन्द, और अज्ञानी नास्तिक उससे विमुख होकर दुःख भोगते हैं, यह परमेश्वर का उपदेश है ॥४॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥५॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (रुद्राय) दुःखनाशक शूर के लिये (ब्रह्मद्विषे) ब्राह्मणों के द्वेषी (शरवे) हिंसक के (हन्तवै) मारने को (उ) ही (धनुः) धनुष (आ तनोमि) सब ओर से तानता हूं। (अहम्) मैं (जनाय) भक्त जन के लिये (समदम्) आनन्द-युक्त [जगत्] (कृणोमि) करता हूं। (अहम्) मैंने (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक में (आ) सब ओर से (विवेश) प्रवेश किया है ॥५॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर शिष्टों की रक्षा के लिये दुष्टों का नाश करता है और अपने भक्तों को सब स्थानों में आनन्द देता है ॥५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या ३ यजमानाय सुन्वते ॥६॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (आहनसम्) प्राप्तियोग्य (सोमम्) ऐश्वर्य को (अहम्) मैं (त्वष्टारम्) रसों के छिन्न भिन्न करने हारे सूर्य को (उत) और (पूषणम्) पोषण करने हारी पृथिवी को और (भगम्) सेवनीय चन्द्रमा को (बिभर्मि) धारण करता हूं। (अहम्) मैं (हविष्मते) भक्ति रखने वाले, (सुन्वते) विद्या रस का निचोड़ करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारे (यजमानाय) देवताओं की पूजा वा संगति करने हारे पुरुष को (सु प्राव्या=०—णि) सुन्दर सुन्दर रक्षा योग्य (द्रविणा) अनेक धन (दधामि) देता हूं ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अनेक प्रकार के ऐश्वर्य और सूर्य आदि बड़े उपकारी पदार्थ रचे हैं। विद्वान् लोग विज्ञान द्वारा उनसे लाभ प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१ न्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (अस्य) इस जगत् के (मूर्धन्) नियम के निमित्त (पितरम्) पालन करने वाले गुण को (सुवे) उत्पन्न करता हूं। (मम) मेरा (योनिः) घर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में वर्तमान (अप्सु अन्तः) व्यापनशील रचनाओं के भीतर है, (ततः) इसी से (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों में (वितिष्ठे) व्यापक होकर वर्तमान हूं (उत) और (अमूम् द्याम्) उस प्रकाशमान सूर्य को (वर्ष्मणा) अपने ऐश्वर्य से (उप स्पृशामि) छूता रहता हूं ॥७॥

भावार्थः—परमेश्वर सबमें व्यापक रहकर सबका पालन कर्त्ता, और नियन्ता तथा उपास्य है ॥७॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥८॥

भाषार्थः—(अहम् एव) मैं ही (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों को (आरभमाणा=आलभमाना) छूती हुई शक्ति (वातः इव) पवन के समान (प्रवामि) चलती रहती हूं। (दिवा) सूर्य लोक से (परः) परे और (एना पृथिव्या) इस पृथिवी से (परः) परे [वर्तमान होकर] (एतावती) इतनी बड़ी शक्ति (महिम्ना) अपनी महिमा से (संबभूव) हो गई हूं ॥८॥

भावार्थः—जैसे वायु सब सांसारिक पदार्थों का अवलम्बन कर्ता है उसी प्रकार परमात्मा वायु का भी आश्रय दाता है और वह इन्द्रियों के विषय, सूर्य, पृथिवी आदि पदार्थों से अलग है। उसकी महिमा को जान कर सब मनुष्य पुरुषार्थी होकर आनन्दित रहें ॥८॥

। इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३१ ॥

१–७ ॥ मन्युर्देवता ॥ १–३ त्रिष्टुप्, ४–७ जगती ॥

संग्रामे जयप्राप्त्युपदेशः—संग्राम में जय पाने का उपदेश ॥

त्वया॑ मन्यो सरथ॑मारुजन्तो हर्ष॑माणा हृषि॒तासो॑ मरुत्वन् ।
तिग्मेष॑व॒ आयु॑धा संशिशा॒ना उप॒ प्र य॑न्तु॒ नरो॒ अग्नि॑रूपाः ॥१॥

भाषार्थः—(मरुत्वन्) हे शूरवीरता वाले (मन्यो) क्रोध ! (त्वया) तेरे साथ (सरथम्) एक रथ पर चढ़ कर [शत्रुओं को] (आरुजन्तः) तोड़ते फोड़ते हुए, (हर्षमाणाः) हर्ष मानते हुए, (हृषितासः) संतुष्ट मन, (तिग्मेषवः) तीक्ष्ण बाणों वाले, (आयुधा) शस्त्रों को (संशिशानाः) तीक्ष्ण करते हुए, (अग्निरूपाः) अग्निरूप [अग्नि तुल्य प्रचण्ड कर्मों वाले, अथवा सन्नद्ध कवच पहिने हुए] (नरः) हमारे नर [मुखिया लोग] (उप प्र यन्तु) व्यापकर चढ़ाई करें ॥१॥

भावार्थः—जो शूरवीर दुष्टों पर क्रोध करके चढ़ाई करते हैं, वे विजयी होते हैं ॥१॥

अग्नि॑रिव मन्यो त्विषि॒तः सह॑स्व सेना॒नीर्नः॑ सहुरे हू॒त ए॑धि ।
ह॒त्वाय॒ शत्रू॒न् वि भ॑जस्व॒ वेद॒ ओजो॒ मिमा॑नो॒ वि मृधो॑ नुदस्व ॥२॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (अग्निः इव) अग्नि के समान (त्विषितः) प्रज्वलित होकर (सहस्व) समर्थ हो, (सहुरे) हे प्रबल ! (हूतः) आवाहन किया हुआ तू (नः) हमारा (सेनानीः) सेनापति (एधि) हो । (शत्रून्) शत्रुओं को (हत्वाय) मारकर (वेदः) उनका धन (वि भजस्व) बांट दे, और (ओजः) बल (मिमानः) दिखाता हुआ तू (मृधः) हिंसक लोगों को (वि नुदस्व) इधर उधर फेंक दे ॥२॥

भावार्थः—सेनानी लोग क्रोध के साथ शत्रुओं को मारकर उनका धन बांट लें और उन्हें इतर बितर कर दें ॥२॥

सह॑स्व मन्यो अभिमा॑तिम॒स्मै रुज॑न् मृणन् प्रमृ॑णन् प्रेहि॒ शत्रू॑न् ।
उ॒ग्रं ते॒ पाजो॑ नन्वा रुरुध्रे॒ वशी॒ वशं॑ नयासा एकज॒ त्वम् ॥३॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध (अस्मै) इस पुरुष के लिये (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) दबा दे, और (शत्रून्) वैरियों को (रुजन्) तोड़ता हुआ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मृणन्) मारता हुआ, (प्रमृणन्) कुचलता हुआ (प्रेहि) चढ़ाई कर। (ते) तेरे (उग्रम्) उग्र (पाजः) बल को (ननु) कभी नहीं (आ रुरुध्रे) वे रोक सकें। (एकज) हे एक [परमात्मा] से उत्पन्न हुए (वशी) बलवान् (त्वम्) तू [उनको] (वशम्) वश में (नयासै) ले आ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य क्रोध करके अभिमान आदि शत्रुओं को जीतकर अपनी इन्द्रियों को वश में रक्खे ॥३॥

एकों बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय संशिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (एकः) अकेला ही तू (बहूनाम्) बहुत से शूरों का (ईडिता) सत्कार करने वाला (असि) है। (विशंविशम्) प्रत्येक प्रजा वा मनुष्य को (युद्धाय) युद्ध के लिये (सम्) यथावत् (शिशाधि) शिक्षा दे वा तीक्ष्ण कर। (अकृत्तरुक्) हे पूर्ण कान्ति वाले ! (त्वया युजा) तुझ मित्र के साथ (वयम्) हम लोग (द्युमन्तम्) हर्षयुक्त (घोषम्) ध्वनि [सिंहनाद वा मारू गीत] (विजयाय) विजय के लिये (कृण्मसि) करते हैं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य क्रोधपूर्वक शत्रुओं पर धावा करके स्तुति, विजय और कीर्ति पाते हैं ॥४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो ३ ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (अनवब्रवः) नीच वचन न बोलने वाला, (विजेषकृत्) विजय करने वाला तू (इन्द्रः इव) बड़े प्रतापी पुरुष के समान (इह) यहां पर (अस्माकम्) हमारा (अधिपाः) बड़ा स्वामी (भव) हो। (सहुरे) हे शक्तिमान् (ते) तेरा (प्रियम्) प्रिय (नाम) नाम (गृणीमसि) हम सराहते हैं। (तम्) उस (उत्सम्) स्रोता [परमेश्वर को] (विद्म) हम जानते हैं (यतः) जिससे (आबभूथ) तू आकर प्रकट हुआ है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अदीन वचन बोलते हैं वे ही विजयी होकर कीर्ति पाते हैं ॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वज्र) वज्ररूप ! (सायक) हे शत्रुओं के अन्त करने वाले ! (सहभूते) हे सम्पत्ति के साथ वर्तमान ! (आभूत्या सहजाः) विभूति के साथ साथ उत्पन्न होने वाला तू (उत्तरम्) अधिक उत्तम (सहः) बल (बिभर्षि) धारण करता है, (पुरुहूत) बहुतों से आवाहन किये हुए (मन्यो) क्रोध ! (महाधनस्य) बड़े धन प्राप्त कराने हारे संग्राम के (संसृजि) भिड़जाने पर (ऋत्वा सह) बुद्धि के साथ (नः) हमारा (मेदी) स्नेही (एधि) हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य संग्राम में बुद्धिपूर्वक क्रोध करके विजयी होते हैं ॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

भाषार्थः—(वरुणः) श्रेष्ठ शूर च) और (मन्युः) क्रोध (संसृष्टम्) संग्रह किया हुआ और (समाकृतम्) उगाही किया हुआ (उभयम्) दो प्रकार का [आत्मिक और सामाजिक] (धनम्) धन (अस्मभ्यम्) हमें (धत्ताम्) देवें । (पराजितासः) हारे हुए, और (हृदयेषु) हृदयों में (भियः) अनेक भय (दधानाः) रखते हुए (शत्रवः) शत्रु लोग (अप=अपक्रम्य) भागकर (नि लयन्ताम्) खिसक जावें ॥७॥

भावार्थः—शूर पुरुष यथानीति क्रोध धारण करके शत्रुओं को हराते और बहुत धन प्राप्त करके अपनी और समाज की उन्नति करते हैं ॥७॥

सूक्तम् ३२ ॥

१–७ ॥ मन्युर्देवता ॥ १ जगती, २–७ त्रिष्टुप् ॥

संग्रामे जयप्राप्त्युपदेशः—संग्राम में जय पाने का उपदेश ॥

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

भाषार्थः—(वज्र) हे वज्र रूप ! (सायक) हे शत्रुनाशक ! (मन्यो) दीप्तिमान् क्रोध ! (यः) जिस पुरुष ने (ते) तेरी (अविधत्) सेवा की है, वह (विश्वम्) सब (सहः) शरीर बल और (ओजः) समाज बल से (आनुषक्) लगातार, (पुष्यति) पुष्ट करता है । (सहस्कृतेन) बल से उत्पन्न हुए, (सहस्वता) बलवान्, (त्वया युजा) तुझ सहायक के साथ (सहसा) बल से (वयम्) हम लोग (दासम्) दास, काम बिगाड़ देने वाले मूर्ख और (आर्यम्) आर्य अर्थात् विद्वान् का (साह्याम) निर्णय करें ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य बुद्धिपूर्वक क्रोध का आराधन करते हैं वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतरी और बाहिरी बल बढ़ाकर मूर्खों का निरादर और विद्वानों का आदर करके कीर्त्ति पाते हैं ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १० । सू० ८३ में है । वहां सूक्त के ऋषि मन्यु तापस और देवता मन्यु हैं ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

भाषार्थः—(मन्युः) प्रकाशमान क्रोध (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (मन्युः) क्रोध (एव) ही (देवः) दिव्यगुण वाला, (मन्युः) क्रोध (होता) दाता वा ग्रहीता, (वरुणः) वरणीय अङ्गीकारयोग्य, और (जातवेदाः) धन प्राप्त कराने वाला (आस) हुआ है । (मन्युः=मन्युम्) क्रोध को (याः) उद्योग करने वाली (मानुषी=०—ष्यः) मनुष्य जातीय (विशः) प्रजाएं (ईडते) सराहती हैं । (मन्यो) हे क्रोध (तपसा) ऐश्वर्य से (सजोषाः) प्रीति करता हुआ तू (नः) हमें (पाहि) बचा ॥२॥

भावार्थः—यथावत् प्रयुक्त क्रोध के गुण पहिले से विदित हैं नीतिज्ञ पुरुष विधिपूर्वक क्रोध से ऐश्वर्य बढ़ाकर रक्षा करते हैं ॥२॥

'मन्युर्विशः' के स्थान में सायण भाष्य और ऋग्वेद में 'मन्युं विशः' पद हैं ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥

भाषार्थः—(मन्यो) हे प्रकाशमान क्रोध (तवसः) महान् से भी (तवीयान्) अति महान् तू (अभीहि) इधर आ, (तपसा युजा) अपने ऐश्वर्य, मित्र के साथ (शत्रून्) शत्रुओं को (विजहि) मिटा दे । (च) और (अमित्रहा) पीड़ा देने वालों का मारने वाला, (वृत्रहा) अन्धकार नाश करने वाला, (दस्युहा) डाकुओं का मारने वाला (त्वम्) तू (विश्वा) सब (वसूनि) धन को (नः) हमारे लिये (आ) सब ओर से (भर) भर दे ॥३॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य नीतिपूर्वक क्रोध से धन प्राप्त करके आनन्द भोगते हैं ॥३॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मन्यो) हे क्रोध (त्वम् हि) तू ही (अभि भूत्योजाः) शत्रु पराजय का सामर्थ्यवाला, (स्वयंभूः) अपने आप उत्पन्न होने वाला, (भामः) प्रकाशमान और (अभिमातिषाहः) अभिमानियों को हराने वाला है। (विश्वचर्षणिः) सब देखने वाला, (सहुरिः) शक्तिमान्, (सहीयान्) अधिक बलवान् तू (पृतनासु) संग्रामों के बीच (अस्मासु) हममें (ओजः) पराक्रम (धेहि) धारण कर ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य नीतिकुशल और कर्मकुशल होकर दुष्टों पर क्रोध करते हैं; वे ही संग्रामों में विजयी होते हैं ॥४॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५॥

भाषार्थः—(प्रचेतः) हे उत्तम ज्ञान वाले ! मैं (अभागः सन्) अभागा होकर (तव तविषस्य) तुझ बलवान् के (क्रत्वा) कर्म वा बुद्धि से (अप=अपेत्य) हटकर (परेतः) दूर पड़ा हुआ (अस्मि) हूँ। (मन्यो) हे क्रोध (अक्रतुः) बुद्धिहीन वा कर्म हीन (अहम्) मैंने (तम् त्वा) उस तुझको (जिहीड) क्रुद्ध कर दिया है, (बलदावा) बलदाता तू (स्वा तनूः) अपने स्वरूप से (नः) हमको (आ इहि) प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थः—अनीतिज्ञ पुरुष यथावत् क्रोध न करके दरिद्र और बुद्धिहीन हो जाते हैं इससे मनुष्यों का यथावत् वर्त्तना चाहिये ॥५॥

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६॥

भाषार्थः—(अयम्) यह मैं (ते) तेरा (अस्मि) हूं। (सहुरे) हे समर्थ ! (विश्वदावन्) हे सर्वदाता ! (प्रतीचीनः) प्रत्यक्ष चलता हुआ तू (नः) हमारे (अर्वाङ्) सन्मुख होकर (उप एहि) समीप आ (वज्रिन्) हे वज्रधारी (मन्यो) क्रोध ! (नः अभि) हमारी ओर (आ ववृत्स्व) वर्तमान हो जा, (उत) और (आपेः) अपने बन्धु का (बोधि) बोधकर, [जिससे हम दोनों] (दस्यून्) दुष्टों को (हनाव) मारें ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब प्रकार विचार करके दुष्टों पर क्रोध करते हैं, वे विजयी होते हैं ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशुप्रथमा पिबाव ॥७॥

भाषार्थः—(अभि प्र इहि) आगे आ, और (नः) हमारी (दक्षिणतः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहिनी ओर (भव) वर्त्तमान हो, (अध) तब (भूरि) बहुत से (वृत्राणि) अन्धकारों को (जङ्घनाव) हम दोनों मिटा देवें। (मध्वः) मधुर रस का (अग्रम्) श्रेष्ठ (धरुणम्) धारण करने योग्य [स्तुतिरूप] रस (ते) तुझे (जुहोमि) भेंट करता हूं। (प्रथमा = ० - मौ) पहिले वर्तमान (उभौ) हम दोनों (उपांशु) एकान्त में (पिबाव) [रसपान] करें ॥७॥

भावार्थः—महात्मा पुरुष आत्मदोषों पर क्रोध करके अनेक अन्धकारों को मिटाते हैं और वे ही इस मन्युस्तुति को एकान्त में सूक्ष्म रूप से विचारकर अधिक आनन्द भोगते हैं ॥७॥

सूक्तम् ३३ ॥

१—८ ॥ अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

सर्वरक्षणोपदेशः—सब प्रकार की रक्षा का उपदेश ॥

अप॑ नः शोशुचद॒घमग्ने॑ शुशुग्ध्या र॒यिम् ।
अप॑ नः शोशुचद॒घम् ॥१॥

भाषार्थः—(नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे। (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (रयिम्) धन को (आ) अच्छे प्रकार (शुशुग्धि) पवित्र करो। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा विचारते हुए दुष्कर्म के त्याग और सुकर्म के ग्रहण से विद्यारूप और सुवर्ण आदि रूप धन प्राप्त करें ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद म० १ सू० ९७ में है ॥

सुक्षे॑त्रिया सु॒गातु॒या व॑सू॒या च॑ यजामहे ।
अप॑ नः शोशुचद॒घम् ॥२॥

भाषार्थः—(सुक्षेत्रिया) उत्तम खेत के लिये, (सुगातुया) उत्तम भूमि के लिये (च) और (वसुया) धन के लिये (यजामहे) हम [परमेश्वर को] पूजते हैं। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा जानकर अनिष्टों को मिटाकर पुरुषार्थ से अपनी प्रभुता बढ़ावें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) जिस प्रकार से (एषाम्) इन प्राणियों के मध्य (भन्दिष्ठः) अत्यन्त सुखी होकर (प्र) प्रकृष्ट [हो जाऊं] (च) और (अस्माकासः) हमारे (सूरयः) विद्वान् लोग (प्र) प्रकृष्ट [होवें] [उसी प्रकार से] (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शुभ कर्मों में प्रवृत्त होकर दरिद्रता आदि दुःखों को मिटावें ॥३॥

प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे परमात्मन् (सूरयः) विद्वान् लोग (यत् ते) जिस तेरे (प्र = प्रजायन्ते) प्रजा हैं, (ते) उस तेरे ही (वयम्) हम लोग (प्र जायेमहि) प्रजा होवें। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के समान परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव जानकर सदा सुखी रहें ॥४॥

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥५॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (सहस्वतः) बलवान् (अग्नेः) परमात्मा के (भानवः) अनेक प्रकाश (विश्वतः) सब ओर (प्र) भली प्रकार (यन्ति) चलते रहते हैं। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की अनेक सूक्ष्म और स्थूल रचनाओं को देखकर अपने विघ्नों को मिटावें ॥५॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

भाषार्थः—(हि) जिस कारण से (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान सर्वोपदेशक, सर्वोत्तम] परमेश्वर! (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परिभूः) व्यापक (असि) है। (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के समान 'विश्वतोमुख' होकर सदा चैतन्य रहें और अनिष्टों को मिटाकर अपनी वृद्धि करें ॥६॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७॥

भाषार्थः—(विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख वाले [मुख के समान, सर्वोपदेशक सर्वोत्तम] परमेश्वर ! (द्विषः) द्वेषियों को (अति=अतीत्य) लांघ कर (नः) हमें (पारय) पार लगा, (नावा इव) जैसे नाव से [समुद्र को पार करते हैं], (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥७॥

भावार्थः—जैसे पोत द्वारा समुद्र पार करते हैं, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से सब दोषों को हटाकर सुखी रहें ॥७॥

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

भाषार्थः—(सः) सो तू (नः) हमें (स्वस्तये) आनन्द के लिये (पर्ष) पार लगा, (इव) जैसे (नावा) नाव से (सिन्धुम्) समुद्र को (अति=अतीत्य) लांघ कर [पार करते] हैं, (नः) हमारा (अघम्) पाप (अप शोशुचत्) दूर धुल जावे ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में निष्ठा करके पुरुषार्थपूर्वक दुःखसागर से पार होकर सुखी होवें जैसे नाव के आश्रय से जलयात्री समुद्र पार करके प्रसन्न होते हैं ॥८॥

सूक्तम् ३४ ॥

१—८ ॥ ओदनो देवता । १–४ त्रिष्टुप्, ५ एष यज्ञानामिति त्रिष्टुप्, एतास्त्वेति द्विपदा जगती, ६, ७ पञ्चपदा जगती, ८ जगती ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥१॥

भाषार्थः - (अस्य) इस (ओदनस्य) सेचनसमर्थ वा अन्नरूप परमेश्वर का (शीर्षम्) शिर (ब्रह्म) वेद है, (अस्य) इसकी (पृष्ठम्) पीठ (बृहत्) प्रवृद्ध जगत् और (उदरम्) उदर (वामदेव्यम्) मनोहर परमात्मा से जताया गया [भूतपञ्चक] है । (अस्य) इसके (पक्षौ) दोनों पार्श्व (छन्दांसि) आनन्दप्रद वा पूजनीय कर्म और (मुखम्) मुख (सत्यम्) सत्य है । (विष्टारी) वह विस्तार वाला (यज्ञः) पूजनीय परमात्मा (तपसः) अपने ऐश्वर्य से (अधि) सब से ऊपर (जातः) प्रकट हुआ है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - परमेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है, उसकी उपासना सब मनुष्य नित्य करें ॥१॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥

भाषार्थः—(अनस्थाः) न गिराने योग्य (पवनेन) शुद्ध आचरण से (पूताः) शुद्ध किये गए, (शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव, (शुचयः) प्रकाशमान महात्मा लोग (अपि) ही (शुचिम्) ज्योतिःस्वरूप (लोकम्) लोक [परमात्मा] को (यन्ति) पाते हैं। (जातवेदाः) प्राणियों का जानने वाला परमेश्वर (एषाम्) इनकी (शिश्नम्) गति वा सामर्थ्य को (न) नहीं (प्रदहति) जलाता है। [इसलिये कि] (एषाम्) इन [महात्माओं] का (स्त्रैणम्) सृष्टि का हितकर्म (स्वर्गे) अच्छे प्रकार पाने योग्य सुखदायक (लोके) लोक [परमात्मा] में (बहु) बहुत है ॥२॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय शुद्ध स्वभाव योगी जन ही परमात्मा को पाते हैं, और उस जगदीश्वर के सहारे में रह कर संसार का हित करते हुए सर्वत्र गतिमान् होते हैं ॥२॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानर्वतिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जो महात्मा लोग (विष्टारिणम्) विस्तारवान् (ओदनम्) सेचन समर्थ वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय में] (पचन्ति) परिपक्व करते हैं, (एनान्) इन लोगों को (अर्वत्तिः) दरिद्रता (कदा चन) कभी भी (न) नहीं (सचते) मिलती है। [जो पुरुष] (यमे) नियम वा न्यायकारी परमात्मा में (आस्ते) रहता है, [वह] (देवान्) उत्तम गुणों को (उप) अधिक अधिक (याति) पाता है, और (गन्धर्वैः) पृथिवी आदि लोकों वा वेदवाणियों को धारण करने वाले (सोम्येभिः) सोम अर्थात् ऐश्वर्य योग्य महात्माओं से (सम्) मिल कर (मदते) आनन्द भोगता है ॥३॥

भावार्थः—योगी जन परमात्मा में श्रद्धा रखकर सदा उदार चित्त रहते हैं, क्योंकि जितेन्द्रिय पुरुष ही विद्वानों के सत्सङ्ग से उत्तम उत्तम गुण पाकर आनन्द भोगते हैं ॥३॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी हि भूत्वा रथयान ईयते पक्षी हि भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो महात्मा (विष्टारिणम्) विस्तारवान् (ओदनम्) सेचनशील वा अन्नरूप परमात्मा को [हृदय में] (पचन्ति) पक्का करते हैं, (एनान्) इनसे (यमः) नियम (रेतः) सामर्थ्य को (न) नहीं (परि मुष्णाति) मूस लेता है। वह पुरुष (रथयाने) शरीर से चलने योग्य संसार में (ह) निश्चय करके (रथी) क्रीडाशील (भूत्वा) होकर (ईयते) विचरता है और (ह) अवश्य (पक्षी) सबका पक्ष करने वाला (भूत्वा) होकर (अति) अत्यन्त (दिवः) प्रकाशमान लोकों को (सम्) यथावत् (एति) पाता है ॥४॥

भावार्थः - परमात्मा में पूर्ण श्रद्धालु शूरवीर महात्मा सदा बलवान् होकर संसार को सहारा देते हुए सूर्य समान प्रकाशित रहते और आनन्द भोगते हैं ॥४॥

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमाविवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥५॥

भाषार्थः—(एषः) यह (यज्ञानाम्) उत्तम कर्मों के बीच (विततः) फैला हुआ (बहिष्ठः) अत्यन्त बहुत शुभ गुणों वाला पुरुष (विष्टारिणम्) बड़े विस्तार वाले परमात्मा को [हृदय में] (पक्त्वा) पक्का, दृढ़ करके (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा में (आ विवेश) प्रविष्ट हुआ है।

(शफकः) शान्ति की कामना करने वाला, (मुलाली) कर्म फल के रोपण, उत्पत्ति को सुधारने वाला पुरुष (आण्डीकम्) प्राप्तियोग्य (कुमुदम्) पृथिवी में आनन्द करने वाली वस्तु को, (बिसम्) बलदायक गुण को (शालूकम्) वेगशील कर्म को (सम्) यथावत् (तनोति) फैलाता है।

(एताः) ये (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियां (स्वर्गेलोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई (उप) आदर से (यन्तु) मिलें और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणीः=०—ण्यः) पोषणवती शक्तियां (त्वा) तुझमें (उपतिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥५॥

भावार्थः—पुरुषार्थी योगी जन परमात्मा की महिमा में लवलीन होकर मधुमती नाम प्रजा की प्राप्ति से संसार का पूरा उपकार करता है ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥६॥

भाषार्थः—(घृतह्रदाः) प्रकाश की ध्वनि वाली, (मधुकूलाः) मधु अर्थात् ज्ञान के रक्षा साधन वाली, (सुरोदकाः) सुरा अर्थात् ऐश्वर्य वा तत्त्व मथन का सेवन करने वाली, (क्षीरेण) भोजन साधन से, (उदकेन) सेचन वा वृद्धि साधन से और (दध्ना) धारण पोषण सामर्थ्य से (पूर्णाः) परिपूर्ण,

(एताः) वे (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियां (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधुनाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई, (उप) आदर से (यन्तु) मिलें, और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणी=०—ण्यः) पोषणवती शक्तियाँ (त्वा) तुझमें (उपतिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य योगसाधन से अपनी अनेक शक्तियाँ बढ़ाकर संसार का उपकार करके आनन्द भोगता है ॥६॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥७॥

भाषार्थः—(क्षीरेण) भोजन साधन से, (उदकेन) सेचन वा वृद्धि साधन से और (दध्ना) धारण पोषण सामर्थ्य से (पूर्णान्) परिपूर्ण (कुम्भान्) भूमि को पूर्ण करने वाले (चतुरः) चार अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को (चतुर्धा) चार प्रकार से अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आश्रम वा चारों वेद द्वारा (ददामि) दान करता हूं ।

(एताः) ये (सर्वाः) सब (धाराः) धारण शक्तियाँ (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधु नाम ज्ञान की पूर्णता से (त्वा) तुझको (पिन्वमानाः) सींचती हुई (उप) आदर से (यन्तु) मिलें, और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणीः=०—ण्यः) पोषणवती शक्तियां (त्वा) तुझमें (उप तिष्ठन्तु) उपस्थित होवें ॥७॥

भावार्थः—परमेश्वर ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम द्वारा और चारों वेद द्वारा धर्म अर्थ आदि चार पदार्थ देता है। इसलिये मनुष्य चारों आश्रम और चारों वेदों के यथावत् सेवन से चारों पदार्थ प्राप्त करके सदा आनन्दित रहें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् । स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ।।८।।

भाषार्थः—(ब्राह्मणेषु) ब्रह्मज्ञानियों के बीच (विष्टारिणम्) विस्तार वाले (लोकजितम्) सब लोक के जीतने वाले (स्वर्गम्) सुख स्वरूप (इमम्) इस (ओदनम्) सींचने वा बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को (नि) निरन्तर (दधे) धरता हूँ। (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (पिन्वमानः) बढ़ता हुआ (सः) वह ईश्वर (मे) मेरे लिये (मा क्षेष्ट) कभी न घटे। (विश्वरूपा) सब अङ्गों से सिद्ध (धेनुः) यह तृप्त करने वाली वेदवाणी (मे) मेरे लिये (कामदुघा) उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने वाली (अस्तु) होवे ।।८।।

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी महात्मा लोग परमात्मा की महिमा को साक्षात् करके सुखी होते हैं; सब मनुष्य परमकल्याणी वेदवाणी को प्राप्त कर उस जगदीश्वर के ज्ञान से सदा आनन्द भोगें ।।८।।

सूक्तम् ३५ ।।

१—७ ।। ओदनो देवता । १, २, ५–७ त्रिष्टुप् ३, ४ जगती ।।

ब्रह्मविद्योपदेशः— ब्रह्म विद्या का उपदेश ।।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।१।।

भाषार्थः (ऋतस्य) सत्य के (यम्) जिस (ओदनम्) वृद्धि करने वाले परमात्मा को (प्रथमजा) प्रख्यात पुरुषों में उत्पन्न हुए, (प्रजापतिः) प्रजापालक योगी जन ने (तपसा) अपने तप, सामर्थ्य से (ब्रह्मणे) ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (अपचत्) परिपक्व अर्थात् हृदय में दृढ़ किया है। (यः) जो परमात्मा (लोकानाम्) सब लोकों का (विधृतिः) विधाता (न) कभी नहीं (अभिरेषात्) घटता है, (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्न रूप परमात्मा के साथ (मृत्युम्) मृत्यु के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (अति=अतीत्य) लांघकर (तराणि) मैं तर जाऊं ।।१।।

भावार्थः—जिस परमात्मा को ऋषि मुनि महात्मा लोग साक्षात् करते चले आये हैं, उसी के गुणों को हम जानकर पुरुषार्थ के साथ अपने जीवन को सुधारें ।।१।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येनातरन् भूतकृतोऽतिं मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनातिं तराणि मृत्युम् ॥२॥

भाषार्थः—(येन) जिस परमात्मा के साथ (भूतकृतः) प्राणियों को [उत्तम] बनाने वाले पुरुष (मृत्युम्) मृत्यु के कारण निरुत्साह आदि को (अति=अतीत्य) लांघकर (अतरन्) तर गये हैं, और (यम्) जिसको (तपसा) ब्रह्मचर्य आदि तप और (श्रमेण) परिश्रम से (अन्वविन्दन्) उन्होंने अनुक्रम से पाया है और (यम्) जिसको (ब्रह्मणे) ब्रह्मा, [वेदज्ञानी] के लिये (ब्रह्म) वेद में (पूर्वम्) पहिले ही (पपाच) परिपक्व वा दृढ किया था। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ·····म० १ ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को पाकर महा उपकारी जनों ने तप और परिश्रम से अनेक विघ्नों को हटाकर सुख प्राप्त किया है और जिसका प्रतिपादन वेदों ने किया है, उसी के ज्ञान से सब मनुष्य अपने क्लेश टालकर आनन्द पावें ॥२॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनातिंतराणि मृत्युम् ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जिस परमेश्वर ने (विश्वभोजसम्) सबका पालन करने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण किया था, (यः) जिसने (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (रसेन) रस अर्थात् अन्न वा जल से (आ अपृणात्) भर दिया है। (यः) जिसने (महिम्ना) अपनी महिमा से (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (दिवम्) प्रकाशमान सूर्य को (अस्तभ्नात्) ठहराया है। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ·· म० १ ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ने पृथिवी आदि लोकों और सब चराचर जगत् को रचकर धारण किया है और जो सबसे ऊपर विराजमान है, उसकी महिमा को विचार कर हम अपनी उन्नति करें ॥३॥

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनातिं तराणि मृत्युम् ॥४॥

भाषार्थः—(यस्मात्) जिस [परमात्मा] से (त्रिंशदराः) तीस अरों वाले (मासाः) महीने (निर्मिताः) बने हैं, (यस्मात्) जिससे (द्वादशारः) बारह अरों [के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान महीनों] वाला (संवत्सरः) संवत्सर (निर्मितः) बना है। (यम्) जिसको (परियन्तः) घूमते हुए (अहोरात्राः) दिन रात (न) नहीं (आपुः) पकड़ सके हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ ·· म० १ ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ने दिन रात आदि कालचक्र बनाया है परन्तु वह अनादि अनन्त होने से काल के अधिकार से बाहिर है। उसी की उपासना सब मनुष्य करें ॥४॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (प्राणदः) प्राण देने वाला और (प्राणदवान्) प्राणदाताओं [सूर्य पृथिवी वायु आदि] का रखने वाला (बभूव) हुआ, और (यस्मै) जिसके लिये (घृतवन्तः) प्रकाशमान वा सारवान् (लोकाः) सब लोक (क्षरन्ति) बहते हैं। और (यस्य) जिसकी ही (सर्वाः) सब (ज्योतिष्मतीः = ०—त्यः) तेजोमय (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ ·····म० १ ॥५॥

भावार्थः—सब लोक लोकान्तर और सब पदार्थ परमेश्वर के वशवर्ती हैं। उसकी आज्ञा पालन से हम सदा सुखी रहें ॥५॥

यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६॥

भाषार्थः—(यस्मात् पक्वात्) जिस परिपक्व परमात्मा से (अमृतम्) मोक्ष (संबभूव) उत्पन्न हुआ, (यः) जो (गायत्र्याः) गायत्री [स्तुति वा वेदवाणी] का (अधिपतिः) अधिपति (बभूव) हुआ, (यस्मिन्) जिसमें (विश्वरूपाः) सबसे कीर्तन योग्य अथवा सब का निरूपण करने वाले (वेदाः) वेद (निहिताः) निधिरूप से स्थित हैं। (तेन) उस (ओदनेन) बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा के साथ (मृत्युम्) मरण के कारण [निरुत्साह आदि दोष] को (अति = अतीत्य) लांघ कर (तराणि) मैं तर जाऊं ॥६॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने कल्याणमयी वेदवाणी देकर मनुष्यों को मोक्ष का अधिकारी किया है। उसके गुण कर्म स्वभाव को पहिचान कर हम सदा पुरुषार्थ करते रहें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७॥

भाषार्थः—(द्विषन्तम्) द्वेष करने वाले (देवपीयुम्) देवताओं के हिंसक को (अव बाधे) मैं हटाता हूँ। (ये) जो (मे) मेरे (सपत्नाः) प्रतियोगी हैं, (ते) वे (अप भवन्तु) हट जावें। (विश्वजितम्) संसार के जीतने वाले (ब्रह्मौदनम्) सबसे बड़े सींचने वाले वा अन्नरूप परमात्मा को (पचामि) पक्का [हृदय में दृढ़] करता हूं। (देवाः) व्यवहारकुशल विद्वान् लोग (श्रद्दधानस्य) श्रद्धा रखने वाले (मे) मेरी [वार्ता] (शृण्वन्तु) सुनें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर में पूरी भक्ति करके पुरुषार्थपूर्वक अपने सब विघ्नों को हटा कर आनन्द भोगें ॥७॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अथ अष्टमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३६ ॥

१—१०। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः।

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१॥

भाषार्थः—(सत्यौजाः) सत्य बल वाला, (वैश्वानरः) सब नरों का हित करने वाला, (वृषा) सुख वर्षाने वाला वा ऐश्वर्यवान् (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तान्) उन सबको (प्रदहतु) भस्म कर डाले। (यः) जो (नः) हमें (दुरस्यात्) दुष्ट माने, (च) और जो (दिप्सात्) मारना चाहे, (अथो) और भी (यः) जो (नः) हमसे (अरातियात्) वैरी सा बर्ताव करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर पर विश्वास करके धर्म के विघ्नकारियों को नष्ट करें ॥१॥

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (अदिप्सतः) न सताने वाले (नः) हमको (दिप्सत्) सताना चाहे, (च) और (यः) जो (दिप्सतः) सताने वाले [हम] को (दिप्सति) सताना चाहता है, (तम्) उसको (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारक (अग्नेः) ज्ञानी पुरुष के (दंष्ट्रयोः) दोनों डाढ़ों के बीच जैसे (अपि) अवश्य (दधामि) धरता हूं ॥२॥

भावार्थः जो मनुष्य धर्मात्माओं को विना कारण सतावे, और जो दुष्ट धर्मात्माओं को उनके दण्ड देने पर भी दुष्ट आचरण करे, उन शत्रुओं को राजा परमेश्वर के दिये सामर्थ्य से ऐसे कुचल डाले जैसे डाढ़ों के बीच अन्न को ॥२॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३॥

भाषार्थः (ये) जो दुष्ट (आगरे) घर में (प्रतिक्रोशे) गूंजते हुए (अमावास्ये) अमावस के अन्धकार में (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं। (अन्यान्) दूसरों को (दिप्सतः) सताने वाले (तान् सर्वान्) उन सब (क्रव्यादः) मांसभक्षी सिंह आदिकों को (सहसा) बल से (सहे) मैं जीतता हूं ॥३॥

भावार्थः - रात्रि के अन्धकार में जो सिंह आदि हिंसक पशु वा मनुष्य सतावें, राजा उनका यथावत् प्रबन्ध करे ॥३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥

भाषार्थः—(पिशाचान्) मांसभक्षकों को (सहसा) बल से (सहे) मैं जीतता हूं, और (एषाम्) इनका (द्रविणम्) धन [सुपात्रों को] (ददे) मैं देता हूं, (दुरस्यतः) सताने वाले (सर्वान्) सबों को (हन्मि) मैं मारता हूं। (मे) मेरा (आकूतिः) शुभ संकल्प (सम् ऋध्यताम्) यथावत् सिद्ध होवे ॥४॥

भावार्थः—राजा दुष्टों का हनन करके उनका धन सेनापति आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य पुरुषों को पारितोषिक में देवे और प्रयत्नपूर्वक अपना शुभ संकल्प सिद्ध करे ॥४॥

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥

भाषार्थः—(ये) जो (देवाः) विजयी शूर (तेन) पुण्य के साथ (हासन्ते) चलना चाहते हैं, और (ये) जो (नदीषु पर्वतेषु) नदियों और पर्वतों पर (सूर्येण) सूर्य के साथ (जवम्) अपना वेग (मिमते) करते हैं (तैः) उन (पशुभिः) दृष्टि वाले देवताओं से (सम् विदे) मैं मिलता हूं ॥५॥

भावार्थः जो महात्मा लोग सूर्य के समान शीघ्रगामी होकर बड़े बड़े कठिन कामों को सिद्ध करते हैं, उनसे मिलकर सब मनुष्य उत्तम गुण प्राप्त करें ॥५॥

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् । ६॥

भाषार्थः—मैं (पिशाचानाम्) मांसाहारियों का (तपनः) संताप देने वाला (अस्मि) हूं, (इव) जैसे (व्याघ्रः) बाघ (गोमताम्) गौ वालों का होता है । (ते) वे लोग (न्यञ्चनम्) छिपने का स्थान (न) नहीं (विन्दन्ते) पाते हैं, (इव) जैसे (श्वानः) कुत्ते (सिंहम्) सिंह को (दृष्ट्वा) देखकर [घबड़ा जाते हैं]॥६॥

भावार्थः—दण्डवान् प्रतापी पुरुष के सन्मुख हिंसक जीव नहीं ठहरते हैं ॥६॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥

भाषार्थः (न) न तो (पिशाचैः) पिशाचों के साथ, (न) न (स्तेनैः) चोरों के साथ, और (न) न (वनर्गुभिः) वनचर डाकुओं के साथ (सम् शक्नोमि) रह सकता हूं । (यम्) जिस (ग्रामम्) ग्राम में (अहम्) मैं (आविशे) घुसता हूं, (पिशाचाः) पिशाच लोग (तस्मात्) उस स्थान से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं ॥७॥

भावार्थः—राजा प्रबन्ध करे कि बस्तियों में हिंसक चोर आदि लूट खसोट न करें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं ग्रामंमाविशतं इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥

भाषार्थः—(यम् ग्रामम्) जिस ग्राम में (इदम्) यह (उग्रम्) उग्र (मम) मेरा (सहः) बल (आ विशते) प्रवेश करता है। (पिशाचाः) पिशाच लोग (तस्मात्) उस स्थान से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं और (पापम्) पाप को (न) नहीं (उप जानते) जानते हैं ॥८॥

भावार्थः—प्रतापी नीतिनिपुण राजा के शासन में दुष्ट लोग उपद्रव नहीं मचाते हैं ॥८॥

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥९॥

भाषार्थः—(ये) जो (लपिताः) बकवादी लोग (मा) मुझे (क्रोधयन्ति) क्रोध करते हैं, (मशकाः इव) जैसे मच्छड़ (हस्तिनम्) हाथी को। (तान्) उन (दुर्हितान्) दुष्कर्मियों को (जने) मनुष्यों के बीच (अल्पशयून् इव) थोड़ें सोने वाले कीट पतंगों के समान (अहम्) मैं (मन्ये) मानता हूं ॥९॥

भावार्थः—बतबने दुराचारियों को दण्ड देकर राजा सदा दुर्बल रक्खे ॥९॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥

भाषार्थः—(तम्) उसको (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (अभिधत्ताम्) बांध लेवे (अश्वम् इव) जैसे घोड़े को (अश्वाभिधान्या) घोड़ा बांधने की रसरी से। (यः मल्वः) जो मलिन पुरुष (मह्यम्) मुझ पर (क्रुध्यति) क्रोध करता है, (सः) वह (पाशात्) फांसी से (उ न) कभी नहीं (मुच्यते) छुटता है ॥१०॥

भावार्थः—राजा कुकर्मी दुष्टों को यथावत् दण्ड देकर सत्पुरुषों की रक्षा करे ॥१०॥

सूक्तम् ३७ ॥

१—१२ ॥ १, २, ६, १० ओषधिः, ३, ४, ५ अप्सरसः, ८, ९, इन्द्रः, ११ गन्धर्वः, ७, १२, गन्धर्वाप्सरसो देवताः ॥ १–४, ६, ८–१५ अनुष्टुप्, ५ पथ्या पङ्क्तिः, ७ उष्णिक् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धर्वाप्सरसां गुणोपदेशः गन्धर्व और अप्सराओं के गुणों का उपदेश ॥

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥

भाषार्थः (ओषधे) हे तापनाशक परमेश्वर ! (त्ववा) तेरे सहारे से (पूर्वम्) पहिले (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव वाले अथवा मंगल के लिये व्यापक महात्माओं ने (रक्षांसि) राक्षसों को (जघ्नुः) मारा था । (त्वया) तेरे साथ ही (कश्यपः) तत्त्वदर्शी पुरुष ने, और (त्वया) तेरे साथ ही (कण्वः) मेधावी, तथा (अगस्त्यः) कुटिलगति, पाप के फेंकने में समर्थ जीव ने (जघान) मारा था ॥१॥

भावार्थः—जैसे पूर्वज ऐतिहासिक जितेन्द्रिय पुरुषों ने जगत् का उपकार किया है, वैसे ही सब मनुष्य ज्ञानपूर्वक दोषों का नाश करके परस्पर उपकार करें ॥१॥

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वाश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२॥

भाषार्थः—(अजशृङ्गि) हे जीवात्मा के दुःखनाशक शक्ति परमेश्वर ! (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम लोग (अप्सरसः) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों को और (गन्धर्वान्) विद्या वा पृथिवी धारण करने वाले गुणों को (चातयामहे) मांगते हैं । (गन्धेन) अपनी व्याप्ति से (सर्वान्) सब (रक्षः) राक्षसों को (अज) हटा दे और (नाशय) नाश कर दे ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर पर विश्वास करके पुरुषार्थ करते हैं, वे ही संसार को सुख देते हैं । [अजशृङ्गी एक ओषध भी है] ॥२॥

इन मन्त्रों के साथ अ० २ सू० २ का मिलान करो ॥

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् । गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३-
क्षगन्धिः प्रमन्दनी । तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

भाषार्थः—(अप्सरसः) आकाश, जल, प्राण, और प्रजाओं में व्यापक शक्तियां (अपाम्) जल के (तारम्) तट को (अवश्वसम्) भरती हुई (नदीम्) नदी [नदी के समान पूर्णता] को (यन्तु) प्राप्त हों ॥

[जो प्रत्येक] (गुल्गुलूः) रक्षा साधन से रक्षित, (पीला) सबको घेरने वाली,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नलदी) बन्धन काटने वाली, (औक्षगन्धिः) बड़ों के योग्य गतिवाली, और (प्रमन्दनी) आनन्द देने वाली शक्ति है।

(तत्) इसलिये (अप्सरसः) हे आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियो! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुई (अभूतन) हो चुकी हो ॥३॥

भावार्थः— परमेश्वर की अनन्त गुणवाली शक्तियां संसार में व्याप्त हैं। मनुष्य विज्ञानपूर्वक उनसे उपकार लेकर आनन्द पावें ॥३॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (अश्वत्थाः) वीरों में खड़े होने वाले, (न्यग्रोधाः) शत्रुओं को रोक देने वाले, (महावृक्षाः) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य, और (शिखण्डिनः) अत्यन्त उद्यमी पुरुष हों।

(तत्) वहां (अप्सरसः) हे आकाश आदि में व्यापक शक्तियो! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुई (अभूतन) हो चुकी हो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव जानकर महा-पुरुषार्थी होवें ॥४॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां (प्रेङ्खाः) उत्तम गतिवाली, (हरिताः) स्वीकार करने योग्य, (अर्जुनाः) उपार्जन करने वाली, (उत) और (यत्र) जहां (आघाटाः) चेष्टा करती हुई (कर्कर्यः) उत्तम कर्म ग्रहण करने वाली प्रजायें (वः) तुम्हारा (संवदन्ति) सम्वाद करती हैं।

(तत्) वहां (अप्सरसः) हे आकाशादि में व्यापक शक्तियो! (परा) पराक्रम से (इत) प्राप्त हो, तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रत्यक्ष जानी हुई (अभूतन) हो चुकी हो ॥५॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुषार्थी पुरुष परमेश्वर की महिमा साक्षात् करके आनन्दित होते हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यं राटकी तीक्ष्णशृङ्ग्री व्यृषतु ॥६॥

भाषार्थः—(ओषधीनाम्) ताप नाशक (वीरुधाम्) विविध प्रकार से उगने वाली प्रजाओं के बीच (वीर्यावती) बड़ी सामर्थ्य वाली (इयम्) यह शक्ति (आ अगन्) प्राप्त हुई है। वही (अजशृङ्गी) जीवात्मा का दुःख काटने वाली, (अराटकी) शीघ्र प्राप्त होने वाली, (तीक्ष्णशृङ्गी) बड़े तेज वाली शक्ति परमेश्वर (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥६॥

भावार्थः—परम पिता परमेश्वर की शक्ति सब पदार्थों में व्यापक है, उस के ज्ञान से हम लोग अपनी उन्नति करें ॥६॥

आ नृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७॥

भाषार्थः—(आनृत्यतः) सब ओर चेष्टा करने वाले (शिखण्डिनः) महा उद्योगी (गन्धर्वस्य) वेदवाणी और पृथिवी आदि को धारण करने वाले (अप्सरापतेः) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों के रक्षक परमेश्वर का (शेपः) सामर्थ्य (यामि) मैं माँगता हूं, [जिस से] (मुष्कौ) [काम क्रोध रूप] दो चोरों को (अपि) अवश्य (भिनद्मि) छिन्न भिन्न करूं ॥७॥

भावार्थः—सर्वव्यापक सर्वनियामक परमेश्वर के विचार से मनुष्य जितेन्द्रिय होकर काम क्रोध आदि दोषों को मिटावें ॥७॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (शतम्) सौ (हेतयः) हनन शक्तियां (अयस्मयीः) लोह की बनी हुई (ऋष्टीः) खड्गों के समान (भीमाः) भयानक हैं। (ताभिः) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (हविरदान्) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (अवकादान्) हिंसाओं के नाश करने वाले, (गन्धर्वान्) वेदवाणी और पृथिवी के धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर दुराचारियों को अनेक प्रकार से दण्ड देकर सत्पुरुषों की रक्षा करता है ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीहिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (शतम्) सौ (हेतयः) हनन शक्तियां (हिरण्ययीः) तेजोमयी (ऋष्टीः) तलवारों के समान (भीमाः) भयानक हैं। (ताभिः) उनके साथ [दुष्ट दमन के लिये] (हविरदान्) ग्राह्य अन्न के भोजन करने वाले (अवकादान्) हिंसाओं को नाश करने वाले (गन्धर्वान्) वेदवाणी और पृथिवी के धारण करने वाले पुरुषों को [वह परमेश्वर] (वि ऋषतु) व्याप्त होवे ॥९॥

भावार्थः—म० ८ के समान ॥९॥

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥

भाषार्थः—(अवकादान्) हिंसाओं के नाश करने वाले, (अभिशोचान्) सब ओर प्रकाशमान (मामकान्) मेरे पुरुषों को (अप्सु) व्याप्यमान प्रजाओं के बीच (ज्योतय) ज्योति वाला कर। (ओषधे) हे औषध समान तापनाशक परमेश्वर (सर्वान्) सब (पिशाचान्) मांसभक्षक रोग वा जीवों को (प्रमृणीहि) मार डाल (च) और (सहस्व) हरा दे ॥१०॥

भावार्थः—परमेश्वर की प्रार्थनापूर्वक धर्मात्मा पुरुष दुष्ट स्वभावों रोग और दुष्ट जीवों का नाश करें ॥१०॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः । प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः संचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥११॥

भाषार्थः—(एकः इव) एक ही परमेश्वर (श्वा) गतिशील वा वृद्धिशील है, (एकः इव) एक ही (कपिः) कंपाने वाला वा क्रोधशील, (कुमारः) कामना योग्य, (सर्वकेशकः) सर्व प्रकाशक है। (प्रियः इव) प्रिय ही परमेश्वर (गन्धर्वः) वेद-वाणी वा पृथिवी का धारण करने वाला (भूत्वा) होकर (दृशे) सबके देखने के लिये (स्त्रियः) आपस में संगति रखने वाले समूहों में (सचते) मिला रहता है। (वीर्यावता) उस सामर्थ्य वाले (ब्रह्मणा) परब्रह्म के साथ (तम्) चोट करने वाले चोर को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नाश करते हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वद्रष्टा आदि गुण विशिष्ट जानकर मनुष्य ज्ञानपूर्वक अपने दुष्कर्मों का नाश करें ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२॥

भाषार्थः—(गन्धर्वाः) हे वेदवाणी वा पृथिवी लोक को धारण करने वाले पुरुषो ! (अप्सरसः) आकाश आदि में व्यापक शक्तियां (वः) तुम्हारे लिये (इत्) ही (जायाः) सुख उत्पन्न करने वाली हैं (यूयम्) तुम [उनके] (पतयः) रक्षक [बनो] । (अप) आनन्द से (धावत) धावो और (अमर्त्याः) हे अमर [नित्य उत्साही] पुरुषो ! (मर्त्यान्) मरते हुए [निरुत्साही] मनुष्यों के हित करने वाले पुरुषों को (मा=मया) लक्ष्मी के साथ (सचध्वम्) सदा मिलो ॥१२॥

भावार्थः—परमेश्वर की अनन्त अद्भुत शक्तियां संसार में उपस्थित हैं, उत्साही पुरुष उनसे उपकार लेकर सदा परस्पर उन्नति करें ॥१२॥

सूक्तम् ३८ ॥

१—७ ॥ अप्सरा देवता ॥ १-४ अनुष्टुप्, ५, ७ जगती, ६ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१॥

भाषार्थः—(उद्भिन्दतीम्) [शत्रुओं को] उखाड़ने वाली, (सञ्जयन्तीम्) यथावत् जीतने वाली, (अप्सराम्) अद्भुत रूप वाली, (साधुदेविनीम्) उचित व्यवहार वाली, (ग्लहे=ग्रहे) [अपने] अनुग्रह में (कृतानि) कर्मों को (कृण्वानाम्) करती हुई (ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक [परमेश्वर] शक्ति को (इह) यहां पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर की अद्भुत शक्तियां सब व्यवहारों में व्याप्त हैं मनुष्य उनका खोज लगा कर सदा सुखी रहें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० २ सू० २ और पिछले सूक्त से करो ॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥२॥

भाषार्थः—(विचिन्वतीम्) [पदार्थों को] समेटने वाली, (आकिरन्तीम्) फैलाने वाली, (अप्सराम्) अद्भुत रूप वाली, (साधुदेविनीम्) उचित व्यवहार वाली, (ग्लहे) [अपने] अनुग्रह में (कृतानि) कर्मों को (गृह्णानाम्) ग्रहण करती हुई (ताम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस (अप्सराम्) आकाश आदि में व्यापक शक्ति को (इह) यहां पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर की अनन्त शक्तियों से अपने कार्य सिद्ध करके आनन्द प्राप्त करें ॥२॥

यार्यैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
स्या नः पयस्वत्येतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥३॥

भाषार्थः—(या) जो शक्ति (अर्यैः) मङ्गल अनुष्ठानों के साथ (ग्लहात्) [अपने] अनुग्रह से (कृतम्) कर्म (आददाना) स्वीकार करती हुई (परिनृत्यति) सब ओर चेष्टा करती है। (सा) वही (नः) हमारे (कृतानि) कर्मों को (मायया) बुद्धि के साथ (सीषती) नियमबद्ध चाहती हुई (प्रहाम्) उत्तम गति (आप्नोतु) प्राप्त करे [अर्थात् प्रसन्न हो] (सा) वही (नः) हमारे लिये (पयस्वती) अन्न वाली होकर (एतु) आवे। (नः) हमारे (इदम्) इस (धनम्) धन को [शत्रु लोग] (मा जैषुः) न जीतें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की शक्तियों को जानकर पुष्कल अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके बलवान् हों ॥३॥

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४॥

भाषार्थः—(याः=या) जो शक्ति (शुचम्) शुद्धि (च) और (क्रोधम्) क्रोध (बिभ्रती) धारण करती हुई 'अक्षेषु' सब व्यवहारों में (प्रमोदन्ते=०—दते) हर्ष पाती है। (आनन्दिनीम्) आनन्द दायिनी, (प्रमोदिनीम्) हर्ष कारिणी (ताम्) उस (अप्सराम्) आकाश आदि में व्यापक शक्ति को (इह) यहां पर (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥४॥

भावार्थः—न्यायस्वरूप परमात्मा की महिमा जानकर मनुष्य सब व्यवहारों में आनन्द प्राप्त करें ॥४॥

पण्डित सेवकलाल कृष्णदास की संहिता में (बिभ्रती) के स्थान पर 'बिभूति' पद है ॥

सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन्।
स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥५॥

भाषार्थः—(याः) जो [शक्तियां] (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन् अनु) व्यापक किरणों के साथ साथ (संचरन्ति) चलती रहती हैं, (वा) और (याः) जो (मरीचीः) सब प्रकाशों के (अनुसंचरन्ति) साथ साथ फिरती हैं।

(यासाम्=तासाम्) उनका (ऋषभः) दर्शक परमेश्वर (वाजिनीवान्) अन्नवती क्रिया धारण करता हुआ (दूरतः) दूर से (सद्यः) तुरन्त ही (सर्वान् लोकान्) सब लोकों को (रक्षन्) पालता हुआ (पर्येति) घेरकर आता है।

(अन्तरिक्षेण सह) सबमें दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवान्) बलवती क्रिया वाला (सः) वह परमेश्वर (नः) हमारे (इयम्) इस (होमम्) आत्मदान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (ऐतु) आवे ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी शक्ति से सब दूर और निकट के पदार्थों में व्यापक होकर रक्षा करता है। मनुष्य उसमें पूर्ण श्रद्धा करके पुरुषार्थपूर्वक अपनी उन्नति करें ॥५॥

पं० सेवकलाल कृष्णदास की संहिता में 'पर्येति' के स्थान पर 'पर्येति' और पद पाठ में 'परि-एति' पद है॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङ्इयं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षेण सह) सब में दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर! (इह) यहां पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम्) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर। (इमे) यह सब (ते) तेरे (स्तोकाः) अनुग्रह (बहुलाः) बहुत पदार्थ देने वाले हैं। (अर्वाङ्) सन्मुख (एहि) तू आ। (इयम्) यह (ते) तेरी (कर्की) रचना शक्ति है। (इहि) इसमें (ते) तेरा (मनः) मनन (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपनी व्यापकता और कृपा से सब संसार हमारे लिये रचा है। हम उसका मनन करके सदा सुखी रहें ॥६॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्। अयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बंध्नीमः । यथानाम वः ईश्महे स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षेण सह) सबमें दृश्यमान सामर्थ्य के साथ (वाजिनीवन्) हे अन्नवती वा बलवती क्रिया वाले, (वाजिन्) हे बलवान् परमेश्वर (इह) यहां पर (कर्कीम्) अपनी बनाने वाली और (वत्साम्) निवास देने वाली शक्ति की (रक्ष) रक्षा कर। (अयम्) यह (घासः) भोजन है, (अयम्) यह (व्रजः) आने जाने का स्थान है, (इह) यहाँ पर [हृदय में] (वत्साम्) तेरी निवास देने वाली शक्ति को (नि) निरन्तर (बध्नीमः) हम बांधते हैं।

(वः) तुम्हारा (यथानाम) जैसा नाम है, [वैसे ही] (ईश्महे) हम ऐश्वर्यवान् होवें। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥७॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से अन्न, शरीर, घर आदि पदार्थ हमें दिये हैं, हम उनका यथावत् उपयोग करके सदा ऐश्वर्यवान् होवें ॥७॥

सूक्तम् ३९ ॥

१—१० ॥ १, २, ९, १० अग्निः, ३, ४ वायुः, ५,६ आदित्यः, ७, ८ चन्द्रो देवता ॥ १, ३, ५, ७ त्रिपदजगती, २, ४, ६, ८ संस्तारपङ्क्तिः, ९, १० त्रिष्टुप्छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश।

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आंध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नयें समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिये वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अग्नये) अग्नि के लिये वे (सम् अनमन्) यथावत् नमे हैं। (एव) वैसे ही (मह्यम्) मेरे लिये (संनमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥१॥

भावार्थः—जैसे पूर्व ऋषियों ने शिल्प आदि में भौतिक अग्नि के प्रयोग से यज्ञ सिद्ध करके अनेक सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं, वैसे ही हम भी प्राप्त करें ॥१॥

पृथिवी धेनुस्तस्यां अग्निर्वत्सः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(पृथिवी) पृथिवी (धेनुः) दुधैल गौ के समान है, (तस्याः) उस [धेनु] के (वत्सः) बच्चा सदृश (अग्निः) है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चे रूप (अग्निना) अग्नि के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार बछड़े द्वारा गौ से दूध लेते हैं, इसी प्रकार अग्नि विद्या द्वारा पृथिवी के पदार्थों से अनेक कला-कौशल सिद्ध करके मनुष्य समृद्ध होवें ॥२॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आध्नोत् ।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (वायवे) वायु को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (वायवे) वायु-को (सम् अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज ऋषियों के समान सबमें वर्तमान वायु से उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥३॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः ।
सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (धेनुः) दुधैल गौ के समान है। (तस्याः) उस [धेनु] का (वत्सः) बच्चा रूप (वायुः) वायु है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चारूप (वायुना) वायु के साथ (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो

भावार्थः—वायु से अनेक प्रकार उपकार लेकर मनुष्य सुखी हों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्यायं समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥

भाषार्थः—(दिवि) आकाश में वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं, (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (दिवि) आकाश में वर्तमान (आदित्याय) सूर्य को (सम्-अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझ को (सन्नमः) सब सम्पत्तियाँ (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥५॥

भावार्थः—पहिले ऋषि महात्माओं के समान सूर्य के प्रकाश आदि से उपकार लेकर आनन्द प्राप्त करें ॥५॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः ।
सा मे आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः (द्यौः) सूर्यलोक (धेनुः) दुधैल गौ के समान है, (तस्याः) उस [धेनु] का (वत्सः) बच्चा रूप (आदित्यः) सूर्य है। (सा) वह [धेनु] (मे) मुझे (वत्सेन) बच्चा रूप (आदित्येन) सूर्य के साथ (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ, (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण, और (रयिम्) धन (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्यलोक और सूर्य का पृथिवी से संबन्ध जानकर लाभ उठाकर सुखी होवें ॥६॥

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आध्नोत् ।
दिक्षु चन्द्रायं समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७॥

भाषार्थः—(दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्राय) चन्द्रमा को वे [ऋषि लोग] (सम्) यथाविधि (अनमन्) नमे हैं। (सः) उसने [उन्हें] (आध्नोत्) बढ़ाया है। (यथा) जैसे (दिक्षु) सब दिशाओं में (चन्द्राय) चन्द्रमा को (सम्-अनमन्) वे यथावत् नमे हैं, (एव) वैसे ही (मह्यम्) मुझको (सन्नमः) सब सम्पत्तियां (सम्) यथावत् (नमन्तु) नमें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य चन्द्रमा के पुष्टिकारक गुणों से उपकार लेकर तृप्त हों ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशो धेनवस्तासाँ चन्द्रो वत्सः ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः—(दिशः) सब दिशाएं (धेनवः) दुधैल गौओं के समान हैं। (तासाम्) उन [गौ रूपों] का (वत्सः) बच्चा रूप (चन्द्रः) चन्द्रमा है। (ताः) वे [गौ रूप] (मे) मुझे (वत्सेन, बच्चा रूप (चन्द्रेण) चन्द्रमा के साथ (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम, (कामम्) उत्तम मनोरथ (प्रथमम् आयुः) प्रधान जीवन, (प्रजाम्) प्रजा, (पोषम्) पोषण और (रयिम्) धन (दुहाम्=दुहताम्) परिपूर्ण करें। (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य चन्द्रमा के गुणों का पृथिवी के साथ सम्बन्ध जान कर अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करके आनन्द भोगें ॥८॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥९॥

भाषार्थः—(ऋषीणाम्) धर्म के साक्षात् करने वाले मुनियों वा विषय देखने वाली इन्द्रियों का (पुत्रः) शुद्ध करने वाला, (अभिशस्तिपाः) हिंसा के भय से बचाने वाला (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (उ) निश्चय करके (अग्नौ) सूर्य, अग्नि आदि तेज में (प्रविष्टः) प्रवेश किये हुए (चरति) चलता है। (ते) [उस] तुझको (नमस्कारेण) नमस्कार और (नमसा) आदर के साथ (जुहोमि) मैं आत्मदान करता हूं। (देवानाम्) महात्माओं के (भागम्) ऐश्वर्य वा सेवनीय कर्म को (मिथुया=मिथुना) दुष्टता से (मा कर्म) हम नष्ट न करें ॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्य परब्रह्म जगदीश्वर को पूर्ण भक्ति से सर्वत्र व्यापक जानकर महात्माओं के समान शुभ कर्म करके सदा ऐश्वर्यवान् होवें ॥९॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१०॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान्! (देव) हे प्रकाशवान् परमेश्वर! तू (विश्वानि) सब (वयुनानि) ज्ञानों को (विद्वान्) जानने वाला है। (जातवेदः) हे बड़े धन वाले! [मेरी] (सप्त) सात (आस्यानि) [मस्तक की] गोलकें (तव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरी [तेरे तत्पर हों]। (तेभ्यः) उनके हित के लिये (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (पूतम्) शोधे हुए कर्म को (जुहोमि) समर्पण करता हूं। (सः) सो तू [मेरे] (हव्यम्) आवाहन को (जुषस्व) स्वीकार कर ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी सब इन्द्रियों को उस सर्वशक्तिमान् की आज्ञा में लगा कर सदा आनन्द भोगें। मस्तक की सात इन्द्रियों के जीतने में ही सब प्राणी आनन्द पाते हैं जैसा "कः सप्तखानि वि ततर्द शीर्षणि···" अ० १०। २। ६ में वर्णन है। "सप्त आस्यानि" पद की व्याख्या में "सप्त ऋषय" पद अ० ४। ११। ६ देखो ॥१०॥

इस मन्त्र का दूसरा पाद 'विश्वानि देव···विद्वान्' य० ४०। १६ में है॥

सूक्तम् ४० ॥

१—८ ॥ जातवेदा देवता ॥ १-७ त्रिष्टुप्, ८ ये दिशामित्यस्य जगती छन्दः। ब्रह्मेत्यस्य त्रिष्टुप् छन्दः।

शत्रुनाशनायोपदेशः शत्रु के नाश करने का उपदेश ॥

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (पुरस्तात्) सन्मुख होकर (प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुख (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (अग्निम्) [तुझ] सर्वव्यापक को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्चः) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा में पड़ें। (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में भक्ति करके पुरुषार्थपूर्वक अपने आत्मिक और शारीरिक शत्रुओं का नाश करें। ऐसा ही भाव अन्य मन्त्रों का समझें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अथर्व ३। २६ तथा २७ से करो॥

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा तु पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (दक्षिणतः) दाहिनी ओर में (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (यमम्) [तुभ्] धर्मराज न्यायकारी को (ऋत्वा) पाकर·····म० १ ॥२॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्यां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगैनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (पश्चात्) पीछे की ओर में (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे वरुणम् [तुभ्] सर्वश्रेष्ठ को (ऋत्वा) पाकर म०···१ ॥३॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगैनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (उत्तरतः) बायीं ओर में (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (सोमम्) [तुभ्] ऐश्वर्य वाले को (ऋत्वा) पाकर···म० १ ॥४॥

ये ३ऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगैनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अधस्तात्) नीचे की ओर में (ध्रुवायाः) स्थिर (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (भूमिम्) [तुभ्] सर्वाधार को (ऋत्वा) पाकर·····म० १ ॥५॥

ये ३ऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगैनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! (ये) जो लोग (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष वा आकाश से (व्यध्वायाः) विविध मार्ग वाली (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (वायुम्) [तुभ्] बलवानों में महाबलवान् को (ऋत्वा) पाकर·····म० १ ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (उपरिष्टात्) ऊंचे स्थान में (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से (अस्मान्) हमको (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति, चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (सूर्यम्) [तुझ] सर्वव्यापक वा सर्वप्रेरक को (ऋत्वा) पाकर·· म० १ ॥७॥

ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान्। ब्रह्मत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥८॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे ज्ञानवान् परमेश्वर! (ये) जो लोग (दिशाम्) दिशाओं के (अन्तर्देशेभ्यः) मध्य देशों से (सर्वाभ्यः) सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से (अस्मान्) हम को (जुह्वति) खाते और (अभिदासन्ति) चढ़ाई करते हैं। (ते) वे (ब्रह्म) [तुझ] ब्रह्म को (ऋत्वा) पाकर (पराञ्चः) पीठ देते हुए (व्यथन्ताम्) व्यथा में पड़ें। (एनान्) इनको (प्रतिसरेण) [तुझ] अग्रगामी के साथ (प्रत्यक्) उलटा (हन्मि) मैं मारता हूं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य उस स्वनियन्ता परब्रह्म का आश्रय लेकर विचारपूर्वक अपने सब विघ्नों का नाश करके आनन्द भोगें ॥८॥

इति अष्टमोऽनुवाकः ॥

चतुर्थं काण्डं समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०:०:०:०:—

पञ्चमं काण्डम् ॥

—: :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—:०:०:०:—

सूक्तम् १॥

मन्त्राः १—९ ॥ त्रित इन्द्रो वा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आवभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो (ऋधङ्मन्त्रः) सत्य मन्त्र वा मनन वाला, (अमृतासुः) अमर प्राण वाला, (वर्धमानः) बढ़ता हुआ, (सुजन्मा) अद्भुत जन्म वाला (योनिम्) प्रत्येक घर वा कारण में (आवभूव) व्यापक हुआ है । उस (अदब्धासुः) अचूक बुद्धि वाले, (अहा इव=अहानि इव) दिनों के समान (भ्राजमानः) प्रकाशमान, (धर्ता) सब के धारण करने वाले, (त्रितः) पालन करने वाले वा सब से बड़े वा तीनों कालों वा लोकों में फैले हुए त्रित परमात्मा ने (त्रीणि) तीनों [धामों, अर्थात् स्थान, नाम और जन्म वा जाति] को (दाधार) धारण किया था ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सब मनुष्य परमात्मा की अनन्त शक्तियों का विचार करके अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥१॥

इस काण्ड पर सायण भाष्य नहीं है ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जिस (प्रथमः) प्रख्यात परमेश्वर ने (धर्माणि) धारण योग्य धर्मों वा व्यवस्थाओं को (आ) यथावत् (ससाद) प्राप्त किया, (ततः) उसी [धर्म] से वह [संसार के] (पुरूणि) अनेक (वपूंषि) रूपों को (कृणुषे=कृणुते) बनाता है। (प्रथमः) उस पहिले (धास्युः) धारण की इच्छा करने वाले परमेश्वर ने (योनिम्) प्रत्येक कारण में (आ) यथावत् (विवेशा) प्रवेश किया, (यः) जिसने (अनुदिताम्) विना कही हुई (वाचम्) वाणी को (आ) ठीक ठीक (चिकेत) जाना था ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ने नियम स्थापन करके सृष्टि रची है, और वह सब का अन्तर्यामी हो कर सब के हृदयों को जानता है ॥२॥

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (यः) जिस पुरुष ने (ते) तेरा (शोकाय) प्रकाश पाने के लिये (तन्वम्) अपना शरीर (रिरेच) जोड़ दिया है, [क्योंकि] (शुचयः) शुद्धस्वभाव (स्वाः) बन्धु लोग (क्षरत्) चलते हुए (हिरण्यम्) कमनीय ज्योतिःस्वरूप परमात्मा के (अनु) पीछे पीछे वर्तमान रहते हैं। (अत्र) इस पुरुष में ही (अमृतानि) अमर (नाम=नामानि) नामों को (दधेते) वे दोनों [सूर्य पृथिवी लोक] धरते हैं। (विशः) सब प्रजाएं (अस्मे) हमारे लिये (वस्त्राणि) ओढ़ने वा निवासस्थान आदि (आ ईरयन्ताम्) लावें ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष प्रकाशमय परमात्मा के स्वरूप जानने में अपना सामर्थ्य लगाते हैं वे संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर यश पाते और सुख भोगते हैं। ३॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्ये धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से कि (एते) इन [शुद्धस्वभाव बन्धुओं] ने (अजुर्यम्) जरा रहित (सदःसदः) पाने योग्य पदार्थों में पाने योग्य मोक्ष पद पर (आतिष्ठन्तः) चढ़ कर (प्रतरम्) अति उत्तम (पूर्व्यम्) सबके हितकारक परमात्मा को (प्र गुः) प्राप्त किया है। (कविः=कवेः) बुद्धिमान् (शुषस्य) बलवान् पुरुष के (मातरा=०-रौ) माताओ, (धुर्यम्) धुरन्धर (पतिम्) जगत्पति परमात्मा की (रिहाणे) स्तुति करती हुई तुम दोनों [सूर्य और पृथिवी लोक] (जाम्यै) भगिनी के समान हितकारक प्रजा के लिये (आ ईरयेथाम्) प्राप्त कराओ ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार से पूर्वज महाशय अक्षय मोक्ष पद पाकर परमात्मा को प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार हम भी सूर्य पृथिवी आदि सब लोकों का ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा से मिलें ॥४॥

तदूषु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभि यन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥५॥

भाषार्थः—(तत्) उस कारण से (पृथुज्मन्) हे विस्तृत गतिवाले परमात्मन् ! (ते) तेरे लिये (उ) ही (कविः) मैं बुद्धिमान् पुरुष (काव्येन) बुद्धिमत्ता के साथ (सु) सुन्दर रीति से (महत्) बहुत बहुत (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूं (यत्) जिससे (सम्यञ्चौ) आपस में मिले हुए (अभियन्तौ) सब ओर गति वाले [दोनों लोक अर्थात्] (मही) विशाल (रोधचक्रे) [प्राणियों को] रोकने के कर्म वाले [सूर्य पृथिवी अर्थात् ऊंचे नीचे लोक] (क्षाम अभि) हमारे निवास, उद्योग, वा ऐश्वर्य के लिये (अत्र) यहां पर (वावृधेते) बढ़ते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य विज्ञानपूर्वक परमपिता जगदीश्वर का धन्यवाद करें उसने हमारे ऐश्वर्य के लिये संसार में अनेक पदार्थ रचे हैं ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्येंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

भाषार्थः—(कवयः) ऋषि लोगों ने (सप्त) सात (मर्यादाः) मर्यादायें [कुमर्यादायें] (ततक्षुः) ठहरायी हैं, (तासाम्) उनमें से (एकाम्) एक पर (इत्) भी (अभि गात्) चलता हुआ पुरुष (अंहुरः) पापवान् [होता है] [क्योंकि] (आयोः) मार्ग [सुमार्ग] का (स्कम्भः) थांभने वाला पुरुष (ह) ही (पथाम्) उन मार्गों (कुमार्गों) के (विसर्गे) त्याग पर (उपमस्य) समीपवर्ती वा सब के निर्माता परमेश्वर के (नीडे) धाम के भीतर (धरुणेषु) धारण सामर्थ्यों में (तस्थौ) स्थित हुआ है ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य निषिद्ध कर्मों से पापी होकर दुःख, और विहित कर्मों के करने से सुकर्मी होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख पाते हैं ॥६॥

इस मन्त्र के पूर्वार्ध की व्याख्या भगवान् यास्क ने—निरु० ६ । २७ में इस प्रकार की है—[सप्तैव] सात ही [मर्यादाः] मर्यादायें [कवयः] ऋषियों ने [चक्रुः] बनायी हैं, [तासाम्] उनमें से [एकामपि] एकपर भी [अभि गच्छन्] चलता हुआ [अंहस्वान् भवति] पापी होता है। [स्तेयम्] चोरी (तल्पारोहणम्) व्यभिचार, [ब्रह्महत्याम्] ब्रह्महत्या, [भ्रूणहत्याम्] गर्भहत्या [सुरापानम्] सुरापान, [दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम्] दुष्ट कर्म का वार वार सेवन, और [पातकेऽनृतोद्यम्] पातक लगाने में झूंठ बोलना [इति] यह सात मर्यादा बताई हैं ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० सू० ५ । म० ६ ॥

उतामृतांसुर्व्रतं एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वं १ स्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥७॥

भाषार्थः—(अमृतासुः) अमर बुद्धि वा प्राण वाला, (व्रतः) उत्तम कर्म वाला मैं (कृण्वन्) कर्म करता हुआ (उत) ही (एमि) चलता हूं, (तत्) तब (असुः) मेरी बुद्धि (आत्मा) आत्मा और (तन्वः=तनूः) देह (सुमद्गुः) उत्तम मननशील वा तृप्ति कारक विद्यायुक्त [होता है] (उत) और (वा) अवश्य (शक्रः) शक्तिमान् परमेश्वर (रत्नम्) रत्न (दधाति) देता है, (यत्) जब (हविर्दाः) भक्ति का देने वाला पुरुष (ऊर्जया) बल के साथ (वा) निश्चय करके [उसको] (सचते) सेवता है ॥७॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य सब प्रकार सावधान होकर परमेश्वर की भक्ति से संसार में अनेक सुख प्राप्त करते हैं ॥७॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥८॥

भाषार्थः—(पुत्रः) मैं पुत्र (पितरम्) पालनकर्ता पिता परमेश्वर से (उत) ही (क्षत्रम्) धन (ईडे) मांगता हूं। (ज्येष्ठम्) अत्यन्त वृद्ध (मर्यादम्) मर्यादा वाले परमात्मा को (स्वस्तये) आनन्द के लिये (अह्वयन्) [ऋषियों ने] आवाहन किया है। (वरुण) हे वरणीय परमेश्वर ! (याः) जो (ते) तेरी (विष्ठाः) व्यवस्थायें हैं (ताः) उन्हें (नु) शीघ्र (दर्शन्) वे लोग देखें, (आवर्व्रततः) यथावत् अनेक प्रकार घूमनेवाले [संसार] के (वपूंषि) रूपों को (कृणवः) तू प्रकट कर ॥८॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य पिता से मर्यादापूर्वक पैतृक धन प्राप्त करके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न होते हैं वैसे ही सब लोग परमात्मा के रचे पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द पावें ॥८॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर । अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् । कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९॥

भाषार्थः—(शुष्म) हे बलवान् ! (असुर) हे किसी से न घेरे गये परमेश्वर ! (अर्धम्) बढ़े हुए संसार को (अर्धेन) बढ़े हुए (पयसा) अपने व्यापकपन से (पृणक्षि) तू संयुक्त करता है और उस (अर्धेन) बढ़े हुए [व्यापकपन] से (वर्धसे) तू बढ़ता है। (अविम्) रक्षक, (शग्मियम्) सुखवान्, (सखायम्) सब के मित्र, (वरुणम्) सब में श्रेष्ठ, (पुत्रम्) सब के शुद्ध करने हारे, और (अदित्याः) अखण्ड प्रकृति के (इषिरम्) चलाने वा देखने वाले परमेश्वर को (वृधाम) हम बड़ा मानें। (कविशस्तानि) बुद्धिमानों से बड़े माने गये (वपूंषि) रूपों को (अस्मै) इस [परमेश्वर] के लिये (अवोचाम) हम ने कथन किया है, (रोदसी) सूर्य और पृथिवी दोनों (सत्यवाचा) सत्य बोलने वाले हैं ॥९॥

भावार्थः—परमेश्वर सब संसार में सर्वथा भरपूर है, वही महाबली प्रत्येक परमाणु में संयोग वियोग शक्ति देकर संसार को रचता है। उसकी महिमा सब बुद्धिमान् लोग गाते हैं जो सूर्य और पृथिवी अर्थात् ऊंचे नीचे और प्रकाशमान अप्रकाशमान लोकों से प्रकट है ॥९॥

सूक्तम् २ ॥

१—९ ॥ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः—परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

**तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥१॥**

भाषार्थः—(तत्) विस्तीर्ण ब्रह्म (इत्) ही (भुवनेषु) लोकों के भीतर (ज्येष्ठम्) सब में उत्तम और सब में बड़ा (आस) प्रकाशमान हुआ (यतः) जिस ब्रह्म से (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) तेजोमय बल वा धन वाला पुरुष (जज्ञे) प्रकट हुआ। (सद्यः) शीघ्र (जज्ञानः) प्रकट होकर (शत्रून्) गिराने वाले विघ्नों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निरिणाति) नाश कर देता है। (यत्) जिससे (एनम् अनु) इस [परमात्मा] के पीछे पीछे (विश्वे) सब (ऊमाः) परस्पर रक्षक लोग (मदन्ति) हर्षित होते हैं ॥१॥

भावार्थः—आदि कारण परमात्मा की उपासना से मनुष्य वीर होकर शत्रुओं को मारता है जिसके कारण सब लोग प्रसन्न होते हैं। उस जगदीश्वर की उपासना सब लोग किया करें ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० सू० १२०। वहां बृहद्दिव आथर्वण ऋषि हैं। यह मन्त्र कुछ भेद से यजु०—अ० ३३ म० ८० में है ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

भाषार्थः—(शवसा) बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ, (भूर्योजाः) महाबली, (शत्रुः) हमारा शत्रु (दासाय) दानपात्र दास को (भियसम्) भय (दधाति) देता है। (अव्यनत्) गतिशून्य, स्थावर (च) और (व्यनत्) गतिवाला जङ्गम जगत् (च) निश्चय करके [परमात्मा में] (सस्नि) लपेटा हुआ है, (प्रभृता) अच्छे प्रकार पुष्ट किये हुए प्राणी (मदेषु) आनन्दों में (ते) तेरी (सम् नवन्त=० न्ते) यथावत् स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—सर्व शक्तिमान् परमेश्वर समस्त जगत् में व्यापक होकर सब को धारण करता है। उसी की महिमा को जानकर सब मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक अपने विघ्नों का नाश करके प्रसन्न होवें ॥२॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदे ते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः
स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] (त्वे अपि) तुझ में ही (क्रतुम्) अपनी बुद्धि को (भूरि) बहुत प्रकार से [सब प्राणी] (पृञ्चन्ति) जोड़ते हैं। (एते) यह सब (ऊमाः) रक्षक प्राणी (द्विः) दो वार [स्त्री पुरुष रूप से] (त्रिः) तीन वार (स्थान, नाम और जन्म रूप से) (भवन्ति) रहते हैं। (यत्) क्योंकि (स्वादोः) स्वादु से (स्वादीयः) अधिक स्वादु मोक्ष सुख को (स्वादुना) स्वादु [सांसारिक सुख] के साथ (सम् सृज) संयुक्त कर (अदः) उस (मधु) मधुर मोक्ष सुख को (मधुना) मधुर [सांसारिक] ज्ञान के साथ (सु) भले प्रकार (अभि) सब ओर से (योधीः) तूने पहुंचाया है ॥३॥

भावार्थः—लिङ्ग रहित आत्मा कभी स्त्री कभी पुरुष होकर अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मानुसार मनुष्य आदि शरीर, नाम और जाति भोगता है। सब प्राणी परमेश्वर की महिमा जानकर सांसारिक व्यवहार द्वारा मोक्ष सुख प्राप्त करें जैसे कि पूर्वज ऋषियों ने वेद द्वारा प्राप्त किया है ॥३॥

यदि॑ चि॒नु त्वा॒ धना॒ जय॑न्तं॒ रणे॑रणे॒ अनु॒मद॑न्ति॒ विप्राः॑। ओजी॑यः शुष्मिन्ति॒स्थरमा त॑नुष्व॒ मा त्वा॑ दभन् दुरेवा॑सः क॒शोका॑ः ॥४॥

भाषार्थः—(यदि) जो (चित्) निश्चय करके (विप्राः) पंडित जन (रणेरणे) प्रत्येक रण में (नु) शीघ्र (धना) धनों को (जयन्तम्) जीतने वाले (त्वा) तेरे (अनु मदन्ति) पीछे पीछे आनन्द पाते हैं। (शुष्मिन्) हे बलवन् परमात्मन्! (ओजीयः) अधिक बलवान् (स्थिरम्) स्थिर मोक्ष सुख (आ) सब ओर से (तनुष्व) फैला। (दुरेवासः=दुरेवाः) दुष्ट गतिवाले (कशोकाः) परसुख में शोक करने वाले जन (त्वा) तुझ को (मा दभन्) न सतावें ॥४॥

भावार्थः—बुद्धिमान् मनुष्य विघ्नों को हटाकर कठिन-कठिन कार्य सिद्ध करके स्थिर सुख पाते हैं ॥४॥

त्वया॑ व॒यं शा॑शद्महे॒ रणे॑षु प्रपश्य॒न्तो युधे॒न्या॑नि॒ भूरि॑। चो॒दया॑मि त॒ आयु॑धा॒ वचो॑भिः सं ते॑ शिशामि ब्रह्म॑णा॒ वया॑ꣳसि ॥५॥

भाषार्थः—(भूरि) बहुत से (युधेन्यानि) युद्धों के (प्रपश्यन्तः) देखते हुए (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरे साथ (रणेषु) रणक्षेत्रों में [शत्रुओं को] (शाशद्महे) मार गिराते हैं। (ते) तेरे (वचोभिः) वचनों से (आयुधा) अपने शस्त्रों को (चोदयामि) मैं आगे बढ़ाता हूं और (ते) तेरे (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से (वयांसि) अपने जीवनों को (सम्) यथावत् (शिशामि) तीक्ष्ण करता हूँ ॥५॥

भावार्थः—शूरवीर मनुष्य परमेश्वर में विश्वास करके पुरुषार्थ पूर्वक बड़े बड़े कार्य सिद्ध करते हैं ॥५॥

नि तद् द॑धिषेऽव॒रे परे॑ च यस्मि॒न्नावि॑थाव॒सा दु॒रोणे॑। आ स्था॑पयत मा॒तर॑ं जिगत्नु॒मत॑ इन्वत क॒र्वरा॑णि॒ भूरि॑ ॥६॥

भाषार्थः -[हे परमात्मन्] (अवरे) छोटे (च) और (परे) बड़े मनुष्य में (तत्) उस [घर] को (नि) निश्चय करके (दधिषे) तू ने पोषण किया है। (यस्मिन्) जिस (दुरोणे) कष्ट से भरने योग्य घर में (अवसा) अन्न से (आविथ) तूने रक्षा की है। [हे मनुष्यो!] (जिगत्नुम्) सर्वव्यापक (मातरम्) माता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परमेश्वर] को (आ) भली भांति (स्थापयत) [हृदय में] ठहराओ और (अतः) इसी से (भूरि) बहुत से (कर्वराणि) कर्मों को (इन्वत) सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासनापूर्वक अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके अपने सब काम सिद्ध करें ॥६॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्ष्मानं सभृभ्वाणमिनतमप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७॥

भाषार्थः—(वर्ष्मन्) हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (पुरुवर्ष्मानम्) बहुत मार्ग वाले (ऋभ्वाणम्) दूर दूर तक चमकने वाले, (इनतमम्) महा प्रभु और (आप्त्यानाम्) आप्त [यथार्थवक्ता] पुरुषों में रहने वाले गुणों के (आप्तम्) यथार्थवक्ता परमेश्वर की (सम्) यथावत् (स्तुष्व) स्तुतिकर। (भूर्योजाः) वह महाबली (शवसा) अपने बल से (आ) सब ओर (दर्शति) देखता है, और वह (पृथिव्याः) पृथिवी का (प्रतिमानम्) प्रतिमान होकर (प्र) भली भांति (सक्षति) व्यापता है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव विचार कर अपनी उन्नति करें ॥७॥

(पृथिव्याः प्रतिमानम्) इसके साथ मिलान करो [पृथिवीव वरिम्णा] य० ३। ५। वह पृथिवी के समान अपने फैलाव से है ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमंग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥८॥

भाषार्थः—(बृहद्दिवः) बड़े व्यवहार वा गतिवाला, (अग्रियः) अगुआ और (स्वर्षाः) स्वर्ग का सेवन करने वाला पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (इमा) इन (ब्रह्म=ब्रह्माणि) बड़े स्तोत्रों को (शूषम्) अपना बल (कृणवत्) बनावे। (स्वराजा) वह स्वतन्त्र राजा परमेश्वर (महः) बड़े (गोत्रस्य) भूपति राजा का (क्षयति) राजा है, और वह (तुरः) शीघ्र स्वभाव, (तपस्वान्) सामर्थ्यवाला परमात्मा (चित्) ही (विश्वम्) सब जगत् में (अर्णवत्) व्यापता है ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य जगदीश्वर परम पिता के गुण जान कर अपना बल बढ़ावें ॥८॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्ववोचत् स्वां तन्वं१ इन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(महान्) महान्, (बृहद्दिवः) बड़े व्यवहार वाले, (अथर्वा) निश्चल स्वभाव पुरुष ने (स्वाम्) अपनी (तन्वम्) विस्तृत स्तुति (इन्द्रम्) परमेश्वर के लिये (एव) ही (एव) इस प्रकार से (अवोचत्) कही है। (मातरिश्वरि) आकाश में वर्तमान (स्वसारौ) अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले वा गति वाले [वा दो बहिनों के समान सहायकारी] दिन और रात (च) और (अरिप्रे) निर्दोष (एने) यह दोनों [सूर्य और पृथिवी] (शवसा) अपने सामर्थ्य से [उसी को] (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती (च) और (वर्धयन्ति) सराहती हैं ॥९॥

भावार्थः—हम से पहिले ऋषियों ने भी उसी परमात्मा की स्तुति की है, और दिन रात आदि काल और सूर्य पृथिवी आदि सब लोक उसी के आज्ञाकारी हैं ॥९॥

सूक्तम् ३॥

१–११ ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ १–९, ११ त्रिष्टुप्, १० जगती ॥

रक्षोपायोपदेशः—रक्षा के उपाय का उपदेश ॥

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
महां नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (विहवेषु) संग्रामों में (मम) मेरा (वर्चः) प्रकाश (अस्तु) होवे। (वयम्) हम लोग (त्वा) तुझको (इन्धानाः) प्रकाशित करते हुए (तन्वम्) अपना शरीर (पुषेम) पोषें। (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (मह्यम्) मेरे लिये (नमन्ताम्) नमें, (त्वया) तुझ (अध्यक्षेण) अध्यक्ष के साथ (पृतनाः) संग्रामों को (जयेम) हम जीतें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में विश्वास करके अपने सब बाहरी और भीतरी शत्रुओं को जीत कर आनन्द भोगें ॥१॥

इस सूक्त के मन्त्र १—५,६ का पूर्वार्ध, ७ का उत्तरार्ध, ८—१० कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—म० १० सू० १२८ ॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवतो दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (परेषाम्) शत्रुओं के (मन्युम्) क्रोध को (प्रतिनुदन्) हटाता हुआ, (गोपाः) रक्षक, (त्वम्) तू (नः) हम लोगों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वतः) सब प्रकार से (परिपाहि) बचाले (अपाञ्जः) दूर हटे हुए (दुरस्यवः) अनिष्ट चिंतक लोग (निवता) नीचे की ओर से (यन्तु) चले जावें और (अमा) अपने घर में (प्रबुधाम्) जागने वाले (एषाम्) इन लोगों का (चित्तम्) चित्त (विनेशत्) नष्ट हो जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करें कि शत्रु लोग भाग जावें और अपने घर पर भी दुष्टता का विचार न करें ॥२॥

मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्व॒ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः ।
मम॒ान्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वातः॑ पवतां॒ काम॑या॒स्मै ॥३॥

भाषार्थः—(सर्वे) सब (देवाः) चाहने योग्य गुण (विहवे) संग्राम में (मम) मेरे (सन्तु) हों, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्य युक्त (मरुतः) शूर देवता गण और (विष्णुः) व्यापक सूर्य और (अग्निः) अग्नि [भी मेरे हों] । (उरुलोकम्) विस्तीर्ण लोकों वाला (अन्तरिक्षम्) आकाश (मम) मेरा (अस्तु) होवे, (अस्मै कामाय) इस कामना के लिये (वातः) पवन (मह्यम्) मेरे हित (पवताम्) शुद्ध चले ॥३॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य सब उपकारी लोगों, सूर्य, अग्नि और वायु आदि पदार्थों से उपकार लेकर अपनी उन्नति करता हुआ संसार भर में बढ़ता चले ॥३॥

मह्यं॑ यजन्तां मम॒ यानी॒ष्टाकू॑तिः स॒त्या मन॑सो मे अस्तु ।
एनो॒ मा नि गां॑ कत॒मच्च॒नाहं॑ वि॒श्वे दे॒वा अ॒भि र॑क्षन्तु मे॒ह ॥४॥

भाषार्थः—(मम) मेरा (यानि) पाने योग्य (इष्टा=इष्टानि) इष्ट कर्म (मह्यम्) मुझ को (यजन्ताम्) मिलें, (मे) मेरे (मनसः) मन का (आकूतिः) संकल्प (सत्या) सत्य (अस्तु) होवे । (अहम्) मैं (कतमत्चन) किसी भी (एनः) पाप कर्म को (मा नि गाम्) कभी न प्राप्त होऊं, (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण (मा) मेरी (इह) इस विषय में (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्षा करें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण से विचारपूर्वक शुभ कर्मों की प्रतिज्ञा करके पूरा करें, और छल कपट आदि पाप छोड़ कर सब उत्तम उत्तम गुण प्राप्त करें ॥४॥

मयि॑ दे॒वा द्रवि॑णमा यजन्तां म॒य्याशीर॑स्तु॒ मयि॑ दे॒वहू॑तिः ।
दे॒वा होता॑रः सनिषन् न एतद॑रि॒ष्टाः स्याम॑ त॒न्वा॑ सु॒वीराः॑ ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवाः) सब उत्तम गुण (मयि) मुझ में (द्रविणाम्) धन (आ यजन्ताम्) लाकर दें। (मयि) मुझ में (आशीः) आशीर्वाद, और (मयि) मुझ में (देवहूतिः) विद्वानों का आवाहन (अस्तु) होवे। (दैवाः) दिव्य गुण वाले (होतारः) दाता पुरुष (नः) हमें (एतत्) यह [दान] (सनिषन्) देवें—(तन्वा) अपने शरीर से (अरिष्टाः) निर्दुःखी और (सुवीराः) बड़े बड़े वीरों वाले (स्याम) हम होवें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक शिल्प आदि उत्तम गुणों से धन एकत्र करके विद्वानों में बुलाये जाकर सत्कार पावें और अपने शरीर से हृष्ट पुष्ट रह कर अपने सन्तान आदि को उत्तम वीर बनावें ॥५॥

दैवीः षडुर्वीरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या ॥ ६॥

भाषार्थः—(दैवीः) हे दिव्य गुण वाली (षट्) छह [पूर्वादि चार और ऊंची नीची दो] (उर्वीः) फैली हुई दिशाओ! (नः) हमारे लिये (उरु) फैला हुआ स्थान (कृणोत) करो। (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोगो! (इह) इस विषय में [हमें] (मादयध्वम्) आनन्दित करो। (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई, आपत्ति (नः) हम पर (मा विदत्) न आ पड़े, और (मो=मा उ) न कभी (अशस्तिः) अपकीर्ति, और (या) जो (द्वेष्या) द्वेष योग्य (वृजिना) वर्जनीय पाप बुद्धि है, [वह भी] (नः) हम पर (मा विदत्) न आपड़े ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य सब दिशाओं में शान्ति रक्खे, जिससे विद्वान् लोग उपकार करते रहें और सब प्रकार की विपत्ति, अपकीर्ति और कुमति से दूर रहें ॥६॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध अ० १। २०। १ में आया है।

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम्।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥ ७॥

भाषार्थः—(तिस्रः देवीः) हे तीनों कमनीय गुण वाली शक्तियो! (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म) शरण वा सुख, (च) और (नः) हमारी (प्रजायै) प्रजा के लिये और (तन्वे) शरीर के लिये और (यत्) जो कुछ (पुष्टम्) पोषण है [वह भी] (यच्छत) दान करो। (प्रजया) प्रजा से (मा हास्महि) हम न छूटें और (मा) न (तनूभिः) अपने शरीरों से, (सोम) हे ऐश्वर्य वाले (राजन्) राजन् परमेश्वर! (द्विषते) वैरी के लिये (मा रधाम) हम न दुःखी होवें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य तीन उत्तम शक्तियों अर्थात् उत्तम विद्या, संग्रह शक्ति और पृथिवी पालन से अपनी और प्रजा की उन्नति करें ॥७॥

तीनों उत्तम शक्तियों का वर्णन य० २७ । १९ में इस प्रकार है ।

तिस्रो देवी र्बर्हिरेद ꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥

(तिस्रः देवीः) तीन उत्तम शक्तियां, अर्थात् (मही) बड़ी पूजनीय और (गृणाना) उपदेश करने वाली (इडा) स्तुति योग्य भूमि, (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली विद्या और (भारती) धारण पोषण शक्ति (इदम् बर्हिः) इस वृद्धि कर्म में (आ सदन्तु) आवें ॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

भाषार्थः—(उरुव्यचाः) बड़ी व्याप्ति वाला, (महिषः) पूज्य, (पुरुहूतः) अत्यन्त करके पुकारा गया परमेश्वर (अस्मिन् हवे) इस आवाहन में (नः) हमें (पुरुक्षु) बहुत अन्नों से युक्त (शर्म) घर (यच्छतु) देवे । (सः) सो तू (हर्यश्व) हे आकर्षण विकर्षण से व्यापक (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारी (प्रजायै) प्रजा के लिये (मृड) सुखी हो, (नः) हमें (मा रिरिषः) मत दुःख दे और (मा परा दाः) मत त्याग कर ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना करके प्रयत्नपूर्वक अन्न आदि पदार्थों का संग्रह करें जिससे प्रजा लोग सदा प्रसन्न रहें और कभी दुःख न पावें ॥८॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥

भाषार्थः—(धाता) धारण करने वाला, (विधाता) सृष्टि करने वाला (देवः) प्रकाशमान, (सविता) सबका चलाने वाला, (अभिमातिषाहः) अभिमानियों का जीतने वाला परमेश्वर, (यः) जो (भुवनस्य) संसार का (पतिः) पति है, और (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःख नाश करने वाले विद्वान् शूर पुरुष, (उभा) दोनों (अश्विना) सूर्य और पृथिवी लोक, और (देवाः) सब दिव्य पदार्थ (यजमानम्) यजमान को (निर्ऋथात्) विनाश से (पान्तु) बचावें ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा जानकर विद्वानों के सत्सङ्ग और सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०॥

भाषार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रु हैं (ते) वे (अपभवन्तु) दूर हो जावें, (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और अग्नि [प्राण और पराक्रम] द्वारा (एनान्) इनको (अव बाधामहे) हम हटाते हैं (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःख नाशक, (उपरिस्पृशः) उच्च पद धारण करने वाले पुरुषों ने (चेत्तारम्) सर्वज्ञ, (उग्रम्) तेजस्वी परमात्मा को (नः) हमारा [अधिराजम्] राजाधिराज (अक्रत) बनाया है ॥१०॥

भावार्थः—जिस परमात्मा को ऋषि मुनि महात्माओं ने सब संसार का स्वामी साक्षात् किया है, उसी परमात्मा के आश्रय से हम अपने शत्रुओं को जीतें ॥१०॥

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥११॥

भाषार्थः—(अमुतः) वहां से (अर्वाञ्चम्) सन्मुख विराजमान (इन्द्रम्) इन्द्र परमेश्वर को (हवामहे) हम पुकारते हैं, (यः) जो (गोजित्) पृथिवी जीतने वाला, (धनजित्) धन जीतने वाला और (यः) जो (अश्वजित्) घोड़ों का जीतने वाला है। वह (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) देवपूजन को (विहवे) संग्राम में (शृणोतु) सुने। (हर्यश्व) हे आकर्षण और विकर्षण शक्ति से व्यापक इन्द्र! (अस्माकम्) हमारा (मेदी) स्नेही (अभूः) तू रहा है ॥११॥

भावार्थः—जो अन्तर्यामी परमात्मा संसार के सब पदार्थों में उत्कृष्ट है, उसका सदा स्मरण करके मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥११॥

सूक्तम् ४ ॥

१—१० ॥ कुष्ठो देवता ॥ ६ गायत्री, शिष्टानुष्टुप् ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जो तू (गिरिषु) स्तुति योग्य पुरुषों में (वीरुधाम्) विविध उत्पन्न प्रजाओं के बीच (बलवत्तमः) अत्यन्त बलवान् (अजायथाः) उत्पन्न हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तक्मनाशन) हे दुःखित जीवन नाश करने वाले (कुष्ठ) गुणपरीक्षक पुरुष (इतः) यहां से (तक्मानम्) दुःखित जीवन को (नाशयन्) नाश करता हुआ (आ इहि) तू आ ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी राजा प्रजा के दुःखों का नाश करके उन्नति करे [कुष्ठ वा कूट एक ओषधि का भी नाम है जो राजयक्ष्म, कुष्ठ आदि रोगों को शान्त करती है] ॥१॥

सुपर्ण सुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥२॥

भाषार्थः (सुपर्णसुवने) उत्तम पालन सामर्थ्य उत्पन्न करने हारे (गिरौ) स्तुति योग्य कुल में (हिमवतः) उद्योगी पुरुष से (परि) अच्छे प्रकार (जातम्) उत्पन्न पुरुष को (धनैः) धनों के साथ वर्तमान (श्रुत्वा) सुनकर [विद्वान् लोग] (अभि यन्ति) सन्मुख पहुँचते हैं, [और उस को] (तक्मनाशनम्) दुःखित जीवन नाश करने हारा (हि) निश्चय करके (विदुः) जानते हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग उत्तम कुल में उत्पन्न प्रतापी, धनी पुरुष को अपना राजा बनाते और उस पर प्रजा की रक्षा का भार रखते हैं ॥२॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥३॥

भाषार्थः—(देवसदनः) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्यम अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) गति में (इतः) प्राप्त होता है, (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत के (चक्षणाम्) दर्शन, (कुष्ठम्) गुणपरीक्षक पुरुष को (देवाः) महात्माओं ने (अवन्वत) मांगा है ॥३॥

भावार्थः—विद्वानों ने निश्चय किया है कि मनुष्य सर्वोत्तम पुरुषार्थ से सर्वजन हितैषी होता है ॥३॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥४॥

भाषार्थः—(हिरण्यमयी) तेजोमयी, (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धन वाली (नौः) नाव (दिवि) प्रकाशलोक में (अचरत्) चलती थी । (तत्र) वहां पर (अमृतस्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत के (पुष्पम्) विकाश, (कुष्ठम्) गुणपरीक्षक पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोगों ने (अवन्वत) मांगा है ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग तीक्ष्णबुद्धि मनुष्य द्वारा उत्तम विद्या का प्रकाश करके आनन्द पाते हैं ॥४॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् । ५॥

भाषार्थः—(हिरण्ययाः) तेजोमय (पन्थानः) मार्ग और (हिरण्यया) तेजोमय (अरित्राणि) वल्लियां वा डांड़ (आसन्) थे। (हिरण्ययीः) तेजोमय (नावः) नावें (आसन्) थीं, (याभिः) जिनसे (कुष्ठम्) गुणपरीक्षक पुरुष को (निरावहन्) वे निश्चय करके लाये हैं ॥५॥

भावार्थः—महात्मा लोग विद्वान् का आदर करके आनन्दित होते हैं ॥५॥

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु ।
तमु मे अगदं कृधि ॥ ६॥

भाषार्थः—(कुष्ठ) हे गुण परीक्षक पुरुष ! (मे) मेरे (इमम्) इस (तम्) पीड़ित (पुरुषम्) पुरुष को (आ वह) ले, और (तम्) उसको [दुःख से] (निष्कुरु) बाहिर कर। (तम् उ) उसको ही (मे) मेरे लिये (अगदम्) नीरोग (कृधि) कर ॥६॥

भावार्थः—राजा प्रयत्नपूर्वक प्रजा के मानसिक और शारीरिक रोगों को हटावे ॥६॥

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥७॥

भाषार्थः—(देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों से (अधि) ऐश्वर्य के साथ (जातः असि) तू उत्पन्न है, और (सोमस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (हितः) हितकारी (सखा) सुहृद (असि) तू है। (सः) सो तू (मे) मेरे (प्राणाय) प्राण के लिये, (व्यानाय) व्यान के लिये और (चक्षुषे) नेत्र के लिये (अस्मै) इस पुरुष पर (मृड) सुखी हो ॥७॥

भावार्थः—कुलीन ऐश्वर्यवान् राजा कुलीन ऐश्वर्यवान् पुरुषों का सत्कार करता हुआ उनकी सर्वथा रक्षा करता रहे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥८॥

भाषार्थः—(सः) सो तू (हिमवतः) उद्योगी पुरुष से (जातः) उत्पन्न होकर और (उदङ्) ऊंचा पद पाकर (प्राच्याम्) प्रकृष्ट गति के बीच (जनम्) मनुष्यों में (नीयसे) लाया जाता है। (तत्र) वहां पर (कुष्ठस्य) गुणपरीक्षक राजा के (उत्तमानि) उत्तम उत्तम (नामानि) यशों का (वि) विविध प्रकार से (भेजिरे) उन्हों ने सेवन किया है ॥८॥

भावार्थः—प्रजा गण उत्तम राजा को पाकर सदा उसका नाम गाते रहते हैं ॥८॥

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशयं तक्मानं चारसं कृधि ॥९॥

भाषार्थः—(कुष्ठ) हे गुण परीक्षक राजन्! तू (नाम) अवश्य (उत्तमः) अतिश्रेष्ठ (असि) है, (ते) तेरा (पिता) पिता (नाम) प्रसिद्ध (उत्तमः) अति उत्तम है। (सर्वम्) सब (यक्ष्मम्) राज रोग को (च) अवश्य (नाशय) नाशकर (च) और (तक्मानाम्) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (अरसम्) असमर्थ (कृधि) बना ॥९॥

भावार्थः—उत्तम गुणी राजा अपने उत्तम कुल का स्मरण करके प्रजा की दुःखों से सदा रक्षा करे ॥९॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो ३ रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥१०॥

भाषार्थः—(शीर्षामयम्) शिर के रोग, (अक्ष्योः) दोनों नेत्र के (उपहत्याम्) उपद्रव और (तन्वः) शरीर के (रपः) दोष, (तत् सर्वम्) इस सबको (कुष्ठः) गुण-परीक्षक पुरुष (निष्करत्) बाहिर करे। (समह) हे सत्कार के साथ वर्तमान राजन्! तेरा (वृष्ण्यम्) जीव का हितकारक बल (दैवम्) दिव्य गुण वाला है ॥१०॥

भावार्थः—राजा प्रजा के स्वास्थ्य-रक्षा का सदा उपाय करता रहे ॥१०॥

सूक्तम् ५ ॥

१-९ ॥ लाक्षा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म विद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (ते) तेरी (माता) निर्माण शक्ति (रात्री) विश्राम देने वाली रात्रि समान, (पिता) पालने वाला गुण (नभः) आकाश वा मेघ के समान, और (पितामहः) हमारे पालने वाले का पालने वाला तेरा गुण (अर्यमा) विघ्नों को रोकने वाले सूर्य के समान है। (सिलाची) सब में मेल रखने वाली शक्ति (नाम) नाम (वै) अवश्य ही (असि) तू हैं, (सा) सो तू (देवानाम्) दिव्य गुणों की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी शक्ति (असि) है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ही, जो शक्तिविशेष है, संसार के सब पदार्थों का कर्ता धर्ता है ॥१॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (त्वा) तेरा (पिबति) पान करता है, वह (जीवति) जीता है। (त्वम्) तू (पुरुषम्) उस पुरुष की (त्रायसे) रक्षा करती है। (शश्वताम्) अनेक (जनानाम्) जनों की (हि) निश्चय करके (भर्त्री) पालन करने-हारी (च) और (न्यञ्चनी) नित्य व्यापक शक्ति (असि) है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा जान कर सदा उद्योग करे, वही सब व्यापक सब सृष्टि को पालता है ॥२॥

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३॥

भाषार्थः—(वृक्षं वृक्षम्) प्रत्येक स्वीकार योग्य पदार्थ में (आ) सब प्रकार (रोहसि) तू प्रकट है, (वृषण्यन्ती इव) जैसे ऐश्वर्यवान् सूर्य को चाहने वाली (कन्यला) प्रकाश पाने हारी उषा [सूर्य में] है। (जयन्ती) जय करने हारी (प्रत्या-तिष्ठन्ती) प्रत्यक्ष स्थिर रहने हारी और (स्परणी) प्रीति करने वाली शक्ति (नाम) नाम (वै) अवश्य (असि) तू है ॥३॥

भावार्थः—वह सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी प्रत्येक वस्तु में ऐसा प्रीति से रम रहा है जैसे उषा सूर्य्य में ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुहरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (दण्डेन) दण्डे से, (यत्) जो कुछ (इष्वा) तीर से, (वा) अथवा (यत्) जो कुछ (अरुः) घाव (हरसा) बल से (कृतम्) किया गया है। (तस्य) उस की (त्वम्) तू (निष्कृतिः) चंगा करने वाली शक्ति (असि) है, (सा) सो तू (इमम्) इस (पुरुषम्) पुरुष को (निष्कृधि) चंगा करदे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रत्येक रोग के लिये ओषधि उत्पन्न की है, मनुष्य उसके प्रयोग से यथावत् सुख प्राप्त करें ॥४॥

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥

भाषार्थः—(प्लक्षात्) परिपूर्ण, (अश्वत्थात्) वीरों में रहने वाले, (खदिरात्) स्थिर, (धवात्) शुद्ध (भद्रात्) कल्याण से, (न्यग्रोधात्) शत्रुओं को नीचे रोकने वाले (पर्णात्) पालन करने वाले (भद्रात्) आनन्द से (निः) निश्चय करके (तिष्ठसि) तू ठहरी है। (सा) सो तू, (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! (नः) हम में (आइहि) तू आ ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर अपने उत्तम गुणों से सब स्थान में वर्तमान है, पुरुषार्थी मनुष्य उसका आश्रय लेकर अपने विघ्न हटावें ॥५॥

लोक में (भद्र) मोथा, (प्लक्ष) पाकर (अश्वत्थ) पीपल, (खदिर) खैर (धव) धव, (न्यग्रोध) गूलर, और (पर्ण) पलाश वा ढाक के पेड़ को भी कहते हैं ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥६॥

भाषार्थः—(हिरण्यवर्णे) हे सुवर्ण के रूप वाली ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (सूर्यवर्णे) हे सूर्य समान वर्ण वाली ! (वपुष्टमे) हे अतिशय उत्तम रूप वाली ! (निष्कृते) हे उद्धारशक्ति ! (रुतम्) हमारे दुःख में (गच्छासि) तू पहुंच (निष्कृतिः) उद्धार शक्ति (नाम वै) अवश्य ही (असि) है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उपकार विचार के निर्धनता, रोग आदि क्लेशों को प्रयत्नपूर्वक हटावें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो ह्यात्मा बभूव ते ॥७॥

भाषार्थः—(हिरण्यवर्णे) हे तेजः स्वरूपिणी ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (शुष्मे) हे महाबल वाली ! (लोमशवक्षणे) हे छेदनशीलों पर रोष वाली ! (लाक्षे) हे दर्शनीय शक्ति परमात्मन् ! तू (अपाम्) व्यापक प्रजाओं की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी (असि) है। (ते) तेरा (आत्मा) आत्मा (ह) निश्चय करके (वातः) व्यापक (बभूव) हुआ है ॥७॥

भावार्थः—महाधनी सर्वशक्तिमान् सर्वजनक परमेश्वर दुष्टों पर क्रोध करता है, इससे हम सदा उत्तम कर्म करते रहें ॥७॥

लोक में (लाक्षा) लाख वा लाह को भी कहते हैं ॥

सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य ह्यास्नास्युक्षिता ॥८॥

भाषार्थः—(सिलाची) सब में मेल रखने वाली शक्ति (नाम) तू प्रसिद्ध है। (तव) तेरा (पिता) पालने वाला गुण (कानीनः) कन्या अर्थात् कमनीय शक्ति [परमेश्वर] से आया हुआ, (अजबभ्रु) जीवात्माओं का पोषक है। (यमस्य) सर्व-नियामक परमेश्वर का (यः) जो (श्यावः) गतिशील (अश्वः) व्यापक गुण है, (तस्य) उसके (अस्ना) प्रकाश से (ह) निश्चय करके तू (उक्षिता) सींची हुई (असि) है ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर के सर्वरक्षक आदि गुणों को विचार कर मनुष्य सदा उन्नति करें ॥८॥

अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९॥

भाषार्थः (अश्वस्य) उस व्यापक गुण के (अस्नः) प्रकाश से (संपतिता) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (सा) उस [शक्ति] ने (वृक्षान्) सब स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (अभि) भले प्रकार से (सिष्यदे) सींचा है। (सा) वह तू, (अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! (पतत्रिणी) नीचे गिरने वाले (सरा) झरने के समान (भूत्वा) होकर (नः) हमें (एहि) प्राप्त हो ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की शक्ति द्वारा उत्पन्न हुए उत्तम पदार्थों से उन्नति करके सदा सुखी रहें ॥९॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ६ ॥

१ - १४ ॥ १-४ ब्रह्म देवता, ५-८ सोमारुद्रौ देवते, ९-१४ अग्निर्देवता ॥ १,९ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३,४ जगती, ५–७, १० त्रिपदा त्रिष्टुप्, ८ द्विपदा जगती, ११-१४ पङ्क्तिः ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः - सब सुख प्राप्ति का उपदेश ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

भाषार्थः—(वेनः) प्रकाशमान वा मेधावी परमेश्वर ने (पुरस्तात्) पहिले कालमें (प्रथमम्) प्रख्यात (जज्ञानम्) उपस्थित रहने वाले (ब्रह्म) वृद्धि के कारण अन्नको और (सुरुचः) बड़े रुचिर लोकों को (सीमतः) सीमाओं से (विआवः) फैलाया है। (सः) उसने (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (उपमाः) [परस्पर आकर्षण से] तुलना रखने वाले (विष्ठाः) विशेष स्थानों, अर्थात् (अस्य) इस (सतः) विद्यमान [स्थूल] के (च) और (असतः) अविद्यमान [सूक्ष्म जगत्] के (योनिम्) घर को (च) निश्चय करके (वि वः) खोला है ॥१॥

भावार्थः जगत् के जननी जनक परमेश्वर ने सृष्टि से पूर्व प्राणियों के लिये अन्न आदि पदार्थ बनाये और मूर्त और अमूर्त जगत् के भण्डार आकाश पृथिव्यादि लोक रचे ॥१॥

यह मन्त्र पहिले आ गया है—अ० ४। १। १ ॥ यह मन्त्र यजु० १३। ३। और सामवेद पूर्वार्चिक अ० ४ द० ३। म० ९ में है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जिन (प्रथमाः) प्रधान (अनाप्ताः) अत्यन्त यथार्थ ज्ञानी पुरुषों ने (वः) तुम्हारे लिये (यानि) पूजनीय (कर्माणि) कर्म (चक्रिरे) किये हैं, वे (नः) हम (वीरान्) वीरों को (अत्र) यहां पर (मा दभन्) न मारें, (तत्) सो (एतत्) इस कर्म को (वः) तुम्हारे (पुरः) आगे (दधे) मैं धरता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक जगत् हितकारी महात्माओं का अनुकरण करें और दुष्ट कर्म छोड़कर श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त रहें ॥२॥

यह मन्त्र पहिले आ चुका है—अ० ४ । ७ । ७ ॥

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः । तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥३॥

भाषार्थः—(दिवः) प्रकाश के (सहस्रधारे) सहस्र प्रकार से धारण करने वाले (नाके) दुःख रहित परमात्मा में (एव) ही (ते) उन (मधुजिह्वाः) ज्ञान से जीतने वाले वा मधुर भाषी (असश्चतः) निश्चल स्वभाव वाले पुरुषों ने (सम्) यथावत (अस्वरन्) शब्द किया है । (तस्य) उसके (भूर्णयः) घुड़कने वाले (स्पशः) बन्धन गुण (न) कभी नहीं (नि मिषन्ति) आंख मींचते हैं, (पाशिनः) फांस रखने वाले वे (पदेपदे) पद पद पर (सेतवे) बांधने के लिये (सन्ति) रहते हैं ॥३॥

भावार्थः—वह तेजोमय, आनन्दस्वरूप परमात्मा दुष्टों को सर्वदा सब स्थानों में दण्ड देता है ऐसा ऋषियों ने निश्चय किया है ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ९ । ७३ । ४

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तदध्यर्णवेनयसे सनिस्रसो नाम त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४॥

भाषार्थः—(वृत्राणि) घेरने वाले राक्षसों को (परि) सब ओर से (सक्षणिः) हराने वाला (वाजसातये) हमें अन्न देने के लिये (उ) अवश्य ही (सु) अच्छे प्रकार (परि प्र धन्व) सब ओर से प्राप्त हो । (तत्) इसी लिये (अर्णवेन) जलसे भरे समुद्र द्वारा (द्विषः) वैरियों पर (अधि) ऐश्वर्य से (ईयसे) तू पहुंचाता है । (सनिस्रसः) शत्रुओं का अतिशय नीचे गिराने वाला तू (नाम) प्रसिद्ध (त्रयोदशः) दश इन्द्रिय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और बुद्धि से परे तेरहवां परमेश्वर, (मासः) परिमाण करने वाला (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (गृह) घर (असि) है ॥४॥

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर के आश्रय से हम समुद्रादि में भी सब विघ्न हटाकर पुरुषार्थ करें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ६ । ११० । १ ।

न्वे३ तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती
सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने (नु) शीघ्र [धर्मात्मा को] (अरात्सीः) समृद्ध किया है (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी वा स्तुति है (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्रों वाले, (तिग्महेती) पैने वज्रों वाले, (सुशेवौ) बड़े सुख वाले (सोमारुद्रौ) ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता, अथवा चन्द्रमा और प्राण के तुल्य, राजा और वैद्य जनो तुम दोनों (इहि) यहां पर (सु) अच्छे प्रकार (नः) हमें (मृडतम्) सुखी करो ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर सदैव धर्मात्माओं पर दया करता है। इसी से राजा और वैद्य चन्द्रमा और प्राण के समान उपकार करके संसार में सुख बढ़ावें ॥५॥

(तिग्मायुधौ इत्यादि) ऋग्वेद में है—म० ६ सू० ७४ म० ४ ॥

अवै तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती
सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥

भाषार्थः—हे परमेश्वर] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने अधर्मी को (अव अरात्सीः) निर्धन बनाया है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी वा स्तुति है। (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्रों वाले·····म० ॥५॥६॥

भावार्थः—परमात्मा अधर्मियों को निर्धनी रखता है, सो राजा और वैद्य धार्मिक होकर प्रजा में सुख बढ़ाते रहें ॥६॥

अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती
सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (एतेन) अपनी व्याप्ति से (असौ) उस तूने [दुष्ट जन को] (अप अरात्सीः) अपराधी ठहराया है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा स्तुति है। (तिग्मायुधौ) हे तेज शस्त्रों वाले, (तिग्महेती) पैने वज्रों वाले, (सुशेवौ) बड़े सुख वाले, (सोमारुद्रौ) ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता, अथवा चन्द्रमा और प्राण के तुल्य, राजा और वैद्य जनो तुम दोनों (इह) यहां पर (सु) अच्छे प्रकार (नः) हमें (मृडतम्) सुखी करो ॥७॥

भावार्थः—परमेश्वर पापियों को अपराधी ठहराकर दण्ड देता है। राजा और वैद्य धन और नीरोगता राज्य में बढ़ावें ॥७॥

मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥

भाषार्थः—[हे ऐश्वर्य के कारण और ज्ञानदाता तुम दोनों!] (अस्मान्) हमें (दुरितात्) दुर्गति और (अवद्यात्) अकथनीय निन्दनीय कर्म से (मुमुक्तम्) छुड़ाओ, (यज्ञम्) देव पूजन को (जुषेथाम्) स्वीकार करो, (अमृतम्) अमरण अर्थात् पुरुषार्थ अथवा अमरपन अर्थात् कीर्तिमत्ता (अस्मासु) हम में (धत्तम्) धारण करो ॥८॥

भावार्थः—राजा और वैद्य के सुकर्मों से सब लोग आत्मिक और शारीरिक रोग छोड़कर धर्म में प्रवृत्त होकर अमर अर्थात् पुरुषार्थी और यशस्वी होवें ॥८॥

चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।
मेन्या मे निरस्यमे नयस्ते सन्तु ये ३' स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥

भाषार्थः—[हे अग्ने परमात्मन्!] (चक्षुषः) [शत्रुओं की] आंखि की (हेते) वरछी! (मनसः) हे मन की (हेते) वरछी! (ब्रह्मणः) हे अन्न की (हेते) वरछी! (च) और (तपसः) सामर्थ्य की (हेते) वरछी! तू (मेन्याः) वज्र का (मेनिः) वज्र (असि) है। (ते) वे लोग (अमेनयः) वे वज्र (सन्तु) होवें (ये) जो (अस्मान्) हमें (अभ्यघायन्ति) सताना चाहते हैं ॥९॥

भावार्थः जिस प्रकार चोर आदि दुष्टों को दण्ड देकर असमर्थ कर देते हैं इसी प्रकार मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर अपने दोषों को निर्बल कर दें ॥९॥

यो ३' स्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मे न्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थः—(यः) जो (यः) घबड़ा देने वाला (अघायुः) बुरा चीतने वाला (अस्मान्) हमें (चक्षुषा) आंखि से, (मनसा) मन से, (चित्या) बुद्धि से (च) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आकूत्या) संकल्प से (अभिदासात्) सतावे। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर! (त्वम्) तू (तान्) उन्हें (मेन्या) वज्र से (अमेनीन्) वज्र रहित (कृणु) कर, (स्वाहा) यह सुवाणी वा नम्र प्रार्थना है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में विश्वास करके प्रयत्नपूर्वक अपने दोषों का नाश करके बलवान् होवें ॥१०॥

इन्द्रस्य गृहोऽसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (गृहः) आश्रय (असि) है। (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित, (सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझ को (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूं, (तम् त्वा) उस तुझ में (प्रविशामि) प्रवेश करता हूं। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य सब प्रकार से आत्मसमर्पण करके परमेश्वर की आज्ञापालन में सदा प्रसन्नचित्त रहे ॥११॥

इन्द्रस्य शर्मासि।.....म० ११ ॥१२॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (शर्म) शरण (असि) है...म० ११ ॥ १२॥

भावार्थः—मन्त्र ११ के समान है ॥१२॥

इन्द्रस्य वर्मासि.....म० ११ ॥१३॥

भावार्थः—[हे परमात्मन्!] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (वर्म) कवच (असि) है म० ११ ॥ १३ ॥

भावार्थः—मन्त्र ११ के समान है ॥१३॥

इन्द्रस्य वरूथमसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन्!] तू (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (वरूथम्) ढाल (असि) है। (सर्वगुः) सब गौ आदि पशुओं सहित, (सर्वपूरुषः) सब पुरुषों सहित,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वात्मा) पूरे आत्मबल सहित, (सर्वतनूः) सब शरीर सहित मैं (तम् त्वा) उस तुझ को (प्र पद्ये) प्राप्त होता हूं, (तम् त्वा) उस तुझ में (प्र विशामि) प्रवेश करता हूं। और (यत्) जो कुछ (मे) मेरा (अस्ति) है (तेन सह) उसके साथ भी ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य सब प्रकार से परमेश्वर की आज्ञा पालन करके सदा प्रसन्नचित्त रहे ॥१४॥

सूक्तम् ७ ॥

१—१० ॥ प्रजापतिर्देवता । १ पङ्क्तिः, ४, ६ पथ्या पङ्क्तिः, शिष्टानुष्टुप् ॥

पुरुषार्थकरणायोपदेशः—पुरुषार्थ करने के लिये उपदेश ॥

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीत्सायै असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१॥

भाषार्थः—(अराते) हे अदान शक्ति ! (नः) हमें (आ) आकर (भर) पुष्ट कर, (मा परि स्थाः) अलग मत खड़ी हो, (नः) हमारे लिये (नीयमानाम्) लायी हुई (दक्षिणाम्) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] को (मा रक्षीः) मत रख ले। (वीत्सायै) अवृद्धि इच्छा, (असमृद्धये) असम्पत्ति अर्थात् (अरातये) अदान शक्ति [निर्धनता] को [नमो नमः] बार-बार नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विपत्ति में निर्भय होकर धैर्य से उपाय करते हैं, वे उन्नति करते हैं अथवा मनुष्यों को निर्धन विपत्तिग्रस्तों का सत्कार-पूर्वक सहायक होना चाहिये ॥१॥

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥२॥

भाषार्थः—(अराते) हे अदान शक्ति ! (यम्) जिस (परिरापिणम्) वड़बड़िया (पुरुषम्) पुरुष को (पुरोधत्से) तू आगे धरती है। (ते) तेरे (तस्मै) उस पुरुष को (नमः) नमस्कार (कृण्मः) हम करते हैं, (मम) मेरी (वनिम्) भक्ति को (मा व्यथयीः) तू व्यथा में मत डाल ॥२॥

भावार्थः—वीर मनुष्य विपत्तिग्रस्त पुरुषों को उत्साहपूर्वक विपत्ति से निकालें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र णो॑ वनिर्देवकृ॒ता दिवा॒ नक्तं॑ च कल्पताम् ।
अरा॑तिमनुप्रेमो॑ वयं नमो॑ अस्त्वरा॑तये ॥३॥

भाषार्थः—(देवकृता) महात्माओं की उत्पन्न की हुई (नः) हमारी (वनिः) भक्ति (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात (प्र) अच्छे प्रकार (कल्पताम्) समर्थ होवे। (वयम्) हम लोग (अरातिम्) अदान शक्ति [निर्धनता] को (अनुप्रेमः) ढूंढ कर पावें, (अरातये) अदान शक्ति को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों से शिक्षा पाकर सदा परस्पर भक्ति बढ़ावे और धैर्य से विपत्तियों को सहकर उत्तम पुरुषार्थ करें ॥३॥

सर॑स्वतीमनु॒मतिं॒ भगं॒ यन्तो॑ हवामहे ।
वाचं॑ जु॒ष्टां मधु॑मतीमवादिषं दे॒वानां॑ देव॒हूति॑षु ॥४॥

भाषार्थः—(यन्तः) चलते फिरते हम लोग (सरस्वतीम्) विज्ञानवती विद्या, (अनुमतिम्) अनुकूल मति और (भंगम्) सेवनीय ऐश्वर्य को (हवामहे) बुलाते हैं। (देवानाम्) महात्माओं की (जुष्टाम्) प्रीति युक्त, (मधुमतीम्) बड़ी मधुर (वाचम्) इस वाणी को (देवहूतिषु) दिव्य गुणों के बुलाने में (अवादिषम्) मैं बोला हूँ ॥४॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम विद्या से उत्तम बुद्धि पाकर ऐश्वर्यवान् होते हैं; यही वाणी उत्तम गुण पाने के लिय महात्माओं की संपत है ॥४॥

यं या॒चाम्य॒हं वा॒चा सर॑स्वत्या॒ मनो॒ युजा॑ ।
श्रद्धा तम॒द्य वि॑न्दतु द॒त्ता सोमे॑न ब॒भ्रुणा॑ ॥५॥

भाषार्थः—(यम्) जिस गुण को (अहम्) मैं (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्त, (मनोयुजा) मन से जुड़ी हुई (वाचा) वाणी से (याचामि) मांगता हूं। (बभ्रुणा) पोषण करने वाले (सोमेन) परमेश्वर करके (दत्ता) दी हुई (श्रद्धा) श्रद्धा (तम्) उस गुण को (अद्य) आज (विन्दतु) पावे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धा करके विज्ञान और पराक्रमयुक्त वाणी से अपना मनोरथ शीघ्र सिद्ध करते हैं ॥५॥

मा व॒नि मा वाचं॑ नो वीत्सौरु॒भाविन्द्रा॒ग्नी आ भ॑रतां नो॒ वसू॑नि ।
सर्वे॑ नो अ॒द्य दित्स॑न्तोऽरा॑ति॒ प्रति॑ हर्यत ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे अदान शक्ति] (मा) न तो (नः) हमारी (वनिम्, भक्ति को और (मा) न (वाचम्) वाणी को (वि ईत्सीः) असिद्ध कर। (उभौ) दोनों (इन्द्राग्नी) जीव और अग्नि [पराक्रम] (नः) हमारे लिये (वसूनि) अनेक धन (आ भरताम्) लाकर भरें। (अद्य) आज (नः) हमें (दित्सन्तः) दान की इच्छा करने वाले (सर्वे) हे सब गुणो! (अरातिम्) अदान शक्ति को (प्रति) प्रतिकूलपन से (हर्यत) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण श्रद्धा और सत्य प्रतिज्ञा से आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाकर विद्या धन और सुवर्ण आदि धन बढ़ाकर निर्धनता को हटावें ॥६॥

परोऽपेहि असमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७॥

भाषार्थः—(असमृद्धे) हे असमृद्धि! (परः) परे (अप इहि) चली जा, (ते) तेरी (हेतिम्) बरछी को (वि नयामसि) हम अलग हटाते हैं। (अराते) हे अदान शक्ति! [निर्धनता!] (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (निमीवन्तीम्) निर्बल करने वाली और (नितुदन्तीम्) भीतर चुभने वाली (वेद) जानता हूं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य महादुःखदायिनी निर्धनता को प्रयत्नपूर्वक हटावें ॥७॥

उत नग्ना बोभुवती स्वप्न या सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्स न्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥

भाषार्थः—(उत) और (अराते) हे अदानशक्तिः [निर्धनता] (पुरुषस्य) मनुष्य के (चित्तम्) चित्त (च) और (आकूतिम्) संकल्प (वीर्त्सन्ती) असिद्ध करती हुई (नग्ना) लज्जित (बोभुवती) वार वार होती हुई तू (स्वप्नया) नींद [आलस्य] के साथ (जनम्) जनसमूह को (सचसे) प्राप्त होती है ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य निर्धनता के कारण अपने चित्त और संकल्प को नष्ट करते, लज्जित और आलसी होते हैं ॥८॥

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥

भाषार्थः—(या) जो (महती) बलवती, (महोन्माना) बड़े डीलवाली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[निर्धनता] (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं में (व्यानशे) व्याप्त हुई है। (तस्यै) उस (हिरण्यकेश्यै) सुवर्ण का प्रकाश कराने वाली (निर्ऋत्यै) क्रूर विपत्ति को (नमः अकरम्) मैंने नमस्कार किया है ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वव्यापिनी निर्धनता में फंसकर और अन्त में उस का नाश करके सुवर्ण आदि धन प्राप्त करते हैं ॥९॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्महो ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

भाषार्थः—[जो] (सुभगा) बड़े ऐश्वर्य वाली (हिरण्यवर्णा) सुवर्ण का रूप रखने वाली (हिरण्यकशिपुः) सुवर्ण के वस्त्र वाली (महो) बलवती है। (तस्यै) उस (हिरण्यद्रापये) सुवर्ण द्वारा निन्दित गति से बचाने वाली (अरात्यै) अदान शक्ति [निर्धनता] को (नमः अकरम्) मैंने नमस्कार किया है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य विपत्तियों का सहन करके अन्त में धनी, बली और सुखी होते हैं ॥१०॥

सूक्तम् ॥८॥

१—९ ॥ इन्द्रो देवता। १, २, ५, ८, ९ अनुष्टुप्; ३, ४, ६, ७ पथ्या पङ्क्तिः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश।

वै कङ्कतेने ध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥

भाषार्थः—(वैकङ्कतेन) विज्ञान सम्बन्धी (इध्मेन) प्रकाश के साथ (देवेभ्यः) व्यवहारकुशल पुरुषों को (आज्यम्) पाने योग्य वस्तु (वह) पहुंचा। (अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी राजन्! (तान्) उन लोगों को (इह) यहां पर (मादय) प्रसन्न कर। (सर्वे) वे सब (मे) मेरी (हवम्) पुकार को (आ यन्तु) आकर प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—राजा अनेक विद्याओं का प्रचार करके विद्वानों का सत्कार करे, जिस से प्रजा में दुःख लेशमात्र न रहे ॥१॥

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं १ जातवेदस्तनूं वशिन् ॥२॥

भाषार्थः (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (मे हवम्) मेरी पुकार को (आ याहि) तू पहुंच । (इदम्) ऐश्वर्य सम्बन्धी कर्म (करिष्यामि) मैं करूंगा । (तत्) सो (शृणु) तू सुन (इमे) यह (ऐन्द्राः) ऐश्वर्यवान् राजा के (अतिसराः) प्रयत्न (मे) मेरे (आकूतिम्) संकल्प को (सम् नमन्तु) सिद्ध करें । (जातवेदः) हे बहुत धनवाले (तनूवशिन्) हे शरीरों को वश में रखने वाले राजन् ! (तेभिः) उन [प्रयत्नों] से (वीर्यम्) वीरपन (शकेम) पासकें ॥२॥

भावार्थः—राजा प्रजागण की पुकार सुन कर प्रयत्नपूर्वक उनकी उन्नति करे ॥२॥

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयी पुरुषो ! (असौ) वह (अदेवः सन्) राजद्रोही होकर (अमुतः) उस स्थान से (यत्) जो कुछ [कुमन्त्र] (चिकीर्षति) करना चाहता है । (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी राजा (तस्य=तस्मै) उसको (हव्यम्) अन्न (मा वाक्षीत्) न पहुँचावे । (देवाः) व्यवहार कुशल लोग (अस्य) इसकी (हवम्) पुकार को (मा उप गुः) न प्राप्त करें । (मम एव) मेरी ही (हवम्) पुकार को (आ-इतन) तुम आकर प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—राजा और सब विद्वान् लोग राजविद्रोही पुरुष को यथावत् दण्ड देकर प्रजा में शान्ति फलावें ॥३॥

अतिं धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत । अविं वृक इव
मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥४॥

भाषार्थः—(अतिसराः) हे उद्योगी शूरो ! (अति धावत) अत्यन्त करके धावा करो । (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले राजा के (वचसा) वचन से (हत) मारो । [उसे] (मथ्नीत) मथ डालो, (वृक इव) जैसे भेड़िया (अविम्) भेड़ को । (सः) वो (जीवन्) जीता हुआ (वः) तुम्हारी (मा मोचि) मुक्ति न पावे । (अस्य) इसके (प्राणम्) प्राण को (अपि) भी (नह्यत) बाँध लो ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—शूर वीर पुरुष राजा की आज्ञा से चढ़ाई करके शत्रुओं का सर्वथा नाश करें ॥४॥

यममी पुरो दधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स तं अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५॥

भाषार्थः—(अमी) इन [शत्रुओं] ने (यम्) जिस (ब्रह्माणम्) वृद्धिशील पुरुष को (अपभूतये) हमारी हार के लिये (पुरोदधिरे) उच्च पद पर रक्खा है। (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्! (सः) वह मैं (ते) तेरे (अधस्पदम्) पाँव के नीचे (तम्) उसको (मृत्यवे) मृत्यु के लिये (प्रति) प्रतिकूलता से (अस्यामि) फेंकता हूं ॥५॥

भावार्थः शत्रु लोग जिस विद्वान् पुरुष को बहकाकर बड़ा पद देकर हमारी हानि करावें, हमारे राजपुरुष उसको पकड़ कर प्राणान्त तक दण्ड देवें ॥५॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे । तनूपानं परिपाणं
कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥६॥

भाषार्थः—(यदि) जो [शत्रुओं ने] (देवपुराः) राजा के नगरों पर (प्रेयुः) चढ़ाई की है, और (ब्रह्म) हमारे धन को (वर्माणि) अपने रक्षा-साधन (चक्रिरे) बनाया है। (तनूपानम्) हमारे शरीर रक्षासाधन को (परिपाणम्) अपना रक्षा साधन (कृण्वानाः) बनाते हुए उन लोगों ने (यत्) जो कुछ (उपोचिरे) डींग मारी है, (तत् सर्वम्) उस सब को (अरसम्) नीरस वा फीका (कृधि) करदे ॥६॥

भावार्थः—राजा उपद्रवी शत्रुओं को जीतकर प्रजा की सदा रक्षा करे ॥६॥

यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् । त्वं तानिन्द्र
वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् । ७।

भाषार्थः (असौ) उसने (यान्) जिन (अतिसरान्) प्रयत्नों को (चकार) किया है, (च) और (यान्) जिनको (कृणवत्) करे, (वृत्रहन्) हे अन्धकार नाशक (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्यवाले राजन्! (त्वम्) तू (तान्) उन [प्रयत्नों] को (प्रतीचः) ओंधे मुख करके (पुनः) अवश्य (आकृधि) तुच्छ करदे, (यथा) जिस से (अमुम् जनम्) उस जनसमूह को वे [हमारे लोग] (तृणहान्) मार डालें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा सेना आदि द्वारा शत्रुओं का नाश करता रहे ॥७॥

यथेन्द्रं उद्वाचंनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वे ३ ऽहमधरां स्तथामूंछश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।८॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवाले पुरुष ने (उद्वाचनम्) ऊंचे बोलने वाले, बड़बड़ियां शत्रु को (लब्ध्वा) पाकर (अधस्पदम्) पांव तले (चक्रे) किया है। (तथा) वैसे ही (अहम्) मैं (शश्वतीभ्यः) सनातन (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (अमून्) उन [शत्रुओं] को (अधरान्) नीचे (कृण्वे) करता हूं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज शूरवीरों के समान संसार के हित के लिये काम क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करें ॥८॥

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य ।
अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेध१हं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ।।९॥

भाषार्थः—(अत्र) यहाँ (वृत्रहन्) हे अन्धकार नाशक (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (उग्रः) तेजस्वी तू (एनान्) इन लोगों को (मर्मणि) मर्म स्थान में (विध्य) छेद। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले राजन् ! (अत्र एव) यहां पर ही (एनान्) इनको (अभि तिष्ठ) दबा ले। (अहम्) मैं (तव) तेरा (मेदी) स्नेही हूं। (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् राजन ! (त्वा अनु) तेरे पीछे पीछे (आरभामहे) हम आरम्भ करते हैं। (तव) तेरी (सुमतौ) सुमति में (स्याम) हम रहें ॥९॥

भावार्थः—राजा दुष्टों का सर्वथा नाश करके प्रजापालन करे ॥९॥

सूक्तम् ॥९॥

१—८॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ५ दैवी बृहती; २, ६ दैवी पङ्क्तिः; ३, ४ दैवी जगती; ७ सूर्योम इति द्विपदा विराट्, अस्तृतो नामेति द्विपदा जगती; ८ पञ्चपदा विराट् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

दिवे स्वाहा ॥ १ ॥

भाषार्थः—(दिवे) प्रकाशमान परमेश्वर के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पृथिव्यै) विस्तृत नीति के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी है ॥२॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षाय) भीतर दिखाई देने हारे हृदय [की शुद्धि] के लिये (स्वाहा) प्रार्थना है ॥३॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अन्तरिक्षाय) मध्य लोक, वायु मण्डल [के ज्ञान] के लिये (स्वाहा) प्रार्थना है ॥४॥

दिवे स्वाहा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(दिवे) व्यवहार के लिये (स्वाहा) प्रार्थना है ॥५॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(पृथिव्यै) पृथिवी [के राज्य] के लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी है ॥६॥

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो ३ न्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७॥

भाषार्थः—(मे) मेरा (चक्षुः) नेत्र (सूर्यः) सूर्य [के सदृश प्रकाशमान], (प्राणः) प्राण (वातः) वायु [के समान चलने वाला], (आत्मा) आत्मा (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक [के समान मध्यवर्ती], (शरीरम्) शरीर (पृथिवी) पृथिवी [के समान सहनशील] है। (अयम्) यह (अहम्) मैं (अस्तृतः) विना ढका हुआ (नाम) प्रसिद्ध (अस्मि) हूं। (सः=सः अहम्) वह मैं (आत्मानम्) अपना आत्मा (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी को (गोपीथाय) रक्षा [अथवा पृथिवी, इन्द्रिय आदि की रक्षा] के लिये (नि) नित्य (दधे) देता रहता हूं ॥७॥

भावार्थः—योगी जन विद्याभ्यास और तपोबल से संसार के सब तत्त्वों से उपकार लेकर संसार की रक्षा करते हैं ॥७॥

उदायुरुद्बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८॥

भाषार्थः—(आयुः) मेरा जीवन (उत्) उत्तम, (बलम्) बल (उत्) उत्तम, (कृतम्) किया हुआ काम (उत्) उत्तम, (कृत्याम्) कर्तव्य कर्म (उत्) उत्तम, (मनीषाम्) बुद्धि (उत्) उत्तम, (इन्द्रियम्) इन्द्रपन अर्थात् परम ऐश्वर्य (उत्= उत्कर्षतम्) उत्तम बनाओ। (आयुष्पत्नी) जीवन पालने वाली माता और (आयुष्कृत्) जीवन करने वाले पिता तुम दोनों (स्वधावन्तौ) अन्न वाले होकर (मे) मेरे (गोपा= गोपौ) रक्षक (स्तम्) होओ। (मा) मुझको (गोपायतम्) बचाओ। (मे) मेरे (आत्मसदौ) आत्मा में रहने वाले (स्तम्) होओ। (मा) मुझे (मा हिंसिष्टम्) दुःखी मत होने दो ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम माता पिता से उत्तम विद्या, पुरुषार्थ आदि प्राप्त करके संसार में सुखी रहते हैं ॥८॥

सूक्तम् ॥१०॥

१—८ ॥ ब्रह्म देवता ॥ १—७ पद पङ्क्तिः, ८ अनुष्टुप् ॥

ब्रह्मोत्कर्षोपदेशः—ब्रह्म की उत्तमता का उपदेश ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्यादिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (प्राच्याः) पूर्व वा सन्मुखवाली (दिशः) दिशा से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥१॥

भावार्थः—सर्वव्यापक ब्रह्म प्रत्येक दिशा में दुष्टों को सर्वत्र दण्ड देकर शिष्टों की रक्षा करता है इसी प्रकार आगे समझो ॥१॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ २ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (दक्षिणायाः) दक्षिण वा दाहिनी (दिशः) दिशा से ·····म० १ ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (प्रतीच्याः) पश्चिम वा पीछे वाली (दिशः) दिशा से·····म० १ ॥३॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (उदीच्याः) उत्तर वा बायीं (दिशः) दिशा से·····म० १ ॥४॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (ध्रुवायाः) स्थिर वा नीचे वाली (दिशः) दिशा से···म० १ ॥५॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ६ ॥

भाषार्थः [हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि, है। (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (ऊर्ध्वायाः) ऊपर वाली (दिशः) दिशा से···म० १ ॥६॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्म !] (मे) मेरे लिये तू (अश्मवर्म) पत्थर के घर [के समान दृढ़] (असि) है (यः) जो (अघायुः) बुरा चीतने वाला मनुष्य (दिशाम्) दिशाओं के (अन्तर्देशेभ्यः) मध्य देशों से (मा) मुझ पर (अभिदासात्) चढ़ाई करे, (सः) वह दुष्ट (एतत्) व्यापक दुःख (ऋच्छात्) पावे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—म० १ । के समान ॥७॥

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८॥

भाषार्थः—(बृहता) बढ़े हुए ज्ञान के साथ (मनः) मन को, (मातरिश्वना) आकाशगामी वायु के साथ (प्राणापानौ) भीतर और बाहिर जाने वाले श्वास को, (सूर्यात्) सूर्य से (चक्षुः) दृष्टि, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति, और (पृथिव्याः) पृथिवी से (शरीरम्) शरीर को (उप ह्वये) मैं आदर से मांगता हूं । (मनोयुजा) मन से जुड़ी हुई (सरस्वत्या) विज्ञान वाली विद्या के साथ (वाचम्) वाणी को (उप) आदर से (ह्वयामहे) हम मांगते हैं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य वेद विज्ञान द्वारा वायु, सूर्य, आकाश, और पृथिवी से उत्तम गुणों की प्राप्ति करके शारीरिक और मानसिक बल बढ़ावें ॥८॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥११॥

१–११ ॥ ब्रह्म देवता । ६ शक्वरी, ११ षट्पदा त्रिष्टुप्, अन्यत्र त्रिष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेष नृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१॥

भाषार्थः—(त्वेषनृम्णः) तेजोमय बल वाले तूने (कथम् कथम्) कैसे कैसे (महे) महान् (असुराय) प्राणदाता वा बुद्धिमान्, (पित्रे) जगत्पिता, (हरये) दुःख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाशक हरि, परमेश्वर [की प्राप्ति] के लिये (इह) यहां (अब्रवीः) कथन किया है। (वरुण) हे वरणीय विद्वान् ! तूने (पृश्निम्) वेद विद्या और (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा (ददावान्) दान की है। (पुनर्मघ) हे बार बार धन देने वाले पुरुष ! (त्वम्) तूने (मनसा) मन से (अचिकित्सीः) हमारी चिकित्सा की है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् जन कठिन तपश्चर्या से परमेश्वर की विद्या प्राप्त करके उसके उपदेश से संसार को सुखी करते हैं ॥१॥

न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२॥

भाषार्थः—(कामेन) शुभ कामना से (न) अब (पुनर्मघः) अवश्य धन देने वाला मैं (भवामि) होता हूं, [क्योंकि] (एताम्) इस (पृश्निम्) वेद विद्या को (कम्) सुख से (सम्) ठीक ठीक (चक्षे) देखता हूं और (उप) आदर से (अजे) प्राप्त करता हूं। (अथर्वन्) हे निश्चल स्वभाव वाले पुरुष ! (त्वम्) तू (नु) निश्चय करके (केन) कामना योग्य (काव्येन) स्तुति योग्य (जातेन) प्रसिद्ध (केन) सुखप्रद प्रजापति परमेश्वर के साथ (जातवेदाः) बहुत धन वा बुद्धिवाला (असि) है ॥२॥

भावार्थः—योगी जन आदर से वेदविद्या प्राप्त करता, और उसके प्रचार से संसार को सुखी करके आप सुखी होता है ॥२॥

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (सत्यम् सत्यम्) सत्य सत्य (काव्येन) स्तुति योग्य (जातेन) प्रसिद्ध ब्रह्म के साथ (गभीरः) शान्त (जातवेदाः) बड़ी बुद्धि वाला (अस्मि) हूं। (न आर्यः) अनार्य, अविद्वान् (दासः) दास, शूद्र (मे) मेरे (व्रतम्) व्रत को (न) नहीं (मीमाय) तोड़ सका, (यत्) जिसको (अहम्) मैं (महित्वा) बड़ेपन से (धरिष्ये) धारण करूंगा ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्म विद्या से धीर ज्ञानी होता और कोई मूर्ख उसके संकल्प में विघ्न नहीं डाल सकता ॥३॥

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४॥

भाषार्थः—(स्वधावन्) हे आत्मधारण वाले, स्वाधीन, (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेधया) अपनी बुद्धि के कारण (त्वत्) तुझ से (अन्यः) अन्य [मूर्ख] (न) न तो (कवितरः) अधिक सूक्ष्मदर्शी और (न) न (धीरतरः) अधिक बुद्धिमान् है। (त्वम्) तू (ता) उन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (वेत्थ) जानता है। (सः) वह (मायी) मायावी (जनः) जन (त्वत्) तुझ से (चित् नु) अवश्य ही (बिभाय) भयभीत हुआ है ॥४॥

भावार्थः—जैसा आत्मबल और ज्ञान ईश्वरभक्तों में होता है वैसा नास्तिकों में कभी नहीं होता अर्थात् उनका आत्मा डरपोक होता है ॥४॥

त्वं ह्यङ्ग १ वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्ये ना किं परेणावरमसुर ॥५॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे (स्वधावन्) आत्मधारण वाले, स्वाधीन (सुप्रणीते) हे उत्तम नीति वाले (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (त्वम्) तू (हि) ही (विश्वा) सब (जनिमा) उत्पन्न लोकों को (वेत्थ) जानता है (किम्) क्या (एना) इस (रजसः) लोक से (परः) परे (अन्यत्) और कुछ (अस्ति) है। (असुर) हे गतिशील ! (किम्) क्या (एना) इस (परेण) पर की अपेक्षा (अवरम्) कुछ पीछे [अधिक दूर] रहने वाला ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य योगी ब्रह्मज्ञानियों से वार्तालाप करके अपनी ब्रह्म-विद्या बढ़ावें ॥५॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्ये ना पर एकेन दुर्णशंचिदर्वाक् । तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥

भाषार्थः—(एना) इस (रजसः) लोक से (परः) परे (अन्यत्) और कुछ (एकम्) अकेला [ब्रह्म] (अस्ति) है। (एना) इस (एकेन) अकेले ब्रह्म की अपेक्षा (परः) परे (दुर्णशम्) दुष्प्राप्य और (अर्वाक्) पीछे वर्तमान (चित्) भी [वही है]। (वरुण) हे श्रेष्ठ पुरुष ! (विद्वान्) विद्वान् मैं (ते) तुझको (तत्) वह बात (प्र) अच्छे प्रकार (ब्रवीमि) कहता हूं। (पणयः) कुव्यवहारी लोग (अधोवचसः) तुच्छ वचन वाले [असत्यवादी] (भवन्तु) होवें। (दासाः) दास अर्थात् शूद्र (नीचैः) नीचे की ओर (भूमिम्) भूमि पर (उप) हीन हो कर (सर्पन्तु) रेंग जावें ॥६॥

भावार्थः—वह अकेला अद्भुतमूर्ति परब्रह्म हमारे गोचर और अगोचर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों से भिन्न है, यह बात बुद्धिमान् लोग जानते हैं, और कुबुद्धि नास्तिक सदा नीचा देखते हैं ॥६॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि। मो षु पणीरभ्येतावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७॥

भाषार्थः—(अङ्ग) हे (वरुण) वरुण श्रेष्ठ पुरुष! (त्वम्) तू (हि) ही (पुनर्मघेषु) वार वार धन देने वालों के बीच [वर्तमान होकर] (भूरि) बहुत से (अवद्यानि) अनिन्दनीय अर्थात् प्रशंसनीय वचनों को (ब्रवीषि) बोलता है। (एतावतः) इतने (पणीन् अभि) कुव्यवहारी पुरुषों की ओर (सु) अनायास [सहज स्वभाव से] (मो भूत्) कभी मत हो, [जिससे] (जनासः) लोग (त्वा) तुझको (अराधसम्) अदानी (मा वोचन्) न कहें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य सत्पुरुषों में उत्तम शिक्षाओं का प्रचार करें, क्योंकि दुष्ट पुरुषों और दुष्ट कर्मों में पड़कर अच्छा मनुष्य भी दोषी हो जाता है ॥७॥

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि। स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥

भाषार्थः—(जनासः) मनुष्य (मा) मुझको (अराधसम्) अदाता (मा वोचन्) न कहें। (जरितः) हे स्तुति करने वाले पुरुष! (पुनः) अवश्य (ते) तुझे (पृश्निम्) वेदविद्या (ददामि) देता हूँ। (विश्वासु) सब (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धिनी (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (मे) मेरे (विश्वम्) सब (स्तोत्रम्) स्तुतियोग्य कर्म को (आयाहि) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष उदारचित्त होकर वेदविद्या संसार में फैलावे और सब लोग विवेकपूर्वक उसके उत्तम कर्म का अनुकरण करें ॥८॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥

भाषार्थः—[हे विद्वन्] (विश्वासु) सब (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धिनी (दिक्षु अन्तः) दिशाओं के भीतर (ते) तेरे (उद्यतानि) प्रवृत्त किये हुए (स्तोत्राणि) स्तुति योग्य कर्म (आ यन्तु) प्राप्त हों। (मे) मुझे (नु) निश्चय करके वह (देहि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे (यत्) जो कुछ (मे) मुझ को (अदत्तः असि) तू ने नहीं दिया है। (मे) मेरा (युज्यः) योग्य (सप्तपदः) अधिकार पाये हुए (सखा) सखा (असि) तू है ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष सब मनुष्यों में उत्तम कर्मों का प्रचार करे और विचारपूर्वक सब लोग उससे गुण प्राप्त करें ॥९॥

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०॥

भाषार्थः—(वरुण) हे श्रेष्ठ पुरुष! (नौ) हम दोनों की (बन्धुः) बन्धुता (समा) एक ही है और (जा) जाति भी (समा) एक ही है। (अहम्) मैं (तत्) वह (वेद) जानता हूं (यत्) जिससे (नौ) हम दोनों की (एषा) यह (जा) उत्पत्ति (समा) एक है। (तत्) वह (ददामि) देता हूं (यत्) जो (ते) तुझे (अदत्तः) विना दिये हुए [अस्मि] हूं। (ते) तेरा (युज्यः) योग्य (सप्तपदः) अधिकार पाये हुए (सखा) सखा (अस्मि) हूं ॥१०॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष सब मनुष्यों और प्राणियों को अपने समान जान कर प्रीतिपूर्वक उनका हित करें ॥१०॥

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः। अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्। तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥११॥

भाषार्थः—(स्वधावन्) हे आत्मधारण वाले, स्वाधीन (वरुण) श्रेष्ठ! तू (गृणते) तेरी स्तुति करने वाले (देवाय) विद्वान् पुरुष को (वयोधाः) बल वा अन्न धारण करनेवाला (देवः) तू देव है। और (स्तुवते) तेरी स्तुति करने वाले (विप्राय) पंडित के लिये (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला (विप्रः) पंडित है। तूने (हि) ही (पितरम्) हमारे पालनकर्ता (देवबन्धुम्) विद्वानों के बन्धु (अथर्वाणम्) निश्चलस्वभाव पुरुष को (अजीजनः) उत्पन्न किया है। (तस्मै) उसके लिये (उ) ही (सुप्रशस्तम्) अति उत्तम (राधः) धन (कृणुहि) कर, तू (नः) हमारा (सखा) सखा (च) और (परमम्) अतिशय करके (बन्धुः) बन्धु (असि) है ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् जन विद्वान् जन का सदा सत्कार करें, इसलिये कि विद्वानों से विद्वान् उत्पन्न होकर जगत् का उपकार करते हैं ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लिया है। (आ) और (ते) तेरे (मुखस्य) मुख के (संकाशात्) आकार से (ते) तेरे (सर्वम्) सब (वर्चः) ज्योति वा बल को (आ ददे) ले लिया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अधार्मिक दोषों और शत्रुओं को नाश करें ॥१॥

इतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्या प्रो अशस्तयः ।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ।।२॥

भाषार्थः—(इतः) यहां से (व्याध्यः) सब रोग (प्र) बाहिर, (अनुध्याः) सब अनुताप (प्र) बाहिर और (अशस्तयः) सब अपकीर्तियां (प्रो) बाहिर ही (यन्तु) चली जावें। (अग्निः) तेजस्वी राजा (रक्षस्विनीः) राक्षसों से युक्त [सेनाओं] को (हन्तु) मारे और (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (दुरस्यतीः) अनिष्ट चीतनेवाली [प्रजाओं] को (हन्तु) नाश करे ॥२॥

भावार्थः—राजा प्रजा में शान्ति रखने के लिये चोर डाकू आदि राक्षसों का नाश करे ॥२॥

सूक्तम् ॥११५॥

१—४ ॥ सविता जातवेदा वा देवता ॥ १, ४ अनुष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ टुप् ज्योतिष्मती ॥

दुर्लक्षणनाशोपदेशः—दुर्लक्षण के नाश का उपदेश ॥

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥१॥

भाषार्थः—(पापि) हे पापी ! (लक्ष्मि) लक्षण [लक्ष्मी] ! (इतः) यहां से (प्र पत) चला जा, (इतः) यहां से (नश्य) छिप जा, (अमुतः) वहाँ से (प्र पत) चला जा। (अयस्मयेन) लोहे के (अङ्केन) कांटे से (त्वा) तुझको (द्विषते) वैरी में (आ सजामसि) हम चिपकाते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य दुर्लक्षणों का सर्वथा त्याग करें। दुर्लक्षणों से दुष्ट लोग महादुःख पाते हैं ॥१॥

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्वित्राम्नत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥२॥

भाषार्थः—(या) जो (पतयालूः) गिरानेवाला (अजुष्टा) अप्रिय (लक्ष्मीः) लक्षण (मा) मुझपर (अभिचस्कन्द) आ चढ़ा है, (इव) जैसे (वन्दना) बेल (वृक्षम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष पर। (सवितः) हे ऐश्वर्यवान् [परमेश्वर!] (हिरण्यहस्तः) तेज वा सुवर्ण हाथ में रखनेवाला, (नः) हमें (वसु) धन (रराणः) देता हुआ तू (इतः) यहां से, (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरे [दुष्टों में] (ताम्) उसको (धाः) धर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के अनुग्रह से अधर्मरूप दुर्लक्षणों और दुष्टों से बचकर शुभ गुण प्राप्त करें ॥२॥

एकशतं लक्ष्म्यो ३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः। तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥३॥

भाषार्थः—(एकशतम्) एक सौ एक [अपरिमित, पापिष्ठ और माङ्गलिक] (लक्ष्म्यः) लक्षण (मर्त्यस्य) मनुष्य के (तन्वा साकम्) शरीर के साथ (जनुषः) जन्म से (अधि) अधिकार पूर्वक (जाताः) उत्पन्न हुए हैं। (तासाम्) उन में से (पापिष्ठाः) पापिष्ठ [लक्षणों] को (इतः) यहां से (निः) निश्चय करके (प्र हिण्मः) हम निकाल देते हैं, (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले परमेश्वर! (अस्मभ्यम्) हमें (शिवाः) माङ्गलिक [लक्षण] (नि) नियम से (यच्छ) दे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के कर्म फलों से शुभ और अशुभ लक्षणों सहित जन्मता है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा में चलते हैं, वे क्लेशों को मिटाकर मोक्ष सुख भोगते हैं ॥३॥

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥४॥

भाषार्थः—(एताः) इन [पुण्य लक्षणों] को और (एनाः) इन [पाप लक्षणों] को (व्याकरम्) मैंने स्पष्ट कर दिया है (इव) जैसे (खिले) विना जुते स्थान [जंगल] में (विष्ठिताः) खड़ी हुई (गाः) गौओं को। (पुण्याः) पुण्य (लक्ष्मीः) लक्षण (रमन्ताम्) ठहरे रहें, और (याः) जो (पापीः) पापी [लक्षण] हैं, (ताः) उन्हें (अनीनशम्) मैंने नष्ट कर दिया है ॥४॥

भावार्थः - मनुष्य भले और बुरे कर्मों के लक्षण समझकर भलों का स्वीकार और बुरों का त्याग करें ॥४॥

सूक्तम् ॥११६॥

१—२ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ परोष्णिक्; २ आर्च्यनुष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् १२ ॥

१—११ ॥ १, २, ९, १० विद्वान्, ३, ११, अग्निः, ४ बर्हि, ५ प्रजाः, ६, उषासनक्ता, ७ दैव्या होतारा, ८ भारतीडा सरस्वत्यो देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

मनुष्योन्नत्युपदेशः—मनुष्य की उन्नति का उपदेश ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः । १॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बहुत ज्ञान वा धन वाले पुरुष ! (समिद्धः) प्रकाश युक्त (देवः) दाता तू (अद्य) इस समय (मनुषः) मनुष्य के (दुरोणे) घर में (देवान्) दिव्य गुणों से (यजसि) संगति रखता है। (मित्रमहः) हे मित्रों के सत्कार करने हारे ! [उन दिव्य गुणों को] (च) निश्चय करके (आवह) तू ला। (त्वम्) तू (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (दूतः) गमनशील वा दुष्टतापक, (कविः) बुद्धिमान् और (प्रचेताः) उत्तम चेतना वाला (असिः) है ॥१॥

भावार्थः—पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् मनुष्य अपने कुल में प्रकाशित होकर संसार का उपकार करे ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० सू० ११० और यजुर्वेद में भी है—अ० २९ म० २५, २६, २८-३६। ऋषि जमदग्नि हैं। देवता प्रायः दयानन्दकृत यजुर्वेदभाष्य के अनुसार हमने माने हैं। मन्त्र १—१० निरुक्त में भी व्याख्यात हैं—अ० ८ ख० ५, ६, ८ १४, १७ ॥

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

भाषार्थः—(तनूनपात्) हे विस्तृत पदार्थों के न गिराने वाले, (सुजिह्व) हे बड़े जयशील वा मधुरभाषी विद्वान् ! (ऋतस्य) सत्य के (यानान्) चलने योग्य (पथः) मार्गों को (मध्वा) ज्ञान से (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (स्वादय) स्वाद ले। (धीभिः) कर्मों के साथ (मन्मानि) ज्ञानों (उत) और (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ तू (देवत्रा) विद्वानों के बीच (नः) हमारे लिये (अध्वरम्) सन्मार्ग देने वाला वा हिंसा रहित व्यवहार को (च) अवश्य (कृणुहि) कर ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—आप्त विद्वान् पुरुष ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड में निपुण होकर संसार का उपकार करते हैं ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि समान तेजस्वी विद्वान् ! (आजुह्वानः) ललकारने वाला, (ईड्यः) स्तुति योग्य (च) और (वन्द्यः) वन्दना योग्य तू (वसुभिः) निवास के हेतु श्रेष्ठों के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निवाहने वाला होकर (आयाहि) आ। (यह्व) हे पूजनीय ! (त्वम्) तू (देवानाम्) दिव्य गुणों का (होता) दाता (असि) है। (सः) सो तू (इषितः) इष्ट और (यजीयान्) अत्यन्त दाता हो कर (एनान्) इन [उत्तम गुणों] का (यक्षि) दानकर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों में प्रशंसनीय होकर संसार में सर्व हितकारी होवे ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्युं प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

भाषार्थः—(अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) पहिले [वर्तमान] (प्राचीनम्) प्राचीन (बर्हिः) प्रवृद्ध ब्रह्म (प्रदिशा) अपने निर्देश वा शासन से (अस्याः) इस (पृथिव्याः) पृथिवी के (वस्तोः) ढक लेने के लिये (वृज्यते) छोड़ा जाता है [वर्तमान रहता है]। (वितरम्) विशेष कर तारने वाला, (देवेभ्यः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों से (वरीयः) अधिक विस्तार वाला, (स्योनम्) सुखदायक ब्रह्म (अदितये) अखण्ड मोक्ष सुख [देने] के लिये (वि उ) विशेष करके ही (प्रथते) फैलता है ॥४॥

भावार्थः—वह परब्रह्म अपनी अनन्त सामर्थ्य से पृथिवी और सूर्य आदि लोकों को परस्पर आकर्षण में रखता और पुरुषार्थी विद्वानों को मुक्ति देता है ॥४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥

भाषार्थः—(व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली प्रजायें (उर्व्या) विस्तीर्ण कर्म को (वि) विशेष करके (श्रयन्ताम्) सेवन करें, (न) जैसे (शुम्भमानाः) शोभायमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जनयः) स्त्रियां (पतिभ्यः) अपने पतियों के लिये। (देवीः) प्रकाशमान (बृहतीः) बड़ी (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहार में व्याप्ति रखने वाली प्रजाओं तुम (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (सुप्रायणाः) बड़े उत्तम घर वाले (द्वारः) द्वारों के समान (भवत) हो जाओ ॥५॥

भावार्थः—जैसे गुणवती स्त्रियां अपने अपने पतियों का हित करती रहती हैं, और जैसे अच्छे घर वाले द्वारों से आना जाना सुगम होता है, इसी प्रकार सब स्त्री पुरुष उत्तम गुण ग्रहण करें और संसार में फैलावें ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥

भाषार्थः –(सुष्वयन्ती=सुसुअयन्त्यौ) अति सुन्दरता से चलती हुई, (यजते) संगति योग्य, (उपाके) पास पास रहने वाली, (दिव्ये) दिव्य गुण वाली, (योषणे) सेवा योग्य, (बृहती) वृद्धि करने वाली (सुरुक्मे) सुन्दर शोभा वाली, (शुक्रपिशम्) शुद्ध रूप युक्त (श्रियम्) सेवनीय श्री को (अधि) अधिक (दधाने) धारण करने वाली (उषासानक्ता) रात और प्रभात वेलायें [दिन और रात] (योनौ) हमारे घर में (नि) नित्य (आ सदताम्) आवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य रात दिन पुरुषार्थ करके विद्यारूपी और धनरूपी लक्ष्मी को अपने घरों में बढ़ावें ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

भाषार्थः – (प्रथमा) प्रख्यात, (सुवाचा) सुन्दर वाणी वाले, (दैव्या) दिव्य गुण वाले, (होतारा) दोनों दाता [अग्नि और वायु] (मनुषः) मनुष्य के (यज्ञम्) पूजनीय कर्म को (यजध्यै) पूरा करने के लिये (मिमाना) निर्माण करते हुए (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए, (कारू) दो शिल्पी रूप, (प्राचीनम्) प्राचीन (ज्योतिः) ज्योति (प्रदिशा) अपने अनुशासन से (दिशन्ता) देते हुए [आवें—म० ६] ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि और वायु से उपकार लेकर स्वस्थ रहकर अनेक प्रकार के शिल्प आदि सिद्ध करके सुखी रहें ॥७॥

[दैव्या होतारा दैव्यौ होतारावयं चाग्निरसौ च मध्यमः] निरु० । ८ । ११ । इस वचन के अनुसार (होतारा) का अर्थ अग्नि और वायु लिया गया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ नो यज्ञं भारती तूयमे त्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८॥

भाषार्थः—(चेतयन्ती) चेताने वाली (भारती) पोषण करने वाली विद्या (नः) हमारे (यज्ञम्) पूजनीय, (मनुष्वत्) मनुष्यों से युक्त (तूयम्) वृद्धि करने वाले कर्म में (इह) यहां पर (आ एतु) आवे, (इडा) स्तुति योग्य नीति, और (सरस्वतीः = सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि [भी आवे] । (तिस्रः) तीनों (देवीः) देवियां (इदम्) इस (स्योनम्) सुखकारी (बर्हिः) बढ़े हुए काम में (स्वपसः) उत्तम कर्म वाले पुरुषों को (आ सदन्ताम्) आकर प्राप्त होवें ॥८॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम विद्या, उत्तम नीति और उत्तम बुद्धि प्राप्त करके परस्पर उन्नति करें ॥८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (इमे) इन दोनों (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (रूपैः) अनेक रूपों से (अपिंशत्) अवयव वाला बनाया है । (होतः) हे दानशील पुरुष ! (यजीयान्) अधिक संगति करने वाला, (इषितः) प्रेरणा किया गया (विद्वान्) विद्वान् तू (अद्य) आज (इह) यहाँ पर (तम्) उस (देवम्) प्रकाशमय (त्वष्टारम्) विश्वकर्मा को (यक्षि) पूज ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य जगत्पालक परमात्मा की अनेक रचनाओं को विचार कर अपनी उपकार शक्ति बढ़ावें ॥९॥

उपावसृजत्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् पुरुष तू] (त्मन्या) आत्म बल से (समञ्जन्) यथावत् प्रकट करता हुआ (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) रक्षा साधन अन्न और (हवींषि) देने लेने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (उप-अव-सृज) आदरपूर्वक दिया कर । (वनस्पतिः) किरनों का स्वामी सूर्य (शमिता) शान्तिकर्ता (देवः) दानशील मेघ और (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) अन्न को (मधुना) मीठे रस वाले (घृतेन) जल के साथ (स्वदन्तु) स्वादु बनावें ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य आत्मबल से अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके सुपात्रों को सदा दान करें और सूर्य, जल, अग्नि द्वारा पदार्थों को उत्तम बनावें ॥१०॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥

भाषार्थः —(सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध होकर (अग्निः) विद्वान् पुरुष ने यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (वि) विशेष करके (अमिमीत) निर्माण किया, और देवानाम्) विद्वान् लोगों का (पुरोगाः) अगुआ (अभवत्) हुआ। (अस्य) इस होतुः) दानशील, (ऋतस्य) सत्यशील, पुरुष के (प्रशिषि) अनुशासन और (वाचि) ाणी में (देवाः) विद्वान् लोग (स्वाहाकृतम्) सुन्दर वाणी से सिद्ध किया हुआ हविः) खाने योग्य अन्न आदि (अदन्तु) खावें ॥११॥

भावार्थः—पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम कर्म करने से विद्वानों का अग्रगामी ोता है और उसी के शासन और वचन में चलकर विद्वान् लोग आनन्द ोगते हैं ॥११॥

सूक्तम् १३ ॥

१—११ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३, जगती, २, ६, पथ्या पङ्क्तिः, ४, ९, ानुष्टुप्, ५, त्रिष्टुप्: ७, ८ उष्णिक्, १०, ११ गायत्री छन्दः ॥

दोषनिवारणायोपदेशः - दोष निवारण के लिये उपदेश ॥

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥१॥

भाषार्थः—(दिवः) व्यवहार की (कविः) बुद्धि वाला (वरुणः) श्रेष्ठ परमेश्वर हि) ही (मह्यम्) मुझ को (ददिः) दाता है। (उग्रैः) प्रचण्ड (वचोभिः) वचनों से [हे सर्प] (ते विषम्) तेरे विष को (नि रिणामि) मिटाये देता हूं। (खातम्) खुदे हुए (अखातम्) विना खुदे (उत) और (सक्तम्) चिपटे हुए [विष] को (अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है। (ते विषम्) तेरा विष (धन्वन्) रेतीले देश में (इरा इव) जल के समान (नि जजास) नष्ट हो गया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के दिये हुए ज्ञान से अपने शारीरिक और आत्मिक दोष मिटावें जैसे वैद्य सर्प आदि के विष को नाश करता ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् ते अपोदकं विषं तत् तं ए त स्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (ते) तेरा (अपोदकम्) जल [रुधिर] का सुखाने वाला (विषम्) विष है, (ते) तेरे (तत्) उसको (एतासु) इन [नाड़ियों] के भीतर (अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है। (ते) तेरे (मध्यमम्) मध्य के, (उत्तमम्) ऊपर के (उत) और (अवमम्) नीचे के (रसम्) रस को (गृह्णामि) मैं पकड़ता हूं। (आत्) और (ते) वह तेरा (उ) निश्चय करके (भियसा) भय से (नेशत्) नष्ट हो जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विषरूपी आत्म दोषों को सर्वथा नष्ट करे ॥२॥

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥३॥

भाषार्थः—(मे) मेरा (रवः) शब्द (नभसा) मेघ के साथ (तन्यतुः न) गर्जन के समान (वृषा) शक्ति वाला है। (आत् उ) और भी (वचसा) अपने वचन से (ते) तेरे, (ते) तेरे [रस को] (बाधे) हटाता हूं। (अहम्) मैंने (नृभिः) मनुष्यों के साथ (अस्य) इसके (तम् रसम्) उस रस को (तमसः) अन्धकार से (ज्योतिः इव) ज्योति के समान (अग्रभम्) मैंने पकड़ लिया है [अब] (सूर्यः) सूर्य (उदेतु) उदय होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मबल बढ़ाकर विषरूपी अज्ञान का नाश करके विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश करें ॥३॥

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४॥

भाषार्थः—(चक्षुषा) इस नेत्र से (ते) तेरे (चक्षुः) नेत्र को (हन्मि) नाश करता हूं। (विषेण) इस विष से (ते) तेरे (विषम्) विष को (हन्मि) नाश करता हूं। (अहे) हे बड़े हननशील, सर्प (म्रियस्व) तू मरजा, (मा जीवीः) मत जीता रह। (विषम्) विष (त्वा) तुझ को (प्रत्यक्) प्रतिकूल गति से (अभि) सब ओर (एतु) प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सर्परूपी कुव्यवहारों को खोज खोज कर हठ के साथ नाश करें जैसे वैद्य एक विष से दूसरे विष को नाश करता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैरा॑त॒ पृश्न॒ उप॑तृण्य॒ बभ्र॒ आ मे॑ शृणु॒तासि॑ता॒ अली॑काः ।
मा मे॒ सख्युः॑ स्ता॒मान॒मपि॑ ष्ठाताश्रा॒वय॑न्तो॒ नि वि॒षे र॑मध्वम् ॥५॥

भाषार्थः—(कैरात) हे किरात अर्थात् शूकरादि के फिरने के स्थान में रहने वाले ! (पृश्ने) हे चिपटने वाले ! (उपतृण्य) हे वागड़ [घासस्थान] मैं दबक जाने वाले ! (बभ्रो) हे भूरे रंग वाले ! (असिताः) हे काले वर्ण वालो ! (अलीकाः) हे तुच्छ जीवो ! तुम (मे) मेरी (आ) भले प्रकार (शृणुत) सुनो। (मे) मेरे (सख्युः) मित्र के (स्तामानम्) घर के (अपि=अभि) पास (मा स्थात) मत ठहरो । (आश्रावयन्तः) अच्छे प्रकार सुनते हुए तुम (विषे) इस विष में (नि रमध्वम्) चुपचाप ठहरे रहो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य सर्प समान दुःखदायी कुविचारों को नाश करके सदा शान्तस्वभाव रहें ॥५॥

अ॒सि॒तस्य तैमा॒तस्य॑ ब॒भ्रोरपो॑दकस्य च । सा॒त्रा॒सा॒हस्या॒हं म॒न्योरव॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो॒ वि मु॑ञ्चामि॒ रथाँ॑ इव ॥६॥

भाषार्थः—(असितस्य) काले वर्ण वाले, (तैमातस्य) ओदे स्थान में रहने वाले, (बभ्रोः) भूरे वर्ण वाले, (अपोदकस्य) जल से बाहर रहने वाले, (च) और (सात्रासहस्य) मिलकर रहने वाली प्रजाओं के हराने वाले [सर्प] के (मन्योः) क्रोध के (रथान् इव) रथों को जैसे, (धन्वनः) धनुष की (ज्याम् इव) डोरी को जैसे (अहम्) मैं (अव) अलग (वि मुञ्चामि) ढीला करता रहूं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य सर्प रूप भयंकर दुष्ट स्वभावों को ढीला करदें जैसे चाप की डोरी को ढीला करके रखते हैं ॥६॥

आलि॑गी च॒ विलि॑गी च॑ पि॒ता च॑ मा॒ता च॑ ।
वि॒द्म वः स॒र्वतो॒ बन्ध्व॒र॑सा॒ः किं क॑रिष्यथ ॥७॥

भाषार्थः—(च) और (आलिगी) चारों ओर घूमने वाली (च) और (विलिगी) टेढ़ी टेढ़ी चलने वाली [सांपिनी] (च) और (पिता) उसका पिता [सांप] (च) और (माता) उसकी माता [सांपिनी तुम सब, (वः) तुम्हारे (बन्धु) बन्धुपन को (सर्वतः) सब प्रकार से (विद्म) हम जानते हैं। (अरसाः) निर्वीर्य तुम (किम्) क्या (करिष्यथ) करोगे ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः मनुष्य कुवासनाओं का और उनके कारणों का इस प्रकार नाश करें जैसे सांप और उनके माता पिता आदि का नाश करते हैं ॥७॥

उरुगूलायां दुहिता जातो दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८॥

भाषार्थः—(उरुगूलायाः) बहुत डसने वाली [सांपिनी] की (दुहिता) पुत्री (असिक्न्या) उस काली [नागिनी] से (जाता) उत्पन्न हुई (दासी) डसने वाली [सांपिनी] है। (सर्वासाम्) सब (दद्रुषीणाम्) दद्रु अर्थात् दुर्गति वा खुजली देने वाली [सांपिनों] (प्रतङ्कम्) जीवन को कष्ट देने वाला (विषम्) विष (अरसम्) निर्बल है ॥८॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य की ओषधि से सर्प आदि का विष निष्फल होता है, वैसे ही मनुष्य सद्ज्ञान से कुवासनाओं की कुचालें मिटावें ॥८॥

कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥९॥

भाषार्थः—(गिरेः) पहाड़ के (अवचरन्तिका) नीचे घूमने वाली (कर्णा) कान वाली (श्वावित्) साही (तत्) यह (अब्रवीत्) बोली, (याः काः) जो कोई (च) (इमाः) यह सब (खनित्रिमाः) खनती में रहने वाली [सापिनी] हैं, (तासाम्) उनका (विषम्) विष (अरसतमम्) अत्यन्त निर्बल होवे ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य अपने हृदय की कुवासनाओं को नष्ट करे, जैसे बनैले जन्तुओं के विष को ॥९॥

ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥१०॥

भाषार्थः—(ताबुवम्) वृद्धि करने वाली वस्तु (ताबुवम्) पीड़ा देने वाली वस्तु (न) नहीं होती, (त्वम्) तू [सर्प] (घ इत्) अवश्य ही (ताबुवम्) दुःखनाशक वस्तु (न) नहीं (असि) है। (ताबुवेन) हमारी वृद्धि करने वाले कर्म से (विषम्) तेरा विष (अरसम्) निर्बल हो जावे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक अपने दुष्ट भावों को नष्ट करे ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्तुवं न तस्तुवं न धेत् त्वमसि तस्तुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥११॥

भाषार्थः— (तस्तुवं न) निन्दानाशक वस्तु के समान (तस्तुवम्) निन्दाप्रापक (न) नहीं है, (त्वम्) तू (घ इत्) अवश्य ही (तस्तुवम्) निन्दा प्रापक वस्तु (असि) है। (तस्तुवेन) निन्दानाशक कर्म से (विषम्) तेरा विष (अरसम्) शक्तिहीन होवे ॥११॥

भावार्थः मनुष्य प्रशंसनीय कर्म करके दुष्ट कर्मों को छोड़ें ॥११॥

सूक्तम् १४ ॥

१-१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १-७, ९, १०, १२, १३ अनुष्टुप्; ८ पुर उष्णिक्; ११ वर्धमाना गायत्री ॥

शत्रुविनाशोपदेशः—शत्रु के विनाश का उपदेश ॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१॥

भाषार्थः —(सुपर्णः) सुन्दर पक्षवाले वा शीघ्रगामी [गरुड़, गिद्ध आदि पक्षी के समान दूरदर्शी पुरुष] ने (त्वा) तुझ को (अनु=अन्विप्य) ढूंढ़ कर (अविन्दत्) पाया है, (सूकरः) सूकर [सूअर पशु के समान तीव्र बुद्धि और बलवान् पुरुष] ने (त्वा) तुझको (नसा) नासिका से (अखनत्) खोदा है। (ओषधे) हे तापनाशक पुरुष (त्वम्) तू (दिप्सन्तम्) मारने की इच्छा करने वाले को (दिप्स) मारना चाह, और (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पुरुष को (अव जहि) मार डाल ॥१॥

भावार्थः—गिद्ध मोर आदि पक्षी बड़े तीव्रदृष्टि होते हैं, और सूअर एक बलवान् तीव्रबुद्धि पशु अपनी नासिका से खाद्य तृण को भूमि से खोद कर खाजाता है। इसी प्रकार दूरदर्शी पुरुषार्थी बलवान् अपने शत्रुओं को खोज कर नाश करता है ॥१॥

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२॥

भाषार्थः (यातुधानान्) पीड़ा देने वालों को (अव जहि) मार डाल, और (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले को (अव जहि) नाश करदे। (अथो) और भी (यः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (अस्मान्) हमें (दिप्सति) मारना चाहता है (तम् उ) उसे भी (त्वम्) तू (ओषधे) हे अन्न आदि ओषधि के समान तापनाशक ! (जहि) नाश कर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य शुभ गुण प्राप्त करके दुर्गुणों का नाश करे जैसे अन्न सेवन से भूख का नाश होता है ॥२॥

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥

भाषार्थः—(रिश्यस्य) हिंसक के (परिशासम्) हिंसा सामर्थ्य को (इव) अवश्य (त्वचः परि) उसके चर्म वा शरीर से (परिकृत्य) काट डालकर, (देवाः) हे विद्वानों ! (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले के लिये (कृत्याम्) हिंसा को (निष्कम् इव) तलछट के समान (प्रति मुञ्चत) फेंक दो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य दुष्कर्म को मूल सहित निकम्मी वस्तु के समान त्यागें ॥३॥

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥४॥

भाषार्थः—(कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृते) हिंसाकारी के लिये (हस्तगृह्य) हाथ में लेकर (पुनः) अवश्य (परा नय) दूर लेजा । (अस्मै) इस पुरुष के लिये (समक्षम्) सामने (आ धेहि) रख दे, (यथा) जिससे [वह पुरुष] (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (हनत्) मारे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य हिंसा आदि कर्मों को इस प्रकार त्याग दे जैसे उपद्रवी को हाथ पकड़ कर निकाल देते हैं ॥४॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥

भाषार्थः—(कृत्याः) शत्रुनाशक सेनायें (कृत्याकृते) हिंसाकारी के लिये (सन्तु) होवें, और (शपथः) दुर्वचन (शपथीयते) दुर्वचन बोलने वाले पुरुष के से आचरण वाले को [होवे], (कृत्या) शत्रुनाशक सेना (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पर (पुनः) अवश्य (वर्तताम्) घूमे, (इव) जैसे (सुखः) अच्छा बना हुआ (रथः) रथ [घूमता है] ॥५॥

भावार्थः मनुष्य दोषों के त्यागने का शीघ्र उपाय करे ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥

भाषार्थः—(यदि) चाहे (स्त्री) स्त्री ने (यदि वा) अथवा (पुमान्) पुरुष ने जो (कृत्याम्) हिंसा (पाप्मने) पाप करने के लिये (चकार) की है। (ताम्) उसको (उ) निश्चय करके (तस्मै) उसी पुरुष के लिये (नयामसि) हम लिये चलते हैं, (इव) जैसे (अश्वम्) घोड़े को (अश्वाभिधान्या) घोड़े बांधने की रस्सी से ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य दुष्ट स्त्री पुरुषों को यथावत् दण्ड देवें ॥६॥

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥

भाषार्थः—(यदि वा) चाहे (देवकृता) गतिशील सूर्य आदि लोकों द्वारा की गई (यदि वा) चाहे (पुरुषैः) पुरुषों से (कृता) की गई (असि) तू है। (ताम् त्वा) उस तुझ को (पुनः) फिर (वयम्) हम इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (सयुजा) समान संयोग से (नयामसि) लिये चलते हैं ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक विपत्तियों का प्रतिकार करें ॥७॥

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् सेनापति ! (पृतनाषाट्) संग्राम जीतने वाला तू (पृतनाः) संग्रामों को (सहस्व) जीत। (पुनः) निश्चय करके (कृत्याम्) हिंसा को (कृत्याकृते) हिंसा करने वाले पुरुष की ओर (प्रतिहरणेन) लौटा देने से (हरामसि) हम नाश करते हैं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य शूर सेनापति के साथ शत्रु सेना को नाश करें ॥८॥

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९॥

भाषार्थः—(कृतव्यधनि) हे छेदने वाले शस्त्रयुक्त सेना ! (तम्) चोर को (विध्य) छेद ले। (यः) जिसने (चकार) हिंसा की है, (तम्) उसको (इत्) अवश्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जहि) नाश कर। (अचक्रुषे) हिंसा न करने वाले पुरुष को (वधाय) मारने के लिये (वयम्) हम लोग (त्वाम्) तुझे (न) नहीं (सम् शिशीमहि) तीक्ष्ण करें ॥९॥

भावार्थः—सेनापति लोग दुष्कर्मियों पर ही सेना चढ़ावें और सत्पुरुषों पर कभी नहीं ॥९॥

पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०॥

भाषार्थः—(पुत्रः इव) पुत्र के समान (पितरम्) अपने पिता के पास (गच्छ) पहुंच, (अभिष्ठितः) ठोकर खाये हुए (स्वजः इव) लिपटने वाले सांप के समान [शत्रु को] (दश) डस ले। (कृत्ये) हे हिंसाशक्ति! (बन्धम्) बन्धन (अवक्रामी इव) छोड़ कर भागने वाले के समान, (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (पुनः) अवश्य (गच्छ) पहुंच ॥१०॥

भावार्थः—सेना के लोग सेनापति से अनायास मिलते रहें और शत्रुओं का शीघ्र नाश करें ॥१०॥

उदेणीव वारण्यभिस्कदं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११॥

भाषार्थः—(वारणी) हथिनी, अथवा (एणी इव) कृष्णमृगी के समान (मृगी इव) और मृगी के समान (अभिस्कन्दम्) धावा करने वाले पुरुष पर, (कृत्या) शत्रु नाशक सेना (कर्तारम्) हिंसक को (उद्) उछल कर (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥११॥

भावार्थः—हमारी सेना शत्रुओं पर इस प्रकार शीघ्र धावा करे जैसे घेरा हुआ पशु अपने आखेटिक पर दौड़ता है ॥११॥

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१२॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी! (सा) वह (कृत्या) शत्रु नाशक सेना (तम्) चोर (प्रति) पर (इष्वाः) बाण से (ऋजीयः) अधिक सीधी (पततु) गिरै और (पुनः) फिर (तम्) उस (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी को (मृगम् इव) आखेट पशु के समान (गृह्णातु) पकड़ लेवे ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य आकाश और पृथिवी मार्ग से प्रबल सेना द्वारा शत्रुओं को मारें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृते पुनः ॥१३॥

भाषार्थः—वह [सेना] (अग्निः इव) अग्नि के समान (प्रतिकूलम्) विरुद्ध [तिसे, और (अनुकूलम्) तट तट से चलने वाले (उदकम् इव) जल के समान [शीघ्र] (एतु) चले। (कृत्या) शत्रु नाशक सेना (कृत्याकृतम्) हिंसाकारी पर (पुनः) [वश्य (वर्ततताम्) घूमे, (इव) जैसे (सुखः) अच्छा बना हुआ (रथः) रथ [घूमता]] ॥१३॥

भावार्थः— हमारी सेना शत्रुओं पर इस प्रकार शीघ्र धावा करे जैसे [वाग्नि वन में, तट के भीतर भीतर चलने वाला जल नदी में और अच्छा [बना हुआ रथ मार्ग में चलता है ॥१३॥

सूक्तम् १५ ॥

१—११ ॥ ओषधिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विघ्ननिवारणोपदेशः—विघ्नों के हटाने का उपदेश ।

एका च मे दश च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (एका) एक [संख्या] (च च) और (मे) मेरे [लिये (दश) दस (अपवक्तारः) निन्दा करने वाले व्यवहार हैं, (ऋतजाते) हे सत्य उत्पन्न हुई, (ऋतावरि) हे सत्यशील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास [करः) कर ॥१॥

भावार्थः— मनुष्य संसार में अनेक विघ्नों से बचने के लिये पुरुषार्थ [र्वक परमेश्वर का आश्रय लें ॥१॥

इस सूक्त में मन्त्र १ की संख्या ११, म० २ में द्विगुणी बाईस, म० ३ में [न गुणी तेतीस, इत्यादि, म० १० तक एक सौ दस, और म० ११ में एक सहस्र [क सौ है। अर्थात् सम मन्त्रों में सम और विषम में विषम संख्यायें हैं ॥

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (द्वे) दो (च च) और (मे) मेरे लिये (विंशति) बीस···म० १ ॥२॥

तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥३॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (तिस्रः) तीन (च च) और (मे) मेरे लिये (त्रिंशत्) तीस···म० १ ॥३॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (चतस्रः) चार (च च) और (मे) मेरे लिये (चत्वारिंशत्) चालीस··· म० १ ॥४॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (पञ्च) पाँच (च च) और (मे) मेरे लिये (पञ्चाशत्) पंचास···म० १ ॥५॥

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (षट्) छह (च च) और (मे) मेरे लिये (षष्टिः) साठ···म० १ ॥६॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (सप्त) सात (च च) और (मे) मेरे लिये (सप्ततिः) सत्तर···म० १ ॥७॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (अष्ट) आठ (च च) और (मे) मेरे लिये (अशीतिः) अस्सी···म० १ ॥८॥

नवं च मे नवतिश्च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥९॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (नव) नौ (च च) और (मे) मेरे लिये (नवतिः) ब्बे ···म० १ ॥९॥

दशं च मे शतं च मेऽपवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (दश) दस (च च) और (मेरे) मेरे लिये (शतम्) ी···म० १ ॥१०॥

शतं च मे सहस्रं चापवक्तारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (शतम्) सौ (च च) और (सहस्रम्) सहस्र (ः पवक्तारः) निन्दक व्यवहार हैं, (ऋतजाते) हे सत्य में उत्पन्न हुई (ऋतावरी) हे सत्य शील, (ओषधे) हे तापनाशक शक्ति परमेश्वर ! (मधुला) ज्ञान वा मिठास देने वाली तू (मे) मेरे लिये (मधु) ज्ञान वा मिठास (करः) कर ॥११॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥११॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १६ ॥

१—११ ॥ आत्मा देवता ॥ १० जगती; शिष्ट्वैकपात् त्रिष्टुप् ॥

पुरुषार्थोपदेशः—पुरुषार्थ का उपदेश ॥

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (एकवृषः) एक [परमेश्वर] के साथ ऐश्वर्यवा (असि) है, [सुख] (सृज) उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरसः) निर्बल (असि है ॥१॥

भावार्थः—एक परमात्मा के ज्ञान से मनुष्य संसार का उपकार क सकता है, ईश्वर ज्ञान के विना मनुष्यजन्म व्यर्थ है ॥१॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (द्विवृषः) दो [परमात्मा और आत्मा] के स ऐश्वर्यवान् है·····म० १ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर और आत्मा के ज्ञान से अपना ब बढ़ावे ॥२॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥३॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (त्रिवृषः) तीन [सत्त्व, रज और तम, गुणों] प ऐश्वर्यवान् (असि) है···म० १ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के विज्ञान से करें ॥३॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥४॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (चतुर्वृषः) चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष द्वारा समर्थ (असि) है·····म० १ ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य धर्म आदि चार प्रकार के पुरुषार्थों से वृ करें ॥४॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यदि) जो तू (पञ्चवृषः) पांच [भूतों, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश] पर ऐश्वर्यवान् (असि) है···म० १ ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य पञ्च भूतों से यथावत् उपकार लेकर सुखी होवें ॥५॥

यदि षड्वृषोऽसि सूजारसोऽसि ॥६॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (षड्वृषः) छह [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहङ्कार] पर समर्थ (असि) है···म० १ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य काम क्रोध आदि षड् वर्ग को वश में रख कर उन्नति करें ॥६॥

यदि सप्तवृषोऽसि सूजारसोऽसि ॥७॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (सप्तवृषः) सात [ऋषियों, पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि] पर समर्थ (असि) है···म० १ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य जितेन्द्रिय हो कर आनन्द प्राप्त करें ॥७॥

यद्यष्टवृषोऽसि सूजारसोऽसि ॥८॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (अष्टवृषः) आठ [योग के अङ्गों, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि] में समर्थ (असि) है···म० १ ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य योग के आठों अङ्गों में अभ्यास करने से अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश करके विवेक प्राप्त करें ॥८॥

यदि नववृषोऽसि सूजारसोऽसि ॥९॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (नववृषः) नव [अर्थात् नव द्वार वाले शरीर] से न् (असि) है·····म० १ ॥९॥

भावार्थः—शरीर में दो कान, दो आँखें, दो नथने, एक मुख, एक गुदा, एक उपस्थेन्द्रिय नव छिद्र वा द्वार हैं, यथा, नवद्वारपुरे देही-गीता अ० ५ श्लो० १३। मनुष्य शरीर की शुद्धि रखने और उससे कष्ट सहने से ऐश्वर्यवान् हों ॥९॥

यदि दशवृषोऽसि सूजारसोऽसि ॥१०॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (दशवृषः) दस [दस बल अर्थात् दान, शील, क्षमा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, सेनायें, उपाय, दूत, और ज्ञान] से ऐश्वर्यवान् (असि) है, (सृज) [सुख] उत्पन्न कर, [नहीं तो] तू (अरसः) निर्बल (असि) है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वोक्त दस प्रकार के बलों के अनुष्ठान से ऐश्वर्यवान् होवें ॥१०॥

यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११॥

भाषार्थः—(यदि) जो तू (एकादशः) ग्यारहवां [पूर्वोक्त दस से भिन्न पुरुषार्थहीन] (असि) है, (सः) वह तू (अपोदकः) वृद्धि सामर्थ्य रहित (असि) है ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त दस मन्त्रों में कहे पुरुषार्थों का नहीं करता, वह पुरुषार्थहीन अपनी और दूसरों की वृद्धि नहीं कर सकता ॥११॥

सूक्तम् १७ ॥

१—१८ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १—६ त्रिष्टुप्; ७—१८ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥१॥

भाषार्थः—(ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा से (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न हुए, (ते) उन (प्रथमाः) मुख्य देवताओं अर्थात् (वीडुहराः) बड़े तेज वाले, (मयोभूः) सुख देने वाले, (अकूपारः) अकुत्सित वा बड़े पार वाले सूर्य, (सलिलः) जल वाले समुद्र, (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाले वायु, (उग्रम्) उग्र (तपः) अग्नि, (देवीः) दिव्यगुणवाली (आपः) व्यापनशील प्रजाओं ने (ब्रह्मकिल्बिषे) ब्रह्मवादी के अपराध के विषय में (अवदन्) बातचीत की ॥१॥

भावार्थः ब्रह्मवादी लोग सृष्टि के पदार्थों से ब्रह्मविद्या प्राप्त करके सुख भोगें। और पूर्वज ऋषियों के समान परस्पर शंका समाधान करके ब्रह्मनिष्ठ हों ॥१॥

इस सूक्त के सात मन्त्र १, २, ३, ५, ६, १०, ११, ऋग्वेद के मण्डल १० का सात मन्त्र वाला सूक्त १०९ है ॥ वहाँ शाकलकर्कसंहिता और अजमेर वैदिक यन्त्रालय की ऋक्संहिता के अनुसार जुहू नाम ब्रह्मजाया अथवा ब्रह्मपुत्र ऊर्ध्वनाभा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम ऋषि और विश्वे देवा देवता हैं, ऋग्वेद सायण भाष्य में जुहू नाम ब्रह्मवादिनी है। इससे यह सूक्त ब्रह्मविद्यापरक है ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

भाषार्थः —(अहृणीयमानः) क्रोध नहीं करते हुए, (प्रथमः) मुख्य (राजा) राजा (सोमः) बड़े ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा ने (पुनः) अवश्य (ब्रह्मजायाम्) ब्रह्म विद्या को (प्रायच्छत्) दान किया है। (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वप्रेरक, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (अन्वर्तिता) अनुकूलगामी और (होता) ग्रहीता (आसीत्) था और (हस्तगृह्य) हाथ में लेकर [वही उसे] (आनिनाय) लाया ॥२॥

भावार्थः—परम कृपालु परमात्मा ने वेद विद्या प्रदान की है, जिसको बुद्धिमान् पुरुष आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

भाषार्थः —(च) और [उस विद्वान् ने] (इत्) ही (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। (ब्रह्मजाया) यह ब्रह्म विद्या है, (अस्याः) इसका (आधिः) आधार वा आश्रय (हस्तेन एव) हाथ से ही (ग्राह्यः) पकड़ना चाहिये। (एषा) यह (दूताय) सताने वाले को (प्रहेया) देने योग्य (न तस्थे) नहीं स्थित हुई है, (तथा) उसी से (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय का (राष्ट्रम्) राज्य (गुपितम्) रक्षा किया गया [रहता है] ॥३॥

भावार्थः —विद्वान् लोग ब्रह्म विद्या का दृढ़ता से आदर करके आनन्द करते हैं, इसी से राज्य की रक्षा रहती है ॥३॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्रामवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४॥

भाषार्थः - (ग्रामम्) गांव पर (अवपद्यमानाम्) गिरती हुई (याम्) जिस (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति अविद्या को (आहुः) वे लोग बताते हैं कि (एषा) यह (विकेशी) विरुद्ध प्रकाश वाला (तारका इति) तारा है। (सा) वह (ब्रह्मजाया) ब्रह्मविद्या (राष्ट्रम्) उस राज्य को (वि दुनोति) उलट पलट कर देती है (यत्र)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें (उल्कुषीमान्) उल्काओं का कोष वा संग्रह वाला (शशः) गतिशील तारा (प्र अपादि) गिरा हो ॥४॥

भावार्थः—जिस राज्य में अविद्या प्रबल होती है वह अत्याचारी राज्य ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे आकाश से तारा गिरने से नष्ट हो गया हो ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्ददृ बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं १ न देवाः ॥५॥

भाषार्थः—(विषः) व्याप्तव्य कर्म में (वेविषत्) प्रवेश करता हुआ (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी अर्थात् वेद के लिये अवश्य आचरण करने वाला पुरुष (चरति) विचरता है, (सः) वह (देवानाम्) विद्वानों का (एकम्) मुख्य (अङ्गम्) अङ्ग (भवति) होता है। (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (तेन) उसी कारण से (बृहस्पतिः) बड़ी बड़ी विद्याओं के रक्षक, बृहस्पति [उस ब्रह्मचारी ने (सोमेन) परमेश्वर करके (नीताम्) लायी गई (जुह्वम्) दानशीला (जायाम्) सुख उत्पन्न करने हारी विद्या को न) अब (अनु अविन्दत्) पा लिया है ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य तपश्चरण द्वारा ब्रह्मविद्या प्राप्त करके विद्वानों में प्रतिष्ठा पाता और सुख भोगता है ॥५॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥६॥

भाषार्थः—(पूर्वे) पूर्व काल में (देवाः) वे दिव्य गुण वाले महात्मा (वै) निश्चय करके (एतस्याम्) इस [ब्रह्म विद्या] के विषय में (अवदन्त) बोले, (ये) जो (सप्त ऋषयः) सात [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] के द्वारा देखने वाले (तपसा) तपके साथ (निषेदुः) बैठे थे। (अपनीता) कुनीति वा खण्डन को प्राप्त हुई (ब्राह्मणस्य) वेदाधिपति परमेश्वर की (जाया) विद्या (भीमा) भयङ्कर होकर (परमे) सब से श्रेष्ठ (व्योमन्) रक्षणीय स्थान में (दुर्धाम्) दुष्ट-व्यवस्था (दधाति) जमाती है ॥६॥

भावार्थः—महात्माओं ने पूर्ण शक्ति से परीक्षा करके साक्षात् किया हैं, कि जहां पर वेद विद्या का निरादर और कुव्यवहार का आदर होता है, वहां अवश्य ही विपत्ति पड़ती है ॥६॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (ये) जो (गर्भाः) गर्भ (अवपद्यन्ते) गिर पड़ते हैं, (च, और (यत्) जो (जगत्) जगत् पशु आदि वृन्द (अपलुप्यते) नष्ट हो जाता है। और (ये) जो (वीराः) वीर लोग (मिथः) आपस में (तृह्यन्ते) कट मरते हैं, [कुनीति वा खण्डन को प्राप्त हुई—म० ६] (ब्रह्मजाया) ब्रह्मविद्या (तान्) उन्हें (हिनस्ति) मार डालती है ॥७॥

भावार्थः—वेद विद्या के लोप से संसार में रोग, घरेलू विपत्ति और राज विद्रोह आदि फैलते हैं ॥७॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥

भाषार्थः —(उत) और (यत्) जो (स्त्रियाः) शब्दकारिणी विद्या के (दश) दस (पतयः) रक्षक (पूर्वे) सब (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण से भिन्न होवें (च) और [जो] (ब्रह्मा) ब्रह्मा, ब्रह्मज्ञानी ने (इत्) ही (हस्तम्) हाथ (अग्रहीत्) पकड़ा, (सः एव) वही (एकधा) मुख्य प्रकार से (पतिः) रक्षक है ॥८॥

भावार्थः—अविद्वान् लोग दस वा अधिक मिलकर वेद विद्या की रक्षा नहीं कर सकते, ब्रह्मज्ञानी अकेला ही उसकी रक्षा कर सकता है ॥८॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥

भाषार्थः (ब्राह्मणः) वेदवेत्ता ब्राह्मण (एव) ही (पतिः) रक्षक है, (न) न (राजन्यः) क्षत्रिय और (न) न (वैश्यः) वैश्य है। (तत्) यह बात (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमेश्वर (पञ्चभ्यः) विस्तृत (मानवेभ्यः) मननशील मनुष्यों को (प्र ब्रुवन्) कहता हुआ (एति) चलता है ॥९॥

भावार्थः—ब्रह्म ज्ञानी ही अपनी मानसिक शक्ति से वेद की रक्षा कर सकता है, दूसरे नहीं कर सकते, यह परमेश्वर का वचन है। इसलिये सब मनुष्य मुख्य वेद बल के साथ दूसरे गौण बलों को बढ़ावें ॥९॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥

भाषार्थः (देवाः) सूर्यादि देवताओं ने (पुनः) निश्चय करके (वै) ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अददुः) दान किया है और (मनुष्याः) मनुष्यों ने (पुनः) निश्चय करके (अददुः) दान किया है। (सत्यम्) सत्य (गृह्णानाः) ग्रहण करते हुए (राजानः) राजा लोगों ने (ब्रह्मजायाम्) ब्रह्मविद्या को (पुनः) अवश्य (ददुः) दिया है ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य परस्पर सत्संग, राज नियम, और सूर्य आदि पदार्थों के विवेक से ब्रह्म विद्या का दान करते आये हैं, इसी प्रकार सबको करना चाहिये ॥१०॥

पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥

भाषार्थः—[मनुष्य] (ब्रह्मजायाम्) वेद विद्या को (पुनर्दाय) अवश्य देकर और (देवैः) उत्तम गुणों के कारण (निकिल्बिषम्) पाप से छुटकारा (कृत्वा) करके [पृथिव्याः] पृथिवी के (ऊर्जम्) बलदायक अन्न को (भक्त्वा) बांट कर (उरुगायम्) बड़ी कीर्तिवाले परमात्मा को (उपासते) भजते हैं ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य वेदविद्या द्वारा शुद्धचित्त होकर सब पदार्थों से उपकार करके परमात्मा की आज्ञा पालते रहते हैं ॥११॥

नास्यं जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१२॥

भाषार्थः—(अस्य) उसकी (जाया) विद्या (शतवाही) सैंकड़ों कार्य निबाहने वाली (कल्याणी) कल्याणी होकर (तल्पम्) प्रतिष्ठा (न) नहीं (आ शये=शेते) पाती है। (यस्मिन्) जिस (राष्ट्रे) राज्य में (ब्रह्मजाया) वेद विद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१२॥

भावार्थः—अविद्या के प्रचार और वेदविद्या की रोक से किसी राज्य में कल्याण नहीं होता ॥१२॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१३॥

भाषार्थः—(विकर्णः) विशेष श्रवण शक्ति वाला और (पृथुशिराः) विस्तीर्ण मस्तक शक्ति वाला पुरुष (तस्मिन्) उस (वेश्मनि) घर में (न) नहीं (जायते) होता है (यस्मिन्) जिस (राष्ट्रे) राज्य में···॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य वेदविद्या से ही बहुश्रुत और विज्ञानी होते हैं ॥१३॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१४॥

भाषार्थः—(अस्य) उसका (निष्कग्रीवः) सोने के कण्ठे वाला (क्षत्ता) द्वारपाल (सूनानाम्) ऐश्वर्य वाले पुरुषों के (अग्रतः) सन्मुख (न) नहीं (एति, जाता है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य में···॥१४॥

भावार्थः—वेदविद्या के नाश होने से मनुष्य निर्धन होकर उत्तम सेवक नहीं रख सकते ॥१४॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१५॥

भाषार्थः—(अस्य) उसका (श्वेतः) श्वेत, (कृष्णकर्णः) श्यामकर्ण घोड़ा (धुरि) रथ के जूये में (युक्तः) जुता हुआ (न) नहीं (महीयते) बड़ाई पाता है। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य में···॥१५॥

भावार्थः—वेदविद्याहीन पुरुषों के पास उत्तम घोड़े आदि नहीं होते ॥१५॥

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१६॥

भाषार्थः—(अस्य) उसके (क्षेत्रे) खेत में (न) न (पुष्करिणी) पोषणवती शक्ति, और (न) न (आण्डीकम्) प्राप्ति योग्य और (बिसम्) बलदायक वस्तु (जायते) होती है (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य में···॥१६॥

भावार्थः—वेद विद्या के बिना न खेती विद्या और न व्यापार विद्या प्रवृत्त होती है ॥१६॥

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१७॥

भाषार्थः—(अस्मै) उस [राजा] के लिये (पृश्निम्) स्पर्शवती पृथिवी को [वे लोग] (वि) विशेष करके (न) नहीं (दुहन्ति) दुहते हैं (ये) जो (अस्याः) इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भूमि] के (दोहम्) रस को (उपासते) सेवन करते हैं। (यस्मिन् राष्ट्रे) जिस राज्य में (ब्रह्मजाया) वेद विद्या (अचित्त्या) अचेतपन से (निरुध्यते) रोकी जाती है ॥१७॥

भावार्थः—जिस राज्य में अधिकारी लोग वेदज्ञाता नहीं होते, वहां उस राज्य से राजा को लाभ नहीं पहुंचता ॥१७॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१८॥

भाषार्थः—(न) न तो (अस्य) उसकी (धेनुः) दुधैल गौ (कल्याणी) कल्याणी [होती है] और (न) (अनड्वान्) छकड़ा ले चलने वाला बैल (धुरम्) धुर वा जूये को (सहते) सहता है। (यत्र) जहां (विजानिः) विद्याभ्यास विना (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (रात्रिम्) रात को (पापया) कष्ट से (वससि) वसता है ॥१८॥

भावार्थः—जिस राज्य में ब्राह्मण विद्याभ्यास नहीं करता, वहां दुधैल गोयें और बलवान् बैल आदि उपकारी पशु नहीं होते हैं ॥१८॥

सूक्तम् १८ ॥

१—१५ ॥ गौर्ब्राह्मणो वा देवता ॥ १–३, ६, ७, १०–१२, १४. १५ अनुष्टुप्,; ४, ५, ८, ९, १३ त्रिष्टुप् ॥

वेदविद्यारक्षणोपदेशः—वेद विद्या की रक्षा का उपदेश ॥

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥१॥

भाषार्थः—(नृपते) हे नरपति राजन् ! (ते) तेरे (देवाः) दिव्य गुण वाले पुरुषों ने (तुभ्यम्) तुझे (एताम्) इस [वाणी] को (अत्तवे) नाश करने को (न) नहीं (अददुः) दिया है। (राजन्य) हे राजन् ! (ब्राह्मणस्य) वेदवेत्ता पुरुष की (गाम्) वाणी को, (अनाद्याम्) जो नष्ट नहीं हो सकती है, (मा जिघत्सः) मत नाशकर ॥१॥

भावार्थः—राजा आप्त सत्यवादी वेदज्ञ पुरुष की वाणी में रहकर आनन्द करे ॥१॥

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामघादद्य जीवानि मा श्वः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अक्षद्रुघः) इन्द्रियों से नष्ट किया हुआ, (पापः) पापी, (आत्मपराजितः) आत्मा से हारा हुआ (सः) वह (राजन्यः) क्षत्रिय (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण, वेदवेत्ता की (गाम्) वाणी को (अद्यात्) नाश करे, (अद्य) आज (जीवात्=जीवतु) वह जीवे, (श्वः) कल (मा) नहीं ॥२॥

भावार्थः—वेदविद्या पर न चलने से दुष्कर्मों के कारण अजितेन्द्रिय राजा का जीवन घट जाता है ॥२॥

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥३॥

भाषार्थः—(चर्मणा) काँचुली से (आविष्टिता) वियोग रखने वाली, (अघविषा) घोर विषैली (पृदाकूः इव) फुंसकारती सांपिनी के समान (सा एषा) वह यह (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (गौः) वाणी, (राजन्य) हे राजन् ! (तृष्टा) प्यास से व्याकुल के समान है (अनाद्या) जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

भावार्थः—जैसे कांचुली से निकल कर सांपिनी दुष्ट विषैली होती है, वैसे ही अविद्या के फैलने से नष्ट वेदविद्या सब ओर विपत्ति फैलाती है ॥३॥

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो मनुष्य (ब्राह्मणम्) ब्रह्म ज्ञानी को (अन्नम्) अन्न (एव) ही (मन्यते) मानता है, (सः) वह (तैमातस्य) जल में भीगे (विषस्य) विष का (पिबति) पान करता है, (वै) निश्चय करके (क्षत्रम्) अपना धन वा बल (निर् नयति) बाहिर फेंकता है, (वर्चः) अपना तेज (हन्ति) खोता है, और (आरब्धः) चारों ओर से लगी हुई (अग्निः इव) अग्नि के समान (सर्वम्) अपना सब कुछ (वि दुनोति) जला देता है ॥४॥

भावार्थः—वेद ज्ञानियों को सताने वाला पुरुष अज्ञान के कारण अपने आप ही अपना नाश कर लेता है ॥४॥

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जो (देवपीयुः) विद्वानों का हिंसक, (धनकामः) धन चाहने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला पुरुषः (न चित्तात्) बिना विचारे (एनम्) इस [ब्राह्मण] को (मृदुम्) कोमल (मन्यमानः) मानता हुआ (हन्ति) नाश करता है, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष [ब्राह्मण वा परमेश्वर] (तस्य) उसके (हृदये) हृदय में (अग्निम्) अग्नि (सम् इन्धे) जला देता है, (उभे) दोनों (नभसी) सूर्य और पृथिवी लोक, (चरन्तम्) विचरते हुए (एनम्) इस पुरुष से (द्विष्टः) द्वेष करते हैं ॥५॥

भावार्थः—आप्त पुरुषों के विरोधी मनुष्य का संसार भर में कोई साथी नहीं होता ॥५॥

न ब्राह्मणो हिंसितव्यो ३ऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥६॥

भाषार्थः—(प्रियतनोः=०—नुः) तन को प्रिय लगने वाले (अग्निः इव) अग्नि के समान वर्तमान (ब्राह्मणः) ब्रह्मज्ञानी (न) नहीं (हिंसितव्यः) सताया जा सकता है। (हि) क्योंकि (सोमः) चन्द्रमा (अस्य) इसका (दायादः) दायभागी [के समान] और (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इसका (अभिशस्तिपाः) अपवाद से बचाने वाला है ॥६॥

भावार्थः—ब्राह्मण वेदों का तत्त्व जानने से महाप्रबल होता है क्योंकि वह सूर्य चन्द्रमा के समान नियम पर चलता है ॥६॥

शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निः खिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥७॥

भाषार्थः—वह [दुष्ट] (शतापाष्ठाम्) सैकड़ों दुर्मार्गों वाली विपत्ति को (नि गरति) निगलता है [पाता है] और (ताम्) उसको (निः खिदन्) पचाता हुआ [पचाने को] (न) नहीं (शक्नोति) समर्थ होता है (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणों के (अन्नम्) अन्न को (स्वादु) स्वादु से (अद्मि) मैं खाता हूं, (यः) जो (मल्वः) मलिन पुरुष (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य आप्त विद्वानों पर अत्याचार करता है, वह अनिवारणीय विपत्ति में ही पड़ता है ॥७॥

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृदबलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥८॥

भाषार्थः—[ब्राह्मण की] (जिह्वा) जीभ (ज्या) धनुष की डोरी, (वाक्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी (कुल्मलम्) बाण का दण्डा (भवति) होती है और [उस की] (नाडीकाः) गले के भाग (तपसा) आग से (अभिदिग्धाः) पोते हुए (दन्ताः) तीर के दांत हैं। (ब्रह्मा, ब्राह्मण (हृद्बलैः) हृदय तोड़ने वाले, (देवजूतैः) विद्वानों के भेजे हुए (तेभिः) उन (धनुर्भिः) धनुषों से (देवपीयून्) विद्वानों के सताने वालों को (विध्यति) छेदता है ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्य अपने विद्याबल से दुष्टों का नाश कर देता है ॥८॥

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥९॥

भाषार्थः—(तीक्ष्णेषवः) तीक्ष्ण बाण वाले, (हेतिमन्तः) बरछियों वाले (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण लोग (याम्) जिस (शरव्याम्) बाणों की झड़ी के (अस्यन्ति) छोड़ते हैं, (सा) वह (मृषा) मिथ्या (न) नहीं होती। (तपसा) तप से (च) और (मन्युना) क्रोध से (अनुहाय) पीछा करके (दूरात्) दूर से (उत्) ही (एनम्) इस [वैरी] को (अवभिन्दन्ति) वे लोग छेद डालते हैं ॥९॥

भावार्थः—जब ब्राह्मण क्रुद्ध होते हैं, दुष्टों को जड़मूल से मिटा देते हैं ॥९॥

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥१०॥

भाषार्थः—(ये) जो (सहस्रम्) बलवान् सेना दल पर (अराजन्) राज करते थे और (उत) आप भी (दशशताः) दस सौ (आसन्) थे। (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (गाम्) वाणी को (जग्ध्वा) नाश करके (ते) वे (वैतहव्याः) देवताओं के अन्न खाने वाले (पराभवन्) हार गये ॥१०॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों के बहुत सी सेना और परिवार भी बड़ा होता है, वे पाखण्डी वेद आज्ञा पर न चल कर नष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

गौरे व तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत्।
ये केसरमाबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥११॥

भाषार्थः—(हन्यमाना) नाश की जाती हुई (गौः) वाणी ने (एव) अवश्य (तान्) उन (वैतहव्यान्) देवताओं के अन्न खाने वालों को (अवातिरत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतार दिया है। (ये) जिन्हों ने (केसरप्राबन्धायाः) आत्मा में चलने वाली अबन्ध शक्ति [परमेश्वर] की (चरमाजाम्) व्यापक विद्या को (अपेचिरन्) पचाया हैं [नष्ट कर दिया है] ॥११॥

भावार्थः—जो दुष्ट मनुष्य सर्वव्यापिनी वेदवाणी को नाश करना चाहते हैं पंडितों द्वारा वे मूर्ख नष्ट हो जाते हैं ॥११॥

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥१२॥

भाषार्थः - (ताः) वे (जनताः) लोग (एकशतम्) एक सौ एक [थे] (याः) जिन को (भूमिः) भूमि ने (व्यधूनुत) हिला दिया है और जो (ब्राह्मणीम्) ब्राह्मण संबन्धिनी (प्रजाम्) प्रजा को (हिंसित्वा) सता कर (असंभव्यम्) संभावना [शक्यता] के विना (पराभवन्) हार गये हैं ॥१२॥

भावार्थः—बहुत से मनुष्य इस पृथिवी पर वेदज्ञानियों को सताने से निःसन्देह नष्ट हो गये हैं ॥१२॥

देव पीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३॥

भाषार्थः—(देवपीयुः) विद्वानों का सताने वाला (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (चरति) फिरता है, (गरगीर्णः) विष खाय हुआ वह (अस्थिभूयान्) हाड़ ही हाड़ (भवति) रह जाता है। (यः) जो मनुष्य (देवबन्धुम्) महात्माओं के बन्धु (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण को (हिनस्ति) सताता है, (सः) वह (पितृयाणम्) पालन करने वाले विद्वानों के पाने योग्य (लोकम्) लोक को (न अपि) कभी नहीं (एति) पाता है ॥१३॥

भावार्थः—वेदनिन्दक पुरुष अविद्या के कारण दुर्बल आत्मा और रोगी होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा नहीं पाता ॥१३॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥१४॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि [सूर्य] (वै) ही (नः) हमारा (पदवायः) पथदर्शक, और (सोमः) चन्द्रमा (दायादः) दायभागी (उच्यते) कहा जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सपत्नाः) वैरी लोग (वधूयः) निर्बल हैं, (ते) तेरा (ऐन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शुष्मः) बल (अभिमातिषाहः) अभिमानियों का हराने वाला है ॥२॥

भावार्थः—शूर वीर सेनापति पूर्ण पराक्रम करके शत्रुओं को जीते ॥२॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३॥

भाषार्थः—(वृषा इव) बैल के समान (यूथे) अपने झुंड में (सहसा) बल से (विदानः) जाना गया, (गव्यन्) भूमि चाहता हुआ (संधनाजित्) यथावत् धन जीतने वाला तू (अभि) चारों ओर (रुव) गरज। (परेषाम्) वैरियों का (हृदयम्) हृदय (शुचा) शोक से (विध्य) छेद डाल (प्रच्युताः) गिरे हुए (शत्रवः) वैरी (ग्रामान्) अपने गांवों को (हित्वा) छोड़ कर (यन्तु) चले जावें ॥३॥

भावार्थः पराक्रमी योधा लोग संग्राम में वैरियों को जीत कर उनका धन और राज्य छीन लें ॥३॥

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधा शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वमायुः) ऊंचा शब्द करता हुआ, (पृतनाः) संग्रामों को (संजयन्) जीतता हुआ, (गृह्याः) ग्रहण करने योग्य सेनाओं को (गृह्णानः) ग्रहण करता हुआ तू (बहुधा) बहुत प्रकार से (वि चक्ष्व) देखता रह। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि! (दैवीम्) दिव्य गुण वाली (वाचम्) वाणी को (आगुरस्व) उच्चारण कर, (वेधाः) विधान करने वाला तू (शत्रूणाम्) वैरियों का (वेदः) धन (उप भरस्व) लाकर भर दे ॥४॥

भावार्थः—जैसे पराक्रमी योधा दुन्दुभि बजाकर शत्रुओं को जीतकर कीर्ति पाते हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य आत्मदोष मिटाकर यशस्वी होवें ॥४॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारीं पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥

भाषार्थः—(दुन्दुभेः) दुन्दुभि की (प्रयताम्) नियमयुक्त, (वदन्तीम्) गूंजती हुई, (वाचम्) ध्वनि को (आशृण्वती) सुनती हुई, (घोषबुद्धा) गर्जन से जागी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई, (नाथिता) अधीन हुई, (वधानाम्) मारू शस्त्रों के (समरे) समर में (भीता) डरी हुई (आमित्री) वैरी की (नारी) नारी (पुत्रम्) पुत्रको (हस्तगृह्य) हाथ में पकड़ कर (धावतु) भाग जावे ॥५॥

भावार्थः—योधा लोग नियमपूर्वक दुन्दुभि बजावें जिससे शत्रु लोग हार जावें और उनकी स्त्री आदि भी घर छोड़कर चली जावें ॥५॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६॥

भाषार्थः—(दुन्दुभे) हे ढोल ! (पूर्वः) सब से पहिले तू (वाचम्) ध्वनि (प्रवदासि) ऊंची कर, और (रोचमानः) रुचि करके (भूम्याः) भूमि की (पृष्ठे) पीठ पर (वद) शब्द कर । (दुन्दुभे) हे ढोल ! (अमित्रसेनाम्) वैरियों की सेना को (अभिजञ्जभानः) सर्वथा मेंट डालता हुआ तू (द्युमत्) स्पष्ट स्पष्ट और (सूनृतावत्) सत्य प्रिय वाणी से (वद) बोल ॥६॥

भावार्थः—सेना के लोग प्रसन्न चित्त से सत्य प्रतिज्ञा करके ढोल आदि बाजे बजा कर शत्रुओं को जीतें ॥६॥

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७॥

भाषार्थः—(इमे) इन (नभसी) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (घोषः) तेरा शब्द (अस्तु) होवे, (ते) तेरी (ध्वनयः) ध्वनें (शीभम्) शीघ्र (पृथक्) नाना रूप से (यन्तु) जावें । (उत्पिपानः) ऊपर चढ़ता हुआ, (श्लोककृत्) बड़ाई करने वाला, (स्वर्धी) बड़ी वृद्धि वाला तू (मित्रतूर्याय) मित्रों के वेग के लिये (अभि) चारों ओर (क्रन्द) शब्द कर और (स्तनय) गड़गड़ाकर गर्ज ॥७॥

भावार्थः—योधा पुरुष दुन्दुभि आदि बाजों की ध्वनि से शत्रुओं को जीत कर कीर्ति पावें ॥७॥

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो निह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि । ८ ।

भाषार्थः—(धीभिः) शिल्पकर्म से (कृतः) बनाया गया वह (वाचम्) शब्द (प्रवदाति) अच्छे प्रकार बोले । (सत्वनाम्) हमारे वीरों के (आयुधानि) शस्त्रों को (उत् हर्षय) ऊंचा उठा । (इन्द्रमेदी) ऐश्वर्यवान् सेनापति का मित्र तू (सत्वनः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे वीरों को (नि) नियम से (ह्वयस्व) बुला। (मित्रैः) मित्रों के साथ (अमित्रान्) वैरियों को (अव जङ्घनीहि) गिरा कर मार डाल ॥८॥

भावार्थः सेनादल दुन्दुभि का शब्द सुनकर अपने शस्त्र लेकर शत्रुओं पर धावा करके मारें ॥८॥

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ।९॥

भाषार्थः —(संक्रन्दनः) शब्द करने वाला, (प्रवदः) गर्जने वाला, (धृष्णुषणः) निडर सेना वाला, (प्रवेदकृत्) चेतना करने वाला, (बहुधा) अनेक प्रकार से (ग्रामघोषी) सेनादलों में शब्द करने वाला, (श्रेयः) हमारे आनन्द का (वन्वानः) उद्योग करने वाला, (वयुनानि) धर्मों को (विद्वान्) जानने वाला तू (द्विराजे) दो राजाओं के युद्ध में (बहुभ्यः) बहुतों को (कीर्तिम्) कीर्ति (वि) विविध प्रकार से (हर) प्राप्त करा ॥९॥

भावार्थः शूर सेनादल सिंहध्वनि के साथ वैरियों को जीतकर कीर्ति पावें ॥९॥

श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ।१०॥

भाषार्थः —(श्रेयःकेतः) कल्याण का ज्ञान देने वाला, (वसुजित्) धन जीतने वाला, (सहीयान्) अधिक बल वाला, (संग्रामजित्) संग्रामों का जीतने वाला, और (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (संशितः) तीक्ष्ण किया हुआ (असि) तू है। (अद्रिः) निश्चल स्वभाव, (ग्रावा इव) जैसे सूक्ष्मदर्शी पंडित (अधिषवणे) तत्त्व मंथन में (अंशून्) सूक्ष्म अंशों को [वश में करता है वैसे ही], (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (गव्यन्) भूमि चाहता हुआ तू (वेदः) शत्रु का धन (अधि = अधिकृत्य) वश में करके (नृत्य) नृत्य कर ॥१०॥

भावार्थः जैसे संग्राम में दुन्दुभि उत्साह बढ़ाता है और जैसे तत्त्ववेत्ता पुरुष तत्त्वों को जीत कर आनन्द भोगता है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य विज्ञान प्राप्त करके सदा सुखी रहे ॥१०॥

शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ।११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शत्रूषाट्) वैरियों को हराने वाला, (नीषाट्) नित्य जीतने वाला, (अभिमातिसाहः) अभिमानियों का वश में करने वाला, (गवेषणः) भूमि वा विद्या का ढूंढने वाला, (सहमानः) शासन करने वाला, (उद्भित्) बहुत तोड़ फोड़ करने वाला तू (वाचम्) वाणी को (प्र भरस्व) अच्छे प्रकार भरदे, (इव) जैसे (वाग्वी) उत्तम बोलने वाला पुरुष (मन्त्रम्) अपने मनन वा उपदेश को। और (संग्राम-जित्याय) संग्राम जीतने के लिये (इह) यहां पर (इषम्) अन्न का (उत्) अच्छे प्रकार (वद) कथन कर ॥११॥

भावार्थः—पराक्रमी शूर पुरुष दुन्दुभि की ध्वनि से उत्साहित होकर शत्रुओं को जीत कर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करें ॥११॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२॥

भाषार्थः—(अच्युतच्युत्) न गिरे हुओं [शत्रुओं] का गिराने वाला, (समदः) हर्षसहित (गमिष्ठः) अतिशय गति वाला, (मृधः) संग्रामों को (जेता) जीतने वाला, (पुरएता) आगे आगे चलने वाला, (अयोध्यः) न रुकने योग्य, (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् सेनापति से (गुप्तः) रक्षा किया गया, (विदथा=०—थानि) जानने योग्य कर्मों को (निचक्यत्) जानता हुआ, (द्विषताम्) वैरियों के (हृद्द्योतनः) निश्चय करके हृदयों का जलाने वाला तू (शीभम्) शीघ्र (याहि) प्राप्त हो ॥१२॥

भावार्थः—सेनापति की आज्ञा से दुन्दुभि बजते ही समस्त सेना दल शत्रुओं पर टूट पड़े ॥१२॥

सूक्तम् ॥२१॥

१—१२ ॥ १—९ दुन्दुभिः, १०—१२ देवसेना देवताः ॥ १, ४, ५ पथ्या पङ्क्तिः, २, ३, ७—१० अनुष्टुप्, ६ जगती, ११ द्विपदा त्रिष्टुप् विराट् च, १२ गायत्री ॥

शत्रुजयोपदेशः— शत्रुओं को जीतने का उपदेश ॥

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे । विद्वेषं कश्मशं
भयमित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१॥

भाषार्थः—(दुन्दुभे) हे दुन्दुभि वा ढोल ! (अमित्रेषु) वैरियों में (विहृदयम्) हृदय व्याकुल करने हारी (वैमनस्यम्) मन की ग्लानि (वद) कह दे। (विद्वेषम्) फूट, (कश्मशम्) गति की रोक और (भयम्) भय (अमित्रेषु) वैरियों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच (निदध्मसि) हम डाले देते हैं। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (एनान्) इन [शत्रुओं] को (अव जहि) निकाल दे ॥१॥

भावार्थः -जैसे पराक्रमी शूर के दुन्दुभि आदि बजने पर शत्रु लोग डांवाँडोल हो कर भाग जाते हैं, वैसे ही विद्वान् पुरुष के विज्ञान द्वारा काम क्रोध आदि नष्ट हो जाते हैं ॥१॥

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्त्रासेनाज्ये हुते ॥२॥

भाषार्थः—(आज्ये हुते) घृत आग में चढ़ाने पर (मनसा) मन से (चक्षुषा) नेत्र से (च) और (हृदयेन) हृदय से (उद्वेपमानाः) थरथराते हुए, (बिभ्यतः) भय मानते हुए (अमित्राः) वैरी लोग (प्त्रासेन) घबराहट के साथ (धावन्तु) भागें ॥२॥

भावार्थः—जैसे अग्नि घी चढ़ाने से प्रचंड होता है, वैसे ही युद्धाग्नि प्रचंड होने पर कुशल सेनापति शत्रुओं को अंग भंग करके भगा दे ॥२॥

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्त्रासमित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३॥

भाषार्थः—[हे दुन्दुभि !] (वानस्पत्यः) सेवनियों के पालक [सेनापति] से प्राप्त हुआ, (उस्रियाभिः) वस्तियों की रक्षक सेनाओं से (संभृतः) यथावत् रक्खा गया, (विश्वगोत्र्यः) समस्त कुलों का हितकारक तू (अमित्रेभ्यः) वैरियों को (प्त्रासम्) अति भय (वद) कह दे, [जैसे] (आज्येन) घी से (अभिघारितः) सींचा हुआ [अग्नि प्रकाशित होता है] ॥३॥

भावार्थः—सेनापति लोग घृतसे प्रज्वलित अग्नि के समान प्रचण्ड होकर शत्रुओं को भयभीत करदें ॥३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि । एवा त्वं
दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४॥

भाषार्थः -(यथा) जैसे (आरण्याः) वनवासी (मृगाः) पशु (पुरुषात्) मनुष्य से (अधि) अतिशय (संविजन्ते) डरकर भागते है, (एव) वैसे ही (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! त्वम्) तू (अमित्रान् अभि) वैरियों पर (क्रन्द) गर्ज, और (प्र त्रासय) डरा दे (अथो) और भी (चित्तानि) उनके चित्तों को (मोहय) घबड़ा दे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे जङ्गलीय पशु मनुष्य को देख कर भागते हैं, वैसे ही शूर वीरों को देख कर ही शत्रु लोग घबड़ा कर भाग जावें ॥४॥

यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः । एवा त्वं
दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५॥

भाषार्थः –(यथा) जैसे (वृकात्) भेड़िये से (बहु) बहुत (बिभ्यतीः) डरती हुई (अजावयः) बकरी और भेड़ें (धावन्ति) भाग जाती हैं। (एव) वैसे ही··· म० ४ ॥५॥

भावार्थः मन्त्र ४ के समान ॥५॥

यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (श्येनात्) श्येन [बाज] से (पतत्रिणः) पक्षी (अहर्दिवि) प्रति दिन (संविजन्ते) डर कर भागते हैं, और (यथा) जैसे (सिंहस्य) सिंह की (स्तनथोः) गर्जन से, (एव) वैसे ही (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि ! (त्वम्) तू (अमित्रान् अभि) वैरियों पर (क्रन्द) गर्ज और (प्रत्रासय) डरा दे, (अथो) और भी (चित्तानि) उनके चित्तों को (मोहय) घबड़ा दे ॥६॥

भावार्थः - मन्त्र ४ के समान ॥६॥

परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७॥

भाषार्थः—(ये) जो विद्वान् लोग (संग्रामस्य) संग्राम के (ईशते) स्वामी होते हैं उन (सर्वे) सब (देवाः) महात्मा लोगों ने (हरिणस्य) हरिण के (अजिनेन) चर्म से युक्त (दुन्दुभिना) दुन्दुभि से (च) निश्चय करके (परा=पराजित्य) हरा-कर (अतित्रसन्) डरा दिया है ॥७॥

भावार्थः—शूर सेनापति लोग शत्रुओं को जीत कर भगा देवें ॥७॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छाययासह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति (छायया सह) छाया के साथ (यैः) जिन (पद्घोषैः) पैरों के खटकों से (प्रक्रीडते) क्रीड़ा करता रहता है, (तैः) उनसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारे (अमी) वे (अमित्राः) शत्रु (त्रसन्तु) डर जावें (ये) जो (अनीकशः) श्रेणी श्रेणी (यन्ति) चलते हैं ॥८॥

भावार्थः - चतुर शीघ्रगामी सेनापति की छाया और पैरों के आहट से शत्रु के दल के दल भाग जावें ॥८॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९॥

भाषार्थः—(ज्याघोषाः) हमारी प्रत्यंचा के शब्द और (दुन्दुभयः) सब दुन्दुभि (याः) व्यापक (दिशः) दिशाओं में (अनीकशः) श्रेणी श्रेणी (यतीः) चलती हुई (अमित्राणाम्) वैरियों की (पराजिताः) हारी (सेनाः अभि) सेनाओं पर (क्रोशन्तु) पुकार मचावें ॥९॥

भावार्थः—वीर सेनापति अपने अस्त्रशस्त्रों से सब दिशाओं में शत्रु के प्रत्येक दल को रोक कर हरा देवे ॥९॥

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥

भाषार्थः -(आदित्य हे सूर्य समान सेनापति ! [शत्रुओं की] (चक्षुः) दृष्टि (आ दत्स्व) ले ले, (मरीचयः) हे किरणों के समान सेनादलो ! (अनु) पीछे पीछे (धावत) दौड़ो। (बाहुवीर्ये) बाहु बल (विगते) चले जाने पर (पत्सङ्गिनीः) पांव में पड़ी बेड़ियों को (आ सजन्तु) वे [शत्रु] लिपटा लेवें ॥१०॥

भावार्थः—पराक्रमी सेनापति शत्रुओं की दृष्टि बचा कर अपनी सेना के साथ धावा करके निर्बल शत्रुओं को बांध लेवे ॥१०॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११॥

भाषार्थः —(पृश्निमातरः) हे छूने योग्य पदार्थों के वा आकाश के नापने वाले, (उग्राः) प्रचण्ड (मरुतः) शूर लोगो ! (यूयम्) तुम (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्यवाले सेनापति (युजा) मित्र के साथ (शत्रून्) वैरियों को (प्र मृणीत) मार डालो। (इन्द्रः) वह बड़े ऐश्वर्य वाला सेनापति (सोमः) तत्त्वों का मथन करने वाला (राजा) प्रकाशमान, (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) राजा (उत) और (मृत्युः) मृत्यु के समान (महादेवः) बड़ा देवता है ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—महाप्रतापी सेनापति के साथ समस्त शूर सेनादल शत्रुओं को जीत लें ॥११॥

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२॥

भाषार्थः—(एताः) यह सब (सूर्यकेतवः) सूर्यसमान पताका वाली, (सचेतसः) समान चित्तवाली (देवसेनाः) विजयी सेनापति की सेनायें (नः) हमारे (अमित्रान्) वैरियों को (जयन्तु) जीतें, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१२॥

भावार्थः—पराक्रमी सेनापति की सहायता से समस्त शूर सेनादल शत्रुओं को हराकर निकाल दें ॥१२॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २२॥

१–१४ ॥ वैद्यो देवता ॥ १, २ त्रिष्टुप्, ३–१४ अनुष्टुप् ॥

रोगनाशायोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
बेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(अग्निः) ज्ञानवान्, (सोमः) तत्त्व मथन करने वाला, (ग्रावा) सूक्ष्मदर्शी, (वरुणः) वरणयोग्य, (पूतदक्षाः) पवित्र बल करने वाला, (शोशुचानाः) बहुत जलते हुए (समिधः) इन्धन के समान (बर्हिः) प्रकाशमान (वेदिः) पंडित (इतः) यहाँ से (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने हारे ज्वर को (अप बाधताम्) निकाल देवे। (द्वेषांसि) हमारे सब अनिष्ट (अमुया) उधर (अप भवन्तु) हट जावें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - जिस प्रकार सद्वैद्य रोगों की चिकित्सा करता है, उसी प्रकार सब मनुष्य आत्मदोषों का प्रतीकार करें ॥१॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (यः) जो तू (विश्वान्) सब [मनुष्यों] को (उच्छोचयन्) शोक में डालता हुआ, और (अग्निः इव) अग्नि के समान (अभिदुन्वन्) तपाता हुआ (हरितान्) पीला (कृणोषि) कर देता है। (अध) सो (हि) इसलिये (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने हारे ज्वर ! तू (हि) अवश्य (अरसः) निर्बल (भूयाः) होजा। (अध) और (वा) अथवा (न्यङ्) नीच स्थान से (अधराङ्) नीच स्थान को (परा इहि) चम्पत हो जा ॥२॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य ज्वर आदि रोगों को, वैसे ही बुद्धिमान् कुकाम, कुक्रोध आदि को निकाल देवे ॥२॥

यः पुरुषः पारुषे योऽवध्वं स इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव । ३॥

भाषार्थः—(यः) जो (पुरुषः) निठुर (पारुषेयः) निठुर से उत्पन्न हुए (अरुणः) रक्तवर्ण (अवध्वंसः इव) नीचे गिरने वाले राक्षसादि के समान है। (विश्वधावीर्य) हे सब प्रकार सामर्थ्य वाले वैद्य ! (तक्मानम्) उस दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (अधराञ्चम्) नीचे देश में (परा सुव) दूर गिरादे ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान ॥३॥

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४॥

भाषार्थः—(तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (कृत्वा) करके (अधराञ्चम् नीचे देश को (प्र हिनोमि) मैं भेजता हूं। (शकम्भरस्य) शक्ति धारण करने वाले पुरुष का (मुष्टिहा) मुष्टि से मारने वाला [ज्वर] (महावृषान्) बड़ी वृष्टि वाले देशों को (पुनः) लौटकर (एतु) चला जावे ॥४॥

भावार्थः - नीचे, बहुत जल वाले स्थानों में ज्वर आदि बलवान् रोग प्रायः होते हैं, मनुष्य सावधान रहें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओकौ अस्य मूजवन्त ओकौ अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मं स्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५॥

भाषार्थः—(अस्य) इसका (ओकः) घर (मूजवन्तः) मूंज आदि घास वाले पर्वत हैं, और (अस्य) इसका (ओकः) घर (महावृषाः) महावृष्टि वाले देश हैं। (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने हारे ज्वर! (यावत्) जब से (जातः) तू उत्पन्न हुआ है, (तावान्=तावत्) तब से तू (बल्हिकेषु) हिंसा वाले देशों में (न्योचरः) नित्य संगति वाला (असि) है ॥५॥

भावार्थः—बहुत घास वाले और बहुत वृष्टि वाले देशों में ज्वर आदि रोग अधिक होते हैं, मनुष्य इसका प्रबन्ध रक्खें ॥५॥

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६॥

भाषार्थः—(तक्मन्) हे ज्वर! (व्याल) हे सर्प! हे धूर्त! (व्यङ्ग) हे कुरूप! (विगद) तू बोल, (भूरि) बहुत दूर (यवय) चला जा (निष्टक्वरीम्) ठटोल, निर्लज्ज (दासीम्) दासी [नीच स्त्री] को (इच्छ) ढूंढ और (ताम्) उसको (वज्रेण) अपने वज्र से (समर्पय) मार गिरा ॥६॥

भावार्थः—कुचाली, व्यभिचारी स्त्री पुरुष रोगी होकर दारुण दुःख भोगते हैं, इससे मनुष्य सदाचारी होकर सदा स्वस्थ रहें ॥६॥

तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं १ तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७॥

भाषार्थः—(तक्मन्) हे ज्वर! (मूजवतः) मूज वाले पहाड़ों और (बल्हिकान्) हिंसा वाले देशों को, (वा) अथवा (परस्तराम्) और परे (गच्छ) चला जा। (प्रफर्व्यम्=प्रफर्वरीम्) इधर उधर घूमने वाली (शूद्राम्) शूद्रा स्त्री को (इच्छ) ढूंढ, और (ताम्) हिंसकों को (तक्मन्) हे ज्वर! (वीव) विशेष कर के ही (धूनुहि) कंपादे ॥७॥

भावार्थः—जहाँ पर मलिन पदार्थ और मलिन स्वभाव वाले स्त्री पुरुष होते हैं, वहां रोग होते हैं। इससे सबको बाहिर और भीतर शुद्ध रखना चाहिये ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म॒हा॒वृ॒षान् मूज॑वतो॒ बन्ध्व॑द्धि प॒रेत्य॑ ।
प्रैतानि॑ त॒क्मने॑ ब्रू॒मो अन्यक्षे॒त्राणि॒ वा इ॒मा ॥८॥

भाषार्थः (परेत्य) दूर जाकर (महावृषान्) बड़ी वृष्टि वाले देशों और (मूजवतः) मूजवाले पहाड़ों, (बन्धु = बन्धून्) अपने बन्धुओं को (अद्धि) खाले। (एतानि) इन और (इमा = इमानि) इन (अन्यक्षेत्राणि) अन्य निवास स्थानों को (तक्मने) ज्वर के लिये (वै) अवश्य (प्रब्रूमः) हम बताये देते हैं ॥८॥

भावार्थः—अधिक वृष्टि वाले, अधिक तृण वाले, और इसी प्रकार अधिक ताप वाले देशों में प्राणी ज्वर से पीड़ित रहते हैं। इससे मनुष्य उचित प्रबन्ध रक्खें ॥८॥

अ॒न्य॒क्षे॒त्रे॒ न र॑मसे व॒शी सन् मृ॑डयासि नः ।
अभू॑दु॒ प्रार्थ॑स्त॒क्मा स ग॑मिष्यति॒ बल्हि॑कान् ॥९॥

भाषार्थः—(अन्यक्षेत्रे) दूर देश में (न) इस समय (वशी) वश में करने वाला (सन्) होकर (रमसे = रमस्व) तू ठहर, और (नः) हमें (मृडयासि) सुख दे (तक्मा) ज्वर (प्रार्थः) चालू (उ) अवश्य (अभूत्) हो गया है, (सः) वह (वल्हिकान्) हिंसा वाले देशों को (गमिष्यति) चला जायगा ॥९॥

भावार्थः सदाचारी पुरुष प्रयत्न करके नीरोग, और हिंसाप्राय लोग रोगग्रसित रहते हैं ॥९॥

यत् त्वं शी॒तोऽथो॑ रू॒रः स॒ह का॒सावे॑पयः ।
भी॒मास्ते॑ तक्मन् हे॒तय॒स्ताभिः॑ स्म॒ परि॑ वृङ्ग्धि नः ॥१०॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण (शीतः) शीत (अथो) और (रूरः) क्रूर (त्वम्) तूने (कासा = कासेन) (सह) खांसी के साथ [हमें] (अवेपयः) कंपा दिया है। (तक्मन्) हे दुःखित जीवन करने वाले ज्वर! (ते) तेरी (हेतयः) चोटें (भीमाः) भयानक हैं, (ताभिः) उनसे (नः हमको (स्म, अवश्य (परि वृङ्ग्धि) छोड़ दे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य यत्नपूर्वक नीरोग रहकर शारीरिक और मानसिक बल बढ़ावें ॥१०॥

(तक्मा) ज्वर विषय का अ० का० १ स० २५ से मिलान करो ॥

मा स्मै॒ तान्त्सखी॑न् कुरुथा ब॒लासं॑ का॒समु॑द्यु॒गम् ।
मा स्मातो॒ऽर्वाङैः पुन॒स्तत् त्वा॑ तक्म॒न्नुप॑ ब्रुवे ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(बलासम्) बल गिराने वाले सन्निपात कफ आदि, (कासम्) कुत्सित शब्द करने वाली खांसी और (उद्गम्) सुख रोकने वाले, क्षयी रोग, (एतान्) इनको (सखीन्) अपना मित्र [मा स्म कुरथाः] कभी मत बना ! [अतः] उस स्थान से (पुनः) फिर (अर्वाङ्) हमारे सन्मुख होकर (मा स्म आ ऐः) कभी मत आ। [तत्] यह बात (तक्मन्) हे ज्वर ! (त्वा) तुझ से (उप ब्रुवे) मैं कहे देता हूं ॥११॥

भावार्थः—सद्वैद्य प्रयत्न करे कि जिससे ज्वर के साथ अन्य रोग न होने पावें और ज्वर छुटता चला जावे ॥११॥

तक्मन् भात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२॥

भाषार्थः—(तक्मन्) हे ज्वर ! (भ्रात्रा) अपने भ्राता (बलासेन) बल गिराने वाले सन्निपात, कफ आदि (स्वस्रा) अपनी बहिन (कासिकया सह) कुत्सित खांसी के साथ, (भ्रातृव्येण) अपने भतीजे (पाप्मा = पाप्मना) चर्म रोग के (सह) साथ (अमुम्) उस (अरणम्) न भाषण करने योग्य निन्दित (जनम्) जन के पास (गच्छ) चला जा ॥१२॥

भावार्थः कुकर्मी अपथ्य भोगी पुरुष ज्वर, खांसी आदि से पीड़ित रहते हैं। इस से मनुष्य सुकर्मी और पथ्यभोगी होवें ॥१२॥

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३॥

भाषार्थः—[हे वैद्य !] (तृतीयकम्) तिजारी, (वितृतीयम्) चौथिया आदि अंतरिया, (सदन्दिम्) सदा फूटन करने वाले, निरन्तरा (उत) और (शारदम्) शरद ऋतु में आने वाले, (शीतम्) शीत, (रूरम्) क्रूर, (ग्रैष्मम्) ग्रीष्म में आने वाले, (वार्षिकम्) वर्षा में होने वाले (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नाशय) मिटा दे ॥१३॥

भावार्थः - सद्वैद्य देश, काल, स्वभाव आदि का विचार करके मनुष्यों को स्वस्थ रक्खे ॥१३॥

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधी तक्मानं परि दद्मसि ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः –(गन्धारिभ्यः) हिंसा पहुंचाने वाले, (मूजवद्भ्यः) मूंज आदि घास वाले, (अङ्गेभ्यः) अप्रधान और (मगधेभ्यः) दोष धारण करने वाले देशों के लिये (जनम् इव) पामर पुरुष के समान, (शेवधिम्) सोने के आधार (तक्मानम्) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (प्रैष्यन्=प्रैष्यन्तः) आगे बढ़ते हुए (परि दद्मसि) हम त्यागते हैं ॥१४॥

भावार्थः—हिंसा आदि अशुद्ध व्यवहारों से ज्वर आदि रोग होते हैं। इस से मनुष्य शुद्ध व्यवहार रखकर सदा नीरोग रहें ॥१४॥

सूक्तम् ॥ २३ ॥

१—१३ ॥ वैद्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

स्वल्पदोषनाशोपदेशः—छोटे छोटे दोषों के नाश का उपदेश ॥

ओतं मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (ओते) बुने हुए हैं, (देवी) दिव्य गुण वाली (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या (ओता) परस्पर बुनी हुई है। (ओतौ) परस्पर बुने हुए (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि (च) भी (मे) मेरे लिये (क्रिमिम्) कीड़े को (जम्भयताम्) नाश करें, (इति) यह प्रार्थना है ॥१॥

भावार्थः—जैसे अशुद्धि आदि से उत्पन्न क्षुद्र जन्तुओं को हटाते हैं, वैसे ही पदार्थों के विवेक से छोटे छोटे भी कुसंस्कार मिटाये जावें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० का० २ सू० ३१ तथा ३२ से करो ॥

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२॥

भाषार्थः—(धनपते) हे धन के स्वामी (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले वैद्य ! (अस्य) इस (कुमारस्य) कमनीय बालक के (क्रिमीन्) कीड़ों को (जहि) मिटा दे। (मम) मेरे (उग्रेण) प्रचण्ड (वचसा) [वैदिक] वचन से (विश्वाः) सब (अरातयः) वैरी (हताः) मारे गए ॥२॥

भावार्थः—जैसे वैद्य बालक के उदर के कृमि रोग को नाश करता है, वैसे ही मनुष्य ज्ञान के अभ्यास से अज्ञान आदि दोष हटावे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥

भाषार्थः -(यः) जो [कीड़ा] (अक्ष्यौ) दोनों आंखों में (परिसर्पति) रेंग जाता है, (यः) जो (नासे) दोनों नथनों में (परिसर्पति) रेंग जाता है, और (यः) जो (दताम्) दांतों के (मध्यम्) बीच में (गच्छति) चलता है, (तम्) उस (क्रिमिम्) कीड़े को (जम्भयामसि) हम नाश करते हैं ॥३॥

भावार्थः—विज्ञानी पुरुष आत्म विघ्नों का इस प्रकार नाश करे जैसे वैद्य कृमि रोग को ॥३॥

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
वभ्रश्च वभ्रकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः । ४॥

भाषार्थः (द्वौ) दो (सरूपौ) एक से रूप वाले, (द्वौ) दो (विरूपौ) विरुद्ध रूप वाले, (द्वौ) दो (कृष्णौ) काले, (द्वौ) दो (रोहितौ) लाल (च) और (वभ्रुः) भूरा (च) और (वभ्रुकर्णः) भूरे कान वाला और (गृध्रः) गिद्ध, (च) और (कोकः) भेड़िया, (ते) वे सब (हताः) मारे गये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य नाना आकार वाले कृमियों के समान नाना प्रकार की कुवासनाओं का नाश करें ॥४॥

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥

भाषार्थः —(ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (शितिकक्षाः) काली कांख वाले, (ये) जो (कृष्णाः) काले वर्ण वाले और (कृष्णबाहवः) काली भुजाओं वाले, (च) और (ये के) जो कोई (विश्वरूपाः) सब वर्ण वाले हैं, (तान्) उन (क्रिमीन्) कीड़ों को (जम्भयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥५॥

भावार्थः मन्त्र के ४ समान ॥५॥

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६॥

भाषार्थः—(विश्वदृष्टः) सबों करके देखा गया, (अदृष्टहा) अगोचर पदार्थों में गति वाला (सूर्यः) सूर्य (दृष्टान्) दीखते हुए (च) और (अदृष्टान्) न दीखते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वान्) सब (क्रिमीन्) कीड़ों को (च) अवश्य (घ्नन्) मारता हुआ (च) और (प्रमृणन्) मिटाता हुआ (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उत् एति) उदय होता है ॥६॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार आदि नाश करता है, वैसे ही वैद्य ओषधि द्वारा रोगों को नाश करे ॥६॥

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्चं हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७॥

भाषार्थः —(येवाषासः = एवाषाः) शीघ्र गति वाले, (कष्कषासः = कष्कषाः) अत्यन्त पीड़ा देने वाले, (एजत्क्षाः) चमकने वा थरथराने वाले और (शिपवित्नुकाः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले हैं। (दृष्टः) दीखता हुआ (क्रिमिः) कीड़ा (च) अवश्य (हन्यताम्) मारा जावे, (उत) और (अदृष्टः) न दीखता हुआ (च) भी (हन्यताम्) मारा जावे ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र ६ के समान ॥७॥

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नंदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥८॥

भाषार्थः—(क्रिमीणाम्) कीड़ों में से (येवाषः=एवाषः) शीघ्रगामी (हतः) मारा गया, (उत) और (नदनिमा) नाद करनेवाला (हतः) मारा गया। (सर्वान्) सब (कीड़ों) को (मष्मषा) मसल मसल कर (नि अकरम्) मैंने नष्ट कर दिया है, (खल्वान् इव) जैसे चनों को (दृषदा) शिला से [दल डालते हैं] ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सब कुसंस्कारों का नाश करे, जैसे वैद्य रोग-जन्तुओं को नष्ट करता है ॥८॥

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९॥

भाषार्थः —(त्रिशीर्षाणम्) तीन, ऊंचे नीचे और मध्य स्थानों में आश्रय वाले, (त्रिककुदम्) तीन [कायिक, वाचिक, मानसिक] सुखों की भूमि काटने वाले, (सारङ्गम्) रेंगने वाले [वा चितकबरे] और (अर्जुनम्) संचय करने वाले [वा श्वेत-वर्ण] (क्रिमिम्) कीड़ों को (शृणामि) मैं मारता हूँ, (अस्य) इसकी (पृष्टीः) पसलियों को (अपि) भी, और (तत्) जो (शिरः) शिर है [उसको भी] (वृश्चामि) तोड़े डालता हूं ॥९॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस प्रकार रोगजनक जन्तुओं को शुद्धि आदि द्वारा नाश करने से शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ता है, इसी प्रकार आत्मिक दोषों को हटाने से आत्मिक शान्ति होती है ॥९॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व० २। ३२। २ से करो ॥

अत्त्रि वद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥

भाषार्थः—(क्रिमयः) हे कीड़ो ! (वः) तुमको (अत्त्रिवत्) दोष भक्षक वा गतिशील, मुनि के समान, (कण्ववत्) स्तुतियोग्य मेधावी पुरुष के समान, (जमदग्निवत्) आहुति खाने वाले अथवा प्रज्वलित अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष के समान, (हन्मि) मैं मारता हूं। (अगस्त्यस्य) कुटिल गति वाले पाप के छेदने में समर्थ परमेश्वर के (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (अहम्) मैं (क्रिमीन्) कीड़ों को (सम् पिनष्मि) पीसे डालता हूं ॥१०॥

भावार्थः— मनुष्यों को ऋषि, मुनि, धर्मात्माओं के अनुकरण से वेदज्ञान द्वारा पाप का नाश करना चाहिये ॥१०॥

मन्त्र १०–१२ अथर्ववेद का० २ सू० ३२ मन्त्र ३—५ में आ चुके हैं ॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥

भाषार्थः—(एषाम्) इन (क्रिमीणाम्) कीड़ों का (राजा) राजा (हतः) नष्ट होवे, (उत) और (स्थपतिः) द्वारपाल (हतः) नष्ट होवे। (हतमाता) जिसकी माता नष्ट हो चुकी है, (हतभ्राता) जिसका भ्राता नष्ट हो चुका है, और (हतस्वसा) जिसकी बहिन नष्ट हो चुकी है, (क्रिमिः) वह चढ़ाई करने वाला कीड़ा (हतः) मार डाला जावे ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य अपने दोषों और उनके कारणों को उचित प्रकार से समझ कर नष्ट करे, जैसे वैद्य रोगों के प्रधान और गौण कारणों को जानकर उन्हें निवृत्त करता है ॥११॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [क्रिमी] के (वेशसः) मुख्य सेवक (हतासः=हताः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट हों, और (परिवेशसः) साथी भी (हतासः) नष्ट हों। (अथो-अथ-उ) और भी (ये) जो (क्षुल्लाकाः इव) बहुत सूक्ष्म आकार वाले से हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (क्रिमयः) कीड़े (हताः) नष्ट हों ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी स्थूल और सूक्ष्म कुवासनाओं का और उन की सामग्री का सर्वनाश कर दे, जैसे रोगजनक जन्तुओं को औषध आदि से नष्ट करते हैं ॥१२॥

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

भाषार्थः—(च) और (सर्वेषाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीड़ों का (च) और (सर्वासाम्) सब (क्रिमीणाम्) कीड़ों की स्त्रियों का (शिरः) शिर (अश्मना) पत्थर से (भिनद्मि) मैं फोड़ता हूं और (मुखम्) मुख (अग्निना) अग्नि से (दहामि) जलाता हूं ॥१३॥

भावार्थः—जैसे किसी वस्तु को अग्नि में जलाकर अथवा पत्थर पर तोड़ कर नष्ट कर देते हैं, वैसे ही मनुष्य अपने बाहिरी और भीतरी दोषों को नाश करे ॥१३॥

सूक्तम् ॥२४॥

१—१७ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १-३, ५-१४ शक्वरी; ४, १५-१७ अति-जगती छन्दः ॥

रक्षाप्रयत्नोपदेशः—रक्षा के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्याम-स्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१ ।

भाषार्थः—(सविता) सब का उत्पन्न करने वाला वा सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (प्रसवानाम्) उत्पन्न पदार्थों वा अच्छे अच्छे ऐश्वर्यों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे। (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) बड़े वेदज्ञान में, (अस्मिन्) इस (कर्मणि) कर्तव्य कर्म में, (अस्याम्) इस (पुरोधायाम्) पुरोहित पदवी में, (अस्याम्) इस (प्रतिष्ठायाम्) प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया में, (अस्याम्) इस (चित्याम्) चेतना में, (अस्याम्) इस (आकूत्याम्) इस संकल्प

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा उत्साह में, (अस्याम) इस (आशिषि) अनुशासन में, और (अस्याम्) इस (देवहूत्याम्) विद्वानों के बुलावे में, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य जगत्पति परमात्मा का आश्रय लेकर अपने सब उत्तम कार्य पुरुषार्थपूर्वक सिद्ध करें ॥१॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(अग्निः) [पार्थिव] अग्नि (वनस्पतीनाम्) सेवकों के रक्षकों वा वृक्षों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे,··· म० १ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य पार्थिव अग्नि के प्रभाव से उत्पन्न हुए पदार्थों द्वारा बल बढ़ा कर अपनी रक्षा करें ॥२॥

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (दातृणाम्) दाताओं की (अधिपत्नी) अधिष्ठात्री हैं, (ते) वे दोनों (मा) मुझे (अवताम्) बचावें···, म० १ ॥३॥

भावार्थः—सूर्य द्वारा वृष्टि और प्रकाश पृथिवी में प्रविष्ट होकर सब पदार्थ उत्पन्न करते हैं, मनुष्य उन पदार्थों से प्रयत्नपूर्वक अपना पालन करें ॥३॥

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥४॥

भाषार्थः—(वरुणः) वरणीय मेघ (अपाम्) जल धाराओं का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे ···म० १ ॥४॥

भावार्थः—मेघ से वृष्टि होकर पृथिवी के पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनसे मनुष्य अपनी रक्षा करें ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु (वृष्ट्या=वृष्ट्याः) वृष्टि के (अधिपती) दो अधिष्ठाता हैं, (तौ) वे दोनों (मा) मुझे (अवताम्) बचावें···म० १ ॥५॥

भावार्थः प्राण वायु जल को पृथिवी से मेघ मंडल में ले जाता, और अपान वायु वहाँ से जल को पृथिवी पर बरसाता है, उससे उत्पन्न हुए पदार्थों द्वारा मनुष्य अपनी रक्षा करें ॥५॥

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(मरुतः) ऋत्विक् लोग (पर्वतानाम् पहाड़ों के (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं, (ते) वे (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें,···म० १ ॥६॥

भावार्थः—याजक लोग पर्वत आदि स्थानों से ओषधि आदि उत्तम पदार्थों को लाकर उनसे संसार का उपकार करते हैं। उनसे प्रत्येक मनुष्य उपकार लेकर अपनी रक्षा करें ॥६॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥७॥

भाषार्थः—(सोमः) ऐश्वर्य का कारण सोमलता (वीरुधाम्) उगने वाली जड़ी बूटियों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे,···म० १ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम ओषधियों के सेवन से यथ वत् रक्षा करे ॥७॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥८॥

भाषार्थः—(वायुः) वायु (अन्तरिक्षस्य) मध्य लोक का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह···म० १ ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य वायु संचार का यथावत् गुण जानकर उत्तम कामों में सदा प्रवृत्त रहें ॥८॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥९॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्य (चक्षुषाम्) नेत्रों का (अधिपतिः) बड़ा रक्षक है, (सः) वह···म० १ ॥९॥

भावार्थः—सूर्य से प्रकाश द्वारा सब मनुष्य दर्शन शक्ति पाते हैं, मनुष्य अपनी दृष्टि को उत्तम कर्मों के देखने के लिये सदा स्थिर रक्खें ॥९॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१०॥

भाषार्थः—(चन्द्रमाः) आनन्द देने वाला चन्द्र (नक्षत्राणाम्) चलने वाले अश्विनी आदि नक्षत्रों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (सः)···वह·· म० १ ॥१०॥

भावार्थः—चन्द्रमा अश्विनी आदि नक्षत्रों का स्वामी होकर शुक्ल-पक्ष कृष्ण पक्ष आदि काल बनाता है और अन्न आदि ओषधियों को पुष्ट करता है, उस चन्द्रमा के गुण जान कर मनुष्य सदा आनन्द भोगें ॥१०॥

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्रः) बिजुली (दिवः) व्यवहार का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (सः) वह···म० १ ॥११॥

भावार्थः—सब पदार्थों में बिजुली के कारण चेष्टा होकर व्यवहार की सिद्धि होती है, मनुष्य उसके गुण जान कर यथावत् उपकार करें ॥११॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१२॥

भाषार्थः—(मरुताम्) सुवर्ण आदि धनों का (पिता) पालक (पशूनाम्) सब जीवों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, (सः) वह···म० १ ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य सुवर्ण आदि धनकी रक्षा करके परस्पर उन्नति करें ॥१२॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१३॥

भाषार्थः—(मृत्युः) मृत्यु (प्रजानाम्) उत्पन्न प्राणियों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (सः) वह···म० १ ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य मृत्यु की प्रबलता पर ध्यान देकर सब शुभ काम शीघ्र सिद्ध करें ॥१३॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१४॥

भाषार्थः—(यमः) नियम (पितॄणाम्) रक्षक पुरुषों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता है। (सः) वह (मा) मुझे (अवतु) बचावे···म० १ ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य नियमपूर्वक रक्षा करके यथावत् लाभ उठावें ॥१४॥

पितरः परे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायां-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१५॥

भाषार्थः—(परे) पूर्व काल में वर्तमान (ते) वे (पितरः) रक्षक लोग (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें···म० १ ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य प्रसिद्ध पूर्वज महात्माओं का अनुकरण करके सदा वृद्धि करें ॥१५॥

तता अवरे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१६॥

भाषार्थः—(अवरे) पिछले काल में वर्तमान (ते) वे (ततः=तातः) विस्तार करने वाले पूज्य पुरुष (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें·· म० १ ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्य वर्तमान काल के महापुरुषों के समान कार्य सिद्ध करके सदा उन्नति करें ॥१६॥

ततस्तातामहास्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१७॥

भाषार्थः—(ततः) और भी (ते) वे (तातामहाः=तातामहाः) पूजनीयों के पूजनीय पुरुष (मा) मुझे (अवन्तु) बचावें (अस्मिन्) इस (ब्रह्मणि) वेद ज्ञान में, (अस्मिन् कर्मणि) इस कर्तव्य व्रत में, (अस्याम् पुरोधायाम्) इस पुरोहित पदवी में, (अस्याम् प्रतिष्ठायाम्) इस प्रतिष्ठा वा सत्क्रिया में, (अस्याम् चित्त्याम्) इस चेतना में, (अस्याम् आकूत्याम्) इस संकल्प वा उत्साह में, (अस्याम् आशिषि) इस अनुशासन में, और (अस्याम् देवहूत्याम्) इस विद्वानों के बुलावे में, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्य बड़ों से बड़े विद्वान्, योगी, शूर वीरों के आचरणों पर पूर्ण ध्यान देकर सदा शुभ कर्म करके परस्पर प्रीति और उन्नति करें ॥१७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥२५॥

१—१३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गर्भाधानोपदेशः—गर्भाधान का उपदेशः ॥

पर्वताद् दिवो योने रङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥१॥

भाषार्थः -(रेतोधाः) वीर्य वा पराक्रम का रखने वाला पुरुष (पर्वतात्) पर्वत से [पर्वत आदि की ओषधियों से], (दिवः) आकाश के (योनेः) गर्भ आशय से [आकाशस्थ मेघ, वायु, प्रकाश आदि से] और (अङ्गात्—अङ्गात्) अपने अङ्ग से (समाभृतम्) एकत्र किया हुआ (गर्भस्य) स्तुतियोग्य सन्तान के (शेपः) उत्पन्न करने के सामर्थ्य को (आ) यथावत् (दधत्) स्थापित करे, (पर्णम् इव) जैसे पंख को (सरौ) तीर में [लगाते हैं] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य और औषधों के परीक्षण और सेवन से दृढ़ाङ्ग रह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उत्तम बलवान् संतान उत्पन्न करे ॥१॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (भूतानाम्) सब जीवों का (गर्भम्) गर्भ (आदधे) धारण किया है। (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भम्) गर्भ (आ) यथावत् (दधामि) स्थापित करता हूं, (तस्मै) उस [गर्भ] के लिये (अवसे) रक्षा करने को (त्वाम्) तुझे (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२॥

भावार्थः—जैसे यह विशाल पृथिवी मेघ से गर्भ धारण करके अमूल्य रत्न उत्पन्न करती है, वैसे ही विशाल स्वभाव वाली पत्नी अपने पराक्रमी पति के संयोग से विद्वान् सन्तान उत्पन्न करे ॥२॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३॥

भाषार्थः—(सिनीवालि) हे अन्नवाली पत्नी ! (गर्भम्) स्तुति योग्य गर्भ (धेहि) धारण कर, (सरस्वति) हे उत्तम ज्ञान वाली ! (गर्भम्) गर्भ (धेहि) धारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर। (दुष्करस्राजा) पुष्टि देने वाले (उभा) दोनों (अश्विना) दिन और रात (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ के बालक को (आ) अच्छे प्रकार (धत्ताम्) पुष्ट करें ॥३॥

भावार्थः—विज्ञानवती स्त्री गर्भ धारण करके आहार विहार आदि का ऐसा प्रबन्ध करे जिससे गर्भस्थ बालक दिन रात पुष्ट होता रहे ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० सू० १८४। म० २। और स्वामी दयानन्द कृत संस्कार विधि—गर्भाधान प्रकरण में भी है ॥

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥४॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को [आधत्ताम्=अच्छे प्रकार पुष्ट करें—म० ३]। (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का रक्षक सूर्य (गर्भम्) गर्भ को, (इन्द्रः) बिजुली (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (च) और (धाता) धारण करने वाला (अग्निः) और अग्नि (च) भी (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (दधातु) पुष्ट करे ॥४॥

भावार्थः—प्रयत्न किया जावे कि श्वास प्रश्वास, सूर्य, शारीरिक बिजुली अग्नि, आदि पदार्थ गर्भवती स्त्री के गर्भ को यथावत् पुष्ट करें ॥४॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५॥

भाषार्थः—(विष्णुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (योनिम्) गर्भाशय को (कल्पयतु) समर्थ करे, और वही (त्वष्टा) विश्वकर्मा ईश्वर [गर्भ के] (रूपाणि) आकारों को (पिंशतु) जोड़ जोड़ बनावे। (धाता) सर्व पोषक (प्रजापतिः) प्रजाओं का रक्षक परमात्मा (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ को (आ) सब प्रकार (सिञ्चतु) सींचे और (दधातु) पुष्ट करे ॥५॥

भावार्थः—समर्थ गर्भवती स्त्री परमेश्वर के उत्तम गुणों का स्मरण करती हुई गुणी महात्माओं का ध्यान करके गर्भ की रक्षा करे, जिससे बालक रूपवान् गुणी महात्मा उत्पन्न हो ॥५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १०। सू० १८४। म० १। और स्वामी दयानन्द कृत संस्कारविधि—गर्भाधान प्रकरण में भी है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६॥

भाषार्थः—(यत्) जो औषध (राजा) राजा (वरुणः) वरणयोग्य पति (वेद) जानता है, (वा) और (यत्) जो (देवी) दिव्य गुण वाली, (सरस्वती) विज्ञानवती पत्नी [जानती है] और (यत्) जो (वृत्रहा) शत्रु वा रोग नाशक (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला वैद्य (वेद) जानता है, (तत्) वह (गर्भकरणम्) गर्भजनक औषध (पिब) पान कर ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् पति और विदुषी पत्नी चतुर वैद्य की सम्मति से उचित आहार विहार करके गर्भरक्षा में तत्पर रहें ॥६॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य स अग्ने गर्भमेह धाः ॥७॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू (ओषधीनाम्) सोम लता, अन्न, आदि ओषधियों का (गर्भः) स्तुति योग्य आश्रय, (वनस्पतीनाम्) सेवनीय गुणों के पदार्थों का (गर्भः) ग्रहण करने वाला और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) पञ्च भूत का (गर्भः) आधार (असि) है, (सः) सो तू (इह) इसमें (गर्भम्) गर्भ शक्ति (आ) अच्छे प्रकार (धाः=धेयाः) धारण कर ॥७॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर सब उत्तम पदार्थों को अपने में धारण करता है वैसे ही समर्थ पराक्रमी स्त्री पुरुष उत्तम सन्तान का कारण पराक्रम, विद्या आदि अपने में रखके गर्भाधान करें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० १२ । म० ३७ ॥

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८॥

भाषार्थः—(अधि स्कन्द) उठकर खड़ा हो, (वीरयस्व) वीरता कर, और (योन्याम्) गर्भ आशय में (गर्भम्) सन्तान जनक सामर्थ्य (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर । (वृष्ण्यावन्) हे वीर्यवान् पुरुष ! तू (वृषा) ओजस्वी (असि) है, (प्रजायै) सन्तान के लिये (त्वा) तुझे (आ नयामसि) हम समीप लाते हैं ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष पराक्रमपूर्वक धन आदि प्राप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे जिस से सन्तान की यथावत् रक्षा होवे ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९॥

भाषार्थः—(बार्हत्सामे) हे अत्यन्त करके प्रिय कर्म वा सामवेद जानने वाली पत्नी ! तू (वि) विशेष करके (जिहीष्व) उद्योग कर, (गर्भः) सन्तानजनक सामर्थ्य (ते) तेरे (योनिम्) गर्भ आशय में (आ शयाम्=शेताम्) प्राप्त हो । (सोमपाः) अमृत पान करने वाले (देवाः) उत्तम गुणों ने (उभयाविनम्) दोनों [माता पिता] की रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (अदुः) दिया है ॥९॥

भावार्थः—बलवती गुणवती स्त्री प्रयत्नपूर्वक उत्तम सन्तान उत्पन्न करे ॥९॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्याः गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०॥

भाषार्थः—(धातः) हे पोषक परमात्मा ! (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्याः) इस (नार्याः) नारी की (गवीन्योः) दोनों पार्श्वस्थ नाड़ियों में (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने में (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥१०॥

भावार्थः—विदुषी पत्नी परमेश्वर के गुणों का विचार करती हुई उत्तम गुण स्वभाव वाला सन्तान गर्भ के पूरे दिनों में उत्पन्न करे ॥१०॥

यही भाव मन्त्र १३ तक जानो ॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्याः गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११॥

भाषार्थः—(त्वष्टः) हे विश्वकर्मा परमात्मन् । (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ..... म० १० ॥ ११॥

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्याः गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२॥

भाषार्थः—(सवितः) हे सबके उत्पन्न करने वाले परमेश्वर (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ ..म० १० । १२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३॥

भाषार्थः —(प्रजापते) हे सृष्टिपालक जगदीश्वर ! (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ (रूपेण) रूप के साथ (अस्याः) इस (नार्याः) नारी की (गवीन्योः) दोनों पार्श्वस्थ नाड़ियों में (पुमांसम्) रक्षा करने वाला (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान (दशमे) दसवें (मासि) महीने में (सूतवे) उत्पन्न होने को (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) स्थापित कर ॥१३॥

सूक्तम् २६ ॥

१—१२ ॥ विद्वान् देवता ॥ १–८, १०, ११ विराट्, ९, १२ जगती ॥

समाजवृद्धिकरणोपदेशः—समाज की वृद्धि करने का उपदेश ॥

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥

भाषार्थः – (प्रविद्वान्) बड़ा विद्वान् (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (इह) यहाँ (यज्ञे) संगति में (यजूंषि) पूजनीय कर्मों और (समिधः) विद्यादि प्रकाश क्रियाओं को (वः) तुम्हारे लिये (स्वाहा) उत्तम वाणी से (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष संसार में उत्तम कर्मों और विद्याओं को फैलावे ॥१॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः —(महिषः) महान्, (देवः) व्यवहारकुशल (प्रजानन्) बड़ा ज्ञानी (सविता) प्रेरक पुरुष (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति में (स्वाहा) सुन्दर वाणी से [पूजनीय कर्मों और विद्या आदि प्रकाश क्रियाओं को—म० १] (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥२॥

भावार्थः—बली विद्वान् पुरुष सभा आदि करके उत्तम कर्मों का प्रचार करें ॥२॥

इन्द्रं उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(प्रविद्वान्) बड़ा विद्वान्, (सुयुजः) सुयोग्य (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष (उक्थमदानि) शास्त्रों और सुखों को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति में (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (युनक्तु) उपयुक्त करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या प्राप्त करके वेदादि शास्त्रों का प्रचार करे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ।।४।।

भाषार्थः—(पत्नीभिः) पालन शील शक्तियों से (युक्ताः) युक्त (शिष्टाः) हे शिष्ट पुरुषो! (प्रैषाः) भेजने योग्य (निविदः) निश्चित विद्याओं को (इह) यहां (यज्ञे) संगति में (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (वहत) लाओ ।।४।।

भावार्थः—धीर सुशिक्षित पुरुष अन्न आदि दान करके वेद आदि सत्य विद्याओं का प्रचार करें ।।४।।

छन्दाँसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ।।५।।

भाषार्थः—(युक्ताः) हे योग्य (मरुतः) शूर पुरुषो! (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (इह) यहां (यज्ञे) परस्पर मिलाप में (छन्दांसि) आनन्द बढ़ाने वाले कर्मों को [इस प्रकार] (पिपृत) पालो, (माता इव) जैसे माता (पुत्रम्) कुल शोधक सन्तान को ।।५।।

भावार्थः—पराक्रमी विजयी महात्मा परोपकार करने में अपने सामर्थ्य भर प्रयत्न करें ।।५।।

एयमगन बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ।।६।।

भाषार्थः—(इयम्) यह (अदितिः) अखण्ड नीति (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ (बर्हिषा) उद्यम से और (प्रोक्षणीभिः) अच्छी अच्छी वृद्धियों से (यज्ञम्) आपस में मिलाप (तन्वाना) फैलाती हुई (आ अगन्) आई है ।।६।।

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वरदत्त वेद विद्या को पुरुषार्थ पूर्वक विचार कर परस्पर उन्नति करें ।।६।।

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपाँस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।७।

भाषार्थः—(सुयुजः) सुयोग्य (विष्णुः) कामों में व्यापक पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (तपांसि) अपनी विभूतियों को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (युनक्तु) लगावे ।।७।।

भावार्थः—चतुर पुरुषार्थी पुरुष दूसरों की उन्नति करने में अपनी उन्नति करें ।।७।।

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।८।।

भाषार्थः—(सुयुजः) सुयोग्य (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (बहुधा) अनेक प्रकार (नु) शीघ्र (रूपाः) अनेक रूप वाली क्रियाओं को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (युनक्तु) प्रयुक्त करे ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य अनेक प्रकार से क्रियाकुशल होकर परस्पर उन्नति करें ॥८॥

भगो॑ युनक्त्वा शिषो॒ न्व१ स्मा अ॒स्मिन् य॒ज्ञे प्र॑विद्वान्
युंनक्तु सुयुजः स्वाहा॑ ॥९॥

भाषार्थः—(प्रविद्वान्) बड़ा विद्वान्, (सुयुजः) सुयोग्य, (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (आशिषः) अपनी इष्ट प्रार्थनाओं को (नु) शीघ्र (अस्मै) इस [संसार के हित] के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (युनक्तु) लगावे, (युनक्तु) लगावे ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य निरन्तर प्रयत्न करके संसार की भलाई में सदा लगा रहे ॥९॥

सोमो॑ युनक्तु बहुधा पयाँस्य॒स्मिन् य॒ज्ञे सुयुजः स्वाहा॑ ॥१०॥

भाषार्थः—(सुयुजः) बड़ा योग्य (सोमः) शान्त स्वभाव पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (पयांसि) अन्नों को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (युनक्तु) लगावे ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या आदि प्रचार में अन्न दान करके अपनी योग्यता बढ़ावे ॥१०॥

इन्द्रो॑ युनक्तु बहुधा वी॒र्या॑ण्य॒स्मिन् य॒ज्ञे सुयुजः स्वाहा॑ ॥११॥

भाषार्थः—(सुयुजः) सुयोग्य (इन्द्रः) प्रतापी पुरुष (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (बहुधा) अनेक प्रकार (वीर्याणि) अनेक वीर कर्मों को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर मेल में (युनक्तु) लगावे ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् उत्साही पुरुष समाज की उन्नति में सदा प्रयत्न करता रहे ॥११॥

अश्वि॑ना ब्रह्म॑णा यातमर्वाञ्चौ॑ वषट्का॒रेण॑ यज्ञं॑ वर्धयन्तौ । बृह॑स्पते ब्रह्म॒णा या॒ह्यर्वाङ् य॒ज्ञो अ॒यं स्व॑रि॒दं यज॑मानाय॒ स्वाहा॑ ॥१२॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे कर्मकुशल स्त्री पुरुषो ! (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान से, और (वषट्कारेण) दान कर्म से (यज्ञम्) समाज को (वर्धयन्तौ) बढ़ाते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्वाञ्चौ) सन्मुख होते हुए (आयातम्) तुम दोनों आवो। (बृहस्पते) हे बड़े बड़े लोकों के रक्षक परमात्मन्! (ब्रह्मणा) वृद्धि साधन के साथ (अर्वाङ्) हमारे सन्मुख (आ याहि) तू आ (अयम्) यह (यज्ञः) समाज (यजमानाय) संगतिशील पुरुष के लिये (इदम्) ऐश्वर्य देने वाला (स्वः) सुख होवे, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥१२॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्री पुरुष वेदज्ञान से समाज की उन्नति करते हुए आगे बढ़ें, और परमेश्वर को साक्षी और सहायक जानकर सदा सुखी रहें ॥१२॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् २७ ॥

१–१२ ॥ अग्निः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १ आस्तारपङ्क्तिः, २, ७ द्विपदानुष्टुप्, ३, १२ उष्णिक्, ४, ६ द्विपदा विराट्, ८ प्रस्तारपङ्क्तिः, ९ अतिजगती, १०, ११ पदपङ्क्तिः ॥

पुरुषार्थोपदेशः - पुरुषार्थ का उपदेश ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः सस्नुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥

भाषार्थः—(अस्य) उस (अग्नेः) विद्वान पुरुष की (समिधः) विद्या आदि प्रकाश क्रियायें (ऊर्ध्वाः) ऊंची, और (शुक्रा) अनेक वीर कर्म और (शोचींषि) तेज (ऊर्ध्वा) ऊंचे (भवन्ति) होते हैं [जो विद्वान्] (द्युमत्तमा) अतिशय प्रकाश वाला, (सुप्रतीकः) बड़ी प्रतीति वाला (सस्नुः) प्रेरक अर्थात् प्रधान पुरुषों के साथ वर्त्तमान (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों का न गिराने वाला (असुरः) बड़ी बुद्धि वाला, और (भूरिपाणिः) बहुत व्यवहारों में हाथ रखने वाला होता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य महागुणी और बहुक्रियाकुशल होता है, वह संसार में उन्नति करता है ॥१॥

यह सूक्त कुछ भेद से यजुर्वेद में है - अ० २७ । म० ११—२२ ॥

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥

भाषार्थः—(देवेषु) व्यवहारकुशल लोगों के बीच (देवः) व्यवहार कुशल और (देवः) विजय चाहने वाला पुरुष (मध्वा) ज्ञान से और (घृतेन) प्रकाश से (पथः) मार्गों को (अनक्ति) खोलता है ॥२॥

भावार्थः—विद्वानों में महा विद्वान् सत्यप्रतिज्ञावाला पुरुष संसार में सन्मार्ग का प्रचार करता है ॥२॥

मध्वा यज्ञं नक्षति प्रेणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्
देव सविता विश्ववारः ॥३॥

भाषार्थः—(नराशंसः) मनुष्यों में प्रशंसा वाला, (सुकृत्) उत्तम कर्म करने-वाला (देवः) व्यवहार में चतुर, (सविता) ऐश्वयवाला (विश्ववारः) सबसे अङ्गी-कार करने योग्य (अग्निः) विद्वान् पुरुप (मध्वा) ज्ञान से (यज्ञम्) समाज को (प्रेणानः) आगे बढ़ाता हुआ (नक्षति) चलता है ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषार्थी मनुष्य विद्या बल से संसार की उन्नति करता है ॥३॥

(प्रेणानः) पदके स्थान पर यजुर्वेद । २७ । १३ । में [प्रीणानः] है ॥

अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥४॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [शुभ गुणों की] (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) निर्वाह करने वाला पुरुष (चित्) ही (शवसा) बल, (घृता) जल और (नमसा) अन्न के साथ (अच्छ) अच्छे प्रकार (एति) चलता है ॥४॥

भावार्थः - विद्वान् पुरुष सब का बल और धन बढ़ाता हुआ कीर्ति पाता है ॥४॥

(घृता) के स्थान पर यजुर्वेद, २७ । १४ में [घृतेन] है ॥

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५॥

भाषार्थः—(सः) वह (अग्निः) विद्वान् पुरुष (अध्वरेषु) सन्मार्ग वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रयक्षु) बड़े यज्ञों वा समाजों में (अस्य) इस (अग्नेः) सर्वव्यापक परमेश्वर की (स्रुचः) गति की (महिमानम्) महिमा को (यक्षत्) पूजे ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष संसार में परमात्मा की विचित्र गति क ज न कर पुरुषार्थ करता है ॥५॥

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६॥

भाषार्थः—(मन्द्रासु) आनन्द क्रियाओं में और (प्रयक्षु) बड़े समाजों में (तरी) तारने वाला विद्वान् (च) और (वसुधातरः) अधिक धनों का धारण करने वाला पुरुष (च) और (वसवः) उत्तम उत्तम गुणी लोग (अतिष्ठन्) स्थित हुए हैं ॥६॥

भावार्थः—उद्योगी प्रधान होने से समाज के सब सभ्य गुणी और धनी होते हैं ॥६॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७॥

भाषार्थः—(विश्वे) सब [उत्तम गुण] (अस्य) इसके (व्रतम्) व्रत की और (देवीः) प्रकाश वाले (द्वारः) घरके द्वारों की (विश्वहा=विश्वधा) अनेक प्रकार (अनु) अनुकूल रीति से (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् के उत्तम गुण ही उनके नियमों और घर आदि की रक्षा करते हैं ॥७॥

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने । आ सुष्वयन्ती यजते
उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवताध्वरं नः ॥८॥

भाषार्थः—(अग्नेः) सर्वव्यापक परमेश्वर के (उरु-व्यचसा) दूर दूर तक व्यापक (धाम्ना) तेज से (पत्यमाने) ऐश्वर्य करती हुई, (सुष्वयन्ती=सु सु अयन्त्यौ) अति सुन्दरता से चलती हुई, (यजते) संगति योग्य, (उपाके) पास पास रहने वाली (उषासानक्ता) रात और प्रभात वेलायें [दिन और रात] (नः) हमारे (इमम्) इस (अध्वरम्) सन्मार्ग वाले (यज्ञम्) समाज को (आ अवताम्) आती रहें ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य धर्ममार्ग में चलकर दिन रात उन्नति करते रहें ॥८॥

मन्त्र का मिलान अ० ५ । १२ । ६ से करो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणतो नः स्विष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९॥

भाषार्थः—(दैवाः) विद्वानों में रहने वाले विद्वान् (होतारः) हे दानशील पुरुषो! (नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) ऊंचे (अध्वरम्) अकुटिल व्यवहार को (अग्नेः) [शारीरिक और बाह्य] तेज की (जिह्वया) जयसे (नः) हमारे (स्विष्टये) अच्छे समागम के लिए (अभि) अच्छे प्रकार (गृणत) वर्णन करो और (गृणत) वर्णन करो। (तिस्रः) तीनों (देवीः) देवियां (महती) विशाल गुण वाली (गृणाना) उपदेश करती हुई (इडा) स्तुति योग्य नीति, (सरस्वती) विज्ञानवती बुद्धि और (भारती) पोषण करने वाली विद्या (इदम्) इस (बर्हिः) बढ़े हुए कर्म में (आ सदन्ताम्) आवें ॥९॥

भावार्थः—सब विद्वान् मनुष्य उत्तम उत्तम नीति, बुद्धि और अनेक व्यावहारिक विद्यायें प्राप्त करके परस्पर वृद्धि करें ॥९॥

इस मन्त्र का मिलान अ० ५। १२। ८ के साथ करो।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु।
देवं त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥१०॥

भाषार्थः—(देव) हे व्यवहार में चतुर (त्वष्टः) सूक्ष्मदर्शी पुरुष! (नः) हमारे लिए (तत्) वह (तुरीपम्) शीघ्र रक्षा करने वाला, (अद्भुतम्) अद्भुत, (पुरुक्षु) बहुत अन्न और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि (अस्य) इस [घर] के (नाभिम्) मध्यदेश में (वि ष्य) खोल दे ॥१०॥

भावार्थः मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक पुष्कल अन्न और धन से घरों को परिपूर्ण करके यथावत् पोषण करें ॥१०॥

वनस्पते ऽव सृजा ररांणः।
त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११॥

भाषार्थः—(वनस्पते) हे सेवनीय शास्त्र के रक्षक (रराणः) दानशील तू (अव सृज) दान कर। (शमिता) शान्ति करने वाला (अग्निः) विद्वान् पुरुष (त्मना) आत्मबल से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (हव्यम्) ग्राह्यपदार्थ अन्न आदि को (स्वदयतु) स्वादु बनावे ॥११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—विद्वान् पुरुष विद्वानों का सत्कार करके विद्या आदि उत्तम गुणों की वृद्धि करे ॥११॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (कृणुहि) कर। (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्राह्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके ऐश्वर्य के लिये उत्तम कर्म सदा करें ॥१२॥

सूक्तम् ॥२८॥

१—१४ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १-६, ८, ११, १४ त्रिष्टुप्; ७, ९, १० अनुष्टुप्; १२, १३ पुरउष्णिक् ॥

रक्षैश्वर्योपदेशः—रक्षा और ऐश्वर्य का उपदेश ॥

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥१॥

भाषार्थः—वह [परमेश्वर] (नव) नौ (प्राणान्) जीवन शक्तियों को (नवभिः) नौ [इन्द्रियों] के साथ (शतशारदाय) सौ शरद् ऋतुओं वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (संमिमीते) यथावत् मिलाता है। [उसी करके] (हरिते) दरिद्रता हरने वाले पुरुषार्थ में (त्रीणि) तीनों, (रजते) प्रिय होने वाले प्रबन्ध [वा रूप्य] में (त्रीणि) तीनों, और (अयसि) प्राप्त योग्य कर्म [वा सुवर्ण] में (त्रीणि) तीनों [सुख] (तपसा) सामर्थ्य से (आविष्ठितानि) स्थित किये गये हैं ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने नवद्वारपुर शरीर में दोनों कानों, दोनों नेत्रों, दोनों नथनों, मुख, पायु और उपस्थ, नव इन्द्रियों में नव शक्तियाँ रक्खी हैं उसी जगदीश्वर ने बताया है कि मनुष्य उत्तम पुरुषार्थ, उत्तम प्रबन्ध और उत्तम कर्म से चांदी सोना एकत्र करके तीन सुख अर्थात् अन्न, मनुष्य और पशुओं को बढ़ावे—मन्त्र ३ देखो ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेनं मा त्रिवृता पारयन्तु ॥२॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि, (सूर्यः) सूर्य, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा, (भूमिः) भूमि, (आपः) जल, (द्यौः) आकाश, (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक, (दिशः) दिशायें, (प्रदिशः) विदिशायें (च) और (ऋतुभिः) ऋतुओं से (संविदानाः) मिले हुए (आर्तवाः) ऋतुओं के विभाग (अनेन) इस (त्रिवृता) त्रिवृति [तीन जीवन साधन म० १] से (मा) मुझे (पारयन्तु) पूर्ण करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के सब पदार्थों से उपकार, उत्तम पुरुषार्थ आदि [म० १] तीन साधनों से आत्मबल बढ़ावें ॥२॥

त्रयः पोषास्त्रिवृतिं श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥३॥

भाषार्थः—(त्रयः) तीन (पोषाः) पोषण सामर्थ्य (त्रिवृति) त्रिवृति [तीन जीवन साधन म० १] में (श्रयन्ताम्) बनी रहें। (पूषा) पोषण करने वाला अधिकारी (पयसा) दूध और (घृतेन) घृत से (अनक्तु) संयुक्त करे। (अन्नस्य) अन्न की (भूमा) बहुतायत, (पुरुषस्य) पुरुषों की (भूमा) बहुतायत और (पशूनाम्) पशुओं की (भूमा) बहुतायत (ते) यह सब (इह) यहां पर (श्रयन्ताम्) ठहरी रहें ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्य उत्तम पुरुषार्थ, उत्तम प्रबन्ध और उत्तम कर्म से [म० १] अन्न, पुरुषों और पशुओं का योग्य संग्रह करके सुख भोगें ॥३॥

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र संसृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥४॥

भाषार्थः—(आदित्याः) हे तेजस्वी पुरुषो ! (इमम्) इस पुरुष को (वसुना) धन से (सम्) अच्छे प्रकार (उक्षत) सींचो, (अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (वावृधानः) बढ़ता हुआ तू (इमम्) पुरुष को (वर्धय) बढ़ा, (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (इमम्) इस पुरुष को (वीर्येण) वीरता से (सं सृज) संयुक्त कर। (अस्मिन्) इस पुरुष में (पोषयिष्णु) पुष्टि देने वाली (त्रिवृत्) त्रिवृत्ति [म० १] (श्रयताम्) ठहरी रहे ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् जन उपदेश करें कि सब मनुष्य उत्तम पुरुषार्थ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम प्रबन्ध और उत्तम कर्म से अन्न पुरुष और पशुओं को प्राप्त करके आनन्द भोगें ॥४॥

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृद्दग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥५॥

भाषार्थः—(विश्वभृत्) सबको धारण करने वाली (भूमिः) भूमि (हरितेन) दरिद्रता हरने वाले पुरुषार्थ से (त्वा) तुझे (पातु) पाले, (सजोषाः) प्रीतियुक्त (अग्निः) अग्नि (अयसा) प्राप्ति योग्य कर्म से (पिपर्तु) पूर्ण करे। (वीरुद्भिः) उगती हुई लता रूप प्रजाओं से (संविदानम्) मिला हुआ (ते) तेरा (अर्जुनम्) अर्थसंग्रह (सुमनस्यमानम्) मन का शुभ करने वाला (दक्षम्) बल (दधातु) धारण करे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य भूमि, अग्नि आदि पदार्थों के व्यवहार से पुरुषार्थ के साथ उत्तम गुणों का संग्रह करके अपना बल बढ़ावें ॥५॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् । अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृद्दस्त्वायुषे ॥६॥

भाषार्थः—(इदम्) यह प्रसिद्ध (हिरण्यम्) कमनीय तेज [ब्रह्म] (त्रेधा) तीन प्रकार से (जन्मना) जन्म से (जातम्) उत्पन्न हुआ, (एकम्) एक (अग्नेः) अग्नि का (प्रियतमम्) अति प्रीति वाला (बभूव) हुआ, (एकम्) एक (हिंसितस्य) पीड़ित (सोमस्य) चन्द्रमा का (प्रियतमं) अतिप्रिय होकर (परा अपतत्) [सूर्य से] आकर गिरा। (एकम्) एक को (वेधसाम्) विधान करने वाली (अपाम्) जल धाराओं का (रेतः) बीज (आहुः) वे कहते हैं। (तत्) वह (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप ब्रह्म (ते) तेरी (आयुषे) आयु के लिये (त्रिवृत्) त्रिवृत्ति [तीनों जीवन साधन] (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा का तेज तीन प्रकार से प्रकट होता है १—भौतिक अग्नि में जो पृथिवी के पदार्थों को पकाता है, २—अन्धकार युक्त चन्द्रमा में जो सूर्य से प्रकाशित होता है, ३—सूर्य में, जो जल को खींचकर मेघमण्डल से बरसाता है। मनुष्य उस तेजोमय परमेश्वर का नित्य ध्यान करके उत्तम पुरुषार्थ आदि त्रिवृत्ति [म० १] को बढ़ावें ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥७॥

भाषार्थः —(जमदग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के [अथवा, नेत्र अर्थात् नेत्र आदि इन्द्रियों के] (त्र्यायुषम्) तीन जीवन साधन म० १ [अथवा, शुद्धि, बल और पराक्रमयुक्त तीन गुण आयु], और (कश्यपस्य) तत्त्वदर्शी ऋषि के [अथवा, ईश्वर की व्यवस्था से सिद्ध] (त्र्यायुषम्, बालकपन, यौवन और बुढ़ापा, तीन प्रकार की आयु [अथवा, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों का सुखकारक तीन गुण आयु], (त्रेधाः) तीन प्रकार से [अर्थात् विद्या, शिक्षा और परोपकार सहित तीन गुण आयु से] (अमृतस्य) अमरपन वा मोक्ष का (चक्षणम्) दर्शक होवे। [हे पुरुषार्थी ! वे ही] (त्रीणि) तीन (आयूंषि) जीवन साधन (ते) तेरे लिये (अकरम्) मैंने किये हैं ॥७॥

भावार्थः—प्रतापी, दूरदर्शी मनुष्य तीन जीवन साधन अर्थात् पुरुषार्थ, प्रबन्ध और कर्म को [म० १], तथा शारीरिक और आत्मिक बल से तीन पदार्थ अर्थात् अन्न, पुरुष और गौ आदि पशुओं को [म० ३] प्राप्त करके परोपकार करते हुए सदा सुखी रहें ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ३ म० ६२। कोष्ठ के भीतर महर्षि दयानन्द के भाष्य का अर्थ है, उनका मत है—उस मन्त्र में [त्र्यायुषम्] चार बार होने से यह तात्पर्य है कि विद्वान् पुरुष तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष से अधिक चार सौ वर्ष पर्यन्त भी आयु भोग सकता है ॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८॥

भाषार्थः (त्रयः) तीन (शक्राः) समर्थ (सुपर्णाः) बड़े पोषक पदार्थ (त्रिवृता) त्रिवृत्ति [तीन जीवन साधन] के साथ (एकाक्षरम्) एक अविनाशी ब्रह्म को (अभिसंभूय) सब ओर से प्राप्त कर के (यत्) जब (आयन्) प्राप्त हुए। (विश्वा) सब (दुरितानि) अनिष्टों को (अन्तर्दधानाः) ढकते हुए उन्होंने (अमृतेन साकम्) मृत्यु से बचने के साधन के साथ [वर्त्तमान होकर] (मृत्युम्) मृत्यु के कारण को (प्रति औहन्) मिटा दिया ॥८॥

भावार्थः मनुष्य पुरुषार्थ आदि [म० १] तीन उपायों से अन्न, पुरुष और पशु द्वारा [म० ३] दरिद्रता आदि कष्टों को हटाकर अपना जीवन सुफल करें ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९॥

भाषार्थः—(हरितम्) दरिद्रता हरने वाला पुरुषार्थ (त्वा) तुझको (दिवः) सूर्य से (पातु) बचावे और (अर्जुनम्) अर्थ संग्रह (मध्यात्) मध्यलोक से (त्वा) तुझे (पातु) बचावे। (अयस्मयम्) प्राप्तियोग्य कर्म (भूम्याः) भूमि से (पातु) बचावे। (अयम्) यह पुरुष (देवपुराः) विद्वानों की अग्रगतियों को (प्र) अच्छे प्रकार (अगात्) पहुंचा है ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम पुरुषार्थ, प्रबन्ध और कर्म करते हैं वे आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक विपत्तियों से बचकर विद्वानों के योग्य सुख भोगते हैं ॥९॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१०॥

भाषार्थः—(इमाः) यह समीपस्थ और (ताः) वे दूरस्थ (तिस्रः) तीनों (देवपुराः) विद्वानों की अग्र गतियां (त्वा) तुझे (सर्वतः) सब ओर से (रक्षन्तु) बचावें। (ताः) उनको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (त्वम्) तू (वर्चस्वी) तेजस्वी और (द्विषताम्) वैरियों में (उत्तरः) उच्च पदवाला (भव) हो ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य समीप और दूर से पुरुषार्थ आदि [म० १] द्वारा अन्न आदि तीनों पदार्थों को [म० ३] धारण करता हुआ दरिद्रता आदि शत्रुओं को दबा कर तेजस्वी हो ॥१०॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबबन्ध प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११॥

भाषार्थः—(यः) जिस (प्रथमः) प्रख्यात (देवः) प्रकाशमय परमेश्वर ने (अग्रे) पहिले काल में (देवानाम्) विद्वानों के (पुरम्) आगे चलने वाले (अमृतम्) अमर (हिरण्यम्) कमनीय तेज को (आबबन्ध) सब ओर से बांधा था। (तस्मै) उस परमेश्वर को (दश) दस (प्राचीः) फैली हुई दिशाओं में (नमः) नमस्कार (कृणोमि) मैं करता हूं। (त्रिवृत्) त्रिवृत्ति [म० १, २] (अनु मन्यताम्) अनुकूल होवे [जिसे] (मे) अपने लिये (आबधे) मैं बांधता हूं ॥११॥

भावार्थः—जो अनादि, तेजोमय परमात्मा विद्वानों का मुक्तिदाता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी को मनुष्य सब स्थान में साक्षात् करके (त्रिवृत् म० १, २) पुरुषार्थ आदि तीनों गुणों द्वारा आनन्द भोगे ॥११॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२॥

भाषार्थः—(अर्यमा) अरि अर्थात् हिंसकों का नियामक (आ) और (पूषा) पोषण करने वाला (आ) और (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक पुरुष (त्वा) तुझ [परमेश्वर] को (आ) अच्छे प्रकार (चृतत्) बांधे। [हृदय में रक्खे] (अहर्जातस्य) प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले [प्राणी] का (यत् नाम) जो नाम है, (तेन) उस [नाम से] (त्वा) तुझ को (अति) अत्यन्त करके (चृतामसि=० मः) हम बांधते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जिस प्रकार विद्वान् मनुष्य परमेश्वर का चिन्तन करते हैं, उसी प्रकार सब प्राणी परमात्मा का ध्यान करें ॥१२॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि । १३॥

भाषार्थः (ऋतुभिः) ऋतुओं से (त्वा) तुझ परमेश्वर को, (आर्तवैः) ऋतुओं के विभागों से (त्वा) तुझ को और (संवत्सरस्य) सब के निवास देने वाले सूर्य के (तेन) उस (तेजसा) तेज से (आयुषे) अपने जीवन के लिये और (वर्चसे) तेज के लिये (संहनु) संयुक्त (कृण्मसि) हम करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग ऋतु, मास आदि काल और सूर्य आदि रचनाओं के विचार से परमेश्वर की महिमा का साक्षात् करते हैं ॥१३॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४॥

भाषार्थः—(घृतात्) प्रकाश से (उल्लुप्तम्) ऊपर खींचा गया, (मधुना) ज्ञान से (समक्तम्) अच्छे प्रकार प्रकट किया गया, (भूमिदृंहम्) भूमि को दृढ़ करने वाला, (अच्युतम्) अटल, (पारयिष्णु) पार करने वाला, [ब्रह्म] (सपत्नान्) वैरियों को (भिन्दत्) छिन्न भिन्न करता हुआ (च) और (अधरान्) नीचा (कृण्वत्) करता हुआ तू [ब्रह्म] (मा) मुझ को (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य के लिये (आ रोह) ऊँचा कर ॥१४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की महिमा जानकर अपने विघ्नों का नाश करके सौभाग्य प्राप्त करें ॥१४॥

सूक्तम् ॥२९॥

१—१५ ॥ अग्निर्देवता ॥ १-११ त्रिष्टुप्; १२-१५ अनुष्टुप् ॥

शत्रूणां रोगाणांच नाशोपदेशः—शत्रुओं और रोगों के नाश का उपदेश ॥

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (युक्तः) योग्य हो कर तू (पुरस्तात्) हमारे आगे (वह) प्राप्त हो, (यथा) जिस से (इदम्) इस (क्रियमाणम्) किये जाते हुए कर्म को (विद्धि) तू जान ले । (त्यम्) तू (भिषक्) वैद्य (भेषजस्य) औषध का (कर्ता) करने वाला (असि) है । (त्वया) तेरे साथ (गाम्) गौ, (अश्वम्) घोड़ा (पुरुषम्) पुरुष को (सनेम) हम सेवन करें ॥१॥

भावार्थः—राजा आदि प्रधान प्रबन्ध करें कि सब मनुष्य गौओं, घोड़ों और पुरुषों से यथावत् उपकार लेवें ॥१॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यत मो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पतांति ॥२॥

भाषार्थः—(तत्) सो (जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (विश्वेभिः) सब (देवैः सह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ तू (तथा) वैसा (कृणुः) कर । (यथा) जिस से (अस्य) उस [शत्रु] का (सः परिधिः) वह परकोटा (पतांति) गिरपड़े, (यः) जिस [शत्रु] ने (नः) हमें (दिदेव) सताया है, अथवा (यतमः) जिस किसी ने (जघास) खाया है ॥२॥

भावार्थः—प्रजा के सताने वाले शत्रुओं को राजा यथावत् दण्ड देवे ॥२॥

यथा सो अस्य परिधिष्पतांति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (अस्य) उस [शत्रु] का (सः परिधिः) वह परकोटा (पतांति) गिर पड़े, (तत्) सो (जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् पुरुष ! (विश्वेभिः) सब (देवैःसह) उत्तम गुणों के साथ (संविदानः) मिलता हुआ तू (तथा) वैसा (कृणु) कर ॥३॥

भावार्थः—राजा शत्रु से प्रजा की रक्षा करने का उपाय सदा करता रहे ॥३॥

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि । पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४॥

भाषार्थः—(अक्ष्यौ) उसकी दोनों आंखें (नि विध्य) छेद डाल, (हृदयम्) हृदय (नि विध्य) छेद डाल, (जिह्वाम्) जीभ (नि तृन्द्धि) काट डाल, और (दतः) दांतों को (प्र मृणीहि) तोड़ दे। (यतमः) जिस किसी (पिशाचः) मांस खाने वाले पिशाच ने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है, (यविष्ठ) हे महाबलवान् (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकड़े टुकड़े करदे ॥४॥

भावार्थः—राजा हिंसक प्राणियों का यथावत् नाश करता रहे ॥४॥

यदस्य हृतं विहृतं यत् परांभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः । तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५॥

भाषार्थः—(पिशाचैः) पिशाचों करके (अस्य) इसके (आत्मनः) शरीर से (यत्) जो (हृतम्) हरा गया, (विहृतम्) लूटा गया, (यत्) जो (पराभृतम्) हटाया गया, और (यतमत्) जो कुछ (जग्धम्) खाया गया है। (अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! (विद्वान्) विद्वान् (त्वम्) तू (तत्) उसको (पुनः) फिर (आ भर) लाकर भर दे, (शरीरे) इसके शरीर में (मांसम्) मांस और (असुम) प्राण को (आ ईरयामः) हम स्थापित करते हैं ॥५॥

भावार्थः—राजा और वैद्य गण दुःखी प्रजागणों को यथावत् सुख पहुँचावें ॥५॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ । तदात्मनि प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥६॥

भाषार्थः—(यः) जिस (पिशाचः) पिशाच समूह ने (आमे) कच्चे (सुपक्वे) अच्छे पक्के, (शबले) चित्तकबरे अथवा (विपक्वे) विविध प्रकार पके हुए (अशने) भोजन में (मा) मुझे (ददम्भ) धोखा दिया है। (तत्) उससे (पिशाचाः) वे मांस-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्षक (आत्मना) अपने जीव और (प्रजया) प्रजा के साथ (वि) विविध प्रकार (यातयन्ताम्) पीड़ा पावें, और (अयम्) यह पुरुष (अगदः) नीरोग (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—भोजन आदि में कुवस्तु मिलाने वाले दुष्टों को दण्ड देकर प्रजा को स्वस्थ रखना चाहिये ॥६॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये ३ ' यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो ३ ' यमस्तु ॥७॥

भाषार्थः—(यतमः) जिस किसी ने (क्षीरे) दूध में अथवा (मन्थे) मट्ठे में, अथवा (यः) जिसने (अकृष्टपच्ये) विना जुते खेत से उत्पन्न (अशने) भोजन में, अथवा (धान्ये) यव आदि धान्य में (मा) मुझे (ददम्भ) धोखा दिया है। (तत्) उससे·····म० ६ ॥७॥

भावार्थः—मन्त्र ६ देखो ॥७॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो ३ ' यमस्तु ॥८॥

भाषार्थः—(यतमः) जिस किसी (क्रव्यात्) मांसभक्षक ने (अपाम्) जल के (पाने) पान करने में (यातूनाम्) यात्रियों के (शयने) शयन स्थान में (शयानम्) सोते हुए (मा) मुझ को (ददम्भ) ठगा है। (तत्) उससे·····म० ६ ॥८॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो ३ ' यमस्तु ॥९॥

भाषार्थः—(यतमः) जिस किसी (क्रव्यात्) मांसभक्षक ने (दिवा) दिन में वा (नक्तम्) रात में (यातूनाम्) यात्रियों के (शयने) शयनस्थान में (शयानम्) सोते हुए (मा) मुझ को (ददम्भ) ठगा है। (तत्) उससे (पिशाचाः) वे मांसभक्षक (आत्मना) अपने जीव और (प्रजया) प्रजा के साथ (वि) विविध प्रकार (यातयन्ताम्) पीड़ा पावें, और (अयम्) यह पुरुष (अगदः) नीरोग (अस्तु) होवे ॥९॥

भावार्थः—मन्त्र ६ देखो ॥

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनो हनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष! (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले, (रुधिरम्) रोकने वाले और (मनोहनम्) मन बिगाड़ देने वाले (पिशाचम्) राक्षस को (जहि) मार डाल। (तम्) उसको (वाजी) पराक्रमी (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाले आप (वज्रेण) वज्र से (हन्तु) मारें, और (धृष्णुः) निर्भय (सोमः) प्रतापी आप (अस्य) इसका (शिरः) शिर (छिनत्तु) काटें ॥१०॥

भावार्थः—नीतिज्ञ राजा पराक्रम करके शत्रुओं को मारकर प्रजा को पाले ॥१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षाँसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् [वा भौतिक अग्नि] तू (यातुधानान्) पीड़ा देने हारे [प्राणियों वा रोगों] को (सनात्) नित्य (मृणसि) नष्ट करता है, (रक्षांसि) उन राक्षसों ने (त्वा) तुझे (पृतनासु) संग्रामों में (न) नहीं (जिग्युः) जीता है। (सहमूरान्) समूल (क्रव्यादः) उन मांसभक्षकों को (अनु दह) भस्म कर दे। (ते) तेरे (दैव्यायाः) दिव्य गुण वाले (हेत्याः) वज्र से (मा मुक्षत) वे न छूटें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यापूर्वक शारीरिक अग्नि अर्थात् बल को स्थिर रख कर अपने वैरियों और रोगों को उनके कारणों सहित नाश करे ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋ० १०। ८७। १९ और सामवेद पू० १। ८। ८। में है॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम्।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध! उसे! (समाहर) भर दे (यत्) जो कुछ (हृतम्) हर लिया गया, अथवा (यत्) जो कुछ (पराभृतम्) हटाया गया है। (अस्य) इस [मनुष्य] के (गात्राणि) सब अंग (वर्धन्ताम्) बढ़ें। (अयम्) यह पुरुष (अंशुः इव) वृक्ष के अंकुर के समान (आ प्यायताम्) बढ़ता रहे ॥१२॥

भावार्थः—सद्वैद्य रोगों को हटाकर प्राणियों को स्वस्थ रक्खें ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध ! (अयम्) यह पुरुष (सोमस्य अंशुः इव) चन्द्रमा की किरण अथवा सोमलता के अंकुर के समान (आ प्यायताम्) बढ़ता रहे। (अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! तू (विरप्शिनम्) विविध प्रकार से कथने योग्य महागुणी पुरुष को (अयक्ष्मम्) नीरोग और (मेध्यम्) बुद्धि के लिये हितकारी (कृणु) कर, और (जीवतु) वह जीता रहे ॥१३॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष शारीरिक और आत्मिक रोगों को नाश करके सब को प्रसन्न रक्खे ॥१३॥

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (ते) तेरे (एताः) यह (समिधः) विद्यादि की प्रकाश क्रियायें (पिशाचजम्भनीः) मांसभक्षक [प्राणियों वा रोगों] की नाश करने वाली हैं। (जातवेदः) हे विद्या में प्रसिद्ध ! (त्वम्) तू (ताः) उन से (जुषस्व) प्रसन्न हो, (च) और (एनाः) इनको (प्रति गृहाण) प्रतीति से अंगीकार कर ॥१४॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष विद्या द्वारा दुःखदायी प्राणी और रोगों का नाश करे और धर्म कार्य में सदा प्रवृत्त रहे ॥१४॥

तार्ष्टीधीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥१५॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् जन ! (तार्ष्टीधीः) तृष्णाओं की निन्दा करने वाली (समिधः) विद्यादि प्रकाश क्रियाओं को (अर्चिषा) पूजा के साथ (प्रति) निश्चय पूर्वक (गृह्णाहि) तू अंगीकार कर ! (क्रव्यात्) वह मांसभक्षक [प्राणी वा रोग] (रूपम्) अपने रूप को (जहातु) छोड़ देवे, (यः) जो (अस्य) इस पुरुष का (मांसम्) मांस (जिहीर्षति) हरना चाहता है ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य लोभादि तृष्णाओं को छोड़कर परीक्षापूर्वक विद्याओं का प्रचार करके दुष्ट स्वभावों, रोगों और दुराचारों का नाश करें ॥१५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ३० ॥

१—१७ ॥ आत्मा देवता ॥ १ पथ्या पङ्क्तिः; २–११, १३, १५–१७ अनुष्टुप्; १२ त्रिष्टुप्; १४ बृहती छन्दः ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मानुगा मा पूर्वानु गाः पितॄनसुं वध्नामि ते दृढम् । १॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (आवतः) समीप स्थान से, (आवतः) समीप से (ते) तेरे (परावतः) दूर देश से और (आवतः) अति समीप से [मैं प्रार्थना करता हूं] । (इह एव) यहां ही (भव) रह, (नु) निश्चय करके (मा मा गाः) कभी भी मत जा, (पूर्वान्) पहिले (पितॄन्) पिता आदि लोगों के (अनु) पीछे (गाः=गच्छ) चल । (ते, तेरे (असुम्) प्राण को (दृढम्) दृढ़ (वध्नामि) मैं बांधता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विचारपूर्वक उत्साही पुरुषों में रहकर माननीय माता पिता गुरु आदि का अनुकरण करके बल और कीर्ति बढ़ावें ॥१॥

यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) चाहे (स्वः) अपनी ज्ञाति वाले (पुरुषः) पुरुष ने और (यत्) चाहे (अरणः) न बात करने योग्य, अबोध (जनः) जन ने (त्वा) तुझसे (अभिचेरुः) दुष्कर्म किया है । (उभे) दोनों (उन्मोचनप्रमोचने) अलग रहना और छुटकारा (ते) तुझको (वाचा) वेद वाणी से (वदामि) मैं बतलाता हूं ॥२॥

भावार्थः मनुष्य दुष्टों के फंदों से अलग रहे, और फंस जाने पर उपाय करके निकल आवे ॥२॥

यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) जो (स्त्रियै) स्त्री के लिये वा (पुंसे) पुरुष के लिये (अचित्त्या) अचेतना से (दुद्रोहिथ) तू ने अनिष्ट चीता है वा (शेपिषे) शाप दिया है । (उभे) दोनों···म०२ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परद्रोह और परनिन्दा से पृथक् रहे और किसी प्रकार से होजाने पर प्रायश्चित्त करे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (मातृकृतात्) माता के किये हुए (च) और (यत्) यदि (पितृकृतात्) पिता के किये हुए (एनसः) अपराध से (शेषे) तू सोता है। (उभे) दोनों (उन्मोचनप्रमोचने) अलग रहना और छुटकारा (ते) तुझ को (वाचा) वेद वाणी से (वदामि) मैं बताता हूं ॥४॥

भावार्थः—माता पिता आदि के दोष से जो मनुष्य निरुद्यमी होता हो तो वह उस दोष को त्याग दे ॥४॥

यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५॥

भाषार्थः—(यत्) जो [औषध] (ते) तेरे (माता) माता (पिता) पिता (च) और (यत्) जो (ते) तेरे (जामिः) मिलकर भोजन करने वाली बहिन और (भ्राता) पोषक वा पोषणीय भाई (सर्जतः) लाते हैं। (भेषजम्) उस औषध को (प्रत्यक्) प्रत्यक्ष (सेवस्व) सेवन कर, (त्वा) तुझ को (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ व्याप्ति वा भोजन वाला (कृणोमि) मैं करता हूं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता, बहिन भाइयों से उत्तम शिक्षा पाकर उत्तम जीवन बनावें ॥५॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६॥

भाषार्थः—(पुरुष) हे पुरुष ! (सर्वेण) संपूर्ण (मनसा सह) मन [साहस] के साथ (इह) यहां पर (एधि) रह। (यमस्य) मृत्यु के (दूतौ अनु) तपाने वाले प्राण और अपान वायु [उलटे श्वास] के पीछे (मा गाः) मत जा। (जीवपुराः) जीवित प्राणियों के नगरों में (अधि इहि) पहुंच ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य उत्साह करके आलस्य आदि मृत्यु के कारणों को छोड़कर जीते हुए अर्थात् पुरुषार्थी शूर वीर महात्माओं में अपना नाम करें ॥६॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पथः) मार्ग के (उदयनम्) चढ़ाव को (विद्वान्) जानता हुआ, (अनुहूतः) प्रीति से बुलाया गया तू (पुनः) फिर (आ इहि) आ। (आरोहणम्) चढ़ना और (आक्रमणम्) आगे बढ़ना (जीवतोजीवतः) प्रत्येक जीव का (अयनम्) मार्ग है ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य उन्नति के उपायों को जानकर सदा बढ़ता रहे जैसे कि चिउंटी आदि छोटे-छोटे जीव भी ऊंचे चढ़ने में लगे रहते हैं ॥७॥

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥

भाषार्थः—(मा बिभेः) तू मत डरे, (न मरिष्यसि) तू नहीं मरेगा। (त्वा) तुझे (जरदष्टिम्) स्तुति के साथ व्याप्ति वा भोजन वाला (कृणोमि) मैं करता हूं। (तव) तेरे (अङ्गेभ्यः) अंगों से (अङ्गज्वरम्) अंग अंग में ज्वर करने वाले (यक्ष्मम्) राजरोग वा क्षय रोग को (निः=निःसार्य) निकाल कर (अहम्) मैं ने (अवोचम्) वचन कहा है ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य निर्भय होकर धर्म करता है, वह मृत्यु अर्थात् अपकीर्ति से बचकर नाम करता है जैसे सद्वद्य महारोग को निकाल कर यश पाता है ॥८॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥९॥

भाषार्थः—(ते) तेरी (अङ्गभेदः) हड़फूटन, (अङ्गज्वरः) शरीर का ज्वर, (च) और (यः) जो (हृदयामयः) हृदय का रोग है वह और (यक्ष्मः) राज रोग, (वाचा) वेदवाणी से (साढः) हारा हुआ [वह सब रोग] (श्येनः इव) श्येन पक्षी के समान (परस्तराम्) बहुत दूर (प्र अपप्तत्) भाग गया है ॥९॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य महाकठिन रोगों को अच्छा करता है वैसे ही मनुष्य वेद द्वारा आत्मदोष त्यागकर सुखी होवे ॥९॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१०॥

भाषार्थः—(ऋषी) दो देखने वाले (बोधप्रतीबोधौ) बोध और प्रतिबोध [अर्थात् विवेक और चेतनता] हैं, (यः) जो एक एक (अस्वप्नः) न सोने वाला (च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (जागृविः) जागने वाला है। (ते) तेरे (प्राणस्य) प्राण के (गोप्तारौ) रखवाले (तौ) वह दोनों (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात (जागृताम्) जागते रहें ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्य विवेक और चेतनापूर्वक नित्य सावधान रहकर रक्षा करे ॥१०॥

अयमग्निरुपसद्यं इह सूर्य उदेतु ते।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (उपसद्यः) सेवा योग्य है। (इह) इस में (ते) तेरे लिये (सूर्यः) सूर्य (उदेतु) उदय होवे। (गम्भीरात्) गहरे (मृत्योः) मृत्यु से (चित्) और (कृष्णात्) काले (तमसः) अन्धकार से (परि) अलग होकर (उदेहि) तू ऊपर आ ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की आज्ञा मानकर और आलस्यरूपी मृत्यु और अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा कर उन्नति का सूर्य चमकावे ॥११॥

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधे अस्मा अरिष्टतातये ॥१२॥

भाषार्थः—(यमाय) न्यायकारी परमात्मा को (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) (नमः) बारंबार नमस्कार (अस्तु) होवे, (उत) और (पितृभ्यः) उन रक्षक महापुरुषों को (नमः) नमस्कार हो (ये) जो [हमें] (नयन्ति) ले चलते हैं। (यः) जो परमेश्वर (उत्पारणस्य) पार लगाना (वेद) जानता है, (तम्) उस (अग्निम्) ज्ञानवान् परमेश्वर को (अस्मै) इस जीव के लिये (अरिष्टतातये) कल्याण करने को (पुरः) आगे (दधे) रखता हूं [पूजता हूं] ॥१२॥

भावार्थः मनुष्य परमात्मा की महिमा जानकर और विद्वान् परोपकारी महात्माओं का आदर करके सुखी रहें ॥१२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३॥

भाषार्थः—(प्राणः) प्राण, पुरुषार्थ [इसमें] (आ एतु) आवे, (मनः) मन (आ एतु) आवे, (अथो) और भी (चक्षुः) दृष्टि और (बलम्) बल (आ एतु)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवे। (तत्) उससे (अस्य) इस पुरुष का (शरीरम्) शरीर (विदां प्रति) बुद्धि की ओर (पद्भ्याम्) दोनों पैरों से (सम्) ठीक ठीक (तिष्ठतु) खड़ा होवे ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मिक और शारीरिक बल प्राप्त करके और चेतन्य रहकर पुरुषार्थ करे ॥१३॥

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन।
वेत्थामृतस्य मानु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानमय परमात्मन्! (इमम्) इस पुरुष को (प्राणेन) प्राण [जीवन सामर्थ्य] से और (चक्षुषा) दृष्टि से (सं सृज) संयुक्त कर, और [उसे] (तन्वा) शरीर से और (बलेन) बल से (सम् सम् ईरय) अच्छे प्रकार आगे बढ़ा। तू (अमृतस्य) अमरपन का (वेत्थ) जानने वाला है। वह [पुरुष] (नु) अब (मा गात्) न चला जावे, और (मा नु) न कभी (भूमिगृहः) भूमि में घरवाला [अर्थात् गुप्त निवासवाला] (भुवत्) होवे ॥१४॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रार्थना करता हुआ मनुष्य सब प्रकार पुरुषार्थ करके कीर्तिमान् होवे, और ऐसा काम न करे जिससे समाज में उसे नीचा देखना पड़े ॥१४॥

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५॥

भाषार्थः—(ते) तेरा (प्राणः) प्राण [भीतर जाने वाला श्वास] (मा उप दसत्) नष्ट न होवे, और (ते) तेरा (अपानः) अपान [बाहिर जाने वाला श्वास] (मो अपि धायि) न ढक जावे। (अधिपतिः) प्रभु (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (मृत्योः) मृत्यु से (रश्मिभिः) अपनी व्याप्तियों द्वारा (उदायच्छतु) उठावे ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्य अपनी शक्तियों को यथावत् काम में लाकर परमेश्वर के आश्रय से आलस्य, दरिद्रता आदि दुःखों को मिटा कर ऊपर उठे ॥१५॥

इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपींश्च तक्मनः ॥१६॥

भाषार्थः—(अन्तः) [मुख के] भीतर (बद्धा) बंधी हुई, (पनिष्पदा) थर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थराकर चलती हुई (इयम्) यह (जिह्वा) जीभ (वदति) बोलती रहती है। (त्वया) तेरे साथ वर्त्तमान (यक्ष्मम्) राजरोग (च) और (तक्मनः) ज्वर की (शतम्) सौ (रोपीः) पीड़ाओं को (निः=निःसार्य) निकाल कर (अवोचम्) मैंने वचन कहा है ॥१६॥

भावार्थः—जिस प्रकार जीभ को मुख में दबाकर वेदमन्त्र आदि पवित्र वचन बोलते हैं, उसी प्रकार मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके अपने सब मलों को धोकर स्वस्थचित्त होवे ॥१६॥

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (लोकः) संसार, (देवानाम्) विद्वानों का (अपराजितः) न जीता हुआ, (प्रियतमः) अति प्रिय है। (यस्मै) जिस [लोक] के लिये (इह) यहाँ पर (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने को (दिष्टः) ठहराया हुआ (त्वम्) तू, (पुरुष) हे पुरुष ! (जज्ञिषे) प्रकट हुआ है। (सः) वह [लोक] (च) और हम (त्वा) तुझको (अनु ह्वयामसि) बुला रहे हैं। (जरसः) बुढ़ापे से (पुरा) पहिले (मा मृथाः) मत मर ॥१७॥

भावार्थः—इस अनन्त संसार को विद्वान् सदा खोजते रहे हैं। मनुष्य आलस्य आदि छोड़ कर सदा परोपकार में लगा रहे, और स्वस्थ और सावधान रहकर पूर्ण आयु तक आनन्द भोगे ॥१७॥

सूक्तम् ३१ ॥

१–१२ ॥ पुरुषो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (आमे) भोजन में, वा (पात्रे) पानी में (चक्रुः) उन्होंने [हिंसकों ने] किया है, (याम्) जिसको [तेरे] (मिश्रधान्ये) इकट्ठे किये धान्य में (चक्रुः) उन्होंने किया है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को [तेरे] (आमे) चलने में वा (मांसे) ज्ञान वा काल वा मांस में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा (हरामि) मिटाता हूं ॥१॥

भावार्थः राजा दुष्कर्मी विघ्नकारियों को सदा दण्ड देता रहे ॥१॥

इस मन्त्र का मिलान अ० ४ । १७ । ४ से करो ॥

यां ते चक्रुः कुक्कवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (कुक्कवाकौ) गले से बोलने वाले कुक्कुट वा मोर पर (वा) अथवा (याम्) जिसको (कुरीरिणि) केश वाले (अजे) बकरे पर (चक्रुः) उन्होंने [शत्रुओं ने] किया है वा (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरी (अव्याम्) भेड़ी पर···म० १ ॥२॥

भावार्थः—राजा उपकारी पक्षियों और चौपायों की रक्षा करे ॥२॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (पशूनाम्) पशुओं के मध्य (एकशफे) एक खुर वाले और (उभयादति) दोनों ओर दांत वाले [अश्व आदि] पर (चक्रुः) उन्होंने किया है । (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (गर्दभे) गधे पर···म० १ ॥३॥

भावार्थः—घोड़े गधे आदि उपकारी पशुओं की राजा रक्षा करे ॥३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [हिंसा] को (वलगम्) गुप्त कर्म से (ते) तेरे (अमूलायाम्) प्राप्ति योग्य (वा) अथवा (नराच्याम्) मनुष्यों से सत्कार योग्य [ओषधि] में (चक्रुः) उन्होंने किया है । अथवा (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरे (क्षेत्रे) ऐश्वर्य के हेतु खेत में···म० १ ॥४॥

भावार्थः—राजा प्रबन्ध करे कि ओषधि आदि पदार्थ दूषित न होवें ॥४॥

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(याम्) जिस [हिंसा] को (दुश्चितः) बुरा चीतने वालों ने (ते) तेरे (गार्हपत्ये) गृहस्थ काम में (उत) और (पूर्वाग्नौ) निवास के हेतु अग्नि आदि में (चक्रुः) किया है। अथवा (शालायाम्) शाला में (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को···म० १ ॥५॥

भावार्थः— राजा प्रबन्ध करे कि गृहस्थ लोगों के कामों और पदार्थों में कोई उपद्रव न करे ॥५॥

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (हिंसा) को (ते) तेरी (सभायाम्) सभा में (चक्रुः) उन्होंने (शत्रुओं ने) किया है, और (याम्) जिसको तेरे (अधिदेवने) क्रीड़ा स्थान उपवन आदि में (चक्रुः) उन्होंने किया है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (अक्षेषु) व्यवहारों में···म० १ ॥६॥

भावार्थः—राजा सभाओं, उपवन आदिकों और व्यवहारों में विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता रहे ॥६॥

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (हिंसा) को (ते) तेरी (सेनायाम्) सेना में (चक्रुः) उन [शत्रुओं] ने किया है, और (याम्) जिसको तेरे (इष्वायुधे) बाण आदि शस्त्रों में (चक्रुः) उन्होंने किया है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को तेरी (दुन्दुभौ) दुन्दुभि में···म० १ ॥७॥

भावार्थः—सेनापति अपनी सेना और अस्त्र शस्त्र बाजे आदि की सावधानी से रक्षा करे ॥७॥

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (ते) तेरे (कूपे) कूए में (अवदधुः) उन [शत्रुओं] ने कर दिया है, (वा) अथवा (श्मशाने) मरघट में (निचख्नुः) उन्होंने खोद कर रक्खा है। (याम्) जिस (कृत्याम्) हिंसा को (सद्मनि) तेरे घर में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चक्रुः) उन्होंने किया है, (ताम्) उसको (पुनः) अवश्य मैं (प्रति) उलटा करके (हरामि) मिटाता हूं ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य कूए, तालाब आदि को मलिन करें, अथवा रोग कारक वस्तुएं गाड़कर मरघटों को दूषित करें, अथवा घरों के पास दुर्गन्ध आदि फैलावें, राजा उसका यथावत् प्रबन्ध करे ॥८॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
ओकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९॥

भाषार्थः—(याम्) जिस [हिंसा] को (ते) तेरे (पुरुषास्थे) पुरुषों की हड्डी में, (च) और (याम्) जिसको (संकसुके) भभकती (अग्नौ) आग में (चक्रुः) उन [शत्रुओं] ने किया है; (ताम्) उसको (ओकम्) चोर समान भयानक (क्रव्यादम्) मांस खाने वाले (निर्दाहम् प्रति) जला देने वाले अग्नि में (पुनः) अवश्य (हरामि) मैं नाश करता हूं ॥९॥

भावार्थः—मृतक दाहक्रिया में विघ्नकारी दुष्टों को राजा यथावत् दण्ड देकर नष्ट करे ॥९॥

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥१०॥

भाषार्थः (अपथेन) कुमार्ग से (एनाम्) इस [हिंसा] को (आ जभार) वह लाया था, (ताम्) उसको (पथा) सुमार्ग से (इतः) इस स्थान से (प्र हिण्मसि) हम निकालते हैं। (अधीरः) वह अधीर [शत्रु] (मर्याधीरेभ्यः) मर्यादा धारण करने वाले पुरुषों के लिये (अचित्त्या) अपने अज्ञान से [उस] हिंसा को (सम् जभार) लाया था ॥१०॥

भावार्थः—जो कुमार्गी पुरुष सत्पुरुषों के साथ द्वेष करते हैं सत्पुरुष उनको कुमार्ग से छुड़ा कर सुमाग में ले आते हैं ॥१०॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥

भाषार्थः—(यः) जिस [दुष्ट] ने (कर्तुम्) हिंसा को (चकार) किया था, वह (न शशाक) समर्थ न था, उसने (पादम्) अपना पैर और (अङ्गुरिम्) अंगुरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शश्रे) तोड़ डाली। उस (अभगः) अभागे पुरुष ने (अस्मभ्यम्) हम (भगवद्भ्यः) ऐश्वर्यवालों को (भद्रम्) आनन्द (चकार) किया ॥११॥

भावार्थः—दुर्बलात्मा पापी दण्ड पाकर अपने हाथ पैर में कष्ट पाकर धर्मात्माओं को नहीं सता सकता ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से अ० ४। १८। ६। में आया है ॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) प्रतापी राजा (वलगिनम्) गुप्त काम करने वाले (मूलिनम्) जड़ पकड़ने वाले, (शपथेय्यम्) कुवचन बोलने वालों के प्रधान, (कृत्याकृतम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (महता) अपने बड़े (वधेन) वज्र से (हन्तु) मारे और (अग्निः) वही ज्ञानी राजा (अस्तया) अपने अस्त्र से (तम्) उस वैरी को (विध्यतु) वेध डाले ॥१२॥

भावार्थः—शूर वीर विद्वान् राजा दुराचारियों को यथावत् खोजकर दण्ड देता रहे ॥१२॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति पञ्चमं काण्डम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०*:०*:०*०*:—

षष्ठं काण्डम् ॥

—: * :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—*:०*:०*:०*—

सूक्तम् १ ॥

मन्त्राः १—३ ॥ सविता देवता । गायत्री छन्दः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि ।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥

भाषार्थः—(आथर्वण) हे निश्चल ब्रह्म के जानने वाले महर्षि ! (देवम्) प्रकाश स्वरूप (सवितारम्) सब के प्रेरक परमात्मा को (दोषो) रात्रि में भी (गाय) गा, (बृहत्) विशाल रूप से (गाय) गा, (द्युमत्) स्पष्ट रीति से (धेहि) धारण कर और (स्तुहि) बड़ाई कर ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष परमेश्वर के गुणों को हृदय में धारण करके संसार में सदा प्रकाशित करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (सत्यस्य) सत्य का (सूनुः) प्रेरक परमात्मा (सिन्धौ अन्तः) समुद्र [हृदय आदि गहरे स्थान] के भीतर है, (तम् उ) उस ही (युवानम्) संयोग वियोग करने वाले, अथवा महाबली, (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणी वाले, (सुशेवम्) अत्यन्त सुख देने वाले परमेश्वर की (स्तुहि) स्तुति कर ॥२॥

भावार्थः—जो सर्वव्यापक परमात्मा कल्याणी वाणी वेदविद्या द्वारा दुःखों को हटा कर मोक्ष पद देता है, उसकी महिमा जान कर मनुष्य सदा पुरुषार्थ करें ॥२॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह (घ) ही (देवः) प्रकाशस्वरूप (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर (उभे) दोनों [प्रातः सायंकालीन] (सुष्टुती) सुन्दर स्तुतियों को (सुगातवे) अच्छे प्रकार गाने के लिये (नः) हमें (भूरि) बहुत से (अमृतानि) अक्षय सुख (साविषत्) देता रहे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा की सदा स्तुति करते हुए आत्मबल बढ़ाकर अक्षय सुख प्राप्त करें ॥३॥

सूक्तम् २ ॥

मन्त्राः १—३ ॥ इन्द्रो देवता । उष्णिक् छन्दः ॥

परमैश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—परम ऐश्वर्य पाने का उपदेश ॥

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥१॥

भाषार्थः—(ऋत्विजः) हे ऋतु ऋतुओं में यज्ञ करने वाले पुरुषो ! (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिए (सोमम्) अमृत रस [तत्वज्ञान] (सुनोत) निचोड़ो (च) और (आ) अच्छे प्रकार (धावत) शोधो । (यः) जो परमेश्वर (स्तोतुः) स्तुति करने वाले (मे) मेरे (वचः) वचन (च) और (हवम्) पुकार को (शृणवत्) सुने ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा का तत्त्वज्ञान प्राप्त करके अपना सामर्थ्य बढ़ावें ॥१॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥२॥

भाषार्थः—(यम्) जिसमें (इन्दवः) अमृत रस वा ऐश्वर्य (आ) आकर (विशन्ति) प्रवेश करते हैं, (न) जैसे (वयः) पक्षी (अन्धसः) अन्न के (वृक्षम्) वृक्ष में । [वह तू] (विरप्शिन्) हे महागुणी परमेश्वर ! (रक्षस्विनीः) राक्षसों [विघ्नों] से युक्त (मृदः) हिंसाकारिणी सेनाओं [कुवासनाओं] को (वि) विविध प्रकार से (जहि) नाश कर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उत्तम गुणों और ऐश्वर्य्यों को साक्षात् करके अपनी विघ्नकारक कुवासनाओं को दूर करके पुरुषार्थ करें ॥२॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥३॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाले, (वज्रिणे) वज्र वाले (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (सोमम्) अमृत रस (सुनोत) निचोड़ो । (सः) वह (युवा) संयोग वियोग करने वाला वा महाबली, (जेता) विजयी, (ईशानः) ईश्वर (पुरुष्टुतः) सबसे स्तुति किया गया है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के समस्त ऐश्वर्यों को विचारता हुआ अनेक ऐश्वर्य प्राप्त करे ॥३॥

सूक्तम् ३॥

मन्त्राः १—३ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १ पथ्या बृहती २, ३ जगती छन्दः ॥

वृद्धिकरणायोपदेशः—वृद्धि करने के लिये उपदेश ॥

पातं नः इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रापूषणा) हे बिजुली और वायु (नः) हमें (पातम्) बचाओ । (अदितिः) अदीन प्रकृति और (मरुतः) विद्वान् लोग (पान्तु) बचावें । (अपाम्) हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों के (नपात्) न गिराने वाले, अग्नि [शरीर बल] और (सप्त) हे नित्य सम्बन्ध वाले वा सात (सिन्धवः) गतिशील [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (पातन) बचाओ (विष्णुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (उत) और (द्यौः) प्रकाशमान बुद्धि (नः) हमें (पातु) बचावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उपकारों को विचारता हुआ बिजुली आदि पदार्थों से उपकार लेकर रक्षा करें ॥१॥

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥२॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिये (पाताम्) बचावें (ग्रावा) मेघ (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (पातु) बचावे और (सोमः) जल (पातु) बचावे। (देवी) व्यवहार वाली, (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य देने वाली (सरस्वती) विज्ञानवाली वेदविद्या (नः) हमें (पातु) बचावे, (अग्निः) अग्नि विद्या (पातु) बचावे और (ये) जो (अस्य) इसके (शिवाः) सुखदायक (पायवः) रक्षक गुण हैं [वे भी बचावें] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य पृथिवी आदि और वेद द्वारा अनेक शिल्प आदि पदार्थविद्यायें सिद्ध करके आनन्द भोगें ॥२॥

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत नं उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिहुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥३॥

भाषार्थः—(देवा) व्यवहार में चतुर, (शुभः) शुभ कर्म के (पती) पालन करने हारे (अश्विना) कर्मों में व्याप्ति वाले माता पिता (नः) हमें (पाताम्) बचावें, (उत) और (उषासानक्ता) दिन और रात (नः) हमें (उरुष्यताम्) बचावें। (अपाम्) हे जीवों के (नपात्) न गिराने वाले (देव) प्रकाशमान (त्वष्टः) विश्वकर्मा परमेश्वर! (अभिहुती) कुटिल दशा में वर्तमान (गयस्य) घर के (सर्वतातये) सम्पूर्ण सुख के लिये [हमें] (चित्) अवश्य (वर्धय) बढ़ा ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम माता पिता से उत्तम शिक्षा पाकर, बल पराक्रम बढ़ाकर, दरिद्रता आदि हटाकर सुखी होवें ॥३॥

सूक्तम् ४ ॥

मन्त्राः १–३ ॥ १ परमेश्वरः, २ मन्त्रोक्ताः, ३ अश्विनौ देवते ॥ १ आस्तारपङ्क्तिः, २, ३ विराट् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वरक्षोपदेशः सब की रक्षा का उपदेश ॥

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥१॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) सबका बनाने वाला, (पर्जन्यः) सींचने वाला (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड का (पतिः) रक्षक, (अदितिः) अविनाशी परमेश्वर (पुत्रैः) पुत्रों और (भ्रातृभिः) भ्राताओं के सहित (मे) मेरे (दैव्यम्) देवताओं के हितकारक (वचः) वचन को और (नः) हमारे (दुस्तरम्) अजेय, (त्रायमाणम्) रक्षा करने वाले (सहः) बल की (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना प्रार्थना करते हुए पूर्ण बल प्राप्त करके अपने कुटुम्बियों की रक्षा करें ॥१॥

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रमन्तितम् ॥२॥

भाषार्थः—(अंशः) विभाग करने वाला, (भगः) सेवने योग्य (वरुणः) अपान वायु, (मित्रः) प्राण वायु, (अर्यमा) अन्धकार नाशक सूर्य, और (अदितिः) अदीन भूमि (मरुतः) शूर देवताओं की (पान्तु) रक्षा करें। वे (अभिह्रुतः) कुटिलता-शील (तस्य) हिंसक चोर के (द्वेषः) दुष्टता को (अप गमेत्=गमयेयुः) हटा देवें और (अन्तितम्) बन्ध में डालने वाले (शत्रुम्) शत्रु को (यवयत्=यवयेयुः) पृथक् करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य भीतरी और बाहिरी अवस्था को सुधार कर अपने दोषों का नाश करके उन्नति करें ॥२॥

धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या णं उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे सब कामों में व्यापक रहने वाले माता पिता ! (धिये) सत् कर्म वा सत् बुद्धि के लिये (नः) हमारी (सम्) मिल कर (प्र) अच्छे प्रकार (अवतम्) रक्षा करो। (उरुज्मन्) हे विस्तीर्ण गति वाले परमात्मन् ! (अप्रयुच्छन्) चूक न करता हुआ तू (नः) हमारी (उरुष्य) रक्षा कर। (द्यौः) हे प्रकाशमान (पितः) पिता परमेश्वर ! (या) जो (दुच्छुना) दुर्गति है [उसको] (यवय) तू हटा दे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः--माता पिता इस प्रकार शिक्षा देवें जिस से उनके संतान ईश्वर आज्ञा पालन करके ऐश्वर्यवान् हों ॥३॥

सूक्तम् ५ ॥

मन्त्राः १-३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

धनजीवनवर्धनोपदेशः—धन और जीवन की वृद्धि का उपदेश ॥

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१॥

भाषार्थः—(घृतेन) घृत से (आहुत) आहुति पाये हुए (अग्ने) हे अग्नि के समान तेजस्वी परमेश्वर ! (एनम्) इस पुरुष को (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (उत् नय) उठा । (एनम्) इस को (वर्चसा) तेज से (सम् सृज) संयुक्त कर, (च) और (प्रजया) प्रजा से (बहुम्) प्रवृद्ध (कृधि) कर ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से तेजस्वी होकर अपना सामर्थ्य और प्रजा बढ़ावें ॥१॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (इमम्) इस पुरुष को (प्रतरम्) अधिक ऊंचा (कृधि) कर, यह (सजातानाम्) समान जन्म वाले बन्धुओं का (वशी) वश में रखने वाला, अधिष्ठाता (असत्) होवे । (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (सम् सृज) संयुक्त कर और (जीवातवे) बड़े जीवन के लिए और (जरसे) स्तुति के लिये (नय) आगे बढ़ा ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन करके अपने बन्धुओं को उत्तम बर्ताव से वश में रख कर धन की वृद्धि करके पूर्ण यश प्राप्त करें ॥२॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (हविः) देने और लेने योग्य व्यवहार (कृण्मः) हम करते हैं, (तम्) उसको (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वम्) तू (वर्धय) बढ़ा। (तस्मै) उसी पुरुष के लिये (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्यवान् (च) और (ब्रह्मणः) वेद विद्या का (पतिः) रक्षक पुरुष (अधि) अधिक (ब्रवत्) कथन करे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सबका हितैषी होवे वह परमेश्वर के अनुग्रह से वृद्धि करके ऐश्वर्यशाली विद्वानों में बड़ाई पावे ॥३॥

सूक्तम् ६ ॥

मन्त्राः १–३ ॥ ब्रह्मणस्पतिः सोमो वा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुनाशोपदेशः—शत्रु के नाश का उपदेश ॥

यो३ऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥

भाषार्थः—(ब्रह्मणः पते) हे ब्रह्माण्ड के रक्षक ! (यः) जो (अदेवः) नास्तिक वा कुव्यवहारी पुरुष (अस्मान्) हम से (अभिमन्यते) अभिमान करता है (तम्) उस (सर्वम्) सब को (सुन्वते) तत्त्व मथन करने वाले, (यजमानाय) विद्वानों का आदर करने वाले (मे) मेरे लिये (रन्धयासि) वश में कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का ध्यान करता हुआ विवेकपूर्वक यथावत् परीक्षा करके विघ्नों का नाश करे ॥१॥

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२॥

भाषार्थः—(सोम) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो (दुःशंसः) अति दुर्गति वाला शत्रु (सुशंसिनः) बड़ी स्तुति वाले (नः) हम लोगों पर (आदिदेशति) आदेश वा आज्ञा करे। (अस्य) उसके (मुखे) मुख पर (वज्रेण) वज्र से (जहि) ताड़ना कर। (सः) वह (संपिष्टः) चूर चूर होकर (अप अयति) भाग जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर से सामर्थ्य पाकर शत्रुओं को वश में रक्खे ॥२॥

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्बधत्मना ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सोम) हे परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो कोई (सनाभिः) अपना सपिण्डी (च) और (यः) जो कोई (निष्टयः) म्लेच्छ (नः) हमें (अभिदासति) सताता है, (तस्य) उसके (बलम्) बल को (वधत्मना) अपने वज्र रूप स्वभाव से (अप तिर) गिरा दे (इव) जैसे (महीं) बड़ा (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य [अन्धकार को] ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल बढ़ा कर प्रत्येक शत्रु का नाश करे ॥३॥

सूक्तम् ७ ॥

१–३ ॥ १, २, सोमः, ३ देवा देवताः ॥ गायत्री छन्दः ॥

सुखप्राप्त्युपदेशः—सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥१॥

भाषार्थः—(सोम) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (येन पथा) जिस मार्ग से (अदितिः) अदीन पृथिवी (वा) और (मित्राः) प्रेरणा करने हारे सूर्य आदि लोक (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (यन्ति) चलते हैं। (तेन) उसी से (अवसा) रक्षा के साथ (नः) हमें (आ गहि) आकर प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सत्य वेद पथ पर चल कर प्रीतिपूर्वक परस्पर रक्षा करें, जैसे सूर्यादि लोक परस्पर आकर्षण से परस्पर उपकार करते हैं ॥१॥

येन सोम साह्न्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥२॥

भाषार्थः—(साह्न्त्य) हे विजयी शूरों में रहने वाले (सोम) बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मन् ! (येन) जिस [मार्ग] से (असुरान्) असुरों को (नः) हमारे लिये (रन्धयासि) तू वश में करे (तेन) उसीसे (नः) हमारे लिये (अधि) अनुग्रह से (वोचत=अवोचत) आपने कथन किया है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी सनातनी वेद विद्या द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान में रक्षा करता है ॥२॥

येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयी देवताओ! (येन) जिस [मार्ग] से (असुराणाम्) असुरों के (ओजांसि) बलों को (अवृणीध्वम्) तुम ने रोका है, (तेन) उसी से (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छत) दान करो ॥३॥

भावार्थः—शूर वीर पुरुष दुष्टों के जीतने में परस्पर सदा सहायक रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥८॥

१–३ ॥ विद्या देवता ॥ पङ्क्तश्छन्दः ॥

विद्याप्राप्त्युपदेशः—विद्या की प्राप्ति का उपदेश ॥

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे । एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (लिबुजा) बढ़ाने वाले आश्रय के साथ उत्पन्न होने वाली, बेल (वृक्षम्) वृक्ष को (समन्तम्) सब ओर से (परिषस्वजे=परिष्वजते) लिपट जाती है। (एव) वैसे ही [हे विद्या] (माम्) मुझ से (परिष्वजस्व) तू लिपट जा, (यथा) जिस से तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः) होवे, और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगाः) बिछुरने वाली (न) न (असः) होवे ॥१॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी पूरी तपश्चरण करके विद्या को इस प्रकार प्राप्त करे जिस से वह सदा स्मरण करके उससे उपकार लेता रहे ॥१॥

इस मन्त्र का (यथा माम्—मन्नापगा असः) यह भाग–अ० १। ३४। ५। और २। ३०। १। में आया है ॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् । एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगाः असः ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (प्रपतन्) उड़ता हुआ (सुपर्णः) शीघ्रगामी पक्षी (पक्षौ) दोनों पंखों को (भूम्याम्) भूमि पर (निहन्ति) जमा देता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (मनः) अपना मन (नि हन्मि) मैं जमाता हूँ (यथा) जिस से तू (माम् कामिनी) तेरी कामना करने वाली···म० १ ॥२॥

भावार्थः—विद्यार्थी पूरा मन लगा कर विद्या प्राप्त करके उसकी सफलता करे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः । एवा पर्येमि ते
मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इमे) इस (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि में (सूर्यः) लोकों का चलाने वाला सूर्य (सद्यः) शीघ्र (पर्येति) व्याप जाता है। (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (मनः) अपना मन (परि एमि) मैं व्यापक करता हूं (यथा) जिस से तू (माम् कामिनी) मेरी कामना करने वाली (असः, होवे, और (यथा) जिस से तू (मत्) मुझ से (अपगाः) विछुरने वाली (न) न (असः) होवे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान नियम से परिश्रम करके विद्या प्राप्त करते हैं वे परोपकारी होकर सुखी रहते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥६॥

१—३ ॥ दम्पती देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गृहस्थाश्रमोपदेशः—गृहस्थ आश्रम का उपदेश ॥

वाञ्छं मे तन्वं १ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ २ वाञ्छं सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की और (पादौ) दोनों पैरों की (वाञ्छ) कामना कर, (अक्ष्यौ) दोनों नेत्रों की (वाञ्छ) कामना कर, (सक्थ्यौ) दोनों जंघाओं की (वाञ्छ) कामना कर। (वृषण्यन्त्याः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की इच्छा करती हुई (ते) तेरी (अक्ष्यौ) दोनों आंखें और (केशाः) केश (कामेन) सुन्दर कामना से (माम्) मुझ को (शुष्यन्तु) सुखावें ॥१॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष सब अङ्गों से हृष्ट पुष्ट और पुरुषार्थी होकर पूर्ण युवा अवस्था में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की इच्छा करें ॥१॥

मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥

भाषार्थः—(त्वा) तुझको (मम) अपने (दोषणिश्रिषम्) भुजा पर आश्रय वाली और (हृदयश्रिषम्) हृदय में आश्रय वाली (कृणोमि) मैं करता हूं। (यथा) जिससे (मम) मेरे (क्रतौ) कर्म वा बुद्धि में (असः) तू रहे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में (उपायसि) तू पहुंचती है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—पति और पत्नी परस्पर पुरुषार्थ और प्रीतिपूर्वक गृहस्थ आश्रम को यथावत् सिद्ध करें ॥२॥

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वनयन्तु मे ॥३॥

भाषार्थः - (यासाम्) जिन [स्त्रियों] के (हृदि) हृदय में (नाभिः) स्नेह, (आरेहणम्) प्रशंसा और (संवननम्, भक्ति (कृतम्) की गई है, (घृतस्य) घृत की (मातरः) बनाने वाली (गावः) गौएं (अमूम्) उस [पत्नी] को (मे) मेरे लिये (सम्) यथावत् (वनयन्तु) सेवन करें ॥३॥

भावार्थः—जहां पर पति पत्नी प्रीतिपूर्वक रहते हैं, वहाँ घृत दुग्ध आदि पदार्थों की बहुतायत होती है ॥३॥

सूक्तम् ॥१०॥

१ - ३ ॥ मन्त्रोक्ता देवताः ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

स्वास्थ्यरक्षोपदेशः—स्वास्थ्य की रक्षा का उपदेश ॥

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(श्रोत्राय) श्रवण शक्ति के लिये (पृथिव्यै) पृथिवी को, और (वनस्पतिभ्यः) सेवा करने वालों के रक्षकों वृक्ष आदिकों के लिये (अधिपतये) [पृथिवी के] बड़े रक्षक (अग्नये) अग्नि को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पृथिवी तत्त्व, और उस से अग्नि द्वारा उत्पन्न पदार्थों के विवेक से श्रवण शक्ति बढ़ावें ॥१॥

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(प्राणाय) प्राण के लिये (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को, और (वयोभ्यः) अन्न आदि पदार्थों के लिये (अधिपतये) [अंतरिक्ष के] बड़े रक्षक (वायवे) वायु को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अन्तरिक्ष और वायु से उपकार लेकर प्राण और अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करें ॥२॥

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—(चक्षुषे) दृष्टि शक्ति के लिये (दिवे) प्रकाश को, और (नक्षत्रेभ्यः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रों के लिये (अधिपतये) [प्रकाश के] बड़े रक्षक (सूर्याय) सूर्य को (स्वाहा) सुन्दर स्तुति है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य प्रकाश और सूर्य के आकर्षण आदि गुणों को जानकर दृष्टि और नक्षत्र विद्या प्राप्त करें ॥३॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥११॥

१–३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गर्भाधानोपदेशः—गर्भाधान का उपदेश ॥

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि ॥१॥

भाषार्थः (अवश्थः) बलवानों में ठहरने वाला पुरुष (शमीम्) शान्त स्वभाव स्त्री के प्रति (आरूढः) आरूढ हो चुकता है, (तत्र) उस काल में (पुंसुवनम्) सन्तान का उत्पत्ति कर्म (कृतम्) किया जाता है। (तत्) वह कर्म (वै) ही (पुत्रस्य) कुल शोधक संतान की (वेदनम्) प्राप्ति का कारण है, (तत्) उस कर्म को (स्त्रीषु) स्त्रियों में (आभरामसि) हम पहुँचाते हैं, ॥१॥

भावार्थः - वीर्यवान् पति और शान्त स्वभाव पत्नी यथाविधि परस्पर संयोग करके सन्तान उत्पन्न करें ॥१॥

इस सूक्त का विधान पुंसवन संस्कार में श्री स्वामी दयानन्दकृत संस्कारविधि में है ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनुषिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पुंसि) रक्षा स्वभाव पुरुष में (वै) ही (रेतः) वीर्य (भवति) होता है, (तत्) वह वीर्य (स्त्रियाम्) स्त्री में (अनु) अनुकूल विधि से (सिच्यते) सींचा जाता है। (तत्) वह कर्म (वै) ही (पुत्रस्य) कुल शोधक संतान की (वेदनम्) प्राप्ति का कारण है, (तत्) वही (प्रजापतिः) प्रजाओं के रक्षक ईश्वर ने (अब्रवीत्) बताया है ॥२॥

भावार्थः—युवा अवस्था में ही मनुष्य पूर्ण बलवान् और वीर्यवान् होकर उत्तम बलवान् संतान उत्पन्न करे, यह ईश्वर नियम है ॥२॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमाँसमु दधदिह ॥३॥

भाषार्थः—(अनुमतिः) अनुकूल बुद्धिवाली, (सिनीवाली) अन्नवाली (प्रजापतिः) प्रजापालक शक्ति परमेश्वर ने (अचीक्लृपत्) यह शक्ति दी है। (अन्यत्र) दूसरे प्रकार में [स्त्री का रज अधिक होने में] (स्त्रैसूयम्) स्त्री जन्म सम्बन्धी क्रिया (दधत्=दधते) वह [ईश्वर] धारण करता है और (इह) इसमें [पुरुष का वीर्य अधिक होने पर] (उ) निश्चय करके (पुमांसम्) बलवान् संतान को (दधत्) वह स्थापित करता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम बुद्धि वाला, अन्नवान् और प्रजा पालक होकर ईश्वर नियम से गृहस्थ आश्रम के योग्य होता है और स्त्री का रज अधिक होने पर कन्या और पुरुष का वीर्य अधिक होने पर पुरुष संतान उत्पन्न होता है ॥३॥

सूक्तम् ॥१२॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पापनाशनायोपदेशः—पाप नाश करने के लिये उपदेश ॥

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् ।
रात्री जगद्दिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥१॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्य (इव) जैसे (द्याम्) आकाश को, [वैसे ही] (अहीनाम्) सर्पों [सर्प समान दोषों] के (जनिम) जन्म को (परि) सब ओर से (अगमम्) मैंने जान लिया है। (रात्री इव) जैसे रात्री (हंसात्) सूर्य से (अन्यत्) अन्य (जगत्) जगत् को [ढक लेती है], (तेन) उसी प्रकार से ही [हे मनुष्य] (ते) तेरे (विषम्) विष को (वारये) मैं हटाता हूं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—योगी मनुष्य दोषों कारणों को ऐसे जान लेता है जैसे सूर्य आकाशस्थ पदार्थों को, और जैसे रात्री में सब पदार्थ सूर्य को छोड़ कर अदृष्ट हो जाते हैं वैसे ही उस योगी के पाप नष्ट हो जाते हैं, और वह पूर्ण ज्ञान से सूर्य समान प्रकाशमान हो जाता है ॥१॥

यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा ।
यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो [ज्ञान] (ब्रह्मभिः) वेद जानने वाले ब्राह्मणों करके, (यत्) जो (ऋषिभिः) सन्मार्गदर्शक ऋषियों करके और (यत्) जो (देवैः) व्यवहार-कुशल महात्माओं करके (पुरा) पूर्व काल में (विदितम्) जाना गया है। और (यत्) जो (भूतम्) भूत काल में और (भव्यम्) भविष्यत् काल में (आसन्वत्) व्याप्ति वाला है, (तेन) उसी से [हे जीव!] (ते) तेरे (विषम्) विष को (वारये) मैं हटाता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज महात्माओं के समान पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अपने दोषों का नाश करके सुखी होवें ॥२॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः१ पर्वता गिरयो मधु ।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥३॥

भाषार्थः—(मध्वा) अमृत से [तुझ को] (पृञ्चे) मैं संयुक्त करता हूं। (नद्यः) नदियां, (पर्वताः) पर्वत और (गिरयः) छोटे पहाड़ (मधु) अमृत [होवें]। (परुष्णी) पालन सामर्थ्य वाली, (शीपाला) निद्रा लाने वाली ओषधि (मधु) अमृत [होवे], (आस्ने) तेरे मुख के लिये (शम्) शांति और (हृदे) हृदय के लिये (शम्) शान्ति (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सब पदार्थों से विवेकपूर्वक उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥१३॥

१—३ ॥ मृत्युर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

मृत्युप्रबलत्वोपदेशः—मृत्यु की प्रबलता का उपदेश ॥

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देववधेभ्यः) ब्राह्मणों के शस्त्रों को (नमः) नमस्कार और (राजवधेभ्यः) क्षत्रियों के शस्त्रों को (नमः) नमस्कार है। (अथो) और भी (ये) जो (विश्यानाम्) वैश्यों के (वधाः) शस्त्र हैं (तेभ्यः) उनको, और (मृत्यो) हे मृत्यु! (ते) तुझ को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः - विद्यावली, पराक्रम बली और धनबली भी मृत्यु के वश हैं। इस से सब धर्माचरण करते रहें ॥१॥

नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥२॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (अधिवाकाय) अनुग्रह वचन को (नमः) नमस्कार और (ते) तेरे (परावाकाय) पराजय वचन को (नमः) नमस्कार है। (मृत्यो) हे मृत्यु! (ते) तेरी (सुमत्यै) सुमति को (नमः) नमस्कार है और (ते) तेरी (दुर्मत्यै) दुर्मति को (इदम्) यह (नमः) नमस्कार है ॥२॥

भावार्थः - अनुग्रहकारी, पराजयकारी, सुमति वाले और दुर्मति वाले सब ही मृत्युवश हैं। मनुष्यों को सदा धर्मात्मा रहना चाहिये ॥२॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३॥

भाषार्थः—(ते) तेरे (यातुधानेभ्यः) पीड़ाप्रद रोगों को (नमः) नमस्कार और (ते) तेरे (भेषजेभ्यः) सुख देने वाले वैद्यों को (नमः) नमस्कार है। (मृत्यो) हे मृत्यु! (ते) तेरे (मूलेभ्यः) कारणों को (नमः) नमस्कार और (ब्राह्मणेभ्यः) वेदवेत्ता विद्वानों को (इदम्) यह (नमः) नमस्कार है ॥३॥

भावार्थः रोगी और वैद्य मृत्यु के वश हैं, तो भी मनुष्य रोगों का निदान जानकर पुरुषार्थ करते रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥१४॥

१—३ ॥ वैद्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशायोपदेशः ॥ रोग के नाश का उपदेश ॥

अस्थिस्रं सं पर्वस्रं समास्थितं हृदयापयम्।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे वैद्य !] (अस्थिस्रंसम्) हड्डियां गला देने वाले, (परुस्रंसम्) जोड़ों के ढीला कर देने वाले (आस्थितम्) स्थिर (हृदयामयम्) हृदय रोग, अर्थात् (सर्वम्) सब (बलासम्) बल गिरा देने वाले क्षय रोग [खांसी, कफ आदि] को (नाशय) नाश कर दे, (यः) जो (अङ्गेष्ठाः) अङ्ग अङ्ग में बैठा हुआ (च) और (पर्वसु) सब जोड़ों में है ॥१॥

भावार्थः—जैसे वैद्य ओषधि द्वारा रोगों का नाश करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या द्वारा अविद्या का नाश करें ॥१॥

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥२॥

भाषार्थः—(बलासिनः) क्षय रोग वाले से (बलासम्) बल घटाने वाले क्षय रोग को (निः क्षिणोमि) उखाड़ कर नाश करता हूं (यथा) जैसे (मुष्करम्) कतरन को। (अस्य) इस रोग के (बन्धनम्) बन्धन को (छिनद्मि) काटे डालता हूं, (इव) जैसे (उर्वार्वाः) ककड़ी की (मूलम्) जड़ को ॥२॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य रोग का कारण समझ कर शीघ्र चिकित्सा करता है, वैसे ही विद्वान् प्राणे दोषों को समझ कर हटावे ॥२॥

निर्बलासेतः प्रपताशुंगः शिंशुको यथा ।
अथो इटं इव हायनोऽपद्राह्यवीरहा ॥३॥

भाषार्थः—(बलास) हे बल घटाने वाले क्षय रोग ! (इतः) यहां से (निः=निष्क्रम्य) निकल कर (प्रपत) चला जा, (यथा) जैसे (आशुंगः) शीघ्रगामी (शिशुकः) छोटा बछड़ा। (अथो) और भी (अवीरहा) वीरों का न नाश करने वाला तू (अप=अपेत्य) हटकर (द्राहि) भाग जा, (इव) जैसे (हायनः) प्रति वर्ष होने वाला (इटः) घास ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को रोग और अज्ञान नाश करने में शीघ्रता करनी चाहिये, जिससे वीरों की सदा जय रहे ॥३॥

सूक्तम् ॥१५॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

उत्तमगुणप्राप्त्युपदेशः—उत्तम गुणों की प्राप्ति का उपदेश ॥

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्ष उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (ओषधीनाम्) सब तापनाशक ओषधियों में तू (उत्तमः) उत्तम (असि) है, (वृक्षाः) सब स्वीकार करने योग्य गुण (तव) तेरे (उपस्तयः) उपासक [अधीन] हैं। (सः) वह पुरुष (अस्माकम्) हमारे (उपस्तिः) अधीन (अस्तु) होवे, (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) सतावे ॥१॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की भक्तिपूर्वक मनुष्य पुरुषार्थ करके अपने विघ्नों को मिटावें ॥१॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो शत्रुसमूह (सबन्धुः) बन्धुओं सहित (च च) और (असबन्धुः) विना बन्धुओं के होकर (अस्मान्) हमें (अभिदासति) सतावे। (वृक्षाणाम्) श्रेष्ठ पदार्थों में (सा इव) लक्ष्मी के समान, (अहम्) मैं (तेषाम्) उनके बीच (उत्तमः) उत्तम (भूयासम्) हो जाऊं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सब प्रकार की उलझनें हटाकर विद्या सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ प्राप्त करें ॥२॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सोमः) अमृत [अन्न वा सोम लता] (ओषधीनाम्) तापनाशक ओषधियों और (हविषाम्) ग्राह्य पदार्थों में (उत्तमः) उत्तम (कृतः) बनाया गया है। और (वृक्षाणाम् इव) जैसे उत्तम पदार्थों में (तलाशा) आश्रय प्राप्त करने वाली लक्ष्मी है, [वैसे ही] (अहम्) मैं (उत्तमः) उत्तम (भूयासम्) हो जाऊं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अन्न, सुवर्ण आदि पदार्थ प्राप्त करके उत्तम होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥१६॥

१—४ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ४ गायत्री; २ अनुष्टुप्; ३ उष्णिक् ॥

ब्रह्मगुणोपदेशः ॥ ब्रह्म के गुणों का उपदेश ॥

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो ।
आ ते करम्भमबसि ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(आबयो) हे चारों ओर गति वाले ! (अनाबयो) हे विना गति वाले ! (आबयो) हे चारों ओर कान्ति वाले ईश्वर ! (ते) तेरा (रसः) रस [आनन्द] (उग्रः) नित्य सम्बन्ध वाला है। हम (ते) तेरे (करम्भम्) सत्तु [अन्न] (आ) भले प्रकार (अद्मसि) खाते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में श्रद्धापूर्वक अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके भोगें ॥१॥

विहह्वो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] (ते) तेरा (पिता) पालन करने वाला गुण (विहह्वः) विशेष कपाने वाला [आश्चर्यजनक] (नाम) प्रसिद्ध है, और (ते) तेरी (माता) निर्माण शक्ति (मदवती) हर्ष युक्त (नाम) प्रसिद्ध है (सः) वह (हि न=हि) ही (त्वम्) तू (असि) है, (यः) जिस (त्वम्) तू ने (आत्मानम्) हमारे आत्मा की (आवयः) रक्षा की है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा में वर्तमान रह कर सदा आत्मरक्षा करें ॥२॥

तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् ।
बभ्रश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥३॥

भाषार्थः—(तौविलिके) वृद्धि से जीतने वाले व्यवहार में [हमें] (अव) अवश्य (ईलय=ईरय) आगे बढ़ा। (अयम्) इस (ऐलबः) पृथिवी के पदार्थों में व्यापक तू ने [ऋषियों को] (अव) अवश्य (ऐलयीत्=०—यीः) आगे बढ़ाया है। (आल) हे समर्थ परमेश्वर ! (बभ्रुः) पोषण करने वाला (च च) और (बभ्रुकर्णः) पोषक मनुष्यों का पतवार रूप तू (नः) नित्य (अप) आनन्द से (इहि) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्व ऋषियों के समान परमेश्वर का सहारा लेकर सदा वृद्धि करें ॥३॥

अलसालासि पूर्वी सिलाञ्जाल स्युत्तरा । नीलागलसाला ॥४॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (अलसाला) आलसियों को रोकने वाली (पूर्वी) प्रधान शक्ति (असि) है, और तू (सिलाञ्जाला) कण कण को प्रकट करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली और 'नीलागलसाला) सब लोकों के घर [ब्रह्माण्ड में] व्यापक (उग्रा) अति उत्तम शक्ति (असि) है ॥४॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी परमेश्वर की महिमा को विचारते हुए मनुष्य सदा पुरुषार्थी होवें ॥४॥

सूक्तम् ॥१७॥

१—३ ॥ पृथिवी देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गर्भाधानविषयोपदेशः—गर्भाधान का उपदेश ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (भूतानाम्) पञ्च महाभूतों के (गर्भम्) गर्भ को (आदधे) यथावत् धारण किया है, (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) संतान को (अनु) अनुकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) स्थिर होवे ॥१॥

भावार्थः—जैसे पृथिवी बीज को अपने में धारण करके अनुकूल समय पर उत्पन्न करती है, वैसे ही प्रयत्न किया जावे कि संतान गर्भ से पूरे दिनों में उत्पन्न होकर बली और पराक्रमी होवे, ऐसा ही भावार्थ आगे समझो ॥१॥

यह सूक्त स्वामी दयानन्द कृत संस्कारविधि में गर्भाधान प्रकरण में आया है।

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (इमान्) इस (वनस्पतीन्) सेवा करने वालों के रक्षक, वृक्ष आदि को (दाधार) धारण किया है (एव) वैसे ही (ते) तेरा ··म० १ ॥२॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी ने (पर्वतान्) पहाड़ों और (गिरीन्) पहाड़ियों को (दाधार) धारण किया है (एव) वैसे ही (ते) तेरा ··म० १ ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इयम्) इस (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी ने (विष्ठितम्) विविध प्रकार से स्थित (जगत्) जगत् को (दाधार) धारण किया है। (एव) वैसे ही (ते) तेरा (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) संतान को (अनु) अनूकूलता से (सवितवे) उत्पन्न करने के लिये (ध्रियताम्) धारण किया जावे ॥४॥

सूक्तम् ॥१८॥

१–३ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ईर्ष्यानिवारणायोपदेशः ॥ ईर्ष्या के निवारण का उपदेश ॥

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदय्यं १ शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरी (ईर्ष्यायाः) डाह की (प्रथमाम्) पहली (ध्राजिम्) गति को, (उत) और (प्रथमस्याः) पहली गति की (अपराम्) दूसरी गति को, (हृदय्यम्) हृदय में भरी (तम्) सताने वाली (अग्निम्) अग्नि और (शोकम्) शोक को (निः) सर्वथा (वापयामसि) हम नष्ट करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य दूसरों की वृद्धि देखकर कभी डाह न करें किन्तु दूसरे की उन्नति में अपनी उन्नति जानें ॥१॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मन्म्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (भूमिः) भूमि (मृतमनाः) मरे मन वाली [ऊसर] होकर (मृतात्) मरे से भी (मृतमनस्तरा) अधिक मरे मन वाली है। (उत) और (यथा) जैसे (मन्म्रुषः) मरे हुए मनुष्य का (मनः) मन है (एव) वैसे ही (ईर्ष्योः) डाह करने वाले का (मनः) मन (मृतम्) मरा होता है ॥२॥

भावार्थः—जैसे भूमि ऊसर हो जाने से उपजाऊ नहीं रहती और जैसे मृतक प्राणी का मन कुछ नहीं कर सकता, वैसे ही डाह करने वाला जल भुन कर उद्योगहीन हो जाता है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३॥

भाषार्थः (अदः) वह (यत्) जो (ते) तेरे (हृदि) हृदय में (श्रितम्) रक्खा हुआ (पतयिष्णुकम्) धड़कता हुआ (मनस्कम्) छोटा मन है (ततः) उससे (ते) तेरी (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (निर्मुञ्चामि) बाहिर निकालता हूं, (इव) जैसे (दृतेः) धोंकनी से (ऊष्माणम्) श्वास को ॥३॥

भावार्थः मनुष्य कभी किसी से ईर्ष्या द्वेष न करे क्योंकि उससे मन गिर जाता है, किन्तु पुरुषार्थ से अपनी उन्नति करे ॥३॥

सूक्तम् ॥१९॥

१–३ ॥ पवमानो देवता ॥ १ अनुष्टुप् २, ३ गायत्री ॥

पवित्राचरणायोपदेशः-- पवित्र आचरण के लिये उपदेश ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१॥

भाषार्थः –(देवजनाः) विजय चाहने वाले वा व्यवहार कुशल पुरुष (मा) मुझे (धिया) कर्म वा बुद्धि से (पुनन्तु) शुद्ध करें, (मनवः) मननशील विद्वान् लोग (पुनन्तु) शुद्ध करें। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणीमात्र (मा) मुझे (पुनन्तु) शुद्ध करें, (पवमानः) पवित्र परमात्मा (पुनातु) शुद्ध करे ॥१॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य आदि विद्वान् पुरुष संतानों को परमेश्वर के ज्ञानसहित ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से धार्मिक सुशील बनावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ९ सू० ६७ म० २७ और यजु० अ० १९ म० ३९ ॥

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥२॥

भाषार्थः—(पवमानः) पवित्र परमेश्वर (मा) मुझे (क्रत्वे) उत्तम कर्म वा बुद्धि के लिये, (दक्षाय) बल के लिये, (जीवसे) जीवन के लिये (अथो) और भी (अरिष्टतातये) कल्याण करने के लिये (पुनातु) शुद्ध आचरण वाला करे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा विज्ञान प्राप्त करके बुद्धि, बल और कीर्ति बढ़ा कर आप सुखी रहें और सब को सुखी रक्खें ॥२॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥३॥

भाषार्थः—(देव) हे दानशील (सवितः) सत्य कर्मों में प्रेरक जगदीश्वर ! (उभाभ्याम्) दोनों अर्थात् (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (च) और (सवेन) ऐश्वर्य से (अस्मान्) हमें (चक्षसे) देखने के लिये (पुनीहि) पवित्र कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर शुद्ध आचरण से ऐश्वर्य बढ़ा कर ससार के पदार्थों को विज्ञानपूर्वक साक्षात् करें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—९ । ६७ । २५ । और यजु० १९ । ४३ ॥

सूक्तम् ॥२०॥

१–३ ॥ तक्मा देवता ॥ १ जगती, २ पङ्क्तः, ३ विराट् पङ्क्तः ॥

रोगनाशायोपदेशः— रोग के नाश के लिये उपदेश ॥

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥१॥

भाषार्थः—वह [ज्वर] (दहतः) दहकती हुई, (शुष्मिणः) बलवान् (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के [ताप के] (इव) समान (एति) व्यापता है, (उत) और (मत्तः इव) उन्मत्त के समान (विलपन्) विलपता हुआ (अप अयति) भाग जाता है । (अस्मत्) हम से (अन्यम्) दूसरे (कम् चित्) किसी [कुनियमी] को (अव्रतः) वह व्रतहीन (इच्छतु) ढूंढ लेवे, (तपुर्वधाय) तपते हुए अस्त्र रखने वाले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जहां पर उत्तम वैद्य होते हैं और मनुष्य उचित आहार विहार करते हैं वहां ज्वरादि रोग नहीं होते ॥१॥

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥२॥

भाषार्थः—(रुद्राय) दुःखनाशक वैद्य को (नमः) नमस्कार, (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, (त्विषीमते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशमान, (राज्ञे) सब के राजा, (वरुणाय) श्रेष्ठ परमेश्वर को (नमः) नमस्कार हो। (दिवे) प्रकाशमान सूर्य को (नमः) नमस्कार, (पृथिव्यै) फैली हुई पृथिवी को (नमः) नमस्कार, और (ओषधीभ्यः) तापनाशक अन्न आदि पदार्थों को (नमः) नमस्कार हो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सत्पुरुषों के मेल, ईश्वर विचार और सांसारिक पदार्थों के नियमों के साक्षात् करने से स्वस्थ रहें ॥२॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥३॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (यः) जो (अभिशोचयिष्णुः) बहुत ही शोक में डालने वाला तू (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (हरिता) हरे वा पीले (कृणोषि) कर देता है। (तस्मै) उस (ते) तुझ (अरुणाय) रक्त, (बभ्रवे) भूरे और (वन्याय) बनैले (तक्मने) दुःखित जीवन करने वाले ज्वर को (नमः) नमस्कार (कृणोमि) करता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सावधान रहकर रुधिर विकार आदि से उत्पन्न दुष्ट ज्वर आदि रोगों से बचकर सदा हृष्ट पुष्ट रहें ॥३॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२१॥

१–३ ॥ ब्रह्म देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मगुणोपदेशः—ब्रह्म के गुणों का उपदेश ॥

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इमाः) यह (याः) जो (तिस्रः) तीन [सूर्य, पृथिवी और अन्तरिक्ष] (पृथिवीः) विस्तृत लोक हैं, (तासाम्) उन में (ह) निश्चय करके (भूमिः) भूमि, सब का आधार परमेश्वर (उत्तमा) उत्तम है। (तासाम्) उन [लोकों] के (त्वचः अधि) विस्तार से ऊपर (भेषजम्) भयनाशक ब्रह्म को (उ) अवश्य (अहम्) मैंने (सम् जग्रभम्) यथावत् ग्रहण किया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के रचे लोक लोकान्तरों के सम्बन्ध और गुणों को जान कर परस्पर उपकार करें ॥१॥

श्रेष्ठ॑मसि भे॒षजा॒नां वसि॑ष्ठं॒ वीरु॑धानाम् ।
सोमो॒ भग॑ इव॒ यामे॑षु दे॒वेषु॒ वरु॑णो॒ यथा॑ ॥२॥

भाषार्थः—(हे ब्रह्म !) तू (भेषजानाम्) भयनाशक पदार्थों में (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ और (वीरुधानाम्) विविध प्रकार से उगती हुई प्रजाओं के बीच (वसिष्ठम्) अत्यन्त धन वाला वा वसने वाला (असि) है, (इव) जैसे (भगः) ऐश्वर्यवान् (सोमः) चन्द्रमा (यामेषु) चलने वाले ताराओं के बीच, और (यथा) जैसे (वरुणः) सूर्य (देवेषु) प्रकाशमान पदार्थों में है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का आश्रय लेकर सदा पुरुषार्थ करें ॥२॥

रेव॑ती॒रना॑धृषः सिषा॒सवः॑ सिषासथ ।
उ॒त स्थ के॑श॒दृंह॑णी॒रथो॑ ह केश॒वर्ध॑नीः ॥३॥

भाषार्थः—(रेवतीः) हे धनवाली ! (अनाधृषः) कभी हिंसा न करने वाली ! (सिषासवः) हे दान करने वा सेवा करने की इच्छा वाली प्रजाओ ! तुम (सिषासथ=०—सत) सेवा करने की इच्छा करो। तुम (उत) अत्यन्त (केशदृंहणीः) प्रकाश दृढ़ करने वाली (अथो ह) और भी (केशवर्धनीः) प्रकाश बढ़ाने वाली (स्थ) हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्याधन और सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके प्रीतिपूर्वक ईश्वर भक्ति करते हुए दृढ़ता से विद्या का प्रकाश बढ़ावें ॥३॥

सूक्तम् ॥२२॥

१–३ ॥ मरुतो देवताः ॥ १, ३ त्रिष्टुप्, २ जगती ॥

वृष्टिविद्योपदेशः—वृष्टिविद्या का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥१॥

भाषार्थः—(हरयः) रस खींचने वाली, (सुपर्णाः) अच्छा उड़ने वाली किरणें (अपः) जल को (वसानाः) ओढ़ कर (कृष्णम्) खींचने वाले (नियानम्) नित्य गमन स्थान अन्तरिक्ष में होकर (दिवम्) प्रकाशमय सूर्यमण्डल को (उत् पतन्ति) चढ़ जाती हैं। (ते) वे (इत्) ही (आत्) फिर (ऋतस्य) जल के (सदनात्) घर [सूर्य] से (आ अववृत्रन्) लौट आती हैं, और उन्होंने (घृतेन) जल से (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि) विविध प्रकार से (ऊदुः) सींच दिया है ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य की किरणें पवन द्वारा भूमि से जल को खींचकर और फिर बरसा कर उपकार करती हैं, वैसे ही मनुष्य विद्या प्राप्त करके संसार का उपकार करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १ सू० १६४। म० ४७ और निरु० ७। २४। में भी ॥

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२॥

भाषार्थः—(रुक्मवक्षसः) हे तेज [बिजुली] को हृदय में रखने वाले (मरुतः) वायु के वेगो! (यत्) जब (एजथ) तुम चलते हो, (अपः) जल और (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को (पयस्वतीः) रसवाली और (शिवाः) कल्याणकारी (कृणुथ) तुम करते हो। (च) और (तत्र) वहां (ऊर्जम्) बल देने वाला अन्न (च) और (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि (पिन्वत) बरसाते हो, (यत्र) जहां पर (नरः) हे नायक (मरुतः) वायुगणो! (मधु) जल (सिञ्चथ) सींचते हो ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार वायु बिजुली से युक्त मेघ से मिलकर बरसा करता है और अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मनुष्यों को विद्या आदि उत्तम गुण प्राप्त करके आनन्दित होना चाहिये ॥२॥

उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्तवृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुभ्यं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३॥

भाषार्थः—(उदप्रुतः) हे जल के भेजने वाले (मरुतः) वायुगणो! (तान्=तान्) उस [वृष्टि] को (इयर्त्त) तुम भेजो, (या) जो (वृष्टिः) बरसा (विश्वाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब (निवतः) नीचे स्थानों को (पृणाति) भर देती है। (ग्लहा) वह ग्रहण करने योग्य [वृष्टि] (एरुम्) गतिशील समुद्र को (एजाति=एजति) पहुंचती है, (इव) जैसे (तुन्ना) व्यथा में पड़ी (कन्या) कन्या [अपने माता पिता आदि को], और (इव) जैसे (तुन्दाना) दुःख पाती हुई (जाया) पत्नी (पत्या=पतिम्) अपने पति को [पहुंचती है] ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार वायु द्वारा वृष्टिजल संसार का उपकार करता हुआ समुद्र में शान्ति पाता है, इसी प्रकार मनुष्य परस्पर उपकार करके उस परब्रह्म में सुखप्राप्ति करें ॥३॥

सूक्तम् ॥२३॥

१—३ ॥ आपो देवताः ॥ १ अनुष्टुप्, २ गायत्री; ३ उष्णिक् छन्दः ॥

कर्मकरणायोपदेशः—कर्म करने के लिये उपदेश ॥

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१॥

भाषार्थः—(वरेण्यक्रतुः) उत्तम कर्म वा बुद्धि वाला (अहम्) मैं (अपसः) व्यापक (तत्=तस्य) विस्तृत ब्रह्म की (दिवा) दिन (च) और (नक्तम्) रात (सस्रुषीः सस्रुषीः) अत्यन्त उद्योगशील, (देवीः) प्रकाशमय (अपः) व्यापक शक्तियों को (उप) आदर से (ह्वये) बुलाता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की शक्तियों का विचार करते हुए सदा पुरुषार्थ करें ॥१॥

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये । सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥२॥

भाषार्थः—(ओताः) अच्छे प्रकार बुनी हुई (कर्मण्याः) कामों में कुशल (आपः) [परमेश्वर की] व्यापक शक्तियां [हमें] (इतः) इस [कष्ट] से (प्रणीतये) उत्तम नीति के लिये (मुञ्चन्तु) मुक्त करें। और (सद्यः) तुरन्त (एतवे) चलने को (कृण्वन्तु) बनावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वरीय रचनाओं को देखकर उत्तम नीति पर चलकर सदा आगे बढ़े ॥२॥

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मानुषाः) सब मनुष्य (देवस्य) प्रकाशमय (सवितुः) सर्वप्रेरक परमेश्वर के (सवे) शासन में (कर्म) कर्म (कृण्वन्तु) करते रहें। (शिवाः) कल्याणकारक (ओषधीः=०-धयः) अन्न आदि पदार्थ (शम्) शान्ति से (नः) हमारे (अपः) कर्म को (भवन्तु) प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य वेदविहित कर्मों को करते हुए पुरुषार्थपूर्वक अन्न आदि पदार्थों को भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥२४॥

१—३ ॥ आपो देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥१॥

भाषार्थः—(आपः) व्यापक शक्तियां [वा जलधारायें] (हिमवतः) वृद्धिशील वा गतिशील परमेश्वर से [वा हिमवाले पहाड़ से] (प्रस्रवन्ति) बहती रहती हैं, और (समह) हे महिमा के साथ वर्तमान पुरुष! (सिन्धौ) बहने वाले संसार [वा समुद्र] में (सङ्गमः) उनका सङ्गम है। (देवीः) वे दिव्य गुण वाली शक्तियां [वा जलधारायें] (ह) निश्चय करके (मह्यम्) मेरे लिये (तत्) वह (हृद्द्योतभेषजम्) हृदय की चमक का भय जीतने वाला औषध (ददन्) देवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपकारशक्तियों को विचार कर अपने दोष मिटावें, अथवा जल द्वारा रोगनाश करें ॥१॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पाष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो [दुःख] (मे) मेरे (अक्ष्योः) दोनों नेत्रों में (पाष्ण्योः) दोनों एड़ियों में, (च) और (यत्) जो (प्रपदोः) पांव के दोनों पंजों में (आदिद्योत) चमक उठा है। (भिषजाम्) वैद्यों में (सुभिषक्तमाः) अति पूजनीय वैद्य रूप (आपः) परमेश्वर की व्यापक शक्तियां वा जलधारायें (तत्) उस (सर्वम्) सब को (निष्करन्) हटावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर रचित पदार्थों के गुण जान कर अपना रोग निवारण करें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्यः स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

भाषार्थः—(सिन्धुपत्नीः) बहने वाले संसार [वा समुद्र] की पालने वाली, (सिन्धुराज्ञीः) बहने वाले जगत् की शासन करने वाली, [वा समुद्र की शोभा बढ़ाने वाली] (याः) जो तुम (सर्वाः) सब शक्तियां (नद्यः) [परमेश्वर की] स्तुति करने वाली [वा नदियां] (स्थन) हो। वे तुम (नः) हमें (तस्य) हिंसक रोग की (भेषजम्) ओषधि (दत्त) दो, (तेन) उससे (वः) तुम्हारे [गुणों को] (भुनजामहै) हम भोगें ॥३॥

भावार्थः— जिस परमेश्वर ने मनुष्य के सुख के लिये अनन्त रचनायें की हैं, उसकी उपासना करके मनुष्य सदा शान्ति पावें और जल द्वारा रोग-निवृत्ति करें ॥३॥

सूक्तम् ॥२५॥

१–३ । वैद्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशायोपदेशः— रोग के नाश के लिये उपदेश ॥

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥

भाषार्थः (पञ्च) पांच (च च) और (पञ्चाशत्) पचास (याः) जो पीड़ायें (मन्याः अभि) गले की नसों में (संयन्ति) सब ओर से व्याप्त होती हैं। (ताः सर्वाः) वे सब (इतः) यहां से (नश्यन्तु) नष्ट हो जावें, (इव) जैसे (अपचिताम्) निर्बलों के (वाकाः) वचन [नष्ट हो जाते हैं] ॥१॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य गले के गंडमाला आदि रोगों को नष्ट करता है, इसी प्रकार मनुष्य अपने दोषों का निवारण करें ॥१॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥

भाषार्थः —(सप्त) सात (च च) और (सप्ततिः) सत्तर (याः) जो पीड़ायें (ग्रैव्याः अभि) कण्ठ की नाड़ियों में (संयन्ति) सब ओर से व्याप्ती हैं। (ताः सर्वाः) वे सब ···म० १ ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवं च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

भाषार्थः—(नव) नव (च च) और (नवतिः) नव्वे (याः) जो पीड़ायें (स्कन्ध्याः अभि) कन्धे की नाड़ियों में (संयन्ति) व्याप्ती हैं। (ताः सर्वाः) वे सब···म० १ ॥३॥

भावार्थः— मन्त्र १ के समान ॥३॥

सूक्तम् ॥२६॥

१—३ ॥ पाप्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

कष्टत्यागायोपदेशः—कष्ट त्यागने के लिये उपदेश ॥

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥१॥

भाषार्थः—(पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (मा) मुझे (अव सृज) छोड़ दे और (वशी) वश में पड़ने वाला (सन्) होकर तू (नः) हमें (मृडयासि) सुख दे (पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (भद्रस्य) आनन्द के (लोके) लोक में (मा) मुझे (अविह्रुतम्) पीड़ा रहित (आ) अच्छे प्रकार (धेहि) रख ॥१॥

भावार्थः जो मनुष्य पुरुषार्थ से विघ्नों को हटाते हैं, वे आनन्द पाते हैं ॥१॥

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥२॥

भाषार्थः—(पाप्मन्) हे पापी विघ्न ! (यः) जो तू (नः) हमें (न) नहीं (जहासि) छोड़ता है, (तम्) उस (त्वा) तुझ को (उ) ही (वयम्) हम (जहिमः) छोड़ते हैं। (अनु) फिर (पथाम्) मार्गों के (व्यावर्तने) घुमाव पर (अन्यम्) दूसरे [अधर्मी] को (पाप्मा) दुःखदायी विघ्न (अनु पद्यताम्) प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः—अधर्मी लोग अनेक विघ्नों में पड़कर दुःख उठाते हैं। और धर्मात्मा विघ्नों को हटा कर सुख पाते हैं ॥२॥

अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेष्मि तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सहस्राक्षः) सहस्रों [दोषों] में दृष्टि रखने वाला, (अमर्त्यः) मनुष्यों का हित न करने वाला [विघ्न] (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों में (नि) नित्य (उच्यतु) प्राप्त हो। (यम्) जिसको (द्वेषाम) हम बुरा जानें, (तम्) उसको (ऋच्छतु) वह [विघ्न] प्राप्त हो। और (यम्) जिसको (उ) ही (द्विष्मः) हम बुरा जानते हैं, (तम्) उसको (इत्) ही (जहि) नाश कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को अनेक दोषों के कारण बड़े हानिकारक विघ्न रोकते हैं। इस लिये मनुष्यों को पुरुषार्थपूर्वक विघ्न हटाना योग्य है ॥३॥

सूक्तम् ॥२७॥

१—३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विद्वद्गुणोपदेशः—विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (इषितः) प्राप्तियोग्य, (निर्ऋत्याः) अलक्ष्मी का (दूतः) नाश करने वाला, (कपोतः) वरणीय वा स्तुतियोग्य [अथवा, कबूतर पक्षी के समान दूरदर्शी और तीक्ष्ण बुद्धि] पुरुष (यत्) पूजनीय ब्रह्म को (इच्छन्) खोजता हुआ, (इदम्) इस स्थान में (आजगाम) आया है। (तस्मै) उस विद्वान् के लिये (अर्चाम) हम पूजा करें और (निष्कृतिम्) अपनी निर्मुक्ति (कृणवाम) हम करें, [जिससे] (नः) हमारे (द्विपदे) दोपाये समूह को (शम्) शान्ति और (चतुष्पदे) चौपाये समूह को (शम्) शान्ति (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जैसे कबूतर दूर देशों में सन्देश लेजाकर उत्तर लाते हैं, उसी प्रकार दूरदर्शी और बुद्धिमान् ब्रह्मज्ञानी विद्वानों से मनुष्य आदर-पूर्वक विद्या प्राप्त करके और दुःखों से मुक्ति पाकर आनन्द भोगें ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में कुछ भेद से है—म० १० । सू० १६५ । म० १–३ । अजमेर वैदिक यन्त्रालय की ऋक् संहिता में [कपोतो नैर्ऋतः] कपोत निर्ऋतिका पुत्र ऋषि और [कपोतोपहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम्] कपोत के हनन में, विश्वेदेवा, सब विद्वानों का प्रायश्चित्त देवता है ॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (इषितः) प्राप्ति योग्य (अनागाः) निर्दोष, (शकुनः) समर्थ (कपोतः) स्तुतियोग्य विद्वान् (नः) हमारे लिये और (नः) हमारे (गृहम्=गृहाय) घर के लिये (शिवः) मंगलकारी (अस्तु) होवे। (अग्निः) वह विद्वान् (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (नः) हमारे (हविः) देने लेने योग्य कर्म को (हि) अवश्य (जुषताम्) स्वीकार करे। (पक्षिणी) पक्षपातवाली (हेतिः) चोट (नः) हमें (परि) सब ओर से (वृणक्तु) छोड़े ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण विद्वानों के सत्संग से सुशिक्षित होकर अन्याय से पक्षपात न करें ॥२॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने। शिवो गोभ्यं उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥३॥

भाषार्थः—(पक्षिणी) पक्षपात वाली (हेतिः) चोट (अस्मान्) हमें (न) न (दभाति) दबावे (आष्ट्री) व्याप्त सभा के बीच (अग्निधाने) विद्वानों के स्थान पर [वह विद्वान्] (पदम्) अपना अधिकार (कृणुते) करता है। (देवाः) हे विद्वानो ! (कपोतः) स्तुतियोग्य पुरुष (नः) हमारी (गोभ्यः) गौओं के लिये (उत) और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये (शिवः) मंगलकारी (अस्तु) होवे। और (नः) हमें (इह) यहां पर (मा हिंसीत्) न दुःख देवे ॥३॥

भावार्थः—जिस सभा में सभापति वेदानुगामी न्यायकारी होता है, वहां के सभासद् अन्यायी पक्षपाती नहीं होते और न दुःख उठाते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥२८॥

१—३विश्वेदेवा देवताः ॥ १, ३ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ॥

विद्वद्गुणोपदेशः—विद्वान् के गुणों का उपदेश ॥

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥१॥

भाषार्थः [हे विद्वानो !] (ऋचा) स्तुति से (प्रणोदम्) आगे बढ़ाने वाले (कपोतम्) स्तुति योग्य विद्वान् को (नुदत) आगे बढ़ाओ। (मदन्तः) हर्ष करते हुए और (दुरिता) दुर्गति के कारण (पदानि) चिह्नों को (संलोभयन्तः) मिटाते हुए हम लोग (इषम्) अन्न और (गाम्) विद्या को (परि) सब ओर (नयामः) पहुंचाते हैं। (पथिष्ठः) वह अति शीघ्रगामी विद्वान (नः) हमें (ऊर्जम्) पराक्रम (हित्वा) देकर (प्र पदात्) आगे ठहरे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उद्योगी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष को अपना नेता बना कर उन्नति करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । १६५ । ५ ।

परीमे ३' ग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥२॥

भाषार्थः—(इमे) इन पुरुषों ने (अग्निम्) विद्वान् को (परि) सब ओर (अर्षत) प्राप्त किया है, (इमे) इन्होंने (गाम्) विद्या को (परि) सब ओर (अनेषत) पहुँचाया है । और (देवेषु) विद्वानों में (श्रवः) यश (अक्रत) किया है । (कः) कौन (इमान्) इन लोगों को (आ दधर्षति) जीत सकता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों से विद्या पाकर कीर्ति पाते हैं, वे सदा विजयी होते हैं ॥२॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
या ३' स्येषे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (प्रथमः) गुणियों में पहिला पुरुष (बहुभ्यः) अनेकों के लिये (पन्थाम्) मार्ग (अनुपस्पशानः) खोजता हुआ (प्रवतम्) उत्तम पाने योग्य अधिकार पर (आससाद) आया है । और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये समूह का (यः) और जो (चतुष्पदः) चौपाये समूह का (ईशे=ईष्टे) राजा है (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी पुरुष को (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—जो सर्वश्रेष्ठ पुरुष संसार के उपकार के लिए सन्मार्ग दिखाकर सबकी रक्षा करता है, सब मनुष्य विपत्ति से बचने के लिये उस न्यायी वीर पुरुष का सत्कार करें ॥३॥

सूक्तम् ॥२९॥

१–३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २ त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुबनुष्टुपौ ॥

शुभगुणग्रहणायोपदेशः— शुभ गुण ग्रहण करने का उपदेश ॥

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (पतत्रिणी) नीचे गिरने वाली (हेतिः) चोट (अमून्) उन [शत्रुओं] को (नि) नीचे (एतु) ले जावे। (उलूकः) अज्ञान से ढकने वाला उल्लू के समान मूर्ख पुरुष (यत्) जो कुछ (वदति) बोलता है, (एतत्) वह (मोघम्) निरर्थक होवे। (यत्) क्योंकि (कपोतः) स्तुतियोग्य अथवा कबूतर के समान तीव्र-बुद्धि पुरुष (अग्नौ) विद्वानों के समूह में (वा) निश्चय करके (पदम्) अधिकार (कृणोति) करता है ॥१॥

भावार्थः—जहाँ पर विद्वान् मनुष्य अधिकारी होते हैं, वहाँ पर मूर्ख शत्रुओं के वचन और कर्म निष्फल होते हैं ॥१॥

इस मन्त्र का दूसरा और तीसरा पाद ऋग्वेद में है—म० १०। १६५ ॥४॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतो ऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥२॥

भाषार्थः—(निर्ऋते) हे नित्य मङ्गल देने वाले परमेश्वर! (यौ) जो (अप्रहितौ) अहित करनेवाले (वा) और (प्रहितौ) हित करने वाले (ते) तेरे (दूतौ) विज्ञान कराने वाले दोनों गुण (नः) हमारे (इदम्) इस (गृहम्) घर में (आ—इतः) आते हैं। (कपोतोलूकाभ्याम्) उन विज्ञान से स्तुति के योग्य और अज्ञान से ढकने वाले गुणों द्वारा (तत्) विस्तृत ब्रह्म (अपदम्) न प्राप्ति योग्य दुःख को (अस्तु=अस्यतु) गिरा देवे ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष परमेश्वर की व्यवस्था से सुख और दुःख दोनों का अनुभव करके सुख के मूल सुकर्म का ग्रहण, और दुःख के कारण कुकर्म का त्याग करें ॥२॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरतायै इदमा ससद्यात्। पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्। यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशाना-भूकं प्रतिचाकशान् ॥३॥

भाषार्थः - [स्तुति के योग्य कपोत विद्वान्] (अवैरहत्याय) वीरों के न मारने के लिये (इदम्) इस स्थान पर (आ=आगत्य) आकर (पपत्यात्) समर्थ होवे और (सुवीरतायै) बड़े वीरों के हित के लिये (इदम्) इस स्थान पर (आ) आकर (ससद्यात्) बैठे। [हे उल्लू के समान मूर्ख शत्रु!] (पराङ्) औंधे मुख होकर (पराचीम्) अधोगत (संवतम्) संगति की (अनु=अनुलक्ष्य) ओर (परा) दूर होकर (एव) ही (वद) बात कर। (यथा) क्योंकि (यमस्य) न्यायकारी पुरुष के (गृहे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में (त्वा) तुझ को (अरसम्) निर्बल (प्रतिचाकशान्) लोग देखें, और (आभूकम्) असमर्थ (प्रतिचाकशान्) वे देखें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वान् पुरुषार्थी जन का सहाय लेकर न्यायपूर्वक श्रेष्ठ वीरों की रक्षा और मूर्ख दुराचारियों का नाश करके सुखी रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥३०॥

१—३ ॥ सरस्वती शमी वा देवता ॥ १ जगती, २ विराट् ३ उष्णिक् ॥

विद्यागुणोपदेशः - विद्या के गुणों का उपदेश ॥

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः । इन्द्र आसीत सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोगों ने (मधुना) मधुर रस वा ज्ञान से (संयुतम्) मिले हुए (इमम्) इस (यवम्) यव अन्न को (सरस्वत्याम् अधि) विज्ञान से युक्त वेद विद्या को अधिष्ठात्री मानकर (मणौ) उसके श्रेष्ठपन में (अचर्कृषुः) बार बार जोता । (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म वा बुद्धि वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् आचार्य (सीरपतिः) हल का स्वामी (आसीत्) था और (सुदानवः) बड़े दानी (मरुतः) विद्वान् पुरुष (कीनाशाः) परिश्रमी किसान (आसन्) थे ॥१॥

भावार्थः—ब्रह्मवादी लोग आचार्य के उपदेश से वेदविद्या को प्रधान मानकर उसकी उत्तमता को खोजकर ऐसा आनन्द पाते हैं जैसे किसान लोग अपने स्वामी की आज्ञा से विधिपूर्वक खेत में बीज बोकर अन्न प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं ॥१॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥२॥

भाषार्थः—(शमि) हे शान्ति करने वाली [सरस्वती !] (यः) जो (ते) तेरा (मदः) आनन्द (अवकेशः) शुद्ध प्रकाश वाला और (विकेशः) विविध प्रकाश वाला है, (येन) जिससे (पुरुषम्) पुरुष को (अभिहस्यम्) बड़ा खिलने योग्य (कृणोषि) तू करती है । (त्वत्) तुझ से (अन्या) भिन्न [अविद्यारूप] (वनानि) मांगने के कर्मों को (आरात्) दूर (वृक्षि) मैंने छोड़ दिया है । (त्वम्) तू (शतवल्शा) सैकड़ों अंकुर वा शाखा वाली होकर (वि) विविध प्रकार से (रोह) प्रकट हो ॥२॥

भावार्थः- योगी जन विद्या की प्राप्ति से अज्ञान को मिटाकर "ऋतम्भरा" बुद्धि द्वारा अनेक सुख पाते हैं ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥३॥

भाषार्थः—(बृहत्पलाशे) हे बहुत पालनशक्ति से व्याप्त ! (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्यवाली ! (वर्षवृद्धे) हे वरणीय गुणों से बढ़ी हुई ! (ऋतावरि) हे सत्यशीला ! (शमि) हे शान्तिकारिणी सरस्वती ! (केशेभ्यः) प्रकाशों के लिये (मृड) सुखी हो, (माता इव) जैसे माता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्कारपूर्वक विद्या को प्राप्त करते हैं, उन्हें वह ऐसे सुख देती है जैसे माता पुत्रों को ॥३॥

सूक्तम् ॥३१॥

१--३ ॥ सार्पराज्ञी सूर्य्यो वा देवता । गायत्री छन्दः ॥

सूर्यस्य भूमेर्वा गुणोपदेशः—सूर्य वा भूमि के गुणों का उपदेश ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (गौ) चलने वा चलाने वाला, (पृश्निः) रसों वा प्रकाश का छूने वाला सूर्य (आ अक्रमीत्) घूमता हुआ है, (च) और (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) आकाश में (प्रयन्) चलता हुआ (पुरः) सन्मुख हो कर (मातरम्) सब की बनाने वाली पृथिवी माता को (असदत्) व्यापा हैं ॥१॥

भावार्थः—यह सूर्य अन्तरिक्ष में घूम कर आकर्षण, वृष्टि आदि व्यापारों से पृथिवी आदि लोकों का उपकार करता है ॥१॥

इस सूक्त के तीनों मन्त्र कुछ भेद से अन्य तीनों वेदों में इस प्रकार हैं ॥

वेद	पता	ऋषि	देवता
ऋग्वेद	१०।१८९।१-३	सार्पराज्ञी	सार्पराज्ञी वा सूर्य्य
यजुर्वेद	३।६-८	सार्पराज्ञी कद्रु	अग्नि
सामवेद	पू० ६।१४।४-६	सार्पराज्ञी	सूर्य्य

हमने "सार्पराज्ञी" चलने वाले और चमकने वाले सूर्य से सम्बन्ध वाली पृथिवी और "सूर्य" को देवता मान कर सूक्त का अर्थ किया है। प्रत्येक मन्त्र के साथ महर्षि दयानन्दकृत भाष्य के अनुसार संक्षिप्त अर्थ दिखाया गया है। सविस्तार उनके भाष्य में देख लेवें ॥

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका—पृष्ठ १३६, पृथिव्यादि भ्रमण—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"(अयम्) यह (गौः) पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, अथवा अन्य लोक (पृश्निः= पृश्निम्) अन्तरिक्ष में (आ अक्रमीत्) घूमता चलता है, इनमें पृथिवी (मातरम्) अपने उत्पत्ति कारण जल को तथा (पितरम्) (स्वः) पिता और अग्निमय सूर्य को (असदत्) प्राप्त होती है (च) और (पुरः) पूर्व पूर्व (प्रयन्) सूर्य के चारों ओर घूमती है। ऐसे ही सूर्य वायु पिता और आकाश माता के तथा चन्द्रमा, अग्नि पिता और जल माता के प्रति घूमता है॥"

यजुर्वेद– अ० ३ म० ६॥

"(अयम्) यह (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) सूर्य के और (मातरम्) अपनी योनिरूप जल के (पुरः) आगे आगे (प्रयन्) चलती हुई (पृश्निः) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (आ अक्रमीत्) चारों ओर चलती है (च) और (असदत्) अपनी कक्षा में घूमती है॥

भावार्थः—यह पृथिवी अपने योनि रूप जल सहित आकर्षण करने वाले सूर्य के चारों ओर घूमती है, उसी से दिनरात्रि, शुक्ल कृष्णपक्ष और ऋतु और अयन आदि काल विभाग उत्पन्न होते हैं॥"

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः॥२॥

भाषार्थः—(प्राणात्) भीतर की श्वास के पीछे (अपानतः) बाहर को श्वास निकालते हुए (अस्य) इस [सूर्य] की (रोचना) रोचक ज्योति (अन्तः) [जगत् के] भीतर (चरति) चलती है, और वह (महिषः) बड़ा सूर्य्य (स्वः) आकाश को (वि) विविध प्रकार (अख्यत्) प्रकाशित करता है॥२॥

भावार्थः—जैसे सब प्राणी श्वास प्रश्वास से जीवित रह कर चेष्टा करते हैं, वैसे ही सूर्य प्रकाश का ग्रहण और त्याग करके लोकों को प्रकाशित करता है॥२॥

महर्षि दयानन्दकृत भाष्य, यजुर्वेद ३। ७।

"(प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जाने वाले वायु से (अपानतः) नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करते हुए (अस्य) इस अग्नि की (रोचना) दीप्ति अर्थात् बिजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य (चरति) चलती है, वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (स्वः) सूर्य लोक को (व्यख्यत्) प्रकट करता है॥२॥

भावार्थः सब प्राणियों के भीतर रहने वाली अग्नि की कान्ति बिजुली प्राण और अपान के साथ मिलकर सब चेष्टाओं को सिद्ध करती है॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तो रह्द्युभिः ।।३।।

भाषार्थः—(पतङ्गः) चलने वाला वा ऐश्वर्यवाला सूर्य (त्रिंशत् धामा) तीस धामों पर [दिन रात्रि के तीस मुहूर्तों पर] (वस्तोः, अहः) दिन दिन (द्युभिः) अपनी किरणों और गतियों के साथ (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता वा चमकता है, (वाक्) इस वचन ने [उस सूर्य में] (अशिश्रियत्) आश्रय लिया है ।।३।।

भावार्थः—यह बात स्वयं सिद्ध है कि यह सूर्य सर्वदा सब ओर चमकता रह कर अपनी परिधि के लोकों को गमन, आकर्षण, विकर्षण, वृष्टि, शीत, ताप आदि द्वारा स्थिर रखता है ।।३।।

दिन रात्रि के तीस मुहूर्त भगवान् मनु ने भी माने हैं—अ० १ श्लोक ६४ ।।

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।
त्रिंशत् कलां मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ।।१।।

१८ पलक की १ काष्ठा, ३० काष्ठा की १ कला, ३० कला का १ मुहूर्त, और उतने ही ३० मुहूर्त का दिन रात होता है ।।

महर्षि दयानन्दकृत भाष्य यजुर्वेद ३ । ८ ।।

भाषार्थः—(द्युभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रति वस्तोः, अहः) प्रति दिन (त्रिंशत्) अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि तीस (धाम) स्थानों को (पतङ्गः) चलने चलाने वाला अग्नि (वि राजति) प्रकाशित करता है—(वाक्) इस वचन ने [उस अग्नि में] (अशिश्रियत्) आश्रय लिया है ।।३।।

भावार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहने वाले बिजुली नाम अग्नि से प्रकाशित होती है विद्वान् लोग उसका गुण प्रकाश करने के लिये उसका नित्य उपदेश और श्रवण करें ।।३।।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ ६८ वेदविषय में तैंतीस देवता इस प्रकार लिखे हैं—८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा और नक्षत्र; ११ ग्यारह रुद्र अर्थात् शरीरस्थ दश प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और ग्यारहवां जीवात्मा; १२ आदित्य वा महीने; १ इन्द्र, अर्थात् बिजुली, और १ प्रजापति अर्थात् यज्ञ । उक्त मन्त्र में उनमें से ऊपर लिखे तीन को छोड़ कर तीस देवताओं का ग्रहण है ।।

इति तृतीयोऽनुवाकः ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३२॥

१–३ ॥ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ देवते ॥ १, ३ त्रिष्टुप्, २ पङ्क्तिः ॥

रक्षोनाशोपदेशः—राक्षसों के नाश का उपदेश ॥

अन्तर्दावे जुहुता स्वे ३' तद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षाँसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो] (एतत्) इस (यातुधानक्षयणम्) पीड़ा देने वालों के नाश करने वाले कर्म को (घृतेन) प्रकाश के साथ (अन्तर्दावे) भीतरी सन्ताप में (सु) अच्छे प्रकार (जुहुत) छोड़ो। (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! (त्वम्) तू (रक्षांसि) राक्षसों को (आरात्) दूर करके (प्रतिदह) भस्म करदे और (नः) हमारे (गृहाणाम्) घरों का (उप) कुछ भी (न तीतपासि) मत तापकारी हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अन्धकारनाशक परमेश्वर के ज्ञान से विद्या का प्रकाश करके आत्मिक और शारीरिक रोगों का जड़ से नाश करें ॥१॥

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२॥

भाषार्थः—(पिशाचाः) हे मांसभक्षक! [रोगो वा प्राणियो] (रुद्रः) दुःखनाशक सेनापति ने (वः) तुम्हारे (ग्रीवाः) गले को (अशरैत्) तोड़ डाला है, (यातुधानाः) हे पीड़ादायको! (वः) तुम्हारी (पृष्टीः) पसलियाँ (अपि) भी (शृणाति) तोड़े। (विश्वतोवीर्या) सब ओर से सामर्थ्य वाली (वीरुत्) विविध प्रकार से प्रकापित होने वाली शक्ति [परमेश्वर] ने (वः) तुमको (यमेन) नियम के साथ (सम् अजीगमत्) संयुक्त किया है ॥२॥

भावार्थः—प्रतापी राजा दुःखदायक शत्रु और रोगों का सदा प्रतीकार करे। उस परमात्मा ने सब के कर्मों को वेद द्वारा नियमबद्ध किया है ॥२॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणोनुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्राना उप यन्तु मृत्युम् ॥३॥

भाषार्थः—(मित्रावरुणौ) हे प्राण और अपान! [अथवा हे दिन और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रि !] (नः) हमारे लिये (इह) यहाँ पर (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, [तुम दोनों अपने] (अर्चिषा) तेज से (अस्त्रिणः) खा डालने वालों को (प्रतीचः) उलटा (नुदतम्) हटा दो। वे लोग (मा) न तो (ज्ञातारम्) सन्तोषक पुरुष को और (मा) न (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठा को (विदन्त) पावें, (मिथः) आपस में (विघ्नानाः) मारते हुए (मृत्युम्) मृत्यु को (उप यन्तु) प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक बल और समय का ऐसा सुन्दर प्रयोग करें जिससे शत्रु लोग कहीं शरण न पावें और आपस में कट मरें ॥३॥

सूक्तम् ॥३३॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ गायत्री, २ अनुष्टुप्, ३ उष्णिक् ॥

सर्वलक्ष्मीप्राप्त्युपदेशः—सर्व लक्ष्मी पाने को उपदेश ॥

यस्ये॒दमा रजो॒ युजस्तुजे॒ जना॒ वनं॒ स्वः ।
इन्द्रस्य॒ रन्त्यं॑ बृ॒हत् ॥१॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस (युजः) संयोग करने वाले परमेश्वर के (तुजे) बल में (इदम्) यह (रजः) लोक, (जनाः) सब मनुष्य, (वनम्) जल (आ) और (स्वः) सूर्य्य है। (इन्द्रस्य) उस बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर का (रन्त्यम्) क्रीड़ा स्थान (बृहत्) बड़ा है ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा की शक्ति में यह सब संसार है, उसकी महिमा मनुष्य की समझ से बाहर है ॥१॥

नाधृ॑ष आ दधृषते धृ॒षाणो॑ धृ॒षितः॑ शवः॑ ।
पु॒रा यथा॑ व्यथि॒रः श्रव॒ इन्द्र॑स्य॒ नाधृ॑षे॒ शवः॑ ॥२॥

भाषार्थः—(धृषितः) हारा हुआ शत्रु (धृषाणः=०—णस्य) हराने वाले [इन्द्र] का (शवः) बल (न) नहीं (आधृषे=०—ष्टे) कुछ भी हराता है, (आ) कुछ भी (दधृषते) हराता है। (यथा) क्योंकि (व्यथिः) व्यथा में पड़ा हुआ शत्रु (पुरा) निकट होकर (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष के (श्रवः) यश और (शवः) बल को (न) नहीं (आधृषे) कुछ भी हराता है ॥२॥

भावार्थः—अधर्मी दुष्ट मनुष्य धर्म्मात्मा बलवानों को कदापि नहीं हरा सकते ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥३॥

भाषार्थः—(सः) वह (नः) हमें (उरुम्) विस्तृत (पिशङ्गसंदृशम्, अपने अवयवों को दिखाने वाली (ताम्) उस (रयिम्) लक्ष्मी को (ददातु) देवे। (आ) हां, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (पतिः) पालने वाला और (जनेषु) सब मनुष्यों में (तुविष्टमः) सब से महान् है ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से सब मनुष्य विद्या, सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके आनन्दित रहें ॥३॥

(तुविष्टमः) के स्थान में पद पाठ में (तुवि--तमः) है ॥

सूक्तम् ॥३४॥

१--५ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

शत्रुनाशोपदेशः—शत्रुओं के नाश का उपदेश ॥

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (क्षितीनाम्) पृथिवी आदि लोकों के बीच (वृषभाय) महाबली (अग्नये) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये (वाचम्) वाणी (प्र ईरय) अच्छे प्रकार उच्चारण कर, (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति = अतीत्य) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) पाले ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की स्तुतिपूर्वक पुरुषार्थ करके दरिद्रता आदि दुःखों को हटावें ॥१॥

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) तेज से (रक्षांसि) राक्षसों को (निजूर्वति) मार गिराता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥२॥

भावार्थः—जैसे अग्नि के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होता है, वैसे ही मनुष्य परमेश्वर के ज्ञान से अज्ञान मिटावें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (परस्याः) दूर दिशा के भी (परावतः) दूर स्थान से (धन्व) अन्तरिक्ष को (तिरः = तिरस्कृत्य) पार करके (अतिरोचते) अत्यन्त चमकता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर दूर और समीप सब स्थान में हमारी रक्षा करता है ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जो परमेश्वर (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (अभि) चारों ओर से (विपश्यति) अलग अलग देखता है (च) और (सम् पश्यति) मिले हुए देखता है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर सब लोकों और पदार्थों को व्यस्त और समस्त रूप से देखकर उनकी सुधि रखता है ॥४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जो (शुक्रः) शुद्ध स्वभाव (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (अस्य) इस (रजसः) अन्तरिक्ष के (पारे) पार (अजायत) प्रकट हुआ है। (सः) वह (द्विषः) वैरियों को (अति) उलांघ कर (नः) हमें (पर्षत्) भरपूर करे ॥५॥

भावार्थः—परमेश्वर प्रत्येक स्थान में व्यापक रहकर हमारी रक्षा करता है ॥५॥

सूक्तम् । ३५॥

१—३ ॥ वैश्वानरोऽग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

यशःप्राप्त्युपदेशः—यश की प्राप्ति का उपदेश ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वैश्वानरः) सब नरों का हितकारक परमेश्वर (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (परावतः) दूर वा उत्कृष्ट स्थान से (आ) सन्मुख (प्रयातु) आवे। (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (नः) हमारी (सुष्टुतीः) यथाशास्त्र स्तुतियों को (उप=उपयातु) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—हम सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की महिमा जानकर उसकी स्तुति करते रहें ॥१॥

वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२॥

भाषार्थः—(वैश्वानरः) सब का नायक, (सजूः) प्रीति वाला (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (अंहसु) प्राप्ति योग्य (उक्थेषु) प्रकथनीय गुणों में वर्तमान होकर (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय कर्म को (उप=उपेत्य) प्राप्त करके (नः) हम को (आ अगमत्) प्राप्त हुआ है ॥२॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्तुति गाकर हम सदा पुरुषार्थ करें ॥२॥

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्। एषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥३॥

भाषार्थः—(वैश्वानरः) सब नरों का नायक परमेश्वर (अङ्गिरसाम्) ज्ञानी महर्षियों के (स्तोमम्) स्तुति-योग्य कर्म (च) और (उक्थम्) प्रकथनीय गुण को (चक्लृपत्) समर्थ करे। (एषु) इन [महर्षियों] में (द्युम्नम्) प्रकाशमान यश वा अन्न और (स्वः) अच्छे प्रकार प्राप्तियोग्य सुख (आ) सब ओर से (यमत्) स्थिर रहे ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वर के गुणों को जान कर पुरुषार्थपूर्वक संसार में कीर्ति और आनन्द पाते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥३६॥

१—३ वैश्वानरोऽग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥

भाषार्थः (ऋतवानम्) सत्यमय, (ऋतस्य) धन के और (ज्योतिषः) प्रकाश के (पतिम्) पति (वैश्वानरम्) सब के नायक परमेश्वर से (अजस्रम्) निरन्तर (घर्मम्) प्रकाश को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सत्यमय ज्योतिःस्वरूप परमात्मा से प्रार्थनापूर्वक विद्या का प्रकाश प्राप्त करें ॥१॥

स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत सृजते वशी ।
यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह (विश्वा प्रति) सब लोकों में व्यापकर (चक्लृपे) समर्थ हुआ है, (वशी) वह वश में रखने वाला (यज्ञस्य) पूजनीय व्यवहार के (वयः) बल को (उत्तिरन्) बढ़ाता हुआ (ऋतून्) सब ऋतुओं को (उत्) उत्तमता से (सृजते) बनाता है ॥२॥

भावार्थः—जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा मनुष्य के सुख के लिये उत्तम उत्तम पदार्थ और सब ऋतुएं बनाता है, उसकी स्तुति सदा करनी चाहिये ॥२॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥३॥

भाषार्थः—(कामः) कामना के योग्य, (एकः) एक (सम्राट्) राजाधिराज (अग्निः) सर्वव्यापक परमात्मा (भूतस्य) बीते हुए और (भव्यस्य) होनहार काल के (परेषु) दूर दूर (धामसु) धामों में (वि) विविध प्रकार (राजति) राज करता है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो उस परमात्मा की उपासना करके अपनी उन्नति करो जो अकेला ही इस संसार का स्वामी है ॥३॥

सूक्तम् ॥३७॥

१–३ ॥ शपथो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

कुवचनत्यागोपदेशः—कुवचन के त्याग का उपदेश ॥

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥१॥

भाषार्थः—(सहस्राक्षः) सहस्रों व्यवहार में दृष्टि वाला (शपथः) शांतिपथ बताने वाला (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोत कर (मम) मेरे (शप्तारम्) कुवचन बोलने वाले को (अन्विच्छन्) ढूंढता हुआ (उप) समीप (प्र अगात्) आया है, (इव) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविमतः) भेड़ वाले के (गृहम्) घर में [आता है] ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा बहुदर्शी होकर कुवचनभाषियों को दण्ड देता रहे ।'१।।

परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ।।२।।

भाषार्थः—(शपथ) हे शान्तिमार्ग दिखाने वाले राजन् ! (नः) हमें (परि वृङ्ग्धि) छोड़ दे (इव) जैसे (दहन्) जलता हुआ (अग्निः) अग्नि (ह्रदम्) अथाह झील को [छोड़ जाता है] । (अत्र) यहां पर (नः) हमारे (शप्तारम्) कोसने वाले को (जहि) नाश करदे, (इव) जैसे (दिवः) आकाश से (अशनिः) बिजुली (वृक्षम्) स्वीकरणीय वृक्ष को ।।२।।

भावार्थः—राजा दुष्टों के कलङ्क लगाने से धर्म्मात्माओं की रक्षा करे ।।२।।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ।।३ ।

भाषार्थः—(यः) जो (अशपतः) न शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे । (च) और (यः) जो (शपतः) शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे । (अवक्षामम् तम्) उस निर्बल को (मृत्यवे) मृत्यु के सामने (प्रति अस्यामि) मैं फैंके देता हूं (इव) जैसे (पेष्ट्रम्) रोटी का टुकड़ा (शुने) कुत्ते के सामने ।।३।।

भावार्थः—जो अधर्मी धर्म्मात्माओं में दोष लगावे राजा उसको यथ चित दण्ड देवे ।।३।।

सूक्तम् ।।३८।।

१–४ ।। त्विषिर्देवता ।। त्रिष्टुप् छन्दः ।।

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य पाने के लिये उपदेश ।।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ।।१।।

भाषार्थः—(या) जो (त्विषिः) ज्योति (सिंहे) सिंह में, (व्याघ्रे) बाघ में (उत) और (पृदाकौ) फुंसकारते हुए सांप में, और (या) जो (अग्नौ) अग्नि में,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब्राह्मणे) वेदवेत्ता पुरुष में और (सूर्ये) सूर्य में है। (या) जिस (देवी) दिव्य गुण-वाली, (सुभगा) बड़े ऐश्वर्यवाली [ज्योति] ने (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (जजान) उत्पन्न किया है, (सा) वह (वर्चसा) अन्न से (संविदाना) मिलती हुई (नः) हमें (आ, आकर (एतु) मिले ॥१॥

भावार्थः -मनुष्य संसार के सब बलवान् तेजस्वी पदार्थों में संयम करके ऐश्वर्य और पराक्रम प्राप्त करे ॥१॥

यही भावार्थ अगले मन्त्रों में भी समझो ॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥२॥

भाषार्थः—(या) जो (त्विषिः) ज्योति (हस्तिनि) हाथी में, (द्वीपिनि) चीते में, (या) जो (हिरण्ये) सुवर्ण में, और (या) जो (अप्सु) जल में (गोषु) गौ आदिकों में और (पुरुषेषु) पुरुषों में है। (या) जिस···१ ॥२॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥३॥

भाषार्थः—(रथे) रथ में, (अक्षेषु) पहियों में, (ऋषभस्य) बैल के (वाजे) बल में (वाते) पवन में, (पर्जन्ये) मेघ में, और (वरुणस्य) सूर्य के (शुष्मे) सुखाने वाले सामर्थ्य में [जो ज्योति है] । (या) जिस···म० १ ॥३॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४॥

भाषार्थः—(राजन्ये) क्षत्रिय में, (आयतायाम्) फैली हुई (दुन्दुभौ) दुन्दुभी में, (अश्वस्य) घोड़े के (वाजे) बल में, (पुरुषस्य) मनुष्य के (मायौ) पित्त वा शब्द में [जो ज्योति है] (या) जिस ··१ ॥४॥

सूक्तम् ॥३९॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ जगती; २ त्रिष्टुप् ३ अनुष्टुप् ॥

यशःप्राप्त्युपदेशः—यश पाने का उपदेश ॥

यशो हविर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसस्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्रजूतम्) परमेश्वर का भेजा हुआ (सहस्रवीर्यम्) सहस्रों सामर्थ्यवाला (सुभूतम्) अच्छे प्रकार भरा गया (सहस्कृतम्) पराक्रम से किया गया (यशः) यश और (हविः) अन्न (वर्धताम्) बढ़े। [हे परमेश्वर!] (दीर्घाय) बड़े और (त्र्येष्ठतातये) अत्यन्त प्रशंसनीय (चक्षसे) दर्शन के लिये (प्रसर्त्राणम्) आगे बढ़ने वाले और (हविष्मन्तम्) भक्तिवाले (मा) मुझको (अनु) निरन्तर (वर्धय) तू बढ़ा ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना करके पुरुषार्थपूर्वक संसार में कीर्ति और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करें ॥१॥

अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२॥

भाषार्थः—(यशसम्) यशस्वी, (यशोभिः) अपनी व्याप्तियों से (यशस्विनम्) बड़े कीर्ति वाले (इन्द्रम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले परमेश्वर को (नमसाना) नमस्कार करते हुए हम (नः) अपने लिए (अच्छ) अच्छे प्रकार (विधेम) पूजें। (सः) वह तू (इन्द्रजूतम्) तुझ परमेश्वर से भेजा हुआ (राष्ट्रम्) राज्य (नः) हमें (रास्व) दे, (तस्य ते) उस तेरे (रातौ) दान में हम लोग (यशसा) यशस्वी (स्याम) होवें ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना और उपासना करके पुरुषार्थ करते हैं वे संसार में कीर्ति पाते हैं ॥२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) सूर्य (यशाः) यश वाला, (अग्निः) अग्नि (यशाः) यश वाला, और (सोमः) चन्द्रमा (यशाः) यश वाला (अजायत) हुआ है। (यशाः) यश चाहने वाला (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब (भूतस्य) संसार के बीच (यशस्तमः) अतियशस्वी (अस्मि) हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर महायशस्वी होवे ॥३॥

सूक्तम् ॥४०॥

१–३ ॥ सविता ॥ देवता १, २ जगती, ३ अनुष्टुप् ॥

शत्रुभ्यो रक्षणोपदेशः—शत्रुओं से रक्षा के लिये उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) हे सूर्य और पृथिवी ! (इह) यहां पर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (सोमः) बड़े ऐश्वर्य वाला (सविता) सबका उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे। (उरु) बड़ा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे, (च) और (सप्तऋषीणाम्) सात व्यापनशीलों वा दर्शनशीलों के [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आँख, और मुख इन सात छिद्रों के] (हविषा) ठीक ठीक दान और ग्रहण से (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करे कि संसार के सब पदार्थ और अपने शरीर के सब अवयव यथावत् उपकार करके शान्तिप्रद होवें ॥१॥

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।
अशत्रिरिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२॥

भाषार्थः—(सविता) सबका चलाने वाला परमेश्वर (अस्मै) इस (ग्रामाय) गांव के लिये और (नः) हमारे लिये (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं में (ऊर्जम्) पराक्रम, (सुभूतम्) बहुत धन और (स्वस्ति) कल्याण (कृणोतु) करे। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला परमात्मा (नः) हमारे लिये (अशत्रु) निर्वैर (अभयम्) अभय (कृणोतु) करे, (राज्ञाम्) राजाओं का (मन्युः) क्रोध (अन्यत्र) औरों पर (अभि यातु) चला जावे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य धर्मपूर्वक उत्तम उत्तम पदार्थ प्राप्त करके शान्त-चित्त रहें और ऐसे शुभ कर्म करें जिससे राजपुरुष उनसे सदा प्रसन्न रहें ॥२॥

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे महाप्रतापी परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (अधरात्) नीचे से (अनमित्रम्) निर्वैरता, (नः) हमारे लिये (उत्तरात्) ऊपर से (अनमित्रम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वैरता, (नः) हमारे लिये (पश्चात्) पीछे से (अनमित्रम्) निर्वैरता और (पुरः) आगे से (अनमित्रम्) निर्वैरता (कृधि) तू कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सब स्थान और सब काल में शान्तिदायक कर्म करें ॥३॥

सूक्तम् ॥४१॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः - आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१॥

भाषार्थः—(मनसे) उत्तम मनन साधन मन के लिये, (चेतसे) ज्ञान के साधन चित्त के लिये, (धिये) धारणावती बुद्धि के लिये, (आकूतये) अच्छे सङ्कल्प वा उत्साह के लिये (उत) और (चित्तये) स्मृति के हेतु विवेक के लिये, (मत्यै) समझ के लिये, (श्रुताय) श्रवण के लिये और (चक्षसे) दर्शन के लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) भक्ति से [परमेश्वर को] (विधेम) पूजें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वरज्ञान द्वारा आत्मिक शक्तियों को बढ़ा कर सदा पुरुषार्थ करें ॥१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२॥

भाषार्थः—(अपानाय) बाहिर निकलने वाले अपानवायु के लिये, (व्यानाय) शरीर में व्यापक व्यान वायु के लिये, (भूरिधायसे) अनेक प्रकार से धारण करने वाले (प्राणाय) जीवन वायु प्राण के लिये और (उरुव्यचे) दूर दूर तक फैलने वाले (सरस्वत्यै) विज्ञानवती सरस्वती (विद्या) के लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) भक्ति से [परमेश्वर को] (विधेम) पूजें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को आत्मसमर्पण करके आत्मा और शरीर से स्वस्थ रहकर अनेक प्रकार से विज्ञान प्राप्त करें ॥२॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (दैव्याः) दिव्यगुण वाले (ऋषयः) व्यापनशील वा दर्शनशील [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि, अथवा दो कान, दो नथने, दो आंख और मुख] (नः) हमें (मा हासिषुः) न त्यागें, (ये) जो (तनूपाः) शरीर की रक्षा करने हारे और (ये) जो (नः) हमारे (तन्वः) शरीर के (तनूजाः) विस्तार के साथ उत्पन्न हुए हैं। (अमर्त्याः) हे अमर ! [नित्य उत्साहियो] (मर्त्यान्) मरते हुए [निरुत्साही] मनुष्यों के हित करने वाले (नः) हम से (अभि) सब ओर से (सचध्वम्) मिले रहो, और (नः) हमें (प्रतरम्) अधिक श्रेष्ठ (आयुः) आयु (जीवसे) जीवन के लिये (धत्त) दान करो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य, योगाभ्यास, विद्याप्राप्ति आदि कर्मों से हृष्ट पुष्ट रह कर संसार का उपकार करके कीर्ति पावें ॥३॥

यह मन्त्र स्वामी दयानन्द कृत "संस्कार विधि, जातकर्म" में आशीर्वाद का है ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥४२॥

१—३ ॥ मन्युर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

क्रोधशान्त्युपदेशः— क्रोध की शान्ति के लिये उपदेश ॥

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे (हृदः) हृदय से (मन्युम्) क्रोध को (अव तनोमि) मैं उतारता हूं, (इव) जैसे (धन्वनः) धनुष से (ज्याम्) डोरी को। (यथा) जिस से (संमनसौ) एकमन (भूत्वा) होकर (सखायौ इव) दो मित्रों के समान (सचावहै) हम दोनों मिले रहें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्यों को ईर्ष्या द्वेष छोड़कर सदा मित्र होकर रहना चाहिय ॥१॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२॥

भाषार्थः—(सखायौ इव) दो मित्रों के समान (सचावहै) हम दोनों मिले रहें, (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को (अव तनोमि) मैं उतारता हूँ। (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को (अश्मनः) उस पत्थर के (अधः) नीचे (उप अस्यामसि) दबाकर हम गिराते हैं (यः) जो (गुरुः) भारी [पत्थर] है ॥२॥

भावार्थः— मनुष्य क्रोध छोड़कर परस्पर प्रीति से रहें ॥२॥

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पाष्ण्र्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य ! (ते) तेरे (मन्युम्) क्रोध को [तेरी] (पाष्ण्र्या) एड़ी से (च) और (प्रपदेन) ठोकर से (अभि तिष्ठामि) मैं दबाता हूं। (यथा) जिस से (अवशः) परवश (न=न भूत्वा) न होकर (वादिषः) तू बातचीत करे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में (अप-आयसि) तू पहुंच करता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य क्रोधवश न होकर परस्पर शान्तचित्त रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥४३॥

१—३ ॥ दर्भो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

क्रोधशमनोपदेशः—क्रोध की शान्ति के लिये उपदेश ॥

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (दर्भः) दर्भ अर्थात् दुःख नाश करने वाला वा सुकर्म गूथने वाला पुरुष (स्वाय) अपने समुदाय के लिये (च च) और (अरणाय) प्राप्ति योग्य शूद्र अन्त्यज आदि के लिये (विमन्युकः) क्रोध हटाने वाला है। (अयम्) यह (मन्योः) क्रोधी का (विमन्युकः) क्रोध दूर करने वाला और (मन्युशमनः) क्रोध शान्त करने वाला (उच्यते) कहा जाता है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि बड़े और छोटों से शान्तचित्त होकर बर्ताव करें ॥१॥

(दर्भ) अर्थात् कुश घास औषध विशेष भी है जो वात पित्त कफ त्रिदोष आदि रोग नाश करता है ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥२॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (यः) जो (भूरिमूलाः) बहुत प्रतिष्ठा वाला होकर (समुद्रम्) अन्तरिक्ष लोक तक (अवतिष्ठति) फैलता है। (दर्भः) वह दर्भ सुकर्मों का गूथने वाला पुरुष (पृथिव्याः) पृथिवी से (उत्थितः) उठकर (मन्युशमनः) क्रोध शान्त करने वाला (उच्यते) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विवेक द्वारा प्रतिष्ठित होकर अन्तरिक्ष आदि लोक तक अधिकार जमाता है, वह संसार में यशस्वी और शान्तचित्त माना जाता है ॥२॥

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

भाषार्थः- [हे मनुष्य !] (ते) तेरे (हनव्याम्) ठोड़ी में वर्त्तमान और (ते) तेरे (मुख्याम्) मुख पर वर्त्तमान (शरणिम्) हिंसा के चिह्न को (वि वि नयामसि) सर्वथा हम हटाते हैं। (यथा) जिससे (अवशः) परवश (न=न भूत्वा) न होकर (वादिषः) तू वातचीत करे, (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में (उप आयसि) तू पहुंच करता है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शरीर के सब अङ्गों से सुचेष्टा करके सब का प्रिय रहे ॥३॥

सूक्तम् ॥४४॥

१—३ ॥ मनुष्यो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३ बृहती ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग के नाश के लिये उपदेश ॥

अस्याद् द्यौरस्यात् पृथिव्यस्याद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्युर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(द्यौः) सूर्य लोक (अस्थात्) ठहरा है, (पृथिवी) पृथिवी (अस्थात्) ठहरी है, (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (अस्थात्) ठहरा है। (ऊर्ध्वस्वप्नाः) ऊपर को मुख करके सोने वाले (वृक्षाः) वृक्ष (अस्थुः) ठहरे हुए हैं, [ऐसे ही] (तव) तेरा (अयम्) यह (रोगः) रोग (तिष्ठात्) ठहर जावे [और न बढ़े] ॥१॥

भावार्थः—जैसे संसार के सब लोक परस्पर धारण और आकर्षण द्वारा अपनी अपनी कक्षा और परिधि में स्थित हैं, वैसे ही मनुष्य अपने दोषों को नियम में रक्खे ॥१॥

शतं वा भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (वा) जो (शतम्) सौ (च) और (सहस्रम्) सहस्र (भेषजानि) ओषधियां (संगतानि) परस्पर मेल वाली हैं, [उनमें से] (वसिष्ठम्) अतिशय धनी वा निवास करने वाला ब्रह्म (श्रेष्ठम्) अति श्रेष्ठ (आस्रावभेषजम्) रुधिर के बहाव वा घाव की औषध और (रोगनाशनम्) रोगों का नाश करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—योगीजन सब पदार्थों से गुण ग्रहण करके उस परब्रह्म की आज्ञा पालन से सदा स्वस्थ और सुखी रहते हैं ॥२॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः । विषाणका नाम वा
असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥३॥

भाषार्थः—[हे पुरुष] (रुद्रस्य) रुलाने वाले भीषण क्लेश का (मूत्रम्) छुड़ाने वा बन्ध करने वाला बल और (अमृतस्य) अमरपन वा मुक्ति का (नाभिः) मध्यस्थ (असि) तू है। (विषाणका) विविध भक्ति का उपदेश करने वाली (नाम) प्रसिद्ध (पितॄणाम्) पालन करने वालें गुणों के (मूलात्) मूल से [आदि कारण परमेश्वर से] (उत्थिता) प्रकट हुई और (वातीकृतनाशनी) हिंसाकर्म की नाश करने वाली शक्ति (वै) निश्चय करके (असि) तू है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनेक क्लेशों को सहते हैं और परमेश्वर का विश्वास करते हैं, वे ही सब प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं ॥३॥

विषाणा और विषाणिका ओषधि विशेष भी हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥४५॥

१—३ ॥ अग्निरिन्द्रो वा देवता ॥ १ पथ्या पङ्क्तिः; २ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् ॥

मानसिकपापनाशोपदेशः—मानसिक पाप के नाश का उपदेश ॥

परोऽपेहि मनस्पाप किमशंस्तानि शंससि । परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥१॥

भाषार्थः—(मनस्पाप) हे मानसिक पाप ! (परः) दूर (अप इहि) हट जा, (किम्) क्या (अशस्तानि) बुरी बातें (शंससि) तू बताता है । (परा इहि) दूर चला जा, (त्वा) तुझको (न कामये) मैं नहीं चाहता, (वृक्षान्) वृक्षों और (वनानि) वनों में (सम् चर) फिरता रह, (गृहेषु) घरों में और (गोषु) गौ आदि पशुओं में (मे) मेरा (मनः) मन है ॥१॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि वनचर डाकू आदमियों के समान दुष्कर्मों में अपना मन न लगावें, किन्तु सत्य व्यवहारी होकर परस्पर रक्षा करें ॥१॥

अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः । अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥२॥

भाषार्थः (यत्) जो पाप (अवशसा) विश्वासघात से (निःशसा) घृणा से, और (पराशसा) अपवाद से, अथवा (यत्) जो पाप (जाग्रतः) जागते हुए वा (स्वपन्तः) सोते हुए (उपारिम) हम ने किया है । (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (विश्वानि) सब (अजुष्टानि) अप्रिय (दुष्कृतानि) दुष्कर्मों को (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (अप दधातु) हटा रक्खे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परमेश्वर का भय मानकर कभी कोई दुष्कर्म न करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१० । १६४ । ३ ॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ॥३॥

भाषार्थः - (ब्रह्मणस्पते) हे बड़े बड़े लोकों के स्वामी (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले जगदीश्वर ! (यत् अपि) जो कुछ भी पाप (मृषा) असत्य व्यवहार से (चरा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसि) हम करें। (आङ्गिरसः) ज्ञानियों का हितकारी (प्रचेताः) बड़ी बुद्धि वाला परमात्मा (नः) हमें (दुरितात्) दुर्गति और (अंहसः) पाप से (पातु) बचावे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य न्यायकारी परमात्मा का ध्यान रखते हैं, वे पापों से बचकर सुखी रहते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥४६॥

१—३ ॥ स्वप्नो देवता ॥ १ बृहती; २ विद्म त इत्यनुष्टुप्, तं त्वेति बृहती; ३ अनुष्टुप् ॥

स्वप्नगुणोपदेशः—स्वप्न के गुणों का उपदेश ॥

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न।
वरुणानी ते माता यमः पितारुर्नामासि ॥१॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न! (यः) जो तू। (न) न तो (जीवः) जीवित और (न) न (मृतः) मृतक (असि) है, [परन्तु] (देवानाम्) इन्द्रियों के (अमृतगर्भ.) अमरपन का आधार (असि) तू है। (वरुणानी) वरुण अर्थात् ढकने वाले अन्धकार की शक्ति, रात्रि (ते) तेरी (माता) माता और (यमः) नियम में चलाने वाला सूर्य (पिता) पिता है, और तू (अरुः) हिंसक (नाम) नाम (असि) है ॥१॥

भावार्थः—स्वप्न अवस्था में शरीर के कुछ अङ्ग चेष्टा करते रहते हैं और कुछ चेष्टा विना हो जाते हैं, इससे स्वप्न जीवन और मरण के बीच में है। स्वप्न इन्द्रियों को सुख देता है अर्थात् दिन में परिश्रम करने वालों को रात्रि में सोने से सुख मिलता है परन्तु नियम विरुद्ध सोने से आयु घटती है ॥१॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥२॥

भाषार्थः—(स्वप्न) हे स्वप्न (ते) तेरे (जनित्रम्) जन्म स्थान को (विद्म) हम जानते हैं, तू (देवजामीनाम्) इन्द्रियों की गतियों का (पुत्रः) शुद्ध करने वाला और (यमस्य) नियम का (करणः) बनाने वाला (असि) है। तू (अन्तकः) अन्त करने वाला (असि) है, और तू (मृत्युः) मरण करने वाला (असि) है। (स्वप्न) हे स्वप्न! (तम्) उस (त्वा) तुझको (तथा) वैसा ही (सम्) अच्छे प्रकार (विद्म)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जानते हैं, (सः) सो तू (स्वप्न) हे स्वप्न ! (नः) हमें (दुःस्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे कुविचार से (पाहि) बचा ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सदा धर्म कर्म में लगे रहते हैं उनके हृदय में सोते समय भी कुविचार नहीं आते ॥२॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(यथा यथा) जैसे जैसे (कलाम्) सोलहवां अंश और (यथा) जैसे (शफम्) आठवां अंश [देकर] (ऋणम्) ऋण को (संनमयन्ति) लोग चुकाते हैं। (एव) वैसे ही (सर्वम्) सब (दु स्वप्न्यम्) नींद में उठे बुरे विचार को (द्विषते) वैरी के लिये (सम् नयामसि) हम यथावत् छोड़ते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य अपने आय का सोलहवां वा आठवां अंश देकर ऋण चुकाते हैं वैसे ही स्वप्न के कुविचारों को वैरी पर छोड़ते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥४७॥

१--३ ॥ १ अग्निः; २, ३ विश्वे देवा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः— आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१॥

भाषार्थः—(वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी, (विश्वकृत्) जगत् का बनाने वाला, (विश्वशंभूः) संसार को सुख पहुंचाने वाला (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (प्रातः सवने) प्रातःकाल के यज्ञ में (अस्मान्) हमारी (पातु) रक्षा करे। (सः) वह (पावकः) शुद्ध करने वाला जगदीश्वर (नः) हमको (द्रविणे) धन के बीच (दधातु) रक्खे, (आयुष्मन्तः) उत्तम आयु वाले और (सहभक्षाः) साथ साथ भोजन करने वाले (स्याम) हम रहें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के महान् उपकारों को देखकर पुरुषार्थ करके धन प्राप्त करें और परस्पर सहायक होकर सुख भोगें ॥१॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्वुः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण, (मरुतः) विद्वान् लोग और (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (अस्मात्) हमको (अस्मिन्) इस (द्वितीये) दूसरे (सवने) यज्ञ में (न) नहीं (जह्रुः=जहतु) त्याग करें (आयुष्मन्तः) उत्तम जीवन रखने वाले, (प्रियम्) प्रिय (वदन्तः) बोलते हुए (वयम्) हम लोग (एषाम्) इन (देवानाम्) उत्तम गुणों की (सुमतौ) सुमति में (स्याम्) रहें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर आदि सब उत्तम पदार्थों का विचार करके उत्तम बुद्धि प्राप्त करें ॥२॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिनो अभि वस्यो नयन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(ये) जिन [महात्माओं] ने (कवीनाम्) बुद्धिमानों के (ऋतेन) सत्य से (इदम्) इस (तृतीयम्) तीसरे (सवनम्) यज्ञ में (चमसम्) अन्न (ऐरयन्त) प्राप्त कराया है। (ते) वे (स्वः) सुख (आनशानाः) भोगते हुए (सौधन्वानाः) अच्छे अच्छे धनुष् वा विज्ञान वाले पुरुष (नः) हमारे (स्विष्टिम्) अच्छे यज्ञ को (वस्यः अभि) उत्तम फल की ओर (नयन्तु) ले चलें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परोपकारी पूर्वज महाशयों से उत्तम धनुर्वेद विद्या और शास्त्र विद्या प्राप्त करके उत्तम फल भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥४८॥

१ ३ ॥ आत्मा देवता ॥ पुरउष्णिक् छन्दः ॥

परमात्मगुणोपदेशः—परमात्मा के गुणों का उपदेश ॥

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—तू (गायत्रच्छन्दाः) गाने योग्य आनन्द कर्मों वाला (श्येनः) महाज्ञानी परमात्मा (असि) है, (त्वा) तुझ को (अनु) निरन्तर (आ रभे) मैं ग्रहण करता हूं। (मा) मुझ को (अस्य) इस (यज्ञस्य) पूजनीय कर्म को (उदृचि) उत्तम स्तुति में (स्वस्ति) आनन्द से (सम्) यथावत् (वह) ले चल, (स्वाहा) यह आशीर्वाद हो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव जान कर पुरुषार्थ करते हैं, वे ही उत्तम कर्मों को समाप्त करके कीर्ति और आनन्द पाते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋभुरसि जगच्छन्दा अनुत्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः - तू (जगच्छन्दाः) जगत् में स्वतन्त्र (ऋभुः) मेधावी परमात्मा (असि) है, (त्वा) तुझ को···म० । १ ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र एक के समान ॥२॥

वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

भाषार्थः—तू (त्रिष्टुप्छन्दाः) तीनों [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] ताप छोड़ाने में समर्थ (वृषा) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (असि) है, (त्वा) तुझको···म० । १ ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र एक के समान ॥३॥

सूक्तम् ॥४९॥

१—३ अग्निर्देवता ॥ १ अनुष्टुप्, २ जगती, ३ त्रिष्टुप् ॥

प्रलयसृष्टि विद्योपदेशः—प्रलय और सृष्टि विद्या का उपदेश ॥

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥

भाषार्थः – (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (मर्त्यः) मनुष्य ने (ते) तेरे (तन्वः) स्वरूप की (क्रूरम्) क्रूरता को (नहि) नहीं (आनंश) पाया है। (कपिः) कपाने वाले आप (तेजनम्) प्रकाशमान सूर्य मण्डल को (बभस्ति) खा जाते हैं (इव) जैसे (गौः) गौ (स्वम्) अपनी (जरायु) जरायु को [खा लेती है] ॥१॥

भावार्थः मनुष्य परमेश्वर की अनन्त शक्ति को नहीं जान सकता है। परमेश्वर ही इस संसार को बना कर फिर अपने में प्रविष्ट कर लेता है जैसे गौ बच्चा उत्पन्न होने के पीछे अपने पेट से निकली झिल्ली को आप निगल जाती है ॥१॥

मेष इव वै सं च वि चोर्व्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे अग्ने परमात्मन्] (मेषः इव) मेढ़ा के समान तू (वै) निश्चय करके (सम् अच्यसे) सिमट जाता है (च च) और (उरु) बहुत (वि=वि अच्यसे) फैल जाता है, (यत्) जब कि (उत्तरद्भौ) ऊंची शाखा पर (खादतः=खादन्) खाता हुआ तू (च) निश्चय करके (उपरः) ठहरने वाला होता है। (शीर्ष्णा) शिर से (शिरः) शिर को, और (अप्ससा) रूप से (अप्सः) रूप को (अर्दयन्) दबाते हुए आप (हरितेभिः) हरण शील (आसभिः) गिराने के सामर्थ्यों से (अंशून्) सूर्य आदि लोकों को (बभस्ति) खा जाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जैसे भेड़ बकरी सिमट कर और फैल कर पेड़ों की पत्ती खा जाती हैं, वैसे ही परमात्मा सृष्टि और प्रलय करके सब से ऊपर विराजमान रहता है। वही सब पदार्थों को आपस में टकराकर परमाणुओं की अवस्था में करता है ॥२॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप्यव्यांखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरूरेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३॥

भाषार्थः—(सूर्यश्रितः) सूर्य में ठहरी हुई (सुपर्णाः) अच्छे प्रकार पालन करने वाली वा बड़ी शीघ्रगामी किरणों ने (आखरे) खनन योग्य (द्यवि) अन्तरिक्ष में (उप=उपेत्य) मिलकर (वाचम्) शब्द (अक्रत) किया, और (कृष्णाः) रस खैंचने वाली (इषिराः) चलने वाली [उन किरणों] ने (अनर्तिषुः) नृत्य किया। (यत्) जब वे (उपरस्य) मेघ की (निष्कृतिम्) रचना की ओर (नि) नियम से (नियन्ति) झुकती हैं, [तब] उन्होंने (पुरु) बहुत (रेतः) वृष्टि जल (दधिरे) धारण किया है ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर की महिमा से सूर्य की किरणें विशाल आकाश में शब्द करके पार्थिव रस को खींच कर इधर उधर चेष्टा करती हैं। उससे मेघ, मेघ से वृष्टि होकर संसार का उपकार करती है। इसी प्रकार प्रलय के पीछे सृष्टि और सृष्टि के पीछे प्रलय होती है ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । सू० ९४ म० ५ ॥

सूक्तम् ॥५०॥

१ ३ ॥ अश्विनौ देवते ॥ १ जगती, २, ३ पथ्या पङ्क्तिः ॥

आत्मदोषनिवारणोपदेशः—आत्मा के दोष निवारण का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥१॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे कामों में व्याप्त रहने वाले स्त्री पुरुषो ! (तर्दम्) हिंसा करने वाले कौवे आदि को, (समङ्कम्) पृथिवी में अङ्क करने वाले शूकर आदि को, और (आखुम्) कुतरने वाले चूहे आदि को (हतम्) तुम मारो, (शिरः) उनका शिर (छिन्तम्) काटो और (पृष्टीः) पसलियां (अपि) भी (शृणीतम्) तोड़ो । वे (यवान्) जवादि अन्नों को (न इत्) कभी न (अदान्) खावें, (मुखम्) उनका मुख (अपि) भी (नह्यतम्) तुम बांधो, (अथ) और (धान्याय) धान्य के लिये (अभयम्) अभय (कृणुतम्) करो ॥१॥

भावार्थः—जैसे किसान लोग हानिकारक पक्षी पशु आदि से खेती की रक्षा करके धान्य प्राप्त करते हैं वैसे ही विद्वान् स्त्री पुरुष काम क्रोध आदि शत्रुओं से अपनी रक्षा करके सुख भोगें ॥१॥

तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस । ब्रह्मेवासंस्थितं
हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥२॥

भाषार्थः—(है) हे (तर्द) हिंसक काक आदि ! (है) हे (पतङ्ग) फुदकने वाले टिड्डी आदि । (है) हे (जभ्य) वधयोग्य (उपक्वस) भूमि पर रेंगने वाले कीड़े ! (ब्रह्मा इव) विद्वान् पुरुष ब्रह्मा के समान (असंस्थितम्) विना संस्कार किये हुए (हविः) अन्न को, (इमाम्) इन (यवान्) यव आदि अन्न को (अनदन्तः) न खाते हुए और (अहिंसन्तः) न तोड़ते हुए (अपोदित) उड़ जाओ ॥२॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् पुरुष कुपथ्य अन्न को छोड़कर चला जाता है, इसी प्रकार हिंसक पशु आदि जवादि अन्नों के खेतों को छोड़कर चले जावें ॥२॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे । य आरण्या
व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(तर्दपते) हे हिंसकों के स्वामी ! (वघापते) हे टिड्डी आदिकों के स्वामी ! (तृष्टजम्भाः) हे प्यासे मुखवाले कीड़ो ! (मे) मेरी (आ) अच्छे प्रकार (शृणोत) सुनो । (ये) जो तुम (आरण्याः) जंगली और (व्यद्वराः) विविध प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने वाले (च) और (ये) (के) जो कोई दूसरे जन्तु (व्यद्वराः) भख लेने वाले (स्थ) हो, (तान्) उन तुम (सर्वान्) सब को (जम्भयामसि) हम नाश करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य छोटे बड़े हिंसक जन्तुओं को मार हटाते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग अपने दोषों को हटावें ॥३॥

सूक्तम् ॥५१॥

१—३ । १ सोमः, २ आपः, ३ वरुणो देवता ।। १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।।

द्रोहनाशोपदेशः—द्रोह के नाश का उपदेश ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा । १॥

भाषार्थः—(वायोः) सर्वव्यापक परमेश्वर के [बताये हुए] (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पूतः) शुद्ध किया हुआ, (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष पूजनीय, (अति) अति (द्रुतः) शीघ्रगामी (सोमः) ऐश्वर्यवान् वा अच्छे गुण वाला पुरुष (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) योगी (सखा) सखा होता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वेदविहित कर्मों को अतिशीघ्र करके परमेश्वर के मित्र बन के सदा सुखी रहें ॥१॥

(वायु) शब्द परमेश्वर वाचक है—देखो [तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः] यजुः० ३२। १ । ब्रह्म [वायुः] सर्वव्यापक और ब्रह्म ही आनन्ददाता है ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० १ । ३१ ॥

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥

भाषार्थः—(मातरः) माता के समान पालन करने वाले (आपः) जल (अस्मान्) हम को (सूदयन्तु) सींचें, (घृतप्वः) घृतको पवित्र करने वाले [जल] (घृतेन) घृत से (नः) हमको (पुनन्तु) पवित्र करें। (देवीः) दिव्यगुणयुक्त जल (विश्वम्) सब (हि) ही (रिप्रम्) मल को (प्रवहन्ति) बहा देते हैं, (आभ्यः) इन जलों से (इत्) ही (शुचिः) शुद्ध और (आ पूतः) सर्वथा पवित्र होकर (उत् एमि) मैं ऊंचा चलता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जैसे जल अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करके मलों को शुद्ध करके और अनेक शिल्पों में प्रयुक्त होकर उपकारी होते हैं, वैसे ही मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या आदि शुभ गुण प्राप्त करके परस्पर उपकार करके उदय को प्राप्त हों ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ४ । २ ॥

यत् किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३ श्चरन्ति । अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३॥

भाषार्थः - (वरुण) हे अति उत्तम परमेश्वर ! (मनुष्याः) मनुष्य (इदम्) यह (यत् किम् च) जो कुछ भी (अभिद्रोहम्) अपकार (दैव्ये) विद्वानों के बीच विद्वान् (जने) मनुष्य पर (चरन्ति) करते हैं । (च) और (इत्) भी (अचित्त्या) अचेतनपन से (तव) तेरे (धर्म्मा) धर्म को (युयोपिम) हमने तोड़ा है. (देव) हे प्रकाशमय परमात्मन्! (नः) हमें (तस्मात्) उस (एनसः) पाप से (मा रीरिषः) मत नष्ट कर ॥३॥

भावार्थः—यदि मनुष्य अज्ञान से कोई पाप कर्म करें तो वे दण्ड रूप प्रायश्चित्त, अनुताप आदि करके धर्म आचरण में सदा प्रवृत्त रहें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ७ । ८९ । ५ ।

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५२॥

१ - ३ ॥ सूर्य्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

आत्मदोषनाशोपदेशः—आत्मा के दोष के नाश का उपदेश ॥

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा । १॥

भाषार्थः (आदित्यः) सब ओर प्रकाश वाला, (विश्वदृष्टः) सबों करके देखा गया और (अदृष्टहा) न दीखते हुये पदार्थों में गति वाला (सूर्यः) सूर्य (दिवः) अन्तरिक्ष के बीच (रक्षांसि) राक्षसों [अन्धकार आदि उपद्रवों] को (निजूर्वन्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा नाश करता हुआ (पर्वतेभ्यः) मेघों वा पहाड़ों से (पुरः) सन्मुख (उत् एति) उदय होता है ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्धकार हटा कर प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् लोग अविद्या मिटा कर विद्या का प्रकाश करते हैं ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १ । १६१ । ८, ६ ॥

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यू ३ मर्यो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥२॥

भाषार्थः—(गावः) किरणें (गोष्ठे) किरणों के स्थान, अन्तरिक्ष में (नि) पैठ कर (असदन्) ठहरी हैं, (मृगासः) खोजने वाले पुरुषों ने (नि अविक्षत) [अपने कामों में] प्रवेश किया है । (नदीनाम्) स्तुति करने वाली प्रजाओं की (ऊर्मयः) गति क्रियाओं ने (अदृष्टाः) न दीखती हुई पंक्तियों को (नि नि) अति निश्चय करके (अलिप्सत) पाने की इच्छा की है ॥२॥

भावार्थः—सूर्य के चमकने पर सब मनुष्य आदि प्राणी परमेश्वर की स्तुति करते हुए अभीष्ट पदार्थों को खोज कर अपने २ कर्तव्य कर्म करते हैं ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १ । १६१ । ४ ।

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥३ ।

भाषार्थः (कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष की (आयुर्ददम्) जीवन देने वाली, (विपश्चितम्) भले प्रकार चेताने वाली, (श्रुताम्, प्रसिद्ध, (वीरुधम्) विविध प्रकार प्रकट होने वाली, (विश्वभेषजीम्) संसार का भय जीतने वाली वेद विद्या को (आ अभारिषम्) मैंने पाया है, वह (अस्य) इस पुरुष के (अदृष्टान्) न दीखते हुए दोषों को (नि शमयत्) शान्त कर देवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सर्व सुख दायक वेद विद्या द्वारा अपने सब कुसंस्कारों का नाश करके आनन्द भोगें ।३॥

सूक्तम् ॥५३॥

१—३ ॥ १ विश्वेदेवाः; २ अग्निः, ३ त्वष्टा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ स्वास्थ्यरक्षणोपदेशः—स्वास्थ्य की रक्षा का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यौश्च॑ म इ॒दं पृ॑थि॒वी च॒ प्रचे॑तसौ शु॒क्रो बृ॒हन् द॑क्षि॒णया॑ पिपर्तु ।
अनु॑ स्व॒धा चि॑कि॒तां सोमो॑ अ॒ग्निर्वा॒युर्नः॑ पा॒तु स॑वि॒ता भग॑श्च ।१॥

भाषार्थः—(प्रचेतसौ) उत्तम ज्ञान देने वाले (द्यौः) आकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी (च) और (बृहन्) बड़ा (शुक्रः) प्रकाशमान सूर्य (मे) मेरे लिये (इदम्) इस घर को (दक्षिणया) दक्षिणा [दान वा प्रतिष्ठा] से (पिपर्तु) भरपूर करे। (सोमः) चन्द्रमा और (अग्निः) अग्नि (अनु) अनुग्रह करके (स्वधा) अन्न को (चिकिताम्) जतावे, (वायुः) वायु (च) और (सविता) सबका उत्पन्न करने हारा (भगः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर रचित पदार्थों से यथावत् उपकार लेकर सदा सुखी रहें ॥१॥

पुनः॑ प्रा॒णः पुन॑रा॒त्मा न॒ ऐतु॒ पुन॒श्चक्षुः॒ पुन॑रसु॒र्न ऐतु॑ ।
वै॒श्वा॒न॒रो नो॑ अदब्धस्त॒नूपा अ॒न्तस्ति॑ष्ठाति दुरि॒तानि॑ वि॒श्वा ॥२॥

भाषार्थः—(पुनः) वार वार (प्राणः) प्राण, (पुनः) वार वार (आत्मा) आत्मबल (नः) हमें (ऐतु) प्राप्त हो, (पुनः) वार वार (चक्षुः) देखने का सामर्थ्य, (पुनः) वार वार (असुः) बुद्धि (नः) हमें (ऐतु) प्राप्त हो। (अदब्धः) बेचूक, (तनूपाः) शरीरों का रक्षक, (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी परमात्मा (नः) हमारे (विश्वा) सब (दुरितानि) कष्टों के (अन्तः) बीच में (तिष्ठाति) स्थित रहे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सदा धर्म में प्रवृत्त रह कर परमेश्वर की आज्ञा पालन करें, जिससे विश्राम के पश्चात् और पुनर्जन्म में भी उत्तम शरीर और इन्द्रियां प्राप्त करके सुख भोगते रहें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है- अ० ४। म० १५।

सं व॑र्च॒सा पय॑सा॒ सं त॒नूभि॑रगन्महि॒ मन॑सा॒ सं शि॒वेन॑ ।
त्वष्टा॑ नो अ॒त्र व॑रीयः कृणोत्व॒नु नो॑ मार्ष्टु त॒न्वो३॑ यद् विरि॑ष्टम् ॥३॥

भाषार्थः—(वर्चसा) अन्न के साथ, (पयसा) विज्ञान के साथ (सम्) यथावत् (तनूभिः) शरीरों के साथ (सम्) यथाविधि, और (शिवेन, मङ्गलकारी (मनसा मन के साथ (सम् अगन्महि) हम संगत हुए हैं। (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर (नः) हमारे लिये (अत्र) यहां पर (वरीयः) अति विस्तीर्ण धन (कृणोतु) करे और (नः) हमारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तन्वः) शरीर का (यत्) जो (विरिष्टम्) विविध कष्ट है उसे (अनु मार्ष्टु) शुद्ध करता रहे ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर ने कृपा करके हमें अन्न, विद्या और मनन शक्ति पहिले से दी है, हम उन सब से यथावत् उपकार लेकर अपने सब कष्ट दूर करें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० २। २४।

सूक्तम् ॥५४॥

१-३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राज्यरक्षणायोपदेशः—राज्य की रक्षा के लिये उपदेश ॥

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले राजा को (अष्टये) इष्ट प्राप्ति के लिये (शुम्भामि) सुशोभित करता हूं, [जिससे] (युजे) उसके मित्र के लिये (इदम्) यह और (तत्) वह (उत्तरम्) अधिक ऊंचा पद होवे। [हे जगदीश्वर !] (अस्य) इस पुरुष के (क्षत्रम्) राज्य और (महीम्) बड़ी (श्रियम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ा, (वृष्टिः इव) जैसे बरसा (तृणम्) घास को ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर के अनुग्रह से धर्म आचरण करता हुआ सर्वत्र अपने राज्य की वृद्धि करे ॥१॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥२॥

भाषार्थः—(अग्नीषोमौ) हे सूर्य और चन्द्रमा ! तुम दोनों (अस्मै) इस पुरुष के लिये (क्षत्रम) राज्य को और (अस्मै) इसके लिये (रयिम्) सम्पत्ति को (धारयतम्) दृढ़ करो। (इमम्) इस पुरुष को (राष्ट्रस्य) राज्य के (अभीवर्गे) मण्डल में (युजे) मित्र वर्ग के लिये (उत्तरम्) अधिक ऊंचा (कृणुतम्) करो ॥२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य चन्द्रमा नियमबद्ध होकर परस्पर आकर्षण आदि से जगत् का उपकार करते हैं वैसे ही मनुष्य सब से प्रीति करके अपना राज्य और धन बढ़ावे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भाषार्थः —(यः) जो शत्रु (सबन्धुः) बन्धुओं सहित (च च) और (असबन्धुः) विना बन्धुओं के होकर (अस्मान्) हमें (अभिदासति) सतावे । (तम्) उस (सर्वम्) सबको (सुन्वते) तत्त्वमथन करने वाले (यजमानाय) विद्वानों का सत्कार करने वाले (मे) मेरे लिये (रन्धयासि) वश में कर ॥३॥

भावार्थः—धार्मिक पुरुष परमात्मा की आज्ञा मान कर तत्त्वमथन कर के शत्रुओं का नाश करें ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध अ० ६ । १५--२ । और उत्तरार्द्ध अ० ६ । ६ । १ । में आया है ॥

सूक्तम् ॥५५॥

१-३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सर्वसम्पत्तिप्राप्त्युपदेशः—सब सम्पत्ति प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी सं चरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥१॥

भाषार्थः —(ये) जो (देवयानाः) विद्वानों के यानों, रथादिकों के योग्य (बहवः) बहुत से (पन्थानः) मार्ग (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (संचरन्ति) चलते रहते हैं । (तेषाम्) उन मार्गों में से (यतमः) जो कोई मार्ग (अज्यानिम्) अभङ्ग शान्ति (वहाति) पहुंचावे । (सर्वे देवाः) हे सब विद्वानों ! (तस्मै) उस मार्ग के लिये (मा) मुझे (इह) यहां पर (परि) अच्छे प्रकार (धत्त) स्थिर करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्वज महात्माओं के समान विज्ञानपूर्वक वैदिक मार्ग में चलकर शान्ति प्राप्त करें ॥१॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध अ० ३ । १५ । २ । में आ गया है ॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः क्षिते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥२॥

भाषार्थः—(वसन्तः) वसन्तकाल [चैत्र, वैशाख] (ग्रीष्मः) घाम ऋतु [ज्येष्ठ, आषाढ़] (वर्षाः) बरसा [श्रावण भाद्रमास] (शरत्) शरद् ऋतु [आश्विन,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्तिक] (हेमन्तः) शीतकाल [अग्रहायण, पौष] (शिशिरः) उतरता शीतकाल [माघ, फाल्गुन] यह तुम सब (नः) हमें (स्विते) अच्छे प्रकार प्राप्त कुशल में (दधात) स्थापित करो। (नः) हमें (गोषु) गौ आदि पशुओं में (आ) और (प्रजायाम्) प्रजा में (आ) सब ओर से (भजत) भागी करो, (वः) तुम्हारे (इत्) ही (निवाते) हिंसारहित (शरणे) शरण में (स्याम) हम रहें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रत्येक ऋतु में उचित आहार विहार करके गौ आदि पशुओं और पुत्र पौत्र भृत्य प्रजाओं सहित सुखी रहें ॥२॥

इदावत्सरायं परिवत्सरायं संवत्सरायं कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥३॥

भाषार्थः—(परिवत्सराय) सब ओर से निवास कराने वाले पिता को, (इदावत्सराय) विद्या में निवास कराने वाले आचार्य को और (संवत्सराय) यथानियम निवास कराने वाले राजा को तुम (बृहत्) बहुत बहुत (नमः) नमस्कार (कृणुत) करो। (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) उत्तम व्यवहार करने हारों के (अपि) ही (सुमतौ) सुमति वाले और (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) हार्दिक स्नेह में (वयम्) हम लोग (स्याम) रहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता, आचार्य और राजा की आज्ञा सत्कारपूर्वक मानकर उत्तम विद्या प्राप्त करके आनन्द से रहें ॥३॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध यजुर्वेद में है—अ० १९। ५०।

सूक्तम् ॥५६॥

१–३ ॥ देवजना देवताः ॥ १ बृहती, २, ३ अनुष्टुप् ॥

दोषनाशोपदेशः—दोष के नाश के लिये उपदेश ॥

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् ।
संयतं न वि स्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (सतोकान्) सन्तानों सहित और (सह पूरुषान्) पुरुषों सहित (नः) हमको (अहिः) चोट देने वाला सर्प [सर्प तुल्य अपना दोष] (मा वधीत्) न काटे। वह (संयतम्) मुंदे हुए मुख को (न) न (वि स्परत्) खोले और (व्यात्तम्) खुले मुख को (न) न (सम् यमत्) मूंदे। (देवजनेभ्यः) विद्वान् जनों को (नमः) नमस्कार है ॥१॥

भावार्थः मनुष्य विद्वान् महात्माओं से शिक्षा पाकर अपने और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सन्तानों और बांधव भृत्य आदि पुरुषों के दोषों को इस प्रकार निर्बल करद जैसे दुष्ट सर्प को मार मार कर निर्बल कर देते हैं ॥१॥

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२॥

भाषार्थः—(असिताय) काले सांप के लिये (नमः) वज्र (अस्तु) होवे, (तिरश्चिराजये) तिरछी धारी वाले सांप के लिये (नमः) वज्र और (स्वजाय) लिपटने वाले (बभ्रवे) भूरे सांप के लिये (नमः) बज्र होवे ।(देवजनेभ्यः) विद्वान्जनों के लिये (नमः) सत्कार है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों की संगति से अपने पापों का नाश करे, जैसे सर्प को वज्रादि से मार डालते हैं ॥२॥

सं ते हन्मि दता दतः सं हनू ते हन्वा हनू ।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाहं आस्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(अहे) हे सर्प ! (ते) तेरे (दता) दांत से (दतः) दाँतों को (सम् हन्मि) मिला कर तोड़ता हूं, (उ) और (ते) तेरे (हन्वा) जावड़े से (हनू) दोनों जावड़ों को (सम्) मसल कर, (ते) तेरी (जिह्वया) जीभ से (जिह्वाम्) जीभ को (सम्) मसलकर (उ) और (आस्ना) मुख से (आस्यम्) मुख को (सम्) मिला कर [तोड़ता हूं] ॥३॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य विषैले सांप को कुचल कर मार डालते हैं, उसी प्रकार से विद्वान् पुरुष अपने पापों का सर्वथा नाश करे ॥३॥

सूक्तम् ॥५७॥

१—३ ॥ रुद्रो देवता । १, २ अनुष्टुप्, ३ बृहती ॥

दोषनाशायोपदेशः—दोष के नाश के लिये उपदेश ॥

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥१॥

भाषार्थः—(इदम्) यह [वेद ज्ञान] (इत्) ही (वै) निश्चय करके (भेषजम्) भय निवारक वस्तु है, (इदम्) यह (उ) ही (रुद्रस्य) दुःखनाशक परमेश्वर का (भेषजम्) औषध है । (येन) जिससे [मनुष्य] (एकतेजनाम्) देहरूप एक दण्डवाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (शतशल्याम्) व्याधिरूप सैकड़ों अणी वाले (इषुम्) बाण को (अपन्नवत्) हटा कर बोले ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वरदत्त वेद ज्ञान से अपने पापों को नष्ट कर सुखी होवे, जैसे घाव से तीर निकलने पर सुख मिलता है ॥१॥

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२॥

भाषार्थः—(जालाषेण) जल सम्बन्धी द्रव्य से [फोड़े को] (अभि सिञ्चत) सब ओर से सींचो। (जालाषेण) सुख कारक पदार्थों से [उसे] (उपसिञ्चत) पास से सींचो। (जालाषम्) सुखों का समूह [वेदज्ञान] (उग्रम्) तीक्ष्ण (भेषजम्) औषध है, (तेन) उससे [हे रुद्र] (नः) हमें (जीवसे) जीने के लिये (मृड) सुखी रख ॥२॥

भावार्थः—जैसे वैद्य औषधियों द्वारा रोगों को अच्छा करते हैं वैसे ही मनुष्य वेदज्ञान से अपने पाप नष्ट कर के सुखी होवें ॥२॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

भाषार्थः—(च) निश्चय करके (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति (च) और (नः) हमारे लिये (मयः) सुख होवे, (च) और (नः) हमें (किं चन) कोई भी दुःख (मा आममत्) न पीड़ा देवे। (रपः=रपसः) पाप की (क्षमा) क्षमा हो। (विश्वम्) सब जगत् (नः) हमारे लिये (भेषजम्) भय निवारक (अस्तु) होवे, (सर्वम्) सब (नः) हमारे लिये (भेषजम्) रोगनाशक (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः मनुष्य रुद्र परमात्मा के अनुग्रह से पुरुषार्थपूर्वक अपने विघ्न हटा कर सुख भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥५८॥

१—३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १ जगती, २ पूर्वार्धास्त्रिष्टुप् द्वितीयो बृहती, ३ अनुष्टुप् ॥

यशःप्राप्त्युपदेशः—यश पाने के लिये उपदेश ॥

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे । यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मघवान्) बड़ा धनी (इन्द्रः) परमेश्वर (मा) मुझे (यशसम्) यशस्वी (कृणोतु) करे, (इमे) यह (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (यशसम्) कीर्तिमान् [करें]। (देवः) व्यवहार कुशल (सविता) विद्याप्रेरक आचार्य (मा) मुझे (यशसम्) यशस्वी (कृणोतु) करे (दक्षिणायाः) दक्षिणा वा प्रतिष्ठा के (दातुः) देने वाले राजा का (प्रियः) प्रिय (इह) यहां पर (स्याम्) मैं रहूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की महिमा विचार कर पराक्रमपूर्वक संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर और सर्वप्रिय होकर कीर्ति प्राप्त करे ॥१॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (इन्द्रः) परमेश्वर (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी लोक में (यशस्वान्) कीर्तिमान् है, और (यथा) जैसे (आपः) जल (ओषधीषु) अन्न आदि ओषधियों में (यशस्वतीः) यश वाले हैं। (एव) वैसे ही (विश्वेषु) सब (देवेषु) व्यवहारकुशल महात्माओं में और (सर्वेषु) सब गुणों में (वयम्) हम लोग (यशसः) यश चाहने वाले (स्याम) होवें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर और परमेश्वररचित पदार्थों का महत्त्व जानकर संसार में यश प्राप्त करें ॥२॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

भाषार्थः—यह मन्त्र इसी काण्ड के सूक्त ३९ मन्त्र ३ में आचुका है, वहाँ देख लेवें ॥३॥

सूक्तम् ॥५९॥

१—३ ॥ अरुन्धती देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः—सब सुख की प्राप्ति का उपदेश ॥

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अघ्न्ये वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥

भाषार्थः—(अरुन्धति) हे रोक न डालने वाली शक्ति ! परमात्मन् (त्वम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू (अनडुद्भ्यः) प्राण और जीविका पहुंचाने वाले पुरुषों को (त्वम्) तू (धेनुभ्यः) तृप्त करने वाली स्त्रियों को और (अधेनवे) विना दूध वाले (चतुष्पदे) चौपाये को (वयसे) अन्नप्राप्ति के लिये (प्रथमम्) विस्तृत (शर्म) घर (यच्छ) दे ॥१॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष परमेश्वर की उपासना करके प्रयत्नपूर्वक अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके उत्तम २ घर बनावें ॥१॥

शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीरुरुन्धती ।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥२॥

भाषार्थः—(ओषधिः) तापनाशक (अरुन्धती) न रोक डालने वाली शक्ति परमेश्वर (देवीः सह=देवीभिः सह) उत्तम क्रियाओं के साथ (शर्म) शरण (यच्छतु) देवे । (गोष्ठम्) हमारी गोशाला को (पयस्वन्तम्) बहुत दुग्ध वाली (उत) और (पूरुषान्) पुरुषों को (अयक्ष्मान्) नीरोग (करत्) करे ॥२॥

भावार्थः - मनुष्य अपने घरों में अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके सदा स्वस्थ रहें ॥२॥

विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वरूपाम्) सबका रूप [रचना] करने वाली, (सुभगाम्) बड़े ऐश्वर्य वाली, (जीवलाम्) जीवन देने वाली अथवा जीवन सामर्थ्य वाली शक्ति परमात्मा को (अच्छावदामि) मैं स्वागत करके आवाहन करता हूं (सा) वह (रुद्रस्य) दुःख नाशक परमेश्वर की (अस्ताम्) गिराई हुई (हेतिम्) ताड़ना को (नः) हमारी (गोभ्यः) भूमियों से (दूरम्) दूर (नयतु) ले जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को सर्वव्यापी जानकर पाप करके दण्डभागी न होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥६०॥

१—३ । अर्य्यमा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गृहस्थाश्रमप्रवेशोपदेशः—गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का उपदेश ॥

अर्यमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ॥
अस्या इच्छन्नग्रवै पतिमुत जायामजानये ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —(अयम्) यह (विश्वितस्तुपः) प्रसिद्ध स्तुति वाला (अर्यमा) अन्धकार नाशक सूर्य (अस्यै) इस (अग्रुवै) ज्ञानवती कन्या के लिये (पतिम्) पति, (उत) और (अजानये) अविवाहित पुरुष के लिये (जायाम्) पत्नी (इच्छन्) चाहता हुआ (पुरस्तात्) हमारे आगे (आ याति) आता है ॥१॥

भावार्थः—ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारी वेद आदि शास्त्रों के अध्ययन से सूर्य के समान तेजस्वी अर्थात् ब्रह्मवर्चसी होकर युवा अवस्था में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें ॥१॥

अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती ।
अङ्गोन्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ।२॥

भाषार्थः—(अर्यमन्) हे शत्रुनाशक परमेश्वर ! (अन्यासाम्) दूसरी कन्याओं के (समनम्) विवाह में (यती) जाती हुई (इयम्) इस कन्या ने (अश्रमत्) तप किया है । (अङ्गो) हे (अर्यमन्) न्यायकारी परमेश्वर ! (अन्याः) दूसरी कन्यायें (अस्याः) इस कन्या के (समनम्) विवाह में (नु) अवश्य (आयति) आवें ॥२॥

भावार्थः —जैसे यह कन्या अन्य कन्याओं के विवाह संस्कार में मिलती रही है, वैसे ही अन्य कन्यायें इसके विवाह में आकर शोभा बढ़ावें ॥२॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३॥

भाषार्थः—(धाता) विधाता ने (पृथिवीम्) पृथिवी को, (उत) और (धाता) विधाता ने (द्याम्) आकाश और (सूर्यम्) सूर्य को (दाधार) धारण किया । (धाता) वही विधाता (अस्यै) इस (अग्रुवै) उद्योगशील कन्या को (प्रतिकाम्यम्) प्रतिज्ञा करके चाहने योग्य (पतिम्) पति (दधातु) देवे ॥३॥

भावार्थः - जैसे परमात्मा सब संसार के धारण पोषण में समर्थ है वैसे ही कन्या और कुमार [उपलक्षण से] विद्या और धन आदि से समर्थ होकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करें ॥३॥

सूक्तम् ॥६१॥

१ —३ ॥ परमेश्वरो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरमहत्त्वोपदेशः—परमेश्वर की महिमा का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१॥

भाषार्थः —(मह्यम्) मेरे लिये (आपः) व्यापनशील जल (मधुमत्) मधुरपन से (आ ईरयन्ताम्) आकर बहें, (मह्यम्) मेरे लिये (सूरः) लोकों को चलाने वाले सूर्य ने (ज्योतिषे) ज्योति करने को (कम्) सुख (अभरत्) धारण किया है। (उत) और (मह्यम्) मेरे लिये (तपोजाः) तप से उत्पन्न होने वाले (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुण हैं, (मह्यम्) मेरे लिये (देवः) व्यवहार में चतुर (सविता) ऐश्वर्यवान् मनुष्य ने (व्यचः) विस्तार (धात=अधात्) धारण किया है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर कहता है कि संसार के सब पदार्थ मेरी आज्ञा में रहकर संसार का उपकार करते हैं ॥१॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥२॥

भाषार्थः – (अहम्) मैंने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (विवेच) पृथक् पृथक् किया, (अहम्) मैंने (सप्त) सात (ऋतून्) व्यापनशील [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को (साकम्) आपस में मिला हुआ (अजनयम्) उत्पन्न किया है। (अहम्) मैं (यत्) जो कुछ (सत्यम्) सत्य और (अनृतम्) झूठ है [उसे] (च) और (अहम्) मैं (देवीम्) विद्वानों में होने वाली (वाचम्) वाणी को (विशः परि) सब मनुष्यों में भरपूर (वदामि) बताता हूं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य आदि पदार्थों को रचकर सत्य का विधान और असत्य का निषेध वेद द्वारा सब प्राणियों को बताया है ॥२॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥३॥

भाषार्थः - (अहम्) मैंने (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य को (जजान) उत्पन्न किया, (अहम्) मैंने (सप्त) सात (ऋतून्) [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को और (सिन्धून्) उनकी व्यापक शक्तियों को (अजनयम्) उत्पन्न किया है। (अहम्) मैं (सत्यम्) सत्य और (अनृतम्) झूठ (यत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ है [उसे] (वदामि) बताता हूं, (यः) जिसमें (सखाया) आपस में मित्र (अग्नीषोमौ) अग्नि और जल को (अजुषे) तृप्त किया है ॥३॥

भावार्थः —परमेश्वर ने सब पृथिवी आदि पदार्थ और इन्द्रियों और इन्द्रियों की शक्तियों को रचकर धर्म और अधर्म का लक्षण बताया है और अग्नि और जल वायु आदि को संसार की स्थिति का कारण रक्खा है उसी की उपासना सब मनुष्य करें ॥३॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥६२॥

१—३ ॥ मन्त्रोक्तदेवता; २, ३ सूनृता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धनस्य नैरोग्यस्यचोपदेशः —धन और नीरोगता का उपदेश ॥

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१॥

भाषार्थः — (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी परमेश्वर (रश्मिभिः) विद्या प्रकाशों से और (इषिरः) शीघ्रगामी (वातः) पवन (प्राणेन) प्राण से और (नभोभिः) मेघों से (नः) हमें (पुनातु) पवित्र करे । (पयस्वती) रसवाली (ऋतावरी) सत्यशील और (यज्ञिये) संगति करने योग्य (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (पयसा) अपने रस से (नः) हमें (पुनीताम्) शुद्ध करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विज्ञानपूर्वक सूर्य, वायु, मेघ, पृथिवी आदि पदार्थों से शिल्प आदि और शरीर रक्षण आदि में उपकार लेकर सुखी हों ॥१॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —[हे मनुष्यो !] (वैश्वानरीम्) सब नरों का हित करने वाली (सूनृताम्) प्रिय सत्य वेद वाणी को (आ रभध्वम्) तुम आरम्भ करो, (यस्याः) जिसके (तन्वः) शरीर के (आशाः) विस्तार (वीतपृष्ठाः) सेचन सामर्थ्य पहुंचाने वाले हैं। (तया) उस [वेद वाणी] से (सधमादेषु) परस्पर आनन्द उत्सवों पर (गृणन्तः) बातचीत करते हुए (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य वेदविद्या का सर्वत्र प्रचार करके विद्या धन और सुवर्णादि धन बढ़ावें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है=अ० १९। ४४ ॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३॥

भाषार्थः —[हे मनुष्यो !] (शुद्धाः) शुद्ध, (शुचयः) पवित्र और (पावकाः) शुद्ध करने वाले (भवन्तः) होते हुए तुम (वैश्वानरीम्) सब नरों का हित करनेवाली [वेद वाणी] को (वर्चसे) तेज पाने के लिये (आरभध्वम्) आरम्भ करो। (इह) यहां पर (इडया) वेद वाणी से (सधमादम्) परस्पर हर्ष उत्सव को (मदन्तः) आनन्दित करते हुए हम (ज्योक्) बहुत काल तक (उच्चरन्तम्) चढ़ते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (पश्येम) देखते रहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य वेद विद्या का आश्रय लेकर आप शुद्ध होकर और दूसरे अज्ञानियों को शुद्ध करके परस्पर आनन्द भोगते हुए चढ़ते हुए सूर्य के समान प्रतापी होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥६३॥

१—४ ॥ आत्मा देवता ॥ १—३ त्रिष्टुप्; ४ अनुष्टुप् छन्दः ॥

मोक्षप्राप्त्युपदेशः—मोक्ष प्राप्ति का उपदेश ॥

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दामं ग्रीवास्वविमोक्यं यत्।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (देवी) प्राप्त हुई (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी ने (यत्) जो (दाम) रस्सी (ते) तेरे (ग्रीवासु) गले में (आबबन्ध) बांध दी है, (यत्) जो [ज्ञानाद् ऋते, ज्ञान विना] (अमोक्यम्) न खुलने वाली है। (तत्) उसको (ते) तेरे (आयुषे) उत्तम जीवन के लिये, (वर्चसे) तेज के लिये और (बलाय) बल के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये, [ज्ञानेन = ज्ञान से] (वि स्यामि) मैं खोलता हूं, (प्रसूतः) आगे बढ़ाया गया तू (अदोमदम्) अक्षय हर्ष युक्त (अन्नम्) अन्न का (अद्धि) भोग कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अज्ञान के फल दरिद्रता आदि दुःखों को ज्ञान द्वारा पुरुषार्थपूर्वक नाश करके अक्षय आनन्द भोगें ॥१॥

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥२॥

भाषार्थः—(तिग्मतेजः) हे तेज नाश करने वाली (निर्ऋते) अलक्ष्मी (ते) तेरे लिये (नमः) वज्र (अस्तु) होवे, (अयस्मयान्) लोह के बनी (बन्धपाशान्) बन्धन की बेड़ियों को (वि चृत) तोड़ डाल (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (मह्यम्) मेरे लिये (पुनः) बारं बार (इत्) ही (त्वाम्) तुझको (ददाति) देता है, (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी परमेश्वर को (मृत्यवे) दुःख रूप मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से दुष्कर्मियों को अनेक दारुण दुःख देता है, इस लिये मनुष्य ज्ञान द्वारा पापो से बचकर मृत्यु अर्थात् दुःख से बचे रहें ॥२॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (इह) यहां पर (मृत्युभिः) मृत्यु के कारणों से, (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र प्रकार हैं, (अभिहितः) घिरा हुआ तू (अयस्मये) लोहे से जकड़े हुए (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (बेधिषे = बध्यसे) बंध रहा है। (यमेन) नियम के साथ (पितृभिः) पालन करने वाले ज्ञानियों से (संविदानः) मिला हुआ (त्वम्) तू (इमम्) इस पुरुष को (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) आनन्द में (अधि रोहय) ऊपर चढ़ा ॥३॥

भावार्थः जो मनुष्य पापों के कारण बड़े बड़े कष्ट उठाते हैं, वे विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करके मोक्षपद प्राप्त करें ॥३॥

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥४॥

भाषार्थः—(वृषन्) हे बलवान् (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (अर्यः) स्वामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर तू (विश्वानि इत्) सब ही [सुखों] को (संसम्) यथावत् रीति से (आ=आनीय) ला कर (युवसे) मिलाता है। और (इडः) प्रशंसा के (पदे) पदपर (सम् इध्यसे) तू सुशोभित होता है, (सः) सो तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) अनेक धनों को (आ भर) भर दे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य पराक्रमी धर्मात्माओं का आश्रय लेकर सम्पूर्ण धन प्राप्त करें ॥४॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—अ० १५। ३०। और ऋग्वेद में भी है—म० १०। १९१। १। ७। जिसके आगे के शेष तीन मन्त्र अगले सूक्त ६४ में हैं ॥

सूक्तम् ॥६४॥

१—३ ॥ संज्ञानं देवता ॥ १, ३ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ॥

संगतिलाभोपदेशः—संगति के लाभ का उपदेश ॥

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥१॥

भाषार्थः—(सम् जानीध्वम्) आपस में जान पहिचान करो, (सम् पृच्यध्वम्) आपस में मिले रहो, (जानताम् वः) ज्ञानवाले तुम लोगों के (मनांसि) मन (सम्) एकसे होवें [अथवा—(वः) तुम्हारे (मनांसि) मन (सम्) एकसे (जानताम्) होवें]। (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम स्थान वाले, (संजानानाः) यथावत् ज्ञानी (देवाः) विद्वान् लोग (भागम्) सेवनीय परमेश्वर अथवा ऐश्वर्यों के समूह को (उपासते) सेवन करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परस्पर मिल कर वेद आदि शास्त्रों का विचार करके ज्ञानी पुरुषों के समान ईश्वर आज्ञा पालन करते हुए अनेक ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥१॥

मन्त्र १—३ कुछ भेद से ऋग्वेद के चार मन्त्र वाले अन्तिम सूक्त, म० १०। सू० १९१ के म० २—४ हैं,। पहिला मन्त्र गत सूक्त में आ चुका है। और स्वामी दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदोक्त धर्म विषय में भी आये हैं ॥

स मानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो तुम्हारा] (मन्त्रः) मन्त्र, विचार (समानः) एकसा और (समितिः) समिति [सामाजिक व्यवस्था] (समानी) एक सी, (व्रतम्) धर्म का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरण (समानम्) एकसा और (एषाम्) इन तुम सब का (चित्तम्) चित्त [सब पदार्थों का ज्ञान] (सह) मिला हुआ होवे। (समानेन) एक से (हविषा) ग्राह्य धर्म के साथ (वः) तुम को (जुहोमि) मैं ग्रहण करता हूं, (समानम्) एक से (चेतः) चिन्तन [भूत, भविष्यत् के अनुभव के स्मरण] में (अभिसंविशध्वम्) तुम भली भांति प्रवेश करो ॥२॥

भावार्थः - मनुष्यों को योग्य है कि सदा वेदमार्ग पर चलकर एकचित्त होकर धर्मसभा, विद्यासभा, राजसभा आदि बनाकर बुद्धि, बल और पराक्रम आदि उत्तम गुण बढ़ावें ॥२॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥३॥

भाषार्थः —(वः) तुम्हारा (आकूतिः) निश्चय, उत्साह, अथवा सङ्कल्प (समानी) एकसा और (वः) तुम्हारे (हृदयानि) हृदय [हार्दिक कर्म] (समाना) एक से होवें। (वः) तुम्हारा (मनः) मन [मनन कर्म] (समानम्) एकसा (अस्तु) होवे, (यथा) जिससे (वः) तुम्हारी (असति) गति (सुसह) बड़ा सहाय करने वाली होवे ॥३॥

भावार्थः —मनुष्य धर्म के विचारों में प्रीतिपूर्वक एकमत होकर अपने सब काम समाज द्वारा सिद्ध करके सुख बढ़ावें ॥३॥

सूक्तम् ॥६५॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पङ्क्तिः, २, ३ अनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

अव मन्युरवायतावव बाहू मनोयुजा । परशर त्वं
तेषां पराञ्चं शुष्ममर्द याधा नो रयिमा कृधि ॥१॥

भाषार्थः—(मन्युः) क्रोध (अव=अवगच्छतु) ढीला होवे (आयता) फैले हुए शस्त्र (अव=अवगच्छन्तु) ढीले होवें (मनोयुजा) मन के साथ संयोग वाली (बाहू) भुजाएँ (अव=अवगच्छताम्) नीचे होवें। (पराशर) हे शत्रुनाशक सेनापति! (त्वम्) तू (तेषाम्) उन [शत्रुओं] का (शुष्मम्) बल (पराञ्चम्) औंधा करके (अर्दय, मिटा दे, (अध) और (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन (आ कृधि) सन्मुख कर ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः चतुर सेनापति शत्रुओं को हराकर शान्तचित्त होकर प्रजा में धन की बढ़ती करे ॥१॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विजयी लोगो ! (निर्हस्तेभ्यः) निहत्ते [निर्बल हम लोगों] के हित के लिये (नैर्हस्तम्) निहत्त [निर्बल शत्रुओं] के ऊपर (यम्) जिस (शरुम्) बाण को (अस्यथ) तुम छोड़ते हो (अनेन) उसी ही (हविषा) ग्राह्य शस्त्र से (अहम्) मैं [प्रजागण वा राजगण] (शत्रूणाम्) शत्रुओं की (बाहून्) भुजाओं को (वृश्चामि) काटता हूं ॥२॥

भावार्थः—सब प्रजागण और राजपुरुष मिलकर शत्रुओं के नाश करने के प्रयत्न करें ॥२॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले सेनापति ने (असुरेभ्यः) असुर शत्रुओं को (नैर्हस्तम्) निहत्तापन (प्रथमम्) पहिले (चकार) किया था । (स्थिरेण) स्थिर स्वभाव, (मेदिना) स्नेही (इन्द्रेण) उस बड़े सेनापति के साथ (मम) मेरे (सत्वानः) वीर लोग (जयन्तु) जीतें ॥३॥

भावार्थः—जिस शूर सेनापति की सहायता से पहिले शत्रुओं को जीता है उसकी सहायता से शत्रुओं को अब भी जीतें ॥३॥

सूक्तम् ॥६६॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ त्रिष्टुप्, २, ३ अनुष्टुप् ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥१॥

भाषार्थः—(शत्रुः) शत्रु (नः) हम पर (अभिदासन्) चढ़ाई करता हुआ (निर्हस्तः) निहत्ता (अस्तु) होवे, [और वे भी,] (ये) जो (सेनाभिः) अपनी सेनाओं के साथ (युधम्) युद्ध करने के लिये (अस्मान्) हम पर (आयन्ति) चले आते हैं । (इन्द्र) हे प्रतापी सेनापति इन्द्र ! [उन सब को] (महता) बड़े (वधेन) वध के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ (समर्पय) मार गिरा, (एषाम्) इन सब का (अघहारः) दुःखदायी प्रधान (विविद्धः) आर पार छिदकर (द्रातु) भाग जावे ॥१॥

भावार्थः चतुर सेनापति शत्रुओं और उनकी सेनाओं को अपनी सुशिक्षित सेना द्वारा हरा कर भगा देवे ॥१॥

आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य परा शरीत् ॥२॥

भाषार्थः—(ये) जो तुम (आतन्वानाः) [धनुष बाण] तानते हुए (च) और (आयच्छन्तः) [तरवारें] खैंचते हुए और (अस्यन्तः) चलाते हुए (धावथ) दौड़े चले आते हो । (शत्रवः) हे शत्रुओ ! तुम सब (निर्हस्ताः) निहत्ते (स्थन) हो जाओ, (इन्द्रः) महाप्रतापी सेनापति इन्द्र ने (वः) तुम को (अद्य) आज (परा अशरीत्) मार गिराया है ॥२॥

भावार्थः युद्ध कुशल सेनापति शत्रुओं के धावे को रोक कर उन्हें मार गिरावे ॥२॥

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गेषां श्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥३॥

भाषार्थः (शत्रवः) शत्रु लोग (निर्हस्ताः) निहत्ते (सन्तु) हो जावें, (तेषाम्) उन के (अङ्गा) अंगों को (श्लापयामसि) हम शिथिल करते हैं । (अथ) फिर (इन्द्र) हे महाप्रतापी सेनापति इन्द्र ! (तेषाम्) उनके (वेदांसि) सब धनों को (शतशः) सैकड़ों प्रकार से (वि भजामहै) हम बांट लेवें ॥३॥

भावार्थः—विजयी वीर पुरुष शत्रुओं को जीत कर सेनापति की आज्ञानुसार राजविभाग निकाल कर उनका धन बांट लेवें ॥३॥

सूक्तम् ॥६७॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षणों का उपदेश ॥

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला राजा (च) और (पूषा) पोषण करने-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला मन्त्री (वर्त्मानि) मार्गों पर (सर्वतः) सब दिशाओं में (परि सन्नतुः) सब ओर चलते रहें हैं। (अमित्राणाम्) पीड़ा देनेवाले शत्रुओं की (अमूः) वे सब (सेनाः) सेनाएं (अद्य) आज (परस्तराम्) बहुत दूर (मुह्यन्तु) घबड़ा कर चली जावें ॥१॥

भावार्थः—युद्ध कुशल राजा और मन्त्री के उपाय से शत्रु की सब सेनायें भाग ज वें ॥१॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाणं इवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२॥

भाषार्थः—(मूढाः) हे घबड़ाये हुए (अमित्राः) पीड़ा देने वाले शत्रुओं ! (अशीर्षाणः) विना शिर वाले [शिर कटे] (अहयः इव) साँपों के समान (चरत) चेष्टा करो। (इन्द्रः) प्रतापी वीर राजा (अग्निमूढानाम्) अग्नि [आग्नेय शस्त्रों] से घबड़ाये हुए (तेषां वः) उन तुम सबों में से (वरंवरम्) अच्छे अच्छों को चुन कर (हन्तु) मारे ॥२॥

भावार्थः—कुशल सेनापति इस प्रकार व्यूहरचना करे कि शत्रु के सेनादल विध्वंस हो कर घबड़ा जावें और उनके बड़े बड़े नायक मारे जावें ॥२॥

एषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि ।
पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपैषतु ॥३॥

भाषार्थः—[हे सेनापति !] (एषु) इन [अपने वीरों] में (वृषा=वृष्णः) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (अजिनम्) चर्म [कवच] (आ नह्य) पहिना दे, और [शत्रुओं में] (हरिणस्य) हरिण का (भियम्) डरपोकपन (कृधि) करदे। (अमित्रः) शत्रु (पराङ्) उलटे मुख हो कर, (एषतु) चला जावे (गौः) भूमि [युद्ध भूमि और राज्य] (अर्वाची) हमारी ओर (उप एषतु) चली आवे ॥३॥

भावार्थः—सेनापति अपने वीरों को कवच आदि पहिना कर शत्रुओं को भयभीत करके रणभूमि और राज्य अपने हाथ करे ॥३॥

सूक्तम् ॥६८॥

१–३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ १ पञ्चपदा विराट्, २ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ॥

चूडाकरणसंस्कारोपदेशः—मुण्डन संस्कार का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि । आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः । १॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (सविता) काम का चलानेवाला फुरतीला नापित (क्षुरेण) छुरा सहित (आ अगन्) आया है, (वायो) हे शीघ्रगामी पुरुष ! (उष्णेन) तप्त [तते] (उदकेन) जलसहित (आ इहि) तू आ। (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) ज्ञानवान्, (वसवः) श्रेष्ठ पुरुष आप (सचेतसः) एकचित्त होकर [बालक के केश] (उन्दन्तु) भिगोवें, (प्रचेतसः) प्रकृष्ट ज्ञानवाले पुरुषो तुम (सोमस्य) शान्तस्वभाव (राज्ञः) तेजस्वी बालक का (वपत=वपयत) मुण्डन कराओ ॥१॥

भावार्थः—गृहस्थ प्रवीण शुद्ध नापित को बुलाकर गुनगुने जल से मुण्डन करावें और सब बड़े बड़े विद्वान् पुरुष उत्सव में आकर यथोचित सम्मति देवें ॥१॥

इस सूक्त के तीनों मन्त्र श्रीमद्दयानन्दकृत संस्कारविधि—चूडाकर्म संस्कार में लिखे हैं।

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥२॥

भाषार्थः—(अदितिः) अखण्डित छुरा (श्मश्रु) केश (वपतु) काटे (आपः) जल (वर्चसा) अपनी शोभा से (उन्दन्तु) सींचे। (प्रजापतिः) सन्तान का पालन करने वाला पिता (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये और (चक्षसे) दृष्टि बढ़ाने के लिये (चिकित्सतु) [बालक के] रोग की निवृत्ति करे ॥२॥

भावार्थः मुण्डन होने के पश्चात् स्नान कराके यथोचित ओषधि खान पान आदि द्वारा बालक को प्रसन्न करें। इस संस्कार से बालक की आयु और दृष्टि बढ़ती है ॥२॥

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥३॥

भाषार्थः—(येन) जिस विधि के साथ (विद्वान्) अपना कर्म जानने वाले (सविता) फुरतीले नापित ने (क्षुरेण) छुरा से (सोमस्य) शान्त स्वभाव, (राज्ञः) तेजस्वी, (वरुणस्य) उत्तम स्वभाव वाले बालक का (अवपत्) मुण्डन किया है। (तेन) उसी विधि से (ब्रह्माणः) हे ब्राह्मणो ! (अस्य) इस बालक का (इदम्) यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिर (वपत) मुण्डन कराओ, (अयम्) यह बालक (गोमान्) उत्तम गौओं वाला, (अश्ववान्) उत्तम घोड़ों वाला और (प्रजावान्) उत्तम सन्तानों वाला (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् लोग बालकों का मुण्डन संस्कार कराके उन्हें प्रतापी, धनी और बलवान् बनावें ॥३॥

सूक्तम् ॥६९॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

यशः प्राप्त्युपदेशः—यश की प्राप्ति का उपदेश ॥

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१॥

भाषार्थः—(गिरौ) उपदेश करने वाले संन्यासी में, (अरगराटेषु) ज्ञान के उपदेशकों में विचरने वालों [ब्रह्मचारी आदिकों] के बीच, (हिरण्ये) सुवर्ण में और (गोषु) विद्याओं में (यत्) जो (यशः) यश है ! और (सिच्यमानायाम् सुरायाम्) बहते हुए जल [अथवा बढते हुए ऐश्वर्य] में और (कीलाले) अन्न में (मधु) जो मीठापन है, (तत्) वह (मयि) मुझ में होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से विद्या आदि प्राप्त करके अपना ऐश्वर्य और स्वास्थ्य स्थिर रखकर यश पावें ॥१॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भगंस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥२॥

भाषार्थः—(शुभः) शुभ कर्म के (पती) पालन करने वाले (अश्विना) हे कर्मों में व्याप्ति वाले माता पिता ! (सारघेण) सार अर्थात् बल वा धन के पहुंचाने वाले (मधुना) ज्ञान से (मा) मुझ को (अङ्क्तम्) प्रकाशित करो । (यथा) जिससे (जनान् अनु) मनुष्यों के बीच (भगंस्वतीम्) तेजोमयी (वाचम्) वाणी को (आवदानि) मैं बोला करूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि माता पिता से उत्तम शिक्षा पाकर मनुष्यों में सारगर्भित सत्य वचन बोलें ॥२॥

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(मयि) मुझ में (वर्चः) प्रताप, (अथो) और (यशः) यश हो, (अथो) और (यज्ञस्य) देव पूजा आदि यज्ञ का (यत्) जो (पयः) सार है, (तत्) उसको भी (मयि) मुझ में (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर (दृंहतु) दृढ़ करे, (इव) जैसे (दिवि) अन्तरिक्ष में (द्याम्) सूर्य मण्डल को ॥३॥

भावार्थः— जैसे परमेश्वर ने आकाश में सूर्य को स्थिर करके आकर्षण, प्रकाश आदि द्वारा महा उपकारी बनाया है, वैसे ही मनुष्य उत्तम शिक्षा प्राप्त करके यशस्वी होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥७०॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमेश्वरभक्त्युपदेशः—परमेश्वर की भक्ति का उपदेश ॥

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (मांसम्) ज्ञान, (यथा) जैसे (सुरा) ऐश्वर्य, (यथा) जैसे (अक्षाः) अनेक व्यवहार (अधिदेवने) बहुत व्यवहारयुक्त राजद्वार में रहते हैं। (यथा) जैसे (वृषण्यतः) अपने को ऐश्वर्यवान् मानने वाले (पुंसः) पुरुष का (मनः) मन (स्त्रियाम्) स्तुति क्रिया [वा अपनी पत्नी] में (निहन्यते) स्थिर रहता है। (एव) वैसे ही (अघ्न्ये) हे न मारने योग्य प्रजा ! (ते) तेरा (मनः) मन (वत्से) सब में निवास करने वाले परमेश्वर में (अधि) अच्छे प्रकार (निहन्यताम्) दृढ़ होवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर में दृढ़ भक्ति करके सदा आनन्द भोगे ॥१॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (हस्ती) हाथी (हस्तिन्याः) हथिनी के (पदेन) पद चिह्न से (पदम्) अपना पद (उद्युजे) बढ़ाये जाता है। (यथा) जैसे···म० १। ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र एक के समान है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधिं ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (प्रधिः) पहिये की पुट्ठी [अरों के जोड़ से] और (यथा) जैसे (उपधिः) अरों का जोड़ [पुट्ठी से] और (यथा) जैसे (नभ्यम्) नाभि स्थान (प्रधौ अधि) पुट्ठी के भीतर [जमा होता है], (यथा) जैसे..... म० १ ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र एक के समान है ॥३॥

सूक्तम् ॥७१॥

१-३ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

दोषनाशोपदेशः—दोषों के नाश का उपदेश ॥

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१॥

भाषार्थः—(विरूपम्) अनेक रूप वाला (यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (बहुधा) प्रायः (अद्मि) मैं खाता हूं, (उत) और (हिरण्यम्) सुवर्ण, (अश्वम्) घोड़ा, (गाम्) गौ, (अजाम्) बकरी, (अविम्) भेड़, और (यत् एव किम् च) जो कुछ भी (अहम्) मैंने (प्रतिजग्राह) ग्रहण किया है, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उसको (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक परमेश्वर को आत्मसमर्पण करते हैं, वे सुखी होते हैं ॥१॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव चारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२॥

भाषार्थः (हुतम्) दिया हुआ [माता पिता आदि से पाया हुआ], अथवा (अहुतम्) न दिया हुआ [स्वयं प्राप्त किया] (पितृभिः) दूसरे विद्वान् महाशयों करके (दत्तम्) दिया हुआ और (मनुष्यैः) मननशील पुरुषों करि के (अनुमतम्) अङ्गीकार किया हुआ (यत्) जो कुछ द्रव्य (मा) मुझ को (आजगाम) प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। (यस्मात्) जिसके कारण से (मे) मेरा (मनः) मन (उत् इव) उदय होता हुआ सा (रारजीति) अत्यन्त शोभित रहता है, (होता) दाता (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर (तत्) उसको (सुहुतम्) धार्मिक रीति से स्वीकार किया हुआ (कृणोतु) करे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो कुछ पदार्थ अन्य महाशयों से अथवा अपने पुरुषार्थ से मिले, उसे विचारपूर्वक धार्मिक रीति से व्यय करें ॥२॥

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (अनृतेन) असत्य व्यवहार से (अद्मि) मैं खाता हूं, (उत) और (दास्यन्) देना चाहता हुआ [अथवा] (अदास्यन्) न देना चाहता हुआ मैं [जो कुछ] (संगृणामि=संगिरामि) खा जाता हूं। (महतः) पूजनीय (वैश्वानरस्य) सब नरों के हितकारी परमेश्वर की (महिम्ना) महिमा से (अन्नम्) वह अन्न (मह्यम्) मेरे लिये (शिवम्) सुखकारक और (मधुमत्) मीठे रसवाला (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः मनुष्य परमेश्वर की महिमा जानकर दुष्ट कर्म छोड़ कर अपने कर्तव्य सत्यमार्ग पर चलकर आनन्द भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥७२॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ जगती; २, ३ अनुष्टुप् ॥

राज्यवर्धनोपदेशः—राज्य बढ़ाने का उपदेश ॥

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूँषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (असितः) बन्धन रहित, स्वतन्त्र परमात्मा (वशान् अनु) अपने वशवर्त्ती प्राणियों के लिये (असुरस्य) बुद्धिमान् की (मायया) बुद्धि से (वपूंषि) अनेक शरीरों को (कृण्वन्) बनाता हुआ (प्रथयते) विस्तार करता है। (एव) वैसे ही (अयम्) यह (अर्कः) मन्त्र [विचार] (ते) तेरे (शेपः) सामर्थ्य को (सहसा) सहनशक्ति के साथ और (अङ्गम्) अङ्ग को (अङ्गेन) अङ्ग के साथ (संसमकम्) भली भांति संयुक्त (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर ने अपनी बुद्धिमत्ता से जगत् को रचकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महा उपकार किया है, वैसे ही मनुष्य वेदों के विचार से अपनी शक्ति बढ़ाकर बढ़ती करें। १॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (तायादरम्) प्रबन्ध से आदर योग्य (पसः) राज्य (वातेन) उद्योग से (स्थूलभम्) मनुष्यों में प्रकाश वाला (कृतम्) बनाया जाता है, (यावत्) जितना (परस्वतः) पालने में समर्थ पुरुष का (पसः) राज्य होता है, (तावत्) उतना (ते) तेरा (पसः) राज्य (वर्धताम्) बढ़े ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार नीति निपुण, उद्योगी और प्रजापालक राजा के राज्य में उन्नति होती है, वैसे ही शुभ गुणों द्वारा मनुष्य अपना राज्य बढ़ावें ॥२॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

भाषार्थः—(यावदङ्गीनम्) जितने अङ्ग हैं उनसे सिद्ध, (पारस्वतम्) पालन समर्थ पुरुषों से सिद्ध, (च) और (गार्दभम्) [बोझ उठाने वाले] गदहों से सिद्ध, (यत्) जितना राज्य है। और (यावत्) जितना (वाजिनः) अन्नयुक्त (अश्वस्य) बलवान् पुरुष [राज्य] का है, (तावत्) उतना (ते) तेरा (पसः) राज्य (वर्धताम्) बढ़े ॥३॥

भावार्थः—जिस राज्य में सब राज्य के अङ्ग, अर्थात्, १ राजा, २—मन्त्री, ३—मित्र, ४—कोश, ५—राज्य प्रबन्ध, ६—गढ़, ७ सेना, (देखो अमर १८। १७, १८) प्रजापालक अधिकारी और हस्ती गर्दभ आदि पशु और अन्न और बलवान् राजा होते हैं, वहाँ अनेक प्रकार से वृद्धि होती है, वैसे ही सब मनुष्यों को वृद्धि करनी चाहिये ॥३॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाष्टमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥७३॥

१—३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विद्वत्समागमोपदेशः—विद्वानों से समागम का उपदेश ॥

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१॥

भाषार्थः—(वरुणः) सूर्य समान प्रतापी और (सोमः) चन्द्र समान शान्त-स्वभाव पुरुष (इह) यहां पर (आ यातु) आवे और (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी (बृहस्पतिः) बड़ी वेदवाणी की रक्षा करनेवाला पुरुष (वसुभिः) उत्तम उत्तम गुणों वा धनों के साथ (इह) यहां पर (आयातु) आवे । (सजाताः) हे समान जन्मवाले बान्धवो ! (सर्वे) तुम सब (संमनसः) एक मन होकर, (अस्य) इस (उग्रस्य, तेजस्वी, चेत्तुः) ज्ञानवान् पुरुष की (श्रियम्) सम्पदा को (उपसंयात) भली भांति प्राप्त करो ॥१॥

भावार्थः—गृहस्थी को योग्य है कि अनेक अनेक विद्वानों से सत्कार-पूर्वक समागम करके गृहलक्ष्मी बढ़ा कर अपनी उन्नति करे ॥१॥

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (यः) जो (शुष्मः) पराक्रम (वः) तुम्हारे (हृदयेषु अन्तः) हृदयों में भरा है, और (या) जो (आकूतिः) उत्साह वा शुभसंकल्प (वः) तुम्हारे (मनसि) मन में (प्रविष्टा) प्रवेश हो रहा है। [उसी के कारण] (हविषा) उत्तम अन्न से और (घृतेन) जल से (तान्) उन तुम सब की (सीवयामि = सेवे) मैं सेवा करता हूं, (सजाताः) हे समान जन्मवाले बान्धवो ! (वः) तुम्हारी (रमतिः) क्रीड़ा [प्रसन्नता] (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य यथावत् शुश्रूषा करके विद्वानों से उत्तम उत्तम विद्याएँ ग्रहण करके अपने आत्मा को सदा सन्तुष्ट करते रहें ॥२॥

इहैव स्त मापं याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (इह) यहां पर (एव) ही (स्त) रहो (अस्मत् अधि) हम से (मा अप यात) हट कर न जाओ, (पूषा) पोषण करने वाला गृहस्थ (परस्तात्) उत्तर उत्तर काल में (वः) तुम्हारे लिये (अपथम्) अभय (कृणोतु) करे। (वास्तोः) घर का (पतिः) स्वामी [गृहस्थ] (वः) तुमको (अनु) निरन्तर (जोहवीतु) बुलाता रहे। (सजाताः) हे समान जन्मवाले बान्धवो ! (वः) तुम्हारे (रमतिः) क्रीड़ा [प्रसन्नता] (मयि) मुझ में (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—जो धार्मिक गृहस्थ विद्वानों को अभय दान करके आदर-पूर्वक गुण ग्रहण करते हैं, वे संसार में आनन्द भोगते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥७४॥

१—३ ॥ भगो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३, त्रिष्टुप् ॥

सांमनस्योपदेशः—एकमता के लिये उपदेश ॥

सं वः पृच्यन्तां तन्वः१ सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१॥

भाषार्थः [हे विद्वानो !] (वः) तुम्हारी (तन्वः) विस्तृत विद्याएं (सम्) यथावत् (मनांसि) मनन सामर्थ्य (सम्) यथावत् (उ) और (व्रता) सब कर्म (सम्) यथावत् (पृच्यन्ताम्) मिले रहें। (अयम्) इस (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पतिः) पति (भगः) भगवान् [ऐश्वर्यवान् परमेश्वर] ने (वः) तुम को (वः) तुम्हारे हित के लिये (सम्) यथावत् (सम् अजीगमत्) मिलाया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परस्पर मिल कर उत्तम विद्याएं, उत्तम विचार, और उत्तम कर्म प्राप्त करके सुख भोगें। यह परमेश्वरकृत नियम है ॥१॥

संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥२॥

भाषार्थः—(वः) तुम्हारे (मनसः) मनन का (संज्ञपनम्) विज्ञापन (अथो) और भी (हृदः) हृदय का (संज्ञपनम्) संतोषक कर्म होवे। (अथो) और भी (भगस्य) भगवान् [की प्राप्ति] का (यत्) जो (श्रान्तम्) तप है, (तेन) उस कारण से (वः) तुमको (संज्ञपयामि) मैं संतुष्ट करता हूं ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग पूर्ण विद्या प्राप्त करके शुद्ध हृदय से भगवान् की भक्ति करके संसार में विद्या प्रचार करें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (उग्राः) तेजस्वी (आदित्याः) प्रकाशमान विद्वान् [अथवा अदीन देव माता अदिति, पृथ्वी वा वेदवाणी के पुत्र समान मान करने वाले] पुरुष (अहृणीयमानाः) सङ्कोच न करते हुए (वसुभिः) उत्तम गुणों और (मरुद्भिः) शत्रुनाशक वीरों के साथ (संबभूवुः) पराक्रमी हुए हैं। (एव) वैसे ही (त्रिणामन्) हे तीनों कालों और तीनों लोकों को झुकाने वाले परमेश्वर! (अहृणीयमानः) क्रोध न करता हुआ तू (इमानि) इन सब (जनान्) जनों को (इह) यहां पर (संमनसः) एकमन (कृधि) कर दे ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार से पूर्वज महात्मा विद्वानों से शिक्षा पाकर उपकारक हुए हैं, इसी प्रकार मनुष्य त्रिलोकीनाथ परमात्मा की भक्ति के साथ एकचित्त होकर परोपकार करें ॥३॥

सूक्तम् ॥७५॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुनिवारणायोपदेशः- शत्रु के हटाने का उपदेश ॥

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥१॥

भाषार्थः - मैं (अमुम्) उस [शत्रु]को (ओकसः) उसके घर से (निर्नुदे) निकालता हूं, (यः सपत्नः) जो शत्रु (पृतन्यति) सेना चढ़ाता है। (इन्द्रः) प्रतापी राजा ने (एनम्) उसको (नैर्बाध्येन) अपने निर्विघ्न (हविषा) ग्राह्य व्यवहार से (परा अशरीत्) मार गिराया है ॥१॥

भावार्थः—सुपरीक्षित शूरवीरों के समान हम पुरुषार्थ करके अपने शत्रुओं को हटावें ॥१॥

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥

भाषार्थः—(वृत्रहा) शत्रुओं वा अन्धकार का नाश करने वाला (इन्द्रः) प्रतापी राजा (तम्) चोर को (परमाम्) अतिशय (परावतम्) दूर भूमि में (नुदतु)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेज देवे। (यतः) जहां से वह (शश्वतीभ्यः) बहुत (समाभ्यः) बरसों तक (पुनः) फिर (न) न (आयति) आवे ॥२॥

भावार्थः—राजा दुराचारी लोगों को दूर स्थान में कारागार के भीतर रक्खे ॥२॥

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति ।
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥३॥

भाषार्थः—जो पुरुष (तिस्रः) तीन [अपने मानुष स्थान, नाम और जाति रूप] (परावतः) उत्कृष्ट भूमियों [वा धामों] को (अति=अतीत्य) उलांघ कर (एतु) चले, और (पञ्च जनान्) पांच [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्ण, और पांचवें नीच योनि, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि] प्राणियों [की मर्यादा] को [उलांघकर] एतु) चले। वह पुरुष (तिस्रः रोचनाः) तीन [जीव, प्रकृति और परमेश्वर की] रुचि योग्य विद्याओं को [अथवा सूर्य, चन्द्र और अग्नि के] प्रकाशों को (अति=अतीत्य) उलांघकर [वहां] (एतु) चला जावे, (यतः) जहां से वह (शश्वतीभ्यः समाभ्यः) बहुत बरसों तक (पुनः) फिर (न) न (आयति) आवे, (यावत्) जब तक (सूर्यः) सूर्य (दिवि) अन्तरिक्ष में (असत्) रहे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य मानुषी मर्यादा को छोड़ कर महाघोर पातक करते हैं उनकी तामसी वृत्ति हो जाती है, और वे जन्म-जन्मान्तरों तक सदा दुःखसागर में डूबे रहते हैं ॥३॥

इस मन्त्र का मिलान करो—ऋग्वेद २। २७। ८, ९ ॥

पद पाठ में (रोचना) पद के स्थान पर सायणभाष्य के अनुसार (रोचनाः) ऐसा पद हमने माना है ॥

सूक्तम् ॥७६॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

आयुर्वर्धनायोपदेशः—आयु बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
सं प्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥१॥

भाषार्थः—(ये) जो पुरुष (चक्षसे) दर्शन के लिये (एनम्) इस [अग्नि] की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परिषीदन्ति) सेवा करते और (समादधति) ध्यान करते हैं। (संप्रेद्धः) [उन करके] अच्छे प्रकार प्रकाशित किया हुआ (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) अपनी जिह्वाओं के सहित (हृदयात्) हमारे हृदय से (अधि) अधिकार पूर्वक (उदेतु) उदय होवे ॥१॥

भावार्थः जो विद्वान् सूर्य, बिजुली आदि अग्नि के गुणों को जानते हैं, उनसे अग्निविद्या प्राप्त करके मनुष्य संसार में फैलावें ॥१॥

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (सांतपनस्य) ताप गुण वाले (अग्नेः) उस अग्नि के (पदम्) प्राप्तियोग्य गुण को (आयुषे) आयु बढ़ाने के लिये (आरभे) प्रस्तुत करता हूँ, (यस्य) जिस [अग्नि] के (आस्यतः) मुख से (उद्यन्तम्) निकलते हुए (धूमम्) धूएं को (अद्धातिः) सत्य जानने वाला पुरुष (पश्यति) देखता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीरस्थ अग्नि और प्रत्यक्ष अग्नि के गुण जान कर शारीरिक बल बढ़ाते और अस्त्र शस्त्र आदि कला यन्त्रों में उसका प्रयोग करते हैं, वे सुख वृद्धि करके अपना जीवन बढ़ाते हैं ॥२॥

यो अस्य समिधं वेदं क्षत्रियेण समाहिताम्।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (क्षत्रियेण) दुःख से बचाने वाले क्षत्रिय करके (समाहिताम्) संभाली हुई (अस्य) इस [अग्नि] की (समिधम्) प्रकाश क्रिया को (वेद) जानता है, (सः) वह पुरुष (अभिह्वारे) कुटिल स्थान में (मृत्यवे) मृत्यु पाने के लिये (पदम्) अपना पैर (न) नहीं (निदधाति) जमाता है ॥३॥

भावार्थः जहां पर राजप्रबन्ध से शिल्प, कला, यन्त्र आदि में अग्नि का यथावत् प्रयोग किया जाता है, वहां मनुष्य मृत्यु के कारण दरिद्रता आदि से निर्भय रहते हैं ॥३॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वन्नाम गृह्णात्यायुषे ॥४॥

भाषार्थः—(एनम्) उस [क्षत्रिय] को (पर्यायिणः) घेरने वाले शत्रु (न) नहीं (घ्नन्ति) मारते हैं, और (न) न वह (सन्नान्) घात में बैठने वालों को (अवगच्छति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता है। (यः) जो (विद्वान्) विद्वान् (क्षत्रियः) क्षत्रिय (अग्नेः) अग्नि के (नाम) नाम को (आयुषे) आयुष बढ़ाने के लिये (गृह्णाति) लेता है ॥४॥

भावार्थः—जो राजा अग्नि के गुण जान कर कलाकुशल होकर अपना बल बढ़ाता है वह शत्रुओं से सदा निर्भय रहता है ॥४॥

सूक्तम् ॥७७॥

१–३ ॥ गोपा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

संपदाप्राप्त्युपदेशः—संपदा पाने का उपदेश ॥

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥१॥

भाषार्थः—(द्यौः) सूर्य लोक (अस्थात्) ठहरा हुआ है, (पृथिवी) पृथिवी (अस्थात्) ठहरी हुई है, (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (अस्थात्) ठहरा हुआ है, (पर्वताः) सब पर्वत (आस्थाने) विश्रामस्थान में (अस्थुः) ठहरे हुए हैं। (अश्वान्) घोड़ों को (स्थाम्नि) स्थान पर (अतिष्ठिपम्) मैंने खड़ा कर दिया है ॥१॥

भावार्थः जैसे मनुष्य घोड़े आदि पशुओं को रसरी से बांधता है, वैसे ही सूर्य आदि लोक परमेश्वर नियम से परस्पर आकर्षण द्वारा स्थित हैं, वैसे ही मनुष्यों को धार्मिक कर्मों के लिये सदा कटिबद्ध रहना चाहिये ॥१॥

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जिस (गोपाः) भूमिपालक राजा ने (परायणम्) निकल जाने का सामर्थ्य (उदानट्) पाया है, (यः) जिस ने (न्ययनम्) भीतर जाने का सामर्थ्य, और (यः) जिसने (आवर्तनम्) घूमने और (निवर्तनम्) लौटने का सामर्थ्य (उदानट्) पाया है, (तम्) उसको (अपि) ही (हुवे) मैं बुलाता हूं ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य नीतिनिपुण और कलाकुशल होवे, उसका आदर-सत्कार सब मनुष्य करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—म० १० सू० १६ म० ५ ॥

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बहुत धन वाले पुरुष ! [हमारी ओर] (नि वर्तय) लौट आ। (ते) तेरे (आवृतः) आगमन के उपाय (शतम्) सौ, और (ते) तेरे (उपावृतः) समीप में भ्रमण मार्ग (सहस्रम्) सहस्र (सन्तु) होवें। (ताभिः) उन क्रियाओं से (नः) हमें (पुनः) अवश्य (आ कृधि) स्वीकार कर ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने विद्याबल से अनेक रक्षा के उपाय जानते हैं, मनुष्य उनको सहायता प्राप्त करते रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥७८॥

१—३ ॥ दम्पती देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

गृहस्थधर्मोपदेशः—गृहस्थ के धर्म का उपदेश ॥

तेनं भूतेनं हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह पुरुष (तेन) उस [प्रसिद्ध] (भूतेन) बहुत (हविषा) ग्राह्य अन्न के साथ (आ) सब ओर से (पुनः) अवश्य (प्यायताम्) बढ़ती करे। (अस्मै) इस पुरुष को (याम् जायाम्) जो वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी (आवाक्षुः) उन लोगों ने प्राप्त कराई है, (ताम् अभि) उस पत्नी के लिये वह [पति] (रसेन) अनुराग से वा पराक्रम से (वर्धताम्) बढ़े ॥१॥

भावार्थः—अन्न आदि पदार्थों के उपार्जन का पूर्ण सामर्थ्य प्राप्त करके माता पिता आचार्य आदि की अनुमति से स्त्री पुरुष गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके पुरुषार्थपूर्वक उन्नति करें ॥१॥

अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥२॥

भाषार्थः—(पयसा) प्राप्ति योग्य अन्न से और (राष्ट्रेण) राज्य वा ऐश्वर्य से (अभि) पत्नी के लिये (वर्धताम्) पति बढ़े, और (अभि) पति के लिये (वर्धताम्) पत्नी बढ़े। (सहस्रवर्चसा) सहस्र प्रकार के तेज वाले (रय्या) धन से (इमौ) यह दोनों (अनुपक्षितौ) घटती विना [सदा भरपूर] (स्ताम्) रहें ॥२॥

भावार्थः—जिस घर में स्त्री पुरुष प्रसन्न रह कर पुरुषार्थपूर्वक परस्पर सहाय करते हैं, वहां सब प्रकार की सम्पदा सदा विराजमान रहती है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥३॥

भाषार्थः—(त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर ने [तेरे हित के लिये] (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी को, और (त्वष्टा) विश्वकर्मा ने (अस्यै) इस पत्नी के लिये (त्वाम्) तुझे (पतिम्) पति (अजनयत्) उत्पन्न किया है। (त्वष्टा) वही विश्वकर्मा (सहस्रम्=सहस्राणि) बल देने वाले (आयूंषि) जीवन साधन और (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (वाम्) तुम दोनों के लिये (कृणोतु) करे ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष परमेश्वर की आज्ञा मान कर परस्पर हित करते हैं, वे अनेक प्रकार की वृद्धि करके अति आनन्द और कीर्ति पाते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥७९॥

१—३ ॥ नभसस्पतिर्देवता ॥ १, २ गायत्री; ३ षडक्षरा पञ्चपदा गायत्री ॥

सर्वसम्पत्तिप्राप्त्युपदेशः—सर्वसम्पत्ति पाने का उपदेश ॥

अयं नो नभसस्पतिः सं स्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (नभसः) सूर्यलोक का (पतिः) स्वामी परमेश्वर (संस्फानः) यथावत् बढ़ता हुआ (नः) हमारे लिये (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (असमातिम्) असामान्य [विशेष] लक्ष्मी वा बुद्धि (अभि) सब ओर से (रक्षतु) रक्खे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य आदि लोकों के स्वामी परमात्मा की महिमा विचारते हुए विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति से असाधारण धन और बुद्धि पाकर आनन्द भोगें ॥१॥

त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय । आ पुष्टमेत्वा वसु ॥२॥

भाषार्थः—(नभसस्पते) हे सूर्यलोक के स्वामी (त्वम्) तू (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (ऊर्जम्) बल बढ़ाने वाला अन्न (धारय) धारण कर। (पुष्टम्) पुष्टि (आ) और (वसु) धन (आ एतु) चला आवे ॥२॥

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करके जो मनुष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की वृष्टि ताप आदि से उपकार लेते हैं, वे ही सब प्रकार की वृद्धि और धन प्राप्त करते हैं ॥२॥

देव संस्फान सहस्रपोषस्यैशिषे । तस्य नो रास्व
तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम । ३॥

भाषार्थः - (संस्फान) हे सब प्रकार वृद्धि वाले (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (सहस्रपोषस्य) सहस्र प्रकार के पोषण का (ईशिषे) तू स्वामी है । (तस्य) उस [पोषण] का (नः) हमें (रास्व) दान कर, (तस्य) उसका (नः) हमारे लिये (धेहि) धारण कर, (तस्य ते) उस तेरी (भक्तिवांसः) भक्तिवाले (स्याम) हम होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की भक्तिपूर्वक पुरुषार्थ करके उसके अक्षय भंडार से सब प्रकार के अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके सदा सुखी रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥८०॥

१ ३ ॥ परमात्मा देवता ॥ १, २ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परमात्ममहिमोपदेशः—परमात्मा की महिमा का उपदेश ॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१॥

भाषार्थः - वह [परमेश्वर] (अन्तरिक्षेण) आकाश के समान अन्तर्यामी रूप से (विश्वा) सब (भूता) जीवों को (अवचाकशत्) अत्यन्त देखता हुआ (पतति) ईश्वर होता है । (शुनः) उस व्यापक (दिव्यस्य) दिव्य स्वरूप परमेश्वर का (यत् महः) जो महत्त्व है, (तेन) उसी [महत्त्व] से (ते) तेरे लिये [हे परमेश्वर !] (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा करें ॥१॥

भावार्थः सर्वशक्तिमान् परमेश्वर घट घट वासी होकर सब को कर्मों का फल देता है, उसकी आज्ञा पालन करके हम सदा धर्म आचरण करें ॥१॥

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (कालकाञ्जाः) काल अर्थात् सब की संख्या करने वाले परमेश्वर के प्रकाश (दिवि) आकाश में (श्रिताः) आश्रित (त्रयः) तीन (देवाः इव) देवताओं [अग्नि, वायु और सूर्य निरु० ७। ५] के समान वर्तमान हैं। (तान्) उन (सर्वान्) सब [परमेश्वर के प्रकाशों] को (अस्मै) इस [जीव] के हित के लिये (ऊतये) रक्षा करने और (अरिष्टतातये) क्षेम करने को (अह्वे) मैंने बुलाया है ॥२॥

भावार्थः मनुष्य स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा की महिमायें सर्वत्र साक्षात् करके अपनी रक्षा करें ॥२॥

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३॥

भाषार्थः—(अप्सु) प्राणों में [हे परमेश्वर] (ते) तेरा (जन्म) प्रादुर्भाव है, (दिवि) सूर्य मण्डल में (ते) तेरा (सधस्थम्) सहवास है, (समुद्रे अन्तः) अन्तरिक्ष के भीतर और (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ते) तेरी (महिमा) महिमा है। (शुनः) व्यापक (दिव्यस्य) दिव्यस्वरूप परमेश्वर का (यत् महः) जो महत्त्व है (तेन) उसी [महत्त्व] से (ते) तेरे लिये [हे परमेश्वर!] (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) हम सेवा करें ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर को परमाणु से लेकर स्थूल से स्थूल पदार्थों में साक्षात् करते हैं, वे योगी जन आत्मबल प्राप्त करके सुखी रहते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥८१॥

१—३ ॥ वस्पती देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

उत्तमगर्भधारणोपदेशः—उत्तम गर्भधारण का उपदेश ॥

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षाँसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे पुरुष]! तू (यन्ता) नियम में चलने वाला (असि) है, तू (हस्तौ) अपने दोनों हाथों को [सहायता के लिए] (यच्छसे) देने वाला है, तू (रक्षांसि) राक्षसों [विघ्नों] को (अप सेधसि) हटाता है। (प्रजाम्) प्रजा (च) और (धनम्) धन को (गृह्णानः) सहारा देते हुए (अयम्) यह आप (परिहस्तः) हाथ का सहारा देने वाले (अभूत्) हुए हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष ही सब दरिद्रता आदि विघ्नों को हटा कर प्रजा और धन की रक्षा करके गृहस्थ आश्रम चलाने में समर्थ होते हैं ॥१॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥२॥

भाषार्थः—(परिहस्त) हे हाथ का सहारा देने वाले पुरुष ! (योनिम्) घर को (गर्भाय धातवे) गर्भ पुष्ट करने के लिये (वि) विशेष करके (धारय) संभाल । (मर्यादे) हे मर्यादायुक्त पत्नी ! (पुत्रम्) [गर्भस्थ] कुल शोधक सन्तान को (आ) भले प्रकार से (धेहि) पुष्ट कर । (त्वम्) तू (तम्) उस [सन्तान] को (आगमे) योग्य समय पर (आ गमय) उत्पन्न कर ॥२॥

भावार्थः—उचित गृह आदि से यथावत् गर्भरक्षा करके पति-पत्नी सावधान रहें जिससे बालक पूरे दिनों में उत्पन्न होवे ॥२॥

यं परिहस्तमबिभरददितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३॥

भाषार्थः—(पुत्रकाम्या) उत्तम सन्तान की कामना वाली (अदितिः) अखण्डव्रता स्त्री ने (यम्) जिस [जैसे] (परिहस्तम्) हाथ का सहारा देने वाले पति को (अबिभः) धारण किया है । (त्वष्टा) विश्वकर्मा वा शिल्पी परमात्मा (तम्) उस [वैसे ही पति] को (अस्यै) इस पत्नी के लिए (आ बध्नात्) नियमबद्ध करे (यथा) जिससे वह पत्नी (पुत्रम्) कुलशोधक सन्तान (जनात्) उत्पन्न करे, (इति) यही प्रयोजन है ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार स्त्री पुरुष वेदविहित रीति से प्रेम के साथ उत्तम सन्तान उत्पन्न करते रहे हैं, उसी प्रकार से स्त्री पुरुष परस्पर अनुराग के साथ श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करें ॥३॥

सूक्तम् ॥८२॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विवाहसंस्कारोपदेशः विवाह संस्कार का उपदेश ॥

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - (आयतः) अति यत्नशाली वा नियमवान् मैं (आगच्छतः) आते हुए और (आगतस्य) आये हुए पुरुष का (नाम) नाम [कीर्ति] (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। (वृत्रघ्नः) अन्धकारनाशक, (वासवस्य) बहुत धन वाले और (शतक्रतोः) सैकड़ों कर्मों वाले (इन्द्रस्य) संपूर्ण ऐश्वर्य्य वाले परमात्मा की (वन्वे) मैं प्रार्थना करता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर से प्रार्थना करके प्रयत्न करें जिससे उनके आचरण वर्तमान और पूर्वज महात्माओं के समान धार्मिक होवें ॥१॥

येन॑ सू॒र्यां सा॑वि॒त्रीम॒श्विनो॒ हतुः॑ प॒था ।
तेन॒ मामब्रवीद् भगो॑ जा॒यामा व॑हता॒दिति॑ ॥२॥

भाषार्थः—(येन पथा) जिस मार्ग से (अश्विना) दिन और रात्रि ने (सावित्रीम्) सूर्य सम्बन्धी (सूर्याम्) ज्योति को (ऊहतुः) प्राप्त किया है। (तेन) उसी [मार्ग से] (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली भार्या को (आ) मर्यादा-पूर्वक (वहतात्) तू प्राप्त कर, (इति) यह बात (भगः) बड़े ऐश्वर्यवाले भगवान् ने (माम्) मुझसे (अब्रवीत्) कही है ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वर ने आज्ञा दी है कि जिस प्रकार दिन और रात सूर्य की गति के आश्रित होकर उपकार करते हैं इसी प्रकार स्त्री पुरुष धर्म के लिये ही विवाह संस्कार करें ॥२॥

यस्ते॑ऽङ्कु॒शो व॑सु॒दानो॑ बृह॒न्निन्द्र॑ हिर॒ण्ययः॑ ।
तेना॑ जनीयते॒ जायां॒ मह्यं॑ धेहि शचीपते ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर ! (यः) जो (ते) तेरा (अंकुशः) गणना व्यवहार [अथवा अंकुश, दुष्कर्मों का दण्ड] (बृहन्) बहुत बड़ा और (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप और (वसुदानः) धन देने वाला है। (तेन) उसी के द्वारा, (शचीपते) वाणी वा कर्म वा बुद्धि के रक्षक परमेश्वर ! (जनीयते) पत्नी की इच्छा वाले (मह्यम्) मुझे (जायाम्) वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी (धेहि) दे ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर के उत्तम २ गुणों को अपने में धारण करके विद्यावान् और धनवान् होकर पति पत्नी को और पत्नी पति को अपने सदृश ग्रहण करें ॥३॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥८३॥

१—४ ॥ वैद्यो देवता ॥ १–३ अनुष्टुप्; ४ जगती छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग नाश करने का उपदेश ॥

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(अपचितः) हे सुख नाश करने वाली गंडमाला आदि पीड़ाओ ! (प्र पतत) चली जाओ, (सुपर्णः इव) जैसे शीघ्रगामी पक्षी [श्येन] (वसतेः) अपनी वसती से । (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला [वैद्य वा सूर्य लोक] (भेषजम्) औषध (कृणोतु) करे और (चन्द्रमाः) आनन्द देने वाला [वैद्य वा चन्द्र लोक] (वः) तुम को (अप उच्छतु) निकाल देवे ॥१॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य गंडमाला आदि रोगों को सूर्य वा चन्द्रमा की किरणों द्वारा वा अन्य औषधों से अच्छा करता है, वैसे ही मनुष्य विद्या की प्राप्ति से अविद्या का नाश करके सुखी होवें ॥१॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥२॥

भाषार्थः—(एका) एक [गण्डमाला आदि] (एनी) चितकबरी (एका) एक (श्येनी) श्वेतवर्ण, (एका) एक (कृष्णा) काली और (द्वे) दो (रोहिणी) लाल रंग हैं । (सर्वासाम्) सब [गण्डमाला आदि पीड़ाओं] का (नाम) नाम (अगृभम्) मैंने ग्रहण किया है, (अवीरघ्नीः) अवीरों कातरों को नाश करती हुई (अप इतन) तुम चली जाओ ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार चिकित्सक रोग का वात पित्त श्लेष्म आदि निदान समझ कर गंडमाला आदि रोगों की निवृत्ति करता है । उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य अपनी कुवासनाओं का कारण समझ कर उनका नाश करे ॥२॥

असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नङ्क्ष्यति ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (रामायणी) प्राण वायु के रमणस्थान नाड़ियों में मार्गवाली (अपचित्) सुख नाश करने वाली गण्डमाला आदि पीड़ा (असूतिका) बाँझ होकर (प्र पतिष्यति) चली जायगी। (ग्लौः) हर्षनाशक घाव (इतः) इस [रोगी] से (प्र पतिष्यति) चला जावेगा (सः) वह [घाव] (गलुन्तः) गलाव से कोमल होकर (नशिष्यति) नष्ट हो जावेगा ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार सद्वैद्य की ओषधि से रोग बढ़ने से रुककर नष्ट हो जाता है, वैसे ही मनुष्य विद्या की प्राप्ति से अविद्या को मिटा कर सुखी होता है ॥३॥

वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (मनसा) मन से (जुषाणः) प्रीति करता हुआ तू (स्वाम्) अपनी (आहुतिम्) धर्म से देने लेने योग्य क्रिया को (वीहि) प्राप्त हो, (यत्) क्योंकि (स्वाहा) सुन्दर वाणी से और (मनसा) उत्तम विचार से (इदम्) ऐश्वर्य का कारण ज्ञान (जुहोहि) मैं देता हूं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर और विद्वानों के उपदेश के अनुसार विचार-पूर्वक पुरुषार्थ के साथ अपना कर्तव्य पालन करके प्रसन्न होवे ॥४॥

सूक्तम् ॥८४॥

१–४ ॥ निर्ऋतिर्देवता ॥ १ जगती; २ गायत्री; ३, ४ त्रिष्टुप् ॥

पापमोचनायोपदेशः—पाप से मुक्ति का उपदेश ॥

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् । भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥१॥

भाषार्थः (यस्याः) जिस (ते) तेरे (घोरे) भयानक (आसनि) मुख में (एषाम्) इन (बद्धानाम्) बंधे हुए प्राणियों के (अवसर्जनाय) छुड़ाने के लिये (कम्) कमनीय व्यवहार को (जुहोमि) मैं देता हूं। (त्वा) उस तुझको (जनाः) पामर लोग (भूमिः इति) यह भूमि अर्थात् आश्रय देने वाली है (अभिप्रमन्वते) मानते हैं; (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (निर्ऋतिः इति) यह अलक्ष्मी है (सर्वतः) सब प्रकार से (परि वेद) भली भांति जानता हूं ॥१॥

भावार्थः—अज्ञानी मनुष्य दुष्क्रिया को अपनी उन्नति की (भूमि) आश्रय समझते हैं; और बुद्धिमान् मनुष्य उसको (निर्ऋति) अलक्ष्मी अर्थात् अवनति का कारण जानते हैं, इस लिये विद्वान् मनुष्य अज्ञान बन्धन में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फंसे हुए प्राणियों के छुड़ाने के लिये अलक्ष्मी के कारणों को जताकर उत्तम व्यवहार का उपदेश करें ॥१॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमा नमूनेनसः स्वाहा ॥२॥

भाषार्थः—(भूते) हे चिन्ता योग्य [अलक्ष्मी !] [हमारे लिये] (हविष्मती) देने और लेने योग्य क्रिया वाली (भव) हो, (एषः) यह (ते) तेरा (भागः) सेवनीय व्यवहार है, (यः) जो (अस्मासु) हम लोगों के बीच होवे। "(इमान्) इन [इस जन्म वाले] और (अमून्) उन [अगले वा पिछले जन्म वाले] जीवों को (एनसः) पाप से (मुञ्च) मुक्त करदे, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है" ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य तीव्र तप अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थ करके भूत भविष्यत् और वर्तमान् क्लेशों के फल को नाश करके सुखी होवे ॥२॥

एवो ष्व १ स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वा ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

भाषार्थः—(निर्ऋते) हे अलक्ष्मी ! (त्वम्) तू (अनेहाः) न मारने वाली होकर (अस्मत्) हमसे (अयस्मयान्) लोहे की बनी (बन्धपाशान्) बन्धन की बेड़ियों को (एवो) अवश्य ही (सु) भले प्रकार (वि चृत) खोल दे। (यमः) न्यायकारी परमेश्वर (मह्यम्) मेरे लिये (पुनः) वारंवार (इत्) ही (त्वाम्) तुझको (ददाति) देता है, (तस्मै) उस (यमाय) न्यायकारी परमेश्वर को (मृत्यवे) दुःखरूप मृत्यु नाश करने के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पाप कर्मों को छोड़ कर सदा धर्म का आचरण करें। परमेश्वर अपनी न्यायव्यवस्था से पापियों को सदा दण्ड देता है ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से अ० ६। ६३। २ में आ चुका है ॥३॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिषे इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (इह) यहां पर (मृत्युभिः) मृत्यु के कारणों से (ये) जो (सहस्रम्) सहस्र प्रकार हैं (अभिहितः) घिरा हुआ तू (अयस्मये) लोहे से जकड़े हुए (द्रुपदे) काठ के बन्धन में (बेधिषे=बध्यसे) बंध रहा है। (यमेन) नियम से (पितृभिः) पालन करने वाले ज्ञानियों से (संविदानः) मिला हुआ (त्वम्) तू

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमम्) इस पुरुष को (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) आनन्द में (अधि रोहय) ऊपर चढ़ा ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पापों के कारण बड़े बड़े कष्ट उठाते हैं, वे विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पद प्राप्त करें ॥४॥

यह मन्त्र अ० ६ । ६३ । ३ में आ चुका है ॥

सूक्तम् ॥८५॥

१–३ ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग के नाश के लिये उपदेश ॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (देव) दिव्य गुणवाला, (वनस्पतिः) सेवनीय गुणों का रक्षक (वरणः) स्वीकार करने योग्य [वैद्य अथवा वरणा अर्थात् वरुणवृक्ष] [राजरोग आदि को] (वारयातै) हटावे । (यः) जो (यक्ष्मः) राजरोग (अस्मिन्) इस पुरुष में (आविष्टः) प्रवेश कर गया है (तम्) उसको (उ) निश्चय करके (देवाः) व्यवहार जानने वाले विद्वानों ने (अवीवरन्) हटाया है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार से सद्वैद्य पूर्वज विद्वानों से शिक्षा पाकर बड़े बड़े रोगों को वरण वा अन्य ओषधि द्वारा मिटाता है, वैसे ही मनुष्य उत्तम गुण को प्राप्त करके दुष्कर्मों का नाश करे ॥१॥

(वरणः) ओषधि विशेष भी है जिसको वरुण, वरणा और उरण आदि कहते हैं । वरण कटु, उष्ण, रक्तदोष, शीत वात हरने वाला, चिकना और दीपन है ॥

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्रस्य) प्रतापी, (मित्रस्य) स्नेही (च) और (वरुणस्य) सेवनीय पुरुष के (वचसा) वचन से और (सर्वेषाम्) सब (देवानाम्) व्यवहार जानने वाले विद्वानों के (वाचा) वचन से (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (वयम्) हम लोग (वारयामहे) हटाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों से शिक्षा पाकर वैद्य रोगों की निवृत्ति करता है, इसी प्रकार मनुष्य अपने दोषों की निवृत्ति करें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३॥

भाषार्थः —(यथा) जैसे (वृत्रः) मेघ ने (विश्वधा) सब ओर (यतीः) बहती हुई (इमाः) इन (आपः=अपः) जलधाराओं को (तस्तम्भ) रोका था। (एव) वैसे ही (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (वैश्वानरेण) सब मनुष्यों के हित करने वाले (अग्निना) अग्नि से (वारये) मैं हटाता हूं ॥३॥

भावार्थः—जैसे मेघ ईश्वर नियम से जल की भाफों को मेघमण्डल में रोक लेता है, उसी प्रकार वैद्य रोगी की पाचन शक्ति ठीक करके रोग को रोक दे ॥३॥

सूक्तम् ॥८६॥

१—३ ॥ एकवृषो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

साम्राज्योपदेशः—साम्राज्य पाने का उपदेश ॥

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥१॥

भाषार्थः —(अयम्) यह [परमेश्वर] (इन्द्रस्य) सूर्य का (वृषा) स्वामी, (दिवः) अन्तरिक्ष का (वृषा) स्वामी, (पृथिव्याः) पृथिवी का (वृषा) स्वामी और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) प्राणियों का (वृषा) स्वामी है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता और सर्वशासकता विचार कर अपनी शक्ति बढ़ा कर चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त करे ॥१॥

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥२॥

भाषार्थः – (समुद्रः) समुद्र (स्रवताम्) बहते हुए जलों का (ईशे=ईष्टे) स्वामी है, (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी का (वशी) वश में करने वाला है। (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (नक्षत्राणाम्) चलने वाले नक्षत्रों का (ईशे) अधिष्ठाता है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य समुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि लोकों की आकर्षण शक्ति देख कर अपना सामर्थ्य बढ़ावे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् ।
देवानामर्ध भागसि त्वमेकवृषो भव ॥३॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (असुराणाम्) बुद्धिमानों का (सम्राट्) सम्राट्, और (मनुष्याणाम्) मननशील—मनुष्यों का (ककुत्) शिखा (असि) है। (देवानाम्) जय चाहने वालों की (अर्धभाक्) वृद्धि का बांटने वाला (असि) है, [हे पुरुष !] (त्वम्) तू (एकवृषः) अकेला स्वामी (भव) हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सब से अधिक गुणी होकर चक्रवर्ती राजा बने ॥३॥

सूक्तम् ॥८७॥

१—३ ॥ राज्ञः स्तुतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राज तिलक यज्ञ के लिये उपदेश ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (त्वा) तुझको (आ=आनीय) लाकर (अहार्षम्) मैंने स्वीकार किया है। (अन्तः) सभा के मध्य (अभूः) तू वर्तमान हुआ है। (ध्रुवः) निश्चित बुद्धि और (अविचाचलत्) निश्चलस्वभाव होकर (तिष्ठ) स्थिर हो (सर्वाः) सब (विशः) प्रजायें (त्वा वाञ्छन्तु) तेरी कामना करें, (राष्ट्रम्) राज्य (त्वत्) तुझसे (मा अधिभ्रशत्) कभी भ्रष्ट न होवे ॥१॥

भावार्थः प्रजागण सबसे उत्तम पुरुष को राजा बना कर उपदेश करें, जिससे वह सदा धार्मिक पुरुषार्थी रहे और बुरे आचरण से राज्य नष्ट न होवे ॥१॥

यह सूक्त ऋग्वेद में है—१०। १७३। १—३। और यह मन्त्र यजुर्वेद में है—१२। ११ ॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (पर्वतः इव) पहाड़ के समान (अविचाचलत्) निश्चल स्वभाव तू (इह एव) यहां ही (एधि) रह, (मा अप च्योष्ठाः) कदापि मत गिर। (इन्द्रः इव) सूर्य के समान (इह) यहां पर (ध्रुवः) स्थिर स्वभाव होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिष्ठ) ठहर, (उ) और (इह) यहां पर (राष्ट्रम्) राज्य को (धारय) अधिकार में रख ॥२॥

भावार्थः प्रजागण धार्मिक राजा का यथावत् सहाय करें जिससे वह प्रजापालन में ऐसा दृढ़ रहे, जैसे सूर्य अपनी कक्षा में स्थिर रह कर वृष्टि आदि से अनेक लोकों का पालन करता है ॥२॥

इन्द्रं एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (ध्रुवेण) दृढ़ (हविषा) देने लेने योग्य शुभकर्म के साथ (एतम्) इस राजा को (ध्रुवम्) दृढ़ (अदीधरत्) स्थापित किया है। (अयम्) यही (सोमः) सबका उत्पन्न करने वाला (च) और (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड और वेद का पालक परमेश्वर (तस्मै) उस राजा को (अधि) अधिक अधिक (ब्रवत्) उपदेश करे ॥३॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि परमेश्वर में श्रद्धा करके प्रजा-पालन, विद्या आदि शुभकर्म करता हुआ सदा उन्नति करे ॥३॥

सूक्तम् ॥८८॥

१–३ ॥ राज्ञः स्तुतिर्देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ॥

राजसूययज्ञोपदेशः—राजतिलक यज्ञ का उपदेश ॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवास पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥१॥

भाषार्थः—(द्यौः) सूर्यलोक (ध्रुवा) दृढ़ है, (पृथिवी) पृथिवी (ध्रुवा) दृढ़ है। (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (ध्रुवम्) दृढ़ है। (इमे) यह सब (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) दृढ़ हैं, (विशाम्) प्रजाओं का (अयम्) यह (राजा) राजा (ध्रुवः) दृढ़स्वभाव है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य आदि पदार्थ अपने अपने कर्त्तव्य में दृढ़ हैं, ऐसे ही निश्चलस्वभाव धर्मात्मा पुरुष को प्रजा लोग अपना राजा चुनें ॥१॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(राजा) सबका राजा (वरुणः) वरुण, सेवनीय परमेश्वर (ते) तेरे लिये (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राज्य को (ध्रुवम्) स्थिर, (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का पालन करने वाला परमात्मा (ध्रुवम्) स्थिर, (च) और (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (ध्रुवम्) स्थिर, (च) और (अग्निः) सर्वव्यापक ईश्वर (ध्रुवम्) स्थिर (धारयताम्) रक्खे ॥२॥

भावार्थः—बली प्रतापी राजा परमात्मा की शासन शक्ति विचार कर प्रजा पालन में सदा कटिबद्ध रहे ॥२॥

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूंञ्छत्रयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ध्रुवः) दृढ़ और (अच्युतः) अचल होकर तू (शत्रून्) शत्रुओं को (प्र मृणीहि) नाश कर दे और (शत्रूयतः) शत्रु समान आचरण करने वाले (अधरान्) नीचों को (पादयस्व) अपने पैर से दबा दे। (इह) यहां पर (ध्रुवायते) तुझ निश्चल स्वभाव के लिये (सध्रीचीः) साथ साथ रहने वाली (सर्वाः) सब (दिशः) दिशायें (संमनसः) एक मनवाली हों, और (समितिः) यह सभा (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥३॥

भावार्थः—शूरवीर प्रतापी राजा सब विरोधी दुष्कर्मियों को नाश करके सब देशों की प्रजाओं को वश में रख कर अपनी राजसभा को प्रबल बनावे ॥३॥

सूक्तम् ८९ ॥

१—३ ॥ पुरुषार्थो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुपराजयोपदेशः—शत्रु को जीतने का उपदेश ॥

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥१॥

भाषार्थः—(प्रेण्यः=प्रेण्याः) तृप्त करने वाली ओषधि का (यत्) जो (इदम्) यह (शिरः) मस्तकबल और (सोमेन) सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर करके (दत्तम्) दिया हुआ (वृष्ण्यम्) जो वीरत्व है। (ततः) उससे (परि) सब प्रकार (प्रजातेन) उत्पन्न हुए [साहस] से (ते) तेरी (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति को (शोचयामसि) हम शोक में डालते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सोमलता आदि उत्तम ओषधियों के सेवन से और परमेश्वर के दिये बल से शत्रुओं को पीड़ित करें ॥१॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्यङ् माभेवान्वेतु ते मनः ॥२॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (ते) तेरी (हार्दिम्) हार्दिक शक्ति को (शोचयामसि) हम शोक में डालते हैं। (ते) तेरे (मनः) मन अर्थात् मनन सामर्थ्य को (शोचयामसि) हम शोक में डालते हैं, (ते) तेरा (मनः) मन (माम् एव अनु) मेरे ही पीछे पीछे (एतु) चले, (इव) जैसे (सध्र्यङ्) [वायु से] मिला हुआ (धूमः) धुंआं (वातम्) वायु के [साथ साथ चलता है] ॥२॥

भावार्थः—बलवान् मनुष्य शत्रु को उसके शरीर और आत्मा से व्याकुल करके सदा अपने वश में रक्खे ॥२॥

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (मित्रावरुणौ) मेरे प्राण और अपान वायु (त्वा) तुझको, और (देवी) दिव्यगुणवाली (सरस्वती) विज्ञानयुक्त विद्या (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझ से, और (भूम्याः) भूमिका (मध्यम्) मध्यस्थान और (उभौ) दोनों (अन्तौ) अन्त (त्वा) तुझको (मह्यम्) मुझसे (सम् अस्यताम्) संयुक्त करें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य अपने शारीरिक और आत्मिक बल और सांसारिक पदार्थों के अनुकूल वर्ताव से शत्रुओं को अपने वश में रक्खे ॥३॥

सूक्तम् ९० ॥

१—३ ॥ रुद्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

कर्मफलोपदेशः—कर्म के फल का उपदेश ॥

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (रुद्रः) पापियों के रुलाने वाले परमेश्वर ने (ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) अङ्गों [शरीर] को पीड़ा देने (च) और (हृदयाय) हृदय [आत्मा] दुःखाने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) बरछी [पीड़ा] को (आस्यत्) छोड़ा है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इदम्) सो (अद्य) अब (विषूचीम्) नाना गति वाली (ताम्) उस [बरछी] को (वयम्) हम लोग (त्वत्) तुझ से (वि वृहामसि=०-मः) उखाड़ते हैं ॥१॥

भावार्थः- परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से पापियों को शारीरिक और आत्मिक दुःख देता और सुकर्म करने पर उन्हें उस क्लेश से छुड़ाकर आनन्दित करता है ॥१॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥२॥

भाषार्थः (याः) जो (शतम्) सौ [असंख्य] (धमनयः) नाड़ियां (ते) तेरे (अङ्गानि अनु) अङ्गों में (विष्ठिताः) फैली हुई हैं। (ते) तेरी (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब [नाड़ियों] के (विषाणि) विषों को (निः=निष्कृष्य) निकाल कर (वयम्) हम (ह्वयामसि=० मः) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थः- जैसे वैद्य शरीर के भीतरी रोगों को समझ कर दूर करता है, वैसे ही विद्वान् आत्मदोषों को मिटावे ॥२॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥३॥

भाषार्थः—(रुद्र) हे पापियों के रुलाने वाले परमेश्वर ! (अस्यते) [बरछी वा बाण] छोड़ने वाले (ते) तुझको (नमः) नमस्कार है, (प्रतिहितायै) तानी हुई [बरछी] को (नमः) नमस्कार है, (विसृज्यमानायै) छुटती हुई को (नमः) नमस्कार है, और (निपतितायै) लक्ष्य पर पड़ी हुई [बरछी] को (नमः) नमस्कार है ॥३॥

भावार्थः- मनुष्य परमेश्वर की विविध दण्डव्यवस्था को विचार कर उसकी उपासना करके पापों से बचें ॥३॥

सूक्तम् ॥९१॥

१-३ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

आत्मिकदोषनाशोपदेशः—आत्मिक दोष नाश करने का उपदेश ॥

इमं यवमष्टायोगैः षडयोगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥१॥

भाषार्थः—(इमम्) इस [सर्वव्यापी] (यवम्) संयोग वियोग करने वाले परमेश्वर को (अष्टायोगैः) आठ प्रकार के [यम नियम आदि] योगों से और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(षड्योगेभिः) छह प्रकार के [पढ़ना पढ़ाना आदि] ब्राह्मणों के कर्मों से (अचर्कृषुः) उन [महात्माओं] ने कर्षण अर्थात् परिश्रम से प्राप्त किया है। (तेन) उसी [कर्म] से (ते) तेरे (तन्वः) शरीर के (रपः) पाप को (अपाचीनम्) विपरीत गति करके (अप व्यये) मैं हटाता हूं ॥१॥

भावार्थः जिस प्रकार से महर्षियों ने योगसाधन और ब्राह्मण कर्म से ईश्वर को प्राप्त किया है, इसी प्रकार विद्वान् मनुष्य ईश्वर प्राप्ति से आत्मदोष त्यागकर आनन्दित होवें ॥१॥

आठ प्रकार के योगाङ्ग यह हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥

योगदर्शन २। २९।

अर्थात् १—यम, २—नियम, ३—आसन, ४—प्राणायाम, ५—प्रत्याहार, अर्थात् जितेन्द्रियता, ६—धारणा, ७—ध्यान और ८—समाधि, यह आठ योग के अङ्ग हैं ॥

ब्राह्मणों के छह कर्म यह हैं:—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनुः १। ८८।

१—पढ़ना, २ पढ़ाना, ३—यज्ञ करना, ४—यज्ञ कराना, ५—दान देना और ६—दान लेना, यह छह कर्म [प्रभु ने] ब्राह्मणों के बताये हैं ॥

न्यं१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥२॥

भाषार्थः—(वातः) वायु (न्यक्) नीचे की ओर (वाति) बहता है, (सूर्यः) सूर्य (न्यक्) नीचे की ओर (तपति) तपता है (अघ्न्या) न मारने योग्य गौ (नीचीनम्) नीचे को (दुहे=दुग्धे) दूध देती है, [हे मनुष्य!] (ते) तेरा (रपः) दोष (न्यक्) नीचे की ओर (भवतु) होवे ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार वायु आदि पदार्थ निर्दोष होकर उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य दोषों को त्याग कर उपकारी हों ॥२॥

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः - (आपः) शुभकर्म वा जल (इत् वै उ) अवश्य ही (भेषजीः = ०-ज्यः) भय निवारक हैं, (आपः) शुभकर्म वा जल (अमीवचातनीः = ०- न्यः) पीड़ा नाशक हैं। (आपः) शुभकर्म वा जल (विश्वस्य) सब के (भेषजीः) भय-निवारक हैं, (ताः) वे (ते) तेरा (भेषजम्) भय निवारण (कृण्वन्तु) करें ॥३॥

भावार्थः - मनुष्य वेदविहित कर्मों को करके अपने आत्मिक, और शारीरिक दोष मिटावें, और जलचिकित्सा करके शारीरिक रोगों की निवृत्ति करें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ३। ७। ५।

सूक्तम् ॥९२॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता, १ जगती २, ३ त्रिष्टुप् ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१॥

भाषार्थः—(वाजिन्) हे अन्न वा बलवाले राजन् ! (युज्यमानः) सावधान होकर (वातरंहाः) वायु के समान वेगवाला (भव) हो. और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर की (प्रसवे) आज्ञा में (मनोजवाः) मन के समान गति वाला होकर (याहि) चल। (विश्ववेदसः) समस्त विद्याओं वा धनों वाले (मरुतः) दोषों के नाश करने वाले विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (युञ्जन्तु) [राज कार्य में] युक्त करें, (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी मनुष्य (ते) तेरे (पत्सु) पगों में (जवम्) वेग को (आ) अच्छे प्रकार (दधातु) धारण करे ॥१॥

भावार्थः—राजा परमेश्वर की वेदविहित आज्ञा में चलकर और नीतिज्ञ विद्वानों से मेल करके राज्य की रक्षा करे और यान विमान द्वारा अभीष्ट देशों में जाकर यथावत् कार्य सिद्ध करे ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं—अ० ९ म० ८, ९ ॥

जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वातं उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजि जय समने पारयिष्णुः ॥२॥

भाषार्थः—(अर्वन्) हे विज्ञानयुक्त राजन् ! (यः) जो (जवः) वेग (ते) तेरे (गुहा=गुहायाम्) हृदय में (निहितः) धरा हुआ है, और (यः) जो (परीत्तः) सब प्रकार दिया हुआ [वेग] (श्येने) श्येन अर्थात् बाज पक्षी में (उत) और (वाते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवन में (अचरत्) विचरा है। (वाजिन्) हे वेगयुक्त राजन्! (त्वम्) तू (तेन) उस (बलेन) बल से (बलवान्) बलवान् और (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) पार लगाने वाला होकर (आजिम्) युद्ध को (जय) जीत ॥२॥

भावार्थः विद्वान् राजा आत्मिक बल बढ़ाकर शत्रुओं को शीघ्र जीते ॥२॥

तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो मह्यो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३॥

भाषार्थः—(वाजिन्) हे बलवान् राजन्! (ते) तेरा (तनूः) शरीर (तन्वम्) हमारे शरीर को (नयन्ती) ले चलता हुआ (अस्मभ्यम्) हमारे लिये और (तुभ्यम्) तेरे लिये (वामम्) सेवनीय धन और (शर्म) सुख (धावतु) शीघ्र पहुंचावे। (अह्रुतः) कुटिलता रहित (देवः) विजय चाहने वाले आप (धरुणाय) हमारे धारण के लिये (मह्यः) बड़ी (स्वम्) अपनी (ज्योतिः) ज्योति (आ) भले प्रकार (मिमीयात्) निर्माण करें (दिवि इव) जैसे सूर्यमण्डल में [ज्योति] ॥३॥

भावार्थः - राजा को योग्य है कि छल कपट छोड़ कर अनेक प्रकार के वैज्ञानिक शिल्प आदि व्यवहारों से अपने लिये और प्रजा के लिये धन और सुख बढ़ाकर अद्वितीय कीर्तिमान् हो ॥३॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९३॥

१—३ ॥ यमो विश्वे देवाश्च देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥
सत्सङ्गलाभोपदेशः—सत्सङ्ग के लाभ का उपदेश ॥

यमो मृत्युरंघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यमः) न्यायकारी परमेश्वर [पापियों का] (अघमारः) पाप के कारण मारने वाला, (मृत्युः) प्राण छोड़ाने वाला, (निर्ऋथः) निरन्तर पीड़ा देने वाला और [धर्मात्माओं का] (बभ्रुः) पालन करने वाला और (शर्वः) कष्ट काटने वाला (अस्ता) ग्रहण करने वाला और (नीलशिखण्डः) निधियों वा निवासों का देने वाला है। (सेनया) अपनी सेना के साथ (उत्तस्थिवांसः) उठे हुए (ते) वे (देवजनाः) विजय चाहने वाले पुरुष (अस्माकम्) हमारे (वीरान्) वीर लोगों को [विघ्न से] (परि) सर्वथा (वृञ्जन्तु) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—जो शूर वीर विद्वान् स्त्री पुरुष परमात्मा को शत्रुनाशक सुखवर्धक जान कर परोपकार करते हैं, वे ही कीर्ति पाते हैं ॥१॥

मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्रे उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥२॥

भाषार्थः—(मनसा) विज्ञान के साथ, (होमैः) देने और लेने योग्य व्यवहारों के साथ, (हरसा) अन्धकार हरने वाले (घृतेन) प्रकाश के साथ वर्तमान (शर्वाय) [धर्मात्माओं के] कष्टनाशक, (अस्त्रे) ग्रहण करने वाले (उत) और (भवाय) सुख देने वाले (राज्ञे) राजा परमेश्वर को, और (एभ्यः) इन (नमस्येभ्यः) नमस्कार योग्य महात्माओं को (नमः) विनति (कृणोमि) करता हूं। वे सब (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों पर [दुष्कर्मियों पर] (अघविषाः) पाप रूप विषवाली पीड़ाओं को (नयन्तु) ले जावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के और विद्वानों के वेदविहित उपदेशों को मान कर दुराचारों को छोड़ कर धार्मिक होकर आनन्दित होवें ॥२॥

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वे) हे सब (देवाः) दिव्यगुणवाले (विश्ववेदसः) संसार के जानने वाले (मरुतः) दोषनाशक विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमें (अघविषाभ्यः) पाप-रूप विषवाली पीड़ाओं के (वधात्) हनन से (त्रायध्वम्) बचाओ। (अग्नीषोमा) अग्नि और चन्द्रलोक और (वरुणः) सूर्यलोक (पूतदक्षाः) पवित्र बलवाले हैं, [उनकी और] (वातापर्जन्ययोः) वायु और मेघ की (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (स्याम) हम रहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य आप्त विद्वानों के उपदेश और अग्नि, चन्द्र, सूर्य आदि पदार्थों से यथावत् उपकार करके सुखी होवें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥९४॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, ३ अनुष्टुप्, २, त्रिष्टुप् ॥

शान्तिकरणोपदेशः—शान्ति करने के लिये उपदेश ॥

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नेमामसि
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (वः) तुम्हारे (मनांसि) मनों को (सम्) ठीक रीति से (व्रता = व्रतानि) कर्मों को (सम्) ठीक रीति से (आकूतीः) संकल्प को (सम्) ठीक रीति से (नमामसि = ०—मः) हम झुकते हैं। (अमी ये) यह जो तुम (विव्रताः) विरुद्धकर्मी (स्थन) हो, (तान् वः) उन तुमको (सम्) ठीक रीति से (नमयामसि = ०—मः) हम झुकाते हैं ॥१॥

भावार्थः—प्रधान पुरुष सब के उत्तम विचारों, उत्तम कर्मों और उत्तम मनोरथों को माने और धर्मपथ में विरुद्ध मतवालों को भी सहमत कर लेवे ॥१॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ३ । ८ । ५ ॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (मनसा) अपने मन से (मनांसि) तुम्हारे मनों को (गृभ्णामि = गृह्णामि) थामता हूँ, (मम) मेरे (चित्तम् अनु) चित्त के पीछे पीछे (चित्तेभिः—चित्तैः) अपने चित्तों से (आ इत) आओ। (मम वशेषु) अपने वश में (वः हृदयानि) तुम्हारे हृदयों को (कृणोमि) मैं करता हूं (मम यातम्) मेरी चाल पर (अनुवर्त्मानः) मार्ग चलते हुए (आ इत) यहां आओ ॥२॥

भावार्थः प्रधान पुरुष अपने शुभ विचार और साहस से सब सभासदों और प्रजागणों को धर्मपथ पर चलाकर परस्पर मेल के साथ साहसी और उत्साही बनावे ॥२॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ३ । ८ । ६ ॥

ओतं मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥३॥

भाषार्थः—(मे) मेरे लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूलोक (ओते) बुने हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, (देवी) दिव्य गुण वाली (सरस्वती) विज्ञानवती विद्या (ओता) परस्पर बुनी हुई है। (च) और (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि (ओतौ) परस्पर बुने हुए हैं। (सरस्वति) हे विज्ञानवती विद्या! (इदम्) अब (ऋध्यास्म) हम श्रीमान् होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य विज्ञानपूर्वक विद्या प्राप्त करके संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर धनी होवें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० ५। २३। १॥

सूक्तम् ९५॥

१ ३॥ कुष्ठो देवता॥ अनुष्टुप् छन्दः॥

विद्वद्गुणोपदेशः—विद्वानों के गुणों का उपदेश॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥१॥

भाषार्थः—(देवसदनः) विद्वानों के बैठने योग्य (अश्वत्थः) वीरों के ठहरने का देश [अधिकार] (तृतीयस्याम्) तीसरी [निकृष्ट और मध्यम अवस्था से परे, श्रेष्ठ] (दिवि) गति में (इतः) प्राप्त होता है। (तत्र) उसमें (अमृतस्य) अमृत [पूर्ण सुख] के (चक्षणम्) दर्शन (कुष्ठम्) गुणपरीक्षक पुरुष को (देवाः) महात्माओं ने (अवन्वत) मांगा है ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग इस ईश्वर नियम को निश्चय करके मानते हैं कि अति विद्वान् पुरुषार्थी मनुष्य उच्च अधिकार के योग्य होता है ॥१॥

(अश्वत्थः) पीपल के वृक्ष को भी कहते है, इसका गुण - अ० ३। ६। १। में वर्णन हो चुका है। (कुष्ठ) कूट ओषधि विशेष भी है देखो—अ० ५। ४। १॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत। २॥

भाषार्थः—(हिरण्ययी, तेज वाली [अग्नि वा बिजुली वा सूर्य से चलने वाली] (हिरण्यबन्धना) तेजोमय बन्धन वाली (नौः) नाव (दिवि, चलने के व्यवहार में (अचरत्) चलती थी। (तत्र) वहां पर (अमृतस्य) अमृत के (पुष्पम्) विकाश (कुष्ठम्) गुण परीक्षक पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोगों ने (अवन्वत) मांगा है ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग तीक्ष्णबुद्धि मनुष्य द्वारा अग्नि, बिजुली और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य विद्या से, अग्निपोत, पुष्पक विमान आदि यान बना कर आनन्द पाते हैं ॥२॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ५ । ४ । ४ ॥

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॑ हि॒मव॑तामुत ।
गर्भो॑ विश्व॑स्य भू॒तस्ये॒मं मे॑ अग॒दंकृ॑धि ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर !] तू (ओषधीनाम्) ताप रखने वाले [सूर्य आदि] लोकों का (गर्भः) स्तुति योग्य आधार (उत) और (हिमवताम्) शीतस्पर्श-वालों [जल मेघ आदि] का (गर्भः) ग्रहण करने वाला और (विश्वस्य) सब (भूतस्य) प्राणिसमूह का (गर्भः) आधार (असि) है । (मे) मेरे लिये (इमम्) इस [संसार] को (अगदम्) नीरोग (कृधि) तू कर ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के उत्पन्न पदार्थों का गुण जान कर प्रयोग करते हैं, वे संसार में सुख भोगते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है—अ० २५ । ५ । ७ ॥

सूक्तम् ॥९६॥

१–३ ॥ १, २ ओषधयः; ३ सोमो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिपाद् विराड्गायत्री ॥

ओषधिगुणोपदेशः—ओषधियों के गुणों का उपदेश ॥

या ओष॑धयः सोम॒राज्ञी॑र्ब॒ह्वीः श॒तवि॑चक्षणाः ।
बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥१॥

भाषार्थः—(सोमराज्ञीः) बड़े ऐश्वर्य वाले परमेश्वर वा चन्द्रमा वा सोम-लता को राजा रखने वाली, (शतविचक्षणाः) सैकड़ों कथनीय और दर्शनीय शुभ गुणों वाली और (बृहस्पतिप्रसूताः) बृहस्पतियों, बड़े विद्वानों द्वारा काम में लायी गयीं, (बह्वीः) बहुत सी (याः) जो (ओषधयः) ताप नाश करने वाली ओषधि हैं, (ताः) वे (नः) हमको (अंहसः) रोग से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वररचित ओषधियों का यथावत् परीक्षण-पूर्वक सेवन करके स्वस्थ रह कर आनन्द पावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । ९७ । १८, १५ और यजु० १२ । ९२, ८९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३ दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२॥

भाषार्थः—हे [ओषधे] (मा) मुझको (शपथ्यात्) शपथसम्बन्धी (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए [अपराध] से (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) बेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) इन्द्रियों के दोष से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रमादकारक द्रव्यों को छोड़ कर सात्विक भोजन करें। जिससे साधु स्वभाव रहकर सौगन्द, श्रेष्ठों के अपराध, राजा के बन्धन और इन्द्रियों के विकार से पृथक् रहें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से है—ऋग्० १० । ९७ । १५, यजु० १२ । ९० ॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ पाप (चक्षुषा) नेत्र से (च) और (यत्) जो कुछ (मनसा) मन से और (यत्) जो कुछ (वाचा) वाणी से (जाग्रतः) जागते हुए [अथवा] (स्वपन्तः) सोते हुए (उपारिम) हमने किया है। (सोमः) बड़े ऐश्वर्य वाला जगदीश्वर (नः) हमारे (तानि) उन पापों को (स्वधया) अपनी धारण शक्ति से (पुनातु) शुद्ध करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के विचार और युक्त आहार विहार से सोते जागते सदा धर्म का विचार और अनुष्ठान करते रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥ ९७ ॥

१—३ ॥ आत्मा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्यहं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इद हविः ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जिस प्रकार से (अहम्) मैं (अभिभूः) दुष्टों का तिरस्कार करने वाला (यज्ञः) पूजनीय, (अभिभूः) शत्रुओं का जीतने वाला (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी, (अभिभूः) वैरियों को वश में करने वाला (सोमः) चन्द्र समान सुख देने वाला और (अभिभूः) दुराचारियों का हराने वाला (इन्द्रः) महाप्रतापी होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वाः) सब (पृतनाः) शत्रु सेनाओं को (अभि असानि) हरा दूं। (एव) वैसे ही (अग्निहोत्राः) अग्नि [परमेश्वर सूर्य, बिजुली और आग की विद्या] के लिये वाणी वाले हम लोग (इदम्) यह (हविः) देने लेने योग्य कर्म (विधेम) करें ॥१॥

भावार्थः मनुष्य आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक बल बढ़ाकर शत्रुओं का नाश करके अपनी उन्नति करें ॥१॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥२॥

भाषार्थः – (विपश्चिता) हे बड़े बुद्धिमान् (मित्रावरुणा) प्राण और अपान के समान प्रिय माता पिता ! [हम में] (स्वधा) आत्मधारण शक्ति (अस्तु) होवे, (प्रजावत्) उत्तम प्रजाओं से युक्त (क्षत्रम्) राज्य को (मधुना) मधु- विद्या से [ईश्वर ज्ञान से] (इह) यहां पर (पिन्वतम्) सींचो। (निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी को (पराचैः) अधोमुख करके (दूरम्) दूर (बाधेथाम्) हटाओ और [इसके] (कृतम्) किये हुए (एनः) दुःख को (चित्) भी (अस्मत्) हम से (प्र) अच्छे प्रकार (मुमुक्तम्) छुड़ाओ ॥२॥

भावार्थः जिस प्रकार सन्तान माता पिता से उत्तम शिक्षा पाकर सुख भोगते हैं इसी प्रकार मनुष्य उत्तम ज्ञानियों के सत्संग से क्लेशों का नाश करके सुखी होवें ॥२॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्मप्रमृणन्तमोजसा ॥३॥

भाषार्थः – (सखायः) हे परस्पर सहायक मित्रो ! (इमम्) इस (वीरम् अनु) वीर सेनापति के साथ (हर्षध्वम्) हर्ष करो, (ओजसा) अपने शरीर, बुद्धि और सेना बल से (ग्रामजितम्) शत्रुओं के समूह को जीतने वाले, (गोजितम्) उनकी भूमि को जीतने वाले, (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओं में शस्त्र रखने वाले, (अज्म) संग्राम को (जयन्तम्) विजय करने वाले (प्रमृणन्तम्) वैरियों को मार डालने वाले (उग्रम्) तेजस्वी, (इन्द्रम् अनु) महा प्रतापी सेनाध्यक्ष के साथ होकर (सम्) अच्छे प्रकार (रभध्वम्) युद्ध आरम्भ करो ॥३॥

भावार्थः – सेनापति और सैनिक लोग परस्पर सहायक होकर शत्रुओं का राज्य आदि पाकर प्रजापालन करके सदा सुखी रहें ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, राजप्रजा धर्म विषय में पृष्ठ २२४ पर व्याख्यात है, और कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० १७ म० ३८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ९८ ॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ पङ्क्तिः ॥ २ बृहती ॥ ३ विराट् ॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश ॥

इन्द्रो॑ जयाति॒ न परा॑ जयाता अधि॒राजो॒ राज॑सु राजयाते ।
चर्कृ॒त्य ईड्यो॒ वन्द्य॑श्चोप॒सद्यो॑ नम॒स्यो॑ भवे॒ह ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाला परमात्मा [हमें] (जयाति) विजय करावे, और (न पराजयाते) कभी न हरावे, (अधिराजः) महाराजाधिराज जगदीश्वर [हमें] (राजयाते) राजा बनाये रक्खे। [हे महाराजेश्वर!] (चर्कृत्यः) अत्यन्त करने योग्य कर्मों में चतुर, (ईड्यः) प्रशंसनीय, (वन्द्यः) वन्दना योग्य, (उपसद्यः) शरण लेने योग्य (च) और (नमस्यः) नमस्कार योग्य तू (इह) यहां [हमारे बीच] (भव) वर्तमान हो ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य राजा और प्रजा एक सर्वनियन्ता सर्वाधीश परमपिता जगदीश्वर को महाराजाधिराज जान कर धर्म से परस्पर पालन में प्रवृत्त रहें ॥१॥

मन्त्र १, २, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, राजप्रजाधर्म विषय, पृष्ठ २२१ में व्याख्यात है ॥

त्वमि॑न्द्राधि॒राजः श्र॑व॒स्युस्त्वं भूर॑भिभू॒तिर्ज॑नाना॑म् ।
त्वं दैवी॑र्विश॒ इमा वि रा॑जायु॒ष्मत् क्ष॒त्रम॒जर॑ं ते अस्तु ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर, (त्वम्) तू (श्रवस्युः) सब की सुनने वाला (अधिराजः) राजराजेश्वर, (त्वम्) तू ही (जनानाम् अभिभूतिः) अपने भक्तों का सब प्रकार ऐश्वर्यदाता [यद्वा, पामर जनों का तिरस्कार करने वाला] (भूः=अभूः) हुआ है। (त्वम्) तू (इमाः) इन (दैवीः) दिव्य गुणवाली (विशः) प्रजाओं पर (वि) विविध प्रकार से (राज) राज्य कर, (ते) तेरा (क्षत्रम्) राज्य [हमारे लिये] (आयुष्मत्) उत्तम जीवन वाला और (अजरम्) जरारहित [नित्य तरुण] (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमदयालु परमात्मा का शरण लेकर सब प्रकार उन्नति करते हुए चिरस्थायी सुख प्राप्त करें ॥२॥

प्राच्या॑ दि॒शस्त्वमि॑न्द्रासि॒ राजो॒तोदी॑च्या दि॒शो वृ॑त्रहन्छत्रहो॒सि ।
यत्र॑ यन्ति स्रो॒त्यास्तज्जि॒तं ते॑ दक्षि॒णतो॒ वृष॑भ ए॒षि ह॒व्यः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन्! (त्वम्) तू (प्राच्याः दिशः) पूर्व वा सन्मुख वाली दिशा का (उत) और (उदीच्याः दिशः) उत्तर वा बाईं दिशा का (राजा असि) राजा है, (वृत्रहन्) हे अन्धकारनाशक! तू (शत्रुहः) हमारे शत्रुओं का नाश करने वाला (असि) है। (यत्र) जिस स्थान में (स्रोत्याः) जल धारायें (यन्ति) चलती हैं (तत्) वह स्थान [समुद्र वा अन्तरिक्ष] (ते) तेरा (जितम्) जीता हुआ है, (वृषभः) महापराक्रमी, (हव्यः) आवाहन योग्य तू (दक्षिणतः) हमारी दाहिनी ओर (एषि) पहुंचता है ॥३॥

भावार्थः—परमेश्वर सब स्थान और सब काल में सब का शासक है, जो मनुष्य उस पर विश्वास करते हैं वह उनका सदा सहायक होता है ॥३॥

सूक्तम् ९९ ॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३ बृहती ॥

संग्रामजयोपदेशः—संग्राम में जय का उपदेश ॥

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धवे ।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे संपूर्ण ऐश्वर्य वाले इन्द्र जगदीश्वर! (त्वा त्वा) तुझको, तुझको (वरिमतः) तेरे विस्तार के कारण (अंहूरणात्) पाप वाले कर्म से (पुरा) पहिले (अभि) सब ओर से (हुवे) मैं बुलाता हूं। (उग्रम्) तेजस्वी, (चेत्तारम्) सत्य और असत्य के जानने वाले, (पुरुनामानम्) अनेक उत्तम नाम वाले, (एकजम्) अकेले उत्पन्न [अद्वितीय, तुझ प्रभु] को (ह्वयामि) मैं पुकारता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि उस जगदीश्वर को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् जान कर पाप कर्म को छोड़ कर शुभ कर्म करते रहें ॥१॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥२॥

भाषार्थः—(अद्य) आज (यः) (सेन्यः) शत्रु सेना सम्बन्धी (वधः) शस्त्र समूह (जिघांसन्) मारने की इच्छा करता हुआ (नः) हम पर (उदीरते) चढ़ा आता है। (तत्र) उसमें (इन्द्रस्य) महाप्रतापी इन्द्र परमात्मा के (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रम को (समन्तः) सब प्रकार (परिदद्मः) हम ग्रहण करते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य कठिन समय में परमात्मा का आश्रय लेकर शत्रुओं का सामना करके दुःख से निवृत्त होवें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि॑ दद्म इन्द्र॒स्य बा॒हू सम॑न्तं त्रातु॒स्त्राय॑तां नः ।
देव सवि॒तः सोम॑ राजन्त्सु॒मन॑सं मा कृणु स्व॒स्तये ॥३॥

भाषार्थः —(त्रातुः) रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) महाप्रतापी इन्द्र परमात्मा के (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रम को (समन्तम्) सब प्रकार (परिदद्मः) हम ग्रहण करते हैं, वह (नः) हमारी (त्रायताम्) रक्षा करे। (देव) प्रकाशस्वरूप, (सवितः) सर्वप्रेरक (सोम) संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) राजन् जगदीश्वर ! (स्वस्तये) कल्याण पाने के लिये (मा) मुझे (सुमनसम्) उत्तम विचार वाला (कुरु) कर ॥३॥

भावार्थः मनुष्य परमात्मा की भुजाओं में शरण लेकर शुद्ध अन्तःकरण से पुरुषार्थ करके सुखी रहे ॥३॥

सूक्तम् ॥१००॥

१–३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः रोग नाश करने का उपदेश ॥

दे॒वा अ॑दुः सू॒र्यो॑ अदा॒द् द्यौर॑दात् पृथि॒व्यदा॑त् ।
ति॒स्रः सर॑स्वतीरदुः सचि॒त्ता वि॒षदू॑षणम् ॥१॥

भाषार्थः —(देवाः) जलदाता मेघों ने (विषदूषणम्) विषनाशक औषध रूप विज्ञान को (अदुः) दिया है, (सूर्यः) सूर्य ने (अदात्) दिया है, (द्यौः) अन्तरिक्ष ने (अदात्) दिया है, (पृथिवी) पृथिवी ने (अदात्) दिया है। (सचित्ताः) समान ज्ञानवाली (तिस्रः) तीनों (सरस्वतीः) विज्ञान वाली देवियों ने (अदुः) दिया है ॥१॥

भावार्थः मनुष्य मेघ सूर्य आदि पदार्थों और विद्याओं से यथावत् उपकार लेकर सुख प्राप्त करें ॥१॥

तीन देवियां यह हैं [अ० ५। १२। ८] १—भारती, पोषण करने वाली विद्या, २ - इडा, स्तुति योग्य नीति और ३—सरस्वती, विज्ञानवाली बुद्धि ॥

यद् वो॑ देवा उपजी॒का आ॑सिञ्च॒न् धन्व॑न्युद॒कम् ।
तेन॑ दे॒वप्र॑सूतेन॒दं दू॑षयता वि॒षम् ॥२॥

भाषार्थः —(उपजीकाः) हे [परमेश्वर के] आश्रित प्राणियो ! (वः) तुम्हारे लिये (देवाः) विद्वानों ने (धन्वनि) निर्जल स्थान में (यत् उदकम्) जिस जल को (आ—असिञ्चन्) लाकर सींचा है। (देवप्रसूतेन) विद्वानों के दिये हुए (तेन) अमृत से (इदम् विषम्) इस विष को (दूषयत) नाश करो ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस प्रकार विद्वान् लोग मरुस्थल में कूप, तड़ाग, जल-नाली आदि द्वारा जल लाकर सुख पाते हैं, वैसे ही मनुष्य विज्ञान द्वारा आत्मिक दोष मिटाकर सुखी होवें ॥२॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे ओषधि !] (असुराणाम्) श्रेष्ठ बुद्धिमानों की (दुहिता) कामनाएं पूरी करने वाली (असि) है, (सा) सो तू (देवानाम्) उत्तम गुणों की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली (असि) है। (दिवः) सूर्य से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (संभूता) उत्पन्न हुई (सा) उस तुझ ने (विषम्) विष को (अरसम्) निर्बल (चकर्थ) कर दिया है ॥३॥

भावार्थः जैसे सूर्य के ताप और पृथिवी के संयोग से उत्पन्न ओषधियों से उपकार होता है, वैसे ही मनुष्य परोपकार करके परस्पर लाभ उठावें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०१॥

१—३ ॥ राजा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा का धर्म का उपदेश ॥

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (आ) भले प्रकार (वृषायस्व) इन्द्र, बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष के समान आचरण कर, (श्वसिहि) जीता रह, (वर्धस्व) बढ़ती कर (च) और [हमें] (प्रथयस्व) फैला। (यथाङ्गम्) प्रत्येक अंग में [तेरा] (शेपः) सामर्थ्य (वर्धताम्) बढ़े, (तेन) इसलिये (योषितम्) सेवनीय नीति को (इत्) ही (जहि) तू प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—राजा पुरुषार्थपूर्वक अपनी और प्रजा की उन्नति में सदा तत्पर रहे ॥१॥

राज्य की बढ़ती के चार अंग वा उपाय यह हैं [सामदाने भेददण्डावित्युपायचतुष्टयम् - अमर १८। २०] १—साम, प्रियवचन; २—दान, धन देना; ३—भेद, शत्रुओं में फूट कर देना; ४—दण्ड ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥

भाषार्थः—(येन) जिस कर्म से (कृशम्) दुर्बल को (वाजयन्ति) बली करते हैं और (येन) जिस से (आतुरम्) अशान्त पुरुष को (हिन्वन्ति) प्रसन्न करते हैं। (तेन) उसी कर्म से (ब्रह्मणस्पते) हे अन्न, वा धन, वा वेद वा ब्राह्मण के रक्षक परमेश्वर! (अस्य) इसके (पसः) राज्य को (धनुः इव) धनुष के समान (आ) भले प्रकार (तानय) फैला ॥२॥

भावार्थः—राजा निर्बल और रोगियों को यथावत् सुख देकर अपने राज्य को सदा बढ़ावे ॥२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध कुछ भेद से आ चुका है—अ० ४। ४। ६॥

अहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शं इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥३॥

भाषार्थः (अहम्) मैं [हे मनुष्य!] (ते) तेरे (पसः) राज्य को (आ) यथावत् (तनोमि) फैलाता हूं (ज्याम् इव) जैसे डोरी को (धन्वनि अधि, धनुष में। (अनवग्लायता) विना ग्लानि वा थकावट के (सदा) सदा [शत्रुओं पर] (क्रमस्व) धावा कर, (ऋशः इव, जैसे हिंसक जन्तु सिंह आदि (रोहितम्) हरिण पर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के दिये सामर्थ्यों से निरालसी होकर शत्रुओं को वश में करके सदा प्रजापालन करे ॥३॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ४। ४। ७॥

सूक्तम् ॥१०२॥

१—३ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

जितेन्द्रियत्वोपदेशः—जितेन्द्रिय होने का उपदेश ॥

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समेतु सं च वर्तताम् ॥१॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे सूर्य और चन्द्रमा [के समान नियम वाले पुरुष!] (यथा) जैसे (अयम्) यह (वाहः) लद्दू पशु [घोड़ा बैल आदि] (समैति) मिलकर आता है (च) और (सम्) ठीक ठीक (वर्तते) वर्तता है। (एव) वैसे ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[हे जीव !] (माम् अभि) मेरी ओर (ते मनः) तेरा मन (समैतु) मिल कर आवे (च) और (सम् वर्तताम्) ठीक ठीक वर्ताव करे ॥१॥

भावार्थः – जैसे मनुष्य पशु आदि को शिक्षा देकर सुमार्ग पर चलाता है, वैसे ही जितेन्द्रिय पुरुष मन को वश में करके शुभ मार्ग में अपने को चलावे ॥१॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥

भाषार्थः—[हे प्राणी !] (अहम्) मैं (ते मनः) तेरे मन को (आखिदामि) ऐसे खींचता हूं (इव) जैसे (राजाश्वः) बड़ा अश्ववार (पृष्ट्याम्) बागडोर को। (मयि) मुझ में (ते मनः) तेरा मन (वेष्टताम्) लिपटा रहे (यथा) जैसे (रेष्मच्छिन्नम्) व्याकुल करने वाली आँधी से तोड़ा गया (तृणम्) घास ॥२॥

भावार्थः – मनुष्य अपने मन को कुविषयों से खींच कर तत्त्व विचार में ऐसा लगावे, जैसा सुसारथी चंचल घोड़े को बागडोरी से वश में करता है, अथवा जैसे घास आंधी से टूट कर आंधी के वश में हो जाती है ॥२॥

आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३॥

भाषार्थः—(आञ्जनस्य) संसार के प्रकट करने वाले, (मदुघस्य) आनन्द के सींचने वाले, (कुष्टस्य) गुण जांचने वाले, (नलदस्य) बन्धन काटने वाले (तुरः) शीघ्रकारी, (च) और (भगस्य) बड़े ऐश्वर्यवाले ब्रह्म के (अनुरोधनम्) यथावत् पूजन को (हस्ताभ्याम्) अपने दोनों हाथों [में बल] के लिये (उत्) उत्तम रीति से (भरे) मैं धारण करता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य उस जगदीश्वर के अनन्त शुभगुणों का विचार करके प्रयत्नपूर्वक सदा प्रसन्न रहें ॥३॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथैकादशोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१०३॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रु पराजयोपदेशः—शत्रुओं के हराने का उपदेश ॥

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१॥

भाषार्थः—[हे शत्रु लोगो !] (बृहस्पतिः) बड़े बड़े सैनिकों का स्वामी (वः) तुम्हारा (सदानम्) खण्डन, (सविता) प्रेरणा करने वाला सेनाध्यक्ष (सन्दानम्) तुम्हारा बन्धन, (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) न्यायाधीश (सन्दानम्) तुम्हारा खण्डन, (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के समान नियम वाला (भगः) ऐश्वर्यवान् राजा (सन्दानम्) तुम्हारा बन्धन (करत्) करे ॥१॥

भावार्थः—रणक्षेत्र में सब सेनापति लोग अपनी अपनी सेना से शत्रुओं को मारें और बांधें ॥१॥

सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस्तान् परिहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥२॥

भाषार्थः—(परमान्) ऊंचे वैरियों को (सम्) यथावत्, (अवमान्) नीचे शत्रुओं को (सम्) यथावत् (अथो) और (मध्यमान्) बीच वाले शत्रुओं को सम्) यथावत् (द्यामि) खण्ड खण्ड करता हूं । (इन्द्रः) महाप्रतापी राजा ने (तान्) चोरों को (परि) सब ओर से (अहाः) नाश कर दिया है, (अग्ने) हे विद्वान् राजन् ! (त्वम्) तू (दाम्ना) पाश से (तान्) म्लेच्छों को (सम् द्य) बांध ले ॥२॥

भावार्थः—प्रत्येक सैनिक सेनादल में शत्रुओं को सब स्थान से मारे और बांधे ॥२॥

अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् परिहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥३॥

भाषार्थः—(अमी ये) वे जो शत्रु (केतून्) ध्वजा पताकायें (कृत्वा) बनाकर (अनीकशः, टोली टोली से (युधम्) युद्ध में (आयन्ति) आते हैं । (इन्द्रः) महाप्रतापी राजा ने (तान्) उन चोरों को (परि) सब ओर से (अहाः) नाश कर दिया है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने) हे विद्वन राजन्! (त्वम्) तू (दाम्ना) पाश से (तान्) म्लेच्छों को (सम् द्य) बांध ले ।।३।।

भावार्थ शत्रुओं को रणक्षेत्र में आते हुए देखकर सेनापति व्यूह-रचना करके उन्हें रोके ।।३।।

सूक्तम् ।।१०४।।

१–३ ।। इन्द्रो देवता ।। अनुष्टुप् छन्दः ।।

शत्रुपराजयोपदेशः शत्रुओं के हराने का उपदेश ।।

आदानेन सं दानेनामित्राना द्यामसि ।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ।।१।।

भाषार्थः—(आदानेन) आकर्षणपाश से और (सन्दानेन) बन्धन पाश से (अमित्रान्) अपने शत्रुओं को (आ द्यामसि) हम बांधते हैं। (च) और (एषाम्) इनके (ये) जो (अपानाः) अपान वायु और (प्राणाः) प्राण वायु हैं। (असून्) उनके प्राणों को (असुना) अपनी बुद्धि से (सम् अच्छिदन्) उन [हमारे वीरों] ने छिन्न भिन्न कर दिया है ।।१।।

भावार्थः—शूरवीर धावा करके अपने अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को जीवन से हताश करके निर्बल करें ।।१।।

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ।।२।।

भाषार्थः—(इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्य वाले आचार्यकरके (संशितम्) तीक्ष्ण किया गया (इदम्) यह (आदानम्) आकर्षण यन्त्र (तपसा) तप से (अकरम्) मैं ने बनाया है। (अत्र) यहां पर (नः) हमारे (ये) जो (अमित्राः) शत्रु (सन्ति) हैं, (तान्) उनको (अग्ने) हे तेजस्वी राजन्! (त्वम्) तू (आ द्य) बाँध ले ।।२।।

भावार्थः—बड़े बड़े विद्वानों की सम्मति से सेनापति लोग अस्त्र शस्त्र बना कर शत्रुओं को वश में करें ।।२।।

ऐनान् यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ।।३।।

भाषार्थः (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के समान गुणवान् (मेदिनौ) प्रीति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले (सोमः) सेनाप्रेरक युद्धमन्त्री (च) और (राजा) ऐश्वर्यवान् न्यायाधीश दोनों (एनान्) इन शत्रुओं को (आबध्नताम्) बांध लेवें। (मरुत्वान्) शूरों को साथ रखने वाला (इन्द्रः) महाप्रतापी राजा (नः) हमारे (अमित्रेभ्यः) शत्रुओं के लिये (आदानम्) आकर्षण यन्त्र (कृणोतु) बनावे ॥३॥

भावार्थः- सोनासचिव, न्यायमन्त्री और मुख्य सेनापति अपने शूर वीरों से शत्रुओं को परास्त करें ॥३॥

सूक्तम् ॥१०५॥

१—३ ॥ मनुष्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

उत्कर्षप्राप्त्युपदेशः—महिमा पाने के लिये उपदेश ॥

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (मनः) मन (मनस्केतैः) मन के विषयों के साथ (आशुमत्) शीघ्रता से (परापतति) आगे बढ़ता जाता है। (एव) वैसे ही [हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (मनसः) मन के (प्रवाय्यम् अनु) प्राप्ति योग्य देश की ओर (प्र पत) आगे बढ़ ॥१॥

भावार्थः मनुष्य मन की कुवृत्तियों को रोक कर ज्ञानपूर्वक शुभ-कर्म में शीघ्र लगावे ॥१॥

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सुसंशितः) यथाविधि तीक्ष्ण किया हुआ (बाणः) बाण वा शब्द (आशुमत्) वेग से (परापतति) आगे बढ़ा जाता है। (एव) वैसे ही [हे मनुष्य !] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (पृथिव्याः) पृथिवी के (संवतम् अनु) यथावत् सेवनीय देश की ओर (प्रपत) आगे बढ़ ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार यथावत् सन्धान किया हुआ बाण और ठीक ठीक बोला गया शब्द लक्ष्य पर शीघ्र पहुंचता है, वैसे ही मनुष्य यथावत् ज्ञान और उपाय से पृथिवी पर अभीष्ट पदार्थ को शीघ्र प्राप्त करे ॥२॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (यथा) जैसे (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें (आशुमत्) शीघ्र (परापतन्ति) आगे बढ़ती जाती हैं। (एव) वैसे ही [हे मनुष्य!] (त्वम्) तू (कासे) ज्ञान वा उपाय के बीच (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (विक्षरम् अनु) प्रवाह-स्थान [मेघ मण्डल आदि] की ओर (प्रपत) आगे बढ़ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य की किरणों के समान बे रोक शीघ्रगामी होकर विज्ञान पूर्वक पुष्पक विमान आदि द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवेश करे ॥३॥

सूक्तम् ॥१०६॥

१ ३॥ शालादेवता॥ अनुष्टुप् छन्दः॥

दुर्गनिर्माणोपदेशः—गढ़ बनाने का उपदेश॥

आयंने ते परायंणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य! (ते) तेरे (आयने) आगमनमार्ग और (परायणे) निकास में (पुष्पिणीः) फूलवाली (दूर्वाः) दूब घासें (रोहन्तु) उगें (वा) और (तत्र) वहाँ (उत्सः) कुआ (वा) और (पुण्डरीकवान्) कमलों वाला (ह्रदः) ताल (जायताम्) होवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य दुर्ग और घरों के आस पास के दृश्य को सुख बढ़ाने वाले दूब, जल, कमल आदि से स्वस्थता के लिये सुशोभित रक्खें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० सू० १४२ म० ८॥

अपामिदं न्ययंनं समुद्रस्य निवेशनम्।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥

भाषार्थः—(अपाम्) प्रजाओं का (इदम्) यह (न्ययनम्) निवास स्थान (समुद्रस्य) जल समूह का (निवेशनम्) प्रवेश हो। (नः गृहाः) हमारे घर (ह्रदस्य) ताल वा खाई के (मध्ये) बीच में हों, [हे राजन् शत्रुओं के] (मुखा) मुखों को (पराचीना) उलटा (कृधि) करदे ॥२॥

भावार्थः—राजा प्रजा की रक्षा के लिये दुर्ग के चारों ओर जल की गहरी खाई रक्खे जिससे शत्रुओं का मार्ग रुका रहे ॥२॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध यजुर्वेद में है—अ० १७ म० ७॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(शाले) हे शाला ! (हिमस्य) शीत के (जरायुणा) जीर्ण करने वाले वस्त्र वा अग्नि के साथ (त्वा) तुझको (परि) अच्छे प्रकार (व्ययामसि) हम प्राप्त होते हैं। (हि) क्योंकि [जब] तू (नः) हमारे लिये (शीतह्रदा) ताल के समान शीतल (भुवः) होवे, (अग्निः) अग्नि [ताप] (भेषजम्) भय निवारक कर्म (कृणोतु) करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शीत के लिये उष्ण सामग्री और उसी प्रकार उष्ण ऋतु के लिये शीतल वस्तुओं का भण्डार दुर्ग और घरों में रक्खें ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं—अ० १७। ५ ॥

सूक्तम् ॥१०७॥

१—४ ॥ परमेश्वरो देवता ॥ आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥

सर्वसुखप्राप्त्युपदेशः—सब सुख की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

विश्वंजित् त्रायमाणायै मा परि देहि । त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्चं नः स्वम् ॥१॥

भाषार्थः—(विश्वजित्) हे संसार के जीतने वाले परमेश्वर ! (त्रायमाणायै) त्रायमाणा, रक्षा करने वाली [शाला वा ओषधि विशेष] को (मा) मुझे (परि देहि) सौंप। (त्रायमाणे) हे रक्षा करने वाली शाला ! (नः) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दो पाये (च) और (चतुष्पात्) चौपाये (च) और (नः) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के दिये सामर्थ्य से दृढ़स्थान बनाकर और त्रायमाणा आदि औषध का सेवन करके मनुष्यों, पशुओं और धन की सर्वथा रक्षा करे ॥१॥

इस मन्त्र में (शाला) शब्द की अनुवृत्ति गतमन्त्र ३ से आती है, और त्रायमाणा ओषधि विशेष भी है जिसके नाम त्रायन्ती, बलभद्रिका आदि हैं ॥

त्रायमाणे विश्वंजितं मा परि देहि । विश्वंजित् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्चं नः स्वम् ॥२॥

भाषार्थः—(त्रायमाणे) हे त्रायमाणा, रक्षा करने वाली ! (विश्वजिते) संसार के जीतने वाले परमेश्वर को (मा) मुझे (परिदेहि) सौंप। (विश्वजित्) हे संसार के जीतने वाले परमेश्वर (नः) हमारे (सर्वम्) सब···म० १ ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य उत्तम घर और औषध के सेवन से परमेश्वर की आज्ञा पालन करके सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करें ॥२॥

विश्वंजित् कल्याण्यै मा परि देहि । कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥३॥

भाषार्थः—(विश्वजित्) हे संसार के जीतने वाले परमेश्वर ! (कल्याण्यै) कल्याणी, मङ्गल करने वाली [शाला अथवा ओषधि विशेष] को (मा) मुझे (परिदेहि) सौंप । (कल्याणि) हे कल्याणि (नः) हमारे (सर्वम्) सव···म० १॥ ३ ॥

भावार्थः- मन्त्र एक तथा दो के समान ॥३॥

(कल्याणी) ओषधि विशेष भी है जिसका नाम मासपर्णी है ॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि । सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥४॥

भाषार्थः—(कल्याणि) हे कल्याणि, मंगलकारिणी ! [शाला वा ओषधि विशेष] (सर्वविदे) सर्वज्ञ परमेश्वर को (मा) मुझे (परिदेहि) सौंप (सर्व विद्) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (नः) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपात्) दोपाये (च) और (चतुष्पात्) चौपाये (च) और (नः) हमारे (यत् स्वम्) सब कुछ धन की (रक्ष) रक्षाकर ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र एक और दो के समान ॥४॥

सूक्तम् ॥ १०८॥

१—५ ॥ मेधा देवता ॥ १, ४, ५, अनुष्टुप्; २, ३ बृहती ॥

बुद्धिधनयोः प्राप्त्युपदेशः—बुद्धि और धन की प्राप्ति के लिये उपदेश ॥

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥

भाषार्थः—(मेधे) हे धारणावती बुद्धि वा संपत्ति ! (प्रथमा) प्रख्यात (त्वम्) तू (गोभिः) गौओं और (अश्वेभिः) घोड़ों के साथ (नः) हमको (आ गहि) प्राप्त हो । (त्वम्) तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) फैलने वाली किरणों के साथ वर्तमान, और (त्वम्) तू (नः) हमारी (यज्ञिया) पूजनीय (असि) है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य के समान प्रख्यात स्मरणशील बुद्धि और श्रेष्ठ धन प्राप्त करके सांसारिक और पारमार्थिक व्यवहार सिद्ध करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (प्रथमाम्) पहिली [अति श्रेष्ठ] (ब्रह्मण्वतीम् ब्रह्म अर्थात् ईश्वर, वा वेद वा अन्न वा धन की धारण करनेवाली, (ब्रह्मजूताम्) ब्राह्मणों, ब्रह्मज्ञानियों से प्राप्त वा प्रीति की गयी, (ऋषिष्टुताम्) ऋषियों, वेदार्थ जानने वाले मुनियों से स्तुति की गई, (ब्रह्मचारिभिः) ब्रह्मचारियों अर्थात् वेदपाठ और वीर्यनिग्राहक पुरुषों से (प्रपीताम्) अच्छे प्रकार पान की गयी (मेधाम्) सत्यधारणा करने वाली बुद्धि वा संपत्ति को (देवानाम्) दिव्य गुणों की (अवसे) रक्षा के लिये (हुवे) आवाहन करता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य वेद आदि शास्त्र और ऋषि, मुनि, महात्माओं के इतिहासों के विचार से सदा स्मरण वाली बुद्धि और ऐश्वर्य प्राप्त करके संसार में उन्नति करें ॥२॥

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्यावेशयामसि ॥३॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (मेधाम्) शुभगुण धारण करने वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (ऋभवः) सत्य के साथ चमकने वाले महात्मा (विदुः) जानते हैं, (याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति को (असुराः) बड़े बुद्धिमान् पुरुष (विदुः) जानते हैं। (याम्) जिस (भद्राम्) कल्याण करने वाली (मेधाम्) निश्चल बुद्धि वा सम्पत्ति को (ऋषयः) ऋषि लोग (विदुः) जानते हैं (ताम्) उसी को (मयि) अपने में (आ) सब ओर से (वेशयामसि) हम स्थापित करते हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े आप्त विज्ञानी पुरुषों के समान निश्चल बुद्धि और सम्पत्ति प्राप्त करके धर्म के आचरण के साथ सदा उपकार करें ॥३॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥४॥

भाषार्थः—(याम्) जिस (मेधाम्) धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति को (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले, (मेधाविनः) उत्तमबुद्धि वा सम्पत्ति वाले (ऋषयः) ऋषि लोग (विदुः) जानते हैं। (अग्ने) हे विद्याप्रकाशक परमेश्वर वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य ! (तया मेधया) उसी धारणावती बुद्धि वा सम्पत्ति से (माम्) मुझको (अद्य) आज मेधाविनम्) उत्तमबुद्धि वा सम्पत्ति वाला (कृणु) कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की उपासना और आप्त धर्मज्ञ विद्वानों की सेवा से शुद्ध विज्ञान प्राप्त करके उन्नति करें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ३२। मन्त्र १४ ॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

भाषार्थः—(मेधाम्) शुभ गुण वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (सायम्) सायंकाल, (मेधाम्) शास्त्रादि विषयवाली बुद्धि वा संपत्ति को (प्रातः) प्रातःकाल, (मेधाम्) धर्म का स्मरण रखने वाली बुद्धि वा सम्पत्ति को (मध्यन्दिनम् परि) मध्याह्न समय में, (मेधाम्) सत्य व्यवहार वाली बुद्धि वा संपत्ति को (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) फैलने वाली किरणों के साथ (वचसा) परस्पर बातचीत से (आ) भले प्रकार (वेशयामहे) हम स्थापित करते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य सोते, जागते, और कर्म करते धार्मिक बुद्धि और संपत्ति को सूर्य के प्रकाश के समान विस्तीर्ण करके आनन्द प्राप्त करें ॥५॥

सूक्तम् ॥ १०९ ॥

१—३ ॥ पिप्पली देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग के नाश के लिये उपदेश ॥

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३ तातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥१॥

भाषार्थः—(पिप्पली) पालन करने वाली, पिप्पली [ओषधि विशेष] (क्षिप्तभेषजी) विक्षिप्त, उन्मत्त की ओषधि, (उत) और (अतिविद्धभेषजी) बड़े घाव वाले की ओषधी है। (देवाः) विद्वानों ने (ताम्) उसको (सम् अकल्पयन्) अच्छे प्रकार माना है कि (इयम्) यह (जीवितवै) जिलाने के लिये (अलम्) समर्थ है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार पीपली, ओषधि विशेष के सेवन से अनेक रोग की निवृत्ति होती है, वैसे ही मनुष्य कर्मों के फलभोग से सुख पावें ॥१॥

पिप्पली के गुण ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीह, शूल, आम आदि रोगों का नाश करना है—शब्दकल्पद्रुम ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिप्पल्यः१ समवदन्तायतीर्जनन्नादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥२॥

भाषार्थः—(पिप्पल्यः) पीपली ओषधियों ने (जननात् अधि) जन्म से ही (आयतीः) आती हुई (सम्) आपस में (अवदन्त) बातचीत की (यम्) जिस (जीवम्) जीव को (अश्नवामहै) हम प्राप्त होवें, (सः पुरुषः) वह पुरुष (न) नहीं (रिष्याति) नष्ट होवे ॥२॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य परस्पर संवाद से ओषधियों की उत्पत्ति स्थान और काल का विचार करके उनके प्रयोग से रोगियों को नीरोग करते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग आपस में वार्तालाप द्वारा दोषों को हटाकर सुखी होते हैं ॥२॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे पिप्पली] (असुराः) बुद्धिमान् पुरुषों ने (वातीकृतस्य) गठिया के रोगी की (भेषजीम्) ओषधी, (अथो) और (क्षिप्तस्य) उन्मत्त की (भेषजीम्) ओषधि (त्वा) तुझको (नि) निरन्तर (अखनन्) खोदा है और (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुषों ने (त्वा) तुझको (पुनः) फिर (उत्) उत्तम रीति से (अवपन्) बोया है ॥३॥

भावार्थः—जैसे सद्वैद्य परीक्षा करके पिप्पली आदि ओषधियों को खोदते और बोते और काम में लाते हैं, वैसे ही विद्वान् पुरुष विद्या का सुप्रयोग करते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥ ११० ॥

१—३ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ऐश्वर्यवर्धनायोपदेशः—ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये उपदेश ॥

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् आचार्य ! (प्रत्नः) प्राचीन, [अनुभवी] (च) और (नव्यः) नूतन [उद्योगी] (ईड्यः) स्तुतियोग्य (च) और (होता) दाता होकर (सनात्) सदा से (अध्वरेषु) सन्मार्ग देने वाले वा हिंसा रहित व्यवहारों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हि) अवश्य (कम्) सुख से (सत्सि) तू बैठता है। (च) निश्चय करके (स्वाम्) अपने (तन्वम्) शरीर को (पिप्रायस्व) प्रीतियुक्त कर (च) और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सौभगम्) अनेक सुन्दर ऐश्वर्य (आ) आकर (यजस्व) दान कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वृद्ध, अनुभवी, उत्साही, उत्तम आचार्य से नम्रता पूर्वक उत्तम शिक्षा ग्रहण करके अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ८। ११। १० ॥

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतार्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्यँनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥

भाषार्थः—(ज्येष्ठघ्न्याम्) ज्येष्ठ अर्थात् अतिवृद्ध वा उत्तम ब्रह्म को प्राप्त करने वाली क्रिया में (जातः) प्रसिद्ध तू (विचृतोः) अन्धकार से छुड़ाने वाले सूर्य और चन्द्रमा के (यमस्य) नियम के (मूलबर्हणात्) मूल छेदन से (एनम्) इस जीव को (परि पाहि) सब प्रकार बचा। (विश्वा) सब (दुरितानि) विघ्नों को (अति=अतीत्य) उलांघ कर (शतशारदाय) सौ वर्ष वाले (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (एनम्) इस [प्राणी] को (नेषत्) आप ले चलें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य श्रेष्ठजनों के अनुकरण से पुरुषार्थ के साथ विघ्नों को हटा कर सूर्य और चन्द्रमा के समान सदा नियम में चलकर यश प्राप्त करे ॥२॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥३॥

भाषार्थः—(वीरः) यह वीर पुरुष (नक्षत्रजाः) नक्षत्र के समान गति, उपाय उत्पन्न करने वाला (सुवीरः) महावीर (जायमानः) होता हुआ (व्याघ्रे) व्याघ्र के समान बलवान् (अह्नि) दिन में [माता पिता के बल के समय] (अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ है। (सः) वह (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (पितरम्) पिता को (मा वधीत्) न मारे और (जनित्रीम्) जन्म देने वाली (मातरम्) माता को (मा प्र मिनीत्) कभी न सतावे ॥३॥

भावार्थः—शूरवीर पुरुष सुशिक्षित बलवान् माता से जन्म पाकर उनको कष्ट से बचा कर सदा सुखी रख कर अपना सौभाग्य बढ़ावे ॥३॥

सूक्तम् ॥१११॥

१–४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ पङ्क्तिः; २–४ अनुष्टुप् ॥

मानसविकारनाशोपदेशः—मानसविकार के नाश का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१ ।

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (मे) मेरे लिये (इमम् पुरुषम्) इस पुरुष को [आत्मा को] (मुमुग्धि) मुक्त कर, (अयम् यः) यह जो [जीव] (बद्धः) बंधा हुआ और (सुयतः) बहुत जकड़ा हुआ (लालपीति) अत्यन्त बर्बराता है। (अतः) फिर यह (ते) तेरे (भागधेयम्) सेवनीय भाग को (अधि) अधिकारपूर्वक (कृणवत्) करे, (यदा) जब वह (अनुन्मदितः) उन्मादरहित (असति) हो जावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से दुष्टकर्म छोड़ कर सावधान होकर धार्मिक कर्म करे ॥१॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदिं ते मन उद्यतम् ।
कृणोमिं विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२ ।

भाषार्थः—(अग्निः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरे [मन को] (नि शमयतु) शान्त करता रहे, (यदि) जब (ते मनः) तेरा मन (उद्यतम्) व्याकुल होवे। (विद्वान्) विद्वान् मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूं, (यथा) जिससे तू (अनुन्मदितः) उन्माद रहित (असि) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों से शिक्षा पाकर अपनी रोगनिवृत्ति करे ॥२॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परिं ।
कृणोमिं विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥

भाषार्थः—(देवैनसात्) विद्वानों के लिये [किये] पाप से (उन्मदितम्) उन्मत्त, अथवा (रक्षसः) राक्षस [दुःखदायी जीव वा रोग] से (उन्मत्तम् परि) उन्मत्त पुरुष के लिये (विद्वान्) विद्वान् मैं (भेषजम्) औषध (कृणोमि) करता हूँ (यदा) जिस से वह (अनुन्मदितः) उन्माद रहित (असति) हो जावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य दुःखों वा रोगों के कारणों को विचार कर उनकी निवृत्ति करे ॥३॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे रोगी !] (अप्सरसः) आकाश, जल वा प्रजाओं में रहने वाली बिजुलियां (त्वा) तुझको [विद्वानों में] (पुनः) फिर (दुः) देवें, (इन्द्रः) सूर्य (पुनः) फिर, (भगः) चन्द्रमा (पुनः) फिर [देवे] (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम पदार्थ (त्वा) तुझे (पुनः) फिर (दुः) देवें, (यथा) जिससे तू (अनुन्मदितः) उन्माद रहित (अससि) होवे ॥४॥

भावार्थः—वैज्ञानिक पुरुष बिजुली सूर्य आदि सब पदार्थों से यथोचित उपकार लेकर स्वस्थ रहकर सुखी होवें ॥४॥

सूक्तम् ॥११२॥

१–३ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

कुलरक्षोपदेशः—कुल की रक्षा का उपदेश ॥

मा ज्येष्ठं वधीद्यमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (अयम्) यह [रोग] (एषाम्) इन [पुरुषों] के बीच (ज्येष्ठम्) विद्या और वय में बहुत बड़े पुरुष को (मा वधीत्) न मारे, (एनम्) इस [पुरुष] को (मूलबर्हणात्) मूल छेदन से (परि पाहि) सर्वथा बचा । (सः) सो तू (प्रजानन्) ज्ञानी होकर (ग्राह्याः) जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के (पाशान्) फन्दों को (विचृत) खोल दे, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (तुभ्यम्) तुझको (अनु जानन्तु) अनुमति देवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों की सम्मति से श्रेष्ठ पुरुष की रक्षा का सदा उपाय करें ॥१॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् । स ग्राह्याः
पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् । २ ।

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (त्वम्) तू (एषाम्) इन [पिता पुत्र और माता] के (पाशान्) फन्दों को (उन्मुञ्च) खोल दे, (त्रयः) जो तीनों (एभिः) जिन (त्रिभिः) तीनों [ऊंचे, नीचे, मध्यम पाशों] से (उत्सिताः) जकड़े हुए (आसन्) हैं । (सः) सो तू (प्रजानन्) ज्ञानी होकर (ग्राह्याः) जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के (पाशान्) फन्दों को (वि चृत) खोल दे, (पितापुत्रौ) पिता पुत्र, (मातरम्) माता, (सर्वान्) सब को (मुञ्च) [दुःख से] मुक्त कर ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के अनुशासन से माता पिता पुत्र आदि सब की यथायोग्य रक्षा करें ॥२॥

येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३॥

भाषार्थः—(परिवितः) विवाहित छोटे भाई का विना विवाहित बड़ा भाई (येभिः) जिन (पाशैः) फन्दों से (अङ्गेअङ्गे) अङ्ग अङ्ग में (विबद्धः) बंधा हुआ, (आर्पितः) दुखाया गया (च) और (उत्सितः) जकड़ा गया है। (ते, वे [फन्दे] (विमुच्यन्ताम्) खुल जावें, (हि) क्योंकि वे (विमुचः) खुलने योग्य (सन्ति) हैं, (पूषन्) हे पोषण करने वाले विद्वान् ! (भ्रूणघ्नि) स्त्री के गर्भघाती रोग में [वर्तमान] (दुरितानि) कष्टों को (मृक्ष्व) दूर कर ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् प्रयत्न करें कि सब सन्तान गुणी होकर अपने अपने समय पर विवाहित होकर सुखी होवें और यथावत् ब्रह्मचर्य सेवन से कुल में गर्भ पतन आदि रोग न होवें ॥३॥

सूक्तम् ॥११३॥

१–३ ॥ त्रितो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

पापशोधनोपदेशः—पाप शुद्ध करने का उपदेश ॥

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(त्रिते) तीनों कालों वा लोकों में फैले हुए त्रित परमात्मा के बीच [वर्तमान] (देवाः) विद्वानों ने (एतत्) इस (एनः) पाप को (अमृजत) शुद्ध किया है, (त्रितः) त्रिलोकीनाथ त्रित परमेश्वर ने (एनत्) इस [पाप] को (मनुष्येषु) मनुष्यों में [ज्ञान द्वारा] (ममृजे) शोधा है। [हे मनुष्य !] (ततः) इस पर भी (यदि) जो (त्वा) तुझको (ग्राहिः) जकड़ने वाली पीड़ा [गठिया आदि] ने (आनशे) घेर लिया है, (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरा (ताम्) उस [पीड़ा] को (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (नाशयन्तु) नाश करें ॥१॥

भावार्थः - परमात्मा ने वेद द्वारा मनुष्य को पापनाश का उपाय बताया है, यह बात साक्षात् करके विद्वानों ने अपने दोष नाश किये हैं, इतना जानने पर भी यदि मनुष्य पाप में फंसे तो विद्वानों से पूछकर दोष निवृत्ति करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥२॥

भाषार्थः—(पाप्मन्) हे पाप ! तू (मरीचीः) किरणों और (धूमान्) धूमों का (अनु) अनुकरण करके (प्र विश) प्रवेश कर, (उत) और (उदारान्) बड़े दाता वा ऊपर चढ़ने वाले मेघों (वा) और (नीहारान्) कोहरों को (गच्छ) प्राप्त हो। (नदीनाम्) नदियों के (तान्) उन (फेनान्) फेनों के (अनु) पीछे पीछे (वि नश्य) विनष्ट हो जा। (पूषन्) हे पोषण करने वाले विद्वान् ! (भ्रूणघ्नि) स्त्री के गर्भ-घाती रोग में [वर्त्तमान] (दुरितानि) कष्टों को (मृक्ष्व) दूर कर ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य, किरणों, धूम, मेघ, कुहरे, और जल फेन की सूक्ष्मता और शीघ्र गति के अनुसार ब्रह्मचर्य आदि तप द्वारा सूक्ष्म पापों को बहुत शीघ्र नष्ट करके सुखी होवें ॥२॥

द्वा दशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशेतां तं देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(द्वादशधा) बारह [मन और बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों] में (निहितम्=०-तानि) ठहरे हुए (मनुष्यैनसानि) मनुष्यों के पाप (त्रितस्य—त्रितेन) त्रित परमेश्वर करके [वेद द्वारा] (अपमृष्टम्=० ष्टानि) शुद्ध किये गये हैं। (ततः) इस पर भी (यदि) जो·····म० १ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों के विकार से उत्पन्न पापों को वेदज्ञान द्वारा विद्वानों के सत्संग से सर्वथा शोधकर सदा सुखी रहें ॥३॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ॥

अथ द्वादशोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥११४॥

१—३ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पापमोचनोपदेशः—पाप से मुक्ति का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (देवासः) खेल करते हुए (वयम्) हम लोगों ने (यत्) जो (देवहेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) किया है (आदित्याः) हे सूर्य समान तेजस्वी ! (यूयम्) तुम लोग (तस्मात्) उस [पाप] से (नः) हमको (ऋतस्य) धर्म के (ऋतेन) सत्य व्यवहार द्वारा (मुञ्चत) छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—यदि मनुष्यों से प्रमाद के कारण विद्वानों का अनादर हो जावे, तो उनको योग्य है कि वे धार्मिक व्यवहार करके विद्वानों को प्रसन्न करें ॥१॥

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२॥

भाषार्थः—(आदित्याः) हे विद्या से प्रकाशमान (यजत्राः) पूजनीय संगति-योग्य पुरुषो ! (ऋतस्य) धर्म के (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (इह) इस [पापकर्म] में (नः) हमें (मुञ्चत) मुक्त करो ! (यत्) क्योंकि (यज्ञवाहसः) हे यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना वा शिल्पविद्या प्राप्त कराने वाले महाशयो ! (यज्ञम्) देवताओं की पूजा (शिक्षन्तः) करने की इच्छा करते हुए हम लोग (नउपशेकिम) उसे न कर सके ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् लोग प्रमादी आलसी पुरुषों को धार्मिक व्यवहारों में लगाकर पुरुषार्थी बनावें ॥२॥

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥३॥

भाषार्थः—(यजमानाः) यजमान, ईश्वर उपासक वा पदार्थों के संयोग वियोग करने वाले विज्ञानी लोग (मेदस्वता) चिकने घृत आदि पदार्थ वाले (स्रुचा) स्रुचा [चमसे] से (आज्यानि) यज्ञ के साधन घृत, तेल आदि द्रव्यों को (जुह्वतः) होमते हुए [रहते हैं] ! (विश्वे देवाः) हे सब विद्वानों ! (वः) तुम्हारी (अकामाः) कामना न करने वाले (शिक्षन्तः)[यज्ञ] करने की इच्छा करते हुए हम लोग (न उप शेकिम) उसे न कर सके ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य वैज्ञानिक विद्वानों के समान विद्वानों का सत्कार करके विज्ञान सिद्ध ईश्वरविद्या और शिल्पविद्या को प्राप्त करें ॥३॥

सूक्तम् ॥११५॥

१ ३ ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पापमोचनोपदेशः—पाप से मुक्ति का उपदेश ॥

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥१॥

भाषार्थः —(यत्) यदि (विद्वांसः) जानते हुए, (यत्) यदि (अविद्वांसः) न जानते हुए (वयम्) हम ने (एनांसि) पाप कर्म (चकृम) किये हैं। (विश्वे देवाः) हे सब विद्वानो ! (सजोषसः) समान प्रीति युक्त (यूयम्) तुम (नः) हमें (तस्मात्) उस [अपराध] से (मुञ्चत) मुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सब प्रकार के पापों को छोड़ कर सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें ॥१॥

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) जो (जाग्रत्) जागते हुए, (यदि) जो (स्वपन्) सोते हुए (एनस्यः) पापी मैंने (एनः) पाप (अकरम्) किया है (भूतम्) वर्तमान प्राणीसमूह (च) और (भव्यम्) भविष्यत् प्राणीसमूह (द्रुपदात् इव) काठ के बन्धन के सदृश वर्तमान (तस्मात्) उस [पाप] से (मा) मुझको (मुञ्चताम्) छोड़ावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ऐसे अपराध कभी भी न करें जिस से वर्तमान और भविष्यत् प्राणियों को दुःख होवे ॥२॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥३॥

भाषार्थः—(द्रुपदात्) काष्ठ बन्धन से (मुमुचानः इव) छुटे हुए पुरुष के समान, (स्विन्नः) पसीने में डूबे हुए (स्नात्वा) स्नान करके (मलात्) मल से [छुटे हुए के] (इव) समान (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले छन्ना वा अग्नि से (पूतम्) शुद्ध किये हुए (आज्यम् इव) घृत के समान, (विश्वे) सब [दिव्यगुण] (मा) मुझको (एनसः) पाप से (शुम्भन्तु) शुद्ध करें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक सर्वथा पापों से शुद्ध रहकर सदा आनन्द भोगें ॥३॥

सूक्तम् ॥११६॥

१—३ ॥ वैवस्वतो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

पापनिवृत्त्युपदेशः—पाप से निवृत्ति का उपदेश ॥

यद् यामं चक्रुर्नि खनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥१॥

भाषार्थः—(अग्रे) पहिले (निखनन्तः) [भूमि को] खोदते हुए (कार्षीवणाः) खेती के सेवन करने वाले किसानों ने (विद्यया) विद्या के साथ (अन्नविदः न) अन्न प्राप्त करने वाले पुरुषों के समान, (यत् यामम्) जिस नियम समूह को (चक्रुः) किया है। (तत्) उसी [नियम समूह] को (वैवस्वते) मनुष्यों के स्वामी (राजनि) राजा परमेश्वर में (जुहोमि) मैं समर्पण करता हूं, [जिससे] (अथ) फिर (नः) हमारा (अन्नम्) प्राण साधन अन्न (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य और (मधुमत्) ज्ञान-युक्त (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों के समान किसान लोग भूमि जोत कर, बीज बोकर अन्न प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य सर्वनियन्ता जगदीश्वर का आश्रय लेकर कर्म करते हुए आनन्द भोगें ॥१॥

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुनासंसृजाति ।
मातुर्यदेनः इषितं न आगन् यद्वा पितापराद्धो जिहीडे ॥२॥

भाषार्थः—(मधुभागः) ज्ञान का भाग करने वाला, (वैवस्वतः) मनुष्यों का स्वामी परमेश्वर (भागधेयम्) भाग (कृणवद्) करे और (मधुना) [उस पाप के] ज्ञान के साथ [हमें] (सम् सृजाति) संयुक्त करे। (मातुः) माता को प्राप्त करके (इषितम्) उतावली से किया हुआ (नः) हमारा (यत्) जो (एनः) पाप (आगन्) हो गया है, (वा) अथवा (यत्) जिस पाप के कारण (पिता) पिता, (अपराद्धः) जिसका हमने अपराध किया है, (जिहीडे) क्रोधित हुआ है ॥२॥

भावार्थः—यदि मनुष्य प्रमाद के कारण माता पिता आदि को अप्रसन्न करे तो वह उनसे क्षमा मांगकर प्रायश्चित्त करके शुद्ध होवे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥३॥

भाषार्थः--(यदि) जो (मातुः) माता के प्रति, (यदि वा) अथवा, (पितुः) पिता के प्रति, (भ्रातुः) भ्राता के प्रति, अथवा (पुत्रात्) पुत्र के प्रति (नः) हमारे (चेतसः) चित्त से (इदम्) यह (एनः) पाप (परि) सब ओर से (आगन्) हो गया है। (यावन्तः) जितने (पितरः) पिता के समान माननीय (अस्मान्) हमको (सचन्ते) सदा मिलते हैं [उनके विषय में भी जो पाप हुआ है] (तेषाम् सर्वेषाम्) उन सब का (मन्युः) क्रोध (शिवः) शान्त (अस्तु) होवे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सब कुटुम्बियों और सब मान्य पुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खें ॥३॥

सूक्तम् ॥११७॥

१—३ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ऋणाद्विमोचनोपदेशः— ऋण से छुटने का उपदेश ॥

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥१॥

भाषार्थः— (यमस्य) नियम करने वाले [ऋणदाता] के (अप्रतीत्तम्) विना चुकाये (यत्) जिस (अपमित्यम्) अपमान के हेतु ऋण को (अस्मि=असामि) मैं ग्रहण करता हूं, और (येन बलिना) जिस बलवान् के साथ [ऋण लेकर] (चरामि) मैं चेष्टा करता हूं। (इदम्) अब (तत्) उससे, (अग्ने) हे विद्वान् ! मैं (अनृणः) ऋण रहित (भवामि) हो जाऊं, (त्वम्) तू (सर्वान्) सब (पाशान्) बन्धनों को (विचृतम्) खोलना (वेत्थ) जानता है ॥१॥

भावार्थः मनुष्य ज्ञानपूर्वक पुरुषार्थ करके माता पिता आचार्य आदि की सेवा से देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण चुकावें ॥१॥

इहैव सन्त प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्यं धान्यं १ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥२॥

भाषार्थः—(इह) यहां [इस शरीर में] (एव) ही (सन्तः) रहते हुए हम (एनत्) इस [ऋण] को (प्रति दद्मः) चुका देवें, (जीवाः) जीते हुए हम (जीवेभ्यः) जीते हुए पुरुषों को (एनत्) यह [उधार] (नि) नियम से (हरामः) दे देवें। (यत्) जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धान्यम्) धान्य (अपमित्य) उधार लेकर (अहम्) मैंने (जघस) खाया है, (अग्ने) हे विद्वान्! (इदम्) अभी (तत्) उससे मैं (अनृणः) अऋण (भवामि) हो जाऊं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य संसार के सब जीवों का उपकार अपने पर विचार कर अपने और उनके जीवन में ही यथोचित सेवा से उनका ऋण चुकावें ॥२॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥३॥

भाषार्थः—हम (अस्मिन् लोके) इस लोक [बालकपन] में (अनृणाः) अऋण, (परस्मिन्) दूसरे [युवापन] में (अनृणाः) अऋण और (तृतीये) तीसरे [बुढ़ापे] में (अनृणाः) अऋण (स्याम) होवें। (देवयानाः) विजय चाहने वाले और व्यापारियों के यान अर्थात् विमान रथ आदि के चलने योग्य (च) और (पितृयाणाः) पालन करने वाले विज्ञानियों के गमन योग्य (ये) जो (लोकाः) लोक [स्थान] और (पथः=पन्थानः) मार्ग हैं, (सर्वान्) उन सब में (अनृणाः) हम अऋण होकर (आ) सब ओर से (क्षियेम) चलते रहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या अभ्यास से बालकपन का ऋण, गृहस्थ आश्रम में धन और प्रजा पालन आदि की सफलता से युवावस्था का ऋण, और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के सेवन से बुढ़ापे का ऋण चुकाकर महात्माओं के समान धार्मिक परोपकारी बनें ॥३॥

सूक्तम् ॥११८॥

१—३ ॥ अप्सरसौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ऋणाद् विमोचनोपदेशः—ऋण से छुटने का उपदेश ॥

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः।
उग्रं पश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनुदत्तामृणं नः ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (अक्षाणाम्) इन्द्रियों के (गत्नुम्) पाने योग्य विषय के (उपलिप्समानाः) लाभ की इच्छा करते हुए हमने (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (किल्बिषाणि) अनेक पाप (चकृम) किये हैं। (उग्रंपश्ये) तीव्र दृष्टि वाली, (उग्रजितौ) उग्र होकर जीतने वाली, (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में विचरने वाली अप्सरायें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य भूमि दोनों (अद्य) आज (नः) हमारे (तत्) उस (ऋणम्) ऋण को (अनु) अनुग्रह करके (दत्ताम्) दे देवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके सूर्य और पृथिवी अर्थात् संसार के सब पदार्थों से विज्ञानपूर्वक उपकार लेकर अपना कर्त्तव्य करें ॥१॥

उग्रं पश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेत्स्यमानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२॥

भाषार्थः —(उग्रंपश्ये) हे तीव्र दृष्टि वाली ! (राष्ट्रभृत्) हे राज्य को पालने वाली ! [सूर्य और पृथिवी] (किल्बिषाणि) हमारे अनेक पाप हैं। (यत्) जो (अक्षवृत्तम्) इन्द्रियों का सदाचार है, (एतत्) वह (नः) हमें (अनु) अनुग्रह करके (दत्तम्) तुम दोनों दान करो। (ऋणात् ऋणम्) ऋण के पीछे ऋण को (एर्त्स्यमानः) लगातार बढ़ाने की इच्छा करता हुआ, (अधिरज्जुः) रसरी लिये हुए [उधार देने वाला] (यमस्य) न्यायाधीश के (लोके) समाज में (नः) हमको (आ) आकर (न) न (अयत्) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य पापों को छोड़कर सदा सदाचार करें जिस से उन्हें संसार में लज्जित न होना पड़े, जिस प्रकार ऋण दाता ब्याज पर ब्याज बढ़ा कर अपने ऋणी को राजद्वार में लज्जित करता है ॥२॥

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि य याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (यस्मै ऋणम्) जिस का मुझ पर उधार है, (यस्य) जिसकी (जायाम्) स्त्री के पास (उपैमि) मैं जाऊं, अथवा (याचमानः) अनुचित मांगता हुआ मैं (यम्) जिसके पास (अभ्यैमि) पहुँचूं। (ते) वे लोग (मत्) मुझसे (उत्तराम्) (वाचम्) बढ़ कर बात (मा वादिषुः) न बोलें, (देवपत्नी) हे दिव्यपदार्थों की रक्षा करने वाली (अप्सरसौ) आकाश में चलने वाली, सूर्य और पृथिवी ! (अधीतम्) [यह बात] स्मरण रक्खो ॥३॥

भावार्थः—संसार के मनुष्य स्मरण रक्खें कि ऋण लेने, व्यभिचार करने और अनुचित मांगने से प्रशंसा में बट्टा लगता है, इससे पुरुषार्थ करके कीर्ति बढ़ावें ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥११९॥

१–३ ॥ वैश्वानरो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

प्रतिज्ञाप्रतिपालनोपदेशः—वचन के प्रतिपालन का उपदेश ॥

यदद्दीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (अदीव्यन्) व्यवहार न करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (ऋणम्) ऋण (कृणोमि) करूं । (उत) अथवा (अदास्यन्) चुकाना न चाहता हुआ (संगृणामि) प्रण करूं (वैश्वानरः) सब नरों का स्वामी, (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला, (वसिष्ठः) अति उत्तम परमेश्वर (इत्) ही (नः) हमें (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) लोक [समाज] में (उन्नयाति) ऊंचा चढ़ावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को साक्षी करके पुरुषार्थ पूर्वक माता पिता आदि के ऋण को चुकावें और अपने बचन को मिथ्या न करें ॥१॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२॥

भाषार्थः—(वैश्वानराय) सब नरों के हितकारी परमेश्वर से (प्रति) प्रत्यक्ष (वेदयामि) निवेदन करता हूं कि (देवतासु) विद्वानों के विषय [मेरी ओर से] (यत्) जो (ऋणम्) ऋण और (संगरः) प्रण है । (सः) वह परमेश्वर (एतान्) इन (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दों को (विचृतम्) खोल देना (वेद) जानता है, (अथ) सो (पक्वेन सह) उस पक्के [दृढ़] स्वभाव वाले परमेश्वर के साथ (सम् भवेम) हम बने रहें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर अपने ऋण और प्रतिज्ञा को पूरा करके सदा परमेश्वर की आज्ञा पालन करते रहें ॥२॥

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥३॥

भाषार्थः—(पविता) सब शुद्ध करने वाला (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी (मा) मुझे (पुनातु) शुद्ध करे, (यत्) यदि (मनसा) मन से (अनाजानन्) अजान होकर (याचमानः) [अनुचित] मांगता हुआ मैं (संगरम्) अपनी प्रतिज्ञा और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आशाम्) उनकी आशा पर (अभिधावामि) पानी फेर दूं। (तत्र) उस [कर्म] में (यत्) जो (एनः) पाप है, (तत्) उसको (अप सुवामि) मैं हटाऊं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्धस्वभाव परमात्मा के गुणों को विचारता हुआ अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करे, और प्रमाद करके दुष्ट कर्मों में न पड़े ॥३॥

सूक्तम् ॥१२०॥

१—३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ त्रिष्टुप्; २, ३ विराट् छन्दः ॥

गृहमोदवर्द्धनायोपदेशः— घर में आनन्द बढ़ाने का उपदेश ॥

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) यदि (अन्तरिक्षम्) आकाश [वहां के प्राणियों] को (पृथिवी) भूमि [वहां के जीवों] को (उत) और (द्याम्) प्रकाशमान लोक [प्रकाश के जीवों] को, (यत्) यदि (मातरम्) माता (वा) अथवा (पितरम्) पिता को (जिहिंसिम) हमने सताया है। (अयम्) यह (गार्हपत्यः) घर के स्वामियों का संयोगी (अग्निः) अग्नि, सर्वज्ञ परमेश्वर (तस्मात्) उस [पाप] से पृथक् करके (नः) हमें (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (इत्) अवश्य (उन्नयाति) ऊँचा चढ़ावे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के उपकारों को साक्षात् करके संसार के सब जीवों और माता पिता आदि माननीय महात्माओं का उपकार करके धर्मात्माओं के समाज में प्रतिष्ठा पावें ॥१॥

भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा मावं पत्सि लोकात् ॥२॥

भाषार्थः (अदितिः) अविनाशिनी प्रकृति (नः) हमारी (जनित्रम्) उत्पत्ति का निमित्त है, (भूमिः) सब के आधार पृथिवी के समान (माता) माता, (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश के समान (नः) हमारा (भ्राता) भ्राता, (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य के समान (नः) हमारा (पिता) पिता (अभिशस्त्या = ० - शस्त्याः) अपवाद से [अलग करके] (शम्) शान्तिकारक (भवाति) होवे, (जामिम्) बन्धुवर्ग को (ऋत्वा) पाकर (पित्र्यात्) पितरों, विज्ञानियों के प्रिय (लोकात्) समाज से (मा अव पत्सि) मैं कभी न गिरूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर, परमेश्वर रचित पदार्थों और माता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता आदि कुटुम्बियों का उपकार विचार कर उनकी यथावत् सेवा से मनुष्य समाज में कीर्ति बढ़ावें ॥२॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरहृताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥३॥

भाषार्थः—(यत्र) जहां पर (सुहार्दः) सुन्दर हृदय वाले (सुकृतः) पुण्यात्मा लोग (स्वायाः) अपने (तन्वः) शरीर का (रोगम्, रोग (विहाय) छोड़ कर (मदन्ति) आनन्द भोगते हैं। (तत्र) वहां पर (स्वर्गे) स्वर्ग [सुख विशेष] में (अश्लोणाः) विना लंगड़े हुए और (अङ्गैः) अंगों से (अहृताः) विना टेढ़े हुए हम पितरौ) माता पिता (च) और (पुत्रान्) पुत्रों को (पश्येम) देखते रहें ॥३॥

भावार्थः—जिस घर में सब स्त्री पुरुष सुकर्मी और नीरोग होवें उस घर में ही सब कुटुम्बी मिलकर सुख के स्थिर रखने का प्रयत्न करें ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध आ चुका है—अ० ३ । २८ । ५ ॥

सूक्तम् ॥१२१॥

१—४ ॥ अग्निर्देवता ॥ १ विराट्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४ अनुष्टुप् ॥

मोक्षप्राप्त्युपदेशः—मोक्ष पाने का उपदेश ॥

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुःष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे शूर!] (विषाणा=०—णेन) विविध भक्ति के साथ (पाशान्) फंदों को (अस्मत्) हमसे (अधि) अधिकार पूर्वक (वि ष्य) खोल दे, (ये) जो (उत्तमाः) ऊंचे और (ये) जो (अधमाः) नीचे फंदे (वारुणः) जो द्वेष निवारक वरुण परमात्मा से आये हैं। (दुःष्वन्यम्) नींद में उठे कुविचार और (दुरितम्) विघ्न को (अस्मत्) हम से (निः) निकाल दे, (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (गच्छेम) जावें ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य भक्ति की शक्ति को बढ़ाकर अपने बुरे कर्म के फल दुःखों को पुरुषार्थ से हटाकर सोते जागते उत्तम विचार करते हैं वे ही पुण्यात्मा कीर्ति पाते हैं ॥१॥

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे जीव !] (यत्) यदि तू (दारुणि) काष्ठ में, (च) और (यत्) यदि तू (भूम्याम्) भूमि में (च) और (यत्) यदि (वाचा) वचन के साथ (बध्यसे) बंधा है। (अयम्) यह (गार्हपत्यः) घर के स्वामियों का संयोगी (अग्निः) अग्नि, सर्वज्ञ परमेश्वर (तस्मात्) उस [कष्ट] से पृथक् करके (नः) हमें (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (इत्) अवश्य (उन्नयाति) ऊंचा चढ़ावे ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य बड़ी विपत्तियों में पड़ कर परमात्मा की शरण लेता और पुरुषार्थ करता है वह कष्ट से छूट कर उन्नति पाता है ॥२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध ऊपर आ चुका है—अ० ६। १२०। १॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३॥

भाषार्थः—(भगवती=०—त्यौ) दो ऐश्वर्य वाले (विचृतौ) [अन्धकार से] छुड़ाने हारे (नाम) प्रसिद्ध (तारके) तारे [सूर्य और चन्द्रमा] (उदगाताम्) उदय हुए हैं। वे दोनों (इह) यहां पर (अमृतस्य) मरण से बचाव [पुरुषार्थ] का (प्रयच्छताम्) दान करें, [तव] (बद्धकमोचनम्) बंधुवे [आत्मा] की मुक्ति (प्र एतु) हो जावे ॥३॥

भावार्थः जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा नियम पर चलकर जगत् का उपकार करते हैं, इसी प्रकार पुरुषार्थी मनुष्य ईश्वर आज्ञा पालन करके आप दुःख से छूटते और औरों को छुड़ाते हैं ॥३॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध पहिले आ चुका है—अ० २। ८। १।

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ॥४॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (वि जिहीष्व) विविध प्रकार से चल, (लोकम्) समाज को (कृणु) बना, (बद्धकम्) बड़े बँधुवे [आत्मा] को (बन्धात्) बन्ध से (मुञ्चासि) तू छुड़ा दे (योन्याः) गर्भाशय से (प्रच्युतः) बाहर निकले हुए (गर्भः इव) बालक के समान (सर्वान्) सब (पथः अनु) मार्गों की ओर (क्षिय) चल ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे जैसे प्रयत्न करता है वैसे वैसे दुःख बन्धन से छूट कर आनन्द भोगता है, जैसे गौ आदि का बच्चा गर्भ से उत्पन्न होकर प्रसन्नता से विचरता है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१२२॥

१—५ प्रजापति देवता ॥ १, ३, ४ त्रिष्टुप्; २ विराट्; ५ जगती

आनन्दप्राप्त्युपदेशः—आनन्द की प्राप्ति करने का उपदेश ॥

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥१॥

भाषार्थः—(प्रथमजाः) श्रेष्ठों में प्रसिद्ध, (विद्वान्) विद्वान् मैं (ऋतस्य) सत्य धर्म के (एतम्) इस (भागम्) सेवनीय व्यवहार को (विश्वकर्मन्) जगत् के रचने वाले विश्वकर्मा परमेश्वर में (परि ददामि) समर्पण करता हूं। (जरसः) बुढ़ापे से (परस्तात्) दूर देश में (अस्माभिः दत्तम्) अपने दिये हुए (अच्छिन्नम्) विना टूटे (तन्तुम् अनु) फैले हुए [अथवा वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक] परब्रह्म के पीछे पीछे (सम्) यथावत् (तरेम) हम पार करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य [अपने शुभ कर्मों को परमात्मा में समर्पण करके अजर अमर के समान तत्त्वज्ञान प्राप्त करके विद्यादान करें ॥१॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्धवेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२॥

भाषार्थः—(येषाम्) जिन लोगों का (पित्र्यम्) पितरों, माननीयों का प्रिय (दत्तम्) दान (आयनेन) यथाशास्त्र होता है, (एके) वे कोई (ततम्) फैले हुए (तन्तुम् अनु) वस्त्र में सूत के समान सर्वव्यापक ब्रह्म के पीछे पीछे (तरन्ति) तरते हैं। (एके) कोई कोई (अबन्धु) बन्धुरहितों [अनाथों] को (ददतः) देते हुए और (प्रयच्छन्तः) सौंपते हुए रहते हैं, [जो] (दातुम्) दान करने को (च इत्) अवश्य ही (शिक्षान्) समर्थ हों, (सः एव) वही [उनको] (स्वर्गः) स्वर्ग है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सुपात्रों का सत्कार करके परमात्मा की आज्ञा पालन करते हैं, वे ही विशेष सुख के भागी होते हैं ॥२॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥३॥

भाषार्थः—(दम्पती) हे स्त्री पुरुषो ! [सत्कर्म को] (अन्वारभेथाम्) निरन्तर आरम्भ करो, (अनुसंरभेथाम, मिल कर आरम्भ करते रहो, (श्रद्दधानाः) श्रद्धा वाले लोग (एतम्) इस [स्वर्ग] (लोकम्) लोक को (सचन्ते) निरन्तर सेवते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। (अग्नौ) अग्नि में (पक्वम्) पका हुआ (यत्) जो [अन्न] (वाम्) तुम्हारे लिये (परिविष्टम्) उपस्थित है, (तस्य गुप्तये) उसकी रक्षा के लिये (सम् श्रयेथाम्) तुम दोनों परस्पर आश्रय लो ॥३॥

भावार्थः—सब स्त्री पुरुष गृहस्थ आश्रम में यथावत् प्रवेश करके परमात्मा में श्रद्धा रखते हुए अपने कर्तव्य का यथावत् पालन करके सदा सुख भोगें ॥३॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४॥

भाषार्थः—(मनसा) विज्ञान और (तपसा) तप अर्थात् उत्साह के साथ (सयोनिः) निवास करता हुआ मैं (यन्तम्) व्याप्तिशील (बृहन्तम्) सब में बड़े (यज्ञम्) पूजनीय ब्रह्म को (अन्वारोहामि) निरन्तर ऊंचा होकर प्राप्त करता हूं। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर! (जरसः) वयोहानि से (परस्तात्) दूर देश में (उपहूताः) बुलाये गये हम (तृतीये) तीसरे [जीव और प्रकृति से भिन्न] (नाके) सुख स्वरूप परमात्मा में (सधमादम्) हर्षोत्सव (मदेम) मनावें ॥४॥

भावार्थः जो मनुष्य पूरण विज्ञान और तपस्या से परब्रह्म को खोज कर उपकारी होते हैं, वे अजर अमर होकर उस परमात्मा के साथ आनन्द भोगते हैं ॥४॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५॥

भाषार्थः—(शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव वाली, (पूताः) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञियाः) पूजनीय (इमाः) इन (योषितः) सेवा योग्य स्त्रियों को (ब्रह्मणाम्) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (हस्तेषु) हाथों के बीच [विज्ञान के बलों मे] (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं बैठालता हूं। [हे विद्वान् स्त्री पुरुष!] (यत्कामः) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूं, (सः) वह (मरुत्वान्) दोषनाशक गुणों वाला (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर (तत्) वह वस्तु (मे) मुझे (ददातु) देवे ॥५॥

भावार्थः परमात्मा ने विज्ञान प्राप्ति में स्त्री पुरुषों को समान रचा है, इसलिये मनुष्य को विद्वान् स्त्री पुरुषों से सादर विज्ञान प्राप्त करके परमात्मा में श्रद्धालु होकर आनन्दित होवें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१२३॥

१—५ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २ त्रिष्टुप्; ३–५ अनुष्टुप् ॥

विद्वद्भिः सत्सङ्गोपदेशः – विद्वानों से सत्संग का उपदेश ॥

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥१॥

भाषार्थः—(सधस्थाः) हे साथ साथ बैठने वाले सज्जनो ! (वः) तुम्हारे लिये (एतम्) इस (शेवधिम्) सुखनिधि परमेश्वर को (परिददामि) सब प्रकार से देता हूं [उपदेश करता हूं] (यम्) जिस [परमेश्वर] को (जातवेदाः) विज्ञान को प्राप्त वेदार्थ जानने वाला पुरुष (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे, और [जिसके द्वारा] (यजमानः) परमेश्वर का पूजने वाला (स्वस्ति) कल्याण (अन्वागन्ता) लगातार पावेगा, (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्तमान (तम्) उस परमेश्वर को तुम (स्म) अवश्य (जानीत) जानो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों से मिलकर सदाचारी होते हैं, वे ही सर्वव्यापी परमेश्वर से मिलते हैं ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से यजुर्वेद में हैं–अ० १८ । ५९ । ६०, इनका अर्थ भगवान् दयानन्द सरस्वती के आधार पर यहां किया गया है ॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥२॥

भाषार्थः—(सधस्थाः) हे साथ साथ बैठने वाले (देवाः) विद्वानो ! (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्तमान (एनम्) इस [परमात्मा] को (स्म) अवश्य (जानीत) जानो, और (अत्र) इस [परमात्मा] में (लोकम्) संसार को (विद) जानो [और जिसके द्वारा] (यजमानः) परमेश्वर का पूजने वाला (स्वस्ति) कल्याण (अन्वागन्ता) लगातार पावेगा, (इष्टापूर्तम्) यज्ञ, वेदाध्ययन, अन्नदान आदि पुण्यकर्म को (अस्मै) इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (स्म) अवश्य (आविः) प्रकाशित (कृणुत) करो ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग से योगाभ्यास और धर्म्म का आचरण करके परमेश्वर को जान कर आनन्द करें ॥२॥

देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (पितरः) माननीय, और (पितरः) पालन करने वाले लोग (देवाः) विजयी होते हैं। मैं (यः) चलने फिरने वाला [उद्योगी] (अस्मि) हूं, मैं ही (सः) दुःख मिटाने वाला (अस्मि) हूँ ॥३॥

भावार्थः—विद्वान् ही परस्पर पालन करके विजयी, और आत्म-विश्वासी और उद्योगी ही परस्पर सहायक होते हैं ॥३॥

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥४॥

भाषार्थः—(सः) क्लेशनाशक मैं [अन्न] को (पचामि) परिपक्व करता हूँ, (सः) वही मैं (ददामि) दान करता हूं, (सः) वही मैं (यजे) विद्वानों को पूजता हूं (सः) वह मैं (दत्तात्) दान से [सुपात्रों के लिये] (मा यूषम्) पृथक् न होऊं ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थ के साथ सुपात्रों का सत्कार करके कीर्त्तिमान् होवें ॥४॥

नाके राजन् प्रतितिष्ठ तत्रैतत् प्रतितिष्ठतु ।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥५॥

भाषार्थः—(राजन्) हे समर्थ मनुष्य ! (नाके) सुख स्वरूप परमात्मा में (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा पा, (तत्र) उसी [परमात्मा] में ही (एतत्) यह [तेरा पुण्य कर्म] (प्रति तिष्ठतु) प्रतिष्ठा पावे। (राजन्) हे विद्या से प्रकाशमान ! (नः) हमारे लिये (पूर्तस्य) अन्न दान आदि पुण्य कर्म का (विद्धि) ज्ञान कर, (सः) वह तू, (देव) हे गतिशील ! (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (भव) हो ॥५॥

भावार्थः मनुष्य अपने सब शुभ कर्मों को परमात्मा में समर्पण करके पुण्य कर्म करता हुआ सदा प्रसन्न रहे ॥५॥

सूक्तम् ॥१२४॥

१—३ ॥ अग्नि देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

आत्मशुद्धयुपदेशः—आत्मा की शुद्धि का उपदेश ॥

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥१॥

भाषार्थः—(दिवः) प्रकाशमान सूर्य से, (नु) अथवा (बृहतः) [सूर्य से] बड़े (अन्तरिक्षात्) आकाश से (अपाम्) जल का (स्तोकः) विन्दु (माम् अभि) मेरे ऊपर (रसेन) रस के साथ (अपप्तत्) गिरा है। (सुकृताम्) सुकर्मियों के (कृतेन)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by.Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म से, (अग्ने) हे सर्वव्यापी परमेश्वर ! (इन्द्रियेण) इन्द्रपन अर्थात् सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ, (पयसा) अन्न के साथ (छन्दोभिः) आनन्ददायक कर्मों के साथ (यज्ञैः) विद्या आदि दानों के साथ (अहम्) मैं (सम्=संगच्छेय) मिला रहूँ ॥१॥

भावार्थः—जैसे जल सूर्य द्वारा खिंच कर मेघमण्डल से बरस कर संसार को पुष्ट करता है, वैसे ही धर्म्मात्माओं से उत्तम गुण ग्रहण करके मनुष्य अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

यदि॑ वृ॒क्षाद॒भ्यप॑प्तत् फ॒लं तद् यद्यन्तरि॑क्षात् स उं॑ वा॒युरे॒व ।
यत्रास्पृ॑क्षत् त॒न्वो॑ ३॑ यच्च वास॑स॒ आपो॑ नुदन्तु निर्ऋ॒तिं परा॒चैः ॥२॥

भाषार्थः—(यदि) यदि (वृक्षात्) वृक्ष से (तत् फलम्) वह [अशुद्ध] फल, और (यदि) यदि (अन्तरिक्षात्) आकाश से (सः उ वायुः) वही [अशुद्ध] वायु (एव) वैसे ही (अभ्यपप्तत्) गिर पड़ा है, और (यत्) जिसने (यत्र) जहां पर (तन्वः) शरीर का (च) और (वाससः) वस्त्र का (अस्पृक्षत्) स्पर्श किया है, (आपः) जल (निर्ऋतिम्) अलक्ष्मी [अशुद्धि] को (पराचैः) उलटे मुंह (नुदन्तु) हटा देवें ॥२॥

भावार्थः—जैसे अशुद्ध फल वा अशुद्ध वायु से मलिन वस्त्र वा शरीर को जल से शुद्ध करते हैं, वैसे ही मनुष्य दोषों से दूषित आत्मा को यथार्थ ज्ञान से शुद्ध कर लेवें ॥२॥

अभ्य॑ञ्जनं सु॒र॒भि सा सम्ऋ॑द्धि॒र्हिर॑ण्यं॒ वर्च॒स्तदु॑ पू॒त्रिम॑मे॒व ।
सर्वा॑ प॒वित्रा॑ वि॒तता॒ध्यस्मत् तन्मा॒ ता॑रीन्निर्ऋ॒तिर्मो अरा॑तिः ॥३॥

भाषार्थः—(अभ्यञ्जनम्) तेल आदि लगाना, (सुरभि) सुगन्ध चन्दनादि, (सा समृद्धिः) वह सम्पत्ति, (हिरण्यम्) सुवर्ण, (वर्चः) तेज, (तदु) वही (पवित्रमम्) पवित्रता (एव) वैसे ही है (सर्वा) सब (पवित्रा) शोधन के साधन (अस्मत् अधि) हमारे ऊपर (विततता) फैले हुए हैं, (तत्) इस लिये [हम को] (मा) न तो (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (मो) और न (अरातिः) कंजूस पुरुष (तारीत्) दबावे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य पवित्र धार्मिक व्यवहारों से संसार के आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करके सदा सुख भोगे ॥३॥

इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१२५॥

१—३ ॥ सुवीरो देवता ॥ १ विराट्, २ जगती, ३ त्रिष्टुप् ॥

सेनासेनापतिकर्तव्योपदेशः—सेना और सेनापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥१॥

भाषार्थः—(वनस्पते) हे किरणों के पालन करनेवाले सूर्य के समान राजन् ! (वीड्वङ्गः) बलिष्ठ अङ्गों वाला तू (हि) ही (प्रतरणः) बढ़ाने वाला (सुवीरः) अच्छे अच्छे वीरों से युक्त (अस्मत्सखा) हमारा मित्र (भूयाः) हो । तू (गोभिः) वाणों और वज्रों से (संनद्धः) अच्छे प्रकार सजा हुआ (असि) है, [हमें] (वीडयस्व) दृढ़ बना, (ते) तेरा (आस्थाता) श्रद्धावान् सेनापति (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओं की सेनाओं को (जयतु) जीते ॥१॥

भावार्थः—परस्पर नित्य संबन्ध वाले सूर्य और किरणों के समान राजा, सेना और प्रजा का परस्पर नित्य संबन्ध होवे, और जितेन्द्रिय बलवान् राजा के समान सेना और प्रजा भी जितेन्द्रिय और बलवान् होवें ॥१॥

मन्त्र १—३ कुछ भेद से ऋ० ६ । ४७ । २६—२८ और यजुर्वेद २९ । ५२-५४ में हैं । इन का भाष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के आधार पर किया गया है ॥१॥

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२॥

भाषार्थः—(दिवः) बिजुली वा सूर्य से और (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष से (उद्भृतम्) उत्तम रीति से धारण किये गये (ओजः) बल को (परि) प्राप्त करके, (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (आभृतम्) अच्छे प्रकार पुष्ट किये गये (सहः) बल को (परि) प्राप्त करके (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) ढांपे हुए (अपाम्) जलों के (ओज्मानम्) बल को (परि) प्राप्त करके (वज्रम्) शस्त्र समूह और (रथम्) रथ को (इन्द्रस्य) बिजुली के (हविषा) ग्राह्य गुण के साथ (यज) संयुक्त कर ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य पृथ्वी आदि भूतों और उनसे उत्पन्न पदार्थों के सम्बन्ध से बल और पराक्रम बढ़ा कर विमान आदि यानों को बना कर आनन्दित होवें ॥२॥

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रतिं हव्या गृभाय ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन् ! यहां पर] (मरुताम्) शूरों का (अनीकम्) सेनादल, (इन्द्रस्य) बिजुली का (ओजः) बल, (मित्रस्य) प्राण [चढ़ने वाले वायु] का (गर्भः) गर्भ [अधिष्ठान] और (वरुणस्य) अपान [उतरने वाले वायु] का (नाभिः) नाभि [मध्यस्थान] है। (सः) सो तू (देव) हे प्रकाशमान ! (रथ) रमणीय स्वरूप विद्वान् ! (नः) हमारे लिये (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों की दान क्रिया को (जुषाणः) सेवता हुआ (हव्या) ग्राह्य वस्तुओं को (प्रति) प्रतीति के साथ (गृभाय) ग्रहण कर ॥३॥

भावार्थः जिस सेना में शूर वीर सैनिक बिजुली की शक्ति और वायु के चढ़ाव उतार क्रियाओं में कुशल होते हैं, वे सेनापति और सेनादल परस्पर सहाय करके विजयी होते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥१२६॥

१—३ ॥ वीरा देवताः ॥ १, २ त्रिष्टुप्, ३ विराट् ॥

राजसेनयोः कर्तव्योपदेश—राजा और सेना के कर्त्तव्यों का उपदेश ॥

उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१॥

भाषार्थः—[हे राजन्] (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष को (उत) और (द्याम्) सूर्य वा बिजुली में (उप) उपयोग के साथ (श्वासय) जीवन डाल, (पुरुत्रा) अनेक पदार्थों में (ते) तेरे लिये (विष्ठितम्) व्याप्त (जगत्) जगत् की (वन्वताम्) वे [वीर लोग] याचना करें। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभि [ढोल] के सदृश गर्जन वाले वीर ! (सः) सो तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्य व बिजुली के अस्त्र समूह से और (देवैः) विजयी वीरों से (सजूः) प्रीति करता हुआ (दूरात्) दूर से (दवीयः) अति दूर (शत्रून्) शत्रुओं को (अपसेध) हटा दे ॥१॥

भावार्थः—राजा वीरों द्वारा बिजुली आदि के अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को हटा कर चक्रवर्ती राज्य करके आकाश और भूमि पर शान्ति करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १, ३ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ६। ४७। २९, ३१, यजु० २९। ५५। ५७। इन मन्त्रों का अर्थ भगवान् दयानन्द सरस्वती के आधार पर किया गया है ॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (बलम्) बल और (ओजः) पराक्रम (नः) हमें (आ धाः) अच्छे प्रकार दे, [शत्रुओं को] (आ क्रन्दय) सब ओर से रुला और (दुरिता) कष्टों को (बाधमानः) हटाता हुआ (अभि) सब ओर (स्तन) मेघध्वनि कर। (दुन्दुभे) हे दुन्दुभी [के समान गरजने वाले !] (इतः) यहां से (दुच्छुनाम्) दुष्ट गति को (अप सेध) हटा दे, तू (इन्द्रस्य) बिजली की (मुष्टिः) मूंठ [के समान दुष्टों को मारने वाला] (असि) है, [राज्य को] (वीडयस्व) दृढ़ कर ॥२॥

भावार्थः—जैसे राजा बलवान् होकर यथावत् अस्त्र शस्त्रों से शत्रुओं को जीतकर प्रजा पालन करता है, वैसे ही मनुष्य आत्मदोष मिटा कर धर्मिष्ठ होवें ॥२॥

प्रामूं जयाभी३ मे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३॥

भाषार्थः—(अमूम्) उस [शत्रु सेना] को (प्र) अच्छे प्रकार (जय) जीत ले, (इमे) यह (केतुमत्) ध्वजा पताका वाले शूर (अभि) सब ओर से (जयन्तु) जीत लेवें, (दुन्दुभिः) ढोल (वावदीति) ऊंचे स्वर से बजता है। (अश्वपर्णाः) घुड़चढ़ों के पक्ष [सेना दल] वाले (नः) हमारे (नरः) नायक लोग (सम्) ठीक रीति से (पतन्तु) धावा करे, (इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) अच्छे अच्छे रथों पर चढ़े हुए वीर (जयन्तु) जीतें ॥३॥

भावार्थः—राजा अपने शूर वीरों से दुन्दुभि बजाकर घुड़चढ़े सैन्यकों का दल बना कर शत्रुओं पर धावा करके जीत लेवे ॥३॥

सूक्तम् ॥१२७॥

१–३ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

रोगनाशोपदेशः—रोग के नाश का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१॥

भाषार्थः—(बनस्पते) हे वटादि वृक्ष ! (ओषधे) हे अन्न आदि ओषधि ! (विद्रधस्य) ज्ञाननाशक, हृदय के फोड़े के, (बलासस्य) बल के गिराने वाले सन्निपात कफादि रोग के, (लोहितस्य) रुधिर विकार सूजन आदि के, (विसल्पकस्य) शरीर में फैलने वाले हड़फूटन के (पिशितम् चन) थोड़े अंश को भी (मा उत शिषः) शेष मत छोड़ ॥१॥

भावार्थः—वैद्य रोग निदान जानकर उत्तम परीक्षित ओषधियों से रोग निवृत्ति करे ॥१॥

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२॥

भाषार्थः—(बलास) हे सन्निपात कफ आदि रोग ! (यौ) जो (ते) तेरी (मुष्कौ) दो गिलटियां (कक्षे) [रोगी की] कांख में (अपश्रितौ) आश्रय लिये हुए (तिष्ठतः) स्थित हैं। (अहम्) मैं (तस्य भेषजम्) उसकी ओषधि (वेद) जानता हूं, (चीपुद्रुः) ग्रहण करने योग्य चीपुद्रु [ओषधि विशेष] (अभिचक्षणम्) औषध है ॥२॥

भावार्थः—वैद्य ज्वर, गिलटी आदि रोगों की यथावत् चिकित्सा करे ॥२॥

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (अङ्ग्यः) अङ्गों में रहने वाला, (यः) जो (कर्ण्यः) कानों में होने वाला, (यः) जो (अक्ष्योः) दोनों आंखों का (विसल्पकः) हड़फूटन है। (विसल्पकम्) उस हड़फूटन रोग को, (विद्रधम्) हृदय के फोड़े को और (हृदयामयम्) हृदय की पीड़ा को (वि वृहामः) हम उखाड़े देते हैं। (अज्ञातम्) अप्रकट (यक्ष्मम्) उस राजरोग को (अधराञ्चम्) नीचे की ओर (परा) दूर (सुवामसि) हम फेंकते हैं ॥३॥

इस मन्त्र का मिलान अ० २। ३३। १ से करो ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सद्वैद्य सब प्रकट और अप्रकट रोगों को यथावत् जान कर रोग निवृत्ति करे ॥३॥

सूक्तम् ॥१२८॥

१–४ ॥ शकधूमो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

आनन्दप्राप्त्युपदेशः—आनन्द पाने का उपदेश ॥

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जिस कारण से (नक्षत्राणि) चलने वाले नक्षत्रों ने (शकधूमम्) समर्थ [सूर्य आदि] लोकों के कंपाने वाले परमेश्वर को (राजानम्) राजा (अकुर्वत) बनाया, और (अस्मै) उसी के लिये (भद्राहम्) शुभ दिन का (प्र अयच्छन्) अच्छे प्रकार समर्पण किया, (इति) इसी कारण से (इदम्) यह जगत् (राष्ट्रम्) उस का राज्य (असात्) होवे ॥१॥

भावार्थः—जिस परमात्मा के वश में सूर्य आदि लोक और सब नक्षत्र हैं, वही जगत् स्वामी हमें सदा आनन्द देता रहे ॥१॥

भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्रातो रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥

भाषार्थः—(नः) हमारे लिये (मध्यन्दिने) मध्य दिन में (भद्राहम्) शुभ दिन, (नः) हमारे लिये (सायम्) सायंकाल में (भद्राहम्) शुभ दिन, (नः) हमारे लिये (अह्नाम्) सब दिनों के (प्रातः) प्रातःकाल में (भद्राहम्) शुभ दिन (अस्तु) होवे, (नः) हमारे लिये (रात्री) रात्रि में (भद्राहम्) शुभ दिन (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के अनुग्रह से सब काल में धर्म का आचरण कर के सदा आनन्द भोगें ॥२॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥

भाषार्थः—(शकधूम) हे समर्थ सूर्य आदि लोकों के कंपाने वाले (राजन्) परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अहोरात्राभ्याम्) दिन और रात्रि से,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रों से और (सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा से (भद्राहम्) शुभ दिन (कृधि) कर ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सब काल में, सब स्थान में, सब पदार्थों से उपकार लेकर परमेश्वर की महिमा विचारते हुए सदा सुखी रहें ॥३॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥

भाषार्थः—(यः) जिस तू ने (नः) हमारे लिये (सायम्) सायंकाल में, (नक्तम्) रात्रि में (अथो) और (दिवा) दिन में (भद्राहम्) शुभ दिन (अकरः) किया है। (नक्षत्रराज) हे नक्षत्रों के राजा ! (शकधूम) हे समर्थ सूर्य आदि लोकों के कंपाने वाले परमेश्वर ! (तस्मै ते) उस तेरे लिये (सदा) सदा (नमः) नमस्कार होवे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सुखनिधि परमात्मा का उपकार साक्षात् करके संसार का उपकार करते हुए उसकी आज्ञा का पालन करें ॥४॥

सूक्तम् ॥१२९॥

१—३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य पाने का उपदेश ॥

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना ।
कृणोमि भगिनं मापं द्रान्त्वरातयः ॥१॥

भाषार्थः—(मेदिना) परममित्र (इन्द्रेण साकम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले जगदीश्वर के साथ वर्तमान (शांशपेन) शान्ति के स्पर्श से युक्त (भगेन) ऐश्वर्य से (मा मा) अपने को अवश्य (भगिनम्) बड़े ऐश्वर्य वाला (कृणोमि) मैं करूं। (अरातयः) हमारे सब कंजूस स्वभाव (अप द्रान्तु) दूर भाग जावें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य आनन्द कन्द परमेश्वर के अखण्ड कोश से उपकार लेकर सुपात्रों को दान करते रहें ॥१॥

येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह ।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥२॥

भाषार्थः—[हे परमेश्वर] (वर्चसा सह) तेज के साथ वर्तमान (येन भागेन) जैसे ऐश्वर्य से तू (वृक्षान्) सब स्वीकार योग्य पदार्थों से (अभ्यभवः) बढ़ गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तेन) वैसे ऐश्वर्य से (मा) मुझको (भगिनम्) बड़े ऐश्वर्य वाला (कृणु) कर, (अरातयः) हमारे सब कंजूस स्वभाव (अप द्रान्तु) दूर भाग जावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर को सर्वश्रेष्ठ जान कर संसार में तेजस्वी और धनवान् होवें ॥२॥

यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः ।
तेन मा भगिनं कृणुवप द्रान्त्वरातयः ॥३॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (यः) जो (अन्धः) जीवन का आधार और (यः) जो (पुनःसरः) वारंवार आगे बढ़ने वाला (भगः) ऐश्वर्य (वृक्षेषु) सब स्वीकारयोग्य पदार्थों में (आहितः) अच्छे प्रकार धारण किया गया है। (तेन) उस ऐश्वर्य से (मा) मुझको (भगिनम्) ऐश्वर्य वाला (कृणु) कर, (अरातयः) हमारे सब कंजूस स्वभाव (अप द्रान्तु) दूर भाग जावें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के गुणों को ध्यान करके चिरस्थायी ऐश्वर्य और सुख बढ़ावें ॥३॥

सूक्तम् ॥१३०॥

१—४ ॥ स्मरो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

स्मरणसामर्थ्यवर्धनोपदेशः—स्मरण सामर्थ्य बढ़ाने का उपदेश ॥

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

भाषार्थः—(रथजिताम्) रमणीय पदार्थों की जिताने वाली, और (राथजितेयीनाम्) और स्मरणीय पदार्थों के विजयी पुरुषों के समीप रहने वाली (अप्सरसाम्) आकाश, जल, प्राण और प्रजाओं में व्यापक शक्तियों का (अयम्) यह जो (स्मरः) स्मरण सामर्थ्य है। (देवाः) हे विद्वानो ! (स्मरम्) उस स्मरण सामर्थ्य को (प्र) अच्छे प्रकार (हिणुत) बढ़ाओ, (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (माम् अनु) मुझ में व्यापकर (शोचतु) शुद्ध रहे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से विज्ञानपूर्वक संसार की उपकारी विद्याओं को स्मरण रखकर उपयोगी बनावें ॥१॥

असौ मे स्मरतादितिं प्रियो मे स्मरतादितिं ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (मे) मेरा (स्मरतात्) स्मरण रक्खे, (इति) बस यही, (प्रियः) वह प्यारा [सामर्थ्य] (मे) मेरा (स्मरतात्) चिन्तन करे, (इति) बस यही। (देवाः) हे विद्वानो! (स्मरम्) उस स्मरण सामर्थ्य को··· म० १ ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं को स्मरण रख कर उपयोग करते हैं वे ही संसार में प्रिय होते हैं ॥२॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जिससे (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (मे) मेरा (स्मरात्) स्मरण रक्खे, और (अहम्) मैं (कदा चन) कभी भी (अमुष्य) उसकी (न) न [भूल करूं]। (देवाः) हे विद्वानो! (स्मरम्) उस स्मरण सामर्थ्य को (प्र) अच्छे प्रकार (हिणुत) बढ़ाओ, (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (माम् अनु) मुझ में व्याप कर (शोचतु) शुद्ध रहे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक समस्त विद्याओं को स्मरण रख कर उपयोगी बनावें ॥३॥

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥४॥

भाषार्थः—(मरुतः) हे वायुगणो! (उत्) उत्तम प्रकार से (मादयत) प्रसन्न करो, (अन्तरिक्ष) हे मध्यलोक! (उत्) अच्छे प्रकार (मादय) हर्षित कर। (अग्ने) हे अग्नि! (त्वम्) तू (उत्) उत्तम रीति से (मादय) आनन्दित कर, (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (माम्) मुझको (अनु) व्यापकर (शोचतु) शुद्ध रहे ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक प्राण अपान गति, जाठर अग्नि और बाहिर भीतर स्थान को ठीक ठीक रख कर स्वस्थ रहकर अपनी स्मृति बढ़ाते रहें ॥४॥

सूक्तम् ॥१३१॥

१—३ ॥ विद्वान् देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परस्परपालनोपदेशः—परस्पर पालन का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३' नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (ते) तेरे लिये (शीर्षतः) अपने मस्तक [सामर्थ्य] से (नि) निश्चय करके, (पत्ततः) अपने पद [के सामर्थ्य] से (नि) नियम करके (आध्यः) यथावत् ध्यान धर्मों को (नि) लगातार (तिरामि) मैं पार करूं । (देवाः) हे विद्वानो ! (स्मरम्) स्मरण सामर्थ्य को (प्र) अच्छे प्रकार (हिणुत) बढ़ाओ, (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (माम् अनु) मुझ में व्यापकर (शोचतु) शुद्ध रहे ॥१॥

भावार्थः मनुष्य विद्वानों के सत्संग द्वारा पूर्ण पुरुषार्थ से स्मरण शक्ति बढ़ाकर सुखी होवें ॥१॥

अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥

भाषार्थः –(अनुमते) हे अनुकूल बुद्धि ! तू (इदम्) इसको (अनु मन्यस्व) प्रसन्नता से स्वीकार कर, (आकूते) हे उत्साह शक्ति ! (इदम्) यह (नमः) अन्न (सम्) ठीक रीति से [हमारे लिये हो] । (देवाः) हे विद्वानो ! (स्मरम्) स्मरण सामर्थ्य को (प्र) अच्छे प्रकार (हिणुत) बढ़ाओ, (असौ) वह [स्मरण सामर्थ्य] (माम् अनु) मुझमें व्याप कर (शोचतु) शुद्ध रहे ॥२॥

भावार्थः – मनुष्य बुद्धि और उत्साह के साथ अपने सब काम ठीक ठीक सिद्ध करें ॥२॥

यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३॥

भाषार्थः [हे विद्वान् !] (यत्) जो तू (त्रियोजनम्) तीन योजन, (पञ्चयोजनम्) पांच योजन, अथवा (आश्विनम्) अश्ववार से चलने योग्य देश को (धावसि) दौड़ कर जाता है । (ततः) उससे (त्वम्) तू (पुनः) फिर (आयसि) आ । और (नः) हमारे (पुत्राणाम्) पुत्र आदिकों का (पिता) पिता [पालने वाला] (असः) हो ॥३॥

भावार्थः- विद्वान् मनुष्य दूर देशों से विद्या और धन प्राप्त करके कुटुम्ब आदि का पालन करे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥१३२॥

१—५ ॥ स्मरो देवता ॥ त्रिपादनुष्टुप् छन्दः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश ॥

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१॥

भाषार्थः – (देवाः) विजयी लोगों ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यान शक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम्) जिस (स्मरम्) स्मरण सामर्थ्य को (असिञ्चन्) सींचा है। (तम्) उस [स्मरण सामर्थ्य] को (ते) तेरे लिये (वरुणस्य) सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य से (तपामि) ऐश्वर्ययुक्त करता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विजयी शूरों का अनुकरण करके ध्यानपूर्वक स्मरण-शक्ति बढ़ाकर ईश्वर नियम से ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥१॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥२॥

भाषार्थः—(विश्वे) सब (देवाः) उत्तम गुणों ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच ···म० १ ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र १ के समान ॥२॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्राणी) परम ऐश्वर्य करने वाली नीति ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यान शक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम्) जिस (स्मरम्) स्मरण सामर्थ्य को (असिञ्चत्) सींचा है। (तम्) उस [स्मरण सामर्थ्य] को···म० १ ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य यथार्थ नीति, स्मृति और ध्यान पूर्वक ईश्वरनियम से ऐश्वर्यवान् हो ॥३॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यान शक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम् स्मरम्) जिस स्मरण सामर्थ्य को (असिञ्चताम् सींचा है (तम्, उस [स्मरण सामर्थ्य] को·····म० १ ॥४॥

भावार्थः—जैसे बिजुली और अग्नि के नित्य सम्बन्ध से वृष्टि, प्रकाशादि द्वारा, संसार में होती है वैसे ही मनुष्य विद्या द्वारा परस्पर उपकार करें ॥४॥

यं मित्रावरुणौस्मरमसिञ्चतामप्स्व १ न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥५॥

भाषार्थः (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु ने (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच (आध्या सह) ध्यान शक्ति के साथ (शोशुचानम्) अत्यन्त प्रकाशमान (यम् स्मरम्) जिस स्मरण सामर्थ्य को (असिञ्चताम्) सींचा है (तम्) उस [स्मरण सामर्थ्य] को (ते, तेरे लिये (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य से (तपामि) ऐश्वर्ययुक्त करता हूं ॥५॥

भावार्थः - मनुष्य प्राण और अपान के समान संसार में परस्पर उपकारी होकर ऐश्वर्य बढ़ावें ॥५॥

सूक्तम् ॥१३३॥

१—५ ॥ मेखला देवता ॥ १, ३ त्रिष्टुप्; २, ५ अनुष्टुप्; ४ जगती ॥

मेखलाबन्धनोपदेशः—मेखला बांधने का उपदेश ॥

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः सँननाह य उं नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उं नो विमुञ्चात् ॥१॥

भाषार्थः -(यः देवः) जिस विद्वान् [आचार्य] ने (नः) हमारे (इमाम्) यह (मेखलाम्) मेखला [तागड़ी, पेटी, कटिबन्धन] (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधी है, (यः) जिसने (संननाह) सजाई है। (उ) और (यः) जिसने (युयोज) संयुक्त की है। (यस्य देवस्य, जिस विद्वान् के (प्रशिषा) उत्तम शासन से (चरामः) हम विचरते हैं (सः) वह (नः) हमें (पारम्) पार (इच्छात्) लगावें, (सः उ) वही [कष्ट से] (विमुञ्चात्) मुक्त करे ॥१॥

भावार्थः—वेदारम्भ संस्कार के अंतर्गत मेखलाबन्धन एक संस्कार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। आचार्य ब्रह्मचारी के मेखला इसलिये बांधे कि वह कटि को कस कर फुर्ती से वेदों को पढ़ कर संसार में उपकारी होवे ॥१॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वी व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥२॥

भाषार्थः—(मेखले) हे मेखला ! तू (आहुता) यथाविधि दान की गई (असि) है, (ऋषीणाम्) धर्ममार्ग बताने वाले ऋषियों का (आयुधम्) शस्त्ररूप (असि) है। (व्रतस्य) उत्तम व्रत वा नियम के (पूर्वा) पहिले (प्राश्नती) व्याप्त होने वाली और (वीरघ्नी) वीरों को प्राप्त होने वाली तू (भव) हो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य नियमपूर्वक मेखला से कटि कस कर कर्म करते हैं वे ही वीर होते हैं ॥२॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३॥

भाषार्थः—(भूतात्) प्राप्त (मृत्योः) मृत्यु से (पुरुषम्) इस पुरुष, आत्मा को (निर्याचन्) बाहिर निकालता हुआ (अहम्) मैं (यमाय) नियम पालन के लिये (यत्) जो (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी, वेदपाठी और वीर्य निग्राहक पुरुष (अस्मि) हूं। (तम्) वैसे (एनम्) इस आत्मा को (ब्रह्मणा) वेदज्ञान, (तपसा) तप [योगाभ्यास] और (श्रमेण) परिश्रम के साथ (अनया मेखलया) इस मेखला से (अहम्) मैं (सिनामि) बांधता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचारी मेखला के समान शरीर को कसकर शीत उष्ण आदि द्वन्द्व का सहन करके आलस्य आदि मृत्यु को हटाते हैं वे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥३॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥४॥

भावार्थः—[वह मेखला] (श्रद्धायाः) श्रद्धा [आस्तिक बुद्धि, विश्वास] की (दुहिता) पूरण करने हारी [यद्वा पुत्री समान प्रिय], (तपसः) तप [योगाभ्यास] से (अधि) अच्छे प्रकार (जाता) उत्पन्न हुई, (भूतकृताम्) सत्यकर्मी (ऋषीणाम्) ऋषियों [सन्मार्गदर्शकों] की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने हारी [अथवा बहिन के समान हितकारिणी] (बभूव) हुई है। (सा) सो तू मेखले) हे मेखला !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमें (मतिम्) मननशक्ति और (मेधाम्) निश्चय बुद्धि (आ) सब ओर से (धेहि) दान कर, (अथो) और भी (नः) हमें (तपः) योगाभ्यास (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्र का चिह्न [पराक्रम वा परम ऐश्वर्य] (धेहि) दान कर ॥४॥

भावार्थः—जो श्रद्धालु, तपस्वी ऋषियों के समान शुभकर्म के लिए कटिबद्ध रहते हैं, वे ही मननशक्ति और निश्चल बुद्धि पाकर ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥४॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५॥

भाषार्थः—(याम् त्वा) जिस तुझको (पूर्वे) पहिले (भूतकृतः) सत्यकर्मी (ऋषयः) ऋषियों ने (परि बेधिरे) चारों ओर बांधा था। (सा त्वम्) सो तू, (मेखले) हे मेखला ! (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (माम्) मुझ में (परि) सब ओर से (स्वजस्व) चिपट जा ॥५॥

भावार्थः जो मनुष्य ऋषियों के समान कटिबद्ध होकर शुभकार्य करते हैं, वे ही कीर्तिमान् होते हैं ॥५॥

सूक्तम् ॥१३४॥

१—३ ॥ वज्रो देवता ॥ १ प्रस्तारपङ्क्तिः; २ गायत्री; ३ अनुष्टुप् ॥

शत्रुशासनोपदेशः—शत्रुओं के शासन का उपदेश ॥

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
भृणातु ग्रीवाः प्र भृणातूष्णिहां वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह (वज्रः) वज्र [दण्ड] (ऋतस्य) सत्य धर्म को (तर्पयताम्) तृप्ति करे. (अस्य) इस [शत्रु] के (राष्ट्रम्) राज्य को (अव=अवहत्य) नाश करके [उसके] (जीवितम्) जीवन को (अप हन्तु) नाश कर देवे, (ग्रीवाः) गले की नाड़ियों को (भृणातु) काटे और (उष्णिहाः) गुद्दी की नाड़ियों को (प्रभृणातु) तोड़ डाले, (इव) जैसे (शचीपतिः) कर्म्मों वा बुद्धियों का पति [मनुष्य] (वृत्रस्य) अपने शत्रु के [ग्रीवा आदि] को ॥१॥

भावार्थः—राजा यथावत् शासन से शत्रुओं को नाश करके प्रजा-पालन करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् ।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥२॥

भाषार्थः—[वह शत्रु] (उत्तरेभ्यः) ऊंचे लोगों से (अधरोऽधरः) नीचे नीचे और (गूढ़ः) गुप्त होकर (पृथिव्याः) पृथिवी से (मा उत् सृपत्) कभी न उठे, और (वज्रेण) वज्र से (अवहतः) मार डाला गया (शयाम्) पड़ा रहे ॥२॥

भावार्थः—अधर्मी लोगों को श्रेष्ठों के बीच उच्च आसन कभी न मिले ॥२॥

यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्च मनु पातय ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (जिनाति) अत्याचार करे, (तम्) उसको (अनु इच्छ) ढूंढ ले, (यः) जो (जिनाति) उपद्रव करे (तम् इत्) उसी को (जहि) मार डाल, (वज्र) हे वज्रधारी (त्वम्) तू (जिनतः) अत्याचारी के (सीमन्तम्) मस्तक को (अन्वञ्चम्) लगातार (अनुपातय) गिराये जा ॥३॥

भावार्थः—राजा नीतिपूर्वक दुराचारियों को सदा दण्ड देवे ॥३॥

सूक्तम् ॥१३५॥

१—३ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

खादनपानोपदेशः—खान पान का उपदेश ॥

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (अश्नामि) मैं खाता हूं [उसे] (बलम्) बल (कुर्वे) बना देता हूं, (इत्थम्) तब मैं (वज्रम्) वज्र को (आ ददे) ग्रहण करता हूं। (अमुष्य) उस [शत्रु] के (स्कन्धान्) कन्धों को (शातयन्) तोड़ता हुआ, (इव) जैसे (शचीपतिः) कर्म वा बुद्धि का स्वामी [शूर] (वृत्रस्य) शत्रु वा अन्धकार के ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भलीभांति पचावे, जिस से वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर उसे सुखदायक हो। इसी मन्त्र का विवरण मन्त्र २ तथा ३ में हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ [जल दुग्ध आदि] (पिबामि) मैं पीता हूं, (सम्) यथाविधि (पिबामि) पीता हूं (इव) जैसे (संपिबः) यथाविधि पीने वाला (समुद्रः) समुद [खाकर पचा लेता है] । (अमुष्य) उस [पदार्थ] के (प्राणान्) जीवन बलों को (संपाय) चूस कर (अमुम्) उस [पदार्थ] को (सम्) यथाविधि (वयम्) हम (पिबामः) पीवें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य न्यूनाधिक मात्रा और देश काल का विचार करके जल दुग्ध आदि पीकर पुष्टि बढ़ाकर सुख प्राप्त करें ॥२॥

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥३॥

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ वस्तु (गिरामि) मैं खाता हूं, (सम्) यथाविधि (गिरामि) खाता हूं, (इव) जैसे (संगिरः) यथाविधि खाने वाला (समुद्रः) समुद्र [खाकर पचा लेता है] । (अमुष्य) उस [पदार्थ] के (प्राणान्) जीवन शक्तियों को (संगीर्य) चबाकर (अमुम्) उस [पदार्थ] को (सम्) यथाविधि (वयम्) हम (गिरामः) खावें ॥३॥

भावार्थः—जो निरालसी मनुष्य विचारपूर्वक भोजन करके उसे पचाते हैं, वे बलवान् रहते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥१३६॥

१—३ ॥ नितत्नी देवता ॥ १, ३ अनुष्टुप्; २ बृहती ॥

केशवर्धनोपदेशः - केश के बढ़ाने का उपदेश ॥

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥१॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि ! तू (देव्याम्) दिव्य [प्रकाशवाली, अच्छे गुणवाली] (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अधि) ठीक ठीक (जाता) उत्पन्न हुई (देवी) दिव्य गुणवाली (असि) है । (नितत्नि) हे नीचे को फैलने वाली, नितत्नी ! [ओषधी विशेष] (ताम् त्वा) उस तुझ को (केशेभ्यः) केशों के (दृंहणाय) दृढ़ करने और बढ़ाने के लिये (खनामसि) हम खोदते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य नितत्नी नाम ओषधि को केश दृढ़ करने और बढ़ाने के लिये काम में लावें। काचमाची फल, जीवन्तीफल और भृङ्गराज वा भंगरा ओषधि के भी केश बढ़ाना आदि गुण हैं ॥१॥

दृंह॑ प्र॒त्नान् ज॒नयाजा॑तान् जा॒तानु॒वर्षी॑यसस्कृधि ।२॥

भाषार्थः—[हे नितत्नी !] (प्रत्नान्) पुराने [केशों] को (दृंह) दृढ़कर, (अजातान्) विना उत्पन्न हुओं को (जनय) उत्पन्न कर, (उ) और (जातान्) उत्पन्न हुओं को (वर्षीयसः) बहुत लम्बा (कृधि) बना ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में नितत्नी ओषधि के गुणों का वर्णन है ॥२॥

यस्ते॒ केशो॑ऽव॒पद्य॑ते॒ समू॑लो॒ यश्च॑ वृ॒श्चते॑ ।
इ॒दं तं वि॒श्वभे॑षज्या॒भि षि॑ञ्चामि वी॒रुधा॑ ।३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य] (यः) जो (ते) तेरा (केशः) केश (अवपद्यते) गिर जावे (च) और (यः) जो (समूलः) समूल (वृश्चते) टूट जावे। (इदम्) अब (तम्) उस को (विश्वभेषज्या) सब [केश रोगों] की ओषधि (वीरुधा) उस जड़ी बूटी से (अभि षिञ्चामि) चुपड़ कर ठीक करता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य नितत्नी नाम ओषधि से केशों के रोगों को दूर करें ॥३॥

सूक्तम् ॥१३७॥

१—३ ॥ नितत्नी देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

केशवर्धनोपदेशः—केश बढ़ाने का उपदेश ॥

यां ज॒मद॑ग्निरख॑नद् दुहि॒त्रे के॑श॒वर्ध॑नीम् ।
तां वी॒तह॑व्य॒ आभ॑र॒दसि॑तस्य गृ॒हेभ्यः॑ ॥१॥

भाषार्थः—(केशवर्धनीम्) केश बढ़ाने वाली (याम्) जिस [नितत्नी ओषधि] को (जमदग्निः) जलती अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ने (दुहित्रे) पूर्ति करनेवाली क्रिया के लिये (अखनत्) खोदा है। (ताम्) उस [ओषधि] को (वीतहव्यः) पाने योग्य पदार्थ का पाने वाला ऋषि (असितस्य) मुक्त स्वभाव महात्मा के (गृहेभ्यः) घरों से (आ अभरत्) लाया है ॥१॥

भावार्थः—इस सूक्त में (नितत्नी) पद की अनुवृत्ति गत सूक्त से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है। जिस प्रकार से वैद्य जन परम्परा से एक दूसरे के पीछे शिक्षा पाते चले आये हैं वैसे ही मनुष्य शिक्षा ग्रहण करते रहें ॥१॥

अभीशुना मेयाः आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥२॥

भाषार्थः—(केशाः) केश (अभीशुना) अंगुली से (मेयाः) मापने योग्य, फिर (व्यामेन) दोनों [ऊपर नीचे के] भुज दण्ड से (अनुमेयाः) मापने योग्य (आसन्) होगये हैं। वे (असिताः) काले होकर (ते) तेरे (शीर्ष्णः) शिर से (नडाः इव) नरकट घास के समान (परि वर्धन्ताम्) भले प्रकार बढ़ें ॥२॥

भावार्थः—केशरोगी मनुष्य वैद्य की सम्मति से रोगनिवृत्ति करे॥२॥

दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥३॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि ! [केशों के] (मूलम्) मूल को (दृंह) दृढ़ कर, (अग्रम्) अग्र भाग को (आ यच्छ) बढ़ा, (मध्यम्) मध्यभाग को (वि यमय) लम्बा कर। (केशाः) केश (असिताः) काले होकर (ते शीर्ष्णः) तेरे शिर से (नडा इव) नरकट घास के समान (परि वर्धताम्) भले प्रकार बढ़ें ॥३॥

भावार्थः—मन्त्र २ के समान ॥३॥

सूक्तम् ॥१३८॥

१—५ ॥ ओषधिरिन्द्रश्च देवते ॥ १,२,४,५, अनुष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

निर्बलत्वनिवारणोपदेशः—निर्बलता हटाने का उपदेश ॥

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिशुतास्योषधे ।
इमं मे अद्य पुरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥१॥

भाषार्थः—(ओषधे) हे ओषधि ! (त्वम्) तू (वीरुधाम्) सब ओषधियों में (श्रेष्ठतमा) अति श्रेष्ठ और (अभिशुता) बड़ी विख्यात (असि) है। (मे) मेरे लिये (अद्य) अब (इमम्) इस (क्लीबम्) बलहीन (पुरुषम्) पुरुष को (ओपशिनम्) सब प्रकार उपयोगी (कृधि) बना ॥१॥

भावार्थः—वैद्य उत्तम ओषधि द्वारा बलहीन पुरुषों को बलवान् बनावें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥२॥

भाषार्थः—(क्लीबम्) बलहीन पुरुष को (ओपशिनम्) उपयोगी (कृधि) बना, (अथो) और भी (कुरीरिणम्) कर्मकारी (कृधि) बना। (अथ) और (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाले वैद्य आप (ग्रावभ्याम्) पत्थर समान दो दृढ़ शस्त्रों से (अस्य) इस [रोगी] के (उभे) दोनों (आण्ड्यौ) आंडी [वा अंडिनी, दोनों अंडकोश के रोग] को (भिनत्तु) छेदे ॥२॥

भावार्थः वैद्य अंडकोष के आंडी, अंडिनी, पथरी आदि रोगों को दृढ़ शस्त्रों से तोड़ कर ओषधि करें ॥२॥

क्लीव क्लीबं त्वाकरं वध्रे वाध्रं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥३॥

भाषार्थः - (क्लीव) हे निर्बल करने वाले रोग ! (त्वा) तुझको मैंने (क्लीबम्) निर्बल (अकरम्) कर दिया है, (वध्रे) हे बल को बांधने वाले रोग ! (त्वा) तुझको (वध्रिम्) शक्तिहीन (अकरम्) मैंने कर दिया है, (अरस) हे नीरस करने वाले रोग ! (त्वा) तुझे (अरसम्) नीरस (अकरम्) मैंने कर दिया है। (अस्य) इस [स्वस्थ] पुरुष के (शीर्षणि) शिर पर (कुरीरम्) कर्म सामर्थ्य (च) और (कुम्बम्) विस्तृत आभूषण (अधिनिदध्मसि) हम अधिकारपूर्वक रखते हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य बलहीन क्रियाहीन रोगियों को स्वस्थ और उत्साही बनावें ॥३॥

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्यामुष्या अधि मुष्कयोः ॥४॥

भाषार्थः [हे रोगी !] (ये) जो (ते, तेरी (नाड्यौ) दो नाड़ियां (देवकृते) मद अर्थात् उन्माद से पीड़ित हैं और (ययोः) जिन दोनों में (वृष्ण्यम्) ढीलापन (तिष्ठति) स्थित है। (ते) तेरे लिये (ते) उन दोनों [नाड़ियों] को (अमुष्याः) उस [स्वस्थ नाड़ी] से अलग (मुष्कयोः) दोनों अण्डकोशों में (शम्यया) शान्तिकारक शम्या [हल के जुये के कील के समान] शस्त्र से (अधि) अधिकारपूर्वक (भिनद्मि) मैं छेदता हूं ॥४॥

भावार्थः—वैद्यराज विचारपूर्वक अन्य मर्म नाड़ियों को छोड़कर अण्डकोश की रोगग्रस्त नाड़ियों को छेद कर स्वस्थ करे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।
एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (स्त्रियः) स्त्रियां (नडम्) नरकट घास आदि को (कशिपुने) अन्न वा वस्त्र के लिये (अश्मना) पत्थर से (भिन्दन्ति) तोड़ती हैं। (एव) वैसे ही (ते) तेरे लिये (अमुष्याः) उस [नीरोग नाड़ी] से अलग (मुष्कयोः) दोनों अण्डकोशों के (शेपः) रोग बल को (अधि) अधिकार के साथ (भिनद्मि) मैं तोड़ता हूं ॥५॥

भावार्थः—जैसे किसी तृण में से अन्न वा वस्त्र की सार वस्तु बचाकर अभीष्ट भाग को तोड़ डालते हैं, वैसे ही चिकित्सक लोग मर्म स्थल को छोड़कर रोगकारक नाड़ी को छेदकर स्वस्थ करें ॥५॥

सूक्तम् ॥१३९॥

१—५ ॥ दम्पती देवते ॥ १ जगती, २,३,५ अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक् ॥

गृहस्थाश्रमप्रवेशोपदेशाः—गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिये उपदेश ॥

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगं करणी मम ।
शतं ते प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्या !] (न्यस्तिका) नित्य प्रकाशमान और (मम) मेरी (सुभगंकरणी) सुन्दर ऐश्वर्य करने वाली तू (रुरोहिथ) प्रकट हुई है। (ते) तेरे (प्रतानाः) उत्तम फैलाव (शतम्) सौ [अनेक], और (नितानाः) नियमित विस्तार (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस [तैंतीस देवताओं के जानने वाले] हैं।

[हे ब्रह्मचारिणि !] (तया) उस (सहस्रपर्ण्या) सहस्रों पालन शक्ति वाली विद्या से (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय को (शोषयामि) मैं सुखाता हूं [प्रेममग्न करता हूं] ॥१॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी समावर्तन के पश्चात् यथार्थ विद्या से संसार के सब पदार्थ और तेतीस देवताओं का ज्ञान प्राप्त करके अपने सदृश विदुषी स्त्री से विवाह की कामना करे। तेतीस देवता यह हैं,—८ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र,—११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृकल, देवदत्त और धनञ्जय, यह दश प्राण और ग्यारहवां जीवात्मा,—१२ आदित्य अर्थात् महीने १ इन्द्र अर्थात् बिजुली,—१ प्रजापति अर्थात् यज्ञ—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय, पृष्ठ ६६—६८ ॥१॥

शुष्यंतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् ।
अथो नि शुंष्य मां कामे नाथो शुष्कास्या चर ॥२॥

भाषार्थः—[हे ब्रह्मचारिणि ! (मयि) मेरे विषय में (ते हृदयम्) तेरा हृदय (शुष्यतु) सूख जावे, (अथो) और (आस्यम्) मुख (शुष्यतु) सूख जावे। (अथो) और भी (माम्) मुझ को (कामेन) अपने प्रेम से (नि) नित्य (शुष्य) सुखा, (अथो) और तू भी (शुष्कास्या) सूखे मुखवाली हो कर (चर) विचर ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् वर और कन्या परस्पर गुणों का परिचय करके वाचिक और मानसिक प्रेम से गृह आश्रम में प्रवेश करने की चेष्टा करें ॥२॥

सं वननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद ।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥

भाषार्थः—(बभ्रु) हे पालनशील ! (कल्याणि) हे मङ्गलकारिणी विद्या ! (संवननी) यथावत् सेवनीय और (समुष्पला) यथाविधि निवास की रक्षा करने हारी तू [हम दोनों को] (सम्) मिला कर (नुद) आगे बढ़ा। (अमूम्) उस [विदुषी] को (च च) और (माम्) मुझ को (सम्) मिला कर (नुद) आगे बढ़ा, [हम दोनों के] (हृदयम्) हृदय को (समानम्) एक (कृधि) कर दे ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष पूर्ण विद्वान् होकर गृहस्थ बनते हैं, वे ही परस्पर उपकार करके सदा सुखी रहते हैं ॥३॥

यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् ।
एवा नि शुंष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (उदकम्) जल को (अपपुषः) न पीनेवाले पुरुष का (आस्यम्) मुख (अपशुष्यति) सूख जाता है। (एव) वैसे ही (माम्) मुझ को (कामेन) अपने प्रेम से (नि) नित्य (शुष्य) सुखा (अथो) और तू भी (शुष्कास्या) सूखे मुख वाली होकर (चर) विचर ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः जैसे अति प्यासे मनुष्य को जल की बड़ी चिन्ता रहती है, वैसे ही पति पत्नी पूर्ण प्रीति से एक दूसरे का ध्यान रक्खें ॥४॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (नकुलः) कुत्सित कर्म न ग्रहण करने वाला, नेवला (अहिम्) सांप को (विच्छिद्य) टुकड़े टुकड़े करके (पुनः) फिर (सन्दधाति) समाहित चित्त हो जाता है। (एव) वैसे ही (वीर्यवति, हे बलवती ! (कामस्य) कामना के (विच्छिन्नम्) घाव को (संधेहि) भर दे ॥५॥

भावार्थः जैसे नेवला जन्तु सांप को मार कर आप स्वस्थ और शांत हो जाता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष विदुषी पत्नी को पाकर दुःख नाश करके आनन्द भोगता है ॥५॥

सूक्तम् ॥१४०॥

१—३ ॥ दन्तौ देवते ॥ १ बृहती, २ त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ॥

बालस्यान्नप्राशनोपदेशः—बालक के अन्नप्राशन का उपदेश ॥

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१॥

भाषार्थः—(व्याघ्रौ) व्याघ्र के समान बलवान् (यौ) जो (दन्तौ) ऊपर नीचे के दांत (अवरूढौ) उत्पन्न होकर (पितरम्) पिता को (च) और (मातरम्) माता को (जिघत्सतः) काटने की इच्छा करते हैं। (ब्रह्मणः) हे अन्न के (पते) स्वामी ! (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के ज्ञानवाले गृहस्थ ! (तौ, उन दोनों को (शिवौ) सुखकारक (कृणु) कर ॥१॥

भावार्थः—जब दांत निकलने पर बालक माता पिता के काटने लगे, तब गृहस्थ उनका अन्नप्राशन करके उस का पोषण करे ॥१॥

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् । एष वां भागो
निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥२॥

भाषार्थः [हे दांतों की दोनों पंक्तियो !] (व्रीहिम्) चावल (अत्तम्) खाओ, (यवम्) जौ (अत्तम्) खाओ, (अथो) फिर (माषम्) उरद, (अथो) फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिलम्) तिल [खाओ], (वाम्) तुम दोनों का (एषः) यह (भागः) भाग [चावल जौ आदि] (रत्नधेयाय) रत्नों के रखने योग्य कोश के लिये (निहितः) अत्यन्त हित है, (दन्तौ) हे ऊपर नीचे के दांतो ! (पितरम्) बालक के पिता (च) और (मातरम्) माता को (मा हिंसिष्टम्) मत काटो ॥२॥

भावार्थः—माता पिता दांत निकलने पर बालक को चावल, जौ आदि सामान्य अन्न और फिर अधिक पौष्टिक उरद आदि और चिकने तिल आदि चटावें जिससे बालक पुष्ट होकर माता पिता को सुख देवे और उन्नति करे ॥२॥

उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ । अन्यत्रं वां
घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥३॥

भाषार्थः—(उपहूतौ) आपस में स्पर्धा वाले, (सयुजौ) एक दूसरे से मिले हुए (दन्तौ) दोनों ओर के दाँत (स्योनौ) सुख देने वाले और (सुमङ्गलौ) बड़े मङ्गल वाले होवें । (दन्तौ) हे दोनों ओर के दांतो ! (वाम्) तुम्हारा (घोरम्) दुःखदायी कर्म [बालक के] (तन्वः) शरीर से (अन्यत्र) अलग (परा एतु) चला जावे (पितरम्) इसके पिता (च) और (मातरम्) माता को (मा हिंसिष्टम्) मत काटो ॥३॥

भावार्थः—माता पिता बालक के नवे निकले दातों को मुलहटी आदि ओषधि से स्वस्थ करें, जिससे वे सब सुख से निकलें ॥३॥

सूक्तम् ॥१४१॥

१—३ ॥ आचार्यो मातापितरौ च देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

वृद्धिकरणोपदेशः—वृद्धि करने का उपदेश ॥

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय धियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१॥

भाषार्थः—(वायुः) शीघ्रगामी आचार्य (एनाः) इन [प्रजाओं] को (समाकरत्) एकत्र करे, (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी वह (पोषाय) [उनके मानसिक और शारीरिक] पोषण के लिये (धियताम्) स्थिर रहे । (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला वही (आभ्यः) इन [प्रजाओं] से (अधि) अनुग्रह पूर्वक (ब्रवत्) बोले, (रुद्रः) ज्ञान दाता अध्यापक (भूम्ने) उनकी वृद्धि के लिये (चिकित्सतु) शासन करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जितेन्द्रिय दूरदर्शी आचार्य विद्यालय में ब्रह्मचारियों को उत्तम विद्या से समृद्ध करे ॥१॥

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥

भाषार्थः—[हे आचार्य !] (लोहितेन) प्रकाश के साथ और (स्वधितिना) और आत्मधारण सामर्थ्य के साथ (कर्णयोः) हमारे दोनों कानों में (मिथुनम्) विज्ञान (कृधि) कर । (अश्विना) कामों में व्याप्ति वाले माता पिता ने (लक्ष्म) [हम में] शुभ लक्षण (अकर्ताम्) किया है, (तत्) वह [शुभलक्षण] (प्रजया) सन्तान के साथ (बहु) अधिक समृद्ध (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—जहां गुणी माता पिता और आचार्य बालकों के शिक्षक होते हैं, वहां बालक गुणी, धनी और बली होते हैं ॥२॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (देवासुराः) व्यवहार जानने वाले बुद्धिमानों ने (उत) और (यथा) जैसे (मनुष्याः) मननशील पुरुषों ने [शुभलक्षण को] (चक्रुः) किया है । (अश्विना) हे कर्तव्यों में व्यापक माता पिता ! (एव) वैसे ही (सहस्रपोषाय) सहस्रों प्रकार के पोषण के लिये [हम में] (लक्ष्म) शुभलक्षण (कृणुतम्) तुम करो ॥३॥

भावार्थः—माता पिता को योग्य है कि पूर्वज महात्माओं के समान अपने सन्तानों को शुभगुणी बनावें ॥३॥

सूक्तम् ॥१४२॥

१—३ ॥ यवो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

अन्नवृद्ध्युपदेशः—अन्न की वृद्धि का उपदेश ॥

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥१॥

भाषार्थः—(यव) हे जौ अन्न ! तू (स्वेन) अपने (महसा) बल से (उत् श्रयस्व) ऊंचा आश्रय ले और (बहुः) समृद्ध (भव) हो । (विश्वा) सब (पात्राणि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनसे रक्षा की जावे ऐसे राक्षसों [विघ्नों] को (मृणीहि) मार, (दिव्या) आकाशीय (अशनिः) बिजुली आदि उत्पात (त्वा) तुझको (मा वधीत्) नहीं नष्ट करें ॥१॥

भावार्थः—किसान लोग खेती विद्या में चतुर होकर प्रयत्न करें कि उत्तम जौ आदि बीजों से नीरोग और पुष्टिकारक अन्न उपजे ॥१॥

आभृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवेध्यक्षितः ॥२॥

भाषार्थः—(आभृण्वन्तम्) [हमें] अंगीकार करने वाले (त्वा) तुझ (देवम्) दिव्य गुण वाले (यवम्) जौ आदि अन्न को (यत्र) जहां पर (अच्छावदामसि) हम अच्छे प्रकार चाहें, (तत्) वहां पर (द्यौः इव) सूर्य के समान (उत् श्रयस्व) ऊंचा आश्रय ले और (समुद्रः इव) अन्तरिक्ष के समान (अक्षितः) क्षयरहित (एधि) हो ॥२॥

भावार्थः—जहां पर किसान लोग खेती की अच्छे प्रकार देख भाल करते हैं वहां जौ अन्न के वृक्ष ऊंचे होते और उपज में अच्छी बढ़ती होती है ॥२॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

भाषार्थः—[हे जौ आदि अन्न !] (ते) तेरे (उपसदः) निकटवर्ती कार्यकर्ता लोग (अक्षिताः) विना घाटे और तेरी (राशयः) रासें (अक्षिताः) विना घाटे (सन्तु) होवें । (पृणन्तः) तेरे भरती करने वाले लोग (अक्षिताः) विना घाटे (सन्तु) होवें और (अत्तारः) तेरे खाने वाले (अक्षिताः) विना हानि (सन्तु) होवें ॥३॥

भावार्थः—चतुर किसानों के उद्योग से अन्न की भारी उपज होती है, लोग अन्न का व्यापार करते और भोजन करते हैं ॥३॥

॥ इति त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

॥ इति षष्ठं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथर्ववेद भाषाभाष्यम् ॥

—:०*:०*:०*:०*:—

सप्तमं काण्डम् ॥

—: * :—

प्रथमोऽनुवाकः ॥

—*:०*:०*:०*—

सूक्तम् ॥१॥

१—२ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥१॥

भाषार्थः - (ये) जिन लोगों ने [एक] (धीती) अपने कर्म से (वाचः) वेद-वाणी के (अग्रम्) श्रेष्ठपन को (वा) निश्चय करके (अनयन्) पाया है, (वा) और (ये, जिन्होंने [दूसरे] (मनसा) विज्ञान से (ऋतानि) सत्य वचन (अवदन्) बोले हैं। और जो (तृतीयेन) तीसरे [हमारे कर्म और विज्ञान से परे] (ब्रह्मणा) प्रवृद्ध ब्रह्म [परमात्मा] के साथ (वावृधानाः) वृद्धि करते रहे हैं, उन लोगों ने (तुरीयेण) चौथे [कर्म विज्ञान और ब्रह्म से अथवा धर्म, अर्थ और काम से प्राप्त मोक्ष पद] के साथ (धेनोः) तृप्त करनेवाली शक्ति, परमात्मा के (नाम) नाम अर्थात् तत्त्व को (अमन्वत) जाना है ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः— जो योगी जन वेद के तत्त्व को जानकर कर्म करते, और विज्ञानपूर्वक सत्य का उपदेश करके परमेश्वर की अपार महिमा को खोजते आगे बढ़ते जाते हैं, वेही मोक्ष पद पाकर परमात्मा की आज्ञा में विचरते हुए स्वतन्त्रता से आनन्द भोगते हैं ॥१॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः१ः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् । २॥

भाषार्थः— (सः) वह (पुत्रः) अनेक प्रकार रक्षा करने वाला परमेश्वर (पितरम्) पालन के हेतु सूर्य को (सः) वह (मातरम्) निर्माण के कारण भूमि को (वेद) जानता है, (सः) वह (सूनुः) सर्व प्रेरक (भुवत्) है, (सः) वह (पुनर्मघः) वारंवार धनदाता (भुवत्) है। (सः) उसने (अन्तरिक्षम्) आकाश और (द्याम्) प्रकाशमान (स्वः) सूर्यलोक को (और्णोत्) घेरलिया है, (सः) वह (इदम्) इस (विश्वम्) जगत् में (अभवत्) व्याप रहा है, (सः) वही (आ) समीप होकर (अभवत्) वर्तमान हुआ है ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूर्य, पृथिवी आदि ब्रह्माण्ड में व्यापकर सब का धारण कर रहा है, वही हम में भरपूर है। ऐसा समझने वाले पुरुष आत्मबल पाकर पुरुषार्थी होते हैं ॥२॥

इस मन्त्र का मिलान—अ० २। २८। ४। से भी करो ॥

सूक्तम् ॥२॥

१ ॥ अथर्वा प्रजापतिर्वा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या का उपदेश ॥

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥१॥

भाषार्थः—(यः) जिस आप ने (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय, (पितरम्) पालनकर्त्ता, (देवबन्धुम्) विद्वानों के हितकारी, (मातुः) निर्माण के कारण पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ [गर्भ समान व्यापक], (पितुः) पालन हेतु सूर्य के (असुम्) प्राण, (युवानम्) संयोजक वियोजक (अथर्वाणम्) निश्चल परमेश्वर को (मनसा) विज्ञान के साथ (चिकेत) जाना है, और जिस तूने (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (वोचः) उपदेश किया है, सो तू (तम्) उस [ब्रह्म] का (इह इह) यहां पर ही (ब्रवः) उपदेश कर ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिन महर्षियों ने सर्वनियन्ता परमेश्वर के गुणों को साक्षात् किया है, उनके उपदेशों को श्रवण, मनन और निदिध्यासन से वारंवार विचार द्वारा आनन्द प्राप्त करें ॥१॥

सूक्तम् ॥३॥

१ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मगुणोपदेशः - ब्रह्म के गुणों का उपदेश ॥

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥१॥

भाषार्थः—(अया विष्ठा) इस रीति से (कर्वराणि) कर्म्मों को (जनयन्) प्रकट करते हुए (सः) दुःखनाशक, (घृणिः) प्रकाशमान, (उरुः) विस्तीर्ण, (गातुः) पाने योग्य वा गाने योग्य प्रभु ने (हि) ही (वराय) उत्तम फल के लिये (मध्वः) ज्ञान के (धरुणम्) धारण योग्य (अग्रम्) श्रेष्ठपन को (प्रत्युदैत्) प्रत्यक्ष उदय किया है और (स्वया) अपनी (तन्वा) विस्तृत शक्ति से (तन्वम्) विस्तृत सृष्टि को (ऐरयत) प्रकट किया है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकाशस्वरूप, दयामय परमात्मा ने हमारे सुख के लिये संसार रचा और वेदज्ञान दिया है, उसके उपकारों को विचारते हुए हम सदा सुधार करते रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥४॥

१ ॥ प्रजापतिर्वायुर्वा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मज्ञानोपदेशः—ब्रह्म के ज्ञान का उपदेश ॥

एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या चं ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वायु इह ता वि मुञ्च ॥१॥

भाषार्थः—(सुहुते) हे बड़े दानी परमात्मन् ! (इष्टये) हमारी इच्छा पूर्ति के लिये (एकया च च दशभिः) एक और दश [ग्यारह], (द्वाभ्यां च विंशत्या) दो और बीस [बाईस], (च, और (तिसृभिः च त्रिंशता) तीन और तीस [तेतीस] (वियुग्भिः) विशेष योजनाओं के साथ [हमें] (वहसे) तू ले चलता है, (वायो) हे सर्वव्यापक ईश्वर (ताः) उन [योजनाओं] को (इह) यहां [हम में] (वि) विशेष करके (मुञ्च) छोड़ दे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(अ) इस मन्त्र में गणित विद्या के संकलन और गुणन का मूल है, जैसे—

१+१०=११, २+२०=२२, ३+३०=३३, इत्यादि;
तथा ११+११=२२, ११+२२=३३, इत्यादि;
११×१=११, ११×२=२२, ११×३=३३, इत्यादि।

(आ) ग्यारह योजनाएँ शरीर की हैं, अर्थात् दो नासिका, दो श्रोत्र, दो नेत्र, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थ, एक नाभि और एक ब्रह्मरन्ध्र। इसी से शरीर का नाम एकादशपुर भी है। (इ) बाईस योजनायें यह हैं—५ महाभूत+५ प्राण+५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय+१ अन्तःकरण+१ बुद्धि। (ई) तेंतीस योजनाएँ वा देवता यह हैं—८वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः वा प्रकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र; ११ रुद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय, यह दश प्राण और ग्यारहवां जीवात्मा; १२ आदित्य अर्थात् महीने; १ इन्द्र अर्थात् बिजुली; १ प्रजापति—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ६६—६८।

आशय यह है—जिस परमात्मा ने शरीर की ग्यारह योजनाओं, बाईस पंच भूत आदि और तेतीस देवताओं द्वारा हमारा उपकार किया है, हम उसी जगदीश्वर की कृपा से इन सब पदार्थों से उपकार लेकर आनन्द भोगें ॥१॥

सूक्तम् ॥५॥

१—५ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १, २, ५ त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः; ४ अनुष्टुप् ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः—ब्रह्म विद्या के लिये उपदेश ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वानों ने (यज्ञेन) अपने पूजनीय कर्म से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा को (अयजन्त) पूजा है, (तानि) वे [उन के] (धर्माणि) धारण योग्य ब्रह्मचर्य आदि धर्म (प्रथमानि) मुख्य, प्रथम कर्तव्य (आसन्) थे। (ते) उन (महिमानः) महापुरुषों ने (ह) ही (नाकम्) दुःखरहित परमेश्वर को (सचन्त) पाया है, (यत्र) जिस परमेश्वर में रहकर (पूर्वे) पहिले, बड़े बड़े (साध्याः) साधनीय, श्रेष्ठ कर्मों के साधने वाले लोग (देवाः) देवता अर्थात् विजयी (सन्ति) होते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जितेन्द्रिय योगी जनों ने वेदविज्ञान, योगाभ्यास आदि साधनों से उस परमात्मा को पाया है, जिसके आश्रय से पूरे साध्य, साधु, उपकार साधक ही संसार में जय पाते हैं ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । १६४ । ५०; १० । ९० । १६ । यजुः० ३१ । १६ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ १२९ और निरुक्त १२ । ४१ । में भी है ॥

यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥२॥

भाषार्थः—(सः) वह परमेश्वर (यज्ञः) पूजनीय (बभूव) हुआ और (आ) सब ओर (बभूव) व्यापक हुआ, (सः) वह (प्र) अच्छे प्रकार (जज्ञे) जाना गया, (सः उ) वही (पुनः) निश्चय करके (ववृधे) बढ़ा । (सः) वह (देवानाम्) दिव्य वायु सूर्य आदि लोकों का (अधिपतिः) अधिपति (बभूव) हुआ, (सः) वही (अस्मासु) हमारे बीच (द्रविणम्) प्रापणीय बल (आ) सब ओर से (दधातु) धारण करे ॥२॥

भावार्थः—सर्वपूजनीय, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सदा प्रवृद्ध परमेश्वर के उपासक लोग आत्मिक बल बढ़ाकर मोक्ष सुख पाते हैं ॥२॥

यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥३॥

भाषार्थः—(देवाः) जितेन्द्रिय विद्वानों ने (यत्) जिस ब्रह्म के (अमर्त्यान्) न मरे हुए [अविनाशी] (देवान्) उत्तम गुणों का (हविषा) अपने देने और लेने योग्य कर्म से और (अमर्त्येन) न मरे हुए [जीते जागते] (मनसा) मन से (अयजन्त) सत्कार, संगति करण और दान किया है । (तत्र) उस (परमे) सब से बड़े (व्योमन्) विविध रक्षक ब्रह्म में (मदेम) हम आनन्द भोगें और (तत्) उस ब्रह्म को (सूर्यस्य) सूर्य के (उदितौ) उदय में [विना रोक] (पश्येम) हम देखते रहें ॥३॥

भावार्थः जो मनुष्य परमात्मा के नित्य उपकारी गुणों को अपने पूर्ण विश्वास और पुरुषार्थ से साक्षात्कार करते हैं, वे ही जीवित पुरुष आनन्द भोगते हुए, परमात्मा का दर्शन करते हुए, अविद्या को मिटाकर विचरते हैं, जैसे सूर्य निकलने पर अन्धकार मिट कर प्रकाश हो जाता है ॥३॥

यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जब (देवाः) विद्वानों ने (पुरुषेण) अपने अग्रगामी आत्मा के साथ (हविषा) देने और लेने योग्य व्यवहार से (यज्ञम्) पूजनीय ब्रह्म को (अतन्वत) फैलाया। वह ब्रह्म (नु) अब (तस्मात्) उस [आत्मा] से (ओजीयः) अधिक बलवान् (अस्ति=आसीत्) हुआ, (यत्) जिस [ब्रह्म] को उन्होंने (विहव्येन) विशेष देने योग्य व्यवहार से (ईजिरे) पूजा था ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् योगी महात्माओं ने यह साक्षात् किया है कि इस जीवात्मा से अधिक ओजस्वी शक्तिविशेष परमेश्वर सब ब्रह्माण्ड को चला रहा है ॥४॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऋग्वेद में है—म० १०। ६६। ७। और—यजु० ३१। १४।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥५॥

भाषार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग [ईश्वर की सीमा के विषय में] (मुग्धाः) मूढ़ होकर (उत) भी (शुना) ज्ञान से [परमात्मा को] (अयजन्त) मिले हैं, (उत) और (गोः) वेदवाणी के (अङ्गैः) अंगों से [उसे] (पुरुधा) विविध प्रकार से (अजयन्त) पूजा है। (यः) जिस आपने (इमम् यज्ञम्) इस पूजनीय परमेश्वर को (मनसा) विज्ञान के साथ (चिकेत) जाना है, और जिस तू ने (नः) हमें (प्र) अच्छे प्रकार (वोचः) उपदेश किया है, सो तू (तम्) उस परमेश्वर का (इह इह) यहां पर ही (ब्रवः) उपदेश कर ॥५॥

भावार्थः—ऋषि मुनि लोग असीम, अनादि, अनन्त, परमेश्वर को सब से बलिष्ठ जान कर ही विज्ञानपूर्वक आगे बढ़ते और उसका उपदेश करके संसार को आगे बढ़ाते हैं ॥५॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका है—अ० ७। २। १ ॥

सूक्तम् ॥६॥

१–४ ॥ अदितिर्देवता ॥ १—३ त्रिष्टुप्; ४ निचृज्जगती ॥

मन्त्रः १, प्रकृतिलक्षणोपदेशः—मन्त्र १, प्रकृति के लक्षण का उपदेश ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१॥

भाषार्थः—(अदितिः=अदितेः) अदीन वा अखण्डित अदिति अर्थात् प्रकृति से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, (अदितिः) अदिति से (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्ती आकाश, (अदिति) अदिति से (माता) हमारी माता, (सः पिता) वह हमारा पिता, (सः पुत्रः) वह हमारा पुत्र [सन्तान] है। (अदितिः) अदिति से (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थ, (अदितिः) अदिति से (पञ्च) विस्तृत [वा पञ्चभूत रचित] (जनाः) सब जीव, (अदितिः) अदिति से (जातम्) उत्पन्न जगत् और (जनित्वम्) उत्पन्न होने वाला जगत् है ॥१॥

भावार्थः—जो संसार उत्पन्न हुआ है और जो आगे उत्पन्न होगा, वह सब ईश्वर नियम के अनुसार अदिति वा प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण से रचा जाता है ॥१॥

यह मन्त्र ऋक्० में है—म० १। ८९। १०, यजु० २५। २३। और निरु० ४। २३ में है। भगवान् यास्क मुनि कहते हैं [इत्यदितेर्विभूतिमाचष्ट एनान्यदीनानीति वा] यह मन्त्र अदिति की महिमा कहता है अथवा यह सब वस्तुएं अदीन हैं—निरु० ४। २३॥

मन्त्रः २, पृथ्वीविषयोपदेशः—मन्त्र २, पृथ्वी के विषय का उपदेश ॥

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेमहे।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥२॥

भाषार्थः—(महीम्) पूजनीय, (मातरम्) माता [के समान हितकारिणी], (सुव्रतानाम्) सुकर्मियों के (ऋतस्य) सत्यधर्म की (पत्नीम्) रक्षा करनेवाली, (तुविक्षत्राम्) बहुत बल वा धन वाली, (अजरन्तीम्) न घटने वाली, (उरूचीम्) बहुत फैली हुई, (सुशर्म्माणम्) उत्तम घर वा सुख वाली, (सुप्रणीतिम्) बहुत सुन्दर नीति वाली (अदितिम्) अदिति, अदीन पृथ्वी को (उ) ही (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (सु) अच्छे प्रकार (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी के गुणों में चतुर होते हैं, वे ही राज्य भोगने, बल और धन बढ़ाने, धार्मिक नीति चलाने और प्रजा पालने आदि शुभगुणों के योग्य होते हैं ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजु० में है, २१। ५॥

मन्त्रः ३, वेदवाणीगुणोपदेशः—मन्त्र ३, वेद वाणी के गुणों का उपदेश ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारी, (पृथिवीम्) फैली हुई, (द्याम्) प्राप्ति योग्य, (अनेहसम्) अखण्डित, (सुशर्म्माणम्) अत्यन्त सुख देने-वाली, (सुप्रणीतिम्) बहुत सुन्दर नीतिवाली (अदितिम्) अदिति, अदीन वेद विद्या-रूप, (दैवीम्) देवताओं, विद्वानों की बनाई हुई, (स्वरित्राम्) सुन्दर वल्लियों वाली, (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली (नावम्) नाव पर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (अनागसः) निर्दोष हम (आ रुहेम) चढ़ें ॥३॥

भावार्थः - जो मनुष्य अखण्ड वेदविद्या को प्राप्त होते हैं, वे संसार के विघ्नों से ऐसे पार होते, जैसे विज्ञानी शिल्पी की बनाई नाव से बड़ समुद्र को पार कर जाते हैं ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । ६३ । ३०, और यजुः० २१॥६॥

मन्त्रः ४, परमेश्वरगुणोपदेशः—मन्त्र ४, परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥४॥

भाषार्थः—(वाजस्य) अन्न वा बल के (प्रसवे) उत्पन्न करने में (नु) अब (मातरम्) निर्माण करने वाली, (महीम्) विशाल, (अदितिम्) अदीन शक्ति, पर-मेश्वर को (नाम) प्रसिद्ध रूप से (वचसा) वेद वाक्य के साथ (करामहे) हम स्वीकार करें । (यस्याः) जिस [शक्ति] की (उपस्थे) गोद में (उरु) यह बड़ा (अन्तरिक्षम्) आकाश है, (सा) वह (नः) हमें (त्रिवरूथम्) तीन प्रकार के, आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आधिभौतिक सुखों वाला (शर्म) घर (नि) नियम के साथ (यच्छात्) देवे ॥४॥

भावार्थः—जो परमेश्वर सब जगत् का निर्माता और नियन्ता है, उसकी उपासना ही से सब मनुष्य अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ६ । ५ और १८ । ३० ॥

सूक्तम् ॥७॥

१ ॥ देवा देवताः ॥ जगती छन्दः ॥

देवगुणोपदेशः—विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(दितेः) दीनता से (पुत्राणाम्) शुद्ध करने वाले वा बहुत बचाने वाले, (अदितेः) अदीनता के (देवानाम्) देने वाले वा प्रकाश करने वाले, (बृहताम्) बड़े गुण वाले, (अनर्मणाम्) हिंसा न करने वाले वा अजेय (तेषाम्) उन पुरुषों के (धाम) धारण सामर्थ्य को (हि) ही (गभिषक्) गहराई से युक्त, (समुद्रियम्) [पार्थिव और अन्तरिक्ष] समुद्र में रहनेवाला (अव) निश्चय करके (अकारिषम्) मैंने जाना है, (कः चन) कोई भी (परः) शत्रु (एनान्) इनको (नमसा) [उनके] अन्न वा सत्कार के कारण (न) नहीं (अस्ति) पाता है ॥१॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा मनुष्य दीनता छोड़ कर संसार में आत्मा और शरीर की अदीनता का दान करते हैं, वे पृथ्वी और आकाश में यान विमान आदि द्वारा अधिकार जमाते और शत्रुओं को जीतते हैं ॥१॥

सूक्तम् ॥८॥

१ ॥ आत्मा देवता ॥ त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती छन्दः ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेमस्या वरे आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (भद्रात्) एक मङ्गल कर्म से (श्रेयः) अधिक मङ्गलकारी कर्म को (अधि) अधिकारपूर्वक (प्र इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का पालक परमेश्वर (ते) तेरा (पुर एता) अग्रगामी (अस्तु) होवे। (अथ) फिर तू (इमम्) इस [अपने आत्मा] को (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी के (वरे) श्रेष्ठ फल में (आरे-शत्रुम्) शत्रुओं से दूर (सर्ववीरम्) सर्ववीर, सबमें वीर (आ) सब ओर से (कृणुहि) बना ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से अधिक अधिक उन्नति करते हुए आगे बढ़े जाते हैं, वे ही सर्ववार निर्विघ्नता से अपना जीवन सुफल करते हैं ॥१॥

सूक्तम् ॥९॥

१-४ ॥ पूषा देवता ॥ १, २ त्रिष्टुप्; ३ गायत्री; ४ अनुष्टुप् ॥

परमेश्वरोपासनोपदेशः—परमेश्वर की उपासना का उपदेश ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमेश्वर (पथाम्) सब मार्गों में से (प्रपथे) चौड़े मार्ग में (दिवः) सूर्य के (प्रपथे) चौड़े मार्ग में और (पृथिव्याः) पृथिवी के (प्रपथे) चौड़े मार्ग में (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है। (प्रजानन्) बड़ा विद्वान् वह (उभे) दोनों (प्रियतमे) [परस्पर] अति प्रिय (सधस्थे) एक साथ स्थिति करने वाले [सूर्य और पृथिवी लोक] (अभि) में (आ) हमारे निकट (च च) और (परा) दूर (चरति) विचरता रहता है ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूर्य, पृथिवी आदि लोकों को परस्पर आकर्षण से धारण करता है, वही हमारा पालन पोषण करता है चाहे हम अपने घर के निकट वा दूर हों ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । १७ । ६ ॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२॥

भाषार्थः—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमेश्वर (इमाः) इन (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (अनु) लगातार (वेद) जानता है, (सः) वह (अस्मान्) हमें (अभयतमेन) अत्यन्त अभय [मार्ग] से (नेषत्) ले चले। (स्वस्तिदाः) मङ्गल-दाता, (आघृणिः) बड़ा प्रकाशमान (सर्ववीरः) सब में वीर, (प्रजानन्) बड़ा विद्वान् वह (अप्रयुच्छन्) विना चूक किये हुए (पुरः) हमारे आगे आगे (एतु) चले ॥२॥

भावार्थः—सर्वव्यापक, मङ्गलप्रद, सर्ववीर, महाबुद्धिमान् परमेश्वर को निरन्तर सहायक जानकर, मनुष्य उत्तम कर्मों में आगे बढ़े ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० १० । १७ । ५ ॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥

भाषार्थः—(पूषन्) हे पूषा, पालन करने वाले परमेश्वर ! (तव) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में [रहकर] (वयम्) हम (कदा चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) दुःखी होवें। (इह) यहां पर (ते) तेरे (स्तोतारः) स्तुति करनेवाले (स्मसि) हम लोग हैं ॥३॥

भावार्थः—पुरुषार्थी लोग परमेश्वर के गुण और कर्मों के अनुकूल चलकर सदा सुखी रहते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० ६ । ५४ । ९ और यजु० ३४ । ४१ ॥

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४॥

भाषार्थः—(पूषा) पूषा, पोषण करनेवाला परमात्मा (दक्षिणम्) अपना दाहिना (हस्तम्) हाथ (परस्तात्) पीछे से [हमारे पुरुषार्थानुकूल] (परि) सब ओर (दधातु) धारण करे। वह (नः) हमें (नष्टम्) नष्ट बल को (पुनः) फिर (आ अजतु) लावे, [पाये हुए] (नष्टेन) नष्ट बल के साथ (सम् गमेमहि) हम मिले रहें ॥४॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य बायें हाथ की अपेक्षा दाहिने हाथ से अधिक उपकार करता है, वैसे ही परमात्मा अपनी पूरण कृपा हम पर रक्खे, जिससे हम प्रयत्नपूर्वक अपने खोये बल [प्रारब्ध फल] को फिर पाकर रख सकें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ६ । ५४ । १० ॥

सूक्तम् ॥१०॥

१ ॥ सरस्वती देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सरस्वतीविषयोपदेशः—सरस्वती के विषय का उपदेश ॥

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१॥

भाषार्थः—(सरस्वति) हे सरस्वती, विज्ञानवती स्त्री ! [वा वेदविद्या] (यः) जो (ते) तेरा (स्तनः) स्तन, दूध का आधार (शशयुः) प्रशंसा पाने वाला, (यः) जो (मयोभूः) सुख देनेवाला और (यः) जो (सुम्नयुः) उपकार करने वाला, (सुहवः) अच्छे प्रकार ग्रहणयोग्य और (यः) जो (सुदत्रः) बड़ा दानी है। (येन) जिस स्तन से (विश्वा) सब (वार्याणि) स्वीकरणीय अंगों को (पुष्यसि) तू पुष्ट करती है (तम्) उस स्तन को (इह) यहां (धातवे) पीने के लिये (कः) तू ने ठीक किया है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार विदुषी माता का दूध पीकर बालक शरीर से पुष्ट हो कान्तिमान् होता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष वेद विद्या का अमृत पान करके आत्मबल से पुष्ट होकर कीर्तिमान् होता है ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १ । १६४ । ४९ । और यजुर्वेद,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३८ । ५ । और श्रीमद्दयानन्दकृत संस्कारविधि, जातकर्म में बालक के स्तनपान करने के विषय में आया है ॥

सूक्तम् ॥११॥

१ ॥ पर्जन्यो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

अन्नरक्षोपदेशः—अन्न की रक्षा का उपदेश ॥

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैव्यः केतुर्विश्वमा भूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१॥

भाषार्थः—(देव) हे जलदाता मेघ ! (यः) जो (ते) तेरा (पृथुः) विस्तीर्ण और (यः) जो (ऋष्वः) इधर उधर चलनेवाला वा बड़ा, (दैवः) आकाश में रहने वाला, (केतुः) जताने वाला झंडा रूप (स्तनयित्नुः) गर्जन (इदम् विश्वम्) इस सब स्थान में (आभूषति) व्यापता है । (नः) हमारे (सस्यम्) धान्य को (विद्युता) चमचमाती बिजुली से (मा वधीः) मत नाश कर, और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (उत) भी (मा वधीः) मत सुखा ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि दैवी विपत्तियों का विचार रख कर पहिले से अन्न आदि के संचय से रक्षा का उपाय कर लेवें ॥१॥

सूक्तम् ॥१२॥

१—४ ॥ सभापतिर्देवता ॥ १ त्रिष्टुप्; २—४ अनुष्टुप् ॥

सभापतिकर्तव्योपदेशः—सभापति के कर्तव्यों का उपदेश ॥

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारुवदानि पितरः संगतेषु । १ ।

भाषार्थः—(प्रजापतेः) प्रजापति अर्थात् प्रजारक्षक पुरुषार्थ की (दुहितरौ) पूरण करने वाली [वा दो पुत्रियों के समान हितकारी] (संविदाने) यथावत् मेल वाली (सभा) सभा, विद्वानों की संगति (च च) और (समितिः) एकता (मा) मुझे (अवताम्) तृप्त करें । (येन) जिस पुरुष के साथ (संगच्छै) मैं मिलूं, (सः) वह (मा) मुझे (उप) आदर से (शिक्षात्) समर्थ करे, (पितरः) हे पितरो, पालन करने वाले विद्वानो ! (संगतेषु) सम्मेलनों के बीच मैं (चारु) ठीक ठीक (वदानि) बोलूं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सभापति ऐसा सुशिक्षित और सुयोग्य पुरुष हो कि संगठन की सफलता के लिये सब सभासद् एकमत हो जावें, और उसके धर्मयुक्त वचन को मानकर उसके सहायक रहें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० का० ६ । सू० ६४ । से करो ॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥

भाषार्थः—(सभे) हे सभा ! (ते) तेरा (नाम) नाम (विद्म) हम जानते हैं, तू (नरिष्टा) नरों की इष्ट देवी (वै) ही (नाम) नाम वाली (असि) है । (च) और (ये के) जो कोई (ते) तेरे (सभासदः) सभासद् हैं, (ते) वे सब (मे) मेरे लिये (सवाचसः) एक वचन (सन्तु) होवें ॥२॥

भावार्थः—उसी सभा से मनुष्यों का इष्ट सिद्ध होता है, जहां पर सभापति और सभासद् एक मन होकर धर्म का प्रचार करते हैं ॥२॥

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्या सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं [सभापति] (एषाम्) इन (समासीनानाम्) यथावत् बैठे हुए पुरुषों का (वर्चः) तेज और (विज्ञानम्) विज्ञान (आ ददे) अंगीकार करता हूं (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (माम्) तुझ को (अस्याः) इस (सर्वस्याः संसदः) सब सभा का (भगिनम्) ऐश्वर्यवान् (कृणु) कर ॥३॥

भावार्थः—जहां सभापति और सब सभासद् एकमत होकर अपना पराक्रम और विज्ञान अर्थात् सूक्ष्म विचार बढ़ाते हैं, वहां पर सब ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥३॥

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४॥

भाषार्थः—[हे सभासदो !] (यत्) जो (वः) तुम्हारा (मनः) मन (परागतम्) उचट गया है (वा) अथवा (यत्) जो (इह वा इह) इधर उधर [प्रतिकूल विषयों में] (बद्धम्) बंधा हुआ है (वर्तयामसि) हम लौटाते हैं [जिससे] (वः मनः) तुम्हारा मन (मयि) मुझ में (रमताम्) ठहर जावे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—सभापति अपनी विशेष विज्ञानता से सभासदों का ध्यान निर्धारित विषय पर खींच कर कार्यसिद्धि करे ॥४॥

सूक्तम् ॥१३॥

१-२ ॥ आत्मा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुपराजयोपदेशः—शत्रुओं को हराने का उपदेश ॥

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे ।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥१॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (उद्यन्) उदय होते हुए (सूर्यः) सूर्य ने (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (तेजांसि) तेजों को (आददे) लेलिया है । (एव) वैसे ही (द्विषताम्) द्वेषी (स्त्रीणाम्) स्त्रियों (च च) और (पुंसाम्) पुरुषों का (वर्चः) तेज (आ ददे) मैंने ले लिया है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अधर्मी वैरियों को दबा कर ऐसा निस्तेज कर देवे, जैसे सूर्य के निकलने पर तारे निस्तेज हो जाते हैं ॥१॥

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥२॥

भाषार्थः—(सपत्नानाम्) शत्रुओं में से (यावन्तः) जितने लोग तुम (मा आयन्तम्) मुझ आते हुए को (प्रतिपश्यथ) निहारते हो । (द्विषताम्) उन वैरियों का (वर्चः) तेज (आ ददे) मैं लिये लेता हूं (इव) जैसे (उद्यन् सूर्यः) उदय होता हुआ सूर्य (सुप्तानाम्) सोते हुए पुरुषों का ॥२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य के उदय होने पर सोने वाले आलसियों का बल घट जाता है वैसे ही तेजस्वी पुरुष अपने वैरियों को पराक्रमहीन कर देवे ॥२॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१४॥

१–४ ॥ सविता देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्, ३, ४ त्रिष्टुप् ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥१॥

भाषार्थः (त्यम्) उस (देवम्) सुखदाता (ओण्योः) सूर्य और पृथिवी के (सवितारम्) उत्पन्न करने वाले, (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ बुद्धि वा कर्म वाले, (सत्यसवम्) सच्चे ऐश्वर्य वाले, (रत्नधाम्) रमणीय विज्ञानों वा हीरा आदिकों वा लोकों के धारण करने वाले, (प्रियम्) प्रीति करने वाले, (मतिम्) मनन करने वाले, परमेश्वर को (अभि अभि) बहुत भले प्रकार (अर्चामि) मैं पूजता हूं ॥१॥

भावार्थः—राजा, प्रजा और सब विद्वान् लोग उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करके सदा धर्म के अनुकूल बरतें और आनन्द भोगें ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से सामवेद में हैं–पू० ५ । ८ । ८ और यजु० ४ । २५ ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥२॥

भाषार्थः –(यस्य) जिसकी (ऊर्ध्वा) ऊंची, (अमतिः) व्यापनेवाली (भाः) चमक (सवीमनि) सृष्टि के बीच (अदिद्युतत्) चमकी हुई है । (हिरण्यपाणिः) अन्धकार वा दरिद्रता हरने वाले सूर्य आदि और सुवर्ण आदि तेजों के व्यवहार वाले, (सुक्रतु) उत्तम बुद्धि वा कर्मवाले उस ईश्वर ने (कृपात्) अपने सामर्थ्य से (स्वः) स्वर्ग अर्थात् मोक्ष सुख (अमिमीत) रचा है ॥२॥

भावार्थः उस जगदीश्वर की अनन्तशक्ति का विचार करके मनुष्य मोक्ष आनन्द के लिये सदा प्रयत्न करें ॥२॥

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वष्प्राणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दित्रोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥३॥

भाषार्थः—देव, हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ने (हि) ही (प्रथमाय)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमसे पहले वर्तमान (पित्रे) पालन करने वाले (अस्मै) इस [पुरुष] को और (अस्मै) इस [दूसरे पुरुष] को (वर्ष्माणम्) उच्च स्थान और (वरिमाणम्) फैलाव वा उत्तमपन (सावीः) दिया है। (अथ) सो (सवितः) हे सर्वप्रेरक परमेश्वर! (अस्मभ्यम्) हमें (दिवोदिवः) सब दिनों (वार्याणि) उत्तम विज्ञान और धन और (भूरि) बहुत (पश्वः) मनुष्य, गौ, घोड़ा, हाथी आदि (आ सुव) भेजता रहे ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमेश्वर ने हमसे पहिले उपकारी महात्माओं को उच्च पदवी दी है, वैसे ही परमेश्वर की आज्ञा मान कर हम भी सुख के भागी होवें ॥३॥

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥४॥

भाषार्थः—(दमूनाः) दमनशील शान्त स्वभाव, (देवः) व्यवहारकुशल, (वरेण्यः) स्वीकार योग्य (सविता) चलाने वाला पुरुष (पितृभ्यः) पालन करने वाले विद्वानों के हित के लिये (रत्नम्) रमणीय धन, (दक्षम्) बल और (आयूंषि) जीवन साधनों को (दधत्) धारण करता हुआ (सोमम्) अमृत का (पिबात्) पान करे, और (एनम्) इस [परमेश्वर] को (इष्टे) यज्ञ में (ममदत्) प्रसन्न करे, (परिज्मा) सब ओर चलने वाला पुरुष (चित्) ही (अस्य) इस [परमेश्वर] के (धर्मणि) धर्म अर्थात् नियम में (क्रमते) चला जाता है ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की सेवा करते हैं, और सर्वत्रगति होते हैं, वे ही आनन्द रस पीते हुए ईश्वर की आज्ञा का पालन करके आनन्द भोगते हैं ॥४॥

सूक्तम् ॥१५॥

१ ॥ सविता देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

आचार्यब्रह्मचारिकृत्योपदेशः—आचार्य और ब्रह्मचारी के कृत्य का उपदेश ॥

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥१॥

भाषार्थः—(सवितः) हे सब ऐश्वर्य वाले आचार्य! (ताम्) उस (सत्यसवाम्) सत्य ऐश्वर्यवाली, (सुचित्राम्) बड़ी विचित्र, (विश्ववाराम्) सब से स्वीकार करने योग्य (सुमतिम्) सुमति [यथावत् विषय वाली बुद्धि] को (अहम्) मैं (आ) आदरपूर्वक (वृणे) मांगता हूं, (याम्) जिस (प्रपीनाम्) बहुत बढ़ी हुई, (सहस्रधाराम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रों विषयों की धारण करने वाली [सुमति] को (अस्य) इस [जगत्] के (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (कण्वः) मेधावी, (महिषः) पूजनीय परमात्मा ने (अबृहत्) परिपूर्ण किया है ॥१॥

भावार्थः—तपस्वी ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी योगी, आप्त विद्वान् पुरुषों से संसार के हित के लिये परमेश्वरदत्त वेद द्वारा अपनी बुद्धि को बढ़ाते रहें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० १७ । ७४ ॥

सूक्तम् ॥१६॥

१ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ २ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

भाषार्थः—(बृहस्पते) हे बड़े सज्जनों के रक्षक ! (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त उपदेशक ! (एनम्) इस [राजा] को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (वर्धय) बढ़ा और (ज्योतय) ज्योति वाला कर । (चित्) और (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धिवाले (एनम्) इस [राजा] को (सन्तरम्) अतिशय करके (सम्) यथावत् (शिशाधि) शिक्षा दे, (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् सभ्य लोग (एनम्) इस [राजा] के (अनु मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥१॥

भावार्थः—राजसभा का उपदेशक राजा आदि सज्जनों को उत्तम उत्तम उपदेश द्वारा सुशीलता प्राप्त कराके ऐश्वर्य बढ़ाने में प्रवृत्त करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० २७ । ८ ॥

सूक्तम् ॥१७॥

१—४ ॥ धाता देवता ॥ १ गायत्री; २ अनुष्टुप्, ३,४ त्रिष्टुप् ॥

गृहस्थकृत्योपदेशः—गृहस्थ के कर्म का उपदेश ॥

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(ईशानः) ऐश्वर्यवान् (जगतः पतिः) जगत् का पालने वाला, (धाता) धाता विधाता [सृष्टि कर्त्ता] (नः) हमें (रयिम्) धन (दधातु) देवे । (सः) वही (नः) हमको (पूर्णेन) पूर्ण बल से (यच्छतु) ऊंचा करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—गृहस्थ लोग जगत्पति परमात्मा के अनुग्रह से प्रयत्न करके धन और बल बढ़ाकर सुखी रहें ॥१॥

धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २॥

भाषार्थः—(धाता) सब का पोषण करने वाला ईश्वर (दाशुषे) उदारचित्त पुरुष को (प्राचीम्) अच्छे प्रकार आदर योग्य (अक्षिताम्) अक्षय (जीवातुम्) जीविका (ददातु) देवे । (विश्वराधसः) सर्वधनी (देवस्य) प्रकाशस्वरूप ईश्वर की (सुमतिम्) सुमति [यथावत् विषय वाली बुद्धि] को (वयम्) हम (धीमहि) धारण करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के धारण पोषण आदि गुणों के चिन्तन से बुद्धि बढ़ा कर धनी और बली होवें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से स्वामी दयानन्द कृत संस्कारविधि–सीमन्तोन्नयन में और निरुक्त ११ । ११ । में आया है ।

धाता विश्वा वार्या ददातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३॥

भाषार्थः—(धाता) सब का धारण करने वाला परमेश्वर (विश्वा) सब (वार्या) उत्तम विज्ञान और धन (प्रजाकामाय) प्रजा, उत्तम सन्तान भृत्य आदि चाहने वाले (दाशुषे) दानशील पुरुष को (दुरोणे) उसके घर में (ददातु) देवे । (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग और (देवाः) उत्तम गुण और (सजोषाः) समान प्रीति वाली (अदितिः) अदीन भूमि (तस्मै) उस पुरुष को (अमृतम्) अमृत [पूर्ण सुख] (सम्) यथावत् (व्ययन्तु) पहुंचावें ॥३॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग परमेश्वर की उपासना, विद्वानों की संगति, उत्तम गुणों की प्राप्ति और भूगोल विद्या की उन्नति से विज्ञानपूर्वक सुख-वृद्धि करें ॥३॥

धाता रातिः सविता तेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४॥

भाषार्थः—(सविता) सर्वप्रेरक, (धाता) धारण करने वाला, (रातिः) दानाध्यक्ष, (प्रजापतिः) प्रजापालक, (निधिपतिः) निधिपति [कोशाध्यक्ष] और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्निः) अग्नि समान [अविद्या रूपी अन्धकार का नाश करने वाला] विद्वान् पुरुष [यह सब अधिकारी] (नः) हमारे (इदम्) इस [गृहस्थ कर्म] को (जुषन्ताम्) सेवन करें। (विष्णुः) सर्व व्यापक, (संरराणः) सम्यक् दाता, (त्वष्टा) निर्माता परमेश्वर (प्रजया) प्रजा के सहित वर्तमान (यजमानाय) पदार्थों के संयोजक वियोजक विज्ञानी को (द्रविणम्) बल वा धन (दधातु) देवे ॥४॥

भावार्थः—जैसे राजा राज्य की उन्नति के लिये अनेक अधिकारी रखता है, वैसे ही गृहस्थ लोग घर का प्रबन्ध करके परमेश्वर के अनुग्रह से बल और धन बढ़ावें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ८। १७ ॥

सूक्तम् ॥१८॥

१—२ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ॥

दूरदर्शित्वोपदेशः—दूरदर्शी होने का उपदेश ॥

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३ दं दिव्यं नभः।
उद्गो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१॥

भाषार्थः—(पृथिवि) हे अन्तरिक्ष! [वायु] (इदम्) इस (दिव्यम्) आकाश में छाये हुए (नभः) जल को (प्र) उत्तम रीति से (नभस्व) गिरा और (भिन्द्धि) छिन्न भिन्न कर दे [फैला दे]। (धातः) हे पोषक, सूर्य! (ईशानः) समर्थ तू (नः) हमारे लिये (दिव्यस्य) दिव्य [उत्तम गुण वाले] (उद्गः) जलके (दृतिम्) पात्र [मेघ] को (वि ष्य) खोल दे ॥१॥

भावार्थः—जैसे अन्तरिक्षस्थ वायु और सूर्य के संयोग वियोग सामर्थ्य से आकाश से जल बरस कर संसार का उपकार करता है, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या आदि शुभ गुणों की बरसा से उपकार करें ॥१॥

न घ्रंस्ताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥२॥

भाषार्थः—(घ्रन्) चमकता हुआ सूर्य (न ताप) न तपावे (न) न (हिमः) शीत (जघान) मारे, [किन्तु] (जीरदानुः) गति देनेवाला (पृथिवी) अन्तरिक्ष [जल को] प्र) अच्छे प्रकार (नभताम्) गिरावे। (आपः) सब प्रजायें (चित्) भी (अस्मै) इस [जगत्] के लिये (घृतम्) सार रस (इत्) ही (क्षरन्ति) बरसती हैं, (यत्र) जहां (सोमः) ऐश्वर्य है (तत्र) वहां (सदम् इत्) सदा ही (भद्रम्) कल्याण है ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे दूरदर्शी ऐश्वर्यवान् पुरुष ठीक ठीक वृष्टि से लाभ उठाकर अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अतिशीत के दुःखों से बचे रहते हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष शान्त स्वभाव परमात्मा के विचार से आत्मिक क्लेशों से अलग रहकर मङ्गल मनाते हैं ॥२॥

सूक्तम् ॥१९॥

१ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ जगती छन्दः ॥

वृद्धिकरणोपदेशः—बढ़ती करने का उपदेश ॥

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर (इमाः) इन सब (प्रजाः) सृष्टि के जीवों को (जनयति) उत्पन्न करता है, वह (सुमनस्यमानः) शुभचिन्तक (धाता) पोषक परमात्मा [इनका] (दधातु) पोषण करे [जो] (संजानानाः) एक ज्ञान वाली, (संमनसः) एक मन वाली और (सयोनयः) एक कारण वाली हैं, (पुष्टपतिः) वह पोषण का स्वामी [प्रजायें] (मयि) मुझ में (पुष्टम्) पोषण (दधातु) धारण करे ॥१॥

भावार्थः मनुष्य परमेश्वर के प्रजापालकत्व आदि गुणों का विचार कर के प्रीतिपूर्वक अपनी वृद्धि करें ॥१॥

सूक्तम् ॥२०॥

१–६ । अनुमतिर्देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्, ३—५ त्रिष्टुप्, ६ जगती ॥

मनुष्यकर्त्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अन्वद्य नो ऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥१॥

भाषार्थः—(अनुमतिः) अनुमति, अनुकूल बुद्धि (अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) संगति व्यवहार को (देवेषु) विद्वानों में (अनु मन्यताम्) निरन्तर माने । (च) और (अग्निः) अग्नि [पराक्रम] (मम दाशुषे) मुझ दाता के लिये (हव्यवाहनः) ग्राह्य पदार्थों का पहुंचाने वाला (भवतम्) होवे ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक व्यवहारों में अनुकूल बुद्धिवाले और पराक्रमी होते हैं, वेही उत्तम पदार्थों को पाकर सुखी होते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुक्त ११। २९ के अनुसार (अनुमति) पूर्णमासी का नाम है। अर्थात् हमारा समय पौर्णमासी के समान पुष्टि और हर्ष करनेवाला हो ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ३४। ९ ॥

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥२॥

भाषार्थः—(अनुमते) हे अनुमति ! [अनुकूल बुद्धि] (त्वम्) तू (इत्) अवश्य [हमारी प्रार्थना] (अनु मंससे) सदा मानती रहे, (च) और (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याण (कृधि) कर। (हव्यम्) ग्रहण योग्य (आहुतम्) यथावत् दिया पदार्थ (जुषस्व) स्वीकार कर, (देवि) हे देवी ! (नः) हमें (प्रजाम्) सन्तान भृत्य आदि (ररास्व) दे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम बुद्धि द्वारा पथ्य कुपथ्य विचार कर युक्त आहार विहार करके उत्तम सन्तान और भृत्य आदि पाकर सुख भोगें ॥२॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से यजु० में है—३४। ८ ॥

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

भाषार्थः—(अनुमन्यमानः) निरन्तर जानने वाला परमेश्वर (प्रजावन्तम्) उत्तम सन्तान, भृत्य आदि वाला, (अक्षीयमाणम्) न घटने वाला (रयिम्) धन (अनु) अनुग्रह करके (मन्यताम्) जतावे। (वयम्) हम (तस्य) उसके (हेडसि) क्रोध में (अपि) कभी (मा भूम) न होवें, (अस्य) इसके (सुमृडीके) उत्तम सुख में और (सुमतौ) सुमति [कल्याणी बुद्धि] में (स्याम) बने रहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य धार्मिक रीति में प्राप्त किये धन से प्रजा पालन करके ईश्वर की आज्ञा में सुखके साथ सदा वर्तमान रहें ॥३॥

यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४॥

भाषार्थः—(सुप्रणीते) हे उत्तम नीतिवाली ! [वा भले प्रकार चलाने वाली] (अनुमते) अनुमति ! [अनुकूल बुद्धि] (यत्) जो (ते) तेरा (नाम) नाम [यश] (सुहवम्) आदर से आवाहन योग्य, (सुदानु) बड़ा दानी (अनुमतम्) निरन्तर माना गया है। (विश्ववारे) हे वरणीय पदार्थों वाली ! (तेन) उस [अपने यश] से (नः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (पिपृहि) पूरण कर दे, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्य वाली ! (नः) हमें (सुवीरम्) अच्छे वीरों वाला (रयिम्) धन (धेहि) दे ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्य सर्वमाननीय ज्ञान द्वारा धन आदि पदार्थ प्राप्त करके कीर्तिमान् होवें ॥४॥

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५॥

भाषार्थः—(अनुमतिः) अनुमति [अनुकूल बुद्धि] (सुजातम्) बहुत प्रसिद्ध (इमम्) इस (यज्ञम्) हमारे यज्ञ [संगति व्यवहार] में (सुक्षेत्रतायै) अच्छी भूमियों और (सुवीरतायै) साहसी वीरों की प्राप्ति के लिये (आ जगाम) आई है। और (अस्याः) इसकी (हि) ही (प्रमतिः) अनुग्रह बुद्धि (भद्रा) कल्याणी (बभूव) हुई है, (सा) वही (देवगोपा) विद्वानों की रक्षिका [अनुमति] (इमम्) इस (यज्ञम्) हमारे यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] की (अवतु) रक्षा करे ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार मनुष्य वेदद्वारा सत्यज्ञान पाकर चक्रवर्ती राज्य और उत्साही वीरों के पराक्रम से सुखवृद्धि करते रहें, वैसे ही मनुष्य अनूकूल मति से प्रतिकूल बुद्धि छोड़कर सदा सुखी रहें ॥५॥

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः । ६ ।

भाषार्थः—(अनुमतिः) अनुमति [अनुकूल बुद्धि] (इदम्) इस (सर्वम्) सब में (बभूव) व्यापी है, (यत्) जो कुछ (तिष्ठति) खड़ा होता है, (चरति) चलता है, (च) और (विश्वम्) सब (यत् उ) जो कुछ भी (एजति) चेष्टा करता है [हाथ पांव चलाता है]। (देवि) हे देवी ! (तस्याः ते) उस तेरी (सुमतौ) सुमति [अनुग्रह बुद्धि] में (स्याम) हम रहें, (अनुमते) हे अनुमति ! तू (हि) ही (नः) हमें (अनु) अनुग्रह से (मंससे) जानती रहे ॥६॥

भावार्थः जो मनुष्य प्रतिकूलता त्याग कर प्रत्येक कर्तव्य में अनुकूलता देवी का ध्यान रखते हैं वेही परमेश्वर के कृपापात्र होते हैं ॥६॥

सूक्तम् ॥२१॥

१ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ जगती छन्दः ॥

ईश्वराज्ञापालनोपदेशः—ईश्वर की आज्ञा के पालन का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एकों विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥१॥

भाषार्थः—(विश्वे) हे सब लोगो ! (वचसा) वचन [सत्य वचन] से (दिवः) सूर्य के (पतिम्) स्वामी से (समेत) आकर मिलो, (एकः) वह एक (विभूः) सर्वव्यापक प्रभु (जनानाम्) सब मनुष्यों का (अतिथिः) अतिथि [नित्य मिलने योग्य] है। (सः) वह (पूर्व्यः) सब का हितकारी ईश्वर (नूतनम्) इस नवीन [जगत्] को (आविवासत्) विविध प्रकार निवास कराता है, (वर्तनिः) प्रत्येक वर्तने योग्य मार्ग (तम् एकम् अनु) उस एक [परमात्मा] की ओर (इत्) ही (पुरु) अनेक प्रकार से (ववृते) घूमा है ॥१॥

भावार्थः जो परमात्मा प्रत्येक वस्तु को अपने आकर्षण में रखकर इस नूतन जगत् का [जिसमें नित्य नये आविष्कार होते हैं] धारण करता है, विद्वान् लोग उसी की महिमा को खोजते जाते हैं ॥१॥

सूक्तम् ॥२२॥

१-२ ॥ परमेश्वरो देवता ॥ १ अक्षरपङ्क्तिः; २ त्रिपादनुष्टुप् ॥
विज्ञानप्राप्त्युपदेशः—विज्ञान की प्राप्ति का उपदेश ॥

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१॥

भाषार्थः—(अयम्) यह [परमेश्वर] (नः कवीनाम् सहस्रम्) हम सहस्र बुद्धिमानों में (आ) व्यापकर (दृशे) दर्शन के लिये (विधर्मणि) विरुद्धधर्मी [पञ्चभूतरचित स्थूल जगत्] में (मतिः) ज्ञानस्वरूप और (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप है ॥१॥

भावार्थः- पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश से बने संसार में परमात्मा की महिमा निहार कर विद्वान् लोग विज्ञान, शिल्प आदि के नये नये आविष्कार करते हैं ॥१॥

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥२॥

भाषार्थः—(ब्रध्नः) नियम में बांधने वाले [सूर्यरूप] परमेश्वर ने (समीचीः) परस्पर मिली हुई, (अरेपसः) निर्मल, (सचेतसः) समान चेताने वाली, (मन्यु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्तमाः) अत्यन्त चमकने वाली (**उषसः**) उषाओं को (**स्वसरे**) दिनमें (**गोः**) पृथिवी के (**चिते**) ज्ञान के लिये (**सम्**) यथावत् (**ऐरयन्**) भेजा है ॥२॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर, सूर्य के आकर्षण द्वारा पृथिवी के घुमाव से रात्रि के पश्चात्, प्रकाश करता है। वैसे ही विद्वान् लोग अज्ञान नाश करके ज्ञान के साथ प्रकाशमान होते हैं ॥२॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥२३॥

१ ॥ प्रजा देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्म्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥१॥

भाषार्थः—(**दौष्वप्न्यम्**) नींद में बेचैनी, (**दौर्जीवित्यम्**) जीवन का कष्ट, (**अभ्वम्**) बड़े (**रक्षः**) राक्षस, (**अराय्यः**) अनेक अलक्ष्मियों और (**दुर्णाम्नीः**) दुष्ट नाम वाली (**दुर्वाचः**) कुवाणियों, (**ताः सर्वाः**) इन सब को (**अस्मत्**) अपने से (**नाशयामसि**) हम नाश करें ॥१॥

भावार्थः—राजा की सुनीति से प्रजा गण बाहिर भीतर से निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोवें, उद्यमी होकर आनन्द भोगें, चोर डाकू आदिकों से निर्भय रहें, धन की वृद्धि करें और विद्या बल से कलह छोड़कर परस्पर उन्नति करने में लगे रहें ॥१॥

यह मन्त्र आ चुका है—अ० ४ । १७ । ५ ॥

सूक्तम् ॥२४॥

१ ॥ सविता देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य पाने का उपदेश ॥

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जो [ऐश्वर्य] (नः) हमारे लिये (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष ने और (यत्) जो (अग्निः) अग्निसमान तेजस्वी पुरुष ने (अखनत्) खोदा है, और (यत्) जो (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहारकुशल, (स्वर्काः) बड़े वज्रवाले (मरुतः) शूर लोगों ने [खोदा है] । (तत्) वह [वैसाही ऐश्वर्य] (अस्मभ्यम्) हमें (सत्यधर्म्मा) सत्य धर्मी, (प्रजापतिः) प्रजापालक, (अनुमतिः) अनुकूल बुद्धिवाला (सविता) सृष्टिकर्ता परमेश्वर (नि) नियम पूर्वक (यच्छात्) देता रहे ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार ऐश्वर्यवान्, प्रतापी, व्यवहार निपुण, शूर-वीर पुरुषों ने ऐश्वर्य पाया है। उसी प्रकार विज्ञानी सत्यपराक्रमी पुरुष परमेश्वर के अनन्त कोश से ऐश्वर्य पाते रहें ॥१॥

(मरुतः) शब्द का विशेष विवरण अ० १ । २० । १ । में देखो ॥

सूक्तम् ॥२५॥

१—२ ॥ विष्णुवरुणौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजमन्त्रिणोर्धर्मोपदेशः—राजा और मन्त्री के धर्म का उपदेश ॥

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमाशविष्ठा ।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः ॥१॥

भाषार्थः—(ययोः) जिन दोनों के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता) थंभे हुए हैं, (यौ) जो दोनों (वीर्यैः) अपने पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर और (शविष्ठा) महाबली हैं, (यौ) जो दोनों (सहोभिः) अपने बलों से (अप्रतीतौ) न रुकने वाले होकर (पत्येते) ऐश्वर्यवान् हैं, [उन दोनों] (विष्णुम्) व्यापनशील [वा सूर्य समान प्रतापी] राजा और (वरुणम्) श्रेष्ठ [वा जल समान उपकारी] मन्त्री को (पूर्वहूतिः) सब लोगों का आवाहन (अगन्) पहुंचा है ॥१॥

भावार्थः—जहां पर राजा और मन्त्री बलवान् और धार्मिक होते हैं, वहां प्रजागण उनका सदा सन्मान करते हैं ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ८ । ५९ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥२॥

भाषार्थः—(यस्य) जिन (देवस्य) व्यवहारकुशल [राजा और मन्त्री] के (प्रदिशि) अच्छे शासन में (धर्म्मणा) उनके धर्म अर्थात् नीति और (सहोभिः) पराक्रम से (इदम्) यह [राज्य] है, (यत्) जो कुछ (पुरा) हमारे सन्मुख (शचीभिः) अपने कर्मों से (विरोचते) जगमगाता है, (च) और (प्र अनति) श्वास लेता है (च) और (वि चष्टे) निहारता है, [उन दोनों] (विष्णुम्) व्यापनशील राजा और (वरुणम्) श्रेष्ठ मन्त्री को (पूर्वहूतिः) सब का आवाहन (अगन्) पहुंचा है ॥२॥

भावार्थः—जहां राजा और मन्त्री के सुप्रबन्ध से प्रजा के सब स्थावर और जंगम पदार्थ सुरक्षित रहते हैं, वहां सब लोग प्रसन्न रह कर उस राज्य की प्रशंसा करते हैं ॥२॥

सूक्तम् ॥२६॥

१—८ ॥ विष्णुर्देवता ॥ १, २, ८ त्रिष्टुप्; ३ यस्योरुषु···द्विपात् त्रिष्टुप्, उरु···अनुष्टुप्; ४–७ गायत्री ॥

व्यापकेश्वरगुणोपदेशः—व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥

भाषार्थः—(विष्णोः) विष्णु व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (नु) शीघ्र (कम्) सुख से (प्र) अच्छे प्रकार (वोचम्) मैं कहूं, (यः) जिसने (पार्थिवानि) भूमिस्थ और अन्तरिक्षस्थ (रजांसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार रचा है, (यः) जिस (उरुगायः) बड़े उपदेशक प्रभु ने (उत्तरम्) सब अवयवों के अन्त (सधस्थम्) साथ में रहने वाले कारण को (विचक्रमाणः) चलाते हुए (त्रेधा) तीन प्रकार से [उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय रूप से] [उन लोकों को] (अस्कभायत्) थांभा है ॥१॥

भावार्थः जो परमेश्वर परमाणुओं में संयोग वियोग शक्ति देकर अनेक लोकों को बनाकर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप से धारण करता है उसकी भक्ति सब मनुष्य सदा किया करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है–१ । १५४ । १ । और यजुर्वेद में ५।१८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र तद् विष्णुं स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥२॥

भाषार्थः—(भीमः) डरावने, (कुचरः) टेढ़े टेढ़े चलने वाले [ऊंचे नीचे दायें वायें जाने वाले] (गिरिष्ठाः) पहाड़ों पर रहने वाले (मृगः न) आखेट ढूंढ़ने वाले सिंह आदि के समान, (तत्) वह (विष्णुः) सर्वव्यापी विष्णु (वीर्याणि) अपने पराक्रमों को (प्र) अच्छे प्रकार (स्तवते) स्तुति योग्य बनाता है। वह (परावतः) समीप दिशा से और (परस्याः) दूर दिशा से (आ जगम्यात्) आता रहे ॥२॥

भावार्थः—जैसे सिंह का पराक्रम जंगली पशुओं में विदित होता है, वैसे ही सर्वव्यापी, पापियों के दण्ड देने वाले परमात्मा का सामर्थ्य निकट और दूर सब लोकों में प्रसिद्ध है ॥२॥

इस मन्त्र का पूर्वभाग ऋग्वेद में है—म० १ । १५४ । २ । और यजु० अ० ५ । २० । (मृगो न···गिरिष्ठाः) यह पाद निरुक्त १ । २० में व्याख्यात है ॥

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥३॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसके (उरुषु) विस्तीर्ण [उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप] (त्रिषु) तीन (विक्रमणेषु) विविध क्रमों [नियमों] में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) भले प्रकार रहते हैं। [वही] (विष्णो) हे सर्वव्यापक विष्णु तू (उरु) विस्तार से (वि क्रमस्व) विक्रमी हो, और (नः) हमें (क्षयाय) ज्ञान वा ऐश्वर्य के लिये (उरु) विस्तार के साथ (कृधि) कर। (घृतयोने) हे प्रकाश के घर ! (घृतम्) घृत के समान तत्त्वरस (पिब=पायय) [हमें] पान करा और (यज्ञपतिम्) पूजनीय कर्म के रक्षक मनुष्य को (प्र प्र) अच्छे प्रकार (तिर) पार लगा ॥३॥

भावार्थः—जो सर्वव्यापक परमेश्वर सब लोक लोकान्तरों का स्वामी है, सब मनुष्य उसकी उपासना से ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥३॥

(यस्य उरुषु···) यह पाद ऋग्वेद में है—१ । १५४ । २ । और यजु० ५ । २० ॥ (उरु विष्णो···) यह मन्त्र यजुर्वेद में है—५ । ३८, ४१ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(विष्णुः) विष्णु सर्वव्यापी भगवान् ने (समूढम्) आपस में एकत्र किये हुए वा यथावत् विचारने योग्य (इदम्) इस जगत् को (विचक्रमे) पराक्रमयुक्त [शरीरवाला] किया है, उसने (अस्य) इस जगत् के (पदा] स्थिति और गति के कर्मों को (त्रेधा) तीन प्रकार (पांसुरे) परमाणु वाले अन्तरिक्ष में (नि दधे) स्थिर किया है ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर ने इस जगत् को परमाणुओं से रचकर उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय द्वारा पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक, अर्थात् नीचे, मध्यम और ऊंचे स्थानों में धारण किया है ॥४॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है--१ । २२ । १७, यजु०-५ । १५, और साम० पू० ३ । ३ । ९ ।, और उ० ८ । २ । ८ । भगवान् यास्क ने निरु० १२ । १८, १९ में भी इस मन्त्र की व्याख्या की है ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
इतो धर्माणि धारयन् ॥५॥

भाषार्थः—(गोपाः) सर्वरक्षक (अदाभ्यः) न दबने योग्य (विष्णुः) विष्णु अन्तर्यामी भगवान् ने (त्रीणि) तीनों (पदा) जानने योग्य वा पाने योग्य पदार्थों [कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत् अथवा भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक] को (वि चक्रमे) समर्थ [शरीरधारी] किया है । (इतः) इसी से वह (धर्माणि) धर्मों वा धारण करनेवाले [पृथिवी आदि] को (धारयन्) धारण करता हुआ है ॥५॥

भावार्थः—जो परमेश्वर नानाविध जगत् को रचकर धारण कर रहा है, उसी की उपासना सब मनुष्य नित्य किया करें ॥५॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है--१ । २२ । १८, यजु०- ३४ । ४३, और साम० उ० ८ । २ । ५ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥६॥

भाषार्थः—(विष्णोः) सर्वव्यापक विष्णु के (कर्माणि) कर्मों [जगत् का बनाना, पालन, प्रलय आदि] को (पश्यत) देखो, (यतः) जिससे उसने (व्रतानि) व्रतों [सब के कर्त्तव्य कर्मों] को (पस्पशे) बांधा है । (युज्यः) वह योग्य [अथवा सब से संयोग रखनेवाले दिशा, काल, आकाश आदि में रहने वाला] परमेश्वर (इन्द्रस्य) जीव का (सखा) सखा है ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने संसार रचकर सब को नियम में बांधा है, वही सब में रमकर सब का हितकारी है ॥६॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । २२ । १८, यजु—६ । ४, १३ । ३३, और साम० उ०—८ । २ । ५ ॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥७॥

भाषार्थः—(सूरयः) बुद्धिमान् पण्डित लोग (विष्णोः) सर्वव्यापक विष्णु के (तत्) उस (परमम्) अति उत्तम (पदम्) पाने योग्य स्वरूप को (सदा) सदा (पश्यन्ति) देखते हैं (इव) । जैसे (दिवि) प्रकाश में (आततम्) फैला हुआ (चक्षुः) नेत्र [दृश्य पदार्थों को देखता है] ॥७॥

भावार्थः—जैसे प्राणी सूर्य आदि के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से पदार्थों को देखते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से अपने आत्मा में जगदीश्वर के आनन्दस्वरूप मोक्ष पद को साक्षात् करके आनन्द पाते हैं ॥७॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१ । २२ । २०, यजु०—६ । ५, साम० उ०—८ । २ । ५ ॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥८॥

भाषार्थः—(विष्णो) हे सर्वव्यापक विष्णु ! (दिवः) सूर्य लोक से (उत) और (पृथिव्याः) पृथिवी लोक से, (वा) अथवा, (विष्णो) हे विष्णु ! (महः) बड़े (उरोः) चौड़े (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष लोक से (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) धन समूहों से (हस्तौ) दोनों हाथों को (पृणस्व) भर, (उत) और (दक्षिणात्) दाहिने (उत) और (सव्यात्) बायें हाथ से (आप्रयच्छ) अच्छे प्रकार से दान कर ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर रचित सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि लोक लोकान्तर और सब पदार्थों से विज्ञानपूर्वक उपकार लेकर धन आदि की प्राप्ति से आनन्द भोगें ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजु० में है—५ । १९ ॥

सूक्तम् ॥२७॥

१ ॥ इडा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याप्राप्त्युपदेशः—विद्या प्राप्ति के लिये उपदेश ।।

इडैवास्माँ अनुवस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१॥

भाषार्थः—(इडा एव) वही प्रशंसनीय विद्या (अस्मान्) हमें (व्रतेन) उत्तम कर्म से (अनु) अनुग्रह करके (वस्ताम्) ढके [शोभायमान करे], (यस्याः) जिसके (पदे) अधिकार में (देवयन्तः) उत्तमगुण चाहने वाले पुरुष (पुनते) शुद्ध होते हैं। [और जो] (घृतपदी) प्रकाश का अधिकार रखने वाली, (शक्वरी) समर्थ, (सोमपृष्ठा) ऐश्वर्य सींचने वाली, (वैश्वदेवी) सब उत्तम पदार्थों से सम्बन्ध वाली होकर (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार में (उप अस्थित) उपस्थित हुई है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, शिल्पविद्या, वाणिज्यविद्या आदि प्राप्त करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

सूक्तम् ॥२८॥

१ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

यज्ञकर्मोपदेशः यज्ञ करने का उपदेश ॥

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—(वेदः) वेद [ईश्वरीय ज्ञान] (स्वस्तिः) मङ्गलकारी हो, (द्रुघणः) मुदगर [मोंगरी] (स्वस्तिः) मङ्गलकारी हो, (वेदिः) वेदी [यज्ञ भूमि, हवनकुण्ड आदि], (परशुः) फरसा [वा गड़ासी] और (परशुः) कुल्हाड़ी (नः) हमें (स्वस्ति) मङ्गलकारी हो। (हविष्कृतः) देने लेने योग्य व्यवहार करने वाले, (यज्ञियाः) पूजनीय, (यज्ञकामाः) मिलाप चाहने वाले (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय कर्म को] (जुषन्ताम्) स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वेदज्ञान द्वारा सब उचित सामग्री लेकर विद्वानों के सत्संग से अग्नि में हवन तथा शिल्पसम्बन्धी संयोग वियोग आदि क्रिया करके आनन्दित रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥२९॥

१—२ अग्नाविष्णू देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विद्युत्सूर्यगुणोपदेशः—बिजुली और सूर्य के गुणों का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥१॥

भाषार्थः—(**अग्नाविष्णू**) हे बिजुली और सूर्य ! (**वाम्**) तुम दोनों का (**तत्**) वह (**महि**) बड़ा (**महित्वम्**) महत्त्व है, (**गुह्यस्य**) रक्षणीय, वा गुप्त (**घृतस्य**) सार रस के (**नाम**) झुकाव की (**पाथः**) तुम दोनों रक्षा करते हो। (**दमेदमे**) घर घर में [प्रत्येक शरीर वा लोक में] (**सप्त**) सात (**रत्ना**) रत्नों [धातुओं अर्थात् रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य] को (**दधानौ**) धारण करने वाले हो, (**वाम्**) तुम दोनों की (**जिह्वा**) जय शक्ति (**घृतम्**) सार रस को (**प्रति**) प्रत्यक्ष रूप से (**आ**) भले प्रकार (**चरण्यात्**) बनावे ॥१॥

भावार्थः—जाठर अग्नि वा बिजुली अन्न को पकाकर उसके सार रस से सात धातु, रस, रुधिर आदि बनाकर शरीर को पुष्ट करता है। और सूर्य पार्थिव जल को खींच कर मेघ बनाकर वृष्टि करके संसार का उपकार करता है ॥१॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥२॥

भाषार्थः—(**अग्नाविष्णू**) हे बिजुली और सूर्य (**वाम्**) तुम दोनों का (**महि**) बड़ा (**प्रियम्**) प्रीति करने वाला (**धाम**) धर्म वा नियम है, तुम दोनों (**घृतस्य**) सार रस के (**गुह्या**) सूक्ष्म तत्त्वों को (**जुषाणौ**) सेवन करते हुए (**वीथः**) प्राप्त होते हो। (**दमेदमे**) घर घर में (**सुष्टुत्या**) बड़ी स्तुति के साथ (**वावृधानौ**) वृद्धि करते हुए [रहते हो,] (**वाम्**) तुम दोनों की (**जिह्वा**) जयशक्ति (**घृतम्**) सार रस को (**प्रति**) प्रत्यक्ष रूप से (**उत्**) उत्तमता के साथ (**चरण्यात्**) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—बिजुली वा शारीरिक अग्नि और सूर्य के नियम बड़े अद्भुत हैं, बिजुली अन्न के रस से शरीर को पुष्टि करती और सूर्य मेघ की जलवृष्टि से संसार को बढ़ाता है ॥२॥

सूक्तम् ॥३०॥

१ ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शुभकर्मकरणोपदेशः—शुभ कर्म करने का उपदेश ॥

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी ने (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत [किया है], (अयम्) इस (मित्रः) मित्र [माता पिता आदि] ने (स्वाक्तम्) स्वागत (अकः) किया है। (ब्रह्मणः) वेद विद्या का (पतिः) रक्षक [आचार्य] (मे) मेरा (स्वाक्तम्) स्वागत, और (सविता) प्रजाप्रेरक शूर पुरुष (स्वाक्तम्) स्वागत (करत्) करे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सदा ऐसे शुभ कर्म करे जिससे संसार के सब पदार्थ और विद्वान् लोग उसके उपकारी होवें ॥१॥

सूक्तम् ॥३१॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजकर्त्तव्योपदेशः—राजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥१॥

भाषार्थः—(मघवन्) हे बड़े धनी ! (शूर) हे शूर ! (इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले राजन् ! (नः) हमें (अद्य) आज (बहुलाभिः) अनेक (यावच्छ्रेष्ठाभिः) यथासम्भव श्रेष्ठ (ऊतिभिः) रक्षाक्रियाओं से (जिन्व) प्रसन्न कर। (यः) जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) वैर करता है, (सः) वह (अधरः) नीचा हो कर (पदीष्ट) चला जावे, (उ) और (यम्) जिससे (द्विष्मः) हम वैर करते हैं, (तम्) उसको (उ) भी (प्राणः) उसका प्राण (जहातु) छोड़ देवे ॥१॥

भावार्थः—राजा अपने शूर वीरों सहित यथाशक्ति सब प्रकार के उपायों से शिष्टों का पालन और दुष्टों का निवारण करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—३ । ५३ । २१ ॥

सूक्तम् ॥३२॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राजप्रजाकर्मोपदेशः—राजा और प्रजा के कर्म का उपदेश ॥

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

भाषार्थः—(नमः) वज्र को (बिभ्रतः) धारण करते हुए [पुरुषार्थ करते हुए] हम लोग (प्रियम्) प्रीति करने वाले, (पनिप्नतम्) अत्यन्त व्यवहारकुशल,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(युवानम्) पदार्थों के संयोग वियोग करने वाले वा बलवान्, (आहुतिवृधम्) यथावत् देने लेने योग्य क्रिया के बढ़ाने वाले राजा को (उप अगन्म) प्राप्त हुए हैं वह (मे) मेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थः- जिस प्रकार नीति कुशल, प्रतापी राजा अनेक विद्याओं के दान से प्रजा की रक्षा करे, उसी प्रकार प्रजा भी उसके उपकारों को सन्मान पूर्वक ग्रहण करे ॥१॥

सूक्तम् ॥३३॥

१ ॥ विश्वे देवादेवताः ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥

सर्वसम्पत्तिवर्धनोपदेशः—सब सम्पत्तियों के बढ़ाने का उपदेश ॥

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः । सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

भाषार्थः -(मरुतः) वायु के झोके (मा) मुझे (सम्) भले प्रकार (सिञ्चन्तु) सींचे, (पूषा) पृथिवी (सम्) भले प्रकार और (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक सूर्य [वा मेघ] (सम्) भले प्रकार [सींचे] । (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि [शारीरिक अग्नि वा बल] (मा) मुझको (प्रजया) सन्तान भृत्य आदि (च) और (धनेन) धन से (सम्) भले प्रकार (सिञ्चतु) सींचे (च) और (मा) मेरी (आयुः) आयु को (दीर्घम्) दीर्घ (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थः- मनुष्य वायु आदि सब पदार्थों से उपकार लेकर शारीरिक आत्मिक बल, सन्तान भृत्य आदि बढ़ा कर यश प्राप्त करें ॥१॥

सूक्तम् ॥३४॥

१ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजराजपुरुषकर्तव्योपदेशः—राजा और राजपुरुष के कर्तव्य का उपदेश ॥

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व । अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागस्ते वयमदितये स्याम ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे बलवान् राजन् वा सेनापति ! (मे) मेरे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) वैरियों को (प्रणुद) निकाल दे, (जातवेदः) हे बड़े बुद्धिवाले राजन् ! (अजातान्) अप्रसिद्ध [शत्रुओं] को (प्रति) उलटा (नुदस्व) हटादे । (ये) जो (पृतन्यवः) संग्राम चाहने वाले [विरोधी] हैं, (उन्हें) (अधस्पदम्) अपने पाँव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तले (कृणुष्व) करले (ते) वे (वयम्) हम लोग (अदितये) अदीन भूमि के लिये (अनागसः) निर्विघ्न होकर (स्याम) रहें ॥१॥

भावार्थः—राजा आदि सब लोग गुप्त दूतों द्वारा प्रकट और गुप्त दुष्टों को वश में करें, जिससे धर्मात्मा लोग निर्विघ्नता से संसार का उपकार करते रहें ॥१॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है—१५ । १ ॥

सूक्तम् ॥३५॥

१–३ ॥ जातवेदा देवता ॥ १, ३ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप् ॥

राजप्रजाकर्त्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे बड़े धनवाले राजन् ! (सहसा) अपने बल से (अन्यान्) दूसरे लोगों [विरोधियों] को (प्र सहस्व) हरा दे और (अजातान्) अप्रकट (सपत्नान्) वैरियों को (प्रति) उलटा (नुदस्व) हटा दे । (इदम्) इस (राष्ट्रम्) राज्य को (सौभगाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये (पिपृहि) पूर्ण कर, (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहारकुशल लोग (एनम् अनु) इस आप के साथ साथ (मदन्तु) प्रसन्न हों ॥१॥

भावार्थः—राजा अपनी सुनीति से बाहरी और भीतरी वैरियों का नाश करके प्रजापालन करे । और प्रजागण उस राजा के साथ साथ ऐश्वर्य, बढ़ा कर सदा प्रसन्न रहें ॥१॥

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥२॥

भाषार्थः—[हे राजन् !] (ते) तेरी (इमाः) यह (याः) जो (शतम्) सौ [बहुत] (हिराः) सूक्ष्म नाड़ियां (उत) और (सहस्रम्) सहस्र [अनेक] (धमनीः) स्थूल नाड़ियां हैं । (ते) तेरी (तासाम्) उन (सर्वासाम्) सब [नाड़ियों] के (बिलम्) छिद्र को (अहम्) मैं [प्रजागण] ने (अश्मना) व्यापक [अथवा पाषाण समान दृढ़] उपाय से (अपि) निश्चय करके (अधाम्) पुष्ट किया है ॥२॥

भावार्थः—प्रजागण राजा की शारीरिक और आत्मिक शक्ति बढ़ा कर उसे सदा प्रसन्न रक्खें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परं योने रवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं १ त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥३॥

भाषार्थः—[हे राजन्!] (ते) तेरे (योनेः) घर के (परम्) शत्रु को (अवरम्) नीच (कृणोमि) बनाता हूं, (त्वा) तुझको (मा) न तो (प्रजा) प्रजा भृत्य आदि (उत) और (मा) न (सूनुः) पुत्र (अभि भूत्) तिरस्कार करे। (त्वा) तुझको (अस्वम्) बुद्धिमान् और (अप्रजसम) अताड़नीय पुरुष (कृणोमि) मैं करता हूं और (ते) तेरे (अपिधानम्) ओढ़ने [कवच] को (अश्मानम्) पत्थर समान दृढ़ (कृणोमि) मैं बनाता हूं ॥३॥

भावार्थः—बुद्धिमान्, बलवान् दृढ़स्वभाव राजा ऐसी सुनीति का प्रचार करे कि उससे उसकी प्रजा और सन्तान में फूट न पड़े, किन्तु सब प्रीति पूर्वक रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥३६॥

१ ॥ मित्रे देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परस्परमित्रत्वोपदेशः—परस्पर मित्रता का उपदेश ॥

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मनः इन्नौ सहासति ॥१॥

भाषार्थः—(नौ) हम दोनों की (अक्ष्यौ) दोनों आंखें (मधुसंकाशे) ज्ञान की प्रकाश करने वाली और (नौ) हम दोनों का (अनीकम्) मुख (समञ्जनम्) यथावत् विकाश वाला [होवे]। (माम्) मुझको (हृदि अन्तः) अपने हृदय के भीतर (कृणुष्व) कर ले, (नौ) हम दोनों का (मनः) मन (इत्) भी (सह) एकमेल (असति) होवे ॥१॥

भावार्थः—मनष्य आपस में प्रीतियुक्त रह कर सदा धर्मयुक्त व्यवहार करके प्रसन्न रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥३७॥

१ ॥ दम्पती देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विवाहप्रतिज्ञोपदेशः—विवाह में प्रतिज्ञा का उपदेश ॥

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे स्वामिन् !] (मनुजातेन) मननशील मनुष्यों में प्रसिद्ध (मम वाससा) अपने वस्त्र से (त्वा) तुझे (अभि दधामि) मैं बांधती हूं। (यथा) जिससे तू (केवलः) केवल (मम) मेरा (असः) होवे, (चन) और (अन्यासाम्) अन्य स्त्रियों का (न कीर्तयाः) तू न ध्यान करे ॥१॥

भावार्थः—विवाह में विद्वानों के बीच वस्त्र का गठिबन्धन करके वधू और वर दृढ़प्रतिज्ञा करें कि पत्नी पतिव्रता और पति पत्नीव्रत होकर गृहस्थ आश्रम को प्रीति पूर्वक निवाहें ॥१॥

सूक्तम् ॥३८॥

१—५ ॥ दम्पती देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

विवाहप्रतिज्ञोपदेशः—विवाह में प्रतिज्ञा का उपदेश ॥

इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम् ।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे स्वामिन् ! मैं वधू] (मांपश्यम्) लक्ष्मी के देखने वाले [खोजने वाले], (अभिरोरुदम्) परस्पर संगति देने वाले, (परायतः) दूर जाने वाले के (निवर्तनम्) लौटाने वाले, (आयतः) आने वाले के (प्रतिनन्दनम्) स्वागत करने वाले (इदम्) इस [प्रतिज्ञा रूप] (भेषजम्) भयनिवारक औषध को (खनामि) खोदती हूं [प्रकट करती हूं] ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार वैद्य उत्तम ओषधि को खोद कर उपकार लेता है। इसी प्रकार वधू वर प्रतिज्ञा करके परस्पर सुख बढ़ावें ॥१॥

येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२॥

भाषार्थः—(येन) जिस [उपाय] से (आसुरी) बुद्धिमानों वा बलवानों के हित करने वाली बुद्धि ने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य को (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (परि) सब ओर से (निचक्रे) नियत किया था। (तेन) उसी [उपाय] से (अहम्) मैं (त्वम्) तुझको (नि कुर्वे) नियत करती हूँ, (यथा) जिस से मैं (ते) तेरी (सुप्रिया) बड़ी प्रीति करने वाली (असानि) रहूँ ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार मनुष्य पूर्वकाल में बुद्धि और बल द्वारा उत्तम गुण प्राप्त करते रहे हैं, उसी प्रकार दम्पती प्रयत्न करके परस्पर प्रीति के साथ उत्तम गुण प्राप्त करें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३॥

भाषार्थः—[हे वधू !] (प्रतीची) निश्चित ज्ञानवाली तू (सोमम्) चन्द्रमा को, (उत) और (प्रतीची) प्रतिज्ञापूर्वक मार्गवाली तू (सूर्यम्) सूर्य को, और (प्रतीची) प्रतिष्ठा पूर्वक उपायवाली तू (विश्वान्) सब (देवान्) उत्तम गुणों को (असि असंसि) प्राप्त होती है, (ताम् त्वा) उस तुझको (अच्छावदामसि) हम स्वागत करके बुलाते हैं ॥३॥

भावार्थः— सब स्त्री पुरुष चन्द्रसमान शांत स्वभाव, सूर्य समान तेजस्विनी और सर्वगुणवती वधू का यथावत् आदर करें ॥३॥

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयांश्चन ॥४॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं (न इत्) अभी (वदामि) बोल रही हूं, (त्वम् त्वम्) तू तू (अह) भी (सभायाम्) सभा में (वद) बोल । (त्वम्) तू (केवलः) केवल (मम इत्) मेरा ही (असः) होवे, (चन) और (अन्यासाम्) दूसरी स्त्रियों का (न कीर्तयाः) तू न ध्यान करे ॥४॥

भावार्थः— वधू और वर पंचों के सन्मुख दृढ़प्रतिज्ञा करके सदाचारी रह कर धर्म पर चलते रहें ॥४॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध भेद से आचुका है—अ० ७ । ३७ । १ ॥

यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५॥

भाषार्थः—[हे पति !] तू (यदि वा) चाहे (तिरोजनम्) मनुष्यों से अदृष्ट स्थान में (असि) है, (यदि वा) चाहे (नद्यः) नदियाँ (तिरः) बीच में हैं । (इयम्) यह [प्रतिज्ञारूप] (ओषधिः) ओषधि (मह्यम्) मेरे लिये (ह) ही (त्वाम्) तुझको (बध्वा इव) बांध कर जैसे (न्यानयत्) ले आवे ॥५॥

भावार्थः— मनुष्य वाणिज्य, युद्ध आदि के लिये दूर परदेशों में जाकर अपने देश को लौटा करें ॥५॥

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥३६॥

१ ॥ सुपर्णः सूर्यो वा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

विद्वद्गुणोपदेशः—विद्वानों के गुणों का उपदेश ॥

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥१॥

भाषार्थः—(दिव्यम्) दिव्य गुण वाले, (पयसम्) गतिवाले, (बृहन्तम्) विशाल, (अपाम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) गर्भसमान बीच में रहने वाले, (ओषधीनाम्) अन्न आदि ओषधियों के (वृषभम्) बरसाने वाले, (अभीपतः) सब ओर जल वाले मेघ से (वृष्ट्या) वृष्टि द्वारा (तपयन्तम्) तृप्त करने वाले, (रयिष्ठाम्) धन के बीच ठहरने वाले, (सुपर्णम्) सुन्दर किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् पुरुष को (नः) हमारे (गोष्ठे) गोठ वा वार्तालाप स्थान में (आ) लाकर (स्थापयाति) [यह पुरुष] स्थान देवे ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य सब लोकों के बीच ठहर कर भूगोल आदि लोकों को प्रकाश, वृष्टि आदि से सुखी करता है, वैसे ही जो विद्वान् ज्ञान और उपदेश से सब जनों को आनन्दित करे, उसका सब लोग आदर करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है · १ । १६४ । ५२ ॥

सूक्तम् ॥४०॥

१—२ ॥ सरस्वान् देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ईश्वरोपासनोपदेशः— ईश्वर की उपासना का उपदेश ॥

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१॥

भाषार्थः—(यस्य) जिसके (व्रतम्) सुन्दर नियम पर (सर्वे) सब (पशवः) पशु अर्थात् प्राणी (यन्ति) चलते हैं, (यस्य) जिसके (व्रते) नियम में (आपः) जल (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित रहते हैं । (यस्य) जिसके (व्रते) नियम में (पुष्टपतिः) पोषण का स्वामी, पूषा सूर्य (निविष्टः) प्रवेश किये हुए है, (तम्) उस (सरस्वन्तम्) बड़े विज्ञान वाले परमेश्वर को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जैसे परमेश्वर के नियम से यह सब लोक लोकान्तर परस्पर आकर्षण में रह कर एक दूसरे का सहाय करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य परमेश्वर की महिमा विचार कर परस्पर उपकार करें ॥१॥

आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२॥

भाषार्थः—(प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्षव्यापक, (दाशुषे) आत्मदान करने वाले [भक्त] को (दाश्वंसम्) सुख देने वाले (पुष्टपतिम्) पोषण के स्वामी, (रयिष्ठाम्) धन में स्थिति वाले, (रायः) धन के (पोषम्) बढ़ाने वाले, (श्रवस्युम्) सुनने वाले, (रयीणाम्) अनेक धनों के (सदनम्) भण्डार (सरस्वन्तम्) बड़े ज्ञानवान् परमेश्वर को (वसानाः) स्वीकार करते हुए हम लोग (इह) यहां पर (आ) सब प्रकार (हुवेम) बुलावें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक परमेश्वर के अनन्त भण्डार से अनेक प्रकार के धन प्राप्त करके सुखी रहें ॥२॥

सूक्तम् ॥४१॥

१—२ ॥ श्येनो देवता ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥

ऐश्वर्यप्राप्त्युपदेशः—ऐश्वर्य पाने का उपदेश ॥

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥१॥

भाषार्थः—(नृचक्षाः) मनुष्यों को देखने वाले, (अवसानदर्शः) अन्त के देखने वाले, (श्येनः) ज्ञानवान् परमात्मा ने (धन्वानि) निर्जल देशों को (अति) अत्यन्त करके और (अपः) जलों को (अति) अत्यन्त करके (ततर्द) पीड़ित [वशीभूत] किया है। (शिवः) मङ्गलकारी परमेश्वर (अवरा) अत्यन्त श्रेष्ठ (विश्वानि) सब (रजांसि) लोकों को (तरन्) तराता हुआ (सख्या) मित्ररूप (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के साथ (आ जगम्यात्) आवे ॥१॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर के आधीन वृष्टि, अनावृष्टि, मनुष्यों के कर्मों के फल और श्रेष्ठों को मुक्ति दान आदि हैं। उस परमात्मा की भक्ति करके मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥२॥

भाषार्थः—(नृचक्षाः) मनुष्यों को देखने वाला, (दिव्यः) दिव्य स्वरूप, (सुपर्णः) बड़ी पालन शक्ति वाला, (सहस्रपात्) सहस्रों, असीम पाद अर्थात् गति शक्ति वाला, [मन से अधिक वेग वाला—यजु० ४०। ४] (शतयोनिः) सैकड़ों [अगणित] लोकों का घर, (वयोधाः) अन्नदाता (श्येनः) ज्ञानवान् परमात्मा है। (सः) वह (नः) हमें (वसु) वह धन (नि) निरन्तर (यच्छात्) देवे, (यत्) जो (पराभृतम्) पराक्रम से धारण किया गया (अस्माकम्) हमारे (पितृषु) पितरों [बड़े बूढ़ों] के बीच (स्वधावत्) आत्मधारण शक्ति वाला (अस्तु) होवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के अनन्त सामर्थ्यों को विचारकर अनेक उद्योगों के साथ विद्वानों का पालन करके सदा आनन्द भोगें ॥२॥

सूक्तम् ॥४२॥

१—२ ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजवैद्ययोर्गुणोपदेशः—राजा और वैद्य के गुणों का उपदेश ॥

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥१॥

भाषार्थः—(सोमारुद्रा) हे सूर्य और मेघ [के समान सुखदायक राजा और वैद्य !] तुम दोनों (विषूचीम्) विसूचिका, [हुलकी आदि] को (विवृहतम्) छिन्न भिन्न कर दो, (या अमीवा) जो रोग (नः गयम्) हमारे घर वा सन्तान में (आविवेश) प्रवेश कर गया है। (निर्ऋतिम्) दुःखदायिनी कुनीति को (पराचैः) औंधे मुंह करके (दूरम्) दूर (बाधेथाम्) हटाओ, और (कृतम्) उसके किये हुए (एनः) दुःख को (चित्) भी (अस्मत्) हम से (प्र मुमुक्तम्) छुड़ा दो ॥१॥

भावार्थः जो राजा और वैद्य कारणों को समझ कर कुनीति और रोग का प्रतिकार करते हैं, वहां प्रजागण दुःख से छूटकर सुखी रहते हैं ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६। ७४। २, ३। इनका भाष्य महर्षि दयानन्द के आशय पर किया गया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमारुद्रा युवमे तान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥१॥

भाषार्थः—(सोमारुद्रा) हे सूर्य और मेघ [के समान उपकारी राजा और वैद्य !] (युवम्) तुम दोनों (एतानि विश्वा भेषजानि) इन सब औषधों को (अस्मत्) हमारे (तनूषु) शरीरों में (धत्तम) रक्खो। (यत्) जो (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बद्धम्) लगा हुआ और (कृतम्) किया हुआ (एनः) दोष (असत्) होवे, [उसे] (अस्मत्) हमसे (अव स्यतम्) नष्ट करो और (मुञ्चतम्) छुड़ाओ ॥१॥

भावार्थः—राजा और वैद्य वैद्यक विद्या के प्रचार से प्रजा को कुपथ्य आदि दोषों से बचाकर नीरोग और पुरुषार्थी बनाकर सुखी रक्खें ॥१॥

सूक्तम् ॥४३॥

१ ॥ वाचो देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

कल्याण्या वाचः प्रचारोपदेशः—कल्याणी वाणी के प्रचार का उपदेश ॥

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् । १॥

भाषार्थः—[हे पुरुष !] (ते) तेरी (एकाः) कोई [वाचायें] (शिवाः) कल्याणी हैं और (ते) तेरी (एकाः) कोई (अशिवाः) अकल्याणी हैं [और कोई माध्यमिका हैं], (सर्वाः) इन सब को (समनस्यमानः) अच्छे प्रकार मनन करता हुआ तू (बिभर्षि) धारण करता है। (तिस्रः) यह तीनों (वाचः) वाचायें (अस्मिन् अन्तः) इस [आत्मा] के भीतर (निहिताः) रक्खी रहती हैं, (तासाम्) उनमें से (एकाः) एक [कल्याणी वाणी] (घोषम् अनु) उच्चारण के साथ साथ (वि) विशेष करके (पपात) ऐश्वर्यवती हुई है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने हृदय में हित, अहित और उदासीनता का विचार करके एक हित ही बोलते हैं, वही ऐश्वर्यवान् पुरुष संसार को ऐश्वर्यवान् करते हैं ॥१॥

सूक्तम् ॥४४॥

१ ॥ इन्द्राविष्णू देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सभासेनेशकर्मोपदेशः—सभा और सेना के स्वामी के कर्म का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१॥

भाषार्थः—(विष्णो) हे बिजुली [के समान व्याप्त होने वाले सभापति !] (च) और (इन्द्रः) हे वायु [के समान ऐश्वर्यवान् सेनापति !] (उभा) तुम दोनों ने [शत्रुओं को] (जिग्यथुः) जीता है, और तुम दोनों (न) कभी नहीं (परा जयेथे) हारते हो, (एनयोः) इन [तुम] दोनों में से (कतरः चन) कोई भी (न) नहीं (परा जिग्ये) हारा है। (यत्) जब (अपस्पृधेथाम्) तुम दोनों ललकारे हो, (तत्) तब (सहस्रम्) असंख्य [शत्रु सेनादल] को (त्रेधा) तीन विधि पर [ऊंचे, नीचे और मध्य स्थान में] (वि) विविध प्रकार से (ऐरयेथाम्) तुम दोनों ने निकाल दिया है ॥१॥

भावार्थः—जहां पर सभापति और सेनापति पराक्रमी, प्रतापी और नीतिमान् होते हैं, वहां शत्रु लोग नहीं ठहरते ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ६६ । ८ ॥
इसका भाष्य यहां महर्षि दयानन्द के आशय पर किया गया है ॥

सूक्तम् ॥४५॥

१—२ ॥ भेषजं देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

ईर्ष्यादोषनिवारणोपदेशः—ईर्ष्या दोष के निवारण का उपदेश ॥

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे भयनिवारक ज्ञान !] (सिन्धुतः) समुद्र [के समान गम्भीर स्वभाव वाले (विश्वजनीनात्) सब जनों के हितकारी (जनात्) उनके पास से, (दूरात्) दूर देश से (परि) सब प्रकार (आभृतम्) लाये हुए और (उद्भृतम्) उत्तमता से पुष्ट किये हुए (त्वा) तुझको (ईर्ष्यायाः) दाह का (नाम) प्रसिद्ध (भेषजम्) भय-निवारक औषध (मन्ये) मैं मानता हूं ॥१॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य बहुमूल्य उत्तम औषध को दूर देश से लाते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग सर्व हितकारी विद्वानों से ज्ञान प्राप्त करके ईर्ष्या छोड़ कर दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझें ॥१॥

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।
एतामेतस्येर्ष्यामुदनाग्निमिव शमय ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अस्य) इस (दहतः) जलती हुई (अग्नेः इव) अग्नि के समान (पृथक्) अथवा (दहतः) जलती हुई (दावस्य) वन अग्नि के [समान] (एतस्य) इस पुरुष की (एताम्) इस (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (शमय) शान्त कर दे, (इव) जैसे (उद्ना) जल से (अग्निम्) आग को ॥२॥

भावार्थः - ईर्ष्यालु अर्थात् दूसरे के अभ्युदय को न सहने वाला मनुष्य आग के समान भीतर ही भीतर जल कर राख के समान नाश हो जाता है, इससे वह ईर्ष्या दोष को ऐसा शान्त रक्खे जैसे अग्नि को जल से ॥२॥

सूक्तम् ॥४६॥

१—३ ॥ सिनीवाली देवता ॥ १, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥

स्त्रीणां गुणोपदेशः—स्त्रियों के गुणों का उपदेश ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१॥

भाषार्थः—(पृथुष्टुके) हे बहुत स्तुतिवाली ! (सिनीवालि) अन्नवाली [वा प्रेमयुक्त बल करने वाली] गृहपत्नी ! (या) जो तू (देवानाम्) दिव्यगुणों की (स्वसा) अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वा ग्रहण करनेवाली (असि) है । सो तू (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य, (आहुतम्) सब प्रकार स्वीकार किये व्यवहार का (जुषस्व) सेवन कर और (देवि) हे कामनायोग्य देवी ! (नः) हमारे लिये (प्रजाम्) सन्तान (दिदिड्ढि) दे ॥१॥

भावार्थः—जिस घर में अन्नवती, सुशिक्षित, व्यवहार कुशल स्त्रियां होती हैं, वहीं उत्तम सन्तान उत्पन्न होते हैं ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—२ । ३२ । ६ । और यजुर्वेद—३४ । १० । तथा—निरु० ११ । ३२ । में व्याख्यात है ॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥२॥

भाषार्थः—(या) जो (सुबाहुः) शुभकर्मों में भुजा रखने वाली, (स्वङ्गुरिः) सुन्दर व्यवहारों में अङ्गुरी रखने वाली, (सुषूमा) भली भांति आगे चलने वाली, और (बहुसूवरी) बहुत प्रकार से वीरों को उत्पन्न करने वाली, [माता है] ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तस्यै) उस (विश्पत्न्यै) प्रजाओं की पालने वाली, (सिनीवाल्यै) बहुत अन्न वाली [गृहपत्नी] को (हविः) देने योग्य पदार्थ का (जुहोतन) दान करो ॥२॥

भावार्थः—जो स्त्रियां गृहकार्य में चतुर वीर सन्तान उत्पन्न करनेहारी हैं उनका सत्कार सब मनुष्यों को सदा करना चाहिये ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—२ । ३२ । ७ ॥

या विश्पत्नीन्द्रमसिं प्रतीचीं सहस्रस्तुकाभियन्तीं देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥३॥

भाषार्थः—(या) जो (विश्पत्नी) सन्तानों की पालने वाली, (प्रतीची) निश्चित ज्ञानवाली, (सहस्रस्तुका) सहस्रों स्तुतिवाली, (अभियन्ती) चारों ओर चलती हुई (देवी) देवी तू (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (असि=अससि) ग्रहण करती है। (विष्णोः पत्नि) हे कामों में व्यापक वीर पुरुष की पत्नी ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (हवींषि) देने योग्य पदार्थ (राता) दिये गए हैं, (देवि) हे देवी ! (पतिम्) अपने पति को (राधसे) सम्पत्ति के लिये (चोदयस्व) आगे बढ़ा ॥३॥

भावार्थः—स्त्रियां गृहकार्य में चतुर रह कर अपने पतियों द्वारा धन संचय कराकर संतान पालन आदि कार्य करती रहें ॥३॥

सूक्तम् ॥४७॥

१—२ ॥ कुहूर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

स्त्रीणां गुणोपदेशः—स्त्रियों के गुण का उपदेश ॥

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(सुकृतम्) सुन्दर काम करने वाली, (विद्मनापसम्) कर्तव्यों को जानने वाली, (देवीम्) दिव्यगुणवाली (कुहूम्) कुहू, अर्थात् अद्भुत स्वभाव वाली, स्त्री को (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (सुहवा) विनीत बुलावे के साथ (जोहवीमि) मैं बुलाता हूं। (सा) वह (नः) हमें (विश्ववारम्) सब उत्तम व्यवहार वाले (रयिम्) धन को (नि) नित्य (यच्छात्) देती रहे और (शतदायम्) असंख्य धनवाला, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वीरम्) वीर सन्तान (ददातु) देवे ॥१॥

भावार्थः—गुणवती, समझदार स्त्री गृहकार्य में परिमित व्यय कर धनवती होकर अपने संतानों को उत्तम वीर बनावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से—निरु० ११ । ३३ । में व्याख्यात है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नीहव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥२॥

भाषार्थः—(देवानाम्) विद्वानों के बीच (अमृतस्य) अमर [पुरुषार्थी] पुरुष की (पत्नी) पत्नी (हव्या) बुलाने योग्य वा स्वीकार करने योग्य, (कुहूः) कुहू अर्थात् विचित्र स्वभाववाली स्त्री (नः) हमारे (अस्य) इस (हविषः) ग्रहण योग्य कर्म का (जुषेत) सेवन करे। (यज्ञम्) सत्संग की (उशती) इच्छा करती हुई (चिकितुषी) विज्ञानवती वह (अद्य) आज (नः) हमें (शृणोतु) सुने और (रायः) धन की (पोषम्) वृद्धि को (दधातु) पुष्ट करे ॥२॥

भावार्थः—जिस घर में यशस्वी पुरुष की पत्नी सब घरवालों की सुधि रखने वाली और परिमित व्ययवाली होती है। वहां वह धन बढ़ाकर सब को आनन्द देती है ॥२॥

सूक्तम् ॥४८॥

१—२ ॥ राका देवता ॥ जगती छन्दः ॥

स्त्रीणां कर्तव्योपदेशः—स्त्रियों के कर्तव्यों का उपदेश ॥

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(राकाम्) राका, अर्थात् सुख देने वाली वा पूर्णमासी के समान शोभायमान पत्नी को (सुहवा) सुन्दर बुलावे से और (सुष्टुती) बड़ी स्तुति से (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूं, (सुभगा) वह सौभाग्यवती [बड़े ऐश्वर्यवाली] (नः) हमें (शृणोतु) सुने और (त्मना) अपने आत्मा से (बोधतु) समझे। और (अच्छिद्यमानया) न टूटती हुई (सूच्या) सुई से (अपः) कर्म [गृहस्थ कर्तव्य] को (सीव्यतु) सीयें, और (शतदायम्) सैकड़ों धनवाला, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वीरम्) वीर सन्तान (ददातु) देवे ॥१॥

भावार्थः—पुरुष सुखदायिनी, अनेक शुभगुणों से शोभायमान पूर्णमासी के समान पत्नी को आदर से बुलावे और वह ध्यान देकर पति के सम्मति से गृहस्थ कर्तव्य को लगातार प्रयत्न से करती हुई वीर पुरुषार्थी संतान उत्पन्न करे, जैसे अच्छी दृढ़ सुई से सींकर वस्त्र को सुन्दर बनाते हैं ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—२ । ३२ । ४, ५ । और महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि, सीमन्तोन्नयन प्रकरण में हैं । और मन्त्र एक—निरु० ११ । ३१ । में व्याख्यात है ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥२॥

भाषार्थः—(राके) हे सुखदायिनी ! वा पूर्णमासी समान शोभायमान पत्नी! (याः) जो (ते) तेरी (सुमतयः) सुमतियाँ (सुपेशसः) बहुत सुवर्ण वाली है, (याभिः) जिनसे तू (दाशुषे) धन देने वाले [मुझ पति] को (वसूनि) अनेक धन (ददासि) देती है । (सुभगे) हे सौभाग्यवती ! (ताभिः) उन [सुमतियों] से (नः) हमें (सहस्रपोषम्) सहस्र प्रकार से पुष्टि को (रराणा) देती हुई, (सुमनाः) प्रसन्न मन होकर (अद्य) आज (उपागहि) समीप आ ॥२॥

भावार्थः—विदुषी, सुलक्षणा, विचारशील, प्रसन्नचित्त पत्नी धन और सम्पत्ति की रक्षा और बढ़ती हुई पतिप्रिया होकर घर में सुख बढ़ाती रहे ॥२॥

सूक्तम् ॥४९॥

१–२ देवपत्न्यो देवताः ॥ १ जगती; २ पङ्क्तिः ॥

राजवद्राज्ञीन्यायोपदेशः—राजा के समान रानी को न्याय का उपदेश ॥

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये । याः
पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१॥

भाषार्थः—(याः) जो (उशतीः) [उपकार की] इच्छा करती हुई (देवानाम्) विद्वानों वा राजाओं की (पत्नीः) पत्नियाँ (नः) हमें (अवन्तु) तृप्त करें और (तुजये) बल वा स्थान के लिये और (वाजसातये) अन्न देने वाले संग्राम [जीतने] के लिये (नः) हमारी (प्र) अच्छे प्रकार (अवन्तु) रक्षा करें । और (अपि) भी (याः) जो (पार्थिवासः) और जो पृथिवी की रानियां (अपाम्) जलों के (व्रते) स्वभाव में [उपकारवाली] हैं, (ताः) वे सब (सुहवाः) सुन्दर बुलावे योग्य (देवीः) देवियां (नः) हमें (शर्म) घर वा सुख (यच्छन्तु) देवें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् और राजा लोगों के समान उनकी स्त्रियां भी उपकार करके प्रजा पालन करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—५। ४६। ७, ८; और निरुक्त में भी व्याख्यात हैं - १२। ४५, ४६॥

उतग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

भाषार्थः - (उत) और भी (देवपत्नीः) विद्वानों वा राजाओं की पत्नियां, [अर्थात्] (राट्) ऐश्वर्यवाली, (इन्द्राणी) बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष की पत्नी, (अग्नायी) अग्नि सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री, (अश्विनी) शीघ्रगामी पुरुष की स्त्री [प्रजा की] (ग्नाः) वाणियों को (व्यन्तु) व्याप्त हों। (आ) और (रोदसी) रुद्र, ज्ञानवान् पुरुष की स्त्री अथवा (वरुणानी) श्रेष्ठजन की पत्नी [वाणियों को] (शृणोतु) सुने और (यः) जो (जनीनाम्) स्त्रियों का [न्याय का] (ऋतुः) काल है, (देवीः) यह सब देवियां [उसकी] (व्यन्तु) चाहना करें ॥२॥

भावार्थः—स्त्रियां स्त्रियों को अपनी न्याय सभा के अधिकारी बनाकर घर और बाहिर के झगड़ों को उचित समय पर निर्णय करें, और बालकों को भी वैसी शिक्षा दें ॥२॥

सूक्तम् ॥५०॥

१-९॥ इन्द्र आत्मा वा देवता॥ १, २, ५, ८, ९ अनुष्टुप्; ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप्॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्यों के कर्तव्य का उपदेश॥

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति।
एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥१॥

भाषार्थः - (यथा) जैसे (अशनिः) बिजुली (विश्वाहा) सब दिनों (अप्रति) बे रोक होकर (वृक्षम्) पेड़ को (हन्ति) गिरा देती है। (एव) वैसे ही (अहम्) मैं (अद्य) आज (अप्रति) बे रोक होकर (अक्षैः) पाशों से (कितवान्) ज्ञान नाश करने वाले, जुआ खेलने वालों को (बध्यासम्) नाश करूं ॥१॥

भावार्थः- मनुष्यों को योग्य है कि जुआरी लुटेरे आदिकों को तुरन्त दण्ड देकर नाश करें॥१॥

तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्।
सर्वेषु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तुराणाम्) शीघ्रकारी, (अतुराणाम्) अशीघ्रकारी (अवर्जुषीणाम्) [शत्रुओं को] न रोक सकने वाली (विशाम्) प्रजाओं का (भगः) धन (विश्वतः) सब प्रकार (मम) मेरे (अन्तर्हस्तम्) हाथ में आये हुए (कृतम्) कर्म को (समैतु) यथावत् प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—बलवान् राजा सब प्रकार प्रजा के धन को अपने वश में रख कर रक्षा करे ॥२॥

ईडे अग्निं स्ववसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥३॥

भाषार्थः—(स्ववसुम्) बन्धुओं को धन देने वाले (अग्निम्) विद्वान् राजा को (नमोभिः) सत्कारों के साथ (ईडे) मैं ढूंढता हूं, (प्रसक्तः) सन्तुष्ट वह (इह) यहां पर (नः) हमारे (कृतम्) कर्म का (वि चयत्) विवेचन करे। (प्रदक्षिणम्) उसकी प्रदक्षिणा [आदर से पूज्य को दाहिनी ओर रखकर घूमना] (प्र) अच्छे प्रकार (भरे) मैं धारण करता हूं (इव) जैसे (वाजयद्भिः) शीघ्र चलने वाले (रथैः) रथों से, [जिससे] (महताम्) शूरवीरों में (स्तोमम्) स्तुति को (ऋध्याम्) मैं बढ़ाऊं ॥३॥

भावार्थः—प्रजागण विद्वानों के सत्कार करने वाले विवेकी राजा के अधीन रह कर आदरपूर्वक उसकी आज्ञा मानकर शूरवीरों में अपना यश बढ़ावें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—५ । ६० । १ ॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र राजन् ! (त्वया) तुझ (युजा) सहायक वा ध्यानी के साथ (वयम्) हम लोग (वृतम्) घेरने वाले शत्रु को (जयेम) जीत लेवें (अस्माकम्) हमारे (अंशम्) भाग को (भरे भरे) प्रत्येक संग्राम में (उत्) उत्तमता से (अव) रख। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वरीयः) विस्तीर्ण देश को (सुगम्) सुगम (कृधि) कर दे, (मघवन्) हे बड़े धनी ! (शत्रूणाम्) शत्रुओं के (वृष्ण्या) साहसों को (प्र रुज) तोड़ दे ॥४॥

भावार्थः - सब योधा लोग सेनापति की सहायता लेकर अपने धन जन आदि की रक्षा करके शत्रुओं को जीतें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । १०२ । ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।
अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥५॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (संलिखितम्) यथावत् लिखे हुए (त्वा) तुझको (अजैषम्) मैंने जीत लिया है, (उत) और (संरुधम्) रोक डालने वाले को (अजैषम्) मैंने जीत लिया है। (यथा) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविम्) बकरी को (मथत्) मथ डालता है, (एव) वैसे ही (ते) तेरे (कृतम्) कर्म को (मथ्नामि) मैं मथ डालूं ॥५॥

भावार्थः—जिस दुष्ट जन का नाम राजकीय पुस्तकों में लिखा हो, और बड़ा विघ्नकारी हो उसको यथावत् दण्ड मिलना चाहिये ॥५॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥६॥

भाषार्थः—(उत) और (अतिदीवा) बड़ा व्यवहारकुशल पुरुष (प्रहाम्) उपद्रवी शत्रु को (जयति) जीत लेता है, (श्वघ्नी) धन नाश करने वाला जुआरी (काले) [हार के] समय पर (इव) ही (कृतम्) अपने काम का (वि चिनोति) विवेक करता है। (यः) जो (देवकामः) शुभगुणों का चाहने वाला (धनम्) धन को [शुभ काम में] (न) नहीं (रुणद्धि) रोकता है, (रायः) अनेक धन (तम्) उसको (इत्) ही (स्वधाभिः) आत्मधारण शक्तियों के साथ (सम् सृजति) मिलते हैं ॥६॥

भावार्थः—प्रतापी पुरुष दुष्ट को जीतकर उसे उसके दोष का निश्चय करा देता है, शुभगुण चाहने वाला उदारचित्त मनुष्य अनेक धन और आत्मबल पाता है ॥६॥

मन्त्र ६, ७ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ४२ । ९, १०

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥७॥

भाषार्थः—(पुरुहूत) हे बहुत बुलाये गए राजन् ! (विश्वे) हम सब लोग (गोभिः) विद्याओं से (दुरेवाम्) दुर्गतिवाली (अमतिम्) कुमति को (तरेम) हटावें, (वा) जैसे (यवेन) यव आदि अन्न से (क्षुधम्) भूख को। (वयम्) हम लोग (राजसु) राजाओं के बीच (प्रथमाः) पहिले और (अरिष्टासः) अजेय होकर (वृजनीभिः) अनेक वर्जन शक्तियों से (धनानि) अनेक धनों को (जयेम) जीतें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - मनुष्य विद्याओं द्वारा कुमति हटाकर प्रशंसनीय गुण प्राप्त करके अनेक धन प्राप्त करें ॥७॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥८॥

भाषार्थः—(कृतम्) कर्म (मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में और (जयः) जीत (मे) मेरे (सव्ये) बायें हाथ में (आहितः) स्थित है। मैं (गोजित्) भूमि जीतने वाला, (अश्वजित्) घोड़े जीतने वाला, (धनंजयः) धन जीतने वाला और (हिरण्यजित्) सुवर्ण जीतने वाला (भूयासम्) रहूँ ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य पराक्रमी होकर सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त कर सुखी होवें ॥८॥

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥९॥

भाषार्थः—(अक्षाः) हे व्यवहारकुशल पुरुषो ! (क्षीरिणीम्) बड़ी दुधेल (गाम् इव) गौ के समान (फलवतीम्) उत्तम फल वाली (द्युवम्) व्यवहार शक्ति (दत्त) दानकरो। (कृतस्य) कर्म की (धारया) धारा [प्रवाह] से (मा) मुझको (सम् नह्यत) यथावत् बांधो (इव) जैसे (स्नाव्ना) डोरी से (धनुः) धनुष को [बांधते हैं] ॥९॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों से अनेक विद्यायें प्राप्त करके अपना जीवन सुफल करें ॥९॥

सूक्तम् ॥५१॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

पराक्रमकरणोपदेशः—पराक्रम करने का उपदेश ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मा दधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१॥

भाषार्थः—(बृहस्पतिः) बड़े शूरों का रक्षक सेनापति (नः) हमें (पश्चात्) पीछे, (उत्तरस्मात्) ऊपर (उत) और (अधरात्) नीचे से (अघायोः) बुरा चीतनेवाले शत्रु से (परि पातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (पुरस्तात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (नः) हमारे लिये (वरीयः) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे, (सखा) जैसे मित्र (सखिभ्यः) मित्रों के लिये [करता है] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य वीरों में महावीर और प्रतापियों में महाप्रतापी होकर दुष्टों से प्रजा की सर्वथा रक्षा करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है ॥ १० । ४२ । ११ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥५२॥

१—२ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ १ अनुष्टुप्; २ त्रिष्टुप् ॥

परस्परैकमत्योपदेशः—आपस में एकता का उपदेश ॥

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥

भाषार्थः—(स्वेभिः) अपनों के साथ (नः) हमारा (संज्ञानम्) एक मत और (अरणेभिः) बाहिर वालों के साथ (संज्ञानम्) एकमत हो । (अश्विना) हे माता पिता ! (युवम्) तुम दोनों (इह) यहां पर (अस्मासु) हम लोगों में (संज्ञानम्) एकमत (नि) निरन्तर (यच्छतम्) दान करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य माता पिता आदिकों से शिक्षा पाकर वेद द्वारा संसार में एकता फैलावें ॥१॥

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

भाषार्थः—(मनसा) आत्मबल के साथ (सम् जानामहै) हम मिले रहें, (चिकित्वा) ज्ञान के साथ (सम्) मिले रहें, (दैव्येन) विद्वानों के हितकारी (मनसा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान से (मा युष्महि) हम अलग न होवें। (बहुले) बहुत (विनिर्हते) विविध वध के कारण युद्ध होने पर (घोषाः) कोलाहल (मा उत् स्थुः) न उठें, (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्यवान् राजा का (इषुः) बाण (अहनि) दिन [न्याय दिन] (आगते) आने पर [हम पर] (मा पप्तत्) न गिरे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य पूर्ण पुरुषार्थ से एकमत रहने का प्रयत्न करें, और ऐसा काम न करें जिससे आपस में युद्ध होवे और पाप के कारण राजा के दण्डनीय होवें ॥२॥

सूक्तम् ॥५३॥

१–७ ॥ १–३ अग्निः, ४–६ प्राणापानौ, ७ सूर्य्यो देवता ॥

१–३ त्रिष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५–७ अनुष्टुप् ॥

विदुषां कर्त्तव्योपदेशः—विद्वानों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर! (यत्) जिस कारण से (अमुत्रभूयात्) परलोक में होनेवाले भय से और (बृहस्पतेः) बड़ों के रक्षक (यमस्य) नियम कर्ता राजा के [सम्बन्धी] (अभिशस्तेः) अपराध से (अधि) अधिकारपूर्वक (अमुञ्चः) तू ने छुड़ाया है। (देवानाम्) विद्वानों में (भिषजा) वैद्यरूप (अश्विना) माता पिता [वा अध्यापक, उपदेशक] ने (मृत्युम्) मृत्यु [मरण के कारण दुःख] को (अस्मत्) हम से (शचीभिः) कर्मों द्वारा (प्रति) प्रतिकूल (औहताम्) हटाया है ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर ने वेदद्वारा बताया है कि मनुष्य गुप्त मानसिक कुविचार छोड़कर परलोक में नरक पतन से, और प्रकट शारीरिक पाप छोड़कर राजा के दण्ड से बचकर आनन्दित रहें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२७–९ ॥

सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ तं सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥२॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान! तुम दोनों (सं क्रामतम्) मिलकर चलो, (शरीरम्) इसके शरीर को (मा जहीतम्) मत छोड़ो। [हे मनुष्य!] वे दोनों (ते) तेरे लिये (सयुजौ) मिले हुए (इह) यहां पर (स्ताम्) रहें, (शतम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरदः) सौ बरस तक (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (जीव) तू जीता रहे, (अग्निः) सर्व व्यापक परमेश्वर [वा जाठराग्नि] (ते) तेरा (गोपाः) रक्षक, (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला और (वसिष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर का आश्रय लेकर प्राण, अपान और जाठराग्नि को सम रख सब प्रकार बलवान् होकर पूर्ण आयु भोगें ॥२॥

आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा तावितम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यत्) जो (ते) तेरा (आयुः) जीवन सामर्थ्य (पराचैः) पराङ्मुख होकर (अतिहितम्) घट गया है, (तौ, वे दोनों (प्राणः) प्राण और (अपानः) अपान (पुनः) फिर (आ इताम्) आवें । (अग्निः) वैद्य वा शरीराग्नि (तत्) उस [आयु] को (निर्ऋतेः) महा विपत्ति के (उपस्थात्) पास से (आ अहाः) लाया है, (तत्) उसको (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पुनः) फिर (आ वेशयामि) प्रविष्ट करता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो रोग आदि के कारण शरीरबल में हानि हो जावे, मनुष्य वैद्यों की सम्मति से जाठराग्नि की समता से स्वस्थ रहें ॥३॥

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो ऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥४॥

भाषार्थः—(प्राणः) प्राण (इमम्) इस [प्राणी] को (मा हासीत्) न छोड़े, (मो) और न (अपानः) अपान वायु (अवहाय) छोड़ कर (परागात्) चला जावे । (एनम्) इस पुरुष को (सप्तर्षिभ्यः) सात व्यापनशीलों वा दर्शनशीलों [अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] को (परि ददामि) मैं समर्पण करता हूं, (ते) वे (एनम्) इसको (स्वस्ति) आनन्द के साथ (जरसे) स्तुति के लिये (वहन्तु) ले चलें ॥४॥

भावार्थः मनुष्य शारीरिक इन्द्रियों को प्राणायाम, व्यायाम आदि से स्वस्थ रख कर धर्म में प्रवृत्त रहें ॥४॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५॥

भाषार्थः—(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! तुम दोनों (प्र विशतम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश करते रहो, (इव) जैसे (अनड्वाहौ) रथ ले चलने वाले दो बैल (व्रजम्) गोशाला में। (अयम्) यह जीव (जरिम्णः) स्तुति का (शेवधिः) निधि, (अरिष्टः) दुःखरहित होकर (इह) यहां पर (वर्धताम्) बढ़ती करे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर संसार में उन्नति करें ॥५॥

आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥६॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य!] (ते) तेरे (प्राणम्) प्राण को (आ सुवामसि) हम अच्छे प्रकार आगे बढ़ाते हैं, और (ते) तेरे (यक्ष्मम्) राजरोग को (परा सुवामि) मैं दूर निकालता हूं। (अयम्) यह (वरेण्यः) स्वीकरणीय (अग्निः) जाठराग्नि (नः) हमारे (आयुः) आयु को (विश्वतः) सब प्रकार (दधत्) पुष्ट करे ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य पुरुषार्थपूर्वक निर्बलता आदि रोगों को नाश करके अपना जीवन सब प्रकार सुफल करें ॥६॥

उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥७॥

भाषार्थः—(तमसः) अन्धकार से (परि) पृथक् होकर (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) सुख में (उद् रोहन्तः) ऊपर चढ़ते हुए (वयम्) हमने (देवत्रा) प्रकाशमानों में (देवम्) प्रकाशमान, (उत्तमम्) उत्तम (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप, (सूर्यम्) सब के प्रेरक सूर्य जगदीश्वर को (अगन्म) पाया है ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् योगीजन विद्या के प्रकाश से मुक्ति सुख को भोगते हुए ज्योतिःस्वरूप परमात्मा में निरन्तर विचरते हैं ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२०। २१, २७। १०, ३५। १४, ३८। २४ ॥

सूक्तम् ॥५४॥

१–२ ॥ शचीपतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

वेदविद्याग्रहणोपदेशः—वेदविद्या के ग्रहण का उपदेश ॥

ऋचं सामं यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ऋचम्) स्तुति विद्या [ईश्वर से लेकर समस्त पदार्थों के ज्ञान], (साम) दुःख नाशक मोक्ष विद्या का (यजामहे) हम सत्कार करते हैं, (याभ्याम्) जिन दोनों के द्वारा (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वते) वे [सब प्राणी] करते हैं। (एते) यह दोनों (सदसि) [संसार रूपी] बैठक में (राजतः) विराजते हैं और (देवेषु) विद्वानों के बीच (यज्ञम्) सङ्गति (यच्छतः) दान करते हैं ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य वेद द्वारा विद्या प्राप्त करके संसार में प्रतिष्ठित होवें ॥१॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम् ।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥२॥

भाषार्थः—(यत्) जिस लिये (ऋचम्) पदार्थों की स्तुतिविद्या, (साम) दुःखनाशक मोक्षविद्या और (यजुः) विद्वानों के सत्कार, विद्यादान और पदार्थों के सङ्गतिकरण द्वारा (हविः) ग्राह्यकर्म, (ओजः) मानसिक बल और (बलम्) शारीरिक बल को (अप्राक्षम्) मैंने पूछा है [विचारा है]। (तस्मात्) इसलिये, (शचीपते) हे वाणी वा कर्म वा बुद्धि के रक्षक आचार्य ! (एषः) यह (पृष्टः) पूछा हुआ (वेदः) वेद (मा) मुझको (माहिंसीत्) न दुःख देवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विचारपूर्वक वेदों का अध्ययन करके उत्तम कर्म से मानसिक और शारीरिक बल बढ़ाकर आनन्दित होवें ॥२॥

सूक्तम् ॥ ५५ ॥

१ ॥ वसुर्देवता ॥ विराडुष्णिक् छन्दः ॥

वेदमार्गग्रहणोपदेशः—वेद मार्ग के ग्रहण का उपदेश ॥

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥१॥

भाषार्थः—(वसो) हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! (ये) जो (ते) तेरे (दिवः) प्रकाश के (पन्थानः) मार्ग (अव) निश्चय करके हैं, (येभिः) जिनके द्वारा (विश्वम्) ससार को (ऐरयः) तूने चलाया है। (तेभिः) उनसे ही (सुम्नया) सुख के साथ (नः) हमें (आ धेहि) सब ओर से पुष्टकर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर के वेदमार्ग पर चलकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पुष्टि करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥५६॥

१–८ ॥ ओषधिर्देवता ॥ १–३, ५–८ अनुष्टुप्, ४ बृहती ॥

विषहरणोपदेशः—विष नाश का उपदेश ॥

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१॥

भाषार्थः—(इयम्) इस (वीरुत्) जड़ी बूटी ने (तिरश्चिराजेः) तिरछी रेखाओं वाले, (असितात्) कृष्णवर्ण वाले, (अङ्कपर्वणः) काक वा चिल्ह पक्षी के समान जोड़ वाले (पृदाकोः) फुसकारते हुए साँप से (सम्भृतम्) पाये हुए (तत्) उस (विषम्) विष को (परि) सब प्रकार (अनीनशत्) नाश कर दिया है ॥१॥

भावार्थः—जैसे वैद्य ओषधि द्वारा सर्प आदि के विष को नाश करता है, वैसे ही विद्वान् विद्या द्वारा मानसिक दोषों का नाश करे ॥१॥

इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ।
सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ॥२॥

भाषार्थः—(इयम्) यह [ब्रह्मविद्या] (वीरुत्) जड़ी बूटी (मधुजाता) मधुरपन से उत्पन्न हुई, (मधुश्चुत्) मधुरपन टपकानेवाली है। (मधुला) मधुरपन देने वाली और (मधूः) मधुर स्वभाव वाली है। (सा) वही (विह्रुतस्य) बड़े कुटिल विष की (भेषजी) ओषधि (अथो) और (मशकजम्भनी) मच्छरों [मच्छर के समान गुणों] की नाश करनेवाली है ॥२॥

भावार्थः—जैसे उत्तम ओषधि से बड़े बड़े विष और क्लेश नाश होते हैं, वैसे ही मनुष्य ब्रह्म विद्या द्वारा अपने दोषों का नाश करे ॥२॥

यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (यतः) जहां पर (दष्टम्) काटा गया है और (यतः) जहां पर (धीतम्) [रुधिर] पिया गया है, (ते) तेरे (ततः) उसी [अङ्ग] से (अर्भस्य) छोटे (तृप्रदंशिनः) तीव्र काटनेवाले (मशकस्य) मच्छर के (अरसम्) निर्बल [किये हुए] (विषम्) विष को (निः) निकालकर (ह्वयामसि) हम वचन देते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सुपरीक्षित ओषधियों से प्रयत्नपूर्वक विष आदि रोग नाश करें ॥३॥

अयं यो वक्रो विपरुव्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४॥

भाषार्थः—(अयम् यः) यह जो [विषरोगी] (वक्रः) टेढ़े शरीरवाला (विपरुः) विकृत जोड़ों वाला (व्यङ्गः) ढीले अङ्गों [हाथ पैरों] वाला (मुखानि) अपने मुख के अवयवों [दांत नाक नेत्र आदि] को (वक्रा) टेढ़ा और (वृजिना) ऐंठे मरोड़े (कृणोषि=कृणोति) करता है । (ब्रह्मणः पते) हे बड़े ज्ञान के स्वामी [वैद्यराज !] (त्वम्) तू (तानि) उन [अङ्गों] को (सम् नमः) मिलाकर ठीक कर दे (इव) जैसे (इषीकाम्) कांस वा मूंजको [रसरी के लिये] ॥४॥

भावार्थः—वैद्य लोग विष रोगी को औषध आदि से शीघ्र स्वस्थ करें ॥४॥

अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्य उपसर्पतः ।
विषं ह्य१ स्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥५॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (अरसस्य) निर्बल [तुच्छ वा काटने वाले], (नीचीनस्य) नीचे पड़े हुए, (उपसर्पतः) रेंगते हुए, (शर्कोटस्य) काटकर टेढ़ा कर देनेवाले [बीछू आदि] के (विषम्) विष को (हि) निश्चय करके (आ-अदिषि) मैंने खण्डित कर दिया है (अथो) और (एनम्) इस [जन्तु] को (अजीजभम्) मैंने कुचिल डाला है ॥५॥

भावार्थः—बीछू आदि के विष को हटाकर उस विषैले जन्तु को भी मार डालें जिससे वह औरों को न सतावे ॥५॥

न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६॥

भाषार्थः—[हे बीछू !] (न) न तो (ते) तेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल (अस्ति) है, (न) न (शीर्षे) शिर में (उत) और (न) न (मध्यतः) बीच में है । (अथ) फिर (किम्) क्यों (अमुया पापया) उस पाप बुद्धि से (पुच्छे) पूंछ में (अर्भकम्) थोड़ा सा [विष] (बिभर्षि) तू रखता है ॥६॥

भावार्थः—जैसे बीछू सामने से निर्विष होता है और पीछे से चट्ट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डंक मारता है, मनुष्यों को ऐसी कुटिलता छोड़ कर सर्वथा सरल स्वभाव होना चाहिये ॥६॥

अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वं भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥७॥

भाषार्थः—[हे बीछू वा सर्प !] (त्वा) तुझको (पिपीलिकाः) चिउंटियें (अदन्ति) खा जाती हैं और (मयूर्यः) मोरनियें (वि वृश्चन्ति) काट डालती हैं। [हे मनुष्यो !] (सर्वे) तुम सब (शार्कोटम्) बीछू वा सर्प के (विषम्) विष के (अरसम्) निर्बल (भल) भली भांति (ब्रवाथ) बतलाओ ॥७॥

भावार्थः—जैसे चिउंटी, मोर मोरनी आदि विषैले जीवों का आहार कर जाते हैं, वैसेही मनुष्य ओषधि द्वारा विष को निर्बल करके हटावे ॥७॥

य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ।
आस्ये३ न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥८॥

भाषार्थः—[हे बीछू !] (यः) जो तू (उभाभ्याम्) दोनों (पुच्छेन) पूंछ से (च च) और (आस्येन) मुख से (प्रहरसि) चोट मारता है। (ते) तेरे (आस्ये) मुख में (विषम्) विष (न) नहीं है, (उ) तो, (ते) तेरे (पुच्छधौ) पूंछ की थैली में (किम्) क्या (असत्) होवे ॥८॥

भावार्थः—बीछू के मुख में तो विष नहीं होता, उसकी पूंछ के विष को भी विद्वान् लोग ओषधि द्वारा नाश करें ॥८॥

सूक्तम् ॥५७॥

१—२ ॥ सरस्वती देवता ॥ जगती छन्दः ॥

गृहस्थधर्मोपदेशः—गृहस्थ धर्म का उपदेश ॥

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥१॥

भाषार्थः—(वदतः मे) मुझ बोलने वाले का (यत्) जो [मन] (आशसा) किसी हिंसा से (विचुक्षुभे) व्याकुल हो गया है, [अथवा] (जनान् अनु) मनुष्यों के पास (चरतः) चलकर (याचमानस्य) मुझ मांगने वाले का (यत्) जो [मन व्याकुल हो गया है]। [अथवा] (मे तन्वः) मेरे शरीर के (आत्मनि) आत्मा में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत् विरिष्टम्) जो कष्ट है, (सरस्वती) विज्ञानयुक्त विद्या (तत्) उसको (घृतेन) प्रकाश वा सारतत्त्व से (आ) भली भांति (पृणत्) भर देवे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य अविद्या के कारण से प्राप्त हुए क्लेशों को विद्या द्वारा नाश करें ॥१॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥ २॥

भाषार्थः—(सप्त) सात [इन्द्रियां अर्थात् दो कान, दो नथुने, दो आंख, एक मुख] (मरुत्वते) सुवर्ण वाले (शिशवे) दुःखनाशक बालक [वा प्रशंसनीय वा उदार विद्वान्] के लिये [सुख से] (क्षरन्ति) बरसती हैं, (अपि) और (पुत्रासः) पुत्रों [पुत्र समान हितकारी पुरुषों] ने (पित्रे) उस पिता [पिता तुल्य माननीय] के लिये (ऋतानि) सत्य धर्मों को (अवीवृतन्) प्रवृत्त किया है। (उभे) दोनों [वर्तमान और भविष्यत् जन्म वा अवस्था] (इत्) ही (अस्य) इस [विद्वान्] के होते हैं, (अस्य) इसके (उभे) दोनों (राजतः) ऐश्वर्यवान होते हैं, (उभे) दोनों (यतेते) प्रयत्नशाली होते हैं, (उभे) दोनों (अस्य) इसका (पुष्यतः) पोषण करते हैं ॥२॥

भावार्थः—धनी, परोपकारी, विद्वान् पुरुष इस जन्म और परजन्म और वर्तमान और भविष्यत् काल में पूर्ण सुख भोगते हैं ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में कुछ भेद से है—१० । १३ । ५ ।

सूक्तम् ॥५८॥

१—२ । इन्द्रावरुणौ देवते ॥ १ जगती; २ त्रिष्टुप् ॥

राजप्रजाजनकर्त्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा जन के कर्त्तव्य का उपदेश है ॥

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१॥

भाषार्थः—(सुतपौ) हे पुत्रों के रक्षा करने वाले ! (धृतव्रतौ) उत्तम कर्मों के धारण करने वाले ! (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान राजा और प्रजाजन (इमम् सुतम्) इस पुत्र को (मद्यम्) आनन्ददायक (सोमम्) ऐश्वर्य [वा बड़ी बड़ी ओषधियों का रस] (पिबतम्=पाययतम्) पान कराओ, (युवोः) तुम दोनों का (अध्वरः) मार्ग बताने वाला (रथः) विमान आदि यान (देववीतये) दिव्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये और (पीतये) वृद्धि के लिये (प्रति स्वसरम्) प्रतिदिन वा प्रतिघर (उप यातु) आया करे ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः राजा और प्रजागणों को चाहिये कि परस्पर रक्षक होकर परस्पर उन्नति करें ॥१॥

म० १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—६ । ६८ । १०, ११ ॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमास्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥२ ।

भाषार्थः —(वृषणा) हे बलिष्ठ ! (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान राजा और प्रजाजनो तुम (मधुमत्तमस्य) अत्यन्तज्ञानयुक्त, (वृष्णः) बल करने वाले (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वृषेथाम्) वरसा करो । (वाम्) तुम दोनों का (इदम्) यह (परिषिक्तम्) सब प्रकार सींचा हुआ (अन्धः) अन्न है, (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि कर्म में (आसद्य) बैठकर (मादयेथाम्) आनन्दित करो ॥२॥

भावार्थः—जो राजा और प्रजागण सब की उन्नति के लिये पुरुषार्थ करते हैं, वे ही सत्कार योग्य होते हैं ॥२॥

सूक्तम् ॥५९॥

१ ॥ शपथो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ।

कुवचनत्यागोपदेशः—कुवचन के त्याग का उपदेश ॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१॥

भाषार्थः —(यः) जो (अशपतः) न शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे, (च) और (यः) जो (शपतः) शाप देने वाले (नः) हम लोगों को (शपात्) शाप देवे । (विद्युता) बिजुली से (हतः) मारे गये (वृक्षः इव) वृक्ष के समान वह (आ मूलात्) जड़ से लेकर (अनु) निरन्तर (शुष्यतु) सूख जावे ॥१॥

भावार्थः जो दुष्ट धर्मात्माओं में दोष लगावे, राजा उसको यथोचित दण्ड देवे ॥१॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आ चुका है—अ० ६ । ३७ । ३ ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥६०॥

१–७ ॥ गृहपतिर्देवता ॥ १ पङ्क्तिः; २–७ अनुष्टुप् ॥

गृहस्थधर्मोपदेशः गृहस्थ धर्म का उपदेश ॥

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥१॥

भाषार्थः—(ऊर्जम्) पराक्रम (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (वसुवनिः) धन उपार्जन करने वाला, (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि वाला, (अघोरेण) अभयानक, (मित्रियेण) मित्र के (चक्षुषा) नेत्र से [देखता हुआ] (सुमनाः) सुन्दर मन वाला, (वन्दमानः) [तुम्हारे] गुण बखानता हुआ मैं (गृहान्) घर के लोगों में (आ एमि) आता हूं। (रमध्वम्) तुम प्रसन्न होओ, (मत्) मुझ से (मा बिभीत) भय मत करो ॥१॥

भावार्थः स्त्री पुरुष शरीर और आत्मा का बल और धन आदि पदार्थ प्राप्त करके बड़ी प्रीति से प्रसन्नचित्त रह कर गृहस्थाश्रम को सिद्ध करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—अ० ३ । ४१ ॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२॥

भाषार्थः—(इमे) यह (गृहाः) घर के लोग (मयोभुवः) आनन्द देने वाले, (ऊर्जस्वन्तः) बड़े पराक्रमी, (पयस्वन्तः) उत्तम जल, दुग्ध आदि वाले, (वामेन) उत्तम धन से (पूर्णाः) भरपूर (तिष्ठन्तः) खड़े हुए हैं। (ते) वे लोग (आयतः) आते हुए (नः) हमको (जानन्तु) जानें ॥२॥

भावार्थः घर के लोग बाहिर से आये हुए गृहस्थों और अतिथियों का यथावत् सत्कार करें ॥२॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥३॥

भाषार्थः—(प्रवसन्) परदेश वसता हुआ मनुष्य (येषाम्) जिन [गृहस्थों]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का (अध्येति) स्मरण करता है, और (येषु) जिनमें (बहुः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है, (गृहान्) उन घर वालों को (उप ह्वयामहे) हम प्रीति से बुलाते हैं, (ते) वे लोग (आयतः) आते हुए (नः) हम को (जानन्तु) जानें ॥३॥

भावार्थः जिस प्रकार परदेश गया हुआ पुरुष प्रीति से घर वालों का स्मरण करता रहता है, वैसे ही घर वाले प्रीति से उसका स्मरण रक्खें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—३ । ४२ और संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण में भी आया है ॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन । ४॥

भाषार्थः –(भूरिधनाः) बड़े धनी, (स्वादुसंमुदः) स्वादिष्ट पदार्थों से आनन्द करने वाले (सखायः) मित्र लोग (उपहूताः) स्वागत किये गये हैं । (गृहाः) हे घर के लोगो ! (अक्षुध्याः, अतृष्याः, स्त) तुम भूखे प्यासे मत रहो, (अस्मत्) हम से (मा बिभीतन) मत भय करो ॥४॥

भावार्थः—बाहिर से आये हुए और घर वाले सब पुरुष प्रसन्न हो कर परस्पर आनन्द करें ॥४॥

उपहूता इह गावः उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥५॥

भाषार्थः—(इह) यहां पर (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (गावः) गौएं (उपहूताः) आदर से बुलायी गयीं, और (अजावयः) भेड़ बकरी (उपहूताः) पास में बुलायी गयीं होवें । (अथो) और भी (अन्नस्य) अन्न का (कीलालः) रसीला पदार्थ (उपहूतः) पास लाया गया हो ।५॥

भावार्थः—मनुष्य दूध वाले गौ आदि पशु और भोजन के उत्तम पदार्थ संग्रह करके परस्पर रक्षा करें ॥५॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—३ । ४३ । और संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण में भी आया है ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सूनृतावन्तः) प्रिय सत्य वचन वाले, (सुभगाः) बड़े ऐश्वर्य वाले, (इरावन्तः) उत्तम भोजन वाले, (हसामुदाः) हंस हंस कर प्रसन्न करने वाले, (गृहाः) हे घर के लोगो ! तुम (अतृष्याः, अक्षुध्याः स्त) प्यासे भूखे मत रहो, (अस्मत्) हम से (मा बिभीतन) मत भय करो ॥६॥

भावार्थ—जो मनुष्य परस्पर सत्यभाषी, धर्मात्मा होते हैं, वे ही ऐश्वर्य बढ़ाकर सदा प्रसन्न रहते हैं ॥६॥

इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेण सह भूयाँसो भवता मया ॥७॥

भाषार्थः—(इह एव) यहां ही (स्त) रहो, (अनु) पीछे पीछे (मा गात) मत चलो, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप वाली वस्तुओं को (पुष्यत) पुष्ट करो । (भद्रेण सह) कुशल के साथ (आ एष्यामि) मैं आऊंगा, [फिर] (मया) मेरे साथ (भूयांसः) अधिक अधिक होकर (भवत) रहो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य परदेश जाने पर प्रतिज्ञा करके स्वदेशवृद्धि की चिन्ता रक्खे ॥७॥

सूक्तम् ॥६१॥

१ २ ॥ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

वेदविद्याप्राप्त्युपदेशः—वेद विद्या प्राप्ति का उपदेश ॥

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥१॥

भाषार्थः (अग्ने) हे विद्वन् आचार्य ! (यत्) जिस कारण से (तपसा) तप [शीत, उष्ण, सुख दुःख आदि द्वन्द्वों के सहन] से (तपः) ऐश्वर्य के हेतु (तपः) तप [ब्रह्मचर्य आदि सत्यव्रत] को (उपतप्यामहे) हम ठीक ठीक काम में लाते हैं । [उसीसे] हम (श्रुतस्य) वेदशास्त्र के (प्रियाः) प्रीति करने वाले (आयुष्मन्तः) प्रशंसनीय आयु वाले और (सुमेधसः) तीव्रबुद्धि (भूयास्म) हो जावें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य तप अर्थात् द्वन्द्वों का सहन और पूर्ण ब्रह्मचर्य के सेवन से वेद विद्या प्राप्त करके यशस्वी तीव्रबुद्धि होकर संसार का उपकार करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्ने तपस्तप्यामहे उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वन् आचार्य ! हम (तपः) तप [द्वन्द्व सहन] (तप्यामहे) करते हैं, और (तपः) ब्रह्मचर्यादि व्रत (उप तप्यामहे) यथावत् साधते हैं। (श्रुतानि) वेदशास्त्रों को (शृण्वन्तः) सुनते हुए (वयम्) हम (आयुष्मन्तः) उत्तम जीवन वाले और (सुमेधसः) तीव्र बुद्धि वाले [हो जावें] ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य द्वन्द्व सहन और ब्रह्मचर्य सेवन से वेदों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके संसार में कीर्त्तिमान् होवें ॥२॥

सूक्तम् ॥६२॥

१ ॥ अग्निर्देवता ॥ जगती छन्दः ॥

सेनापतिलक्षणोपदेशः—सेनापति के लक्षण का उपदेश ॥

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥१॥

भाषार्थः (अयम्) इस (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक, (वृद्धवृष्णः) बड़े बल वाले, (पुरोहितः) सब के अगुआ (अग्निः) अग्नि समान तेजस्वी सेनापति ने (रथी इव) रथ वाले योधा के समान (पत्तीन्) [शत्रु की] सेनाओं को (अजयत्) जीत लिया है। (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (नाभा) नाभि में (निहितः) स्थापित किया हुआ (दविद्युतत्) अत्यन्त प्रकाशमान वह [उनको] (अधस्पदम्) पांव के तले (कृणुताम्) कर लेवे, (ये) जो (पृतन्यवः) सेना चढ़ाने वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—जो शूरवीर पुरुष सब शत्रुओं को जीत कर सज्जनों की रक्षा करे, वही गोलाकार पृथिवी के बीच में सब ओर से चक्रवर्ती राजा होकर संसार में उपकारी बने ॥१॥

सूक्तम् ॥६३॥

१ ॥ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिकर्त्तव्योपदेशः—सेनापति के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः (पृतनाजितम्) संग्राम जीतने वाले, (सहमानम्) विजयी, (अग्निम्) अग्नि समान तेजस्वी सेनापति को (उक्थैः) स्तुतियों के साथ [उसके] (परमात्) बहुत ऊंचे (सधस्थात्) निवास स्थान से (हवामहे) हम बुलाते हैं। (सः) वह (देवः) व्यवहार कुशल (अग्निः) तेजस्वी सेनापति (विश्वा) सब (दुर्गाणि) दुर्गों को (अति) उलांघ कर और (दुरितानि) विघ्नों को (अति) हटाकर (नः) हमें (पर्षत्) पार लगावे, और (क्षामत्) समर्थ करे ॥१॥

भावार्थः—जो शूर सेनापति शत्रुओं के गढ़ तोड़ कर विजय पाता है वही प्रजापालन में समर्थ होता है ॥१॥

सूक्तम् ॥६४॥

१—२ ॥ १ आपः; २ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुभ्यो रक्षोपदेशः—शत्रुओं से रक्षा का उपदेश ॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(कृष्णः) कौवे वा (शकुनिः) चिल्ल के समान निन्दित उपद्रव ने (अभिनिष्पतन्) सन्मुख आते हुए इदम् यत्) यह जो कष्ट (अपीपतत्) गिराया है। (आपः) उत्तम कर्म (मा) मुझको (तस्मात्) उस (सर्वस्मात्) सब (दुरितात्) कठिन (अंहसः) कष्ट से (पान्तु) बचावें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न करके सब बाहिरी और भीतरी विपत्तियों से बचें ॥१॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु ॥२॥

भाषार्थः—(निर्ऋते) हे कठिन आपत्ति ! (ते) तेरे (मुखेन) मुख के सहित (कृष्णः) कौवे अथवा (शकुनिः) चिल्ल के समान निन्दित उपद्रव ने (इदम्) यह (यत्) जो कुछ कष्ट (अवामृक्षत्) एकत्र किया है। (गार्हपत्यः) गृहपति [आत्मा] से संयुक्त (अग्निः) पराक्रम (तस्मात्) उस (एनसः) कष्ट से (मा) मुझ को (प्र मुञ्चतु) छुड़ा देवे ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य आत्मपराक्रम करके विघ्नों को हटा कर सुखी रहें ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥६५॥

१–३ ॥ अपामार्गो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

वैद्यकर्मोपदेशः—वैद्य के कर्म का उपदेश ॥

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥

भाषार्थः –(अपामार्ग) हे सर्व संशोधक वैद्य ! [वा अपामार्ग औषध !] (त्वम्) तू (हि) निश्चय करके (प्रतीचीनफलः) प्रतिकूलगतिवाले रोगों का नाश करने वाला (रुरोहिथ) उत्पन्न हुआ है। (इतः मत्) इस मुझसे (सर्वान्) सब (शपथान्) शापों [दोषों] को (अधि) अधिकार पूर्वक (वरीयः) अति दूर (यवयाः) तू हटा देवे ॥१॥

भावार्थः जैसे वैद्य अपामार्ग आदि औषध से रोगों को दूर करता है, वैसे ही विद्वान् अपने आत्मिक और शारीरिक दोषों को हटावे ॥१॥

अपामार्ग औषध विशेष है जिससे कफ, ववासीर, खुजली, उदररोग और बिष रोग का नाश होता है—देखो अ० ४ । १७ । ६ ॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२॥

भाषार्थः –(यत्) जो कुछ (दुष्कृतम्) दुष्कर्म (यद् वा) अथवा (यत्) जो कुछ (शमलम्) मलिन कर्म (पापया) पाप बुद्धि से (चेरिम) हमने किया है। (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुख रखने वाले ! [अतिदूरदर्शी] (अपामार्ग) हे सर्वथा संशोधक ! (त्वया) तेरे साथ (तत्) उसको (अप मृज्महे) हम शोधते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य दुष्कर्म और मलिनकर्म से उत्पन्न रोगों को सद्वैद्य की सम्मति से औषध द्वारा निवृत्त करें ॥२॥

श्यावदंता कुनखिना वण्डेन यत् सहासिम
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

भाषार्थः –(श्यावदता) काले दांत वाले, (कुनखिना) दूषितनख वाले (वण्डेन) वण्डे [टेढ़े मेढ़े अङ्ग वाले रोगी] के (सह) साथ (यत्) जो (आसिम) रहे हैं। (अपामार्ग) हे सर्वथा संशोधक ! [वैद्य वा अपामार्ग औषध !] (त्वया) तेरे साथ (वयम्) हम (तत् सर्वम्) उन सब को (अप मृज्महे) शोधते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—यदि रोग की व्याकुलता से शरीर अङ्गभङ्ग हो जावे, उसे ओषधि द्वारा स्वस्थ करें ॥३॥

सूक्तम् ॥६६॥

१ ॥ ब्राह्मणं देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

वेदविज्ञानव्याप्त्युपदेशः—वेद विज्ञान की व्याप्ति का उपदेश ॥

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१॥

भाषार्थः—(यदि=यत्) जो [ब्रह्मज्ञान] (अन्तरिक्षे) आकाश में, (यदि) जो (वाते) वायु में (यदि) जो (वृक्षेषु) वृक्षों में, (वा) और (यदि) जो (उलपेषु) कोमल तृणों [अन्न आदि] में (आस) व्याप्त था । (यत्) जिस (उद्यमानम्) उच्चारण किये हुए को (पशवः) सब प्राणियों ने (अश्रवन्) सुना है, (तत्) वह (ब्राह्मणम्) वेद विज्ञान (पुनः) वारंवार [अथवा परजन्म में] (अस्मान्) हमें (उपैतु) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः ईश्वर ज्ञान सब पदार्थों में, और सब पदार्थ ईश्वर ज्ञान में हैं. मनुष्य उस ईश्वर ज्ञान को नित्य और जन्म जन्म में प्राप्त करके मोक्षपद भागी होवें ॥१॥

सूक्तम् ॥६७॥

१ ॥ मन्त्रोक्त देवताः ॥ बृहती छन्दः ॥

सुकर्मकरणायोपदेशः सुकर्म करने का उपदेश ॥

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रियम्) इन्द्रत्व [परम ऐश्वर्य] (मा) मुझको (पुनः) अवश्य [वा फिर जन्म में], (आत्मा) आत्मबल, (द्रविणम्) धन (च) और (ब्राह्मणम्) वेद-विज्ञान (पुनः) अवश्य [वा परजन्म में] (आ एतु) प्राप्त होवे (धिष्ण्याः) बोलने में चतुर (अग्नयः) विद्वान् लोग (यथास्थाम) यथास्थान [कर्मानुसार मुझको] (इह) यहां (एव) ही (पुनः) अवश्य [वा परजन्म में] (कल्पयन्ताम्) समर्थ करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य सदा सुकर्मी होकर इस लोक और परलोक का आनन्द प्राप्त करें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, पुनर्जन्म विषय, पृष्ठ २०३ में भी व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ॥६८॥

१–३ ॥ सरस्वती देवता ॥ १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ॥

सरस्वत्याराधनोपदेशः—सरस्वती की आराधना का उपदेश ॥

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि रराख्व नः ॥१॥

भाषार्थः—(देवि) हे देवी (सरस्वति) सरस्वती ! [विज्ञानवती वेद विद्या] (ते) अपने (दिव्येषु) दिव्य (व्रतेषु) व्रतों [नियमों] में और (धामसु) धर्मों [धारण शक्तियों] में [हमारे] (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) ग्राह्य कर्म को (जुषस्व) स्वीकार कर, (देवि) हे देवी ! (नः) हमें (प्रजाम्) [उत्तम] प्रजा (रराख्व) दे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि नियमों से उत्तम विद्या प्राप्त करके सब प्रजा प्राणीमात्र को उत्तम बनावें ॥१॥

इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं१ यत् ।
इमानि ते उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२॥

भाषार्थः—(सरस्वति) हे सरस्वती ! (इदम्) यह (यत्) जो (ते) तेरा (घृतवत्) प्रकाशयुक्त (हव्यम्) ग्राह्य कर्म है, और (इदम्) यह [जो] (पितॄणाम्) पिता समान माननीय विद्वानों के (आस्यम्) मुख पर रहनेवाला (हविः) ग्राह्य पदार्थ है । और [जो] (ते) तेरे (इमानि) यह सब (शंतमानि) अत्यन्त शान्ति देनेवाले (उदिता) वचन हैं, (तेभिः) उनसे (वयम्) हम (मधुमन्तः) उत्तम ज्ञानवाले (स्याम) होवें ॥२॥

भावार्थः—जिस वेदविद्या का प्रकाश सारे संसार भर में फैल रहा है, और विद्वान् लोग जिसका अभ्यास करके उपदेश करते हैं, उस विद्या से सब मनुष्य लाभ उठावें ॥२॥

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः । ३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः —(सरस्वति) हे सरस्वती ! तू (नः) हमारे लिये (शिवा) कल्याणी, (शंतमा) अत्यन्त शान्ति देनेवाली और (सुमृडीका) अत्यन्त सुख देनेवाली (भव) हो। हम लोग (ते) तेरे (संदृशः) यथावत् दर्शन [यथार्थ स्वरूप के ज्ञान] से (मा युयोम) कभी अलग न होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य नित्य अभ्यास से विद्या का ठीक ठीक स्वरूप जान कर आत्मा को सदा शान्त रक्खें ॥३॥

सूक्तम् ॥६९॥

१ ॥ वातादयो देवताः ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥

सुखाय प्रयत्नोपदेशः—सुख के लिये प्रयत्न का उपदेश ॥

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१॥

भाषार्थः—(शम्) सुखकारी (वातः) वायु (नः) हमारे लिये (वातु) चले, (शम्) सुखकारी (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) (तपतु) तपे। (अहानि) दिन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें, (रात्री) रात्रि (शम् प्रति) सुख के लिये (धीयताम्) धारण की जावे (शम्) सुखकारी (उषाः) उषा [प्रभात वेला] (नः) हमारे लिये (वि) विविध प्रकार (उच्छतु) चमके ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ईश्वर और आप्त विद्वानों की शिक्षा से ऐसे काम करें जिसमें वायु, सूर्य आदि पदार्थों से प्रतिक्षण सुख मिलता रहे ॥१॥

सूक्तम् ॥७०॥

१–५ ॥ इन्द्रोऽग्निर्वा देवता ॥ १,२ त्रिष्टुप्, ३–५ अनुष्टुप् ॥

शत्रुदमनोपदेशः—शत्रु के दमन का उपदेश ॥

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा । तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१॥

भाषार्थः (असौ) वह [शत्रु] (यत् किम्) जो कुछ (मनसा) मन से, (च च) और (यत्) जो कुछ (वाचा) वाणी से, (यज्ञैः) सङ्गति कर्मों से, (हविषा) भोजन से और (यजुषा) दान से (जुहोति) आहुति करता है। (मृत्युना) मृत्यु के साथ (संविदाना) मिली हुई (निर्ऋतिः) निर्ऋति, दरिद्रता आदि अलक्ष्मी (सत्यात् पुरा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता से पहिले (अस्य) इसकी (तत्) उस (आहुतिम्) आहुति को (हन्तु) नाश करे ॥१॥

भावार्थः - जो शत्रु मन, वचन और कर्म से प्रजा को सताने का उपाय करे, निपुण सेनापति शीघ्र ही उसे धनहरण आदि दण्ड देकर रोक देवे ॥१॥

यातुधाना निर्ऋतिरा रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् । इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥२॥

भाषार्थः—(निर्ऋतिः) अलक्ष्मी (आत् उ) और भी (ते) वे सब (यातुधानाः) दुःखदायी (रक्षः) राक्षस (अस्य) इस [शत्रु] की (सत्यम्) सफलता को (अनृतेन) मिथ्या आचरण के कारण (घ्नन्तु) नाश करें (इन्द्रेषिताः) इन्द्र, परम ऐश्वर्य वाले सेनापति के भेजे हुए (देवाः) विजयी शूर (अस्य) इसके (आज्यम्) घृत [तत्त्वपदार्थ] को (मथ्नन्तु) विध्वंस करें, (असौ) वह [शत्रु] (यत्) जो कुछ (जुहोति) आहुति दे, (तत्) वह (मा सम् पादि) सम्पन्न [सफल] न होवे ॥२॥

भावार्थः—सेनापति की नीतिनिपुणता से शत्रुओं में निर्धनता और परस्पर फूट पड़ जाने से शत्रु लोग निर्बल होकर आधीन हो जावें ॥२॥

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३॥

भाषार्थः—(अजिराधिराजौ) शीघ्रगामी दोनों बड़े राजा [दरिद्रता] और [मृत्यु—म० १] (सम्पातिनौ) झपट मारने वाले (श्येनौ इव) दो श्येन वा बाज पक्षी के समान (पृतन्यतः) उस चढ़ाई करने वाले शत्रु के (आज्यम्) घृत [तत्त्वपदार्थ] को (हताम्) नाश करें (यः कः च) जो कोई (नः) हम से (अभ्यघायति) दुष्ट आचरण करे ॥३॥

भावार्थः—दुःखदायी शत्रुओं के नाश करने में राजा शीघ्रता करे ॥३॥

अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (ते) तेरे (अपाञ्चौ) पीछे को चढ़ाये गये (उभौ) दोनों (बाहू) भुजाओं को (अपि) और (आस्यम्) मुखको (नह्यामि) मैं बाँधता हूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवस्य) विजयी (अग्नेः) तेजस्वी सेनापति के (तेन मन्युना) उस क्रोध से (ते) तेरे (हविः) भोजन आदि ग्राह्यपदार्थ को (अवधिषम्) मैं ने नष्ट कर दिया है ॥४॥

भावार्थः—राजा दुराचारियों को दण्ड देकर कारागार में रखकर प्रजा की रक्षा करे ॥४॥

अपिं नह्यामि ते बाहू अपिं नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्यं मन्युना तेनं तेऽवधिषं हविः ॥५॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (ते) तेरी (बाहू) दोनों भुजाओं को (अपि नह्यामि) बांधे देता हूं और (आस्यम्) मुख को (अपि) भी (नह्यामि) बन्द करता हूं। (घोरस्य) भयंकर (अग्नेः) तेजस्वी सेनापति के (तेन मन्युना, उस क्रोध से (ते) तेरे (हविः) भोजनादि ग्राह्य पदार्थ को (अवधिषम्) मैं ने नष्ट कर दिया है ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र चार के समान ॥५॥

सूक्तम् ॥७१॥

१ ॥ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिगुणोपदेशः—सेनापति के गुणों का उपदेश ॥

परिं त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥१॥

भाषार्थः—(सहस्य) हे बल के हितकारी ! (अग्ने) तेजस्वी सेनापति ! (पुरम्) दुर्गरूप, (विप्रम्) बुद्धिमान्, (धृषद्वर्णम्) अभयस्वभाव, (भङ्गुरवतः) नाश करने वाले कर्म से युक्त [कपटी] के (हन्तारम्) नाश करने वाले (त्वा) तुझ-को (दिवे दिवे) प्रति दिन (वयम्) हम (परि धीमहि) परिधी बनाते हैं ॥१॥

भावार्थः—प्रजागण शूर वीर सेनापति पर विश्वास करके शत्रुओं के नाश करने में उससे सहायता लेवें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । ८७ । २२ ॥

सूक्तम् ॥७२॥

१–३॥ इन्द्रोदेवता ॥ १ अनुष्टुप्, २, ३ त्रिष्टुप् ॥

पुरुषार्थकरणोपदेशः—पुरुषार्थ करने का उपदेश ॥

उत् तिष्ठतावं पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदिं श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—[हे मनुष्यो !] (उत् तिष्ठत) खड़े हो जाओ, (इन्द्रस्य) बड़े ऐश्वर्य वाले मनुष्य के (ऋत्वियम्) सब काल में मिलने वाले (भागम्) ऐश्वर्य समूह को (अव पश्यत) खोजो। (यदि) जो (श्रोतम्) वह परिपक्व [निश्चित] है, (जुहोतन) ग्रहण करो, (यदि) जो (अश्रातम्)। अपरिपक्व [अनिश्चित] है, [उसे पक्का, निश्चित करके] (ममत्तन) तृप्त [भरपूर] करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े मनुष्यों के समान निश्चित ऐश्वर्य प्राप्त करें, और अनिश्चितकर्म को विवेकपूर्वक निश्चित करके समाप्त करें ॥१॥

मन्त्र १—३ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१० । १७९ । १-३ ॥

श्रातं हविरो षिन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् मनुष्य ! (श्रातम्) परिपक्व [निश्चित] (हविः) ग्राह्यकर्म को (ओ) अवश्य (सु) भले प्रकार से (प्र याहि) प्राप्त हो, [जैसे] (सूरः) सूर्य (अध्वनः) अपने मार्ग के (मध्यम्) मध्य भाग को (वि) विशेष करके (जगाम) प्राप्त हुआ है। (सखायः) सब मित्र (निधिभिः) अनेक निधियों के साथ (त्वा) तेरे (परि आसते) चारों ओर बैठते हैं, (न) जैसे (कुलपाः) कुल रक्षक लोग (चरन्तम्) चलते फिरते (व्राजपतिम्) घर के स्वामी को ॥२॥

भावार्थः मनुष्य दुपहर के सूर्य के समान तेजस्वी होकर अपने कर्तव्य को पूरा करें, पुरुषार्थी मनुष्य के ही अन्य सब लोग सहायक होते हैं ॥२॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

भाषार्थः—(ऊधनि) [दूसरों को] चलाने वा सींचने में (श्रातम्) परिपक्वता [निश्चय पन] (अग्नौ) अग्नि अर्थात् पराक्रम में (श्रातम्) परिपक्वता (मन्ये) मैं मानता हूं, [जो] (ऋतम्) सत्य धर्म है, (तत्) उसको (नवीयः) अधिक स्तुतियोग्य, (सुश्रृतम्) सुपरिपक्व [सुनिश्चित कर्म] (मन्ये) मैं मानता हूं। (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (पुरुकृत्) हे अनेक कर्म करने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्यवाले मनुष्य ! (जुषाणः) प्रसन्न होकर (माध्यन्दिनस्य) मध्य दिन के (सवनस्य) काल वा स्थान की (दध्नः) धारण शक्ति का (पिब) पान कर ॥३॥

भावार्थः - मनुष्य सत्य वैदिक धर्म में पूर्ण निष्ठा रखकर परोपकार और पराक्रम करके सूर्य के समान तेजस्वी हो ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥७३॥

१—११ ॥ १—५ अश्विनौ; ६, ७ सविता; ८, ११ अघ्न्या; ९, १० अग्निर्देवता ॥ १, ४ जगती; २ बृहती; ३, ५-११ त्रिष्टुप् ॥

मनुष्यकर्तव्योपदेशः—मनुष्य के कर्तव्य का उपदेश ॥

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥१॥

भाषार्थः (वृषणा) हे दोनों पराक्रमियो ! (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि [के समान तेजस्वी], (दिवः) आकाश के [मध्य] (रथी) रथवाला (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त (घर्मः) प्रकाशमान [आचार्य वर्त्तमान है] (वाम्) तुम दोनों की (इषे) इच्छापूर्ति के लिये (मधु) ज्ञान (दुह्यते) परिपूर्ण किया जाता है। (पुरुदमासः) बड़े दमनशील, (कारवः) काम करने वाले (वयम्) हम लोग (वाम्) तुम दोनों को (हि) ही, (अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुष ! (सधमादेषु) अपने उत्सवों पर (हवामहे) बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थः सब स्त्री पुरुष विज्ञानी शिक्षकों से विविध विद्यायें प्राप्त करें। और सब लोग ऐसे विद्वान् स्त्री पुरुषों के सत्संग से लाभ उठावें ॥१॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों के लिये (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्नि, अग्नि समान तेजस्वी (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त, (घर्मः) प्रकाशमान [आचार्य वर्तमान है], (आ गतम्) तुम दोनों आवो। (वृषणा) हे दोनों पराक्रमियो ! और (दस्रा) हे दर्शनीयो वा रोगनाशको ! (धेनवः) वेदवाणियां (नूनम्) अवश्य (इह) यहां पर (दुह्यन्ते) दुही जाती हैं, और (वेधसः) बुद्धिमान् लोग (मदन्ति) आनन्द पाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष वेद विद्या द्वारा विज्ञानी होकर कीर्तिमान् होते हैं, बुद्धिमान् उनसे उपदेश पाकर लाभ उठाते हैं ॥२॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यासा रिहन्ति ॥३॥

भाषार्थः—(देवेषु) उत्तम गुणों में वर्तमान, (अश्विनोः) दोनों चतुर स्त्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषों का (यः) जो (स्वाहाकृतः) सुन्दरवाणी से सिद्ध किया गया (शुचिः) पवित्र (देवपानः) विद्वानों से रक्षा योग्य (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (चमसः) मेघ [के समान उपकारी] है। (तम् उ) उसी [उत्तम व्यवहार को] (जुषाणः) सेवन करते हुए (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर [निरालसी] लोग (गन्धर्वस्य) पृथिवी रक्षक सूर्य के (आस्ना) मुख से [महा तेजस्वी होकर] (प्रति) प्रत्यक्ष (रिहन्ति) पूजते हैं ॥३॥

भावार्थः विद्वान् स्त्री पुरुषों के उत्तम व्यवहारों का अनुकरण करके पुरुषार्थी लोग उनको सराहते हैं ॥३॥

यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥४॥

भाषार्थः—(यत्) जैसे (उस्रियासु) गौवों में (घृतम्) घृत और (पयः) दूध (आहुतम्) दिया गया है, (अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (आ गतम्) आओ, (अयम् सः) वही (वाम्) तुम दोनों का (भागः) भाग [सेवनीय व्यवहार] है। (माध्वी, हे मधुविद्या [वेद विद्या] के जानने वाले, (विदथस्य) जानने योग्य कर्म के (धर्तारा) धारण करने वाले, (सत्पती) सत्पुरुषों के रक्षा करने वाले ! तुम दोनों (दिवः) सूर्य के (रोचने) प्रकाश में (तप्तम्) ऐश्वर्ययुक्त (घर्मम्) प्रकाशमान [धर्म] का (पिबतम्) पान करो ॥४॥

भावार्थः जैसे गौ से घृत दुग्ध आदि सार पदार्थ लिया जाता है, वैसे ही विद्वान् स्त्री पुरुष संसार के सब पदार्थों से तत्त्वज्ञान प्राप्त करें, और जैसे सूर्य के प्रकाश में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे ही ब्रह्म विद्या का प्रकाश करके आनन्दित होवें ॥४॥

तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनायां वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥५॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे चतुर स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों को (स्वहोता) धन देने वाला, (तप्तः) ऐश्वर्ययुक्त (घर्मः) प्रकाशमान धर्म (नक्षतु) व्याप्त होवे, (पयस्वान्) ज्ञानवान् (अध्वर्युः) अहिंसा कर्म चाहने वाला [वह धर्म] (वाम्) तुम दोनों के लिये (प्रचरतु) प्रचरित होवे। तुम दोनों (तनायाः) उपकारी विद्या के (दुग्धस्य) परिपूर्ण (मधोः) मधुविद्या [ईश्वर ज्ञान] की (वीतम्) प्राप्ति करो और (पातम्) रक्षा करो, [जैसे] (उस्रियायाः) गौ के (पयसः) दूध की [प्राप्ति और रक्षा करते है] ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - स्त्री पुरुषों को योग्य है कि वे धर्मनिष्ठ होकर विद्या प्राप्त करके सर्वहितकारी कामों में सदा प्रवृत्त रहें ॥५॥

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥६॥

भाषार्थः—(गोधुक्) हे विद्या के दोहने वाले विद्वान् ! (पयसा) विज्ञान से (ओषम्) अन्धकार दाहक व्यवहार को (घर्मे) प्रकाशमान यज्ञ के बीच (उप) आदर से (द्रव) प्राप्त हो, और (आ) सब ओर से (सिञ्च) सींच [जैसे] (उस्रियायाः) गौ के (पयः) दूध को। (वरेण्यः) श्रेष्ठ (सविता) सब के चलाने वाले परमेश्वर ने (नाकम्) मोक्ष सुख का (वि अख्यत्) व्याख्यान किया है, वही (उषसः) अन्धकार नाशक उषा के (अनुप्रयाणम्) निरन्तर गमन का (वि) विशेष करके (राजति) राजा होता है ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य गौ के दूध के समान तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके सत्कर्मों में प्रकाश करे। जैसे सूर्य का प्रकाश लगातार सब देशों पर चला आता है, उसी प्रकार परमात्मा ने सब के लिये मोक्ष का उपदेश वेद द्वारा किया है ॥६॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥७॥

भाषार्थः - (सुदुघाम्) अच्छे प्रकार कामनायें पूरी करनेवाली (एताम्) इस (धेनुम्) विद्या को (उप ह्वये) मैं स्वीकार करता हूं, (उत) वैसेही (सुहस्तः) हस्त-क्रिया में चतुर (गोधुक्) विद्या को दोहने वाला [विद्वान्] (एनाम्) इस [विद्या] को (दोहत्) दुहे। (सविता) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (सवम्) ऐश्वर्य को (नः) हमारे लिये (साविषत्) उत्पन्न करे। (अभीद्धः) सब ओर प्रकाशमान (घर्मः) प्रतापी परमेश्वर ने (तत् उ) उस सब को (सु) अच्छे प्रकार (प्र वोचत्) उपदेश किया है ॥७॥

भावार्थः—सब मनुष्य कल्याणी वेदवाणी का पठन पाठन करके ऐश्वर्य प्राप्त करें। जिस प्रकार परमेश्वर ने उसका उपदेश किया है ॥७॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—१। १६४। २६।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(हिङ्कृण्वती) गति वा वृद्धि करने वाली, (वसुपत्नी) धन की रक्षा करने वाली, (वसूनाम्) श्रेष्ठों के बीच (वत्सम्) उपदेशक पुरुष को (इच्छन्ती) चाहने वाली [वेदवाणी] (मनसा) विज्ञान के साथ (न्यागन्) निश्चय करके प्राप्त हुई है। (इयम्) यह (अघ्न्या) हिंसा न करने वाली विद्या (अश्विभ्याम्) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों के लिये (पयः) विज्ञान को (दुहाम्) परिपूर्ण करे, (सा) वही [विद्या] (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्धताम्) बढ़े ॥८॥

भावार्थः—यह जो वेदवाणी संसार का उपकार करती है, उसको सब स्त्री पुरुष प्राप्त होकर यथावत् वृद्धि करें ॥८॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१। १६४। २७॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥९॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे बिजुली सदृश उत्तम गुण वाले राजन्! (जुष्टः) सेवा किया गया वा प्रसन्न किया गया, (दमूनाः) शम दम आदि से युक्त, (अतिथिः) सदा गतिशील [महापुरुषार्थी], (विद्वान्) विद्वान् तू (नः) हमारे (दुरोणे) घर में वर्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) उत्तम दान को (उप याहि) सादर प्राप्त हो। और (शत्रूयताम्) शत्रु समान आचरण करने वालों की (विश्वाः) सब (अभियुजः) चढ़ाई करती हुई सेनाओं को (विहत्य) अनेक प्रकार से मार कर (भोजनानि) पालन साधनों को (आ) सब ओर से (भर) धारण कर ॥९॥

भावार्थः—सब प्रजागण धर्मात्मा पराक्रमी राजा को सदा प्रसन्न रक्खें, जिससे वह शत्रुओं को जीत कर प्रजापालन करता रहे ॥९॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है ५। ४। ५॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥१०॥

भाषार्थः—(शर्ध) हे बलवान् (अग्ने) विद्वान् राजन्! (महते) हमारे बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (तव) तेरे (द्युम्नानि) यश वा धन (उत्तमानि) अति ऊंचे (सन्तु) होवें। (जास्पत्यम्) [हमारे] पत्नीपतिधर्म [गृहस्थ आश्रम] को (सुयमम्) सुन्दर नियम युक्त (सम् आ) बहुत ही भले प्रकार (कृणुष्व) कर, (शत्रूयताम्) शत्रुसमान आचरण करने वालों के (महांसि) बलों को (अभि तिष्ठ) परास्त कर दे ॥१०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः - संयमी पुरुषार्थी स्त्री पुरुष बड़ा ऐश्वर्य, कीर्ति, बल प्राप्त करके शत्रुओं को जीत कर प्रजा पालन करें ॥१०॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है —५ । २८ । ३ । और यजु० –३३ । १२ ॥

सुयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥११॥

भाषार्थः—[हे प्रजा, सब स्त्री पुरुषो !] (सुयवसात्) सुन्दर अन्न आदि भोगने वाली और (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूयाः) हो, (अध) फिर (वयम्) हमलोग (भगवन्तः) बड़े ऐश्वर्य वाले (स्याम) होवें । (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा ! (विश्वदानीम्) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू [हिंसा न करने वाली गौ के समान] (तृणम्) घास [अल्प मूल्य पदार्थ] को (अद्धि) खा और (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को (पिब) पी । ११॥

भावार्थः—जैसे गौ अल्प मूल्य घास खाकर और शुद्ध जल पीकर दूध घी आदि देकर उपकार करती है, वैसे ही मनुष्य थोड़े व्यय से शुद्ध आहार विहार करके संसार का सदा उपकार करें ॥११॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—१ । १६४ । ४० ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥७४॥

१-४ ॥ १, २ वैद्यः, ३ त्वष्टा, ४ जातवेदा देवता ॥ १--३ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् ॥

शारीरिकमानसिकरोगनिवारणोपदेशः—शारीरिक और मानसिक रोग हटाने का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥१॥

भाषार्थः—(लोहिनीनाम्) रक्तवर्ण (अपचिताम्) गण्डमाला आदि रोगों की (माता) माता (कृष्णा) काले रंग वाली है, (इति) यह (शुश्रुम) हमने सुना है। (अहम्) मैं (मुनेः) मननशील (देवस्य) विद्वान् वैद्य के (मूलेन) मूल ग्रन्थ से (ताः सर्वाः) उन सब को (विध्यामि) छेदता हूं ॥१॥

भावार्थः—गण्डमाला आदि चर्म रोगों में पहिले काले धब्बे पड़ते, फिर रक्त वर्ण होजाते हैं, सद्वैद्य बड़े बड़े वैद्यों के मूल ग्रन्थों से कारण समझकर उनका छेदन आदि करे इसी प्रकार मनुष्य आत्मदोषों को हटावे ॥१॥

(मूल) ओषधि विशेष भी है जिसे पीपलामूल कहते हैं ॥
इस सूक्त का मिलान अ० सू० ६ । ८३ से करो ॥

विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।
इदं जघन्यामाभरा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥२॥

भाषार्थः—(आसाम्) इन [गण्डमालाओं] में से (प्रथमाम्) पहिली को (विध्यामि) छेदता हूँ (उत) और (मध्यमाम्) बीचवाली को (विध्यामि) तोड़ता हूं। (आसाम्) इनमें से (जघन्याम्) नीचे वाली को (इदम्) अभी (आ) सब ओर (छिनद्मि) मैं छिन्न भिन्न करता हूं (इव) जैसे (स्तुकाम्) उनके बाल को ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य रोगों के नाश करने में बहुत शीघ्रता करें ॥२॥

त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि तं ईर्ष्यामनीनदम् ।
अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ॥३॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य !] (त्वाष्ट्रेण) सब के बनाने वाले परमेश्वर के (वचसा) वचन से (अहम्) मैंने (ते) तेरी (ईर्ष्याम्) ईर्ष्या को (वि अमीमदम्) मद रहित करदिया है (अथो) और (पते) हे स्वामिन् ! [परमेश्वर !] (यः) जो (ते) तेरा (मन्युः) क्रोध है, (ते) तेरे (तम्) उसको (उ) अवश्य (शमयामसि) हम शान्त करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे वैद्य द्वारा शारीरिक रोगों की चिकित्सा की जाती है, वैसे ही वेदादि शास्त्रों द्वारा मानसिक रोगों की निवृत्ति करनी चाहिये, जिससे परमेश्वर कभी क्रोध न करे ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥४॥

भाषार्थः—(व्रतपते) हे उत्तम नियमों के रक्षक परमेश्वर ! [वा विद्वान् !] (त्वम्) तू (व्रतेन) उत्तम नियम से (समक्तः) संगति करता हुआ (सुमनाः) प्रसन्न चित्त होकर (विश्वाहा) सब दिन (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध बुद्धि वा धन वाले ! (प्रजावन्तः) उत्तम प्रजाओं वाले (सर्वे वयम्) हम सब लोग (समिद्धम्) अच्छी भांति प्रकाशमान (तम् त्वा) उस तुझको (उप सदेम) पूजा करते रहें ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर और विद्वानों के वेदोक्त धर्मों पर चलकर सामाजिक उन्नति करके सदा प्रसन्न रहें ॥४॥

सूक्तम् ॥७५॥

१–२ प्रजा देवताः ॥ १ त्रिष्टुप्, २ मध्ये ज्योतिस्त्रिष्टुप् ॥

सामाजिकोन्नत्युपदेशः सामाजिक उन्नति का उपदेश ॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥१॥

भाषार्थः—[हे मनुष्य प्रजाओ !] (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (सुयवसे) सुन्दर यव आदि अन्न वाले [घर] में [अन्न] (रुशन्तीः) खाती हुई, और (सुप्रपाणे) सुन्दर जल स्थान में (शुद्धाः) शुद्ध (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (वः) तुमको (स्तेनः) चोर (मा ईशत) वश में न करे, और (मा) न (अघशंसः) बुरा चीतने वाला, डाकू उचक्का आदि [वश में करे], (रुद्रस्य) पीड़ानाशक परमेश्वर की (हेतिः) हनन शक्ति (वः) तुमको (परि) सब ओर से (वृणक्तु) त्यागे रहे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यायें उपार्जन करके अपनी सन्तानों को उत्तम शिक्षा देते हुए और अन्न जल आदि का सुप्रबन्ध करते हुए सदा हृष्ट पुष्ट बुद्धिमान् और धर्मिष्ठ रहें, जिस से उन्हें न चोर आदि सता सके और न परमेश्वर दण्ड देवे ॥१॥

यह मन्त्र आ चुका है अ० ४ । २१ । ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्ज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्देवेभिरेत ।
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥२॥

भाषार्थः—[हे प्रजाओ ! तुम] (पदज्ञाः) पगदंडी [वा अपने पद] को जानने वाली, (रमतयः) क्रीड़ा करने वाली, (संहिताः) यथावत् हित करने वाली वा परस्पर मिली हुई और (विश्वनाम्नीः) व्याप्त नामवाली (स्थ) हो। (देवीः) हे दिव्य गुण वाली देवियो ! (देवेभिः) उत्तम गुणों के साथ (मा) मुझ को (उप) समीप से (आ इत) प्राप्त होओ। (इमम्) इस (गोष्ठम्) वाचनालय को, (इदम्) इस (सदः) बैठक को और (अस्मान्) हमको (घृतेन) प्रकाश से (सम्) यथावत् (उक्षत) बढ़ाओ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर और विद्वानों के मार्ग और अपनी स्थिति को जान कर परस्पर हित करके सामाजिक उन्नति करें ॥२॥

सूक्तम् ॥७६॥

१–६ ॥ १–५ वैद्यः, ६ इन्द्रो देवता ॥ १,३-५ अनुष्टुप्, २ द्विपदा जगती, ६ त्रिष्टुप् ॥

१-५ ॥ रोगनाशस्य, ६ मनुष्यधर्मस्योपदेशः—१–५ रोग नाश और ६ मनुष्य-धर्म का उपदेश ॥

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥१॥

भाषार्थः—(आ) सब ओर से (सुस्रसः) बहुत बहनेवाले पदार्थ से (सुस्रसः) बहुत बहने वाली और (असतीभ्यः) बहुत बुरी [पीड़ाओं] से (असत्तराः) अधिक बुरी, (सेहोः) सेहु [नीरस वस्तु विशेष] से (अरसतराः) नीरस [शुष्कस्वभाव] और (लवणात्) लवण से (विक्लेदीयसीः) अधिक गल जानेवाली [गण्डमालाओं] को [नष्ट कर दिया है—म०३] ॥१॥

भावार्थः मन्त्र १ तथा २ का सम्बन्ध (निर्हाः) "नष्ट कर दिया है" क्रिया मन्त्र ३ के साथ है। जैसे गंडमालायें कभी सूख जाती, कभी हरी हो जाती हैं, ऐसी ही कुवासनायें कभी निर्बल और कभी सबल हो जाती हैं ॥१॥

या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः ।
विजाम्नि या अपचितः स्वयं सस्रसः ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(याः) जो (ग्रैव्याः) गले पर (अथो) और (याः) जो (उपपक्ष्याः) पक्खों [कन्धों] के जोड़ों पर (अपचितः) गण्डमालायें [फुड़ियां] हैं। और (याः) जो (स्वयंस्रसः) अपने आप बहने वाली (अपचितः) फुंसियां (विजास्नि) गुह्य स्थान पर हैं [उनको नष्ट कर दिया है—म० ३] ॥२॥

भावार्थः—दुःखदायी रोगों को वैद्य लोग नष्ट करें ॥२॥

यः कीकंसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदिं श्रितः ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो [क्षय रोग] (कीकसाः) हंसली की हड्डियों को (प्रशृणाति) तोड़ देता है और (तलीद्यम्) हथेली और तलवे के चर्म पर (अवतिष्ठति) जम जाता है। (च) और (यः) जो (कः) कोई (ककुदि) शिर में (श्रितः) ठहरा हुआ है, (तम्) उस (सर्वम्) सब (जायान्यम्) क्षय रोग को [उस वैद्य ने] (निः) निरन्तर (हाः) नष्ट कर दिया है ॥३॥

भावार्थः वैद्य रोगों के लक्षण जान कर उचित चिकित्सा करे ॥३॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विंशति पूरुषम् ।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षंतस्य च ॥४॥

भाषार्थः—(पक्षी) पंख वाला [उड़ाऊ] (जायान्यः) क्षयरोग (पतति) उड़ता है, (सः) वह (पूरुषम्) पुरुष में (आ विशति) प्रवेश कर जाता है। (तत्) यह (अक्षितस्य) भीतर व्यापे हुए (च) और (सुक्षतस्य) बहुत फोड़ों वाले, (उभयोः) दोनों प्रकार के [क्षयरोग] की (भेषजम्) ओषधि है ॥४॥

भावार्थः— सद्वैद्य भीतरी और बाहिरी लक्षणों से रोग की पहिचान कर निवृत्ति करे ॥४॥

विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे ।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्यं कृण्मो हविर्गृहे ॥५॥

भाषार्थः - (जायान्य) हे क्षयरोग ! (वै) निश्चय करके (ते) तेरा (जानम्) जन्मस्थान (विद्म) हम जानते हैं, (यतः) जहां से, (जायान्य) हे क्षयरोग ! (जायसे) तू उत्पन्न होता है। (त्वम्) तू (तत्र) वहां पर (कथम् ह) किस प्रकार से ही [मनुष्य को] (हनः) मार सकता है, (यस्य) जिसके (गृहे) घर में (हविः) ग्राह्य कर्म को (कृण्मः) हम करते हैं ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो मनुष्य रोगों का कारण जान कर पथ्य का सेवन और कुपथ्य का त्याग करते हैं, वे सदा स्वस्थ रहते हैं ॥५॥

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६॥

भाषार्थः—(धृषत्) हे निर्भय ! (शूर) हे शूर ! (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवान् मनुष्य ! (वसूनाम्) धनों के निमित्त (समरे) युद्ध में (वृत्रहा) शत्रुनाशक हो कर (कलशे) [संसाररूप] कलश में [वर्तमान] (सोमम्) अमृत रस को (पिब) पी । (माध्यन्दिने) मध्य दिन के (सवने) काल वा स्थान में (आ वृषस्व) सब प्रकार बली हो, (रयिष्ठानः) धनों का स्थान तू (रयिम्) धन को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण कर ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि पथ्य कर्मों से स्वस्थ, बलवान् और मध्याह्न सूर्य के समान तेजस्वी होकर विद्या धन और सुवर्ण आदि धन संचय करके सब को सुखी रक्खे ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ४७ । ६ ॥

सूक्तम् ॥७७॥

१—३ ॥ मरुतो देवताः ॥ १ गायत्री; २, ३ त्रिष्टुप् ॥

वीराणां कर्तव्योपदेशः—वीरों के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । अस्माकोती रिशादसः । १॥

भाषार्थः—(सांतपताः) हे बड़े ऐश्वर्य में रहने वाले ! (रिशादसः) हे हिंसकों के मारने वाले (मरुतः) शूर विद्वान् मनुष्यो ! (अस्माक) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये (इदम्) इस और (तत्) उस (हविः) ग्रहणयोग्य कर्म का (जुजुष्टन) स्वीकार करो ॥१॥

भावार्थः—पराक्रमी विद्वान् मनुष्य प्रजा की पुकार को सब प्रकार सुनकर रक्षा करें ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० १ । २० । १ । से करो ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—७ । ५९ । ९ ॥

यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥२ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वसवः) हे वसाने वाले (मरुतः) शूरो ! (यः) जो (दुर्हणायुः) अत्यन्त क्रोध को प्राप्त हुआ (मर्तः) मनुष्य (चित्तानि) हमारे चित्तों के (तिरः) आड़े होकर (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है। (सः) वह [हमारे लिये] (द्रुहः) द्रोह [अनिष्ट] के (पाशान्) फन्दों को (प्रति) प्रत्यक्ष (मुञ्चताम्) छोड़ देवे, (तम्) उसे (तपिष्ठेन) अत्यन्त तपाने वाले (तपसा) ऐश्वर्य वा तुपक आदि हथियार से (हन्तन) मार डालो ॥२॥

भावार्थः- शूर वीर पुरुष दुष्टों का नाश करके श्रेष्ठों का पालन करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—७। ५९। ८॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः। ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥३॥

भाषार्थः—(संवत्सरीणाः) पूरे निवास काल तक [जीवन भर] प्रार्थना किये गये, (स्वर्काः) बड़े बज्रों वाले (उरुक्षयाः) बड़े घरों वाले, (सगणाः) सेनाओं वाले, (मानुषासः) मनन शील (मरुतः) शूर पुरुष हैं। (ते) वे (सांतपनाः) बड़े ऐश्वर्य वाले, (मत्सराः) प्रसन्न रहने वाले, (मादयिष्णवः) प्रसन्न रखने वाले पुरुष (अस्मत्) हम से (एनसः) पाप के (पाशान्) फन्दों को (प्र मुञ्चन्तु) छुड़ा देवें ॥३॥

भावार्थः—वे शूर वीर पुरुष धन्य हैं जो प्रसन्नता से पुरुषार्थ करके सब को क्लेशों से छुड़ा कर सुखी करते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥७८॥

१–२ अग्निर्देवता ॥ १ स्वराड् गायत्री; २ त्रिष्टुप् ॥

आत्मोन्नत्युपदेशः—आत्मा की उन्नति का उपदेश ॥

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्।
इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥ १॥

भाषार्थः—[हे आत्मा !] (ते) तेरी (रशनाम्) रसरी को, (योक्त्रम्) जोते वा डोरी को और (नियोजनम्) बन्धन गांठ को (वि) विशेष करके (वि) विविध प्रकार (वि मुञ्चामि) मैं खोलता हूं। (अग्ने) हे अग्नि [समान बलवान् आत्मा !] (इह) यहां पर (एव) ही (त्वम्) तू (अजस्रः) दुःखरहित होकर (एधि) रह ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी योगी जन तीन गांठों अर्थात् आध्यात्मिक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधिदैविक और आधिभौतिक क्लेशों से छूट जाते हैं, वे संसार में रह कर सब को सुखी रखते हैं ॥१॥

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे अग्नि [तुल्य पराक्रमी आत्मा !] (अस्मै) इस [प्राणी] के लिये (क्षत्राणि) अनेक बलों को (धारयन्तम्) धारण करने वाले (त्वा) तुझको (दैव्येन) परमेश्वर से पाये हुए (ब्रह्मणा) वेदज्ञान से (युनज्मि) मैं नियुक्त करता हूँ। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इह) यहां पर (द्रविणा) अनेक धन (भद्रम्) आनन्द से (दीदिहि) प्रकाशित कर, (इमम्) इस [मनुष्य] को (देवतासु) विद्वानों के बीच (हविर्दाम्) देने योग्य पदार्थ का देने वाला (प्र वोचः) तू ने सूचित किया है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य ब्रह्मचर्य योगाभ्यास आदि शुभ गुणों से अपने बलों को बढ़ा कर परोपकारी हो कर कीर्त्ति बढ़ावें ॥२॥

सूक्तम् ॥७९॥

१—४ ॥ अमावास्या देवता ॥ १, ३–४ त्रिष्टुप्; २ विराट् ॥

परमेश्वरगुणोपदेशः - परमेश्वर के गुणों का उपदेश ॥

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥

भाषार्थः - (अमावास्ये) हे अमावास्या ! [सब के साथ बसी हुई शक्ति परमेश्वर !] (यत्) जिस कारण से (ते) तेरी (महित्वा) महिमा से (संवसन्तः) यथावत् वसते हुए (देवाः) विद्वानों ने (भागधेयम्) अपना सेवनीय काम (अकृण्वन्) किया है। (तेन) उसी से, (विश्ववारे) हे सब से स्वीकार करने योग्य शक्ति! (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को (पिपृहि) पूरा कर, (सुभगे) हे बड़े ऐश्वर्यवाली ! (नः) हमें (सुवीरम्) बड़े वीरों वाला (रयिम्) धन (धेहि) दान कर ॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में (अमावास्ये, संवसन्तः) पद [वस—रहना, ढाकना] धातु से बने हैं। विद्वान् लोग सर्वान्तर्यामी परमेश्वर में आश्रय लेकर सृष्टि के सब पदार्थों से उपकार करके सब को वीर पुरुषार्थी और धनी बनावें ॥१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध आ चुका—अ० ७। २०। ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥२॥

भाषार्थः (अहम्) मैं (एव) ही (अमावास्या) अमावास्या [सब के साथ वसी हुई शक्ति] (अस्मि) हूं, (मयि) मुझ में [वर्तमान होकर] (इमे) यह सब (सुकृतः) सुकर्मी लोग (माम्) लक्ष्मी में (आ वसन्ति) यथावत् वास करते हैं। (मयि) मुझ में (उभये) दोनों प्रकार के (सर्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ अर्थात् (साध्याः) साधने योग्य [स्थावर] (च) और (इन्द्रज्येष्ठाः) जीव को प्रधान रखने वाले [जंगम] पदार्थ (सम्=समेत्य) मिलकर (अगच्छन्त) प्राप्त हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (अमावस्या, वसन्ति) पद [वस—रहना, ढांकना] धातु से बने हैं। परमेश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि वह अन्तर्यामी होकर समस्त, चर और अचर संसार को अपने वश में रखता है ॥२॥

यजुर्वेद अ० ४० म० १ में ऐसा वचन है।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ॥

(इदम् सर्वम्) यह सब, (यत् किच) जो कुछ (जगत्याम्) सृष्टि में (जगत्) जगत् है, (ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) वसा हुआ है ॥

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३॥

भाषार्थः (वसूनाम्) निवास स्थानों [लोकों] का (संगमनी) संयोग करने वाली, (ऊर्जम्) पराक्रम और (पुष्टम्) पोषण और (वसु) धन (आवेशयन्ती) दान करती हुई (रात्री) सुख देने वाली शक्ति (आ अगन्) आई है। (अमावास्यायै) उस अमावास्या [सब के साथ वास करने वाली शक्ति, परमेश्वर] को (हविषा) आत्मदान [पूरण भक्ति] से (विधेम) हम पूजें, (ऊर्जम्) पराक्रम को (पयसा) ज्ञान के साथ (दुहाना) पूरण करती हुई वह (नः) हमें (आ अगन्) प्राप्त हुई है ॥३॥

भावार्थः इस मन्त्र में (अमावास्यायै, वसूनाम्, वसु) पद [वस रहना] धातु से बने हैं। जो मनुष्य परमेश्वर के उत्पन्न किये पदार्थों से पुरुषार्थ और भक्ति के साथ उपकार लेते हैं, वे ही ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥

भाषार्थः—(अमावास्ये) हे अमावास्या ! [सब के साथ निवास करने वाली शक्ति, परमेश्वर !] (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरे किसी ने (परिभूः) व्यापक होकर (एतानि) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवाले [आकार वाले] पदार्थों को (न) नहीं (जजान) उत्पन्न किया है। (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरा (जुहुमः) स्वीकार करते हैं, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) बने रहें ॥४॥

भावार्थः—परमेश्वर ही अनुपम, सर्वशक्तिमान् और सब सृष्टि का कर्त्ता है, उसी की शरण लेकर विद्या सुवर्ण आदि धन प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होवें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० १० । १२१ । १० । और यजुर्वेद—अ० २३ । ६५ ॥

सूक्तम् ॥८०॥

१—४ ॥ पौर्णमासी देवता ॥ १, ३, ४ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप् ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१॥

भाषार्थः -(पश्चात्) पीछे (पूर्णा) पूर्णा, (पुरस्तात्) पहिले (उत) और (मध्यतः) मध्य में (पूर्णा) पूर्ण (पौर्णमासी) पौर्णमासी [सम्पूर्ण परिमेय वा आकारवान् पदार्थों की आधारशक्ति, परमेश्वर] (उत् जिगाय) सब से उत्कृष्ट हुई है। (तस्याम्) उस [शक्ति] में (देवैः) उत्तम गुणों और (महित्वा) महिमा के साथ (संवसन्तः) निवास करते हुए हम (नाकस्य) सुख की (पृष्ठे) ऊंचाई पर [वा सिचाई में] (इषा) पुरुषार्थ से (सम्) यथावत् (मदेम) आनन्द भोगें ॥१॥

भावार्थः—परमेश्वर सृष्टि से पहिले और पीछे और मध्य में वर्तमान और सर्वोत्कृष्ट है, उसी के आश्रय से मनुष्य उत्तम गुणी होकर मोक्ष सुख प्राप्त करें ॥१॥

वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वयम्) हम लोग (वृषभम्) सर्वश्रेष्ठ, (वाजिनम्) महाबलवान् (पौर्णमासम्) पौर्णमास [सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों के आधार परमेश्वर] को (यजामहे) पूजते हैं। (सः) वह (नः) हमें (अक्षिताम्) विना घटी हुई और (अनुपदस्वतीम्) विना घटने वाली (रयिम्) सम्पत्ति (ददातु) देवे ॥२॥

भावार्थः मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करके पुरुषार्थ के साथ ऐश्वर्यवान् होवें ॥२॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् । ३॥

भाषार्थः—(प्रजापते) हे प्रजापालक परमेश्वर! ((त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरे किसी ने (परिभूः) व्यापक हो कर (एतानि) इन (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपवाले [आकार वाले] पदार्थों को (न) नहीं (जजान) उत्पन्न किया है। (यत्कामाः) जिस वस्तु की कामना वाले हम (ते) तेरा (जुहुमः) स्वीकार करते हैं, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) बने रहें ॥३॥

भावार्थः यह मन्त्र अ० ७। ७९। ४। में आ चुका है, (अमावास्ये) के स्थान पर यहां (प्रजापते) पद है, भावार्थ समान है ॥३॥

३ -(प्रजापते) हे प्रजापालक। अन्यद्गतम्—अ० ७। ७९। ४॥

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥४॥

भाषार्थः (पौर्णमासी) पौर्णमासी [सम्पूर्ण परिमेय पदार्थों की आधार शक्ति] (अह्नाम्) दिनों के बीच (रात्रीणाम्) रात्रियों के (अतिशर्वरेषु) अत्यन्त अन्धकारों में (प्रथमा) पहिली (यज्ञिया) पूजा योग्य (आसीत्) हुई है। (यज्ञिये) हे पूजायोग्य शक्ति! (ये) जो (त्वाम्) तुझे (यज्ञैः) पूजनीय व्यवहारों से (अर्धयन्ति) पूजते हैं, (अमी) यह सब [वर्तमान] और (ते) वे [आगे और पीछे होने वाले] (सुकृतः) सुकर्मी लोग (नाके) आनन्द में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होते हैं ॥४॥

भावार्थः- जो परमेश्वर सृष्टि और प्रलय से अनादि और अनन्त है, उसकी पूजा करके सब मनुष्य आनन्द पाते हैं ॥४॥

सूक्तम् ॥८१॥

१–६ ॥ १ सोमार्कौ; २–६ चन्द्रमा देवता ॥ १ जगती, २, ६ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः; ५ त्रिष्टुप् ज्योतिष्मती ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यचन्द्रलक्षणोपदेशः—सूर्य, चन्द्रमा के लक्षणों का उपदेश ॥

पूर्वापरं चरतो मायया॒तौ शिशू॒ क्रीड॑न्तौ॒ परि॑ यातोऽर्ण॒वम् ।
विश्वा॒न्यो भुव॑ना॒ वि च॑ष्ट ऋ॒तूँर॒न्यो वि॒दध॑ज्जायसे॒ नवः॑ ॥१॥

भाषार्थः—(एतौ) यह दोनों [सूर्य, चन्द्रमा] (पूर्वापरम्) आगे पीछे (मायया) बुद्धि से [ईश्वर नियम से] (चरतः) विचरते हैं, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (शिशू) [माता पिता के दुःख हटाने वाले] दो बालक [जैसे] (अर्णवम्) अन्तरिक्ष में (परि) चारों ओर (यातः) चलते हैं। (अन्यः) एक [सूर्य] (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (विचष्टे) देखता है, (अन्यः) दूसरा तू [चन्द्रमा] (ऋतून्) ऋतुओं को [अपनी गति से] (विदधत्) बनाता हुआ [शुक्ल पक्ष में] (नवः) नवीन (जायसे) प्रकट होता है ॥१॥

भावार्थः—सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर नियम से आकाश में घूमते हैं और सूर्य, चन्द्र आदि लोकों को प्रकाश पहुंचाता है। चन्द्रमा शुक्ल पक्ष के आरम्भ से एक एक कला बढ़कर वसन्त आदि ऋतुओं को बनाता है ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में हैं—म० १० । ८५ । १८, १९ ॥

नवो॑नवो भवसि जायमा॒नोऽह्नां॑ के॒तुरु॒षसा॑मे॒ष्यग्र॑म् ।
भा॒गं दे॒वेभ्यो॒ वि द॑धास्या॒यन् प्र च॑न्द्रम॒स्तिर॑से दी॒र्घमा॒युः ॥२॥

भाषार्थः—(चन्द्रमः) हे चन्द्रमा ! तू [शुक्लपक्ष में] (नवोनवः) नया नया (जायमानः) प्रकट होता हुआ (भवसि) रहता है, और (अह्नाम्) दिनों का (केतुः) जताने वाला तू (उषसाम्) उषाओं [प्रभातवेलाओं] के (अग्रम्) आगे (एषि) चलता है। और (आयन्) आता हुआ तू (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों को (भागम्) सेवनीय उत्तम गुण (वि दधासि) विविध प्रकार देता है, और (दीर्घम्) लम्बे (आयुः) जीवन काल को (प्र) अच्छे प्रकार (तिरसे) पार लगाता है ॥२॥

भावार्थः—चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में एक एक कला बढ़कर नया नया होता है और दिनों, अर्थात् प्रतिपदा आदि चान्द्र तिथियों को बनाता है। और पृथिवी के पदार्थों में जीवन शक्ति देकर पुष्टिकारक होता है ॥२॥

भगवान् यास्क का मत—निरु० ११ । ६ । "'नया नया प्रकट होता हुआ'—यह शुक्लपक्ष के आरम्भ से अभिप्राय है। दिनों को जताने वाला उषाओं के आगे चलता है, यह कृष्णपक्ष की समाप्ति से अभिप्राय है। कोई कहते हैं कि दूसरा पाद सूर्य देवता का है ॥"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥३॥

भाषार्थः—(सोमस्य) हे अमृत के (अंशो) बांटने वाले ! (युधाम्) हे युद्धों (पते) स्वामी ! (वै) निश्चय करके तू (अनूनः) न्यूनता रहित [सम्पूर्ण] (नाम) सिद्ध (असि) है। (दर्श) हे दर्शनीय ! (मा) मुझको (प्रजया) प्रजा से (च च) और (धनेन) धन से (अनूनम्) सम्पूर्ण (कृधि) कर ॥३॥

भावार्थः - पूर्ण चन्द्रमा अमृत का बांटने वाला इसलिये है कि उसकी किरणों से पार्थिव पदार्थों और प्राणियों में पोषण शक्ति पहुंचती है। और युद्धों का स्वामी इस कारण है कि पौर्णमासी को पार्थिव समुद्र का जल चन्द्रमा की ओर लहराता है, अथवा उल्लेखादि युद्धों अर्थात् ग्रह और तारा गणों के परस्पर निकट हो जाने वा टकरा जाने का काल चन्द्रमा की गति से निर्णय किया जाता है—देखो सूर्यसिद्धान्त, अध्याय ७। श्लोक ८-२३। मनुष्य पौष्टिक पदार्थों से उपकार लेकर प्रजावान् और धनवान् होवें ॥३॥

दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४॥

भाषार्थः [चन्द्र !] तू (दर्शः) दर्शनीय (असि) है, (दर्शतः) देखने का साधन (असि) है, (समग्रः) सम्पूर्ण गुण वाला, और (समन्तः) सम्पूर्ण कला वाला, (असि) है। (गोभिः) गौओं से, (अश्वैः) घोड़ों से, (पशुभिः) अन्य पशुओं से (प्रजया) सन्तान भृत्य आदि प्रजा से, (गृहैः) घरों से (धनेन) और धन से (समग्रः) सम्पूर्ण और (समन्तः) परिपूर्ण (भूयासम्) मैं रहूं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार पूर्णचन्द्र संसार का उपकार करता है, इसी प्रकार मनुष्य सब विधि से परिपूर्ण होकर परस्पर सहायक रहें ॥४॥

यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
मा वयं प्यायिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जो मनुष्य (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है, और (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) विरोध करते हैं, (त्वम्) तू [हे चन्द्र !] (तस्य) उसको (प्राणेन) प्राण से (आप्यायस्व) वियुक्त कर। (वयम्) हम लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गोभिः) गौओं से (अश्वैः) घोड़ों से, (पशुभिः) [हाथी भैंस भेड़ आदि] अन्य पशुओं से, (प्रजया) सन्तान भृत्य आदि से, (गृहैः) घरों से, और (धनेन) धन से (आ) सब प्रकार (प्याशिषीमहि) बढ़ें ॥५॥

भावार्थः— चन्द्रमा आदि के उत्तम गुण कुव्यवहार से दुःखदायक और सुव्यवहार से सुखदायक होते हैं ॥५॥

(प्याशिषीमहि) के स्थान पर पं० सेवकलाल के पुस्तक में (प्यायिषीमहि) पाठ है ॥

यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥६॥

भाषार्थः—(यम्) जिस (अंशुम्) अमृत [चन्द्रमा के रस] को (देवाः) प्रकाशमान सूर्य की किरणें [शुक्लपक्ष में] (आप्याययन्ति) बढ़ा देती हैं, और (यम्) जिस (अक्षितम्) बिना घटे हुए को (अक्षिताः) वे व्यापक [किरणें] (भक्षयन्ति) [कृष्ण पक्ष में] खा लेती हैं। (तेन) उसी [नियम] से (अस्मान्) हमको (भुवनस्य) संसार के (गोपाः) रक्षा करने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा, (वरुणः) श्रेष्ठ वैद्य और (बृहस्पतिः) बड़ी विद्याओं का स्वामी, आचार्य (आ) सब प्रकार (प्याययन्तु) बढ़ावें ॥६॥

भावार्थः—जिस नियम से सूर्य की किरणें चन्द्रमा के अनिष्ट रस को खींचकर अमृत उत्पन्न करती हैं, वैसे ही राजा आदि गुरुजन प्रजा के दुःखों का नाश करके सुख प्राप्त करावें ॥६॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अथाष्टमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥८२॥

१–६ ॥ अग्निर्देवता ॥ १, ४–६ त्रिष्टुप्; २ बृहती; ३ जगती ॥

वेदविज्ञानोपदेशः—वेद के विज्ञान का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (सुष्टुतिम्) बड़ी स्तुति वाले, (गव्यम्) पृथिवी वा स्वर्ग के लिये हितकारक, (आजिम्) प्राप्तियोग्य परमेश्वर को (अभि) भले प्रकार (अर्चत) पूजो, और (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रा) सुखों और (द्रविणानि) बलों और धनों को (धत्त) धारण करो। (देवता) प्रकाशमान तुम सब (इमम्) इस (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा को (नः) हम में (नयत) पहुंचाओ, (घृतस्य) प्रकाशित ज्ञान की (धाराः) धारायें [धारण शक्तियां वा प्रवाह] (मधुमत्) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त कर्म को (पवन्ताम्) शुद्ध करें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमेश्वरीय ज्ञान का उपदेश करके मनुष्यों का उपकार करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ४ । ५८ । १० ॥

मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२॥

भाषार्थः— मैं (अग्रे) सब से पहिले वर्तमान (अग्निम्) सर्वज्ञ परमेश्वर को (मयि) अपने में (क्षत्रेण) [दुःख से बचाने वाले] राज्य, (वर्चसा) प्रताप और (बलेन सह) बल के साथ (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। मैं (मयि) अपने में (प्रजाम्) प्रजा [सन्तान भृत्य आदि] को, (मयि) अपने में (आयुः) जीवन को, (मयि) अपने में (अग्निम्) अग्नि [शारीरिक और आत्मिक बल] को (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के द्वारा (दधामि) धारण करता हूं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य अनादि, अनन्त, परमात्मा का भरोसा रखकर शारीरिक, आत्मिक बल बढ़ा कर राज्य आदि की वृद्धि करें ॥२॥

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममरातु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥३॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (इह एव) यहां पर ही (रयिम्) धन को (अधि) अधिकार पूर्वक (धारय) पुष्ट कर, (पूर्वचित्ताः) पहिले से सोचने वाले [घाती], (निकारिणः) अपकारी [दुष्ट] लोग (त्वा) तुझ को (मा नि क्रन्) नीचा न करें। (अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (तुभ्यम्) तेरे (क्षत्रेण) [विघ्न से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचाने वाले] राज्य के साथ [हमारा] (सुयमम्) सुन्दर नियम वाला कर्म (अस्तु) होवे, (ते) तेरा (उपसत्ता) उपासक [आश्रित जन] (अनिष्टृतः) अजेय होकर (वर्धताम) बढ़ता रहे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य दूरदर्शी नीतिज्ञ हो कर घात लगाने वाले शत्रुओं से बच कर धर्म के साथ अपनी और प्रजा की उन्नति करें ॥३॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश । ४ ।

भाषार्थः—(अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (अनु) निरन्तर, [उसी] (प्रथमः) सब से पहिले वर्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान कराने वाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (अनु) निरन्तर (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (सूर्यः) [उसी] सूर्य [सब में व्यापक वा सब को चलाने वाले परमेश्वर] ने (उषसः) उषाओं में (अनु) लगातार, (रश्मीन्) व्यापक किरणों में (अनु) लगातार, (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी में (अनु) लगातार (आ विवेश) प्रवेश किया है ॥४॥

भावार्थः – जिस परमेश्वर ने सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों को रच कर सब को अपने वश में कर रक्खा है, वही सब मनुष्य का उपास्य है ॥४॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥५॥

भाषार्थः (अग्निः) सर्वव्यापक परमेश्वर ने (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) विकाश को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से, [उसी] (प्रथमः) सबसे पहिले वर्त्तमान (जातवेदाः) उत्पन्न वस्तुओं के ज्ञान करानेवाले परमेश्वर ने (अहानि) दिनों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (अख्यत्) प्रसिद्ध किया है। (च) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मीन्) व्यापक किरणों को (पुरुधा) अनेक प्रकार (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से और (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोकों को (प्रति) प्रत्यक्ष रूप से (आ) सब ओर (ततान) फैलाया है ॥५॥

भावार्थः सब जगत् के उत्पादक और सर्वनियन्ता ईश्वर की महिमा को विचारकर मनुष्य अपनी उन्नति करें ॥५॥

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वं मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नेप्त्यं१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (ते) तेरा (घृतम्) प्रकाश (दिव्ये) दिव्य [सूक्ष्म] कारण में और (सधस्थे) मिलकर ठहरने वाले कार्य रूप जगत् में है, (घृतेन) प्रकाश के साथ वर्तमान त्वा) तुझ को (मनुः) मननशील पुरुष (अद्य) अब (सम्) यथावत् (इन्धे) प्रकाशित करता है। (ते) तेरे (घृतम्) प्रकाश को (देवीः) उत्तम गुणवाली, (नप्त्यः) न गिरनेवाली प्रजाएं [हमें] (आ वहन्तु) प्राप्त करावें, (अग्ने) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (गावः) वेद वाणियां (तुभ्यम्) तेरे (घृतम्) प्रकाश को (दुहृताम्) परिपूर्ण करें ॥६॥

भावार्थः—विचारवान् पुरुष परमेश्वर की सत्ता और शक्ति को कारण और कार्य रूप जगत् में साक्षात् करके संसार को पुरुषार्थी बनावें ॥६॥

सूक्तम् ॥८३॥

१–४ ॥ वरुणो देवता ॥ १ अनुष्टुप्, २ पङ्क्तिः, ३,४ त्रिष्टुप् ॥

ईश्वर नियमोपदेशः—ईश्वर के नियम का उपदेश ॥

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मितः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् ! (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (ते) तेरा (हिरण्ययः) तेजोमय (गृहः) गृहण सामर्थ्य (अप्सु) सब प्राणों में (मितः) एक दूसरे के साथ [वर्तमान है] । (ततः) उसी से (धृतव्रतः) नियमों के धारण करनेवाले (राजा) राजा आप (सर्वा) सब (धामानि) बन्धनों को (मुञ्चतु) खोल देवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना से पापों को छोड़, धर्म में प्रवृत्त होकर क्लेशों से मुक्त होवें ॥१॥

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२॥

भाषार्थः—(राजन्) हे राजन् ! (वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (इतः) इस (धाम्नोधाम्नः) प्रत्येक बन्धन से (नः) हमें (मुञ्च) छुड़ा । (यत्) जिस कारण से (आपः) यह प्राण (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ [के तुल्य] हैं, (इति) इस प्रकार से, (वरुण) हे सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर ! (इति) इस प्रकार से, (यत्) जो कुछ (ऊचिम) हमने कहा है, [इसी कारण से] (वरुण) हे दुःखनिवारक ! (नः) हमें (ततः) उस [बन्धन] से (मुञ्च) छुड़ा ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—जो लोग परमात्मा को बन्धनमोचक जानकर विरुद्ध आचरण से गौके समान अपने और पराये प्राणों की रक्षा करते हैं, वे हृदय की गांठ खुल जाने से सदा आनन्दित रहते हैं ॥२॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२० । १८ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम । ३॥

भाषार्थः—(वरुण) हे स्वीकार करने योग्य ईश्वर ! (अस्मत्) हम से (उत्तमम्) ऊंचे वाले (पाशम्) पाश को (उत्) उपर से, (अधमम्) नीचे वाले को (अव) नीचे से, और (मध्यमम्) बीचवाले को (वि) विविध प्रकार से (श्रथाय) खोल दे । (आदित्य) हे सर्वत्र प्रकाशमान वा अखण्डनीय जगदीश्वर ! (अध) फिर (वयम्) हमलोग (ते) तेरे (व्रते) वरणीय नियम में (अदितये) अदीना पृथिवी के [राज्य के] लिये (अनागसः) निरपराधी (स्याम) होवें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन करके धर्माचरण से भूत, भविष्य् और वर्तमान क्लेशों को अलग करके सदा सुखी रहें ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है। १ । २४ । १५ और यजु० १२ । १२ । और अथर्ववेद में भी है—१८ । ४ । ६९ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

भाषार्थः—(वरुण) हे दुःख निवारक परमेश्वर ! (अस्मत्) हम से (सर्वान्) सब (पाशान्) फन्दों को (प्र मुञ्च) खोल दे, (ये) जो (उत्तमाः) ऊंचे और (ये) जो (अधमाः) नीचे [फन्दे] (वारुणः) दोष निवारक वरुण परमेश्वर से आये हैं । (दुष्वप्न्यम्) नींद में उठे कुविचार और (दुरितम्) विघ्न को (अस्मत्) हम से (निः स्व) निकाल दे, (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (गच्छेम) हम जावें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य भूत भविष्यत् क्लेशों का विचार करके दुष्कर्मों से बचते हैं, वे धर्मात्माओं में सत्कार पाते हैं ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से पीछे आ चुका है । अ० ६ । १२१ । १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥८४॥

१--३ ॥ १ अग्निः, २,३ इन्द्रो देवता ॥ १ जगती २, ३ त्रिष्टुप् ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह। विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ॥१॥

भाषार्थः- (अग्ने) हे प्रतापी राजन् (अनाधृष्यः) सब प्रकार अजेय, (जातवेदाः) बड़ा ज्ञानवान् वा धनवान्, (अमर्त्यः) अमर [यशस्वी], (विराट्) बड़ा ऐश्वर्यवान्, (क्षत्रभृत्) राज्यपोषक होकर तू (इह) यहां पर (दीदिहि) प्रकाशमान हो। (विश्वाः) सब (अमीवाः) पीड़ाओं को (प्रमुञ्चन्) छुड़ाता हुआ तू (मानुषीभिः) मनुष्यों की हितकारक (शिवाभिः) मुक्तियों के साथ (अद्य) अब (नः) हमारे (गयम्) घर की (परि) सब ओर से (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

भावार्थः—नीतिज्ञ, प्रतापी राजा प्रजाओं को कष्टों से मुक्त करके सदा सन्तुष्ट रख उन्नति करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२७। ७ ॥

इन्द्रं क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनमित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥२॥

भाषार्थः (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (चर्षणीनाम् वृषभ) हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! (वामम्) उत्तम (क्षत्रम्) राज्य और (ओजः अभि) पराक्रम के लिये (अजायथाः) तू उत्पन्न हुआ है। तू ने (अमित्रयन्तम्) अमित्र समान आचरण वाले (जनम्) लोगों को (अप अनुदः) हटा दिया है (उ) और (देवेभ्यः) विजय चाहने वालों के लिये (उरुम्) विस्तीर्ण (लोकम्) स्थान (अकृणोः) किया है ॥२॥

भावार्थः- राजा के पराक्रमी होने से सेनापति लोग और प्रजागण भी ओजस्वी होते हैं ॥२॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १८०। ३ ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (भीमः) भयानक (कुचरः) टेढ़े चलने वाले [ऊंचे नीचे, दायें बायें जाने वाले] (गिरिष्ठाः) पहाड़ों पर रहने वाले (मृगः न)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखेट ढूंढ़ने वाले] सिंह आदि के समान आप (परावतः) समीप देश और (परस्याः) दूर दिशा से (आ जगम्यात्) आते रहें। (तिग्मम्) उत्साह वाले (सूकम्) बाण और (पविम्) वज्र को (संशाय) तीक्ष्ण करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि) विशेष कर (ताढि) ताड़नाकर और (मृधः) हिंसकों को (वि नुदस्व) निकाल दे ॥३॥

भावार्थः—राजा सिंह के समान पराक्रमी होकर शस्त्र अस्त्रों को तीक्ष्ण करके शत्रुओं को जीत प्रजा को सुखी रक्खे ॥३॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १८०। २। और यजु० १८। ७१। इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अथर्व० ७। २६। २॥

सूक्तम् ॥८५॥

१॥ तार्क्ष्यो देवता॥ त्रिष्टुप् छन्दः॥

राजप्रजाधर्मोपदेशः -राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

भाषार्थः—(त्यम् उ, उस ही (वाजिनम्) अन्नवाले (देवजूतम्) विद्वानों से प्रेरणा किये गए, (सहोवानम्) महाबली, (रथानाम्) रथों के [जल थल और आकाश में] (तरुतारम्) तिराने [चलाने] वाले, (अरिष्टनेमिम्) अटूट वज्रवाले, (पृतनाजिम्) सेनाओं को जीतने वाले (आशुम्) व्यापने वाले, (तार्क्ष्यम्) महावेगवान् राजा को (इह) यहां पर (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (सु) आदर से (आ) भले प्रकार (हुवेम) हम बुलावें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् प्रजागण उत्तम गुणी राजा को अपनी रक्षा के लिये आवाहन करते रहें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—१०। १७८। १। साम० पू० ४। ५। १, और निरुक्त १०। २८ में भी व्याख्यात है॥

सूक्तम् ॥८६॥

१॥ इन्द्रो देवता॥ त्रिष्टुप् छन्दः॥

राजप्रजाधर्म्मोपदेशः—राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् करोतु ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(त्रातारम्) पालन करने वाले (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले राजा को, (अवितारम्) तृप्त करने वाले (इन्द्रम्) सभाध्यक्ष [राजा] को, (हवेहवे) संग्राम संग्राम में (सुहवम्) यथावत् संग्राम वाले, (शूरम्) शूर (इन्द्रम्) सेनापति [राजा] को, (शक्रम्) शक्तिमान्, (पुरुहूतम्) बहुत [लोगों] से पुकारे गए (इन्द्रम्) प्रतापी राजा को (नु) शीघ्र (हुवे) मैं बुलाता हूं, (मघवान्) बड़ा धन वाला (इन्द्रः) राजा (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) मङ्गल (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थः सब मनुष्य धर्म्मात्मा, न्यायकारी, जितेन्द्रिय, शूरवीर राजा का सदा आदर करें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ४७ । ११, यजु० २० । ५०, और साम० पू० ४ । ५ । २ ॥

सूक्तम् ॥८७॥

१ ॥ रुद्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ईश्वरमहिमोपदेशः—ईश्वर की महिमा का उपदेश ॥

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये । १॥

भाषार्थः—(यः) जो (रुद्रः) रुद्र, ज्ञानवान् परमेश्वर (अग्नौ) अग्नि में, (यः) जो (अप्सु अन्तः) जल के भीतर है, (यः) जिसने (ओषधीः) उष्णता रखने वाली अन्न आदि ओषधियों में और (वीरुधः) विविध प्रकार उगने वाली बेलों वा बूटियों में (आविवेश) प्रवेश किया है। (यः) जिसने (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों [उपस्थित पदार्थों] को (चक्लृपे) रचा है, (तस्मै) उस (अग्नये) सर्वव्यापक (रुद्राय) रुद्र, दुःखनाशक परमेश्वर को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः—जो अद्भुत स्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वान्तर्यामी परमात्मा है, सब मनुष्य उसकी उपासना करके अपनी उन्नति करें ॥१॥

सूक्तम् ॥८८॥

१ ॥ विद्वान् देवता ॥ बृहती छन्दः ॥

कुसंस्कारनाशोपदेशः—कुसंस्कार के नाश का उपदेश ॥

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद्
वा अपृक्थाः । अहिमे वाभ्यपेहि तं जहि ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः [हे विष !] (अप इहि) चला जा, (अरिः असिः) तू शत्रु है, (अरिः) तू शत्रु (वै) ही (असि) है। (विषे) विष में (विषम्) विष को (अपृक्थाः) तू ने मिला दिया है, (विषम्) विष को (इत्) ही (वै) हाँ (अपृक्थाः) तू ने मिला दिया है (अहिम्) सांप के पास (एव) ही (अभ्यपेहि) तू चला जा, (तम्) उसको (जहि) मार डाल ॥१॥

भावार्थः जैसे विष में विष मिलाने से अधिक प्रचण्ड हो जाता है, वैसे ही मनुष्य की इन्द्रियां एक तो आप ही पाप की ओर चलायमान होती हैं, फिर कुसंस्कार वा कुसंगति पाकर अधिक प्रचण्ड विषैली हो जाती हैं। जैसे वैद्य विष को विष से मारता है, वैसे ही विद्वान् जितेन्द्रियता से इन्द्रिय दोष को मिटावे ॥१॥

सूक्तम् ॥८९॥

१–४ ॥ १, २ अग्निः; ३ आपः; ४ समिद् देवता ॥ १–३ अनुष्टुप्, ४ गायत्री ॥

विद्वत्सङ्गोपदेशः—विद्वानों की संगति का उपदेश ॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१॥

भाषार्थः—(दिव्याः) दिव्य गुण स्वभाव वाले (अपः) जलों [के समान शुद्ध करने वाले विद्वानों] को (अचायिषम्) मैं ने पूजा है (रसेन) पराक्रम से (सम् अपृक्ष्महि) हम संयुक्त हुये हैं। (अग्ने) हे विद्वान् ! (पयस्वान्) गति वाला मैं (आ अगमम्) आया हूं, (तम्) उस (मा) मुझको (वर्चसा) [वेदाध्ययन आदि के] तेज से (सम् सृज) संयुक्त कर ॥१॥

भावार्थः मनुष्य उद्योग करके विद्वानों से और वेद आदि शास्त्रों से विद्या प्राप्त करके यशस्वी होवें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२० । २२ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् ! (मा) मुझको (वर्चसा) [ब्रह्म विद्या के] तेज से (सम्) अच्छे प्रकार (प्रजया) प्रजा से (सम्) अच्छे प्रकार और (आयुषा) जीवन से (सम् सृज) अच्छी प्रकार संयुक्त कर। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मे) मुझको (विद्युः) जानें, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आचार्य (ऋषिभिः सह) ऋषियों के साथ [मुझे] (विद्यात्) जाने ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम विद्या पाकर संसार के सुधार से अपना जीवन सफल करके विद्वानों और गुरु जनों में प्रतिष्ठा पावें ॥२॥

इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। ३॥

भाषार्थः—(आपः) हे जल [के समान शुद्धि करने वाले विद्वानो!] (इदम्) इस [सब] को (प्रवहत) बहा दो, (यत्) जो कुछ [मुझ में] (अवद्यम्) अकथनीय [निन्दनीय] (च च) और (मलम्) मलिन कर्म है। (च) और (यत्) जो कुछ (अनृतम्) झूंठ मूंठ (अभिदुद्रोह) बुरा चीता है, (च) और (यत्) जो कुछ (अभीरुणम्) निर्भय [निरपराधी] पुरुष को (शेपे) मैंने दुर्वचन कहा है ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य शुद्धाचारी विद्वानों के सत्सङ्ग से अपने आचरण को सुधारें ॥३॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—६। १७॥

एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४॥

भाषार्थः—[हे विद्वन्!] तू (एधः) बढ़ा हुआ (असि) है, (एधिषीय) मैं बढ़ूं, (समित्) तू प्रकाशमान (असि) है, मैं (सम्) ठीक ठीक (एधिषीय) प्रकाशमान होऊं। (तेजः असि) तू तेज है, (तेजः) तेज को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य विद्यावृद्ध, तपोवृद्ध विद्वानों से सुशिक्षा पाकर उन्नति करते हुए तेजस्वी होवें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२०। २३॥

सूक्तम् ॥ ९० ॥

१–३ ॥ इन्द्रो देवता ॥ १ गायत्री; २ अनुष्टुप्, ३ जगती ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

अपिं वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्।
ओजो दासस्य दम्भय ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः -[हे राजन् !] (पुराणवत्) पुराण [पुराने नियम] के अनुसार (दासस्य) दुःखदायी डाकू के (ओजः) बल को (व्रततेः) वेल के (गुष्पितम् इव) गांठ के समान (अपि) निश्चय करके (वृश्च) काट दे और (दम्भय) हटा दे ॥१॥

भावार्थः -राजा चोर आदि दुष्टों का नाश करके प्रजा को सुखी रक्खे ॥१॥

मन्त्र १, २ कुछ भेद से ऋग्वेद में है—८ । ४० । ६ ॥

वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै ।
म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥२॥

भाषार्थः —(वयम्) हम लोग (इन्द्रेण) बड़े ऐश्वर्यवाले राजा के साथ (अस्य) इस [शत्रु] के (संभृतम्) एकत्र किये हुए (तत्) उस (वसु) धन को (वि भजामहै) बांट लेवें । [हे शत्रु !] (वरुणस्य) शत्रु निवारक राजा की (व्रतेन) व्यवस्था से (ते) तेरी (भ्रजः) तमक और (शिभ्रम्) ढिठाई को (म्लापयामि) मैं मेटता हूं ॥२॥

भावार्थः राजा और राजपुरुष यथान्याय शत्रु को धनदण्ड आदि देकर निर्बल करदें ॥२॥

यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः ।
अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः ।
यदाततमव तत् तनु यदुत्ततं नि तत् तनु ॥३॥

भाषार्थः—(अवस्थस्य) हिंसा में रहने वाले, (क्नदीवतः) गाली बकने वाले, (शाङ्कुरस्य) शङ्का उत्पन्न करने वाले, (नितोदिनः) नित्य सताने वाले पुरुष का (शेपः) पराक्रम (यथा) जिस प्रकार (अपायातै) मिट जावे (च) और (स्त्रीषु) स्तुति योग्य स्त्रियों [वा उनके समान सज्जन प्रजाओं] में (अनावयाः) न पहुंचने वाला (असत्) होवे, [उसी प्रकार हे राजन् !] (यत्) जो कुछ [उसका बल] (आततम्) फैला हुआ है, तत्) उसे (अव तनु) संकुचित कर दे और (यत्) जो कुछ [सामर्थ्य] (उत्ततम्) ऊंचा फैला है, (तत्) उसे (नि तनु) नीचा कर दे ॥३॥

भावार्थः—राजा सज्जनों के सतानेवाले अत्याचारियों को सदा वश में रक्खे ॥३॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नवमोनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥९१॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१॥

भाषार्थः—(सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बहुत से ज्ञाति पुरुषों वाला, (विश्ववेदाः) बहुत धन वा ज्ञान वाला (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला राजा (अवोभिः) अनेक रक्षाओं से (सुमृडीकः) अत्यन्त सुख देनेवाला (भवतु) होवे । वह (द्वेषः) वैरियों को (बाधताम्) हटावे, (नः) हमारे लिये (अभयम्) निर्भयता (कृणोतु) करे और हम (सुवीर्यस्य) बड़े पराक्रम के (पतयः) पालन करनेवाले (स्याम) होवें ॥१॥

भावार्थः—राजा दुष्ट स्वभावों और दुष्ट लोगों का नाश करके प्रजा की रक्षा करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ४७ । १२ । तथा १० । १३१ । ६ । और यजु०—२० । ५१ ॥

सूक्तम् ॥९२॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

राजधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१॥

भाषार्थः—(सः) वह (सुत्रामा) बड़ा रक्षक, (स्ववान्) बड़ा धनी, (इन्द्रः) महा प्रतापी राजा (अस्मत्) हम से (आरात् चित्) बहुत ही दूर (द्वेषः) शत्रुओं को (सनुतः) निर्णय पूर्वक (युयोतु) हटावे । (वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) पूजा योग्य राजा की (अपि) ही (सुमतौ) सुमति में और (भद्रे) कल्याण करनेवाली (सौमनसे) प्रसन्नता में (स्याम) रहें ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य प्रजारक्षक, शत्रुनाशक राजा की आज्ञा में रहकर सदा प्रसन्न रहें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—६ । ४७ । १३ । तथा १० । १३१ । ७ । और यजु० २० । ५२ ॥

सूक्तम् ॥९३॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

शूरलक्षणोपदेशः—शूरों के लक्षणों का उपदेश ॥

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रेण) प्रतापी सेनापति के साथ और (मन्युना) क्रोध के साथ (वृत्राणि) [घेरने वाले] सेनादलों को (अप्रति) वे रोक (घ्नन्तः) मारते हुए (वयम्) हम लोग (पृतन्यतः) सेना चढ़ाने वालों को (अभि स्याम्) हरा देवें ॥१॥

भावार्थः—शूर सेनानी के साथ समस्त सेना शूर होकर शत्रुओं को मारे ॥१॥

सूक्तम् ॥९४॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राज्ञःस्तुत्युपदेशः—राजा की स्तुति का उपदेश ॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषा सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥१ ।

भाषार्थः—(ध्रुवम्) दृढ़ स्वभाव (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (ध्रुवेण) दृढ़ (हविषा) आत्मदान वा भक्ति के साथ (अव नयामसि) हम स्वीकार करते हैं । (यथा) जिससे [वह] (इन्द्रः) प्रतापी राजा (नः) हमारे लिये (केवलीः) सेवा-स्वभाव वाली (विशः) प्रजाओं को (संमनसः) एक मन (करत्) कर देवे ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वान् राजा का अभिषेक करके प्रार्थना करें कि आप सब प्रजा को परस्पर मिलाकर प्रसन्न रक्खे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है— १० । १७३ । ६ । और यजु० ७ । २५ ॥

सूक्तम् ॥९५॥

१–३ ॥ गृध्रौ देवते ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

कामक्रोधनिवारणोपदेशः— काम और क्रोध के निवारण का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः ।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥१॥

भाषार्थः—(अस्य) इस [जीव] के (श्यावौ) दोनों गति शील (विथुरौ) व्यथा देने वाले, (गृध्रौ) बड़े लोभी [काम क्रोध] (द्याम् इव) आकाश को जैसे (उत् पेततुः) उड़ गये हैं। (उच्छोचनप्रशोचनौ) अत्यन्त दुःखाने वाले और सब ओर से दुःखाने वाले दोनों (अस्य) इसके (हृदः) हृदय के (उच्छोचनौ) अत्यन्त दुःखानेवाले हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य काम क्रोध के वशीभूत होकर बड़ी बड़ी व्यर्थ कल्पनायें करके सदा दुःखी रहते हैं ॥१॥

अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव ।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥२॥

भाषार्थः—(अहम्) मैंने (एनौ) इन दोनों को (उत् अतिष्ठिपम्) उठा दिया है, (इव) जैसे (श्रान्तसदौ) थक कर बैठे हुए (गावौ) दो बैलों को, (इव) जैसे (कूजन्तौ) घुरघुराते हुए (कुर्कुरौ) [कुर कुर करने वाले] कुत्तों को, और (इव) जैसे (उदवन्तौ) दो घुस आने वाले (वृकौ) भेड़ियों को ॥२॥

भाव र्थः—मनुष्य काम क्रोध रूप शत्रुओं को विचारपूर्वक तुरन्त हटावें ॥२॥

आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत ।
अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभार ॥३॥

भाषार्थः—(अथो) और भी (आतोदिनौ) दोनों सब ओर से सताने वालों, (नितोदिनौ) नित्य सताने वालों, (उत) और (संतोदिनौ) मिलकर सताने वालों को (इतः) यहां पर [हमारे बीच] (यः) जिस किसी (स्त्री) स्त्री [वा] (पुमान्) पुरुष ने (जभार) स्वीकार किया है, (अस्य) उसके (मेढ्रम्) सेचनसामर्थ्य [वृद्धि शक्ति] को (अपि) सर्वथा (नह्यामि) मैं बांधता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष काम क्रोध में फंस जाते हैं, वे अनेक पाप बन्धनों में पड़कर शक्तिहीन और वृद्धिहीन होकर कष्ट भोगते हैं ॥३॥

सूक्तम् ॥९६॥

१ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥
कामक्रोधशान्त्युपदेशः—काम क्रोध की शान्ति का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१॥

भाषार्थः—(गावः) गौयें (सदने) बैठक में (असदन्) बैठ गयी हैं, (वयः) पक्षी ने (वसतिम्) घोंसले में (अपप्तत्) बसेरा लिया है। (पर्वताः) पहाड़ (आस्थाने) विश्राम स्थान पर (अस्थुः) ठहर गये हैं, (वृक्कौ) दोनों रोक डालने वाले वा रोकने योग्य [काम क्रोध] को (स्थाम्नि) स्थान पर (अतिष्ठिपम्) मैंने ठहरा दिया है ।१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (गृध्रौ) काम क्रोध का अर्थ गत सूक्त से आता है। जैसे गौएँ आदि अपने२ स्थान पर विश्राम करते हैं, ऐसे ही मनुष्य काम क्रोध को विद्या आदि से शान्त करके प्रसन्न रहें ॥१॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध कुछ भेद से आ चुका है--अ० ६ । ७७ । १॥

सूक्तम् ॥९७॥

१-८ ॥ १,२ इन्द्रः; ४, ७ विश्वे देवाः; ५, ६, ८ यज्ञो देवता ॥ १-४ त्रिष्टुप्; ५ आर्ची भुरिग् गायत्री, ६ प्राजापत्या बृहती, ७ साम्नी भुरिक् जगती, ८ उपरिष्टाद् बृहती छन्दः ॥

मनुष्य धर्मोपदेशः—मनुष्य धर्म का उपदेश ॥

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१॥

भाषार्थः—(यत्) जिस लिये कि (अद्य) आज (त्वा) तुझको (अस्मिन्) इस (प्रयति) प्रयत्नसाध्य (यज्ञे) संगतियोग्य व्यवहार में, (चिकित्वन्) हे ज्ञानवान्! (होतः) हे दानी पुरुष! (इह) यहां पर (अवृणीमहि) हमने चुना है [वर्णी किया है]। (शविष्ठ) हे महाबली! तू (ध्रुवम्) दृढ़ता से (उत) और भी (ध्रुवम्) दृढ़ता से (अयः) आ, (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (प्रविद्वान्) पहिले से जानने वाला तू (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप) समीप से (याहि) प्राप्त कर ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक विद्या और बल प्राप्त करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद ३ । २९ । १६ । और यजुर्वेद-८ । २० ॥ में है।

समिन्द्र नो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इन्द्र) हे बड़े ऐश्वर्य वाले राजन् ! (नः) हमें (मनसा) विज्ञान के साथ और (गोभिः) इन्द्रियों वा वाणियों के साथ (सम्) ठीक ठीक, (हरिवन्) हे श्रेष्ठमनुष्यों वाले ! (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (सम्) ठीक ठीक, (स्वस्त्या) अच्छी सत्ता [क्षेम कुशल] के साथ (सम्) ठीक ठीक, (यत्) जो [ब्रह्म] (देव-हितम्) विद्वानों का हितकारक (अस्ति) है, [उस] (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद, धन वा अन्न के साथ (सम्) ठीक ठीक, (यज्ञियानाम्) पूजा योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में (सम्) ठीक ठीक (नेष) तू ले चल ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग से मनस्वी, वाग्मी, और कार्य-कुशल होकर सब को उन्नति की ओर प्रवृत्त करें ॥२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—५ । ४२ । ४ और यजु० ८ । १५ ॥

यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३॥

भाषार्थः—(देव) हे प्रकाशमान अध्यापक ! (यान्) जिन (उशतः) लालसा वाले (देवान्) विद्वानों को (आ अवहः) तू लाया है, (अग्ने) हे विद्वान् ! (तान्) उन्हें (स्वे) अपनी (सधस्थे) बैठक में (प्र ईरय) ले चल । (वसवः) हे श्रेष्ठ जनो ! तुम (मधूनि) मधुर वस्तुओं को (जक्षिवांसः) खा चुक कर और (पपिवांसः) पी चुक कर (अस्मै) इस पुरुष के लिये (वसूनि) उत्तम ज्ञानों को (धत्त) दान करो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य सत्कारपूर्वक विद्वानों से शिक्षा लेकर श्रेष्ठ गुण प्राप्त करके सुखी होवें ॥३॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है ॥ ८ । १९ ॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥४॥

भाषार्थः—(देवाः) हे विद्वानो ! (वः) तुम्हारे लिये (सुगा) सुख से पहुँचने योग्य (सदना) आसनों को (अकर्म) हमने बनाया है, (ये) जो तुम [अपने] (सवने) ऐश्वर्य में (मा) मुझे (जुषाणाः) प्रसन्न करते हुए (आजग्म) आये हो (स्वा) अपनी (वसूनि) श्रेष्ठ वस्तुओं को (वहमानाः) पहुंचाते हुए और (भरमाणाः) पुष्ट करते हुए तुम (वसुम्) श्रेष्ठ (घर्मम्) दिन और (दिवम् अनु) व्यवहार के बीच (आ रोहत) चढ़ते जाओ ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों का आदर मान करके अपनी उन्नति करें ॥४॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—८ । १८ ॥

यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥५॥

भाषार्थः—(यज्ञ) हे पूजनीय पुरुष ! (यज्ञम्) पूजनीय व्यवहार को (गच्छ) प्राप्त हो, (यज्ञपतिम्) पूजनीय व्यवहार के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो । और (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के साथ (स्वाम्) अपने (योनिम्) स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य उत्तम व्यवहार और उत्तम मनुष्यों के साथ से अपने मनुष्य धर्म का कर्त्तव्य करता रहे ॥५॥

यह मन्त्र यजुर्वेद में है—८ । २२ ॥

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥६॥

भाषार्थः—(यज्ञपते) हे पूजनीय व्यवहार के पालनेवाले पुरुष ! (एषः) यह (ते) तेरा (यज्ञः) पूजनीय व्यवहार (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] द्वारा (सहसूक्तवाकः) सुन्दर वचनों के उपदेशों के सहित (सुवीर्यः) बड़े वीरत्ववाला [होवे] ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य वेद मन्त्रों के मनन और उपदेश से अपना पराक्रम बढ़ावें ॥६॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—८ । २२ ॥

वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥७॥

भाषार्थः—(हुतेभ्यः) दिये हुए [माता पिता आदि से पाये हुए] पदार्थों के लिये (वषट्) भक्ति [हो], (अहुतेभ्यः) न दिये हुए [स्वयं प्राप्त किये हुए] पदार्थों के लिये (वषट्) भक्ति [हो] । (गातुविदः) हे पृथिवी के जानने वालो ! (देवाः) हे विजय चाहनेवाले वीरो ! (गातुम्) मार्ग को (वित्त्वा) पाकर (गातुम्) पृथिवी को (इत) प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थः मनुष्य माता पिता आदि से पाये हुए और अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किये हुए पदार्थों से यथावत् उपकार लेवें । और पृथिवी के गुणों को परीक्षण द्वारा जानकर और उपकार लेकर सुखी होवें ॥७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र का उत्तर भाग यजुर्वेद में है— ८ । २१ ॥

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् । स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ।'८॥

भाषार्थः—(मनसःपते) हे मन के स्वामी [मनुष्य !] (इमम्) इस (नः) अपने [हमारे] (यज्ञम्) संगतिकरण व्यवहार को (दिवि) आकाशमें [वर्तमान] (देवेषु) दिव्य पदार्थों में (स्वाहा) सुन्दरवाणी के साथ, [अर्थात्] (दिवि) सूर्य में (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (पृथिव्याम्) पृथिवी में (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (वाते) वायु में (स्वाहा) सुन्दर वाणी के साथ, (धाम्) मैं धारण करूं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य वेद द्वारा अपनी मनन शक्ति बढ़ाकर सूर्यविद्या, पृथिवीविद्या, अन्तरिक्ष विद्या और वायुविद्या में निपुण होकर उपकार करें ॥८॥

इस मन्त्र का पूर्वभाग कुछ भेदसे यजुर्वेद में है—८ । २१ ॥

सूक्तम् ॥९८॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ग्राह्यपदार्थप्राप्त्युपदेशः—ग्राह्य पदार्थ पाने का उपदेश ॥

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थः—(हविषा) ग्रहण से और (घृतेन) सेचन से (सम्) ठीक ठीक, (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से और (वसुना) धन से (सम्) ठीक ठीक, (मरुद्भिः) विद्वानों से (सम्) ठीक ठीक, (अक्तम्) सुधारा गया (बर्हिः) वृद्धि कर्म, और (देवैः) प्रकाशमान (विश्वदेवेभिः) सब उत्तम गुणों से (सम्) ठीक ठीक, (अक्तम्) संभाला गया (हविः) ग्राह्य पदार्थ (स्वाहा) सुन्दर वाणी [वेदवाणी] के साथ (इन्द्रम्) प्रतापी पुरुष को (गच्छतु) पहुंचे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य प्रयत्न के साथ विद्या और धन की रक्षा और वृद्धि करके ऐश्वर्यवान् होवें ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से यजुर्वेद में है—२ । २२ ॥

सूक्तम् ॥९९॥

१ ॥ यजमानो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याप्रचारोपदेशः—विद्या के प्रचार का उपदेश ॥

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥१॥

भाषार्थः—[हे विद्वान् !] (वेदिम्) विद्या [वा यज्ञभूमि] (परि) सब ओर (स्तृणीहि) फैला और (परि) सब ओर (धेहि) पुष्टकर (अमुया) उस [विद्या] के साथ (शयानाम्) वर्तमान (जामिम्) गति को (मा मोषीः) मत लूट । (होतृषदनम्) दाता का घर (हरितम्) हरा भरा [स्वीकार योग्य] और (हिरण्ययम्) सोने से भरा [होता है], (एते) यह सब (निष्काः) सुनहरे अलङ्कार (यजमानस्य) यजमान [विद्वानों के सत्कार करने वाले] के (लोके) घर में [रहते हैं] ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या प्राप्त करके उसकी प्रवृत्ति नहीं रोकता, वह महाधनी होकर सुखी रहता है ॥१॥

सूक्तम् ॥१००॥

१ ॥ ब्रह्म देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

कुविचारनिवारणोपदेशः—कुविचार के हटाने का उपदेश ॥

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१॥

भाषार्थः—(दुष्वप्न्यात्) बुरी निद्रा में उठे हुए और (स्वप्न्यात्) स्वप्न में उठे हुए (पापात्) पाप से [प्राप्त] (अभूत्याः) अनैश्वर्यता [निर्धनता] से (पर्यावर्ते) मैं अलग हटता हूं । (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म [ईश्वर] को [अपने] (अन्तरम्) भीतर, और (स्वप्नमुखाः) स्वप्न के कारण से होने वाले (शुचः) शोकों को (परा) दूर (कृण्वे) करता हूँ ॥१॥

भावार्थः मनुष्य परमात्मा में लवलीन होकर मन को ऐसा वश में करे कि स्वप्न में भी कुवासनायें न उठें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०१॥

१ ॥ प्रजापतिर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

अविद्यानाशोपदेशः—अविद्या के नाश का उपदेश ॥

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्) जो कुछ (अन्नम्) अन्न (स्वप्ने) स्वप्न में (अश्नामि) मैं खाता हूं, [वह] (प्रातः) प्रातःकाल (न) नहीं (अधिगम्यते) मिलता है। (तत्) वह (सर्वम्) सब (मे) मेरे लिये (शिवम्) कल्याणकारी (अस्तु) होवे, (तत्) वह (दिवा) दिन में (नहि) नहीं (दृश्यते) दीखता है ॥१॥

भावार्थः—जैसे इन्द्रियों की चंचलता से स्वप्न में खाया अन्न शरीर-पोषक नहीं होता, वैसे ही अविद्याजन्य सुख इष्टसाधक नहीं होता ॥१॥

सूक्तम् ॥१०२॥

१ । मन्त्रोक्ता देवताः ॥ विराट् पुरस्ताद् बृहती छन्दः ॥

उच्चपदप्राप्त्युपदेशः—ऊंचे पद पाने का उपदेश ॥

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मां हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

भाषार्थः—(द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्यलोक और पृथिवी लोक को और (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोक को (नमस्कृत्य) नमस्कार करके (मृत्यवे) मृत्यु नाश करने के लिये (ऊर्ध्वः) ऊपर (तिष्ठन्) ठहरता हुआ (मेक्षामि) मैं चलता हूं, (ईश्वराः) [कोई] बलवान् (मा) मुझको (मा हिंसिषुः) न हानि करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य ऊपर, नीचे और मध्य विचार कर और संसार के सब पदार्थों से उपकार लेकर उच्चपद प्राप्त करे ॥१॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ॥१०३॥

१ ॥ आत्मा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

द्रोहत्यागोपदेशः—द्रोह के त्याग का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥१॥

भाषार्थः—(वस्यः) उत्तम फल (इच्छन्) चाहता हुआ (कः) प्रजापति [प्रजा पालक प्रकाशमान वा सुखदाता] (क्षत्रियः) क्षत्रिय (नः) हमको (अस्याः) इस (अवद्यवत्याः) धिक्कारयोग्य (द्रुहः) डाह क्रिया से (उत् नेष्यति) उठावेगा । (कः) प्रजापति [मनुष्य] (यज्ञकामः) पूजनीय व्यवहार चाहने वाला और (कः) प्रजापति (उ) ही (पूर्तिकामः) पूर्ति [सिद्धि] चाहने वाला [होता है], (कः) प्रजापति [मनुष्य] (देवेषु) उत्तम गुणों के बीच (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (वनुते) मांगता है ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य द्रोह छोड़कर पुरुषार्थ करते हुए उत्तम गुण प्राप्त करके सुख बढ़ाते रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०४॥

१ ॥ आत्मा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

वेदविद्याप्रचारोपदेशः—वेद विद्या के प्रचार का उपदेश ॥

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति । १ ।

भाषार्थः—(कः) प्रकाशमान [प्रजापति मनुष्य] (बृहस्पतिना) बड़े बड़े लोकों के स्वामी [परमेश्वर] के साथ (यथावशम्) इच्छानुसार [अपने] (तन्वः) शरीर की (सख्यम्) मित्रता का (जुषाणः) सेवन करता हुआ, (अथर्वणे) निश्चल स्वभाव वाले पुरुष को (वरुणेन) श्रेष्ठ परमात्मा करके (दत्ताम्) दी हुई, (सुदुघाम्) अत्यन्त पूर्ण करनेवाली, (नित्यवत्साम्) नित्य उपदेश करने वाली, (पृश्निम्) प्रश्न करने योग्य (धेनुम्) वाणी [वेदवाणी] को (कल्पयाति) समर्थ करे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य परमेश्वर की दी हुई कल्याणी वेदवाणी को ईश्वर-भक्ति के साथ संसार में फैलावें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०५॥

१ ॥ विद्वान् देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

पवित्रजीवनोपदेशः—पवित्र जीवन का उपदेश ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१॥

भाषार्थः -[हे विद्वान् !] (पौरुषेयात्) पुरुषवध से (अपक्रामन्) हटता हुआ, दैव्यम्) दिव्य [परमेश्वरीय] (वचः) वचन (वृणानः) मानता हुआ तू (विश्वेभिः) सब (सखिभिः सह) सखाओं [साथियों] सहित (प्रणीतीः) उत्तम नीतियों [ब्रह्मचर्य स्वाध्याय आदि मर्य्यादाओं] का (अभ्यावर्तस्व) सब ओर से वर्ताव कर ॥१॥

भावार्थः - मनुष्य सर्वहितकारी वेद मार्गों पर चलकर और दूसरों को चलाकर पवित्र जीवन करके आनन्दित होवें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०६॥

१ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

अमृतत्वप्राप्त्युपदेशः—अमरपन पाने का उपदेश ॥

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (यत् किंचित्) जो कुछ भी [दुष्कर्म] (अस्मृति) विस्मरण [भूल, आगे पीछे के विना विचार] से (चकृम) हमने किया है, (जातवेदः) हे उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले ! [अपने] (चरणे) आचरण में (उपारिम) हमने अपराध किया है । (प्रचेतः) हे महाविद्वान् ! (ततः) उससे (त्वम्) तू (नः) हमें (पाहि) बचा, (नः) हम [तेरे] (सखिभ्यः) सखाओं को (शुभे) कल्याण के लिये (अमृतत्वम्) अमरपन (अस्तु) होवे ॥१॥

भावार्थः —मनुष्यों से यदि आगा पीछा विना विचारे अपराध हो जावे, उसका प्रायश्चित्त करके और आगे को अपराध त्याग कर शुभकर्म करके कीर्त्तिमान् होवें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०७॥

१ ॥ सूर्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

परस्परदुःखनाशोपदेशः—परस्पर दुःखनाश का उपदेश ॥

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सूर्यस्य) सूर्य की (सप्त) सात [नित्य मिली हुई] (रश्मयः) किरण (दिवः) आकाश से (समुद्रियाः) अन्तरिक्ष में रहने वाले (धाराः) धारारूप (आपः) जलों को (अव तारयन्ति) उतारती हैं, (ताः) उन्होंने (ते) तेरी (शल्यम्) कील [क्लेश] को (अतिस्रसन्) बहा दिया है ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य की किरणें जल बरसा कर दुर्भिक्ष आदि पीड़ायें दूर करती हैं, वैसे ही मनुष्य परस्पर दुःख नाश करें ॥१॥

सूक्तम् ॥१०८॥

१-२ ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुनाशोपदेशः—शत्रुओं के नाश का उपदेश ॥

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् राजन् ! (यः) जो कोई (नः) हमें (तायत्) छिपे छिपे, (यः) जो कोई (नः) हमें (आविः) खुले खुले, (दिप्सति) सताना चाहता है, (नः) हमें (विद्वान्) जानता हुआ (स्वः) अपना पुरुष, (वा) अथवा (अरणः) बाहिरी पुरुष । (प्रतीची) चढ़ाई करती हुई, (दत्वती) दमनशीला, (अरणी) शीघ्रगामिनी वा मारने वाली [सेना] (तान्) उनपर (एतु) पहुंचे, (अग्ने) हे तेजस्वी राजन् ! (एषाम्) इनका (मा) न तो (वास्तु) घर (मो) और न (अपत्यम्) बालक (भूत्) रहे ॥१॥

भावार्थः—राजा भीतरी और बाहिरी अधर्मियों का नाश करके धर्म्मात्माओं की रक्षा करे ॥१॥

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥२॥

भाषार्थः—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञानवाले राजन् ! (यः) जो कोई पुरुष (सुप्तान्) सोते हुए, (वा) वा (जाग्रतः) जागते हुए, (तिष्ठतः) ठहरे हुए, (वा) वा (चरतः) चलते हुए (नः) हम को (अभिदासात्) सतावे । (जातवेदः) हे प्रसिद्ध धन वाले राजन् ! (वैश्वानरेण) सब नरों के हितकारी (सयुजा) समानमित्र [परमेश्वर] के साथ (सजोषाः) प्रीति वाला तू (प्रतीचः) चढ़ाई करने वाले (तान्) उनको (निः) निरन्तर (दह) भस्म कर दे ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा परमेश्वर के सहाय से आत्मबल बढ़ाकर सब डाकू उचक्कों का नाश करके प्रजा की रक्षा करे ॥२॥

सूक्तम् ॥१०९॥

१–७ ॥ अग्निः प्रजापतिर्वा देवता ॥ १, ४, ७ अनुष्टुप्; २, ३, ५, ६ त्रिष्टुप् ॥

व्यवहारसिद्ध्युपदेशः—व्यवहार सिद्धि का उपदेश ॥

इदमुग्रायं बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥१॥

भाषार्थः—(इदम्) यह (नमः) नमस्कार (उग्राय) तेजस्वी (बभ्रवे) पोषक [परमेश्वर] को है, (यः) जो (अक्षेषु) व्यवहारों में (तनूवशी) शरीरों का वश में रखने वाला है। (घृतेन) प्रकाश के साथ (कलिम्) गिनने वाले [परमेश्वर] को (शिक्षामि) मैं सीखता हूं, (सः) वह (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे [कर्म] में (मृडाति) सुखी करे ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ परमेश्वर की उपासना करके उत्तम कर्मों के साथ सुख भोगें ॥१॥

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

भाषार्थः—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) तू (अप्सराभ्यः) अप्सराओं [प्राणियों में व्यापक शक्तियों] के लिये और (अक्षेभ्यः) व्यवहारों [की सिद्धि] के लिये (पांसून्) धूलि [भूमिस्थलों] से (च) और (सिकताः) सींचने वाले (अपः) जलों से (घृतम्) घृत [सार पदार्थ] (वह) पहुंचा। (देवाः) विद्वान् लोग (यथाभागम्) भाग के अनुसार (हव्यदातिम्) ग्राह्य पदार्थों के दान का (जुषाणाः) सेवन करते हुए (उभयानि) पूर्ण (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (मदन्ति) भोगते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य भूमिविद्या, जलविद्या आदि में निपुण होकर आत्मपोषण और समाजपोषण का सामर्थ्य अपने पुरुषार्थ के अनुसार बढ़ावें ॥२॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ संसृजन्तु घृतेनं सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(अप्सरसः) आकाश में व्यापक शक्तियां [वायु, जल, बिजुली आदि] (हविर्धानम्) ग्राह्यपदार्थों के आधार [भूलोक] (च) और (सूर्यम् अन्तरा) सूर्य के बीच (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदन्ति) भोगती हैं (ताः) वे (मे) मेरे (हस्तौ) दोनों हाथ (घृतेन) घृत [सार पदार्थ] से (सं सृजन्तु) संयुक्त करें, और (मे) मेरे (कितवम्) ज्ञान नाशक [ठग, जुआरी] (सपत्नम्) वैरी को (रन्धयन्तु) नाश करें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य वायु, जल, बिजुली आदि से यथावत् उपकार लेकर दरिद्रता आदि दुःख नाश करें ॥३॥

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥४॥

भाषार्थः—[हे परमात्मन् !] (प्रतिदीव्ने) प्रतिकूल व्यवहार करने वाले के नाश करने को (घृतेन) प्रकाश के साथ (अस्मान् अभि) हमारे ऊपर (आदिनवम्) प्रथम नवीन वा स्तुति वाले [बोध] को (क्षर) छिड़क । (यः) जो (अस्मान्) हम से (प्रतिदीव्यति) प्रतिकूल व्यवहार करता है, [उसे] (जहि) मार डाल, (वृक्षम् इव) जैसे वृक्ष को (अशन्या) बिजुली से ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य वैदिक ज्ञान से अपने विरोधी शत्रु वा अज्ञान का सर्वथा नाश करें ॥४॥

यो नो द्यवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥५॥

भाषार्थः—(यः) जिस [परमेश्वर] ने (नः) हमारे (द्यवे) आनन्द के लिये (इदम् धनम्) यह धन, और (यः) जिसने (अक्षाणाम्) व्यवहारों का (ग्लहनम्) ग्रहण (च) और (शेषणम्) विशेषपन [ब्राह्मणपन, क्षत्रियपन, वैश्यपन और शूद्रपन] (चकार) बनाया है । (सः) वह (देवः) व्यवहारकुशल [परमेश्वर] (नः) हमारे (इदम्) इस (हविः) दान [भक्तिदान] को (जुषाणः) स्वीकार करने वाला [हो, कि] (गन्धर्वेभिः) विद्या वा पृथिवी के धारण करने वाले [मनुष्यों] के साथ (सधमादम्) परस्पर आनन्द (मदेम) हम भोगें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य आदि गुरु परमेश्वर के अनुग्रह से सब व्यवहारों में कुशल होकर, विद्वानों के सत्संग से उन्नति करें ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

भाषार्थः—[हे विद्वानो !] (संवसवः) "सम्यक् धन वाले, वा मिल के रहने वाले" (इति) यह (वः) तुम्हारा (नामधेयम्) नाम है, (हि) क्योंकि [तुम] (उग्रंपश्याः) उग्रदर्शी [बड़े तेजस्वी] (राष्ट्रभृतः) राज्यपोषक और (अक्षाः) व्यवहार कुशल (हो) । (इन्दवः) हे बड़े ऐश्वर्यवालो ! (तेभ्यः वः) उन तुम को (हविषा) आत्मदान से (विधेम) हम पूजें, (वयम्) हम (रयीणाम्) अनेक धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों के सत्संग और सत्कार से अनेक धन प्राप्त करें ॥६॥

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥७॥

भाषार्थः—(यत्) जिस से कि (नाथितः) प्रार्थी मैं (देवान्) विद्वानों को (हुवे) बुलाता हूं, (यत्) जिस से कि (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य [आत्मनिग्रह, वेदाध्ययन आदि तप] में (ऊषिम) हमने निवास किया है । (यत्) जिससे कि (बभ्रून्) पालन करने वाले (अक्षान्) व्यवहारों को (आलभे) मैं यथावत् ग्रहण करता हूं, (ते) वे सब [विद्वान्] (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे [कर्म] में (मृडन्तु) सुखी करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य विद्वानों की संगति, ब्रह्मचर्य सेवन और उत्तम व्यवहारों से सुखी होवें ॥७॥

सूक्तम् ॥११०॥

१–३ ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ॥

राजमन्त्रिणोः कर्त्तव्योपदेशः—राजा और मन्त्री के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

अग्ने इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्रः) हे परम ऐश्वर्यवाले राजन् ! (च) और (अग्ने) हे तेजस्वी मन्त्री ! [आप दोनों] (दाशुषे) दानशील [प्रजागण] के लिये (वृत्राणि) रोकावटों को (अप्रति) बे रोक टोक (हतः) नाश करते हैं । (हि) क्योंकि (उभा) दोनों (वृत्रहन्तमा) रोकावटों के अत्यन्त नाश करने वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—प्रतापी राजा और विद्वान् मन्त्री शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करें ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याभ्यामजयन्त्स्व१ रग्र एवयावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥२॥

भाषार्थः—(याभ्याम्) जिन दोनों के द्वारा (एव) ही उन्होंने [महात्माओं ने] (स्वः) स्वर्ग [सुख] को (अग्रे) पहिले (अजयन्) जीता था [पाया था], (यौ) जो दोनों (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियों में (आतस्थतुः) ठहर गए हैं। [उन दोनों] (प्रचर्षणी) शीघ्र गामी वा अच्छे मनुष्यों वाले, (वृषणा) शूर, (वज्रबाहू) वज्र [लोह समान दृढ़] भुजाओं वाले, (वृत्रहणा) रोकावटे नाश करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवाले राजा और (अग्निम्) तेजस्वी मन्त्री को (अहम्) मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार प्रजागण पहिले से राजा और मन्त्री के प्रबन्ध में सुखी रहे हैं, वैसे ही सदा रहें ॥२॥

उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (त्वा) तुझे (देवः) प्रकाशमान, (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों के रक्षक परमेश्वर ने (चमसेन) अन्न के साथ (उप अग्रभीत्) सहारा दिया है। तू (गीर्भिः) वाणियों [स्तुतियों] के साथ (यजमानाय) संयोग वियोग करने वाले (सुन्वते) तत्त्व मथन करने वाले पुरुष के लिये (नः) हम में (आ विश) प्रवेश कर ॥३॥

भावार्थः—राजा को उचित है कि परमेश्वर के दिये सामर्थ्य से विवेकी धर्मात्माओं का सहाय करे ॥३॥

सूक्तम् ॥१११॥

१ ॥ ईश्वरो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

ईश्वरगुणोपदेशः—ईश्वर के गुणों का उपदेश ॥

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥१॥

भाषार्थः—[हे ईश्वर!] तू (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य का (कुक्षिः) कोख रूप, (सोमधानः) अमृत का आधार, (देवानाम्) दिव्य लोकों [सूर्य, पृथिवी आदि] का (उत) और (मानुषाणाम्) मनुष्यों का (आत्मा) आत्मा [अन्तर्यामी] (असि) है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इह) यहां पर (प्रजाः) प्रजाओं को (जनय) उत्पन्न कर, (याः) जो (ते) तेरे लिये [तेरी आज्ञाकारी] (आसु) इन [प्रजाओं] में, और (याः) जो (अन्यत्र) दूसरे स्थान में [हों] (इह) यहां पर (ताः) वे सब (ते) तेरे लिये (रमन्ताम्) विहार करें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोग प्रयत्न करें कि सब मनुष्य निकट और दूर स्थान में ईश्वर की आज्ञा मानते रहें ॥१॥

सूक्तम् ॥११२॥

१—२ ॥ आपो देवताः ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

इन्द्रियजयोपदेशः—इन्द्रियों के जय का उपदेश ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

भाषार्थः—(शुम्भनी) शोभायमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी लोक (अन्तिसुम्ने) [अपनी] गतियों से सुख देने वाले और (महिव्रते) बड़े व्रत [नियम] वाले हैं। (देवीः) उत्तम गुणवाली (सप्त) सात (आपः) व्यापनशील इन्द्रियाँ [दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख] (सुस्रुवुः) [हमें] प्राप्त हुई हैं, (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और पृथिवी लोक ईश्वर नियम से अपनी अपनी गति पर चल कर वृष्टि अन्न आदि से उपकार करते हैं, वैसे ही मनुष्य इन्द्रियों को नियम में रखकर अपराधों से बचें ॥१॥

(सप्त आपः) पदों का मिलान करो (सप्त सिन्धवः) पदों से—अ० ४ । ६ । २ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३ दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२॥

भाषार्थः—वे [व्यापनशील इन्द्रियां—म० १] (मा) मुझको (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए [अपराध] से (अथो) और (यमस्य) न्यायकारी राजा के (पड्वीशात्) बेड़ी डालने से (उत) और (विश्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) परमेश्वर के प्रति अपराध से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य प्रमाद छोड़कर इन्द्रियों को जीतकर सब प्रकार के दोषों से बचें ॥२॥

यह मन्त्र आ चुका है। अ० ६ । ९६ । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तम् ॥११३॥

१—२ ॥ तृष्टिका देवता ॥ १ विराड् अनुष्टुप्; २ उष्णिक् ॥

तृष्णाविमोचनोपदेशः—तृष्णा त्याग का उपदेश ॥

तृष्टिके तृष्टवन्दन उद्मूं छिन्धि तृष्टिके ।
यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥१॥

भाषार्थः - (तृषिके) हे कुत्सित तृष्णा ! (तृष्टवन्दने) हे लोलुपता की लता रूपा ! तू (अमूम्) पीड़ा को (उत् छिन्धि) काट डाल, (तृष्टिके) हे लोभ में टिकने वाली ! तू (यथा) जिससे (अमुष्मै) उस (शेप्यावते) शक्तिमान् पुरुष के लिये (कृत-द्विष्टा) द्वेषनाशिनी (असः) होवे [वैसा किया जावे] ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य पीड़ादायिनी तृष्णा को छोड़कर ईर्षा द्वेष नाश करने में समर्थ होवें । १॥

तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि ।
परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥२॥

भाषार्थः—(तृष्टा) तू तृष्णा (तृष्टिका) लोभ में टिकने वाली (असि) है, (विषा) विषैली (विषातकी) विष से जीवन दुःखित करने वाली (असि) है । (यथा) जिससे तू (परिवृक्ता) परित्यक्ता (असासि) हो जावे, (इव) जैसे (ऋषभस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (वशा) वशीभूत [प्रजा त्याज्य होती है, वैसा किया जावे] ॥२॥

भावार्थः—बुद्धिमान् पुरुष लोलुपता आदि अनिष्ट चिन्ताओं को इस प्रकार त्याग दें, जैसे शूर सेनापति शरणागत शत्रु सेना को छोड़ देता है ॥२॥

सूक्तम् ॥११४॥

१—२ ॥ अग्निः सोमो वा देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

राक्षसनाशोपदेशः—राक्षसों के नाश का उपदेश ॥

आ नें ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे ॥१॥

भाषार्थः—[हे शत्रु !] (अहम्) मैंने (ते) तेरी (वक्षणाभ्यः) छाती के अवयवों से [बल को] (आ ददे) ले लिया है, (ते) तेरे (हृदयात्) हृदय से (आ ददे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगनिवारणोपदेशः—रोग निवारण का उपदेश ॥

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकाम कृत्वने ॥१॥

भाषार्थः—(रूराय) घातक (च्यवनाय) पतित, (नोदनाय) ढकेलने वाले, (धृष्णवे) ढीठ [शत्रु] को (नमः) वज्र । (शीताय) शीत [समान] (पूर्वकामकृत्वने) पहिली कामनायें काटने वाले [वैरी] को (नमः) वज्र [होवे] ॥१॥

भावार्थः—जैसे अति शीत खेती आदि को हानि करता है, वैसे हानिकारक शत्रु को दण्ड देना चाहिये ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० १ । २५ । ४ । से करो ॥

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्यव्रतः ॥२॥

भाषार्थः—(यः) जो (अन्येद्युः) एकान्तरा और (उभयद्युः) दो अन्तरा [ज्वर समान] (अभ्येति) चढ़ता है, (अव्रतः) नियमहीन वह [रोग] (इमम्) इस (मण्डूकम्) मेंडक [समान टर्राने वाले आत्मश्लाघी पुरुष] को (अभि एतु) चढ़े [ऐसे ज्वर समान शत्रु पर वज्र होवे—म० १] ॥२॥

भावार्थः—जैसे ज्वर आदि रोग कुनियमियों को सताता है, वैसे धर्मात्माओं के दुःखदायी शत्रु लोग दण्डनीय हैं ॥२॥

सूक्तम् ॥११७॥

१ ॥ इन्द्रो देवता ॥ पथ्या बृहती छन्दः ॥

राजाधर्मोपदेशः—राजा के धर्म का उपदेश ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा के चिद् वि यमन् वि न पाशिनोति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे प्रतापी राजन् ! (मन्द्रैः) गम्भीरध्वनियों से वर्तमान (मयूररोमभिः) मोरों के रोम [समान चिकने, विचित्र रंग, दृढ़, बिजुली से युक्त रोमवस्त्र] वाले (हरिभिः) मनुष्यों और घोड़ों के साथ (आ याहि) तू आ । (त्वा) तुझको (के चित्) कोई भी (मा वि यमन्) कभी न रोकें (न) जैसे (पाशिनः) जालवाले [चिड़ीमार] (विम्) पक्षी को, तू (तान् अति) उनके ऊपर होकर (इहि) चल (धन्व इव) जैसे निर्जल देश [के ऊपर से] ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—राजा प्रजा की रक्षा के लिये चतुर विज्ञानियों के बनाये हुए कवच आदि से सजे हुए सेना, अश्व, रथ आदि के साथ शत्रुओं पर चढ़ाई करे ॥१॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है—म० ३ । १ । ४५, यजु०—२० । ५३, साम० पू० ३ । ६ । ४ ॥

सूक्तम् ॥११८॥

१ ॥ कवचसोमवरुणा देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

सेनापतिकृत्योपदेशः—सेनापति के कर्तव्य का उपदेश ॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

भाषार्थः—[हे शूरवीर ! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) मैं [सेनापति] ढांकता हूं, (सोमः) ऐश्वर्यवान् (राजा) राजा [कोषाध्यक्ष] (त्वा) तुझको (अमृतेन) अमृत [मृत्यु निवारक, शस्त्र, अस्त्र, वस्त्र, अन्न, औषध आदि] से (अनु) निरन्तर (वस्ताम्) ढके । (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष [चतुर मार्गदर्शक] (ते) तेरे लिये (उरोः) चौड़े से (वरीयः) अधिक चौड़ा [स्थान] (कृणोतु) करे, (जयन्तम्) विजयी (त्वा अनु) तेरे पीछे (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (मदन्तु) आनन्द पावें ॥१॥

भावार्थः—सर्वाधीश मुख्य सेनापति अधिकारियों द्वारा योद्धाओं को समस्त आवश्यक सामग्री देकर उत्साहित करे, जिससे सब वीर आनन्द-ध्वनि करते हुए विजयी होवें ॥१॥

यह मन्त्र ऋग्वेद में है—म० ६ । ७५ । १८, यजुः—१७ । ४९, साम० उ० ९ । ३ । ८ ॥

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥

॥ इति सप्तमं काण्डम् समाप्तम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

वेदभाष्य के लिये दानदाता महानुभाव

जिन्होंने ५०००) रुपया प्रदान किया

१. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज काकड़वाड़ी, गिरगांव, वी० पी० रोड बम्बई ५०००)
२. श्री जयदेवजी आर्य, ३१० सत्य बिल्डिंग, शीर्ष सर्किल, बम्बई-२२ ५०००)
३. श्री ओ० पी० गोयल-मैसर्स एयर ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, ३/५ आसफअली रोड नई दिल्ली-१ ५०००)
४. मैसर्स रैनबक्सी लेवोरेट्रीज प्रा० लिमिटेड, ओखला, नई दिल्ली ५०००)
५ श्री सरदारीलालजी अग्रवाल, C/O वेल्डन इलैक्ट्रिकल्स प्रा० लि० बम्बई ५०००)
६. श्री सेठ योगेन्द्र भाई मफतलालजी बम्बई ५०००)
७. श्री आदित्य प्रतापसिंह शूरजी, कच्छ कैसल, वी० पी० रोड, बम्बई ५०००)
८. श्री सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ, दि खटाऊ मकनजी स्पिनिंग एण्ड वीविंग कं० लि०, लक्ष्मी बिल्डिंग, वेलार्ड स्ट्रीट, बम्बई-१ ५०००)
९. श्री सदा जीवितलालजी, पंजाबी चन्दू हलवाई, बम्बई ५०००)
१०. श्री पी० डी० सिंहजी, राजगृह, २९ रास्ता, बान्द्रा, बम्बई- ५०००)
११. श्री मा० शिवचरणदास जी, ११३ दरयागंज, दिल्ली-६ ५०००)

जिन्होंने २०००) रु० प्रदान किया

१. श्री आर० के० मेहरा चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा श्री मोहनलाल भयाना, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ २०००)

जिन्होंने १००१) रु० प्रदान किया

१. श्री जगदीश चड्ढा जी द्वारा पावर इंजीनीयरिंग कम्पनी, ४९५।४९७ कालबादेवी रोड, बम्बई-२ १००१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२.मैसर्स मोहिन्द्रनाथ एण्ड कम्पनी, डब्ल्यू ९०, ग्रेटर कैलास, नई दिल्ली १००१)
३. श्री के० एस० दिग्विजय सिंह जी, दरबारगढ़ खरेड़ी,
जामनगर (गुजरात) १००१)
४. श्री जोशी बुढ़ा काका महिम हलवा वाला बम्बई १००१)
५. श्री मैसर्स ब्रजवासी दुग्धालय प्रा० लि० कालबादेवी रोड बम्बई १००१)

जिन्होंने १०००) रु० प्रदान किया

१. श्री डा० दुःखनराम जी, ब्रजकिशोर पथ, पटना (बिहार) १०००)
२. श्री बा० सोमनाथ जी मरवाहा एडवोकेट, ८ मलकागंज, दिल्ली-७ १०००)
३. श्री दीवान रामशरणदास जी मण्डी केसरगंज, लुधियाना १०००)
४. श्री सेठ भगवतीप्रसाद जी गुप्त, सागर विहार होटल,
८९ डिमोली रोड बम्बई-९ १०००)
५. श्री बाबूलालजी गुप्त, बुद्धिभवन, सुबे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर) १०००)
६. श्री पं० मनोहर जो विद्यालंकार, ईश्वरभवन, खारीबावली, दिल्ली-६ १०००)
७. श्री ला० ज्योति प्रसादजी प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
८. श्री गजानन्द जी आर्य, ९६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७ १०००)
९. श्री राय साहब चौधरी प्रतापसिंह जी, माडल टाऊन, करनाल १०००)
१०. श्री ला० दीवानचन्द जी, ३३ बी पूसा रोड, नई दिल्ली-५ १०००)
११. श्री सत्याचरण शर्मा, रिटायर्ड फोरेस्टरेंजर पाटी गली के
आगे, मुहल्ला छपेटी, इटावा (उ० प्र०) १०००)
१२. श्री स्वामी देवानन्द जी महाराज ग्राम कुनकुरा पो० इंचौली (मेरठ) १०००)
१३. श्रीमती प्रेमदेवी दर्गन, द्वारा श्री आसकरन दास सरदाना,
८, सरक्यूलर एवेन्यू, ईस्ट नागल टाऊन शिप (पंजाब) १०००)
१४. श्री गोविन्द भाई के० नन्दवाना, २५६-सरदार बल्लभभाई पटेल
मार्ग बम्बई-४ १०००)
१५. श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा, प्रेम कुटीर, थर्ड फ्लोर, मैरिन ड्राईव, बम्बई १०००)
१६. श्री रतनचन्द जी सूद, श्री रतनचन्द चैरीटेबल ट्रस्ट,
१९ गाल्फलिंक रोड, नई दिल्ली-३ १०००)
१७. श्री गुलजारीलाल जी आर्य, ८०।८२ नागदेवी स्ट्रीट,ब म्बई-३ १०००)
१८. श्री गण्डाराम जी मेहता, भारत टिम्बर, रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
१९. श्री जीवनदास जी चरला, हंसराज कालेज के सामने, मलकागंज,
दिल्ली-७ १०००)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०. श्री पं० श्रवणकुमार जी विद्यालंकार, देसरी (बिहार) १०००)
२१. श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना, म० न० ३४७, गली परजा, अमृतसर १०००)
२२. श्री डा० जगन्नाथ जी, भगवती देवी, कूचा घासीराम, दिल्ली-६ १०००)
२३. श्रीमती माता जानकी देवी जी तथा पुत्र श्री किशनदास जी, २६५ कूचा घासीराम, फतेह-पुरी, दिल्ली-६ १०००)
२४. मैसर्स अमर डाई स्टफ्स कम्पनी, अतुल प्रोडक्ट्स, क्लाथमार्केट दिल्ली-६ १०००)
२५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, आर्यसमाज रोड, जामनगर (गुजरात) १०००)
२६. श्री रामजी प्रसाद गुप्त, पूर्णमासी भवन, मुगलसराय (वाराणसी) १०००)
२७. श्री आचार्य जी गुरुकुल सूपा (जि० नवसारी) गुजरात १०००)
२८. मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स बम्बई, द्वारा श्री राजा नारायण लाल, मालावार हिल, बम्बई १०००)
२९. श्री डा० नारायण दास जी, फिजीशियन एण्ड आई स्पेशलिस्ट, फैंसी बाजार, गोहाटी (आसाम) १०००)
३०. श्री लेखराज जी गुप्त, ४७ ए जैसावाला फोर्ट, बम्बई १०००)
३१. श्री राजेश गुप्ता जी, १०३२८ मोतियाखान, नई दिल्ली-५५ १०००)
३२. श्री जगदीशचन्द्र भयाना जी, आर ४१ ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-४८ १०००)
३३. मैसर्स कवर किशन सिंह भयाना एण्ड कं०, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ १०००)
३४. श्री पन्नालाल जी मित्तल, सुभाष नगर, देहरादून (उ० प्र०) १०००)
३५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
३६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्द, अमृतसर (पंजाब) १०००)
३७. श्री मन्त्री जी, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमानरोड, नई दिल्ली-१ १०००)
३८. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, १९ विधानसरणि, कलकत्ता-६ १०००)
३९. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, ९४ रवीन्द्र सरणि, बड़ा बाजार, कलकत्ता-७ १०००)
४०. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, बोकारो स्टील सिटी (धनबाद) बिहार १०००)
४१. श्री गुरुदास राम भण्डारी, ८३ ब्रेज्यूक्रीसेण्ट एस० यू० कैल्गरी, १४ अलब्रेटा, कनाडा १०००)
४२. श्री एल० के० नन्दवाना जी, प्यूपिल्स बैंक बिल्डिंग, थर्ड फ्लोर, भद्र, अहमदाबाद-६ १०००)
४३. श्री ओंकारनाथ जी, १५४ रे० रोड, बम्बई-१० १०००)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४४. श्री छगनलाल जी विजयवर्गीय, बेगम बाजार, हैदराबाद १०००)
४५. श्री बनवारीलाल राधेमोहन, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली-६ १०००)
४६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज करौलबाग, नई दिल्ली-५ १०००)
४७. श्री वीरेन्द्र जी एम० ए० जालन्धर १०००)
४८. श्री नारायणदास जी जुनेजा, बान्द्रा, बम्बई १०००)
४९. श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले मोती बाजार चांदनी चौक दिल्ली १०००)
५०. श्री आनंदीलाल पोद्दार चैरीटेबल ट्रस्ट, ३६ चौरंगी रोड कलकत्ता १०००)
५१. श्री राधा कृष्ण जी जालान, जालान हाऊस झरिया १०००)
५२. श्री बालगोविन्द जी एडवोकेट, राँची
(द्वारा श्री डा० डी० राम जी सभाप्रधान) १०००)

सभी दान दाताओं का धन्यवाद

ओम्प्रकाश त्यागी

मन्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

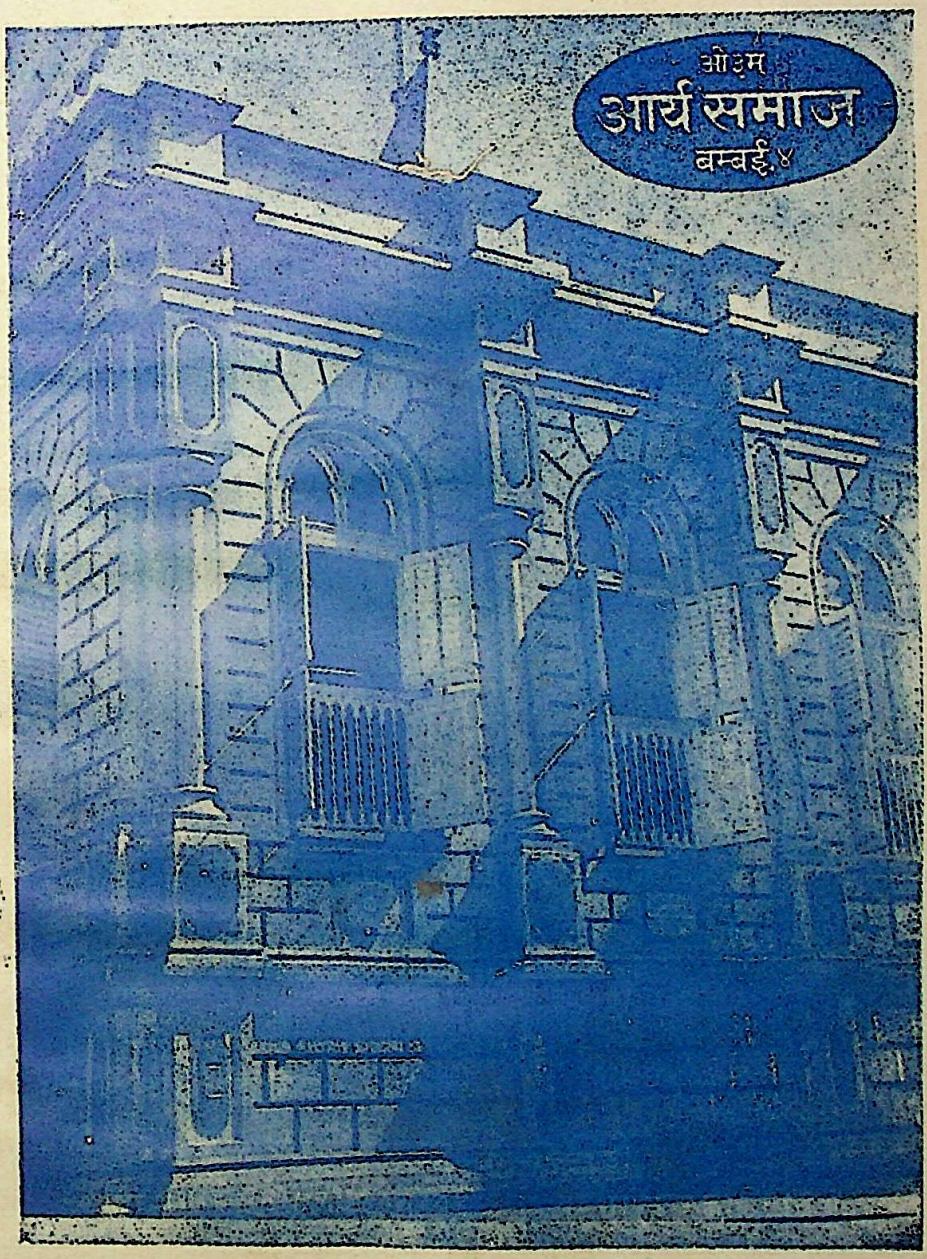

आर्य समाज काकड़वाड़ी
विट्ठलभाई पटेल रोड. बम्बई-४ ने वेदभाष्य प्रकाशनार्थ
पाँच हजार रुपये प्रदान किये—धन्यवाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

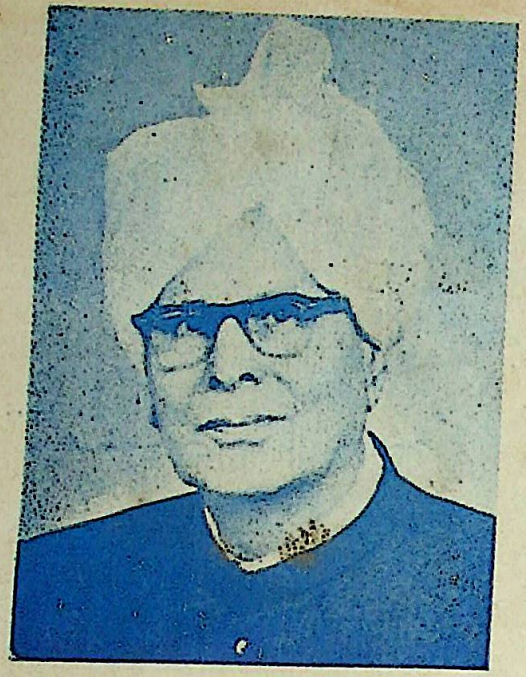

श्रीयुत भाई ज्ञानचन्द जी

आपके सुपुत्र श्री भाई मोहनसिंह जी, मैनेजिंग डायरेक्टर रनबक्सी लेबोरेट्रीज ओखला दिल्ली ने ५०००) वेद भाष्य के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को सहायतार्थ प्रदान किये।

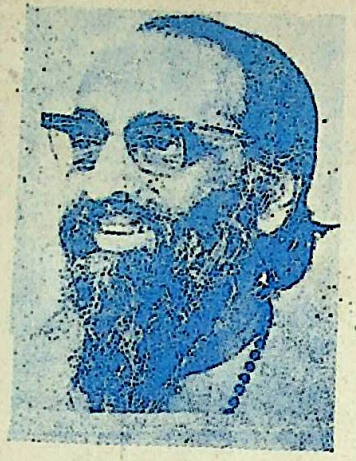

श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज

आपके श्रद्धालु भक्त श्री सदाजीवितलाल जी बम्बई निवासी ने पाँच हजार रुपये वेद भाष्य के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को प्रदान किये।

श्री मास्टर शिवचरणदास जी

दरियागंज दिल्ली ने वेदभाष्य की सहायतार्थ ५ हजार रुपये प्रदान किये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथर्ववेद

—भाषा भाष्य—

[प्रथम काण्ड से सप्तम काण्ड तक]

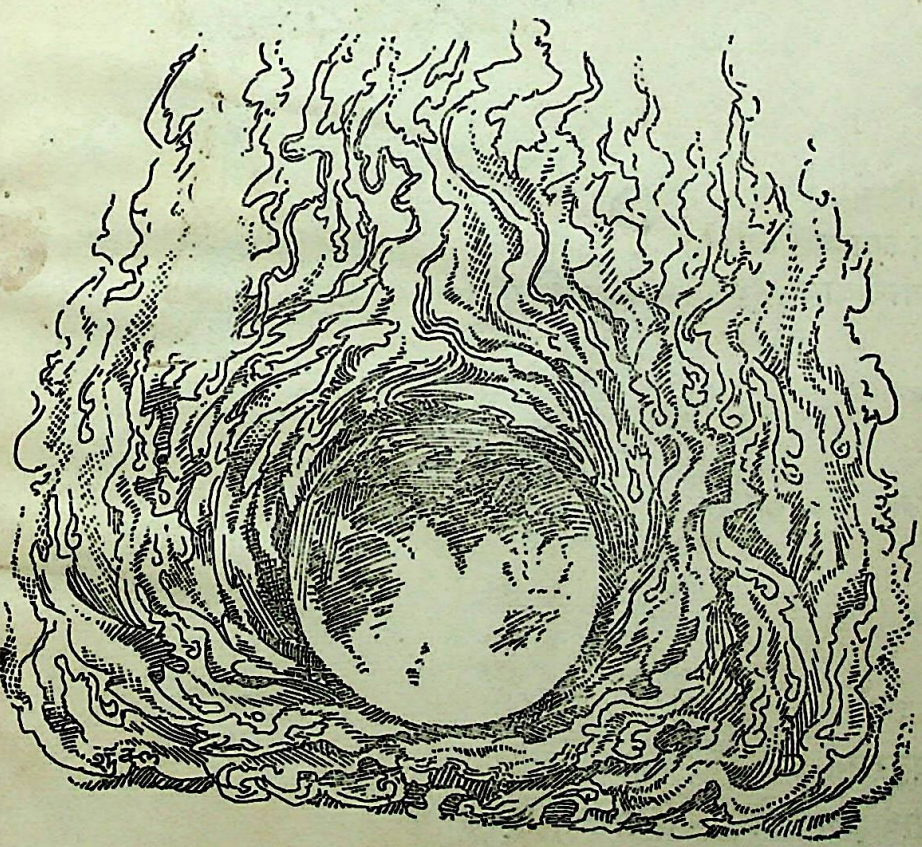

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी-प्रकाशन

●

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्दभवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

●

[८]

अथर्ववेद (आर्य भाषा-भाष्य)

(प्रथम काण्ड से सप्तम काण्ड तक)
श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी कृत भाष्य

●

सृष्टिसंवत् १९७२९४९०७३
विक्रमाब्द २०३०
दयानन्दाब्द १४९

●

मूल्य २० रुपये

●

मुद्रक
चतुरसेन
सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र-
चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व॰ १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

शुक्ल

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

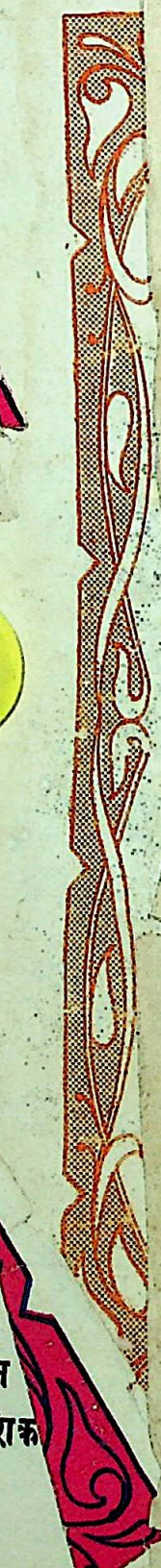

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.